कल्याण

॥ पुराणं सर्वशास्त्राणां
प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्॥

पुराणकथाङ्क

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय-जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(संस्करण १,७५,०००)

भगवान् श्रीहरि सबका कल्याण करें

यद्योगिभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्यमासाद्य वन्दितमतीव विविक्तचित्तैः।
तद्वः पुनातु हरिपादसरोजयुग्ममाविर्भवत्क्रमविलङ्घितभूर्भुवः स्वः॥
पायात्स वः सकलकल्मषभेददक्षः क्षीरोदकुक्षिफणिभोगनिविष्टमूर्तिः।
श्वासावधूतसलिलोत्कलिकाकरालः सिन्धुः प्रनृत्यमिव यस्य करोति सङ्गात्॥
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

जिनमें जन्म-मृत्युरूप संसारके भय और पीडाओंका नाश करनेकी पूर्ण योग्यता है, पवित्र अन्तःकरणवाले योगिजन जिन्हें ध्यानमें देखकर बारम्बार मस्तक झुकाते हैं, जो वामनरूपसे विराट्रूप धारण करते समय प्रकट होकर क्रमशः भूर्लोक, भुवर्लोक तथा स्वर्गलोकको भी लाँघ गये थे, श्रीहरिके वे दोनों चरणकमल आपलोगोंको पवित्र करते रहें। जो समस्त पापोंका संहार करनेमें समर्थ हैं, जिनका श्रीविग्रह क्षीरसागरके गर्भमें शेषनागकी शय्यापर शयन करता है, उन्हीं शेषनागकी श्वास-वायुसे कम्पित हुए जलकी उत्ताल तरङ्गोंके कारण विकराल प्रतीत होनेवाला समुद्र जिनका सत्सङ्ग पाकर प्रसन्नतासे नृत्य-सा करता जान पड़ता है, वे भगवान् नारायण आपलोगोंकी रक्षा करते रहें। भगवान् नारायण, पुरुषश्रेष्ठ नर, उनकी लीला प्रकट करनेवाली भगवती सरस्वती तथा उसके वक्ता महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके 'जय' (इतिहास-पुराण) का पाठ करना चाहिये।

वार्षिक शुल्क (डाक-व्ययसहित) भारतमें ४४.०० रु० विदेशमें ६ पौंड अथवा १० डालर

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

इस अङ्कका मूल्य (डाक-व्ययसहित) भारतमें ४४.०० रु० विदेशमें ६ पौंड अथवा १० डालर

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये जगदीशप्रसाद जालानद्वारा गीताप्रेस, गोरखपुरमें मुद्रित तथा प्रकाशित

'कल्याण'के सम्मान्य ग्राहकों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१-'कल्याण'के ६३वें वर्ष (वि॰ संवत् २०४६) का यह विशेषाङ्क 'पुराणकथाङ्क' पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४३८ पृष्ठोंमें पाठ्यसामग्री और १० पृष्ठोंमें सूची आदि हैं। कई बहुरंगे तथा सादे चित्र भी यथास्थान दिये गये हैं।

२-जिन ग्राहकोंसे शुल्क-राशि अग्रिम मनीआर्डरद्वारा प्राप्त हो चुकी है, उन्हें 'विशेषाङ्क' सौर वैशाख-अङ्कके सहित रजिस्ट्रीद्वारा भेजे जा रहे हैं तथा जिनसे शुल्क-राशि प्राप्त नहीं हुई है, उन्हें अङ्क बचनेपर ही ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार वी॰पी॰पी॰ द्वारा भेजा जा सकेगा। रजिस्ट्रीकी अपेक्षा वी॰ पी॰ पी॰ द्वारा 'विशेषाङ्क' भेजनेमें डाकखर्च अधिक लगता है, अतः ग्राहक महानुभावोंसे विनम्र अनुरोध है कि वे वी॰ पी॰ पी॰ की प्रतीक्षा और अपेक्षा न करके अपने तथा 'कल्याण'के हितमें वार्षिक शुल्क-राशि कृपया मनीआर्डरद्वारा ही भेजें। [illegible]ाण'का वार्षिक शुल्क डाकखर्चसहित ४४.०० (चौवालीस) रु॰ मात्र है, जो मात्र विशेषाङ्कका ही मूल्य है।

३-ग्राहक सज्जन कृपया मनीआर्डर-कूपनपर अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें। ग्राहक-संख्या या 'पुराना ग्राहक' न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है, जिससे आपकी सेवामें 'पुराणकथाङ्क' नयी ग्राहक-संख्याके क्रमसे पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्याके क्रमसे इसकी वी॰ पी॰ पी॰ भी जा सकती है। ऐसा भी हो सकता है कि उधरसे आप शुल्क-राशि मनीआर्डरसे भेज दें और उसके यहाँ पहुँचनेके पहले ही इधरसे वी॰ पी॰ पी॰ भी चली जाय। ऐसी स्थितिमें आपसे प्रार्थना है कि आप कृपया वी॰ पी॰ पी॰ लौटायें नहीं, अपितु प्रयत्न करके किन्हीं अन्य सज्जनको 'नया ग्राहक' बनाकर वी॰ पी॰ पी॰ से भेजे गये 'कल्याण'अङ्क उन्हें दे दें और उनका नाम तथा पूरा पता सुस्पष्ट, सुवाच्य लिपिमें लिखकर हमारे कार्यालयको भेजनेका अनुग्रह करें। आपके इस कृपापूर्ण सहयोगसे आपका अपना 'कल्याण' व्यर्थ डाक-व्ययकी हानिसे तो बचेगा ही, इस प्रकार आप भी 'कल्याण'के पावन प्रचारमें सहायक एवं सहयोगी बनकर पुण्यके भागी होंगे।

४-विशेषाङ्क 'पुराणकथाङ्क'के साथमें सौर वैशाख वि॰ सं॰ २०४६का (दूसरा) अङ्क भी ग्राहकोंकी सेवामें (शीघ्र और सुरक्षित पहुँचानेकी दृष्टिसे) रजिस्टर्ड पोस्टसे भेजा जा रहा है। यद्यपि यथाशक्य तत्परता और शीघ्रता करनेपर भी सभी ग्राहकोंको अङ्क भेजनेमें अनुमानतः ६-७ सप्ताह तो लग ही सकते हैं, तथापि विशेषाङ्क ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार ही भेजनेकी प्रक्रिया होनेसे किन्हीं महानुभावोंको अङ्क कुछ विलम्बसे मिलें तो वे अपरिहार्य कारण समझकर कृपया हमें क्षमा करेंगे।

५-विशेषाङ्कके लिफाफे (रैपर) पर आपकी जो ग्राहक-संख्या लिखी गयी है, उसे आप कृपया पूर्ण सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री या वी॰ पी॰ पी॰का नंबर भी नोट कर लेना चाहिये, जिससे आवश्यकतानुसार पत्राचारके समय उल्लेख किया जा सके। इससे कार्यकी सम्पन्नतामें शीघ्रता एवं सुविधा होगी एवं कार्यालयकी शक्ति और समय व्यर्थ नष्ट होनेसे बचेंगे।

६-'कल्याण'-व्यवस्था-विभाग एवं 'गीताप्रेस-पुस्तक-विक्रय-विभाग' को अलग-अलग समझकर सम्बन्धित पत्र, पार्सल, पैकेट, मनीआर्डर, बीमा आदि पृथक्-पृथक् पतोंपर भेजने चाहिये। पतेके स्थानपर केवल 'गोरखपुर' ही न लिखकर पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुरके साथ पिन-२७३००५ भी अवश्य लिखना चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर, पिन-२७३००५

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस दोनों विश्व-साहित्यके अमूल्य ग्रन्थ-रत्न हैं। इनके पठन-पाठन एवं मननसे मनुष्य लोक-परलोक दोनोंमें अपना कल्याण-साधन कर सकता है। इनके स्वाध्यायमें वर्ण, आश्रम, जाति, अवस्था आदि कोई भी बाधक नहीं है। आजके समयमें इन दिव्य ग्रन्थोंके पाठ और प्रचारकी अत्यधिक आवश्यकता है। अतः धर्मपरायण जनताको इन कल्याणमय ग्रन्थोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं विचारोंसे अधिकाधिक लाभ पहुँचानेके सदुद्देश्यसे श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघकी स्थापना की गयी है। इसके सदस्योंकी संख्या इस समय लगभग बावन हजार है। इसमें श्रीगीताके छः प्रकारके और श्रीरामचरितमानसके तीन प्रकारके सदस्य बनाये गये हैं। इसके अतिरिक्त उपासना-विभागके अन्तर्गत नित्य इष्टदेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी पूजा अथवा मानसिक पूजा करनेवाले सदस्योंकी श्रेणी भी है। इन सभीको श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानसके नियमित अध्ययन तथा उपासनाकी सत्प्रेरणा दी जाती है। सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। इच्छुक सज्जन परिचय-पुस्तिका निःशुल्क मँगवाकर पूरी जानकारी प्राप्त करनेकी कृपा करें एवं श्रीगीताजी और श्रीरामचरितमानसके प्रचार-यज्ञमें सम्मिलित होकर अपने जीवनका कल्याणमय पथ प्रशस्त करें।

पत्र-व्यवहारका पता—मन्त्री, श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, *पत्रालय*—स्वर्गाश्रम—२४९३०४ (वाया-ऋषिकेश), *जनपद*—पौड़ी-गढ़वाल (उ० प्र०)

साधक-संघ

मानव-जीवनकी सर्वतोमुखी सफलता आत्म-विकासपर ही अवलम्बित है। आत्म-विकासके लिये जीवनमें सत्यता, सरलता, निष्कपटता, सदाचार, भगवत्परायणता आदि दैवी गुणोंका ग्रहण और असत्य, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, हिंसा आदि आसुरी गुणोंका त्याग ही एकमात्र श्रेष्ठ और सरल उपाय है। मनुष्यमात्रको इस सत्यसे अवगत करानेके पावन उद्देश्यसे लगभग ४१ वर्षपूर्व 'साधक-संघ'की स्थापना की गयी थी। इसका सदस्यता-शुल्क नहीं है। सभी कल्याणकामी स्त्री-पुरुषोंको इसका सदस्य बनना चाहिये। सदस्योंके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम बने हैं। प्रत्येक सदस्यको एक 'साधक-दैनन्दिनी' एवं एक 'आवेदन-पत्र' भेजा जाता है, सदस्य बननेके इच्छुक भाई-बहनोंको (इधरमें डाक-खर्चमें विशेष वृद्धि हो जानेके कारण साधक-दैनन्दिनीका मूल्य ०.४५पैसे तथा डाकखर्च ०.३०पैसे) मात्र ०.७५पैसे डाकटिकट या मनीआर्डरद्वारा अग्रिम भेजकर उन्हें मँगवा लेना चाहिये। साधक उस दैनन्दिनीमें प्रतिदिन अपने नियम-पालनका विवरण लिखते हैं। विशेष जानकारीके लिये कृपया निःशुल्क नियमावली मँगवाइये।

पता—संयोजक, 'साधक-संघ' द्वारा—'कल्याण' सम्पादन-विभाग, *पत्रालय*—गीताप्रेस, *जनपद*—गोरखपुर—२७३००५ (उ० प्र०)

श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस दोनों मङ्गलमय एवं दिव्यतम ग्रन्थ हैं। इनमें मानवमात्रको अपनी समस्याओंका समाधान मिल जाता है तथा जीवनमें अपूर्व सुख-शान्तिका अनुभव होता है। प्रायः सम्पूर्ण विश्वमें इन अमूल्य ग्रन्थोंका समादर है और करोड़ों मनुष्योंने इनके अनुवादोंको भी पढ़कर अवर्णनीय लाभ उठाया है। इन ग्रन्थोंके प्रचारके द्वारा लोकमानसको अधिकाधिक परिष्कृत करनेकी दृष्टिसे श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानसकी परीक्षाओंका प्रबन्ध किया गया है। दोनों ग्रन्थोंकी परीक्षाओंमें बैठनेवाले लगभग बीस हजार परीक्षार्थियोंके लिये ४०० (चार सौ) परीक्षा-केन्द्रोंकी व्यवस्था है। नियमावली मँगानेके लिये कृपया निम्नलिखित पतेपर पत्र-व्यवहार करें।

व्यवस्थापक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, *पत्रालय*—स्वर्गाश्रम, पिन—२४९३०४ (वाया-ऋषिकेश), *जनपद*—पौड़ी-गढ़वाल (उ० प्र०)

'पुराणकथाङ्क'की विषय-सूची

चित्र-सूची

(बहुरंगे चित्र)

इकरंगे (सादे चित्र)

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारद्वारा रचित तथा अनुवादित सत्साहित्य मँगायें

श्रीराधा-माधव-चिन्तन
पद-रत्नाकर
संत-वाणी
सुखी बननेके उपाय
मधुर
सत्संगके बिखरे मोती
भगवन्नाम-चिन्तन
भगवच्चर्चा भाग १
" भाग २
" भाग ३
" भाग ४
" भाग ५
" भाग ६

लोक-परलोक-सुधार भाग १
" भाग २
" भाग ३
" भाग ४
" भाग ५
व्यवहार और परमार्थ
भवरोगकी रामबाण दवा
उपनिषदोंके चौदह रत्न
साधन-पथ
कल्याण-कुंज भाग १
" भाग २
" भाग ३
दिव्य सुखकी सरिता

सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ
मानव-धर्म
श्रीभगवन्नाम
गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य
गोपी-प्रेम
ब्रह्मचर्य
आनन्दकी लहरें
मनको वशमें करनेके कुछ उपाय
भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा
सिनेमा-मनोरंजन या विनाशका साधन
राधा-माधव-रस-सुधा-सटीक
विवाहमें दहेज

स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजकी आत्मबोध करानेवाली पुस्तकें पढ़ें

गीता-साधक-संजीवनी
गीता-दर्पण
गीताकी राजविद्या
गीतामाधुर्य
गीताका ज्ञानयोग
गीताका भक्तियोग
गीताका आरम्भ
गीताकी विभूति और विश्वरूप-दर्शन
गीताकी सम्पत्ति और श्रद्धा
गीताका कर्मयोग-खण्ड २

गीताका ध्यानयोग
गीता-परिचय
गीताका सारभूत श्लोक
मानसमें नाम-वन्दना
जीवनोपयोगी प्रवचन
कल्याणकारी प्रवचन गुजराती
भगवत्प्राप्तिकी सुगमता
तात्त्विक प्रवचन
सत्संगकी विलक्षणता
वास्तविक सुख

जीवनका सत्य
साधकोंके प्रति
भगवन्नाम
कल्याणकारी प्रवचन प्रथम
" द्वितीय
स्वाधीन कैसे बनें
Benedictory Discourses
Let us know the truth
The Divine Name

विद्यार्थियों और बालकोंके लिये उपयोगी पुस्तकें

पिताकी सीख
बालकोंकी बातें
चोखी कहानियाँ
बड़ोंके जीवनसे शिक्षा
वीर बालक
गुरु और माता-पिताके भक्त बालक
सच्चे और ईमानदार बालक
बालकोंके कर्तव्य
दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ
वीर बालिकाएँ

पढ़ो, समझो और करो—
भाग १से १२तक
बालचित्रमय श्रीकृष्णलीला
भगवान् श्रीकृष्ण
भगवान् श्रीराम
बालचित्र रामायण
बालचित्रमय बुद्ध-लीला
बालचित्रमय चैतन्य-लीला
वर्तमान शिक्षा
आदर्श भ्रातृप्रेम

बालकके गुण
आओ बच्चों तुम्हें बतायें
बालशिक्षा
बालककी दिनचर्या
बालकोंकी सीख
बालकके आचरण
बाल-अमृत-वचन
भक्त बालक
बालकोंकी बोलचाल

पुराणपुरुषोत्तम भगवान् विष्णु

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
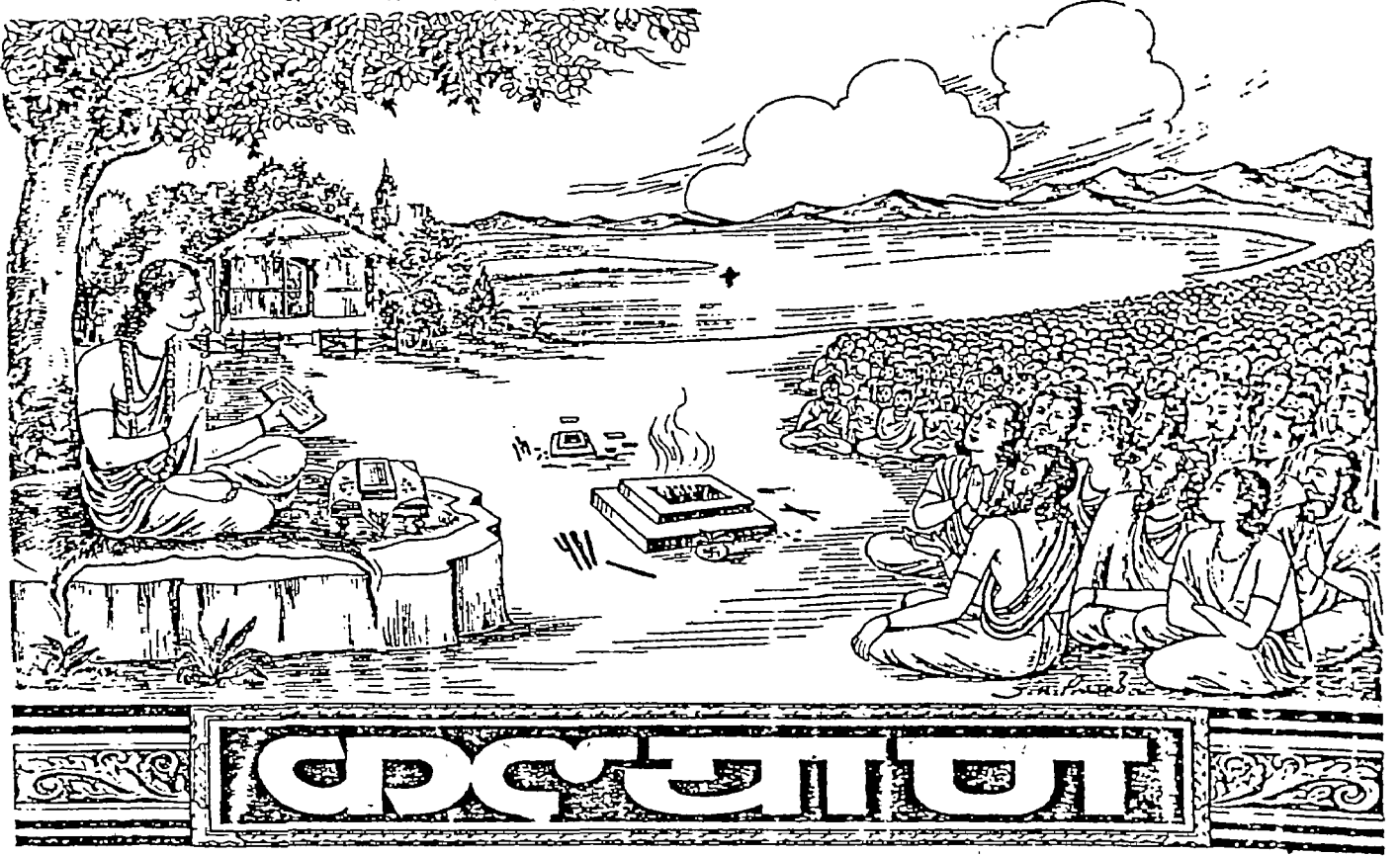
यशः शिवं सुश्रव आर्यसङ्गमे यदृच्छया चोपशृणोति ते सकृत्।
कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया॥

वर्ष ६३ } गोरखपुर, सौर चैत्र, वि॰ सं॰ २०४६, श्रीकृष्ण-सं॰ ५२१५, अप्रैल १९८९ ई॰ { संख्या १ पूर्ण संख्या ७४६

पुराण-विग्रह भगवान् विष्णु

ब्राह्मं मूर्धा हरेरेव हृदयं पद्मसंज्ञकम्॥
वैष्णवं दक्षिणो बाहुः शैवं वामो महेशितुः। ऊरू भागवतं प्रोक्तं नाभिः स्यान्नारदीयकम्॥
मार्कण्डेयं च दक्षाङ्घ्रिर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते। भविष्यं दक्षिणो जानुर्विष्णोरेव महात्मनः॥
ब्रह्मवैवर्तसंज्ञं तु वामजानुरुदाहृतः। लैङ्गं तु गुल्फकं दक्षं वाराहं वामगुल्फकम्॥
स्कान्दं पुराणं लोमानि त्वगस्य वामनं स्मृतम्। कौर्मं पृष्ठं समाख्यातं मात्स्यं मेदः प्रकीर्त्यते॥
मज्जा तु गारुडं प्रोक्तं ब्रह्माण्डमस्थि गीयते। एवमेवाभवद्विष्णुः पुराणावयवो हरिः॥

(पद्मपु॰, स्व॰ ख॰ ६२। २—७)

'ब्रह्मपुराण भगवान् विष्णुका सिर, पद्मपुराण हृदय, विष्णुपुराण दक्षिणबाहु, शिवपुराण वामबाहु, भागवत जङ्घायुगल, नारदपुराण नाभि, मार्कण्डेयपुराण दक्षिण और अग्निपुराण वाम चरण है। भविष्य उनका दक्षिण जानु, ब्रह्मवैवर्त वाम जानु, लिङ्गपुराण दक्षिण गुल्फ (टँखना), वराहपुराण वाम गुल्फ, स्कन्दपुराण रोम, वामनपुराण त्वचा, कूर्मपुराण पीठ, मत्स्यपुराण मेद, गरुड मज्जा और ब्रह्माण्डपुराण अस्थि है। इस प्रकार भगवान् विष्णु पुराण-विग्रहके रूपमें प्रकट हुए हैं।

स्वस्त्ययन

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥

दोनों अश्विनीकुमार हम सबका कल्याण करें। सूर्यदेवता, अव्याहतगतिक पूषा देवता, शत्रुनाशक, प्राण एवं शक्तिको प्रदान करनेवाले असुर (वरुणदेव), अदितिदेवी तथा द्युलोक एवं पृथ्वीलोक हम सबका मङ्गल करें और हमें शोभन ज्ञानसे सम्पन्न करें।

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥

हम वायुदेवता और लोकोंके पालक सोमदेवताकी स्तुति करते हैं तथा महान् कर्मों और ज्ञानके पालक बृहस्पति तथा सभी देवगणोंसे कल्याणके लिये प्रार्थना करते हैं। ये सभी देवता तथा द्वादश आदित्यगण हम सबका मङ्गल करें।

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥

सभी देवता शुभ कर्मोंको आरम्भ करते समय हमारा कल्याण करें। संसारके संचालक तथा सबके आश्रय वैश्वानर अग्निदेव हमारा कल्याण करें। ऋभु नामक देवगण पालन और भगवान् रुद्रदेव सभी पाप-तापोंसे हमारी रक्षा करें।

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥

हे अहोरात्रके आत्मस्वरूप मित्रावरुण देव ! आप हम सबका कल्याण करें। हे भूलोक एवं अन्तरिक्षलोकके मार्गोंमें कल्याण करनेवाली पथ्या देवि ! और उनके साथ चलनेवाली तथा धन प्रदान करनेवाली रेवती देवि ! आप हम लोगोंका सर्वत्र कल्याण करें। देवराज इन्द्रदेव एवं परम तेजस्वी अग्निदेव तथा देवमाता अदिति देवि ! आप सभी हम लोगोंका मङ्गल करें।

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥

जैसे सूर्य और चन्द्रमा निरालम्ब अन्तरिक्षमें निरापद एवं राक्षसादिसे अबाधित निर्विघ्न यात्रा करते हैं, विचरण करते हैं, वैसे ही हम भी अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ लोक-यात्रामें स्नेहपूर्वक निर्विघ्न चलते रहें और हम सबका मार्ग मङ्गलमय हो।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्
शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

हे संसारके नेत्र-स्वरूप, देवताओंके हितचिन्तक, पूर्वदिशामें उदित होनेवाले निष्पाप तथा शुद्ध-बुद्ध, निरन्तर गतिशील सूर्यदेव ! आपके अनुग्रहसे हमलोग सौ वर्षोंतक जीते रहें। सौ वर्षोंतक हमारी अविकल दृष्टि-शक्ति एवं श्रवण-शक्ति बनी रहे। सौ वर्षोंतक सुस्पष्ट वाक्शक्ति बनी रहे और सौ वर्षोंतक हम सभी इन्द्रियोंसे सम्पूर्ण शक्तियुक्त होकर अदीन अर्थात् समृद्ध बने रहें और सौ वर्षसे भी अधिक समयतक समृद्धिशाली और सभी शक्तियोंसे सम्पन्न रहें।

ॐ शान्तिः ! ॐ शान्तिः !! ॐ शान्तिः !!!

विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम्

विघ्नेश विघ्नचयखण्डननामधेय श्रीशंकरात्मज सुराधिपवन्द्यपाद ।
दुर्गामहाव्रतफलाखिलमङ्गलात्मन् विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
सत्पद्मरागमणिवर्णशरीरकान्तिः श्रीसिद्धिबुद्धिपरिचर्चितकुङ्कुमश्रीः ।
दक्षस्तने वलयितातिमनोज्ञशुण्डो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
पाशाङ्कुशाब्जपरशूंश्च दधच्चतुर्भिर्दोर्भिश्च शोणकुसुमस्त्रगुमाङ्गजातः ।
सिन्दूरशोभितललाटविधुप्रकाशो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
कार्येषु विघ्नचयभीतविरञ्चिमुख्यैः सम्पूजितः सुरवरैरपि मोदकाद्यैः ।
सर्वेषु च प्रथममेव सुरेषु पूज्यो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
शीघ्राञ्चनस्खलनतुङ्गरवोर्ध्वकण्ठ स्थूलेन्दुरुद्रगणहासितदेवसङ्घः ।
शूर्पश्रुतिश्च पृथुवर्तुलतुङ्गतुन्दो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
यज्ञोपवीतपदलम्भितनागराजो मासादिपुण्यददृशीकृतऋक्षराजः ।
भक्ताभयप्रद दयालय विघ्नराज विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
सद्रत्नसारततिराजितसत्किरीटः कौसुम्भचारुवसनद्वय ऊर्जितश्रीः ।
सर्वत्र मङ्गलकरस्मरणप्रतापो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥
देवान्तकाद्यसुरभीतसुरार्तिहर्ता विज्ञानबोधनवरेण तमोऽपहर्ता ।
आनन्दितत्रिभुवनेश कुमारबन्धो विघ्नं ममापहर सिद्धिविनायक त्वम् ॥ (मुद्‌गलपुराण)

हे विघ्नेश ! हे सिद्धिविनायक ! आपका नाम विघ्न-समूहका खण्डन करेवाला है। आप भगवान् शंकरके सुपुत्र हैं। देवराज इन्द्र आपके चरणोंकी वन्दना करते हैं। आप श्रीपार्वतीजीके महान् व्रतके उत्तम फल एवं निखिल मङ्गलरूप हैं। आप मेरे विघ्नका निवारण करें। सिद्धिविनायक ! आपके श्रीविग्रहकी कान्ति उत्तम पद्मरागमणिके समान अरुण वर्णकी है। श्रीसिद्धि और बुद्धि देवियोंने अनुलेपन करके आपके श्रीअङ्गोंमें कुङ्कुमकी शोभाका विस्तार किया है। आपके दाहिने स्तनपर वलयाकार मुड़ा हुआ शुण्ड-दण्ड अत्यन्त मनोहर जान पड़ता है। आप मेरे विघ्न हर लीजिये। सिद्धिविनायक ! आप अपने चार हाथोंमें क्रमशः पाश, अङ्कुश, कमल और परशु धारण करते हैं, लाल फूलोंकी मालासे अलंकृत हैं और उमाके अङ्गसे उत्पन्न हुए हैं तथा आपके सिन्दूरशोभित ललाटमें चन्द्रमाका प्रकाश फैल रहा है, आप मेरे विघ्नोंका अपहरण कीजिये। सभी कार्योंमें विघ्न-समूहके आ पड़नेकी आशङ्कासे भयभीत हुए ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवताओंने भी आपकी मोदक आदि मिष्टान्नोंसे भलीभाँति पूजा की है। आप समस्त देवताओंमें सबसे पहले ही पूजनीय हैं। आप मेरे विघ्न-समूहका निवारण कीजिये। सिद्धिविनायक ! आप जल्दी-जल्दी चलने, लड़खड़ाने, उच्चस्वरसे शब्द करने, ऊर्ध्वकण्ठ, स्थूल शरीर होनेसे चन्द्र, रुद्रगण आदि समस्त देवसमुदायको हँसाते रहते हैं। आपके कान सूपके समान जान पड़ते हैं, आप मोटा गोलाकार और ऊँचा तुन्द (तोंद) धारण करते हैं। आप मेरे विघ्नोंका अपहरण कीजिये। आपने नागराजको यज्ञोपवीतका स्थान दे रखा है, आप बालचन्द्रको मस्तकपर धारणकर दर्शनार्थियोंको पुण्य प्रदान करते हैं। भक्तोंको अभय देनेवाले दयाधाम विघ्नराज ! सिद्धिविनायक ! आप मेरे विघ्नोंको हर लीजिये। आपका सुन्दर किरीट उत्तम रत्नोंके सार भागोंकी श्रेणियोंसे उद्दीप्त होता है। आप कुसुम्भी रंगके दो मनोहर वस्त्र धारण करते हैं, आपकी शोभा—कान्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी है और सर्वत्र आपके स्मरणका प्रताप सबका मङ्गल करनेवाला है। सिद्धिविनायक ! आप मेरे विघ्न हर लें। सिद्धिविनायक ! आप देवान्तक आदि असुरोंसे डरे हुए देवताओंकी पीडा दूर करनेवाले तथा विज्ञानबोधके वरदानसे सबके अज्ञानान्धकारको हर लेनेवाले हैं। त्रिभुवनपति इन्द्रको आनन्दित करनेवाले कुमारबन्धो ! आप मेरे विघ्नोंका निवारण कीजिये।

नमः सवित्रे

जयति किरणमाली भासुरः सप्तसप्तिसकलभुवनधामा प्राग्दिगन्ताट्टहासः ।
भवति विगतपापं कीर्तनादेव यस्य प्रचुरकलुषदोषैर्ग्रस्तमङ्गं नराणाम् ॥
उद्यन्तमम्बरतले सुरसिद्धसङ्घाः सब्रह्मदैत्यमुनिकिन्नरनागयक्षाः ।
त्वामर्चयन्ति विबुधाः प्रणतैः शिरोभिश्चञ्चत्किरीटमणिभाभिरनुत्तमाभिः ॥
प्राग्दिग्वधूतिलक भासुरकर्णपूर मन्दाकिनीदयितनाथ जगत्प्रदीप ।
हेमाद्रितापन नभस्तलहाररत्न सन्ध्याङ्गनावदनराग नमो नमस्ते ॥
ब्रह्मण्य सत्य शुभ मङ्गललोकनाथ व्योमाम्बुजेश मुनिसंस्तुत विश्वमूर्ते ।
आर्तस्य शोकहर किङ्करपालकश्च त्वं मे प्रसीद भगवञ्छरणागतस्य ॥
नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ।
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे विरञ्चिनारायणशङ्करात्मने ॥

(स्कन्द०, अवन्ती०, अ० ४३)

किरणोंकी मालासे मण्डित, अत्यन्त प्रकाशमान एवं सात घोड़ोंके रथपर चलनेवाले उन भगवान् सूर्यकी जय हो, जिनका तेज समस्त भुवनोंमें व्याप्त है, जो पूर्व दिशाके अट्टहासकी-सी छवि धारण करते हैं तथा जिनके नामोंका कीर्तन करनेमात्रसे प्रचुर पाप-तापमय दोषोंसे ग्रस्त हुए मनुष्योंके अङ्ग निष्पाप हो जाते है। भगवन्! जिस समय आप आकाशमें उदित होते हैं, उस समय देवताओं और सिद्धोंके समुदाय, ब्रह्मा आदि देवेश्वर, दैत्य, मुनि, किन्नर, नाग, यक्ष तथा ज्ञानी देवगण अपने झुके हुए मस्तकोंद्वारा चमकती हुई मुकुटमणियोंकी उत्तम प्रभाओंसे आपकी अर्चना करते हैं। हे वधूरूपिणी प्राची दिशाके भाल-तिलक! देदीप्यमान कर्णपूर धारण करनेवाले मन्दाकिनीके प्रियतम नाथ! सुमेरु पर्वतको प्रकाशित करनेवाले! आकाशके महान् हाररत्न! अङ्गनारूपी सन्ध्याके मुखको रञ्जित करनेवाले! जगत्प्रदीप! आपको बारंबार नमस्कार है। हे ब्रह्मण्य! सत्य! शुभ! मङ्गल! लोकनाथ! आकाशकमल! ईश! मुनि-संस्तुत! विश्वमूर्ते! आर्तजनोंका शोक नाश करनेवाले! सेवकोंका पालन करनेवाले! भगवन्! मैं आपकी शरणमें आया हूँ मुझपर प्रसन्न होइये। जो सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र नेत्र हैं, वेदत्रयीमय हैं अथवा त्रिभुवन-स्वरूप हैं, त्रिगुणात्मक शरीर धारण करनेवाले हैं और समस्त विश्वकी उत्पत्ति, पालन तथा संहारके हेतु हैं, उन ब्रह्मा, विष्णु, शिवरूप भगवान् सूर्यको मेरा नमस्कार है।

सुभद्रश्रवसे नमो नमः

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥
तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः ।
क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ (श्रीमद्भा० २।४।१५, १७)

जिन मङ्गलमय भगवान्के मङ्गलमयी कीर्तिका श्रवण सभी प्रकारके मङ्गलोंका विस्तार करता है, जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन और पूजन जीवोंके पापोंको तत्काल नष्ट कर देता है, उन पुण्यकीर्ति भगवान् पुराण-पुरुष श्रीविष्णुको बारंबार नमस्कार है। बड़े-बड़े तपस्वी, दानी, यशस्वी, मनस्वी, सदाचारी और मन्त्रवेत्ता जबतक अपनी साधनाओंको तथा अपने-आपको उनके (भगवान्के) चरणोंमें समर्पित नहीं कर देते, तबतक उन्हें कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती, जिनके प्रति आत्मसमर्पणकी ऐसी महिमा है, उन कल्याणमयी कीर्तिवाले भगवान् पुराण-पुरुष श्रीविष्णुको बारंबार नमस्कार है।

तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि

कृत्स्नस्य योऽस्य जगतः सचराचरस्य कर्ता कृतस्य च तथा सुखदुःखदाता ।
संसारहेतुरपि यः पुनरन्तकालस्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥
यं योगिनो विगतमोहतमोरजस्का भक्त्यैकतानमनसो विनिवृत्तकामाः ।
ध्यायन्ति चाखिलधियोऽमितदिव्यमूर्तिं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥
यश्चन्द्रखण्डममलं विलसन्मयूखं बद्ध्वा सदा सुरधुनीं शिरसा बिभर्ति ।
वामाङ्कके विधृतवान् गिरिराजपुत्रीं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥
यः सिद्धचारणनिषेवितपादपद्मो गङ्गां महोर्मिविषमां गगनात् पतन्तीम् ।
मूर्ध्ना दधे स्रजमिव त्रिजगत्पुनन्तीं तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥
कैलासगोत्रशिखरे परिकम्पमाने कैलासशृङ्गसदृशेन दशाननेन ।
यः पादपद्मपरिपीडनसेव्यमानस्तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥
ब्रह्मेन्द्रविष्णुमरुतां च सषण्मुखानां योऽदाद्वरान् सुबहुशो भगवान् महेशः ।
श्वेतं च मृत्युवदनात् पुनरुज्जहार तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥
आराधितस्तु तपसा हिमवन्निकुञ्जे धूम्रावृतेन तपसाऽपि परैरगम्यः ।
सञ्जीविनीं समददाद् भृगवे महात्मा तं शङ्करं शरणदं शरणं व्रजामि ॥

(स्कन्दपुराण, अवन्तीखण्ड०, अ० ४९)

'जो इस सम्पूर्ण चराचर-जगत्‌के कर्ता और इसे अपने किये हुए कर्मोंके अनुसार सुख-दुःख देनेवाले हैं, जो संसारकी उत्पत्तिके हेतु तथा उसका अन्तकाल भी स्वयं ही हैं, सबको शरण देनेवाले उन्हीं भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। जिनके मोह, तमोगुण और रजोगुण दूर हो गये हैं, वे योगीजन, भक्तिसे मनको एकाग्र रखनेवाले निष्काम भक्त तथा अपरिच्छिन्न बुद्धिवाले ज्ञानी भी जिनका निरन्तर ध्यान करते हैं, उन अनन्त दिव्यस्वरूप शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। जो सुशोभित किरणोंवाले निर्मल अर्धचन्द्रका मुकुट बाँधकर सदा अपने मस्तकपर गङ्गाजीको धारण करते हैं और जिन्होंने अपने वामाङ्गभागमें गिरिराजकिशोरी उमाको धारण कर रखा है, उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। सिद्ध और चारण जिनके चरणारविन्दोंकी सेवा करते रहते हैं और जिन्होंने आकाशसे ऊँची-ऊँची उत्ताल तरङ्गोंके साथ विषम वेगसे गिरती हुई त्रिभुवनपावनी गङ्गाको अपने मस्तकपर पुष्पमालाकी भाँति धारण कर लिया था, उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। जिसके भारसे कैलासपर्वतका शिखर हिलने लगता था, कैलास-शृङ्गके सदृश ही उस विशालकाय दशाननने भी जिनके युगल चरणारविन्दोंकी सेवा की है, उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। जिन्होंने ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, मरुद्‌गण और कार्तिकेयको अनेक बार बहुत-से वर प्रदान किये तथा अपने भक्त महामुनि श्वेतको मृत्युके मुखसे निकाल लिया था[१], उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ। आचार्य शुक्रने हिमालयपर्वतके निकुञ्जोंमें अग्निसे समुत्थित धुएँसे आवृत होकर, उसका पान कर, अन्य किसीसे भी असाध्य तपद्वारा भगवान् शंकरकी आराधना की। इससे प्रसन्न होकर जिन महान् आत्मा महादेवने उन्हें संजीवनी-विद्या प्रदान कर दी[२], उन शरणदाता भगवान् शंकरकी मैं शरण लेता हूँ।

१-महामुनि श्वेतकी यह कथा लिङ्गपुराण पूर्वखण्ड अ० ३० में विस्तारपूर्वक प्राप्त होती है।
२-यह कथा मत्स्यपुराण अ० ४७ श्लोक ८२ से १२२ तकमें प्राप्त होती है।

नमामि ते रूपमिदं भवानि !

आद्यं महान्तं पुरुषाभिधानं प्रकृत्यवस्थं त्रिगुणात्मबीजम्। ऐश्वर्यविज्ञानविरोधधर्मैः समन्वितं देवि नतोऽस्मि रूपम्॥
सर्वाश्रयं सर्वजगद्विधानं सर्वत्रगं जन्मविनाशहीनम्। सूक्ष्मं विचित्रं त्रिगुणं प्रधानं नतोऽस्मि ते रूपमरूपभेदम्॥
यदेव पश्यन्ति जगत्प्रसूतिं वेदान्तविज्ञानविनिश्चितार्थाः। आनन्दमात्रं प्रणवाभिधानं तदेव रूपं शरणं प्रपद्ये॥
सहस्रमूर्धानमनन्तशक्तिं सहस्रबाहुं पुरुषं पुराणम्। शयानमन्तःसलिले तवैव नारायणाख्यं प्रणतोऽस्मि रूपम्॥
प्रहीणशोकं प्रविहीनरूपं सुरासुरैरर्चितपादपद्मम्। सुकोमलं देवि विभासि शुभ्रं नमामि ते रूपमिदं भवानि॥
नमस्तेऽस्तु महादेवि नमस्ते परमेश्वरि। नमो भगवतीशानि शिवायै ते नमो नमः॥

(कूर्मपु०, पूर्वा०, अ० १२)

हे देवि ! आपका जो रूप आद्य, महापुरुषसंज्ञक प्रधान प्रकृति-अवस्थावाला, सत्त्व-रज आदि तीनों गुणोंका बीजभूत और ऐश्वर्य, विज्ञान एवं अनेक परस्पर विरुद्ध धर्म तथा गुणोंका आश्रय है, मैं उसे प्रणाम करता हूँ। देवि ! जो आपका रूप समस्त संसारका आश्रय, विश्व-विधाता , सर्वत्रगामी, जन्म-जरा-मृत्युसे रहित, अतिसूक्ष्म, विचित्र, त्रिगुणमय, प्रधान तथा निर्गुण एवं सगुण-स्वरूप है, मैं उसे नमस्कार करता हूँ। वेदान्त एवं विज्ञानशास्त्रके द्वारा सुनिश्चित निर्णय-प्राप्त ऋषिगण, जगत्को उत्पन्न करनेवाले आनन्दमात्र आपके जिस ओंकारस्वरूपका सदा ध्यान करते हैं, हम उसकी शरण ग्रहण करते हैं, सहस्र मस्तक, सहस्र भुजा एवं अनन्त शक्तियोंको धारण करनेवाले अन्तःसमुद्रशायी पुराणपुरुष भगवान् नारायण भी आपके ही रूप हैं, मैं आपके उस रूपको प्रणाम करता हूँ। हे भवानी देवि ! तुम निर्गुण-निराकार होती हुई भी सम्पूर्ण शोक-मोहसे शून्य, देवता एवं असुरोंद्वारा अर्चित, सुकोमल चरणकमलवाली, गौरीरूपमें प्रकाशित हो रही हो, मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ। हे षडैश्वर्यसम्पन्न परमेश्वरि महादेवि ! आपको प्रणाम है। समस्त संसारपर शासन करनेवाली हे भगवती शाङ्करि ! मेरा आपको बारंबार नमस्कार है।

वेदव्यासं सर्वदाहं नमामि

पाराशर्यं परमपुरुषं विश्ववेदैकयोनिं
विद्याधारं विमलमनसं वेदवेदान्तवेद्यम्।
शश्वच्छान्तं शमितविषयं शुद्धबुद्धिं विशालं
वेदव्यासं विमलयशसं सर्वदाहं नमामि॥

(पद्म०, उ० खं० २१९। ४२)

महर्षि पराशरके पुत्र, परम पुरुष, सम्पूर्ण वैदिक शाखाओंके उत्पत्तिके स्थान, सम्पूर्ण विद्याओंके आधार, निर्मल मनवाले, वेद-वेदान्तोंके द्वारा परिज्ञेय, सदा शान्त, रागशून्य, विशाल विशुद्ध-बुद्धि तथा निर्मल यशवाले महात्मा वेदव्यासजीको मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ।

जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः।
यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत् पिबति॥

(वायु० १। १। २)

श्रीपराशरजीके पुत्र, सत्यवतीके हृदयको आनन्दित करनेवाले उन भगवान् व्यासकी जय हो, जिनके मुखकमलसे निःसृत शास्त्ररूपी सुधाधाराका संसार पान करता है।

न तेऽस्त्यविदितं किंचित् त्रिषु लोकेषु वै प्रभो॥
सर्वज्ञत्वं महाभाग देवेष्विव बृहस्पतिः।
नमस्यामो महाप्राज्ञं ब्रह्मिष्ठं त्वां महामुनिम्॥
येन त्वया तु वेदार्था भारते प्रकटीकृताः।
कः शक्नोति गुणान् वक्तुं तव सर्वान् महामुने॥
अधीत्य चतुरो वेदान् साङ्गान् व्याकरणानि च।
कृतवान् भारतं शास्त्रं तस्मै ज्ञानात्मने नमः॥
नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे
फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र।
येन त्वया भारततैलपूर्णः
प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः॥

(ब्रह्म० [illegible])

(मुनिगण बोले—) महाभाग भगवान् व्यासजी ! आप देवताओंमें बृहस्पतिकी भाँति सर्वज्ञ हैं। आपको [illegible]

लोकोंकी कोई भी वस्तु अज्ञात नहीं है, आपने सम्पूर्ण वेदोंके अर्थको महाभारतमें प्रकाशित किया है तथा आप महामुनि, महाप्राज्ञ एवं ब्रह्मवेत्ता हैं, हम आपको प्रणाम करते हैं। महामुने ! आपके गुणोंका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है ? आपने अङ्गोंसहित चारों वेदों और उनके भाष्योंको अच्छी तरह पढ़कर महाभारतशास्त्रकी रचना की है। ज्ञानस्वरूप आपको हम प्रणाम करते हैं। आपके नेत्र प्रफुल्लित कमलके समान विशाल हैं। आपने महाभारतरूपी तेलसे भरे हुए ज्ञानपूर्ण दीपकको प्रज्वलित किया है। हे विशाल बुद्धिवाले व्यासजी ! आपको हमारा प्रणाम है।

नमस्तस्मै मुनीशाय तपोनिष्ठाय धीमते।
वीतरागाय कवये व्यासायामिततेजसे ॥

तं नमामि महेशानं मुनिं धर्मविदां वरम्।
श्यामं जटाकलापेन शोभमानं शुभाननम् ॥
मुनीन् सूर्यप्रभान् धर्मान् पाठयन्तं सुवर्चसम्।
नानापुराणकर्तारं वेदव्यासं महाप्रभम् ॥

(बृहद्धर्मपुराण १।१।२३-२५)

जो तपोनिष्ठ, मुनीश्वर, अमिततेजस्वी, महाकवि, रागसे सर्वथा शून्य तथा अत्यन्त निर्मल बुद्धिसे संयुक्त एवं महामुनि शिवस्वरूप, श्यामवर्णके हैं, जिनका मुखमण्डल जटाजूटसे सुशोभित है और जो धर्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं तथा सूर्यके समान प्रभावाले मुनियोंको धर्मशास्त्रोंका पाठ पढ़ानेवाले हैं, ज्योतिर्मय हैं, अत्यन्त कान्तिमान् हैं, सभी पुराणों तथा उपपुराणोंके रचयिता हैं, उन व्यास भगवान्‌को बारंबार नमस्कार है।

व्याससूनुं नतोऽस्मि

[शुक-वन्दना]

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि ॥

'जिस समय श्रीशुकदेवजीका यज्ञोपवीत-संस्कार भी नहीं हुआ था, सुतरां लौकिक-वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानका अवसर भी नहीं आया था, उन्हें अकेले ही संन्यास लेनेके उद्देश्यसे जाते देखकर उनके पिता व्यासजी विरहसे कातर होकर पुकारने लगे—'बेटा ! बेटा !' उस समय तन्मय होनेके कारण श्रीशुकदेवजीकी ओरसे वृक्षोंने उत्तर दिया। ऐसे सबके हृदयमें विराजमान श्रीशुकदेवमुनिको मैं नमस्कार करता हूँ।'

स्वसुखनिभृतचेतास्तदव्युदस्तान्यभावो-
ऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम्।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं
तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि ॥

'श्रीशुकदेवजी महाराज अपने आत्मानन्दमें ही निमग्न थे। इस अखण्ड अद्वैत स्थितिसे उनकी भेद-दृष्टि सर्वथा निवृत्त हो चुकी थी। फिर भी मुरलीमनोहर श्यामसुन्दरकी मधुमयी, मङ्गलमयी, मनोहारिणी लीलाओंने उनकी वृत्तियोंको अपनी ओर आकर्षित कर लिया और उन्होंने जगत्‌के प्राणियोंपर कृपा करके भगवत्तत्त्वको प्रकाशित करनेवाले इस महापुराणका विस्तार किया। मैं उन्हीं सर्वपापहारी व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजीके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ।'

योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे।
संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत् ॥

(श्रीमद्भागवत १२।१३।२१)

'हम उन योगिराज ब्रह्मस्वरूप श्रीशुकदेवजीको नमस्कार करते हैं, जिन्होंने श्रीमद्भागवत महापुराण सुनाकर संसार-सर्पसे डसे हुए राजर्षि परीक्षितको मुक्त किया।'

पुराण-महिमा

ये पठन्ति पुराणानि शृण्वन्ति च समाहिताः।
प्रत्यक्षरं लभन्त्येते कपिलादानजं फलम्॥
अपुत्रो लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम्।
विद्यार्थी लभते विद्यां मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात्॥
ये शृण्वन्ति पुराणानि कोटिजन्मार्जितं खलु।
पापजालं तु ते हित्वा गच्छन्ति हरिमन्दिरम्॥

(पद्म०, ब्रह्मखण्ड २५। २९-३१)

जो मानव समाहितचित्त होकर पुराणोंका पठन और श्रवण करते हैं, उन्हें प्रत्येक अक्षरपर कपिला गायके दानका फल प्राप्त होता है। पुत्रहीनको पुत्र, धनार्थीको धन, विद्यार्थीको विद्या तथा मोक्षार्थीको मोक्ष प्राप्त होता है तथा पुराण-श्रोताके कोटि-जन्मकृत पाप-जाल नष्ट हो जाते हैं और वे भगवद्धामको प्राप्त करते हैं।

यथा पापानि पूयन्ते गङ्गावारिविगाहनात्।
तथा पुराणश्रवणाद् दुरितानां विनाशनम्॥

(वामनपु० ६९। २)

जिस प्रकार गङ्गाजलमें स्नान करनेसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार पुराणका श्रवण करनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

यज्ञकर्मक्रियावेदः स्मृतिर्वेदो गृहाश्रमे॥
स्मृतिर्वेदः क्रियावेदः पुराणेषु प्रतिष्ठितः।
पुराणपुरुषाज्जातं यथेदं जगदद्भुतम्॥
तथेदं वाङ्मयं जातं पुराणेभ्यो न संशयः।
न वेदे ग्रहसंचारो न शुद्धिः कालबोधिनी।
तिथिवृद्धिक्षयो वापि पर्वग्रहविनिर्णयः॥
इतिहासपुराणैस्तु निश्चयोऽयं कृतः पुरा।
यन्न दृष्टं हि वेदेषु तत्सर्वं लक्ष्यते स्मृतौ॥
उभयोर्यन्न दृष्टं हि तत्पुराणैः प्रगीयते।

(नार० पु०, उ०, अ० २४)

यज्ञ एवं कर्मकाण्डके लिये वेद प्रमाण हैं। गृहस्थोंके लिये स्मृतियाँ ही प्रमाण हैं। किंतु वेद और स्मृतिशास्त्र (धर्मशास्त्र) दोनों ही सम्यक् रूपसे पुराणोंमें प्रतिष्ठित हैं। जैसे परम पुरुष परमात्मासे यह अद्भुत जगत् उत्पन्न हुआ है, वैसे ही सम्पूर्ण संसारका वाङ्मय—साहित्य पुराणोंसे ही उत्पन्न है, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। वेदोंमें तिथि, नक्षत्र आदि काल-निर्णायक और ग्रह-संचारकी कोई युक्ति नहीं बतायी गयी है। तिथियोंकी वृद्धि, क्षय, पर्व, ग्रहण आदिका निर्णय भी उनमें नहीं है। यह निर्णय सर्वप्रथम इतिहास-पुराणोंके द्वारा ही निश्चित किया गया है। जो बातें वेदोंमें नहीं हैं, वे सब स्मृतियोंमें हैं और जो बातें इन दोनोंमें नहीं मिलतीं, वे पुराणोंके द्वारा ज्ञात होती हैं।

श्रुतिस्मृती तु नेत्रे द्वे पुराणं हृदयं स्मृतम्।
श्रुतिस्मृतिभ्यां हीनोऽन्धः काणः स्यादेकया विना॥
पुराणहीनाद्धृच्छून्यात् काणान्धावपि तौ वरौ।
श्रुतिस्मृत्युदितो धर्मः पुराणे परिगीयते॥
यस्य धर्मेऽस्ति जिज्ञासा यस्य पापाद्भयं महत्।
श्रोतव्यानि पुराणानि धर्ममूलानि तेन वै॥
चतुर्दशसु विद्यासु पुराणं दीप उत्तमः।
अन्धोऽपि न तदालोकात् संसाराब्धौ क्वचित् पतेत्॥

(स्क० का० २। ९६-९७, ९९-१००)

विद्वानोंके श्रुति-स्मृति—ये दो नेत्र हैं और पुराण हृदय हैं। इनमेंसे जिसे श्रुति-स्मृतिमेंसे किसी एकका ज्ञान नहीं है वह काना, दोनोंके ज्ञानसे हीन अन्धा है, किंतु जो पुराणरूपी विद्यासे हीन है वह तो हृदयहीन या शून्य होनेके कारण इन दोनोंसे भी निकृष्ट है। श्रुति तथा स्मृतियोंमें कहा गया धर्म पुराणमें प्रतिपादित है। जिसकी धर्ममें जिज्ञासा या रुचि हो, जो पापोंसे डरता हो, उसे पुराणोंका श्रवण करना चाहिये, क्योंकि वे ही धर्मके मूल हैं। चौदहों विद्याओंमें पुराण विद्या ही उत्तम दीपक है। इसके आलोक-प्रकाशमें स्थित अन्धा भी संसार-सागरमें कभी नहीं गिरता।

ब्राह्मणं च पुरस्कृत्य ब्राह्मणेन च कीर्तितम्।
पुराणं शृणुयान्नित्यं महापापदवानलम्॥
पुराणं सर्वतीर्थेषु तीर्थं चाधिकमुच्यते।
यस्यैकपादश्रवणाद्धरिरेव प्रसीदति॥
यथा सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः।
सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे॥

तथैवान्तःप्रकाशाय पुराणावयवो हरिः।
विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम्॥
तस्माद्यदि हरेः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः।
श्रोतव्यमनिशं पुम्भिः पुराणं कृष्णरूपिणः॥
विष्णुभक्तेन शान्तेन श्रोतव्यमतिदुर्लभम्।
पुराणाख्यानममलममलीकरणं परम्॥
यस्मिन् वेदार्थमाहृत्य हरिणा व्यासरूपिणा।
पुराणं निर्मितं विप्र तस्मात् तत्परमो भवेत्॥
पुराणे निश्चितो धर्मो धर्मश्च केशवः स्वयम्।
तस्मात् कृती पुराणे हि श्रुते विष्णुर्भवेदिति॥
साक्षात् स्वयं हरिर्विप्रः पुराणं च तथाविधम्।
एतयोः सङ्गमासाद्य हरिरेव भवेन्नरः॥

(पद्मपु०, स्वर्गख० ६२। ५८—६६)

ब्राह्मणके साक्ष्यमें ब्राह्मणके मुखसे कहे हुए पुराणका प्रतिदिन श्रवण करना चाहिये। पुराण महापापोंके वनको जलानेके लिये दावानलके समान है। अतः पुराणोंको समस्त तीर्थोंमें श्रेष्ठ तीर्थ बतलाया गया है। पुराण-ग्रन्थोंके एक पाद (चतुर्थांश) के श्रवणसे ही श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं। जैसे भगवान् विष्णु सम्पूर्ण जगत्को प्रकाश तथा देखनेकी शक्ति प्रदान करनेके लिये सूर्यका शरीर धारण करके आकाशमें विचरते हैं, उसी प्रकार पुराणस्वरूप श्रीहरि सम्पूर्ण भूतोंके अन्तःकरणमें ज्ञानका प्रकाश करनेके लिये इस जगत्में विचरते हैं। पुराण सबसे बढ़कर पवित्रताका साधन है, अतः यदि भगवान्को प्रसन्न करनेका मनमें संकल्प हो तो प्रत्येक पुरुषको निरन्तर श्रीविष्णुके अङ्गभूत पुराणका श्रवण करना चाहिये। पुराणकी कथा अत्यन्त दुर्लभ और स्वरूपसे ही निर्मल है तथा अन्तःकरणको निर्मल बनानेका सबसे उत्कृष्ट साधन है। अतः विष्णुभक्त पुरुषको शान्तभावसे इसका श्रवण करना चाहिये। ब्रह्मन्! व्यासरूपी भगवान् श्रीहरिने वेदार्थका संग्रह करके पुराणकी रचना की है, इसलिये उसके श्रवण और अध्ययनमें तत्पर रहना चाहिये। पुराणमें धर्मके स्वरूपका निश्चय किया गया है और धर्म साक्षात् श्रीविष्णुका विग्रह है। अतः विद्वान् पुरुष पुराण-श्रवण करके विष्णुरूप ही हो जाता है। ब्राह्मण स्वयं श्रीहरिका स्वरूप है और पुराण भी ऐसा ही माना गया है। इन दोनोंका सङ्ग पाकर मनुष्य नरसे नारायण हो जाता है।

जगद्यथा निरालोकं जायतेऽशशिभास्करम्।
विना तथा पुराणं ह्यध्येयमस्मान्मुने सदा॥
अश्वमेधसहस्रस्य यत्फलं समुदाहृतं।
तत्फलं समवाप्नोति देवाग्रे यो जपं चरेत्॥
विशेषतः कलौ व्यास पुराणश्रवणादृते।
परो धर्मो न पुंसां हि मुक्तिध्यानपरः स्मृतः॥
या गतिः पुण्यशीलानां यज्वनां च तपस्विनाम्।
सा गतिः सहसा तात पुराणश्रवणात् खलु॥
ज्ञानावाप्तिर्यदा न स्याद्योगशास्त्राणि यत्नतः।
अध्येतव्यानि पौराणं शास्त्रं श्रोतव्यमेव च॥
पापं संक्षीयते नित्यं धर्मश्चैव विवर्धते।
पुराणश्रवणाज्ज्ञानी न संसारं प्रपद्यते॥
अतएव पुराणानि श्रोतव्यानि प्रयत्नतः।
धर्मार्थकामलाभाय मोक्षमार्गाप्तये तथा॥
यज्ञैर्दानैस्तपोभिस्तु यत्फलं तीर्थसेवया।
तत्फलं समवाप्नोति पुराणश्रवणान्नरः॥

अन्यो न दृष्टः सुखदो हि मार्गः
पुराणमार्गो हि सदा वरिष्ठः।
शास्त्रं विना सर्वमिदं न भाति
सूर्येण हीना इव जीवलोकाः॥

(शिवपु०, उमासंहिता, अ० १३)

(सनत्कुमारने भगवान् व्यासदेवसे कहा कि मुने!) जिस प्रकार चन्द्रमा और सूर्यके बिना सारा संसार अन्धकारमय हो जाता है अर्थात् अन्धेके समान कुछ भी नहीं देख पाता, उसी प्रकार मनुष्य पुराणके बिना अज्ञानान्धकारमें पड़ा रहता है, अतः हे व्यासदेव! सर्वदा इनका स्वाध्याय करना चाहिये। जो मनुष्य पुराणोंका भगवान्के सामने पाठ करता है, वह हजार अश्वमेध-यज्ञोंका जो फल कहा गया है उसे प्राप्त कर लेता है। विशेषतः कलियुगमें पुराणश्रवणको छोड़कर पुरुषके लिये सिद्धि और मोक्ष प्रदान करनेवाला कोई और धर्म—उपाय नहीं है। जो पुण्यशीलों, यज्ञकर्ताओं और तपस्वियोंकी गति कही गयी है वही गति पुराण-श्रोताओंको बड़ी सरलतासे अनायास ही प्राप्त हो जाती है। मनुष्यको यदि योगादि शास्त्रों, अन्य मार्गों या साधनोंसे ज्ञानकी प्राप्ति न हो तो पुराणोंका प्रयत्नपूर्वक श्रवण

तथा अध्ययन करना चाहिये। पुराणोंके श्रवणसे सारे पापोंका क्षय होता है, धर्मकी अभिवृद्धि होती है और मनुष्य ज्ञानी होकर संसारमें पुनर्जन्म नहीं लेता। इसलिये अत्यन्त प्रयत्नसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिके लिये पुराणोंका श्रद्धासे श्रवण करना चाहिये। यज्ञ, दान, तपस्या और तीर्थोंकी सेवासे जो फल प्राप्त होता है, वही फल पुराणोंके श्रवणसे अनायास प्राप्त हो जाता है। पुराण-मार्ग सर्वदा सर्वश्रेष्ठ रहा है। दूसरा कोई भी मार्ग सुखद नहीं देखा गया। जैसे सूर्यके बिना समस्त जीवलोक प्रकाशित नहीं होता, वैसे ही पुराणशास्त्रके बिना यह सब कुछ अज्ञानान्धकारमें डूबा-सा रहता है।

कीर्तनीयः सदा हरिः

यस्मिन् न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने
विघ्नो यत्र निवेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः।
मुक्तिं चेतसि यः स्थितोऽमलधियां पुंसां ददात्यव्ययः
किं चित्रं यदघं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्तिते॥
यज्ञैर्यज्ञविदो यजन्ति सततं यज्ञेश्वरं कर्मिणो
यं वै ब्रह्ममयं परावरमयं ध्यायन्ति च ज्ञानिनः।
यं संचिन्त्य न जायते न म्रियते नो वर्धते हीयते
नैवासन्न च सद्भवत्यति ततः किं वा हरेः श्रूयताम्॥
कव्यं यः पितृरूपधृग्विधिहुतं हव्यं च भुङ्क्ते विभु-
र्दैवत्वे भगवाननादिनिधनः स्वाहास्वधासंज्ञिते।
यस्मिन् ब्रह्मणि सर्वशक्तिनिलये मानानि नो मानिनां
निष्ठायै प्रभवन्ति हन्ति कलुषं श्रोत्रं स यातो हरिः॥
नान्तोऽस्ति यस्य न च यस्य समुद्भवोऽस्ति वृद्धिर्न यस्य परिणामविवर्जितस्य।
नापक्षयं च समुपैत्यविकारि वस्तु यस्तं नतोऽस्मि पुरुषोत्तममीशमीड्यम्॥

(विष्णुपु०, अंश ६, अ० ८)

जिनमें चित्त लगानेवाला (व्यक्ति) कभी नरकमें नहीं जा सकता, जिनके स्मरणमें स्वर्ग भी विघ्नरूप है, जिनमें चित्त लग र ब्रह्मलोक भी अति तुच्छ प्रतीत होता है तथा जो अव्यय प्रभु निर्मलचित्त पुरुषोंके हृदयमें स्थित होकर उन्हें मोक्ष देते न अच्युतकी कथाओंका कीर्तन करनेसे यदि पाप विलीन हो जाते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? यज्ञवेत्ता कर्मनिष्ठ यज्ञोंद्वारा जिनका यज्ञेश्वररूपसे यजन करते हैं, ज्ञानीजन जिनका परावरमय ब्रह्मस्वरूपसे ध्यान करते हैं, जिनका स्मरण ने पुरुष न जन्मता है, न मरता है, न बढ़ता है और न क्षीण ही होता है तथा जो न सत् (कारण) हैं और न असत्) ही हैं, उन श्रीहरिके (यशके) अतिरिक्त और क्या सुना जाय? जो अनादिनिधन भगवान् विभु पितृरूप धारणकर पूर्वक श्राद्धमें विनियुक्त कव्यको स्वधा शब्दसे उच्चरित होकर ब्राह्मणरूपमें तथा अग्निमें विधिपूर्वक हवन किये हुए हव्यको होकर स्वाहा शब्दोच्चारणद्वारा ग्रहण करते हैं और जिन समस्त शक्तियोंके आश्रयभूत स्वयंप्रकाश भगवान्के विषयमें ड़े प्रमाणकुशल पुरुषोंके प्रमाण भी इयत्ता करनेमें समर्थ नहीं होते, वे श्रीहरि श्रवण-पथमें जाते ही समस्त पापोंको नष्ट ते हैं। जिन ह्रास-विकासरहित प्रभुका न आदि है, न अन्त, न वृद्धि और न अपक्षय ही होता है, जो नित्य निर्विकार हैं, उन स्तवनीय प्रभु पुरुषोत्तमको मैं नमस्कार करता हूँ।

प्रसाद-आशीर्वाद

पुराण

(अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य श्रीमद्ब्रह्मानन्द सरस्वतीजी महाराजके उपदेशामृत)

पुराण भारतका सच्चा इतिहास है। पुराणोंसे ही भारतीय जीवनका आदर्श, भारतकी सभ्यता, संस्कृति तथा भारतके विद्या-वैभवके उत्कर्षका वास्तविक ज्ञान प्राप्त हो सकता है। प्राचीन भारतीयताकी झाँकी और प्राचीन समयमें भारतके सर्वविध उत्कर्षकी झलक यदि कहीं प्राप्त होती है तो पुराणोंमें। पुराण इस अकाट्य सत्यके द्योतक हैं कि भारत आदि-जगद्गुरु था और भारतीय ही प्राचीन कालमें आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक उन्नतिकी पराकाष्ठाको पहुँचे थे। पुराण न केवल इतिहास हैं, अपितु उनमें विश्व-कल्याणकारी त्रिविध उन्नतिका मार्ग भी प्रदर्शित किया गया है।

वेदोंकी महिमा अपार है, पर उनकी शब्दावलि दुर्बोध और प्रतिपादन-प्रक्रिया पर्याप्त जटिल है। उन्हें निरुक्त, ब्राह्मणग्रन्थ, श्रौतसूत्र तथा व्याकरण आदि अङ्गों, ऋषि, छन्द, देवता आदि अनुक्रमणी और भाष्योंके आधारपर बड़ी कठिनतासे ठीक-ठीक समझा जा सकता है। पर पुराण अकेले ही उनके समस्त अर्थोंको सरल शब्दोंमें और कथानकशैलीके सहारे सामान्य बुद्धिवाले पाठकोंको भी हृदयंगम करा देते हैं। इसीलिये सभी स्थानोंपर वेदोंको इतिहास, पुराणके द्वारा समझनेकी सम्मति दी गयी है। जो विद्वान् इतिहास-पुराणसे अनभिज्ञ हैं, उन्हें अल्पश्रुत, अल्पज्ञ कहकर वेदार्थ-प्रतिपादन-का अधिकार नहीं दिया गया है। वेद उनसे डरते हैं कि ये मेरा निश्चय रूपसे अनर्थ कर जनसमुदायमें उद्भ्रान्ति उत्पन्न करेंगे। इतिहास शब्दसे महाभारत तथा वाल्मीकि आदि रामायण एवं योगवासिष्ठादि ग्रन्थ भी अभिव्यक्त होते हैं। पुराण शब्दसे पद्म, स्कन्द आदि अठारह महापुराण, विष्णुधर्मोत्तरादि उपपुराण तथा नीलमत, एकाम्रादि स्थलपुराण भी गृहीत होते हैं। इन पुराणोंमें सभी विद्याओंका संग्रह हुआ है।

ज्ञानके भण्डार और धर्मके मूलस्रोत वेद हैं अवश्य, पर उनमें ग्रहोंका संचार, समयंकी शुद्धि, खर्वा, त्रिस्पृशा आदि विशिष्ट लक्षणोंसहित प्रतिपदासे पूर्णिमातककी कालबोधिनी तिथियोंका सुस्पष्ट निर्देश नहीं हुआ है, इसीलिये एकादशी, शिवरात्रि आदि व्रतोंका माहात्म्य, ग्रहण आदि विशिष्ट पर्वोंके कृत्य और दर्शन-शास्त्रोंके सूक्ष्मज्ञान तथा पाञ्चरात्र आदि विविध वैष्णव, शैव, शाक्तादि आगमोंके प्रतिपाद्य विषय स्पष्टरूपसे उपदिष्ट नहीं हैं, किंतु पुराणोंमें समस्त वेदार्थसहित ये सभी उपर्युक्त विषय, सभी वेदाङ्ग एवं धर्मशास्त्रोंके धर्म-कृत्य, देवोपासना-विधि, सदाचारके विस्तृत उपदेश और कथा उदाहरणसहित वेदान्त, सांख्य आदि प्रक्रियाओंको भी सबको हृदयंगम करानेका प्रयत्न किया गया है। इसलिये भारतीय संस्कृतिसे सम्बद्ध सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान और कल्याणकारी क्रियाओंकी जानकारीके लिये ये ही चिरकालसे आश्रयणीय रहे हैं। इन पुराणोंसे ही पूर्वके विद्वानोंने अनेक सुन्दर निबन्ध एवं प्रबन्ध ग्रन्थोंकी रचना की है, जो दैनंदिन सभी कृत्योंसे लेकर यावज्जीवन होनेवाले विशेष प्रयोजन-युक्त कर्म, संस्कार तथा यज्ञादि अनुष्ठान, पर्व-महोत्सव आदिके भी निर्देशक हैं। कृष्णद्वैपायन भगवान् वेदव्यासने बड़े परिश्रमसे वेदोंको शाखा-प्रशाखा, ब्राह्मण, कल्पसूत्र, निरुक्त आदिकी प्रक्रियाओंमें विभाजन करके भी जब पूर्णलोकोपकारमें सफलता नहीं देखी, तब उन्होंने विशेष ध्यानस्थ होकर भागवतादि पुराणों, महाभारतादि इतिहासोंकी रचना कर वेदोंके गूढतम संदेशको जन-जनतक पहुँचानेका संकल्प किया। उन्हींकी भास्वती कृपासे समुद्भूत समग्र पुराण-राशि हमारे सामने उपस्थित होकर विश्वकल्याणमें निरन्तर प्रवृत्त है। यह पुराण-वाङ्मय सूक्ष्म विचार करनेपर वर्तमान समस्त विश्वसाहित्यकी अपेक्षा सभी प्रकार शुद्ध, सभ्यभाषायुक्त, सुबोध कथाओंसे समन्वित और मधुरतम पदविन्यासोंसे समलङ्कृत है। इस प्रकार यह पुराणसाहित्य सभीके हृदयको आकृष्ट कर कल्याण करनेके लिये नित्य-निरन्तर तत्पर हैं। विश्व-कल्याणके लिये श्रीभगवान् भारतीयोंको कल्याण-पथ-प्रदर्शक पुराणोंके प्रति आदर, श्रद्धा और भक्ति प्रदान करें, यही उनसे प्रार्थना है।

पुराणोंमें धर्म और सदाचार

(पूज्यपाद अनन्तश्री ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

व्यक्ति, समाज, राष्ट्र—किं बहुना अखिल विश्वके धारण, पोषण, संघटन, सामञ्जस्य एवं ऐकमत्यका सम्पादन करनेवाला एकमात्र पदार्थ है—धर्म। धर्मका सम्यग् ज्ञान अधिकारी व्यक्तिको अपौरुषेय वेद-वाक्यों एवं तदनुसारी पुराणादि आर्षधर्मग्रन्थोंद्वारा ही सम्पन्न होता है। सभी रिस्थितियोंमें सभी प्राणी धर्मका शुद्ध ज्ञान नहीं प्राप्त कर कते। राजर्षि मनुका कहना है कि सज्जन विद्वानोंद्वारा ही र्मका सम्यग् ज्ञान एवं आचरण हो सकता है। जिन जनोंका अन्तःकरण राग-द्वेषसे कलुषित है, वे परिस्थिति-गात् धर्मके यथार्थ स्वरूपका अतिक्रमण कर सकते हैं, तः ऐसे सज्जन— जिनके अन्तःकरणमें कभी राग-द्वेषादिका ाव नहीं पड़ता, वे ही सही मानेमें धर्मका तत्त्व समझ सकते । किंतु उनका आचरण (कर्म) भी कभी-कभी किसी रणसे धर्मका उल्लङ्घन कर सकता है, इसलिये ऐसे सज्जन द्वान् जिनका हृदय राग-द्वेषसे कभी कलुषित नहीं होता, वे यसे वेद-पुराणादिसम्मत जिस कर्मको धर्म मानते हैं, वे ही सली धर्म हैं। मनुका वचन इस प्रकार है—

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत ॥

(मनु० २।१)

इसके अनुसार उपर्युक्त सज्जनोंके आचरणको ही ाचार कहा जाता है—**'आचारप्रभवो धर्मः'** (महाभारत ु० पर्व १४९।३७)। यहाँ उसी सदाचार धर्मका कुछ ग्रान्यतः दिग्दर्शन कराया जा रहा है। मीमांसक ारिलभट्टके अनुसार वे धर्म या आचार भी वेद-णानुमोदित ही प्रशस्त होते हैं। सर्वत्र सभी देशोंकी परम्परा प्रशस्त नहीं होती, किंतु जहाँ अनादिकालसे वर्णाश्रम, धर्म आदि सभीका पालन होता आ रहा है, उसी देशकी ाचारकी परम्परा प्रशस्त मानी गयी है। इसीलिये भगवान् कहते हैं—

तस्मिन् देशे य आचारः पारम्पर्यक्रमागतः ।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते ॥

सरस्वती और दृषद्वती—इन देवनदियोंका अन्तराल (मध्यभाग) विशिष्ट देवताओंसे अधिष्ठित रहा, अतः यह देवनिर्मित देश 'ब्रह्मावर्त' कहा जाता है। यहाँ तथा आर्यावर्तमें उत्पन्न होनेवाले जनोंका अन्तःकरण पवित्र नदियोंके विशिष्ट जल पीनेके कारण अपने प्राचीन पितृ-पितामह, प्रपितामहादि-द्वारा अनुष्ठित आचारोंकी ओर ही उन्मुख होता है, अतः वर्णाश्रमधर्म तथा संकर जातियोंका धर्म यहाँके सभी निवासियोंमें यथावत् था। यहाँ उत्पन्न होनेपर भी जिन लोगोंका अन्तःकरण प्राचीन परम्पराप्राप्त धर्मकी ओर उन्मुख नहीं हुआ और वे लोग मनमानी नयी-नयी व्यवस्था करने लगें तो उनका भी आचार धर्ममें प्रमाण नहीं हो सकता, अतः परम्परा भी वही मान्य होगी, जो अनादि-अपौरुषेय वेद एवं तदनुसारी आर्ष-धर्मग्रन्थोंसे अनुमोदित, अनुप्राणित हो।

मनुष्योंको सदा ही सदाचारका पालन और दुराचारका परित्याग करना चाहिये। आचारहीन दुराचारी प्राणीका न इस लोकमें कल्याण होता है, न परलोकमें। असदाचारी प्राणियों-द्वारा अनुष्ठित यज्ञ, दान, तप—सभी व्यर्थ जाते हैं, कल्याणकारी नहीं होते। सदाचारके पालनसे अपने शरीरादिमें भी वर्तमान अलक्षण दूर होते हैं, अपना फल नहीं देते। सदाचाररूप वृक्ष चारों पुरुषार्थोंका देनेवाला है। धर्म ही उसकी जड़, अर्थ उसकी शाखा, काम (भोग) उसका पुष्प और मोक्ष उसका फल है—

धर्मोऽस्य मूलं धनमस्य शाखा
पुष्पं च कामः फलमस्य मोक्षः ।

(वामनपुराण १४।१९)

यहाँ इस सदाचारके स्वरूपका कुछ वर्णन किया जाता है—सर्वप्रथम ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर भगवान् शंकरद्वारा उपदिष्ट प्रभात-मङ्गलका स्मरण करना चाहिये। इसके द्वारा-देवग्रहादि-स्मरणसे दिन मङ्गलमय बीतता है और दुःस्वप्नका फल शान्त हो जाता है। वह सुप्रभातस्तोत्र इस प्रकार है—

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी
भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।

गुरुश्च शुक्रः सह भानुजेन
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥
सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः
सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलौ च।
सप्त स्वराः सप्त रसातलाश्च
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥
सप्तार्णवाः सप्तकुलाचलाश्च
सप्तर्षयो द्वीपवराश्च सप्त।
भूरादिकृत्वा भुवनानि सप्त
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम्॥

इस प्रकार इस परम पवित्र सुप्रभातके प्रातःकाल भक्तिपूर्वक उच्चारण करनेसे, स्मरण करनेसे दुःस्वप्नका अनिष्ट फल नष्ट होकर सुस्वप्नके फलरूपमें प्राप्त होता है। सुप्रभातका स्मरण कर पृथ्वीका स्पर्शपूर्वक प्रणाम करके शय्या त्याग करना चाहिये। मन्त्र इस प्रकार है—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

फिर शौचादि कर्म करना चाहिये। शौच जानेके बाद मिट्टी और जलसे इन्द्रियोंकी शुद्धि कर दन्तधावन करना चाहिये। तदनन्तर जिह्वा आदिकी मलिनता दूरकर स्नान करके संध्योपासन करना और सूर्यार्घ्य देना चाहिये। केवल जननाशौच और मरणाशौचमें ही बाह्यसंध्याका परित्याग निर्दिष्ट है। उसमें भी मानसिक गायत्री-जप और सूर्यार्घ्य विहित है। किंतु अन्यत्र इन कार्योंका परित्याग कभी नहीं होता। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास—ये चार आश्रम ब्राह्मणोंके लिये ही विहित हैं। क्षत्रियके लिये संन्यास छोड़कर तीन आश्रमोंका विधान है। वैश्यके लिये ब्रह्मचर्य और गार्हस्थ्य दो ही आश्रम विहित हैं तथा शूद्रके कल्याणके लिये केवल एक ही आश्रम गार्हस्थ्य ही कहा गया है—

गार्हस्थ्यं ब्रह्मचर्यं च वानप्रस्थं त्रयो मताः।
क्षत्रियस्यापि गदिता य आचारो द्विजस्य हि॥
ब्रह्मचर्यं च गार्हस्थ्यमाश्रमद्वितयं विशः।
गार्हस्थ्यमाश्रमं त्वेकं शूद्रस्य क्षणदाचर॥

(वामनपुराण १४।११९-१२०)

प्रायः ये ही बातें वैखानस आदि धर्म-सूत्रों एवं स्मार्त-सूत्रोंमें निर्दिष्ट हैं। सदाचारी व्यक्तिको अपने वर्णानुसार और आश्रमानुसार धर्मका परित्याग कभी नहीं करना चाहिये। जो धर्मका परित्याग कर देता है, उसके ऊपर भगवान् भास्कर (सूर्य) कुपित हो जाते हैं। उनके कोपसे प्राणीके देहमें रोग बढ़ता है, कुलका विनाश प्रारम्भ हो जाता है और उस पुरुषका शरीर ढीला पड़ने लगता है—

स्वानि वर्णाश्रमोक्तानि धर्माणीह न हापयेत्।
यो हापयति तस्यासौ परिकुप्यति भास्करः॥
कुपितः कुलनाशाय देहरोगविवृद्धये।
भानुर्वै यतते तस्य नरस्य क्षणदाचर॥

(वामनपुराण १४।१२१-१२२)

महाभारत (आश्वमेधिकपर्व) के अनुसार 'अन्तमें धर्मकी ही जय होती है, अधर्मकी नहीं, सत्यकी विजय होती है, असत्यकी नहीं। क्षमाकी जय होती है, क्रोध की नहीं', अतः सभीको—विशेषतया ब्राह्मणको सदा क्षमाशील रहना चाहिये—

धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम्।
क्षमा जयति न क्रोधः क्षमावान् ब्राह्मणो भवेत्॥

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशोमुरारेः।
भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं पदं यद् विपदां न तेषाम्॥

(भाग० १०।१४।५८)

'जिन्होंने पुण्यकीर्ति मुकुन्द मुरारीके पदपल्लवकी नौकाका आश्रय लिया है, जो कि सत्पुरुषोंका सर्वस्व है, उनके लिये यह भव-सागर बछड़ेके खुरके गढ़ेके समान है। उन्हें परमपदकी प्राप्ति हो जाती है और उनके लिये विपत्तियोंका निवासस्थान—यह संसार नहीं रहता।'

पुराणोंमें भगवन्नाम-महिमा

(अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

भगवान् अचिन्त्यपौरुष, अनन्त-गुण-गणार्णव, अच्छेद्यापरिमित-विग्रह, अपरिमेय शक्तिसम्पन्न हैं। उनके नाम-स्मरण-जप तथा रूप-माधुर्यकी सुधा-छटाके पान-रूप महावातसे आहत मेघराशिकी भाँति प्राणीके अनन्तानन्त-जन्मार्जित पापपुञ्ज नष्ट हो जाते हैं। नाममें ऐसी शक्ति है कि उसका एक बारका उच्चारण संसारके सभी पातक-पुञ्जको अग्निसात् कर देता है। पुराण कहते हैं कि सभी पातकी जीव यावज्जीवन अपनी सामर्थ्यसे अधिक शक्ति लगाकर भी उतनी पापराशि अर्जन नहीं कर सकते, जितना एक भगवन्नाम सभी पातकोंको दूर करनेकी शक्ति रखता है।

नाम्न्यस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत् कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥

(बृहद्धर्मपुराण)

जो मनुष्य गिरते, पैर फिसलते, अङ्ग-भङ्ग होते, साँपके डँसते, आगमें जलते तथा चोट लगते समय भी विवशतासे 'हरि-हरि' कहकर भगवान्‌के नामका उच्चारण कर लेता है, वह यमयातनाका पात्र नहीं रह जाता। उसका सर्वविध कल्याण होता है।

पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम्॥

(श्रीमद्भा० ६।२।१५)

संज्ञा-संज्ञीका अभेद

अब विचारणीय यह है कि यह शक्ति भगवान्‌की है या भगवान्‌के नामकी। शब्द-शक्तिवादी कहते हैं कि नाम और नामीमें अभेद है। इसी अभेद-सम्बन्धको तादात्म्य-सम्बन्ध भी कहते हैं। अनन्त-शक्तिसम्पन्न करुणावरुणालय भगवान् सच्चिदानन्दघनका जिस प्रकार चित्-अचित् विश्व-विवर्त है, ठीक उसी प्रकार उनके चित्-अंशका विवर्त समस्त शब्द-वाङ्मय है, क्योंकि जैसे चित् प्रकाशक है, उसी प्रकार शब्द भी प्रकाशक है। ब्रह्मके सदंशका विवर्त—सभी अभिधेय अर्थजन्यमात्र है, क्योंकि सत्तारूपसे ही सभी पदार्थ विद्यमान रहते हैं। सभी शब्द और अर्थ चैतन्य-तत्त्वके विवर्त हैं। महाकवि कालिदास रघुवंशके आरम्भमें पार्वती और परमेश्वरकी स्तुति करते हुए उन्हें वागर्थकी तरह सम्पृक्त कहते हैं। सभी शब्दोंकी शक्ति जातिमें है और जाति सत्तारूप है। सत्ता ही सत्-तत्त्व है, इसीलिये सभी शब्दोंका अभिधेय यानी अर्थ सत्तारूप ही होता है।

लोकमें जिस प्रकार घट शब्द चिदंशका विवर्त है, उसी प्रकार कम्बु-ग्रीवादिमद् व्यक्ति सत्‌का विवर्त है। यह विवर्तवाद सच्चित्‌की एकताकी भाँति घट शब्द और घट-अर्थकी एकताका पोषक है। इसी प्रकार भगवान्‌के अनन्त नाम उनके वाचक होते हुए भी वाच्य भगवदर्थके साथ एकता-सम्पन्न हैं। लौकिक भेद औपाधिक है। भगवान्‌के अनन्त नाम उनके अनन्त स्वरूपके परिचायक हैं।

शब्दमें विलक्षण शक्ति है। किसी व्यक्तिका नाम लेनेपर वही आता है। वैयाकरणोंके अनुसार कोई भी व्यवहार शब्दानुगमनसे व्यभिचरित नहीं है। जिस प्रकार शब्दानुविद्ध लौकिक व्यवहार अबाधितरूपसे चलते हैं और लोक उनके प्रति कभी भ्रान्त नहीं होता, ठीक उसी प्रकार प्रत्यग्भिन्न चैतन्यमें भी शब्दका चमत्कार दीखता है। भगवन्नाम उच्चारण करनेसे तीक्ष्ण तीरके लक्ष्यभेदकी भाँति वह भगवान्‌के हृदयपर प्रभाव करता है। जिससे जीवके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। फलस्वरूप प्राणी भगवत्कृपाका भाजन बनता है—

तस्मात् संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम्।

(श्रीमद्भा० ६।३।३१)

साथ ही संस्कृत-साहित्यमें प्रयुक्त होनेवाली जितनी शब्दराशि है, वह अपने वास्तविक अर्थसे ओतप्रोत है। जैसे जल्दी बढ़नेसे वृक्ष, पैरसे जल पीनेसे पादप, पक्षियोंके उड़कर बैठनेसे तरु आदि शब्दोंकी सार्थकता है, उसी प्रकार प्रत्येक भगवन्नाम भी अपने अर्थकी शक्तिसे युक्त है। स्वयं भगवन्नाम शब्द जो 'भग-वत्-नाम'—इन तीन पदोंसे मिलकर बना है, विशिष्ट व्युत्पत्तियुक्त है। पुराण कहते हैं—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा॥

(विष्णुपु० ६।५।७४)

इस प्रकार भगवान् शब्द समस्त ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्यमयताका संकेत करता है। यह गौरव भगवान्‌को ही प्राप्त है। उनमें अनन्त ब्रह्माण्डोंके अनन्त जीवोंका ज्ञान, उनके अनन्तानन्त कर्मोंका ज्ञान, अनन्तानन्त कर्मोंके फलोंका ज्ञान और उन कर्मफलोंको देनेकी सामर्थ्य है।

अस्तु! भगवन्नामका किसी भी प्रकार उच्चारण किया जाय, वह प्राणीके सर्वविध अघ-वृत्तिका समुच्छेदन करता है। फिर भी—'**जगत्पवित्रं हरिनामधेयं**
क्रियाविहीनं न पुनाति जन्तुम्।'

—परमपिताके नाम यद्यपि जगत्‌को पावन करनेवाले हैं, परंतु धर्म—सत्-क्रिया-विरुद्ध प्राणीको वे पवित्र नहीं करते। जिस प्रकार महौषधसेवन रोग-निवृत्तिके प्रति कारण अवश्य है, परंतु उसके साथ सुपथ्य-सेवन और कुपथ्य-परिवर्जन भी आवश्यक है। सुपथ्य-सेवन तथा कुपथ्य-परिवर्जनके साथ यदि ओषधिका प्रयोग नहीं किया गया तो वह सर्वविध गुणगणयुक्त होते हुए भी हितावह नहीं होती। इसी प्रकार अधर्मी व्यक्तिका भगवन्नाम-रूपी औषध परम कल्याण नहीं करता।

भगवन्नामके साथ वर्णाश्रम-धर्म

भगवन्नामोच्चारण यदि वर्णाश्रम-मर्यादाका अनुसरण करते हुए किया जाय तो उसमें सद्गुण आता है। यह ठीक है कि अजामिल-जैसोंने पुत्रके नाम 'नारायण'से ही कल्याण प्राप्त किया, परंतु वह पहले अपने स्वधर्मका पालन अवश्य करता था। जिसका जो धर्म हो उसके अनुसार उसे व्यवहार करते हुए अधिकारानुसार ही भगवन्नाम-संकीर्तन करनेसे कल्याण होता है। इसीलिये—

त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरे-
र्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि।
यत्र क्व वाभद्रमभूदमुष्य किं
को वार्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः॥

(श्रीमद्भा० १।५।१७)

जो स्वधर्मका पालन न करते हुए यदि हरिका नामोच्चारण करता है और कदाचित् वह गिर जाय तब क्या उसका कल्याण हो सकेगा? साथ ही धर्मपालनपूर्वक हरिको न भजनेवालेको क्या कोई लाभ हो सकेगा? अर्थात् स्वधर्मानुष्ठानपूर्वक हरिनाम-कीर्तन कल्याणप्रद होता है। यही मुख्य कारण है कि आज रामायण और गीताका अधिकाधिक प्रचार-प्रसार होते हुए भी नास्तिकता, उच्छृङ्खलता तथा शास्त्रोंमें अविश्वासकी वृद्धि हो रही है। ऐसी स्थितिमें जहाँ एक ओर भगवन्नाम-महिमाकी चर्चा होती है, वहाँ स्वधर्म-पालनकी चर्चा भी होनी चाहिये। '**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।**' स्वधर्मका थोड़ा भी अनुष्ठान महाभयसे मुक्त करता है। '**स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।**' अर्थात् मानव अपने वर्ण और आश्रमधर्मका पालन करते हुए भगवद्गुणानुवादवर्णन, उनके दिव्य मङ्गल-विग्रहका दर्शन, उनके पवित्र नामोंका उच्चारण करता हुआ कल्याणका भागी बन सकता है। श्रुति, स्मृति, पुराण और रामायण-महाभारत आदि सभी स्वधर्मानुष्ठानपूर्वक भगवन्नाम-संकीर्तनसे कल्याण-का निर्देश करते हैं।

इन सभी बातोंको तात्त्विक रूपसे जाननेके लिये संस्कृत भाषाका ज्ञान अत्यावश्यक है। आज देशके नव-शिशु धर्मसे और धार्मिक वातावरणसे दूर हटते चले जा रहे हैं। एक ओर राम-नामकी महिमा गायी जाती है तो दूसरी ओर शिखा-सूत्रको जलाञ्जलि दे दी जाती है। शिखा-सूत्रविहीन जो भी कर्म किये जाते हैं, सब निष्फल हो जाते हैं।

सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्॥

(कात्यायनस्मृति १।४)

अतएव स्वधर्मपालनपूर्वक ही हरिनामस्मरण पूर्ण कल्याणप्रद हो सकता है, यही निर्विवाद सिद्धान्त है।

राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए॥
जथा अनंत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना॥

पुराणोंका परम प्रयोजन—भगवत्प्राप्ति

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज)

संस्कृत वाङ्मयमें पुराणोंका एक विशिष्ट स्थान है। इनमें वेदार्थका स्पष्टीकरण तो है ही, कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड तथा ज्ञानकाण्डके सरलतम विस्तारके साथ-साथ कथा-वैचित्र्यके द्वारा साधारण जनताको भी गूढ़-से-गूढ़तम तत्त्वको हृदयङ्गम करा देनेकी अपनी अपूर्व विशेषता भी है। इस युगमें धर्मकी रक्षा और भक्तिके मनोरम विकासका जो यत्किंचित् दर्शन हो रहा है, उसका समस्त श्रेय पुराण-साहित्यको ही है।

साधारण मनुष्यको जब यह मालूम होता है कि भगवान् देश, काल और वस्तु-भेदोंके परे, हमारी बुद्धि एवं इन्द्रियोंसे अतीत, अपने स्वतः-सिद्ध स्वरूपमें स्थित हैं, तब वह यह सोचकर भयभीत हो जाता है कि जो हमारी वृत्तियोंके आकलनसे सर्वथा अतीत है, उसकी हम उपासना कैसे करें, स्मृति कैसे करें, उसे हम अपने हृदय-मन्दिरमें लाकर कैसे बैठायें ? मनुष्यकी इस विवशताको पुराणों और संतोंने भली-भाँति अनुभव किया और उन्होंने भगवान्की कृपालुताका आश्रय लेकर उनकी सर्वव्यापकता एवं सर्वात्मकताके यथार्थ आधारपर देश, काल और वस्तुओंके भीतर ही भगवान्के सांनिध्य, उपासना और स्मृतिका ऐसा प्रशस्त द्वार उद्घाटित किया, जिसे देखकर उनके सामने कृतज्ञताके भारसे सिर स्वयं ही अवनत हो जाता है। प्रायः सभी पुराणोंमें अनेक तीर्थों, व्रतों और पवित्र वस्तुओंके रूपमें जो भगवान्का रहस्यमय वर्णन आता है, उसका यही रहस्य है। सभी तीर्थ अलौकिक हैं, भगवन्मय हैं और भगवान्की विचित्र लीलाओंके स्मृतिचिह्न होनेके कारण दर्शन, सेवन, स्मरण और अभिगमनमात्रसे चित्त-शुद्धि करनेवाले हैं। तीर्थोंकी महिमाका पर्यवसान भी भगवान्की स्मृतिमें ही है, पद्मपुराणमें कहा गया है—

तीर्थानां च परं तीर्थं कृष्णनाम महर्षयः॥
तीर्थीकुर्वन्ति जगतीं गृहीतं कृष्णनाम यैः।

(स्वर्गखण्ड ५०। १६,१७)

'समस्त तीर्थोंमें सबसे बड़ा तीर्थ क्या है? भगवान् श्रीकृष्णका नाम। जो लोग श्रीकृष्ण-नामका उच्चारण करते हैं, वे सम्पूर्ण जगत्को तीर्थ बना देते हैं। इसके पूर्व—'**प्रतिमां च हरेर्दृष्ट्वा सर्वतीर्थफलं लभेत्**' इत्यादि वचनोंसे स्पष्ट मालूम होता है कि तीर्थोंकी महिमा भगवत्स्मृतिके लिये है। उनका तात्पर्य, उनका पर्यवसान निरन्तर भगवत्स्मरणमें ही है।

यह सम्पूर्ण नाम-रूप-क्रियात्मक जगत् भगवत्स्वरूप ही है। यह घट है, यह पट है, यह मठ है आदि जितनी भी विकल्पनाएँ हैं, वे भगवत्स्वरूपसे पृथक् नहीं हैं। सृष्टि और सृष्टि-कर्ता, पाल्य और पालक, संहरणीय और संहर्ता—सब कुछ एकमात्र प्रभु ही हैं। मनसे जो कुछ संकल्प-विकल्प होता है, चक्षुरादि इन्द्रियोंसे जिन-जिन विषयोंका ग्रहण होता है और बुद्धिके द्वारा जिन-जिन वस्तुओंका आकलन होता है, वे चाहे देशके रूपमें हों, कालके रूपमें हों अथवा वस्तुके रूपमें हों सब भगवान्के ही स्वरूप हैं।

यद्रूपं मनसा ग्राह्यं यद् ग्राह्यं चक्षुरादिभिः।
बुद्ध्या च यत्परिच्छेद्यं तद्रूपमखिलं तव॥

जिस प्रकार मन्त्रसंहिताओंमें '**पुरुष एवेदं सर्वम्**' तथा उपनिषदोंमें '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' इत्यादि श्रुतियाँ 'परमात्मा सर्वस्वरूप है' इस बातका प्रतिपादन करती हैं, ठीक वैसे ही पुराण भी भगवान्को सर्वात्मक स्वीकार करता है। इसीसे किसी भी तीर्थके रूपमें, व्रतके रूपमें, भागवतादि ग्रन्थके रूपमें तुलसी आदि वस्तुके रूपमें कहीं भी यदि भगवद्भाव हो जाय तो धीरे-धीरे उस वस्तुकी जड़ता और पृथक्ता नष्ट होने लगती है और चैतन्यस्वरूपका आविर्भाव हो जाता है।

उपर्युक्त वर्णन पढ़कर यह प्रश्न स्वाभाविक ही उठता है कि यदि परमात्मा सर्वस्वरूप है तो क्या वह परिणामको प्राप्त होकर जगत्के रूपमें हुआ है अथवा उसने प्रकृति, परमाणु आदिके रूपमें स्थित जगत्को ही आत्मप्राधान्यसे उज्जीवित किया है अथवा वह स्वाभाविक ही जगद्रूप है? परमात्माको परिणामी माननेसे उसकी निर्विकारता नहीं बनती। प्रकृति-परमाणु आदिका अस्तित्व स्वीकार करनेपर अद्वितीयताका व्याकोप होता है। स्वाभाविक ही जगद्रूप माननेपर जन्म-मृत्यु आदिकी प्राप्ति दुर्निवार है। ऐसी अवस्थामें परमात्मा सर्वरूप है—इस वाक्यका क्या अर्थ है? सर्व भी है और परमात्मा भी है अथवा केवल परमात्मा ही

है ? इस सम्बन्धमें उपनिषदादि समस्त शास्त्रोंके साथ पुराणकी एकवाक्यता है। जैसे श्रुतियाँ ज्ञाननिवर्त्य होनेके कारण प्रपञ्चको मिथ्या स्वीकार करती हैं, पुरुषका बोध करके जैसे स्थाणुका बोध होता है, ठीक वैसे ही पुराण भी प्रपञ्चकी भ्रान्तिजन्यता और परमात्माके अतिरिक्त अन्य वस्तुकी असत्ता प्रतिपादन करता है।

परमात्मा त्वमेवैको नान्योऽस्ति जगतः पते।
ज्ञानस्वरूपमखिलं जगदेतदबुद्धयः।
अर्थस्वरूपं पश्यन्तो भ्राम्यन्ते तमसः प्लवे॥

'हे जगत्पते! एकमात्र तुम्हीं परमात्मा हो, आपके अतिरिक्त और कोई नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् ज्ञानस्वरूप ही है। इस बातको जाननेवाले अज्ञानीजन जगत्‌को विषयरूप देखते हैं और अज्ञानमय संसार-सागरमें भटकते रहते हैं, उन्हें पार जानेका मार्ग ही नहीं मिलता।'

परमात्माके निर्विशेष स्वरूपका स्पष्ट प्रतिपादन है—

परः पराणां परमः परमात्मा पितामहः।
रूपवर्णादिरहितो विशेषेण विवर्जितः॥
अपि वृद्धिविनाशाभ्यां परिणामविजन्मभिः।
गुणैर्विवर्जितः सर्वैः स भातीति हि केवलम्॥

'परमात्मा समस्त कार्य-कारणसे परे, अरूप, अवर्ण, निर्विशेष, ह्रासोल्लाससे रहित, निर्विकार, अज एवं निर्गुण हैं। वह केवल ज्ञानस्वरूप, स्फुरणस्वरूप हैं।' वेदान्त-प्रतिपाद्य परमात्माका इस प्रकार वर्णन करके पुराणोंमें आत्माके साथ इसके एकत्वका भी स्पष्टरूपसे निर्देश किया गया है।

नान्यं देवं महादेवाद् व्यतिरिक्तं प्रपश्यति।
तमेवात्मानमन्वेति यः स याति परं पदम्॥
मन्यन्ते ये स्वमात्मानं विभिन्नं परमेश्वरात्।
न ते पश्यन्ति तं देवं वृथा तेषां परिश्रमः॥

'जो अधिकारी पुरुष सर्वप्रकाशक परमात्मासे अतिरिक्त अन्य किसी प्रकाशकको नहीं देखता और उस परमात्माको ही अपनी आत्मा जानता है, उसे परमपदकी प्राप्ति होती है। जो अज्ञानीजन अपने-आपको परमात्मासे पृथक् मानते हैं, उन्हें परमात्माके दर्शन नहीं होते, उनका सारा परिश्रम व्यर्थ है।'

—इन दोनों श्लोकोंमें अन्वय-व्यतिरेकसे स्पष्टरूपसे यह बात कही गयी है कि जो परमात्मा और आत्माके एकत्व-ज्ञानसे सम्पन्न हैं, उन्हें परमपदकी प्राप्ति होती है और जो एकत्व-ज्ञानको स्वीकार नहीं करते, उनका परिश्रम व्यर्थ है। अब हम इस परिणामपर पहुँचते हैं कि समस्त वेदान्तोंका परम तात्पर्य जिस प्रकार प्रपञ्चके मिथ्यात्व और ब्रह्मात्मैकत्वके प्रतिपादनमें है, ठीक उसी प्रकार पुराण भी उसी सिद्धान्तका प्रतिपादन करता है, क्योंकि मीमांसा-पद्धतिके अनुसार समस्त शास्त्रोंकी एकवाक्यता अनिवार्य है और बिना उसके कोई भी वचन शास्त्रकी श्रेणीमें नहीं आ सकता।

व्यतिरेक-मुखसे यह बात कही जाती है कि भगवान् सबसे परे हैं और अन्वय-मुखसे यह बात कही जाती है कि सब कुछ भगवान् ही हैं। केवल भगवान् ही ऐसे हैं जिनमें इच्छाकी एकता, स्मृतिकी एकता, दृष्टिकी एकता सम्पादन की जा सकती है। पुराणोंमें स्पष्टरूपसे कहा गया है—

ऊर्ध्वबाहुरहं वच्मि शृणु मे परमं वचः।
गोविन्दे धेहि हृदयं .....॥

'मैं बाँह उठाकर श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ बात कहता हूँ, सावधान होकर सुनो, जैसे हो वैसे अपना हृदय भगवान्‌को समर्पित करो। उनकी स्मृतिमें डूब जाओ, वही सर्वमङ्गलकी जननी है।'

परमात्मतत्त्वके साक्षात्कारके लिये जीवको ज्ञान और ध्यानकी शरण लेनी चाहिये। श्रवण-मननसे सुनिष्पन्न अर्थमें चित्तकी स्थापना अथवा भगवत्स्मृतिकी परिपक्व परिणत अवस्थाका नाम ही ध्यान है। यह ध्यान सब अधिकारियोंके लिये सुलभ न होनेके कारण ही तीर्थ, व्रत, भागवत-गीता-माहात्म्य, साधुसङ्ग, ब्राह्मण-पूजा आदिके द्वारा अन्तःकरण-शुद्धिपूर्वक भगवत्स्मृतिको जगानेकी चेष्टा की गयी है। जैसे श्रुतियाँ **'स्मृतिपरिशुद्धौ सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः'** वर्णन करती हैं और **'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'** आदि शत-शत वचनोंसे ज्ञानके द्वारा ही तत्त्व-साक्षात्कारका निरूपण करती हैं, ठीक वैसे ही पुराण भी—

साधुसङ्गाद् भवेद् विप्र शास्त्राणां श्रवणं प्रभोः।
हरिभक्तिर्भवेत् तस्मात् ततो ज्ञानं ततो गतिः॥

'साधु-सङ्गसे शास्त्रोंके तात्पर्यका निर्णय करानेवाला श्रवण होता है। एकमात्र भगवत्तत्त्वकी श्रेष्ठता और सत्यताका निर्णय होनेपर इतर वस्तुकी प्राप्तिकी इच्छा निवृत्त हो जाती है

और एकमात्र भगवत्प्राप्तिकी इच्छारूपा भगवद्भक्तिका उदय होता है, भगवद्भक्तिसे भगवत्तत्त्व-विज्ञान और तदनन्तर परमगतिकी प्राप्ति होती है।'

परमगतिको प्राप्त करानेवाले तत्त्वज्ञानका अव्यवहित साधन भगवद्भक्ति है। इसी तत्त्वके प्रतिपादनमें समस्त पुराणोंकी अपूर्वता है। श्रीमद्भागवतमें '**भक्तिर्विरक्ति-र्भगवत्प्रबोधः**' का भी यही अर्थ है। बिना भगवद्भक्तिके अन्तःकरण-शुद्धिकी पूर्णता और भगवत्तत्त्व-विज्ञान नहीं हो सकता। इसीलिये कहीं-कहीं तो तत्त्वज्ञानसे बढ़कर भी भक्तिकी महिमाका उल्लेख मिलता है। सत्य ही है, साधनमें बिना अनन्यनिष्ठा हुए साध्यकी प्राप्ति त्रिकालमें भी नहीं हो सकती। समस्त पुराण इस सिद्धान्तका प्रतिपादन करते हैं—भक्ति ही श्रेष्ठ है, भक्ति ही श्रेष्ठ है।

मन्त्र-जप, पूजा, ध्यान, रहस्य आदिका भी पुराणोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ शैलीसे निरूपण किया गया है। नाम, धाम, रूप, लीला—ये सब चिन्मय भगवत्स्वरूप हैं, इन सबका अथवा इनमेंसे किसी एकका भी आश्रय ग्रहण कर लेनेपर जीवके लिये कुछ कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। ज्ञान, मुक्ति आदि तो इनमेंसे एक-एकके सेवक हैं। अवश्य ही ऐसे वर्णनोंसे अपनी निष्ठामें साधकोंकी अनन्यता होती है और यह सर्वथा यथार्थ भी है, क्योंकि ब्रह्मतत्त्वके सिवा जब और कोई वस्तु ही नहीं है, तब किसी भी वस्तुको ब्रह्मरूपसे निरूपण करनेमें आपत्ति ही कहाँ रह जाती है। पुराणका अभिप्राय किसी भी प्रकार हो—भगवत्स्मृति, भगवद्भक्ति, भगवत्तत्त्वज्ञान एवं भगवत्तत्त्व-साक्षात्कारमें है, इसीसे इसीमें जीवकी कृतकृत्यता है।

सुहृत्-सम्मित पुराण

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीअभिनवविद्यातीर्थजी महाराज)

जिन उत्तम उपदेशोंसे हमारा जीवन पवित्र बनता है, वे उपदेश तीन प्रकारके होते हैं—प्रभु-सम्मित, सुहृत्-सम्मित और कान्ता-सम्मित। किसी कारणको बिना बताये दिये जानेवाले आदेश प्रभु-सम्मित कहे जाते हैं, जैसे राजाज्ञा। वेदोंके उपदेश प्रभु-सम्मित हैं। कथा-कहानीके द्वारा दिये जानेवाले उपदेश सुहृत्-सम्मित हैं। मित्रपर प्रभुत्वसे नहीं, किंतु स्नेहके कारण मित्रकी भलाईके लिये दिये जानेवाले सुझाव भी उपदेश ही हैं, वे सुहृत्-सम्मित माने गये हैं। अपने मधुर व्यवहारसे अपनी ओर आकृष्ट करनेवाली बातें कान्ता-सम्मित उपदेश हैं। इस कोटिमें रघुवंशादि काव्य आते हैं। पुराणोंके विषयमें कहते हैं कि—

निस्ताराय तु लोकानां स्वयं नारायणः प्रभुः।
व्यासरूपेण कृतवान् पुराणानि महीतले॥
पठनाच्छ्रवणाद्येषां नृणां पापक्षयो भवेत्।
धर्माधर्मपरिज्ञानं सदाचारप्रवर्तनम्।
गतिश्च परमा तद्वद् भक्तिर्भगवति प्रभो॥

'भगवान् नारायणने भूमण्डलपर व्यासरूपसे अवतरित होकर लोगोंको पार पहुँचानेके लिये पुराणोंकी रचना की। इन पुराणोंके पठन और श्रवणसे लोगोंका पाप नष्ट होता है, धर्म और अधर्मका ज्ञान होता है, सदाचारमें प्रवृत्ति होती है और भगवान्‌में भक्ति बढ़ती है। जिसके द्वारा मोक्षकी प्राप्ति सम्भव है।'

भगवान् व्यासने मानव-समाजको भवसागरसे पार होनेके लिये पुराणोंद्वारा भगवदवतारकी लीलाएँ, आदर्श पुरुषोंका सच्चरित्र, भक्तिमय जीवन और धर्माचरण प्रस्तुत करके मानवसमाजका कल्याण किया। पुराणोंमें सच्चे मार्गपर चलनेवालोंका श्रेय और बुरे आचरणवालोंकी दुर्गति भलीभाँति दिखायी गयी है। इन कथारूप उपदेशोंको सुनते-सुनते सामान्य मानव भी अपना मन निर्मल बनाकर धर्ममार्गपर ही चलनेमें श्रद्धावान् बनेगा। व्यासजीके सारे पुराण सुहृत्-सम्मित उपदेश हैं। इन उपदेशोंके प्रभावके ही कारण आजतक हम भारतवासियोंके मानसपटलपर अपनी पुरानी संस्कृति अङ्कित है। गाँव-गाँव और मन्दिर-मन्दिरमें पुराणोंके प्रवचन होते रहें तो साधारणजन भी अपनी संस्कृति समझकर सन्मार्गपर चल सकेगा। पुराणोंमें प्रतिपादित कुछ कथाओंका मूल वेदोंमें मिलता है। वेदोंमें संक्षिप्त रूपसे प्रतिपादित कथाएँ रोचकताके साथ विस्तारपूर्वक पुराणोंमें कही गयी हैं। कृष्ण-यजुर्वेदसंहिता ६।३।२।१, वाजसनेयि

३०।९ आदिमें प्रतिपादित उपसद्धोम नामक विषय पुराणोंमें वर्णित शिवकृत त्रिपुर-संहार-कथासे मिलता-जुलता है। पुराणप्रतिपादित प्रह्लाद, विरोचन, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदिकोंका परिचय भी वेदमें मिलता है। वेद और पुराणोंका घना सम्बन्ध है। शास्त्रोंमें कहा गया है कि—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदः मामयं प्रतरेदिति॥

'वेद अल्पज्ञसे भय खाता है कि यह मुझे ठगेगा। अतः इतिहास-पुराणोंसे वेदका उपबृंहण करना चाहिये।' पुराण सुहृत्-सम्मित होनेसे सबको प्रिय हैं। उनमें प्रतिपादित कथाओंसे सबको अच्छी शिक्षाएँ मिलती हैं। पुराण-कथा-श्रवणसे जीवन सुधरता है तथा इहलोक और परलोक—दोनोंमें श्रेय और जीवनमें शान्ति मिलती है।

पुराणोंकी वेदवत् प्रतिष्ठा

(अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशी-(सुमेरु) पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीशंकरानन्द सरस्वतीजी महाराज)

भारतवर्षमें पुरातनकालसे भारतीय संस्कृति एवं धर्मके विषयमें पुराणोंका महत्त्व था, है तथा रहेगा। कारण, पुराण सनातनधर्मके कल्याण-मार्गों (कर्म, उपासना, ज्ञान) का विविध ढंगसे उपस्थापन करते हैं। पुराण वेदोंके गम्भीर एवं समाधिगम्य विषयोंका विभिन्न भाव, भाषा, अलङ्कार तथा गाथाओंके द्वारा स्फुटीकरण करते हैं। वास्तवमें पुराण वेदोंके व्याख्यान-ग्रन्थ हैं। अतः पुराण सर्वथा वेदानुकूल हैं। पुराणोंमें एक भी विषय वेद-विरुद्ध नहीं है। पुराणोंमें यदि किसीको वेदविरोध या प्रतिकूलता प्रतीत होती हो तो वह उसकी बुद्धि या समझका दोष है, पुराणका नहीं। अतएव कहा गया है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्॥
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।
(महा० आदि० १।२६७, २६८)

पुराणोंकी प्रामाणिकता

वेदोंकी भाँति पुराण भी ईश्वरके निःश्वास हैं। '**अस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणम्।**' (वाजसनेयि ब्राह्मणोपनिषद् २।४।१०)।

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रिताः॥
(अथर्ववेद ११।७।२४)

तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन्
(अथर्ववेद १५।६।११)

इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद॥
(अथर्व० १५।६।१२)

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥
(मत्स्यपुराण ५३।३)

इतिहासं पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्
(न्यायदर्शन ४।१।६२)

स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्ये धर्मशास्त्राणि चैव हि।
आख्यानानीतिहासांश्च पुराणानि खिलानि च॥
(मनु० ३।२३२)

उपर्युक्त वेदपुराण-स्मृति-न्यायदर्शन आदि ग्रन्थोंके अध्ययन करनेपर स्फीतालोकवर्ती घटके समान पुराणोंकी परम प्राचीनता स्फुटतम हो जाती है। '**ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह**'—अथर्ववेदके इस मन्त्रमें 'पुराण' शब्द प्रथमा विभक्त्यन्त और 'यजुषा' तृतीयान्त होनेके कारण पुराणोंकी वेदापेक्षया प्रधानता स्पष्टरूपसे प्रमित होती है।

सूतजी 'शिवमहापुराण वायवीयसंहिता पूर्वभागके प्रथम अध्यायके श्लोक २७ से ३२में अष्टादश विद्याओंका वर्णन करते हुए कहते हैं—

अष्टादशानां विद्यानामेतासां भिन्नवर्त्मनाम्।
आदिकर्ता कविः साक्षाच्छूलपाणिरिति श्रुतिः॥
स हि सर्वजगन्नाथः सिसृक्षुरखिलं जगत्।
ब्रह्माणं विदधे साक्षात् पुत्रमग्रे सनातनम्॥
तस्मै प्रथमपुत्राय ब्रह्मणे विश्वयोनये।
विद्याश्चेमा ददौ पूर्वं विश्वसृष्ट्यर्थमीश्वरः॥
पालनाय हरिं देवं रक्षाशक्तिं ददौ ततः।
मध्यमं तनयं विष्णुं पातारं ब्रह्मणोऽपि हि॥

लब्धविद्येन विधिना प्रजासृष्टिं वितन्वता।
प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम्॥
अनन्तरं तु वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां तन्मुखादभवत् ततः॥

भाव यह है कि—विभिन्न विषयोंका प्रतिपादन करनेवाली अष्टादश विद्याओंके मूल प्रणेता भगवान् शिव हैं, यह श्रुति-सिद्धान्त है, विश्वसृष्टिकी इच्छासे भगवान् शिवने सर्वप्रथम ब्रह्माजीका सर्जन कर विश्वनिर्माणार्थ समस्त अष्टादश विद्याओंको उन्हें दिया। समस्त विश्वके पालनार्थ भगवान् विष्णुको रक्षाशक्ति दिया। ब्रह्माजीने सृष्टिके पूर्व विश्व-विस्तारार्थ समस्त शास्त्रोंके पूर्व ही पुराणोंका स्मरण किया। पश्चात् ब्रह्माजीके मुखारविन्दसे अन्य शास्त्रोंका आविर्भाव हुआ।

इस प्रकार शिवपुराणके आधारपर वेदाद्यपेक्षया पुराणोंके प्राकट्यमें प्राथम्य सुस्पष्ट ज्ञात होता है। **'अस्य महतो भूतस्य'** इत्यादि मन्त्रके अनुसार मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद, इतिहास, पुराण महान् पुरुष परमेश्वरके निःश्वासरूप हैं। यहाँपर 'निःश्वास' शब्दसे दो अर्थ परिलक्षित होते हैं। प्रथम जिस प्रकार प्राणियोंमें निःश्वास स्वाभाविक रूपसे स्वतः निकलता रहता है, उसी प्रकार परमेश्वरसे वेद-पुराणादि भी अनायास स्वाभाविक रूपसे निकलते हैं। द्वितीय निःश्वास शब्दसे वेद एवं पुराणोंकी नित्यता या सनातनता अभिव्यक्त होती है।

जीवित शरीरके यन्त्र दो प्रकारसे समुपलब्ध होते हैं—प्रथम स्वेच्छा-सेवक, द्वितीय परेच्छा-सेवक। हाथ-पाँव आदि स्वेच्छासेवक हैं। कारण, हाथ-पाँव आदिके कार्य जीवेच्छाके अधीन हैं। हाथ जीवेच्छाके बिना नहीं हिल सकता, पैर जीवकी इच्छाके बिना नहीं चल सकते। जीव स्वेच्छासे हाथ-पाँव आदिसे कार्य कराता है, अतः हाथ-पाँव आदि स्वेच्छा-सेवक हैं।

श्वासयन्त्र, पाक-यन्त्र आदि परेच्छा-सेवक है; क्योंकि जब जीव निद्राकी गोदमें रहता है, तब भी श्वास-प्रश्वास चलते रहते हैं। पाक-यन्त्र अपना कार्य करता रहता है, अतः श्वास आदि परेच्छा-सेवक हैं।

श्वास आदि परेच्छा-सेवकोंके साथ जीवका घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनके बिगड़नेपर प्राणीका जीवन सङ्कटमय स्थितिमें पहुँच जाता है। किं बहुना, श्वास-क्रिया समाप्त होना ही जीवनका अन्त है। परंतु हाथ या पाँव आदिके नष्ट हो जानेपर भी प्राणी जीवित रहकर अपना कार्य विविध ढंगसे संचालित करता रहता है।

इसी प्रकार परमेश्वरका वेद एवं पुराणोंके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध या नित्य-सम्बन्ध है; क्योंकि वेद-पुराण भगवान्के निःश्वासरूप हैं। भगवान् अनादि-अनन्त हैं, अतः उनके निःश्वासरूप वेद एवं पुराण भी अनादि-अनन्त हैं। यही बात **'अस्य महतो भूतस्य निश्वसितम्'** इत्यादि मन्त्रके निःश्वास-शब्दसे ध्वनित होता है।

संक्षेपमें वेदरूपी सागरमें पुराण प्रफुल्लित पङ्कज हैं। पुराणपङ्कजमें रसब्रह्म मधु या पराग है—इस मधु-रसका पान पुण्यशाली विद्वज्जन करते हैं।

भगवान्को प्रसन्न करनेवाले आठ भाव-पुष्प

अहिंसा प्रथमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रियनिग्रहः। सर्वपुष्पं दया भूते पुष्पं शान्तिर्विशिष्यते॥
शमः पुष्पं तपः पुष्पं ध्यानं पुष्पं च सप्तमम्। सत्यं चैवाष्टमं पुष्पमेतैस्तुष्यति केशवः॥

(अग्निपुराण २०२। १७-१८)

'अहिंसा' (किसी भी प्राणीका तन-मन-वचनसे न बुरा चाहना, न करना, न समर्थन करना) प्रथम पुष्प है। **'इन्द्रिय-निग्रह'** (इन्द्रियोंको मनमाने विषयोंमें न जाने देना) दूसरा पुष्प है। **'प्राणिमात्रपर दया'** (दूसरेके दुःखको अपना दुःख समझकर उसे दूर करनेके लिये चेष्टा) तीसरा सर्वोपयोगी पुष्प है। **'शान्ति'** (किसी भी अवस्थामें चित्तका क्षुब्ध न होना) चतुर्थ पुष्प सबसे बढ़कर है। **'शम'** (मनका वशमें रहना) पाँचवाँ पुष्प है। **'तप'** (स्वधर्मके पालनार्थ कष्ट सहना) छठा पुष्प है। **'ध्यान'** (इष्टदेवके स्वरूपमें चित्तकी तदाकार-वृत्ति) सातवाँ पुष्प है और आठवाँ पुष्प **'सत्य'** है। इन पुष्पोंसे भगवान् केशव संतुष्ट होते हैं।

पुराणोंकी महिमा

(अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य वरिष्ठ स्वामी श्रीचन्द्रशेखरेन्द्र सरस्वतीजी महाराज)

विधिप्रधान हैं चारों वेद। वेदोक्त विषयोंको ही मित्रोंके जैसे भाव प्रधानतया बताते हैं पुराण। ये अतीव प्राचीनतम इस देशके इतिहासके सारगर्भित भी हैं। अतएव प्राचीनतम भारतीय सनातनधर्मका, उसकी उत्कृष्टतम संस्कृतिका भी अतिरुचिर स्वभावोक्ति वर्णन पाये जाते हैं इनमें। इनमें क्रुद्ध हुए ऋषि-मुनियोंके शाप-प्रतिशापके लेन-देनका भी वर्णन है ही। इन विषयोंको स्वरूपमात्रसे विचार करनेकी प्रवृत्ति छोड़कर फलसे ही इनका विचार करना उचित होगा। फल तो व्यक्ति तथा समुदाय दोनोंके ही भलाईके होते हैं।

उदाहरणार्थ महाराज परीक्षित् एक दिन शिकार खेलने निकल पड़े। घने जंगलमें घूम-फिरकर थके-माँदे उन्हें अपनी प्यास बुझानेका कोई उपाय दीख न पड़ा। वहाँ ध्यानमें मग्न थे एक मुनिवर। उनसे बहुत प्रकारसे पूछताछ की। सब व्यर्थ निकले। विषण्ण होकर लौटते उन्हें एक मरा साँप दीख पड़ा। उसे उस ऋषिवरके गलेमें माला पहनानेके लिये उनके मनमें तीव्र उत्कण्ठा उठी। सत्कुल-प्रसूत होनेपर भी वे उसे दबा न सके। अतः अपनी इच्छा पूरी करके लौट पड़े। थोड़ी देरके बाद ऋषिका पुत्र वहाँ आया और उस दृश्यको देखकर क्रुद्ध हो उठा तथा शाप दिया कि 'जिस अधमका यह कुकृत्य है, उसकी मृत्यु आजसे सातवें दिन सर्प-दंशसे ही हो जाय।'

महाराज परीक्षित्को शापकी बातका पता चला। अपने कुकृत्यका दण्ड भोगनेके लिये वे तैयार हो गये। अपनी मृत्युका निश्चित समय समझकर संतुष्ट हुए। उन्होंने मुनिवर श्रीशुककी वाणीसे श्रीमद्भागवत सुनते-सुनते प्राणत्याग किया और मुक्ति पायी। उन्हें मिली मुक्ति और समुदायको मिला पुराणरत्न श्रीमद्भागवत, जिससे आज भी श्रीकृष्ण-भक्तिका समृद्ध स्रोत बढ़ा रहता है।

और एक हैं ये चक्रवर्ती महाराज दशरथ। एक दिन ये शिकार करने निकल पड़े। थके-माँदे एक तालाबके किनारे एक पेड़के नीचे आराम कर रहे थे। गड़-गड़की ध्वनि सुनकर पानी पीते हाथीपर शब्दवेधी बाण चलाये। फिर क्या? 'हाय मरा' की मानव-वाणी सुन पड़ी। चकित होकर वे दौड़ पड़े और जान लिये कि अंधे तथा बूढ़े अपने माता-पिताकी प्यास बुझानेवाला युवक है मरता। मृत युवकको लेकर बूढ़ोंके पास पहुँचे और शाप पाया कि 'हमारे-जैसे तुम्हें भी अपने पुत्रके वियोगसे मृत्यु हो जाय।' फलस्वरूप चक्रवर्तीको संतान-लाभ हुआ एवं समुदायको इतिहास-रत्न श्रीमद्वाल्मीकिरामायण मिला।

अतः पुराणोंका तत्त्वार्थ समझनेकी प्रवृत्ति अपनायें, हमारी संस्कृतिका सच्चा स्वरूप पहचान लें एवं उन्नत जीवन बिताने लगें।

पुराणेष्वर्थवादत्वं ये वदन्ति नराधमाः ॥
तैरर्जितानि पुण्यानि क्षयं यान्ति द्विजोत्तमाः।
अन्यानि साधयन्त्येव कार्याणि विधिना नराः ॥
पुराणानि द्विजश्रेष्ठाः साधयन्ति न मोहिताः।
अनायासेन यः पुण्यानीच्छतीह द्विजोत्तमाः ॥
श्रोतव्यानि पुराणानि तेन वै भक्तिभावतः।

(नारद० १। १। ५७-६१)

(सूतजीने ऋषियोंसे कहा—) 'द्विजवरो! जो नराधम पुराणोंमें अर्थवाद (अतिरञ्जित कथन) की शङ्का करते हैं, उनके किये हुए समस्त पुण्य नष्ट हो जाते हैं। मोहग्रस्त मानव दूसरे-दूसरे कार्योंके साधनमें लगे रहते हैं, परंतु पुराण श्रवणरूप पुण्यकर्मका अनुष्ठान नहीं करते हैं। जो मनुष्य बिना किसी परिश्रमके यहाँ अनन्त पुण्य प्राप्त करना चाहता हो, उसको भक्तिभावसे निश्चय ही पुराणोंका श्रवण करना चाहिये।

सभी कथाओंका तात्पर्य—भगवत्प्राप्ति

(अनन्तश्रीविभूषित श्रीमद्विष्णुस्वामिमतानुयायी श्रीगोपालवैष्णवपीठाचार्यवर्य श्री १०८ श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

भगवान्‌की आज्ञारूप वेदोंमें जन-कल्याणार्थ सभी साधनोंका विधान विहित है तथा श्रीहरिकी महिमाका गुणगान है। उन वेदोंके दुरूह एवं परोक्षवादी होनेके कारण सभीको उनका ज्ञान होना असम्भव है। इसलिये दयालु भगवान्‌ने वेद-व्यास-रूपसे अवतीर्ण होकर अठारह पुराणोंद्वारा वेदोंका उपबृंहण किया है। सभी शास्त्रोंमें पुराणोंकी प्राथमिकता मानी गयी है—'**पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।**' चौदह विद्याओंकी गणनामें पुराणका प्रथम स्थान है, जिसमें सभी मानवोंके आचरणीय धर्मोंका प्रतिपादन किया गया है—

पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रितः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ॥

पुराण पाँचवाँ वेद है। यह छान्दोग्योपनिषद् एवं श्रीमद्भागवतमें स्पष्टतया वर्णित है—

'**इतिहासपुराणं च पञ्चमं वेदानां वेदम्।** (छान्दो०)।
'**इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते ॥**'
(श्रीमद्भा० १।४।२०)

धर्माचरणमें पुराणोंको भी प्रामाणिक मानना चाहिये। यद्यपि पुराणोंमें मनु आदि स्मृतियोंकी तरह आनुपूर्वक धर्मोंका निरूपण नहीं किया गया है तथापि उनमें सर्वत्र प्रसङ्गोंमें जहाँ-तहाँ वर्णाश्रम-धर्मोंका भलीप्रकारसे निरूपण हुआ है। जो धर्म स्मृतियोंमें संक्षेपसे कथित हैं, उन्हींका पुराणोंमें दृष्टान्तरूप अनेक कथाओंद्वारा विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। अतः स्मृतियोंके समान पुराणोंको भी उपयोगी होनेसे धर्म-विषयमें प्रमाण मानना योग्य है।

साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि पुराण-विद्या सनातनी है, क्योंकि कल्पादिमें ब्रह्माजीने पुराणका मनसे स्मरण किया था—'**पुराणं मनसाऽस्मरत्।**' जैसे वेद कर्म-ज्ञान-उपासना—इन भेदोंसे त्रिकाण्ड-विषयक होकर भी ब्रह्मात्म-विषयक हैं, वैसे सभी पौराणिकी कथाओंका तात्पर्य भगवत्प्राप्ति ही है। जैसे सभी नदियाँ बहती हुई अन्तमें समुद्रमें लीन हो जाती हैं, वैसे ही सभी वचनोंका पर्यवसान परमात्मामें ही होता है। इसलिये वेदोंके उपबृंहक पौराणिक वर्णन परमात्मपरक होनेसे प्रामाणिक माने गये हैं। पुराणोंमें सर्ग-विसर्गादि पाँच लक्षण, व्रतोपवास, तीर्थ, उपासना, योग-यज्ञादिका समास-व्यास-रूपसे वर्णन किया गया है। ये सभी साधन अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा भगवत्प्राप्तिमें सहायक सिद्ध होते हैं। जहाँ-जहाँ भूगोल-खगोल चौदह लोकोंका वर्णन है वह सब भगवान्‌के स्थूल स्वरूपका ही वर्णन है। बिना स्थूल स्वरूपके जाने सूक्ष्मस्वरूपका ज्ञान असम्भव है। यही विषय पुराणोंमें यत्र-तत्र-सर्वत्र वर्णित है। ब्रह्माण्ड-वर्णनमें सभी कथाओंका—कहीं दृष्टान्त-रूपमें तो कहीं उदाहरण-रूपमें समावेश है। अतः भगवन्महिमाका वर्णन-श्रवण करनेसे भगवत्कृपाद्वारा भगवत्प्राप्ति अवश्य होती है। भगवान् परम दयालु हैं, जिन्होंने जीवोंके कल्याणार्थ श्रवण-कीर्तन-स्मरण करनेयोग्य बहुत-सी अद्भुत लीलाएँ की हैं। जिनके सेवन करनेसे सांसारिक दुःख, शोक-अज्ञानका नाश होता है; क्योंकि सर्वत्र पुराणोंमें भक्तार्तिहारक श्रीहरिका ही वर्णन मिलता है। कहीं आवेशावतार, कहीं अंशावतार, कहीं कलावतार, कहीं पूर्णावतारका वर्णन है। ये सभी अवतार दुष्ट-निग्रह और शिष्ट-अनुग्रहके लिये हैं। बिना असाधुके दमन किये साधुका कल्याण होना असम्भव है। एतदर्थ भगवान् देव, ऋषि, मनुष्य, जलचर आदिमें प्रकट होकर जगत्‌का पालन-निर्वाहादि करते हैं। उन्हींके गुण, विभूति, नाम, रूपोंके प्रतिपादक पुराण हैं। अतः उनमें वर्णित सभी कथाओंका तात्पर्य भगवत्प्राप्ति ही है।

अहं हरिः सर्वमिदं जनार्दनो नान्यत्ततः कारणकार्यजातम्।
ईदृङ्मनो यस्य न तस्य भूयो भवोद्भवा द्वन्द्वगदा भवन्ति ॥
(विष्णु० १।२२।८७)

'मैं तथा यह सम्पूर्ण जगत् जनार्दन श्रीहरि ही हैं; उनसे भिन्न और कुछ भी कार्य-कारणादि नहीं हैं'—जिसके चित्तमें ऐसी भावना है उसे फिर देहजन्य राग-द्वेषादि द्वन्द्वरूप रोगकी प्राप्ति नहीं होती।'

शास्त्रप्रतिपादित पुराण-माहात्म्य

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

हमारे शास्त्रोंमें पुराणोंकी बड़ी महिमा है। उन्हें साक्षात् श्रीहरिका रूप बताया गया है। जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत्को आलोकित करनेके लिये भगवान् सूर्यरूपमें प्रकट होकर हमारे बाहरी अन्धकारको नष्ट करते हैं, उसी प्रकार हमारे हृदयान्धकार—भीतरी अन्धकारको दूर करनेके लिये श्रीहरि ही पुराण-विग्रह धारण करते हैं।[1] जिस प्रकार त्रैवर्णिकोंके लिये वेदोंका स्वाध्याय नित्य करनेकी विधि है, उसी प्रकार पुराणोंका श्रवण भी सबको नित्य करना चाहिये—'**पुराणं शृणुयान्नित्यम्**' पुराणोंमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारोंका बहुत ही सुन्दर निरूपण हुआ है और चारोंका एक-दूसरेके साथ क्या सम्बन्ध है, इसे भी भलीभाँति समझाया गया है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।
नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः॥
कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता।
जीवस्य तत्त्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः॥

(१।२।९-१०)

'धर्मका फल है संसारके बन्धनोंसे मुक्ति अथवा श्रीभगवान्की प्राप्ति। धर्मसे यदि किसीने कुछ सांसारिक सम्पत्ति उपार्जन कर ली तो इसमें उस धर्मकी कोई सफलता नहीं है। इसी प्रकार धनका एकमात्र फल है धर्मका अनुष्ठान, वह न करके यदि किसीने धर्मसे कुछ भोगकी सामग्रियाँ एकत्र कर लीं तो यह कोई सच्चे लाभकी बात नहीं हुई। शास्त्रोंने कामको भी पुरुषार्थ माना है। पर उस पुरुषार्थका अर्थ इन्द्रियोंको तृप्त करना नहीं है। जितने सोने-खाने आदिसे हमारा जीवन-निर्वाह हो जाय, उतना आराम ही यहाँ 'काम' पुरुषार्थसे अभिप्रेत है तथा जीवननिर्वाहका—जीवित रहनेका भी फल यह नहीं है कि अनेक प्रकारके कर्मोंके पचड़ेमें पड़कर इस लोक या परलोकका सांसारिक सुख प्राप्त किया जाय। उसका परम लाभ तो यह है कि वास्तविक तत्त्वकी—भगवत्तत्त्वको जाननेकी शुद्ध इच्छा हो।' वस्तुतः सारे साधनोंका फल है भगवान्की प्रसन्नताको प्राप्त करना। और वह भगवत्प्रीति भी पुराणोंके श्रवणसे सहजमें ही प्राप्त की जा सकती है। 'पद्मपुराण'में कहा गया है—

तस्माद्यदि हरेः प्रीतेरुत्पादे धीयते मतिः।
श्रोतव्यमनिशं पुम्भिः पुराणं कृष्णरूपिणः॥

(पद्म०, स्वर्ग० ६१।६३)

'इसलिये यदि भगवान्को प्रसन्न करनेका मनमें संकल्प हो तो सभी मनुष्योंको निरन्तर श्रीकृष्णके अङ्गभूत पुराणोंका श्रवण करना चाहिये।' इसीलिये पुराणोंका हमारे यहाँ बहुत आदर है।

वेदोंकी भाँति पुराण भी हमारे यहाँ अनादि माने गये हैं और उनका रचयिता कोई नहीं है। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी भी उनका स्मरण ही करते हैं। इसी दृष्टिसे कहा गया है—'**पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।**' इनका विस्तार सौ करोड़ (एक अरब) श्लोकोंका माना गया है—'**शतकोटिप्रविस्तरम्।**' उसी प्रसङ्गमें यह भी कहा गया है कि समयके परिवर्तनसे जब मनुष्यकी आयु कम हो जाती है और इतने बड़े पुराणोंका श्रवण और पठन एक जीवनमें मनुष्योंके लिये असम्भव हो जाता है, तब उनका संक्षेप करनेके लिये स्वयं भगवान् प्रत्येक द्वापरयुगमें व्यासरूपमें अवतीर्ण होते हैं और उन्हें अठारह भागोंमें बाँटकर चार लाख श्लोकोंमें सीमित कर देते हैं। पुराणोंका यह संक्षिप्त संस्करण ही भूलोकमें प्रकाशित होता है। कहते हैं स्वर्गादि लोकोंमें आज भी एक अरब श्लोकोंका विस्तृत पुराण विद्यमान है[2]। इस प्रकार भगवान् वेदव्यास भी पुराणोंके रचयिता नहीं, अपितु वे उसके

---

१. यथा सूर्यवपुर्भूत्वा प्रकाशाय चरेद्धरिः। सर्वेषां जगतामेव हरिरालोकहेतवे॥
तथैवान्तःप्रकाशाय पुराणावयवो हरिः। विचरेदिह भूतेषु पुराणं पावनं परम्॥ (पद्म०, स्वर्ग० ६१।६१-६२)

२. कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य तदा विभुः॥
व्यासरूपस्तदा ब्रह्मा संग्रहार्थं युगे युगे। चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे जगौ॥
तदाष्टादशधा कृत्वा भूलोकेऽस्मिन् प्रकाशितम्। अद्यापि देवलोकेषु शतकोटिप्रविस्तरम्॥ (पद्म०, सृष्टि० १।५०-५२)

संक्षेपक अथवा संग्राहक ही सिद्ध होते हैं। इसीलिये पुराणोंको 'पञ्चम वेद' कहा गया है।

'इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्।'

(छान्दोग्य-उपनिषद् ७।१।२)

उपर्युक्त उपनिषद्वाक्यके अनुसार यद्यपि इतिहास-पुराण दोनोंको ही 'पञ्चम वेद' की गौरवपूर्ण उपाधि दी गयी है, फिर भी वाल्मीकीय रामायण और महाभारत जिनकी इतिहास संज्ञा है, क्रमशः महर्षि वाल्मीकि तथा वेदव्यासद्वारा प्रणीत होनेके कारण पुराणोंकी अपेक्षा अर्वाचीन ही हैं। इस प्रकार पुराणोंकी पुराणता सर्वापेक्षया प्राचीनता सुतरां सिद्ध हो जाती है। इसीलिये वेदोंके बाद पुराणोंका ही हमारे यहाँ सबसे अधिक सम्मान है। बल्कि कहीं-कहीं तो उन्हें वेदोंसे भी अधिक गौरव दिया गया है। पद्मपुराणमें लिखा है।

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
पुराणं च विजानाति यः स तस्माद्विचक्षणः॥

(सृष्टि० २।५१)

'जो ब्राह्मण अङ्गों एवं उपनिषदोंसहित चारों वेदोंका ज्ञान रखता है, उससे भी बड़ा विद्वान् वह है, जो पुराणोंका विशेष ज्ञाता है।' यहाँ श्रद्धालुओंके मनमें स्वाभाविक ही यह शङ्का हो सकती है कि उपर्युक्त श्लोकमें वेदोंकी अपेक्षा भी पुराणोंके ज्ञानको श्रेष्ठ क्यों बतलाया है। इस शङ्काका दो प्रकारसे समाधान किया जा सकता है। पहली बात तो यह है कि उपर्युक्त श्लोकके 'विद्यात्' और 'विजानाति'—इन दो क्रिया-पदोंपर विचार करनेसे यह शङ्का निर्मूल हो जाती है बात यह है कि ऊपरके वचनमें वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका वैशिष्ट्य बताया गया है, न कि वेदोंके सामान्य ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके सामान्य ज्ञानका अथवा वेदोंके विशिष्ट ज्ञानकी अपेक्षा पुराणोंके विशिष्ट ज्ञानका। पुराणोंमें जो कुछ है, वह वेदोंका ही तो विस्तार—विशदीकरण है। ऐसी दशामें पुराणोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंका ही विशिष्ट ज्ञान है और वेदोंका विशिष्ट ज्ञान वेदोंके सामान्य ज्ञानसे ऊँचा होना ही चाहिये। दूसरी बात यह है कि जो बात वेदोंमें सूत्ररूपसे कही गयी है, वही पुराणोंमें विस्तारसे वर्णित है। उदाहरणके लिये परम तत्त्वके निर्गुण-निराकार रूपका तो वेदों (उपनिषदों) में विशद वर्णन मिलता है, परंतु सगुण-साकार तत्त्वका बहुत ही संक्षेपमें कहीं-कहीं वर्णन मिलता है। ऐसी दशामें जहाँ पुराणोंके विशेष ज्ञाताको सगुण-निर्गुण दोनों तत्त्वोंका विशिष्ट ज्ञान होगा, वेदोंके सामान्य ज्ञाताको केवल निर्गुण-निराकारका ही सामान्य ज्ञान होगा। इस प्रकार उपर्युक्त श्लोकोंकी संगति भलीभाँति बैठ जाती है और पुराणोंकी जो महिमा शास्त्रोंमें वर्णित है, वह अच्छी तरह समझमें आ जाती है।

पुराणोंका क्रम और सृष्टिविद्याका निरूपण

(महामहोपाध्याय स्व० पं० श्रीगिरिधरजी शर्मा चतुर्वेदी)

पुराण-विद्या महर्षियोंका सर्वस्व है। यह वह अटूट खजाना है, जिसके प्रभावसे अनेक प्रकारकी दरिद्रताओंका शिकार बनकर भी भारत आज धनी है, आज भी संसारकी सभ्य जातियोंके समक्ष यह अपना मस्तक ऊँचा रख सकता है। बीसवीं शताब्दी विज्ञानका मध्याह्न कही जाती है, किंतु जितने विज्ञान आजतक उच्च भूमिकापर पहुँच चुके हैं, जितने अभी अधूरे हैं तथा जो अभी गर्भमें ही हैं, उनमेंसे एक भी ऐसा नहीं है, जिसके सम्बन्धमें पुराणोंमें कोई भी उल्लेख न मिलता हो। जितने भी सामाजिक और राजनीतिक वाद इस समय भूमण्डलमें प्रसिद्ध हैं, उनमेंसे भी किसीका संक्षेपसे, किसीका विस्तारसे, किसीका पूर्वपक्षरूपसे और किसीका निन्दारूपसे—इस तरह किसी-न-किसी प्रकारसे पुराणोंमें अवश्य उल्लेख मिलेगा। आजसे हजारों वर्ष पूर्व इन सब बातोंका हमारे पूर्वजोंको ज्ञान था, वे इन सबकी आलोचना कर सकते थे, प्रत्यक्षदर्शीकी तरह सब बातोंपर अपनी राय दे सकते थे। पुराण-विद्याके समान कौन-सी विद्या संसारकी किसी जातिके पास है? इस प्रकारकी विद्याको अपने 'कोष'में रखकर हिंदू-जाति गौरवान्वित है।

पुराण अठारह हैं—यह प्रसिद्ध बात है। वस्तुतः ये अठारह स्वतन्त्र पुराण नहीं, किंतु एक ही पुराणके अठारह प्रकरण हैं। जैसे एक ग्रन्थमें कई अध्याय होते हैं, वैसे ही एक पुराणके ये अठारह अध्याय हैं। यही कारण है कि उनका क्रम

नियत है। स्वतन्त्र ग्रन्थोंमें कोई नियत क्रम नहीं रहता, वक्ताकी इच्छा है कि उन्हें अपने व्याख्यान या लेखमें किसी भी क्रमसे आगे-पीछे रख दे, किंतु पुराणोंमें ऐसा नहीं हो सकता, उनका एक नियत क्रम है। सप्तम पुराण कहनेसे 'मार्कण्डेयपुराण'का ही बोध होगा, त्रयोदश पुराण कहनेसे 'स्कन्दपुराण' ही समझा जायगा। 'गरुडपुराण' सत्रहवाँ पुराण ही कहलायेगा—इत्यादि। इस संख्यामें कभी फेर-बदल नहीं हो सकता। एक ग्रन्थके अध्यायोंमें उलट-फेर कौन कर सकता है। उलट-फेर कर दिया जाय तो सब ग्रन्थका स्वारस्य ही बिगड़ जाय। इसलिये पुराण सर्वदा निम्नलिखित क्रमसे ही समझे जाते हैं—१-ब्राह्म, २-पाद्म, ३-वैष्णव, ४-वायव्य (शैव), ५-भागवत, ६-नारद, ७-मार्कण्डेय, ८-आग्नेय, ९-भविष्य, १०-ब्रह्मवैवर्त, ११-लैङ्ग, १२-वाराह, १३-स्कान्द, १४-वामन, १५-कौर्म, १६-मात्स्य, १७-गारुड और १८-ब्रह्माण्ड। स्थूल दृष्टिसे भी देखते ही प्रत्येक भावुकको यह चमत्कार प्रतीत होगा कि इस विद्याका आरम्भ ब्रह्मसे और समाप्ति ब्रह्माण्डपर है तथा मध्यमें भी 'ब्रह्मवैवर्त' में ब्रह्मकी स्मृति करा दी जाती है। इसीसे स्पष्ट हो गया कि यह 'सृष्टिविद्या' है, जो ब्रह्मसे आरम्भकर 'ब्रह्माण्ड'तक हमारे ज्ञानको पहुँचा देती है और आदि, मध्य एवं अन्तमें ब्रह्मका कीर्तन करती हुई ब्रह्मपरसे ज्ञानीको विचलित नहीं होने देती। यद्यपि—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

—इस लक्षणके अनुसार पुराणमें पाँच विषयोंका निरूपण प्रधान है, किंतु विचारदृष्टिसे प्रतीत होगा कि 'सृष्टिविद्या' ही पुराणका मुख्य विषय है, शेष चार उसके 'उपोद्घात' हैं। सृष्टिका निरूपण उन चारोंके बिना साङ्गोपाङ्ग नहीं बनता, इसलिये उन चारोंको साथ लेना पड़ता है, किंतु पुराणका मुख्य प्रतिपाद्य सृष्टिविद्या ही है। सृष्टिका क्रम पुराणोंमें संक्षेपतः इस प्रकार बताया गया है—'क्षीरसमुद्रमें शेषशय्यापर भगवान् नारायण सो रहे हैं, जगज्जननी लक्ष्मी उनके पैर दबा रही हैं, भगवान् नारद पास खड़े स्तुति कर रहे हैं। उन्हें जब सृष्टि रचनेकी इच्छा होती है, तब उनकी नाभिसे एक 'पद्म' (कमल) निकलता है, उस कमलमेंसे चतुर्मुख ब्रह्मा प्रादुर्भूत होते हैं, वे ब्रह्मा स्थावर-जङ्गमात्मक सब विश्वको बनाते हैं।' इस चित्र (नक्शे)को ध्यानमें रखिये और अब पूर्वोक्त पुराणोंके क्रमपर चलिये। कार्यसे कारणकी ओर जाना है, स्थूलसे सूक्ष्ममें प्रवेश करना है। स्थावर-जङ्गमात्मक दृश्य-जगत्के निर्माता ब्रह्माके तत्त्वको पहला 'ब्राह्मपुराण' समझाता है। ब्रह्मा जहाँसे प्रकट हुए, उस पद्म (कमल) का निरूपण दूसरे 'पाद्मपुराण'में हुआ है। पद्मके उद्भवस्थान भगवान् विष्णुको तीसरे वैष्णवपुराणने समझाया है और उनके आधार (शयनस्थान) 'शेष' का वायुपुराणमें निरूपण किया गया है। इसी वायुपुराणको कहीं 'शिवपुराण' नामसे भी लिखा है, तात्त्विक दृष्टिसे इन नामोंमें कोई भेद नहीं है—यह तत्त्व-निरूपणसे स्पष्ट हो सकता है। इस शेषके भी आधार 'सरस्वान्' (क्षीरसागर) को पाँचवाँ 'भागवत' समझाता है, अतएव उसे 'सारस्वतकल्प' कहते हैं—'**सरस्वत इदं सारस्वतम्।**' अब रह गये 'नारद भगवान्', उनका निरूपण छठा नारदपुराण कर देता है। यों पूर्वषट्क (पहले छः पुराणों) में यह सृष्टिका पुराणोक्त चित्र—एक-एक करके विशदरूपसे समझा दिया जाता है।

श्रद्धावान् उत्तमाधिकारियोंके लिये यह वर्णन संतोषप्रद हो जाता है। वे इन सबको भगवद्विभूति समझकर तर्क-वितर्कसे परे रहते हुए सर्वाधिष्ठाता भगवान्के भजनमें समय-यापन करते रहते हैं, किंतु जो मध्यमाधिकारी तर्कके बिना संतुष्ट नहीं होते, जिनके चित्तमें शङ्काओंका आन्दोलन चलता रहता है कि 'एक छोटे-से कमलके पुष्पपर बैठकर ब्रह्मा इतने विस्तृत ब्रह्माण्डको कैसे बनाता है, कमलके पुष्पमेंसे चार मुखका मनुष्याकारधारी ब्रह्मा कैसे निकल पड़ा?' आदि, उनके संतोषार्थ पद्मपुराणने विशेष प्रयत्न किया है। इस पुराणमें यह स्पष्ट अक्षरोंमें बताया गया है कि इस पृथ्वीको ही पद्म कहते हैं। देखिये पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ४०—

तच्च पद्मं पुरा भूतं पृथिवीरूपमुत्तमम्।
यत्पद्मं सा रसा देवी पृथिवी परिचक्ष्यते॥

'विष्णुभगवान्की नाभिसे जो कमल पहले उत्पन्न हुआ, वह पृथ्वीरूप था। उस पद्मको ही रसा अथवा पृथ्वी देवी कहा जाता है' आदि। इतना ही नहीं, इसके पत्र-केसरादिरूपसे भिन्न-भिन्न वर्षादिका भी वहाँ निरूपण किया गया है।

जब यह निश्चय हो गया कि यह पृथ्वी पद्म है, तब अब समझनेमें देर न लगेगी कि इस पृथ्वीपर अभिव्याप्त आग्नेय प्राण ही ब्रह्मा है, जो 'चतुर्मुख' (चारों ओर फैलता हुआ) अन्तरिक्षके चन्द्रमण्डलस्थ सौम्यप्राणसे मिलकर सब प्रकारकी सृष्टि करता रहता है—'**अग्नीषोमात्मकं जगत्।**' और यह भी शीघ्र ही समझमें आ जायगा कि जिनकी नाभिसे यह पृथ्वीरूप कमल निकला है, वे विष्णुभगवान् प्रत्यक्ष देव 'सूर्यनारायण' ही हैं। वैज्ञानिक भाषामें 'नाभि' केन्द्रको कहते हैं, 'सूर्यमण्डलके केन्द्रसे ही यह पृथ्वी प्रादुर्भूत होकर उस मण्डलसे पृथक् हो गयी है'—यह विज्ञान इस वर्णनसे प्रस्फुट हो जाता है। पुराणका रहस्य यहाँ पूरा नहीं हो जाता, इससे भी गम्भीरतम विज्ञान इस वर्णनमें निगूढ है कि जितने भी (सूर्य, चन्द्र, तारा, पृथ्वी आदि) मण्डल बनते हैं, वे पद्मरूप (गोलाकार) हैं और वे सब विष्णुकी नाभिसे ही निकलते हैं। '**यज्ञो वै विष्णुः**'—विष्णुभगवान् यज्ञरूप हैं और आदान-प्रदानरूप यज्ञके बिना किसी भी मण्डलकी उत्पत्ति हो नहीं सकती। द्वादश आदित्योंमें अन्तिम आदित्यका नाम विष्णु है—यह वेद, पुराण आदिमें सर्वत्र ही स्फुट है, अतः विष्णुनामसे सूर्यके ग्रहणमें कोई शङ्का नहीं होनी चाहिये। यहाँतक यह हमारी 'त्रिलोकी' हुई—पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यु (सूर्यमण्डल) अथवा दूसरे शब्दोंमें भूः, भुवः, स्वः। अब सूर्यमण्डलके आगेका जो अन्तरिक्ष—'महः' है, वह वायुप्रधान होनेके कारण विष्णुका शयनस्थान '**शेषशय्या**' है। हमारे अन्तरिक्षकी (सूर्यमण्डलसे नीचेकी) वायु उपद्रावक भी है, किंतु यह दूसरे अन्तरिक्ष 'महः' लोककी वायु विशुद्ध कल्याणप्रद है, इसलिये इसे 'शिव' कहते हैं। अतएव इसके निरूपक पुराणके 'वायुपुराण' या 'शिवपुराण' दोनों नाम प्रसिद्ध हैं और इन्हें वायुभक्षी सर्पोंके ईश्वर शेषके रूपमें पौराणिक नक्शेमें बताया गया है। वह भी जिसके आधारपर प्रतिष्ठित है, वह सोमप्रधान 'आपोमण्डल' क्षीरसमुद्र, परमेष्ठिमण्डल या 'जनः' है और उसके समीप प्रतिष्ठित स्वयम्भूमण्डल 'तपः' और नारद 'सत्यम्' हैं। जनलोक या परमेष्ठिमण्डल 'आपोमय' है, इसी कारण वह क्षीरसमुद्र कहलाया है, ये 'अप्' नरके पुत्र होनेके कारण 'नार' कहे गये हैं, 'नार' को देनेवाला 'नारद' है—'**नारं ददातीति नारदः**'। इसलिये अप्तत्त्वके उत्पादक स्वयम्भू भूमण्डलको नारद कहना युक्तियुक्त है। यह सब सृष्टिका वर्णन मनुस्मृति प्रथमाध्यायके आरम्भमें इसी रूपमें मिलता है—

ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्।
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥

× × ×

सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

× × ×

तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा॥
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम्॥

संक्षेपमें इस सबका तात्पर्य यही है कि सृष्टिके आरम्भमें सबसे पूर्व 'स्वयम्भू' प्रादुर्भूत हुआ, उसने प्रजासृष्टिकी इच्छासे सबसे पहले अपने शरीरसे अप् (आपोमय परमेष्ठिमण्डल) को उत्पन्न किया (इसे ही पौराणिक चित्रमें क्षीरसमुद्र कहा गया है।) और उसमें भावी सृष्टिका बीज रखा। वह बीज सुवर्णका अण्डा बना, उसके हजार किरणें थीं और सब किरणोंमें समान कान्ति थी। (इसे ब्रह्माण्डगोलक या त्रिलोकमण्डल समझना चाहिये।) उसके मध्यमें सर्वलोक-पितामह ब्रह्मा प्रादुर्भूत हुए। (स्मरण रहे कि पद्मज ब्रह्मा सब लोकोंके पिता हैं, किंतु ये ब्रह्मा उनके भी उत्पादक हैं, इसलिये इन्हें (सूर्यरूप ब्रह्माको) पितामह कहा गया है।) आगे इन ब्रह्माका ही नाम—'नारायण' बताया गया है और 'नारायण' शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की गयी है कि नर (स्वयम्भू) के पुत्र अप् 'नार' हैं, उस नार (आपोमयमण्डल) में रहनेके कारण ये पितामह ब्रह्मा नारायण हैं। (इस सब वर्णनपर सूक्ष्म दृष्टिपात कर लेनेके अनन्तर इस विषयमें कोई संदेह नहीं रह सकता कि पूर्वोक्त पौराणिक चित्रमें जिन्हें क्षीर-समुद्रशायी विष्णु कहा गया है, वे ही मनुस्मृतिमें 'पितामह' ब्रह्मा कहलाये

हैं।) 'नारायण' नाम दोनों जगह समान हैं। मनुभगवान्‌ने स्वयम्भूसे आरम्भ किया है, स्वयम्भूका 'ब्रह्मा' नाम लोकप्रसिद्ध है और आगे-आगेके मण्डलोंमें जितनी शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं, वे आदिके मण्डलकी शक्तिसे भिन्न नहीं हैं। अथवा यों कहिये कि आदित्यमण्डलका जो अभिमानी देव है, वही भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंसे आगे उत्पन्न होनेवाले मण्डलोंका भी अभिमानी है। वह उनमें भेददृष्टि सर्वथा नहीं करता। इसी अद्वैततत्त्वके निर्वाहके लिये भगवान् मनुने 'ब्रह्मा' नाम ही सर्वत्र रख दिया है, किंतु व्यवहार-सांकर्य मिटानेके लिये पुराणोंमें 'विष्णु' और 'ब्रह्मा' पृथक्-पृथक् नाम कर दिये गये हैं, अद्वैत सबको इष्ट है। इसलिये—

एकमूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।

—यह सिद्धान्त सर्वत्र ही उद्घोषित है। पितामह ब्रह्माने वर्षभर उस अण्डेमें निवास कर अपने ध्यानसे उस अण्डेके दो विभाग कर दिये। उन्हीं दोनों टुकड़ोंसे द्यु (स्वर्लोक) और पृथ्वी (भूलोक)को बनाया। (यही भूलोक पुराणोंमें पद्म-रूपसे निरूपित हुआ है और इसपर एक दूसरे ब्रह्मा प्रादुर्भूत होते हैं, जिनका वर्णन मनुस्मृतिमें आगे चलकर श्लोक ३२में 'विराट्' नामसे आता है।) तैत्तिरीय उपनिषद्‌में जो '**तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी**' आदि कहा गया है, वहाँ इतनी विशेषता है कि 'अप्' शब्दसे हमारी त्रिलोकीके अन्तरिक्षको लिया है, जिसे पूर्वोक्त मनुस्मृतिके श्लोकोंमें भी '**अपां स्थानम्**' नामसे बताया गया है। यह सूर्यमण्डलसे उत्पन्न है तथा पृथ्वी और सूर्यके मध्यमें स्थित है।

सृष्टिका मूल तत्त्व क्या है—इस विषयमें प्राचीन आचार्योंके तीन प्रकारके भिन्न मत हैं। कोई प्रकृतिको मूलतत्त्व कहते हैं, उनका वह 'प्राकृतवाद' सप्तम मार्कण्डेयपुराणमें प्रदर्शित हुआ है। कोई आग्नेय प्राणको मूलतत्त्व मानते हैं, वह मत अष्टम अग्निपुराणमें बताया गया है तथा कोई अन्य आचार्य सौर प्राणको मूलतत्त्व बताते हैं, उनका सिद्धान्त नवम 'भविष्य-पुराण' ने बताया है। यों तीन मत दिखाकर दशम पुराण ब्रह्मवैवर्तद्वारा भगवान् व्यासने अपना सिद्धान्त बता दिया कि यह सब ब्रह्मका विवर्त है। अर्थात् मूलतत्त्व 'ब्रह्म' है, उसका जो अतात्त्विक अन्यथाभाव समझा जाता है, वही सृष्टि है। यों विवर्तवादको उत्तरपक्ष रखते हुए इस मूलतत्त्व-विषयक मतभेदको दूर किया है। वह ब्रह्म मन और वाक्‌से परे हैं, जो सृष्टि हमें प्रतीत होती है, उसमें उस परब्रह्मका 'अवतार' होता है। उसी अवतारके द्वारा वह परब्रह्म उपास्य भी होता है, इसलिये एकादशसे आरम्भ कर षोडश-पर्यन्त छः पुराण अवतारप्रतिपादक हैं। इनमें लिङ्ग और स्कन्द—ये दो भगवान् शंकरके अवतार कहे जाते हैं और वराह, वामन, कूर्म और मत्स्य—ये चार अवतार भगवान् विष्णुके। सृष्टि-प्रक्रियामें जिन अवतारोंका उपयोग है, उन्हींके नामसे यहाँ पुराणोंके नाम रखे गये हैं और जिस क्रमसे इन अवतारोंका सृष्टि-प्रक्रियामें उपयोग है, वही क्रम उन पुराणोंका माना गया है। इस सृष्टिचक्रमें घूमनेवाले जीवकी किस-किस कर्मके अनुसार क्या-क्या गति होती है— यह 'आयति' प्रकरण सत्रहवें 'गरुडपुराण'में दिखाया गया है, जिससे कि सृष्टिका 'परिणाम' (जीवका कर्मफलभोगरूप प्रयोजन) प्रतीत होता है और इस सब गतिका 'आयतन' क्या है तथा सृज्यमान वस्तुकी सीमा कितनी है—यह निरूपण अठारहवें 'ब्रह्माण्डपुराण'में कर दिया गया है। इस प्रकार क्रमसे अठारह पुराणों या एक ही पुराणके अठारह प्रकरणोंद्वारा सृष्टिविधानकी पूर्णता हो जाती है और इसी विद्यामें सब विद्याओंका अन्तर्भाव है।

साधु कौन ? असाधु कौन ?

सत्कथासु प्रवर्तन्ते सज्जना ये जगद्धिताः।। निन्दायां कलहे वापि ह्यसन्तः पापतत्पराः।

(नारद० १।१।५६-

'जो संसारका हित करनेवाले साधु पुरुष हैं, वे ही उत्तम कथाओंके कहने-सुननेमें प्रवृत्त होते हैं। पापपरायण दुष्ट तो सदा दूसरोंकी निन्दा और दूसरोंके साथ कलह करनेमें ही लगे रहते हैं।'

हिंदू-संस्कृतिके पुराणोंपर एक दृष्टि

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

भारतीय संस्कृत-साहित्य-सागर अनन्त रत्नराशिसे पूर्ण है। उन रत्नोंमें पुराणका स्थान अत्यन्त महत्त्वका है। पुराण-साहित्य वेदकी भाँति भगवान्‌का निःश्वास रूप ही है। श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप है। इसीसे भक्त-भागवतगण इसकी भगवद्भावनासे श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक पूजा किया करते हैं। भगवान् व्यासदेव-सरीखे महापुरुषको जिसकी रचनासे ही परम शान्ति मिली, जिसमें ज्ञान-भक्तिका परम रहस्य बड़ी ही मधुरताके साथ अभिव्यक्त हुआ है, उस श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें क्या कहा जाय? इसके प्रत्येक अङ्गसे भगवद्भावपूर्ण पारमहंस्य ज्ञान-सुधासरिताकी बाढ़ आ रही है—**'यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलं ज्ञानं परं गीयते।'**—भगवान्‌के मधुर प्रेमका छलकता हुआ सागर है श्रीमद्भागवत। इसीसे भावुक भक्तगण इसमें सदा अवगाहन करते रहते हैं। परम मधुर भगवद्-रससे भरा हुआ—**'स्वादु स्वादु पदे पदे'**—ऐसा ग्रन्थ बस यही है। इसकी कहीं तुलना नहीं है। विद्याका तो यह भंडार ही है। **'विद्या भागवतावधिः'** प्रसिद्ध है। इस परमहंस-संहिताका पर्याप्त आनन्द तो उन्हीं सौभाग्यशाली भक्तोंको किसी अंशमें मिल सकता है, जो हृदयकी सच्ची श्रद्धाके साथ केवल भगवत्प्रेमकी प्राप्तिके लिये ही भक्तिपूर्वक इसका पारायण करते हैं और अपनी विद्या-बुद्धिसे नहीं, वरं केवल भगवत्कृपाके बलसे ही इसका मर्म हृदयङ्गम करना चाहते हैं।

स्कन्दपुराण समस्त पुराणोंमें सबसे बड़ा है। यह सात खण्डोंमें विभक्त है। इसमें ८११०० श्लोक हैं। सात खण्डोंके नाम हैं—माहेश्वरखण्ड, वैष्णवखण्ड, ब्रह्मखण्ड, काशीखण्ड, अवन्ती, नागर और प्रभास-खण्ड। इनमें भी अनेक अवान्तर खण्ड हैं। इसके अतिरिक्त एक संहितात्मक स्कन्दपुराण पृथक् है। उसके सम्बन्धमें शंकरसंहिताके 'हालास्य-माहात्म्य'में लिखा है कि 'श्रुतिसार स्कन्दपुराण' ६ संहिताओं और ५० खण्डोंमें विभक्त है। इसकी संहिताओंके नाम हैं—१-सनत्कुमार-संहिता, २-सूतसंहिता, ३-शंकरसंहिता, ४-वैष्णवसंहिता ५-ब्रह्मसंहिता और ६-सौरसंहिता। इन संहिताओंकी श्लोक-संख्या क्रमशः ३६,०००; ६,०००; ३०,०००; ५ ३,००० और १,००० है। इस प्रकार कुल मिलाव स्कन्दपुराणकी श्लोक-संख्या भी ८१,००० होती है संहिताओंमेंसे पहली तीन उपलब्ध हैं। कहते हैं कि ने छहों संहिताएँ हैं। सूतसंहितापर तो आचार्योंके भाष्य भी ह संहितात्मक स्कन्दपुराणको कोई उपपुराण कहते हैं, कोई और कोई इसे महापुराणका ही अङ्ग मानते हैं। जो कुछ इसकी संहिताएँ हैं बड़े महत्त्वकी।

इस महापुराणमें माहात्म्यकथाओंके प्रसंगमें जो वि इतिहास तथा जीवनचरित्र आये हैं, वे बड़े महत्त्वके हैं। लौकिक, पारलौकिक, पारमार्थिक, कल्याणकारी उपदेश भरे हैं। विभिन्न प्रसंगोंमें धर्म, सदाचार, योग, भक्ति आदिका बड़ा ही सुन्दर निरूपण किया गया है। ती वर्णनमें जो भूवृत्तान्त आया है, वह तो अत्यन्त आश्चर्यव और भूगोलके विद्वानोंके लिये अत्यन्त आदरणीय विचारणीय विषय है।

यह स्कन्दपुराण पता नहीं, कितने अतीत युगोंकी अ अमूल्य गाथाओंको अपने वक्षःस्थलपर धारण किये, वि निर्मल नद-नदी-सरित्-सागर-शैलादिका विशद वर्णन प्र किये, कितने पुण्यतीर्थ, पुण्याश्रम, पुण्यायतन और वि शत-शत कृतार्थ-जीवन ऋषि-महर्षि, साधु-महात्मा, र भक्तोंकी पुण्यमयी चारु चरित्रमालाओंसे समलंकृत होकर अ भी भारतीयोंका भक्ति-भाजन हो रहा है। आज भी भार जीवनमें, घर-घरमें इसमें वर्णित आचारों, पद्धतियों, व्रतों सिद्धान्तोंका कितना प्रचार है—यह देखकर आश्चर्यचकि हृदयसे इसके प्रति जीवन श्रद्धासे झुक जाता है।

मार्कण्डेय और ब्रह्मपुराणमें ऐसे अनेकों म साधन,उपदेश और आदर्श चरित्र भरे हैं, जिनसे मनुष्य स ही अपने अभ्युदय तथा निःश्रेयसका पथ प्राप्त कर सकता सत्यके पालनमें महाराज हरिश्चन्द्रका इतिहास महान् आद स्वरूप है। विपद्ग्रस्तोंको सुख पहुँचानेके लिये महा विपश्चित्का त्याग अपूर्व प्रभावोत्पादक है। ब्राह्मणकुमार

प्राण-रक्षा करनेमें महादेवी पार्वतीजीके तपःसमर्पणका इतिहास बड़ा ही पवित्र शिक्षाप्रद है। धर्मके पक्षमें दृढ़ता और मैत्रीधर्मके पालनमें वैश्ययुवक मणिकुण्डलका चरित्र अपनी जोड़ी नहीं रखता। महाशक्तिकी उपासनासे और समस्त पृथक्-पृथक् शक्तियोंकी पुञ्जीभूत एक महान् शक्तिकी सहायतासे विश्वदुःखदायी असुरोंका सम्पूर्ण समाज कैसे सहज ही नष्ट हो सकता है—इसका बड़ा मनोहर और ज्ञानगर्भ उपदेश देवीमाहात्म्य—(दुर्गासप्तशती) में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त पतिव्रता-माहात्म्य, तीर्थमाहात्म्य, भगवद्-भक्ति, ज्ञान, योग, सदाचार और लीलामय भगवान्‌के पवित्र चरित्रोंका बड़ा ही रोचक, मनोहर, गम्भीर और मार्मिक वर्णन इन पवित्र पुराणोंमें आया है। पाठकोंको विशेष मन लगाकर इनसे लाभ उठाना चाहिये।

इन पुराणोंमें नारदमहापुराण और विष्णुपुराण बड़े महत्त्वके सात्त्विक पुराण माने जाते हैं। नारदपुराणमें इतने महत्त्वके विषय हैं कि उन्हें पढ़-सुनकर चमत्कृत होना पड़ता है। पूर्ण विष्णुपुराण भी तेईस हजार श्लोकोंका बताया गया है। वर्तमान उपलब्ध विष्णुपुराण मूल महापुराणका पूर्वभाग है, जो वर्णनके अनुसार ही प्राप्त है। 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण'को विष्णुपुराणका उत्तरभाग बताया गया है और हमारे विश्वासके अनुसार है भी यही बात।

नारदपुराणमें पुराणोचित महत्त्वके प्रसंग तो हैं ही, उसमें वेदके छः अङ्ग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्यौतिष (सिद्धान्त, होरा और संहिता) और छन्दका भी बड़ा विशद महत्त्वपूर्ण और मौलिक वर्णन है। इससे पता लगता है कि इसमें कितने महत्त्वके विषय हैं। इस एक नारदपुराणके अध्ययनसे ही सैकड़ों ज्ञातव्य विषयोंका सहज ही ज्ञान हो सकता है। इनमें आध्यात्मिक प्रसंग भी बहुत महत्त्वके हैं, जिनके श्रद्धापूर्वक अध्ययन, मनन और आचरणसे मनुष्यको मानव-जीवनकी चरम सफलता सहज ही प्राप्त हो सकती है।

इसके अतिरिक्त नारदपुराणके तीसरे पादमें सकाम उपासनाका भी बड़ा विशद वर्णन है, जो सकाम उपासकोंके लिये बड़े महत्त्वका है। यद्यपि मानवजीवनका प्रधान उद्देश्य 'भगवत्प्राप्ति' ही है, इसलिये उपासनामें सकाम-भाव रखना कल्याणकारी पुरुषोंके लिये कदापि वाञ्छनीय नहीं है। यह एक प्रकारकी अज्ञता ही है। अपनी-अपनी रुचि, अधिकार तथा परिस्थितिके अनुसार उपासना अवश्य करनी चाहिये, परंतु करनी चाहिये निष्कामभावसे भगवत्प्रीत्यर्थ ही। तथापि सकाम-उपासना पाप नहीं है, प्रत्युत आधिभौतिक साधनोंकी अपेक्षा लौकिक सिद्धि प्राप्त करनेका सुगम तथा श्रेष्ठ साधन है, क्योंकि इससे प्रतिबन्धका नाश होकर नवीन प्रारब्धका निर्माण सम्भव है। अवश्य ही यह साधन होना चाहिये सात्त्विक देवताओंका तथा सात्त्विक विधि-विधानके अनुसार ही। तामस देवासुरोंकी स्थापना तो अधोगतिमें ले जानेवाली होती है। सकाम-उपासना करनी हो तो श्रीभगवान्‌के किसी एक नाम-रूपकी करनी चाहिये। भगवान्‌की सकाम आराधनासे सकाम उद्देश्यकी सिद्धि होने या भगवान्‌की मङ्गलमयी इच्छासे सिद्धि न होनेपर भी अन्तःकरणकी शुद्धि, भक्तिकी प्राप्ति और अन्तमें भगवत्प्राप्ति हो सकती है। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—**'मद्भक्ता यान्ति मामपि।'** (गीता ७। २३)

ब्रह्मवैवर्तपुराण ग्रन्थ वैष्णवप्रिय होनेके साथ ही कई दृष्टियोंसे सबके लिये ही उपयोगी तथा मङ्गलप्रद है। इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी और उनकी अभिन्नस्वरूपा प्रकृति—ईश्वरी श्रीराधाकी सर्वप्रधानताके साथ ही समस्त शक्तिमानोंकी तथा शक्तियोंकी एकताका, महिमाका, स्वरूपादिका तथा उनकी साधना-उपासनाका बड़ा ही विशद तथा सुन्दर प्रति-पादन है। साथ ही इसके सभी खण्डोंमें इस प्रकारके बहुत-से सिद्ध मन्त्रों, कवचों और स्तोत्रोंका वर्णन उनके इतिहासके साथ है, जिससे पता लगता है कि संकट-निवृत्ति, मनोरथ-प्राप्ति, विपत्ति-विनाश, लक्ष्मी-प्राप्ति, भक्ति-प्राप्ति तथा भगवत्प्राप्तिके लिये इन मन्त्रादिके श्रद्धा-विधिपूर्वक प्रयोगसे महान् लाभ हो सकता है। जैसे—ब्रह्मखण्ड, अध्याय ३८-'ब्रह्माण्डपावन कृष्ण-कवच।' इससे रोग-भयका नाश तथा सवार्थसिद्धि होती है। प्रकृतिखण्ड, अध्याय ४-**'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा'**-इस मन्त्र तथा 'सरस्वती-कवच'के प्रयोगसे मनुष्य शिक्षाके क्षेत्रमें परम सफल विद्वान्, कवि-सम्राट् तथा विश्वविजयी होता है।

प्रकृतिखण्ड अध्याय ३९-**'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा'**— इस मन्त्र तथा 'महालक्ष्मीस्तोत्र' के प्रयोगसे स्थिर लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है।

प्रकृतिखण्ड, अध्याय ५६-श्रीराधिकाके 'जगन्मङ्गल-कवच'से सर्वसंकटोंका नाश तथा राधाकृष्णके द्वारा श्रीराधामाधव-प्रेमकी प्राप्ति होती है।

गणपतिखण्ड, अध्याय ३१-'**ॐ श्रीं नमः श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय स्वाहा**'—इस मन्त्र एवं 'त्रैलोक्यविजयकवच' के प्रयोगसे घोर संग्राममें पूर्ण विजय तथा मोहपर विजय प्राप्त होती है और श्रीकृष्णप्रेमकी प्राप्ति होती है।

गणपतिखण्ड, अध्याय ३६-'**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा**'—इस मन्त्र तथा 'कालीकवच'के प्रयोगसे शत्रुनाश, विजय और राज्यकी प्राप्ति होती है।

गणपतिखण्ड, अध्याय ३८-'महालक्ष्मीकवच'के प्रयोगसे सम्पूर्ण सम्पत्ति मिलती है।

गणपतिखण्ड, अध्याय ३९-'ब्रह्माण्डविजयकवच'के प्रयोगसे महान् शत्रुपर विजय प्राप्ति होती है। भगवान् श्रीशंकरने इस कवचके प्रयोगसे त्रिपुरासुरपर विजय पायी थी।

श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड, अध्याय १२-'कृष्णकवच'के प्रयोगसे बच्चोंकी अग्नि, विष, कुदृष्टि (नजर) सर्प तथा अपदेवताओंके भयसे रक्षा होती है।

श्रीकृष्णजन्मखण्ड अध्याय १९-'श्रीकृष्णस्तोत्र'के प्रयोगसे शत्रु-सेनाका क्षय होता है तथा प्रयोगकर्ताकी युद्धमें सर्वत्र विजय होती है और सहज ही रक्षा होती है।

यह ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रद्धा-सम्पन्न पुरुषोंके लिये दैवी साधनोंके द्वारा देशको वर्तमान महान् संकटसे मुक्त कराने, तन-धन-जनकी रक्षा कराने, खोयी हुई शक्ति-सम्पत्तिको पुनः प्राप्त कराने, संग्राममें आसुरी शक्तिका शीघ्र क्षय कराने एवं रणमें पूर्ण विजय प्राप्त करानेके महान् कार्यमें बड़ा ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

जो साधक भक्त भगवती श्रीराधा, दुर्गा, महालक्ष्मी, सरस्वती, काली आदि महान् शक्तियों तथा भगवान् श्रीकृष्ण, शंकर, गणेश आदि महान् भगवत्स्वरूपोंकी कृपा प्राप्त करने, श्रीराधामाधवकी परमभक्ति तथा प्रेमकी प्राप्ति करनेकी पारमार्थिक दृष्टिसे, विषयासक्ति तथा विषय-कामनासे रहित होकर इसमें उल्लिखित साधनोंके अनुसार प्रयत्न करेंगे, उन्हें उनकी श्रद्धामयी साधनाके अनुसार परम पारमार्थिक लाभ होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है।

शिवपुराण एक प्रधान पुराण है। इसमें परात्पर परब्रह्म प्रभुके कल्याणमय शिवस्वरूपके महत्त्व, रहस्य, लीलाविहार, अवतार तथा उनकी पूजा-पद्धतिका बड़ा ही विशद वर्णन है और भगवान् शिवकी परात्परता, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, त्रिदेवोंकी एकता, शक्तिकी प्रधानता एवं शक्ति-शक्तिमान्‌की अभिन्नता, सत्संग, सदाचार, भक्तियोग, ज्ञान आदिका बड़ा ही सुन्दर निरूपण हुआ है।

श्रीदेवीभागवत-पुराणके विविध विचित्र कथा-प्रसंगोंमें देवी-माहात्म्य, देवी-आराधनाकी विधि तथा देवी-आराधनासे प्राप्त आश्चर्यमय शुभ परिणामोंके मधुरातिमधुर विषय भरे पड़े हैं। पुत्र कुपुत्र हो जाता है, पर माता कभी कुमाता नहीं होती। वह तो सदा अपनी वात्सल्य-स्नेह-सुधा-रस-धारासे संतानके जीवनको अभिषिक्त करती ही रहती है। यहाँ भी यही बात है। यह भारतीय आर्यधर्मकी विशेषता है कि इसमें सच्चिदानन्दपरात्पर ब्रह्मकी मातृरूपमें आराधना की गयी है और यह आराधना कल्पित आराधना—पद्धतिमात्र नहीं है। वस्तुतः ही अनन्त विचित्र मातृरूपोंमें सच्चिदानन्दमय परात्पर तत्त्व प्रकट है। भक्तोंने उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति की है, अब भी करते हैं। समस्त क्लेशोंका नाश, समस्त विघ्नोंकी निवृत्ति, सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति, सिद्धि-सफलताकी प्राप्ति, परम वैराग्य और तत्त्व-ज्ञानका उदय, भक्ति-प्रेमकी सुधा-धारामें अवगाहन—सभी अत्यन्त दुर्लभ-से-दुर्लभ पदार्थोंकी उपलब्धि माताकी आराधना-उपासनासे सहज ही हो जाती है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। अतः पुराणोंका परिशीलन सभी प्रकार कल्याणदायक है।

सत्सङ्गदेवार्चनसत्कथासु हितोपदेशे निरतो मनुष्यः।
प्रयाति विष्णोः परमं पदं यद्देहावसानेऽच्युततुल्यतेजाः॥ (नारद॰ १।१।६३)

'जो मानव सत्सङ्ग, देवपूजा, पुराणकथा और हितकारी उपदेशमें तत्पर रहता है, वह इस देहका नाश होनेपर भगवान् विष्णुके समान तेजस्वी स्वरूप धारण करके उन्हींके परम धाममें चला जाता है।'

मुक्तिका उपाय

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

पुराण भारतीय संस्कृतिकी अमूल्य निधि है। पुराणोंमें मानव-जीवनको ऊँचा उठानेवाली अनेक सरल, सरस, सुन्दर और विचित्र-विचित्र कथाएँ भरी पड़ी हैं। उन कथाओंका तात्पर्य राग-द्वेषरहित होकर अपने कर्तव्यका पालन करने और भगवान्को प्राप्त करनेमें ही है। पद्मपुराणके भूमिखण्डमें ऐसी ही एक कथा आती है।

अमरकण्टक तीर्थमें सोमशर्मा नामके एक ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नीका नाम था सुमना। वह बड़ी साध्वी और पतिव्रता थी। उनके कोई पुत्र नहीं था और धनका भी उनके पास अभाव था। पुत्र और धनका अभाव होनेके कारण सोमशर्मा बहुत दुःखी रहने लगे। एक दिन अपने पतिको अत्यन्त चिन्तित देखकर सुमनाने कहा कि 'प्राणनाथ ! आप चिन्ताको छोड़ दीजिये; क्योंकि चिन्ताके समान दूसरा कोई दुःख नहीं है। स्त्री, पुत्र और धनकी चिन्ता तो कभी करनी ही नहीं चाहिये। इस संसारमें ऋणानुबन्धसे अर्थात् किसीका ऋण चुकानेके लिये और किसीसे ऋण वसूल करनेके लिये ही जीवका जन्म होता है। माता, पिता, स्त्री, पुत्र, भाई, मित्र, सेवक आदि सब लोग अपने-अपने ऋणानुबन्धसे ही इस पृथ्वीपर जन्म लेकर हमें प्राप्त होते हैं। केवल मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी ऋणानुबन्धसे ही प्राप्त होते हैं।'

'संसारमें शत्रु, मित्र और उदासीन—ऐसे तीन प्रकारके पुत्र होते हैं। शत्रु-स्वभाववाले पुत्रके दो भेद हैं। पहला, किसीने पूर्वजन्ममें दूसरेसे ऋण लिया, पर उसको चुकाया नहीं तो दूसरे जन्ममें ऋण देनेवाला उस ऋणीका पुत्र बनता है। दूसरा, किसीने पूर्वजन्ममें दूसरेके पास अपनी धरोहर रखी, पर जब धरोहर देनेका समय आया, तब उसने धरोहर लौटायी नहीं, हड़प ली, तो दूसरे जन्ममें धरोहरका स्वामी उस धरोहर हड़पनेवालेका पुत्र बनता है। ये दोनों ही प्रकारके पुत्र बचपनसे माता-पिताके साथ वैर रखते हैं और उनके साथ शत्रुकी तरह बर्ताव करते हैं। बड़े होनेपर वे माता-पिताकी सम्पत्तिको व्यर्थ ही नष्ट कर देते हैं। जब उनका विवाह हो जाता है, तब वे माता-पितासे कहते हैं कि यह घर, खेत आदि सब मेरा है, तुमलोग मुझे मना करनेवाले कौन हो? इस तरह वे कई प्रकारसे माता-पिताको कष्ट देते हैं। माता-पिताकी मृत्युके बाद वे उनके लिये श्राद्ध-तर्पण आदि भी नहीं करते। मित्र-स्वभाववाला पुत्र बचपनसे ही माता-पिताका हितैषी होता है। वह माता-पिताको सदा संतुष्ट रखता है और स्नेहसे, मीठी वाणीसे उनको सदा प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करता है। माता-पिताकी मृत्युके बाद वह उनके लिये श्राद्ध-तर्पण, तीर्थयात्रा, दान आदि भी करता है। उदासीन-स्वभाववाला पुत्र सदा उदासीनभावसे रहता है। वह न कुछ देता है और न कुछ लेता है। वह न रुष्ट होता है, न संतुष्ट; न सुख देता है, न दुःख *। इस प्रकार जैसे पुत्र तीन प्रकारके होते हैं, ऐसे ही माता, पिता, पत्नी, पुत्र, भाई आदि और नौकर, पड़ोसी, मित्र तथा गाय, भैंस, घोड़े आदि भी तीन प्रकारके (शत्रु, मित्र और उदासीन) होते हैं। इन सबके साथ हमारा सम्बन्ध ऋणानुबन्धसे ही होता है।'

'प्रियतम ! जिस मनुष्यको जितना धन मिलना है, उसको बिना परिश्रम किये ही उतना धन मिल जाता है और जब धन जानेका समय आता है, तब कितनी ही रक्षा करनेपर भी वह चला जाता है—ऐसा समझकर आपको धनकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। वास्तवमें धर्मके पालनसे ही पुत्र और धनकी प्राप्ति होती है। धर्मका आचरण करनेवाले मनुष्य ही संसारमें सुख पाते हैं। इसलिये आप धर्मका अनुष्ठान करें। जो मनुष्य मन, वाणी और शरीरसे धर्मका आचरण करता है, उसके लिये संसारमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती।'

ऐसा कहनेके बाद सुमनाने विस्तारसे धर्मका स्वरूप तथा उसके अङ्गोंका वर्णन किया। उसको सुनकर सोमशर्माने

* कोई व्यक्ति किसी सन्तकी खूब लगनसे सेवा करता है। अन्तसमयमें किसी कारणसे सन्तको उस सेवककी याद आ जाय तो वह उस सेवकके घरमें पुत्ररूपसे जन्म लेता है और उदासीनभावसे रहता है।

प्रश्न किया कि 'तुम्हें इन सब गहरी बातोंका ज्ञान कैसे हुआ ?' सुमनाने कहा—'आप जानते ही हैं कि मेरे पिताजी धर्मात्मा और शास्त्रोंके तत्त्वको जाननेवाले थे, जिससे साधुलोग भी उनका आदर किया करते थे। वे खुद भी अच्छे-अच्छे सन्तोंके पास जाया करते तथा सत्संग किया करते थे। मैं उनकी एक ही बेटी होनेके कारण वे मेरेपर बड़ा स्नेह रखा करते तथा अपने साथ मुझे भी सत्संगमें ले जाया करते थे। इस प्रकार सत्संगके प्रभावसे मुझे भी धर्मके तत्त्वका ज्ञान हो गया।'

यह सब सुनकर सोमशर्माने पुत्रकी प्राप्तिका उपाय पूछा। सुमनाने कहा कि 'आप महामुनि वसिष्ठजीके पास जायँ और उनसे प्रार्थना करें। उनकी कृपासे आपको गुणवान् पुत्रकी प्राप्ति हो सकती है।' पत्नीके ऐसा कहनेपर सोमशर्मा वसिष्ठजीके पास गये। उन्होंने वसिष्ठजीसे पूछा कि 'किस पापके कारण मुझे पुत्र और धनके अभावका कष्ट भोगना पड़ रहा है ?' वसिष्ठजीने कहा —'पूर्वजन्ममें तुम बड़े लोभी थे तथा दूसरोंके साथ सदा द्वेष रखते थे। तुमने कभी तीर्थयात्रा, देवपूजन, दान आदि शुभकर्म नहीं किये। श्राद्धका दिन आनेपर तुम घरसे बाहर चले जाते थे। धन ही तुम्हारा सब कुछ था। तुमने धर्मको छोड़कर धनका ही आश्रय ले रखा था। तुम रात-दिन धनकी ही चिन्तामें लगे रहते थे। तुम्हें अरबों-खरबों स्वर्णमुद्राएँ प्राप्त हो गयीं, फिर भी तुम्हारी तृष्णा कम नहीं हुई, प्रत्युत बढ़ती ही रही। तुमने जीवनमें जितना धन कमाया, वह सब जमीनमें गाड़ दिया। स्त्री और पुत्र पूछते ही रह गये; किंतु तुमने उनको न तो धन दिया और न धनका पता ही बताया। धनके लोभमें आकर तुमने पुत्रका स्नेह भी छोड़ दिया। इन्हीं कर्मोंके कारण तुम इस जन्ममें दरिद्र और पुत्रहीन हुए हो। हाँ, एक बार तुमने घरपर अतिथि-रूपसे आये एक विष्णुभक्त और धर्मात्मा ब्राह्मणकी प्रसन्नता-पूर्वक सेवा की। उनके साथ तुमने अपनी स्त्रीसहित एकादशी-व्रत रखा और भगवान् विष्णुका पूजन भी किया। इस कारण तुम्हें उत्तम ब्राह्मण-वंशमें जन्म मिला है। विप्रवर ! उत्तम स्त्री, पुत्र, कुल, राज्य, सुख, मोक्ष आदि दुर्लभ वस्तुओंकी प्राप्ति भगवान् विष्णुकी कृपासे ही होती है। अतः तुम भगवान् विष्णुकी ही शरणमें जाओ और उन्हींका भजन करो।'

वसिष्ठजीके द्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर सोमशर्मा अपनी स्त्री सुमनाके साथ बड़ी तत्परतासे भगवान्के भजनमें लग गये। उठते, बैठते, चलते, सोते आदि सब समयमें उनकी दृष्टि भगवान्की तरफ ही रहने लगी। बड़े-बड़े विघ्न आनेपर भी वे अपने साधनसे विचलित नहीं हुए। इस प्रकार उनकी लगनको देखकर भगवान् उनके सामने प्रकट हो गये। भगवान्के वरदानसे उनको मनुष्यलोकके उत्तम भोगोंकी और भगवद्भक्त तथा धर्मात्मा पुत्रकी प्राप्ति हो गयी।

सोमशर्माके पुत्रका नाम सुव्रत था। सुव्रत बचपनसे ही भगवान्का अनन्य भक्त था। खेल खेलते समय भी उसका मन भगवान् विष्णुके ध्यानमें लगा रहता था। जब माता सुमना उससे कहती कि 'बेटा ! तुझे भूख लगी होगी, कुछ खा ले', तब वह कहता कि 'माँ ! भगवान्का ध्यान महान् अमृतके समान है, मैं तो उसीसे तृप्त रहता हूँ !' जब उसके सामने मिठायी आती, तो वह उसको भगवान्के ही अर्पण कर देता और कहता कि 'इस अन्नसे भगवान् तृप्त हों।' जब वह सोने लगता, तब भगवान्का चिन्तन करते हुए कहता कि 'मैं योग-निद्रापरायण भगवान् कृष्णकी शरण लेता हूँ।' इस प्रकार भोजन करते, वस्त्र पहनते, बैठते और सोते समय भी वह भगवान्के चिन्तनमें लगा रहता और सब वस्तुओंको भगवान्के अर्पण करता रहता। युवावस्था आनेपर भी वह भोगोंमें आसक्त नहीं हुआ, प्रत्युत भोगोंका त्याग करके सर्वथा भगवान्के भजनमें ही लग गया। उसकी ऐसी भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु उसके सामने प्रकट हो गये। भगवान्ने उससे वर माँगनेके लिये कहा तो वह बोला—'श्रीकृष्ण ! अगर आप मेरेपर प्रसन्न हैं तो मेरे माता-पिताको सशरीर अपने परमधाममें पहुँचा दें और मेरे साथ मेरी पत्नीको भी अपने लोकमें ले चलें।' भगवान्ने सुव्रतकी भक्तिसे संतुष्ट होकर उसको उत्तम वरदान दे दिया। इस प्रकार पुत्रकी भक्तिके प्रभावसे सोमशर्मा और सुमना भी भगवद्धामको प्राप्त हो गये।

इस कथामें विशेष बात यह आयी है कि संसारमें किसीका ऋण चुकानेके लिये और किसीसे ऋण वसूल करनेके लिये ही जन्म होता है; क्योंकि जीवने अनेक लोगोंसे लिया है और अनेक लोगोंको दिया है। लेन-देनका यह

व्यवहार अनेक जन्मोंसे चला आ रहा है और इसको बंद किये बिना जन्म-मरणसे छुटकारा नहीं मिल सकता।

संसारमें जिनसे हमारा सम्बन्ध होता है, वे माता, पिता, स्त्री, पुत्र तथा पशु-पक्षी आदि सब लेन-देनके लिये ही आये हैं। अतः मनुष्यको चाहिये कि वह उनमें मोह-ममता न करके अपने कर्तव्यका पालन करे अर्थात् उनकी सेवा करे, उन्हें यथाशक्ति सुख पहुँचाये। यहाँ यह शंका हो सकती है कि अगर हम दूसरेके साथ शत्रुताका बर्ताव करते हैं तो इसका दोष हमें क्यों लगता है; क्योंकि हम तो ऐसा व्यवहार पूर्वजन्मके ऋणानुबन्धसे ही करते हैं? इसका समाधान यह है कि मनुष्यशरीर विवेकप्रधान है। अतः अपने विवेकको महत्त्व देकर हमारे साथ बुरा व्यवहार करनेवालेको हम माफ कर सकते हैं और बदलेमें उससे अच्छा व्यवहार कर सकते हैं। मनुष्यशरीर बदला लेनेके लिये नहीं है, प्रत्युत जन्म-मरणसे सदाके लिये मुक्त होनेके लिये है। अगर हम पूर्वजन्मके ऋणानुबन्धसे लेन-देनका व्यवहार करते रहेंगे तो हम कभी जन्म-मरणसे मुक्त हो ही नहीं सकेंगे। लेन-देनके इस व्यवहारको बंद करनेका उपाय है—निःस्वार्थभावसे दूसरोंके हितके लिये कर्म करना। दूसरोंके हितके लिये कर्म करनेसे पुराना ऋण समाप्त हो जाता है और बदलेमें कुछ न चाहनेसे नया ऋण उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार ऋणसे मुक्त होनेपर मनुष्य जन्म-मरणसे छूट जाता है।

अगर मनुष्य भक्त सुव्रतकी तरह सब प्रकारसे भगवान्‌के ही भजनमें लग जाय तो उसके सभी ऋण समाप्त हो जाते हैं अर्थात् वह किसीका भी ऋणी नहीं रहता।* भगवद्‌भजन प्रभावसे वह सभी ऋणोंसे मुक्त होकर सदाके लिये जन्म-मरणके चक्रसे छूट जाता है और भगवान्‌के परमधामको प्राप्त हो जाता है।

पुराण-महिमा

[पूज्यपाद श्रीदेवराहा बाबाजी महाराजके अमृत-वचन]

भारतीय संस्कृतिके मूलाधारके रूपमें वेदोंके अनन्तर पुराणोंका ही सम्मानपूर्ण स्थान है। वेदोंमें वर्णित अगम रहस्योंतक जन-सामान्यकी पहुँच नहीं हो पाती, परंतु भक्तिरस-परिप्लुत पुराणोंकी मङ्गलमयी शोक-निवारिणी, ज्ञान-प्रदायिनी दिव्य कथाओंका श्रवण-मनन, पठन-पाठन कर जन-साधारण भी भक्ति-तत्त्वका अनुपम रहस्य सहज ही जान लेते हैं। वायुपुराणमें कहा है—

यस्मात् पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम्।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(१।२०३)

'प्राचीन कालसे प्राणित होनेके कारण यह पुराण कहा जाता है। जो इसकी व्याख्या जानता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

महाभारतमें कहा है—

'पुराणसंहिताः पुण्याः कथा धर्मार्थसंश्रिताः।'

(आदिपर्व १।१६)

अर्थात् पुराणोंकी पवित्र कथाएँ धर्म और अर्थको देनेवाली हैं। अध्यात्मकी दिशामें अग्रसर होनेवाले कल्याणेच्छु साधकोंको पौराणिक कथाओंके अनुशीलनसे तात्त्विक बोधकी उपलब्धि होती है। साथ ही हृदयमें प्रभु-पाद-पद्मोंकी सच्ची प्रीति अथवा अनुरक्तिकी मन्दाकिनी प्रवाहित हो उठती है। परमात्म-दर्शनके लिये अथवा शारीरिक एवं मानसिक रोग-निवृत्तिके लिये श्रद्धापूर्वक अत्यन्त कल्याणकारी पुराणोंका पारायण करना चाहिये।

पञ्चम वेदके रूपमें दिव्य पौराणिक ज्ञान सर्वप्रथम ब्रह्माजीके द्वारा अभिव्यक्त हुआ—

इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः।
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः॥

(श्रीमद्भा० ३।१२।३९)

'इतिहास और पुराण-रूप पाँचवें वेदको उन समर्थ, सर्वज्ञ ब्रह्माजीने अपने सभी मुखोंसे प्रकट किया।'

---

* देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किङ्करो नायमृणी च राजन्। सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥ (श्रीमद्भा० ११।५।४१)

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

(मत्स्यपुराण ५३।३)

'ब्रह्माजीने समस्त शास्त्रोंमें सर्वप्रथम पुराणोंका स्मरण-उपदेश किया। पीछे उनके मुखसे वेद प्रकट हुए।'

लोकभाषामें वर्णित होनेके कारण वेदोंकी अपेक्षा पुराण अधिक लोकप्रिय हैं। उनमें प्रतिपादित मधुरातिमधुर आख्यानों एवं कथाओंकी सश्रद्ध चर्चा राजमहलसे लेकर झोपड़ीतक होती है।

राजनीति, धर्मनीति, इतिहास, समाज-विज्ञान, ग्रह-नक्षत्र-विज्ञान, आयुर्वेद, अलङ्कार, व्याकरण, भूगोल, ज्योतिष आदि समस्त विद्याओंका प्रतिपादन पुराणोंमें हुआ है। भारतीय संस्कृतिका विशिष्ट ज्ञान हमें पुराणोंद्वारा प्राप्त होता है। इसके द्वारा भारतीय प्रतिभाका उत्कृष्ट फल प्रतिफलित होता है।

ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्य च।
ससंहारप्रदानां च पुराणे पञ्चवर्णके॥
धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैवात्र कीर्त्यते।
सर्वेष्वपि पुराणेषु तद्विरुद्धं च यत्फलम्॥

(मत्स्यपु० ५३।६५-६६)

'पाँच लक्षणोंवाले सभी पुराणोंमें सृष्टि और संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्रके तथा भुवनके माहात्म्यका वर्णन किया गया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका भी इनमें विस्तृत विवेचन किया गया है। इनके विरुद्ध आचरण करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसका भी निरूपण किया गया है।'

अतः पुरुषार्थ-चतुष्टय-प्रदाता दिव्य ज्ञान-कोष पुराणोंका सेवन हमारा परम अभीष्ट होना चाहिये।

आयुष्मतां कथां कीर्तयन्तो माङ्गल्यानीतिहासपुराणानि।

(आश्वलायन, गृह्यसूत्र ४।६)

चिरंजीवी मनुष्योंकी कथाएँ और माङ्गलिक इतिहास-पुराणोंका पाठ करते हुए समय-यापन करें।

प्रेषक—श्रीमदनजी शर्मा शास्त्री

पुराणोंका महत्त्व

(पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

तुलसीकाननं यत्र यत्र पद्मवनानि च।
पुराणपठनं यत्र तत्र संनिहितो हरिः[1]॥

पुराण शब्दका अर्थ है—जो वृत्तान्त पहले हो गया हो, उसका जिसमें वर्णन हो वही पुराण है। पुराणोंके अनेक भेद हैं—पुराण, महापुराण, उपपुराण आदि।

पहले हम समझते थे कि पुराणोंमें कथाएँ ही होंगी, परंतु जब हमने पुराणोंका श्रवण-अध्ययन किया तब तो हम चकित रह गये। संसारका ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं,जो पुराणोंमें न हो। हम व्याकरणका ग्रन्थ केवल अष्टाध्यायीको ही समझते थे, किंतु नारदपुराणमें व्याकरणका श्लोक-बद्ध ऐसा विवरण है कि उसे कण्ठस्थ करके मनुष्य पूर्ण वैयाकरण बन सकता है। जितने काव्य-ग्रन्थ लिखे गये हैं, वे सब पुराणोंकी कथाके ही आधारपर हैं। पुराण तो वेदोंसे भी पुराने हैं। हमने एक बार पुराण-सत्र किया था। यह ३०-४० वर्ष पुरानी बात है। तबसे अबतक हमारे यहाँ निरन्तर पुराणोंकी कथा क्रमशः नित्य-नियमसे होती रहती है।

साक्षात् भगवान्‌ने ही जीवोंके, संसारसे निस्तारके निमित्त व्यास-रूपसे अवतार ग्रहण करके पुराणोंका व्यास करके संग्रह किया। इन पुराणोंके पढ़ने तथा सुननेसे मनुष्योंके पापोंका क्षय होता है। पुराणोंके पठन-पाठनसे यह धर्म है, यह अधर्म है—इसका ज्ञान होता है, सदाचार क्या है, इसका भी प्रवर्तन होता है और मनुष्योंकी मति भगवान्‌की भक्तिमें लगती है।

नारदपुराणमें कहा गया है कि जो अठारह पुराणोंको सुनता है अथवा विधानपूर्वक कहता है, उसकी मुक्ति हो जाती है, वह फिर जन्म-मरणके चक्करसे सदा-सर्वदाके लिये छूट जाता है।[2]

१-जहाँ तुलसीका सघन वन हो, जहाँ कमलके कुण्ड हों और जहाँ पुराणोंका नित्य पाठ होता हो, वहाँ श्रीहरिकी संनिधि है।

२-अष्टादश पुराणानि यः शृणोति नरोत्तमः। कथयेद् वा विधानेन नेह भूयः स जायते॥(नारदीय)

इसीलिये कहा है कि पात्र देखकर ही पुराणोंको सुनाना चाहिये। अपात्रोंको सुनानेसे वे लोग अर्थका अनर्थ करने लगते हैं। जो सुपात्र हो, श्रद्धावान् हो, वही पुराणोंके सुननेका अधिकारी होता है। इसलिये जो दम्भी हो, पापी हो, देवताओं और गुरुओंका निन्दक हो, साधुओंका द्वेषी हो, शठ हो ऐसे लोगोंको पुराणोंका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो शान्त-स्वभावके हों, जिनके चित्तमें भगवान् रामकी भक्ति हो, जो सेवा-शुश्रूषामें रत हों, निर्मत्सर हों, पवित्र हों तथा सद्वैष्णव हों, उन्हींको पुराणोंका उपदेश देना चाहिये।[1]

पुराणोंकी कथाएँ रोचक भी हैं, भयानक भी हैं और यथार्थ भी हैं। इनसे सदुपदेश मिलते हैं। पुराणोंकी सत्कथाओंका संग्रह करके प्रकाशित किया जाय तो लोगोंका बड़ा कल्याण हो। वास्तवमें पुराण और महाभारत—ये पञ्चम वेद ही हैं। जिन स्त्री, शूद्र तथा द्विज-बन्धुओंको वेदाध्ययनका अधिकार नहीं है, वे इन पञ्चम वेदसे ही वेदोंका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि ये वेदोंके भाष्य ही हैं।

पुराणोंकी प्रामाणिकता, दार्शनिकता और महत्ता

(स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज)

पुराणोंकी प्रामाणिकता

'पुराण' शब्दका अर्थ पुरातन या प्राचीन है। मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेद अनादि, अपौरुषेय हैं। श्रीव्यासादिविरचित पुराण अर्थतः अनादि होते हुए भी पौरुषेय हैं। प्रजापति पितामहको सर्वप्रथम पुराणोंका स्मरण हुआ, पुनः वेदोंका। इस प्रकार वेदोंकी अभिव्यक्तिकी अपेक्षा पुराणोंकी अभिव्यक्ति पुरातन होनेके कारण पुराणको 'पुराण' कहा गया है। पौरुषेय-अपौरुषेय भेदसे पुराण दो प्रकारके हैं। पौरुषेय पुराण श्रीवेदव्यासादिविरचित हैं। अपौरुषेय पुराण अष्टविध ब्राह्मणान्तर्गत होनेसे वेदात्मक हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये चार प्रकारके मन्त्र-समुदाय हैं। इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र (वस्तुसंग्रहवाक्य), अनुव्याख्यान (मन्त्र-विवरण) और व्याख्यान (अर्थवाद)—ये अष्टविध ब्राह्मण हैं। इनमें **'असद्वा इदमग्र आसीत्'** (तैत्तिरीय २।७।१) आदि जगत्कारणके ख्यापक ब्राह्मणवचन पुराण हैं। 'शतपथब्राह्मण ११।५।१ आदिके उर्वशी-पुरुरवा-संवाद और प्राणादि-संवाद इतिहास-लक्षणात्मक हैं। चारों प्रकारके मन्त्रसमुदायसहित अष्टविध ब्राह्मण परमात्माके बुद्धि-प्रयत्न-निरपेक्ष निःश्वास हैं। बृहदारण्यक (२।४।१०) में इनका वर्णन इस प्रकार प्राप्त होता है—

स यथार्द्रैधाग्नेरभ्याहितात् पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि निश्वसितानि।

ऋषिप्रणीत रामायण-महाभारतरूप इतिहास और विष्णु, ब्रह्म आदि अष्टादश पुराण पञ्चम वेद हैं। इनका वर्णन ग्रन्थोंमें इस प्रकारसे उपलब्ध होता है—**'ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं०......'** (छान्दोग्य० ७।१।२), **'इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदः'** (न्यायदर्शन ४।१।६२ वात्स्यायनभाष्य), **'इतिहास-पुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते'** (श्रीमद्भा० १।४।२०)।

उक्त स्थलोंमें निर्दिष्ट इतिहास, पुराण ब्राह्मणप्रभेद नहीं माने जा सकते, क्योंकि पञ्चम वेदके रूपमें और व्याकरणादिके संदर्भमें उनका उल्लेख है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्॥
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति।

(महा० आदिपर्व० १।२६७-२६८)

'इतिहास और पुराणोंकी सहायतासे ही वेदोंके अर्थका विस्तार एवं समर्थन करना चाहिये। जो इतिहास और पुराणोंसे अनभिज्ञ हैं, उससे वेद डरते हैं कि यह मुझपर प्रहार कर देगा। **'इतिहासपुराणाख्यमुपाङ्गं च**

१- न दाम्भिकाय पापाय देवगुर्वत्यनुसूयवे। देयं कदापि साधूनां द्वेषिणे न शठाय च॥
शान्ताय शमचित्ताय शुश्रूषाभिरताय च। निर्मत्सराय शुचये देयं सद्वैष्णवाय च॥ (नारदीयपुराण)

प्रकीर्तितम्' (सीतोपनिषद्)। 'इतिहास और पुराण उपाङ्ग कहे गये हैं।' इन वचनोंके अनुसार मन्त्र-ब्राह्मणात्मक वेदसे पृथक् इतिहास, पुराणका बोध प्राप्त होता है। **'इतिहास-पुराणानामुन्मेषं निर्मितं च यत्'** (महा० आदि० १।६३), **'जयो नामेतिहासोऽयम्'** (महा० आदि० ६२।२०) **'पुराणपूर्णचन्द्रेण श्रुतिज्योत्स्नाः प्रकाशिताः'** (आदि० १।८६) आदि वचनोंके अनुसार महाभारत जहाँ इतिहास सिद्ध होता है, वहाँ पुराण लक्षणलक्षित होनेसे पुराण भी।

पुराणोंमें लोकवृत्तका प्रतिपादन—न्यायदर्शनके वात्स्यायन-भाष्यमें कहा गया है—वेद, धर्मशास्त्र तथा पुराण—इनके मुख्य विषय भिन्न-भिन्न होते हैं। जिस प्रकार रूपमें चक्षु, रसमें रसना, गन्धमें नासिका, स्पर्शमें त्वक् और शब्दमें श्रोत्रका ही प्रामाण्य है, उसी प्रकार अपने-अपने विषयमें श्रुति-स्मृति और पुराण तीनों ही प्रमाण हैं। केवल एकसे काम नहीं चलता। वेदका मुख्य प्रतिपाद्य विषय यज्ञ है। यज्ञमें देवपूजा, देवसम्बन्धी सङ्गतिकरण और देवविषयक दानादिका संनिवेश है। इतिहास-पुराणोंका मुख्य विषय है लोकवृत्त (चरित्र)-प्रतिपादन। लोकव्यवहारकी व्यवस्था बताना यह धर्मशास्त्रका प्रधान विषय है। लिखा है—

'विषयव्यवस्थानाच्च यथाविषयं प्रामाण्यम्। अन्यो मन्त्रब्राह्मणस्य विषयः, अन्यश्च इतिहासपुराणधर्मशास्त्राणाम् इति, यज्ञो मन्त्रब्राह्मणस्य, लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य, लोकव्यवहारव्यवस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयः, तत्रैकेन न सर्वं व्यवस्थाप्यत इति, यथा विषयं एतानि प्रमाणानि इन्द्रियादिवदिति' (४।१।५२ न्यायदर्शन वात्स्यायन-भाष्य)।

यही कारण है कि धर्मशास्त्रविरुद्ध पौराणिक और ऐतिह्य चरित्र अनुकरणीय नहीं होते। तभी तो कहा है—

अतिरक्ततया नार्यां त्यक्तान्यललनास्पृहः।
सीतायां रामवत्सोऽयमनुकूलः प्रकीर्तितः॥
राधायामेव कृष्णस्य सुप्रसिद्धानुकूलता।
तदालोके कदाप्यस्य नान्यासङ्गः स्मृतिं व्रजेत्॥

(उज्ज्वलनीलमणि, नायकभेद २२-२३)

वर्तितव्यं शमिच्छद्भिर्भक्तवन्न तु कृष्णवत्।
इत्येवं भक्तिशास्त्राणां तात्पर्यस्य विनिर्णयः॥
रामादिवद्वर्तितव्यं न क्वचिद्रावणादिवत्।
इत्येष मुक्तिधर्मादिपराणां नय इष्यते॥

(उज्ज्वलनीलमणि, हरिवल्लभा २३-२४)

'श्रीरामचन्द्रजी जिस प्रकार एकमात्र श्रीसीतादेवीमें अनुरक्त थे, ठीक उसी प्रकार जो अन्य-ललनाविषयक स्पृहाका परित्याग कर एक स्त्रीमें अत्यन्त आसक्त होता है, वह (नायक) अनुकूल माना जाता है। श्रीराधामें श्रीकृष्णकी अनुकूलता प्रसिद्ध है। राधिकाके अवलोकन करनेपर उनका अन्य स्त्रीविषयक सङ्ग स्मृतिपथमें स्फुरित नहीं होता।'

कल्याणेप्सुओंको चाहिये कि वे भगवद्भक्तोंके सदृश आचरण करें, कभी भी श्रीकृष्ण-सदृश आचरण न करें। भक्ति-मुक्तिके पथिकोंको रामादिकी भाँति व्यवहार करना चाहिये, कभी भी रावणादिके समान आचरण नहीं करना चाहिये। भक्तिशास्त्रोंके तात्पर्यका यह निचोड़ है।

समस्त वेदों, पुराणों, स्मृतियों, इतिहासों, तर्कों और आगमोंका परम तात्पर्य जगत्कारण परमात्मतत्त्वके परिमार्गणकी योग्यता प्रदान कर उस स्वप्रकाश-परमात्मतत्त्वमें आत्मबुद्धि उदित करनेमें ही चरितार्थ है। सृष्टिश्रुति और सृष्टिप्रतिपादक वचनोंका तात्पर्य स्रष्टा परमात्माका आत्म और आत्मीयभावसे भजन करनेमें ही चरितार्थ है।

श्रीमद्भागवतादि पुराण भक्ति, ज्ञान, विरागलक्षण, पारमहंस्यधर्म—नैष्कर्म्यके प्रतिपादक हैं। इनमें आदि, मध्य, और अन्तमें वैराग्य उत्पन्न करनेवाली बहुत-सी अमृतस्वरूप कथाएँ हैं। उनसे सत्पुरुषों और सुरोंको सुरदुर्लभ अनुपम आनन्द मिलता है। सर्ववेदान्तसार अद्वितीय ब्रह्मात्मतत्त्व पुराणोंका प्रतिपाद्य विषय है। ये कैवल्यैक-प्रयोजन हैं। जैसे दिव्य अमृत पान करनेपर कुछ भी पान करना शेष नहीं रहता, वैसे ही सर्ववेदान्तसार पुराणोंको जान लेनेपर जिज्ञासुके लिये और कुछ भी जानना शेष नहीं रहता। जो दाम्भिक, नास्तिक, शठ, श्रवणके प्रति अश्रद्धालु, अभक्त और उद्धत न हो प्रत्युत ब्राह्मणभक्त, प्रिय, साधुस्वभाव, पवित्र हो, वह पुराण-श्रवणका अधिकारी है। यदि शूद्र और स्त्री भी भगवान्‌के प्रति भक्तिभावसम्पन्न हों तो वे भी पुराण-श्रवणके अधिकारी हैं।

आदिमध्यावसानेषु वैराग्याख्यानसंयुतम्।
हरिलीलाकथाव्रातामृतानन्दितसत्सुरम्॥

सर्ववेदान्तसारं यद् ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम् ।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम् ॥
(श्रीमद्भा० १२ । १३ । ११-१२)

श्रद्धापूर्वक दत्तचित्त होकर नित्य पुराण-श्रवण करनेका फल भगवत्स्वरूपमें परा भक्ति और उसके प्रभावसे कर्म-बन्धनकी निवृत्ति है—

य एतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः शृणुयान्नरः ।
मयि भक्तिं परां कुर्वन् कर्मभिर्न स बध्यते ॥
(श्रीमद्भा० ११ । २९ । २८)

—(क्रमशः)

पुराणकी महिमा एवं माहात्म्य

(अनन्तश्री स्वामी माधवाश्रमजी महाराज)

'पुराण' शब्द सुनते ही जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि पुराण क्या है? इसका अर्थ क्या है? अनेक ग्रन्थोंमें इसकी व्याख्याएँ की गयी हैं। उन्हींके आश्रयणसे हम यहाँ इसपर विचार कर रहे हैं।

'पुरा अपि नवं पुराणम्' से प्रतीत होता है कि पुराना होनेपर भी जो नवीन हो वह पुराण है। निरुक्तकार व्याख्या करते हैं—**'पुराणमाख्यानं पुराणम्'** अर्थात् जिसमें प्राचीन आख्यान हों, वह पुराण है। वायुपुराण **'यस्मात् पुरा ह्यनतीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम्'**—(१ । १ । १८३)के अनुसार— जो पूर्वमें भी सजीव था, वह पुराण कहा गया है। देवीभागवत (१ । २ । १८)में पुराणोंके पाँच लक्षण इस प्रकार कहे गये हैं—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥

पुराण भी वेदार्थके ही बोधक हैं। पुराणोंमें वेदोंकी व्याख्या विविध कथा-दृष्टान्तोंद्वारा की गयी है। पुराणोंके ज्ञानके बिना वेदोंका भी ज्ञान पूर्णरूपेण नहीं हो सकता। इसके विषयमें नारदपुराणका वचन द्रष्टव्य है—

वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणेष्वेव सर्वदा ।
(नारद० उ० २४ । १८)

'वेद पुराणोंमें ही प्रतिष्ठित हैं इसमें कोई संशय नहीं है।' वेदकी व्याख्या इतिहास और पुराणोंसे ही की जा सकती है। महाभारतमें कहा गया है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ।

वायुपुराण (१ । १ । १८०) में भी यह वचन मिलता है—

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः ।
न चेत् पुराणं स विद्यात् नैव स स्याद् विचक्षणः ॥

'जो द्विज अङ्गोंसहित चारों वेदोंको जानता है, किंतु पुराणोंको नहीं जानता, वह पण्डित कदापि नहीं हो सकता। श्रीमद्भागवतमें भी स्पष्ट कहा गया है—**'इतिहासं पुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते ।'** इतिहास और पुराणोंको पाँचवाँ वेद कहा गया है।

पुराणोंमें तीर्थ-व्रत-अनुष्ठान

पुराणोंमें काम्यादि अनुष्ठानोंका वर्णन अनेक स्थलोंपर है और प्रत्येक आख्यानके अन्तमें उस आख्यायिकाकी फलश्रुति भी रहती है। प्रायः सभी पुराणोंमें यही शैली प्रशस्त है। यद्यपि पुराणोंका परम तात्पर्य अद्वैत ब्रह्ममें ही है तथापि अवान्तर तात्पर्य अनेक काम्यादि कर्मोंमें भी है। अतएव इसी संदर्भमें तीर्थोंका माहात्म्य एवं तीर्थस्नान, तीर्थमें दान-पुण्य तथा व्रत करनेकी विधि वर्णित है।

पुराणोंमें धर्म-निरूपण एवं निर्णय

पुराणोंमें विविध विद्याओंके साथ वर्णाश्रमधर्मका, विविध संस्कारोंका, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष तथा धर्म-शास्त्रादिका वर्णन प्रचुर मात्रामें है। पुराणोंके बिना वेदमें भी गति होनी सम्भव नहीं। यह निश्चय समझ लेना चाहिये कि पुराण भी वेदवत् ही प्रमाण माने जाते हैं।

रामकथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनिहारी ॥
रामकथा कलि बिटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी ॥

भारतीय पुराणोंका महत्त्व

(श्री १०८ दण्डी स्वामी श्रीविपिनचन्द्रानन्द सरस्वतीजी 'जज स्वामी')

'पुराण' भारतवर्षकी बहुमूल्य निधि हैं, जिनका महत्त्वपूर्ण परिचय सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद्‌के सप्तम अध्याय (१।२) में इस प्रकार मिलता है—'शोकाकुल नारदजी सनत्कुमारजीके पास गये और उनसे आत्मज्ञानकी जिज्ञासा की। सनत्कुमारजीके यह पूछनेपर कि 'आप पहलेसे क्या-क्या जानते हैं?' नारद मुनिने उत्तर दिया कि 'मैं ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेदके अतिरिक्त पञ्चम वेद इतिहास, पुराणादि तथा अन्य अनेक शास्त्रों, विद्याओंसे परिचित हूँ।' तब सनत्कुमारजीने परोवरीय (उत्तरोत्तर उत्कृष्ट)-क्रमसे शब्द-ब्रह्मका परब्रह्मरूप भूमसंज्ञक आत्मतत्त्वमें ही परम तात्पर्य बताकर, शोकापहारक भूमाविद्यारूप आत्मज्ञान प्रदान कर देवर्षि नारदको कृतार्थ किया। आधुनिक समयमें भी भारतके प्राचीन इतिहासकी शृङ्खला बिठानेमें पाश्चात्त्य विद्वानोंने पौराणिक सहायता प्राप्त की है। भारतीय साहित्य और धर्मशास्त्रोंमें पुराणोंका अत्यन्त आदरसे स्मरण हुआ है और उन्हें प्रबल प्रमाण भी माना गया है।

वेदव्यासद्वारा विरचित पुराण आख्यायिकाओं, विद्याओं, कथाओं और इतिहासोंके संग्रहरूप ग्रन्थ हैं, जो प्रायः श्लोकबद्ध हैं और वैदिक सिद्धान्तोंकी व्याख्यारूप हैं। इनकी भाषा इतनी सरल है कि सर्वसाधारणजन भी क्लिष्ट दार्शनिक श्रीमद्भागवतपुराणको व्यासजीसे प्राप्त किया। राजा परीक्षित्‌का कल्याण श्रीमद्भागवत महापुराणके श्रवण और मननसे हुआ। तबसे यह महापुराण सर्वसाधारणके लिये परम कल्याणका साधन बन गया।

सारांश यह है कि हमारे वेदोंमें शाश्वत सत्य परमतत्त्वका सर्वोत्तम प्रामाणिक वर्णन है। मन्वादि स्मृतियोंमें हमारे धर्माचार एवं शिष्टाचारका वर्णन है। कर्तव्याकर्तव्यका ज्ञान मन्वादि धर्मशास्त्रोंके द्वारा होता है। जो सज्जन बुद्धिमान्द्य, प्रमाद, करणापाटव, दुराग्रह, दुरित अथवा विधिवत् शिक्षाके अभाव आदि प्रतिबन्धों—दोषोंके कारण श्रुति-स्मृतियोंके रहस्योंसे अपने कल्याणका मार्ग प्रशस्त नहीं कर पाते, उन्हें सुगमतापूर्वक श्रुति-स्मृतियोंके अभिप्रायको सरलतासे हृदयङ्गम करानेके लिये पुराणोंका निर्माण हुआ है, जिनके श्रवणसे प्रतिबन्ध कट जाते हैं और कल्याणकामी सज्जन शीघ्र और सुगमतापूर्वक श्रेयोमार्गपर आरूढ़ हो जाते हैं। पुराणोंके नित्य श्रवण और मननसे शिष्टाचार और सभ्यताकी उत्तम शिक्षा प्राप्त होती है, जिससे मनुष्य इस जगत्‌में पाप करनेसे निवृत्त हो जाता है और परलोकमें सद्‌गति प्राप्त करता है। इनके अतिरिक्त मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, ज्योतिष-विद्या, युद्ध-विद्या आदि भी पुराणोंके माध्यमसे सीख सकते हैं।

अब हम कुछ पौराणिक कथाओंकी सम्यक् विशेषता बतलाकर इस लेखको समाप्त करते हैं। जैसे वेदकी आज्ञा है—'**सत्यं वद, धर्मं चर**' (तैत्तिरीय १।११।१), इसका पूरा-पूरा पालन राजा हरिश्चन्द्र, भगवान् राम और बलिके द्वारा पुराणोंमें दर्शाया गया है। '**अतिथिदेवो भव**' (तैत्तिरीय १।११।२) के उदाहरण राजा शिवि और रन्तिदेव माने गये हैं। ब्रह्मचर्य-पालन करनेकी वैदिकी आज्ञाका अनुपम उदाहरण कपिल, भीष्म, हनुमान्, शंकराचार्य एवं अर्जुन आदि हैं। इन प्रसिद्ध कथाओंका विस्तृत वर्णन यहाँ करना उपयुक्त नहीं होगा।

अब पौराणिक राजाओंकी न्यायनिष्ठाके सम्बन्धमें एक विलक्षण कथाका वर्णन किया जाता है—केशिनी नामकी एक सुन्दर राजकुमारीको राजा प्रह्लादके पुत्र विरोचन और बृहस्पतिके पुत्र सुधन्वा—दोनों वरण करना चाहते थे। केशिनीने कहा—'तुम दोनोंमें जो श्रेष्ठ होगा, उसीसे मैं विवाह करूँगी?' दोनों लड़कोंने श्रेष्ठ होनेका दावा किया। गुरुपुत्रने ब्राह्मण होनेके कारण अपनेको श्रेष्ठ सिद्ध करना चाहा तथा विरोचनने राजपुत्र क्षत्रिय होनेके हेतु अपनेको श्रेष्ठ सिद्ध करना चाहा और शर्त यह ठहरायी गयी कि जो श्रेष्ठ सिद्ध होगा, उसके साथ कन्या केशिनीका विवाह होगा और वह असफल लड़केका प्राण ले लेगा। निर्णयके लिये प्रह्लादके पास दोनोंने जाकर अपना अभिप्राय सुनाया तथा प्राणोंकी बाजीकी शर्त भी बता दी। प्रह्लादके सामने आश्चर्यजनक समस्या उपस्थित हो गयी—एक ओर प्रिय पुत्र विरोचनके प्राणहरणकी सम्भावना तो दूसरी ओर उचित निर्णय देकर न्यायरक्षा कर कर्तव्य-निर्वाहका दायित्व। विचार कर प्रह्लादने निर्णय दिया कि 'मुझसे अङ्गिरा ऋषि श्रेष्ठ हैं और तुमसे सुधन्वा श्रेष्ठ है।' ऐसा निर्णय देकर प्रह्लादने अपने पुत्रको ब्राह्मणको अर्पित कर कहा—'ऋषिकुमार! इसका जीवन अब आपकी इच्छाके अधीन है।' यह सुनकर ऋषिकुमारने कहा कि 'ऐसे निष्पक्ष न्यायकारी राजाके पुत्रका विनाश कैसे हो सकता है? इसे हमने क्षमा किया।' न्यायकर्ता प्रह्लादके पुत्रकी रक्षा हुई। पुराणोंमें ऐसे और कई आख्यान हैं। पर क्या इस प्रकारका न्याय कोई कर सकता है? अपने और सम्बन्धियोंके लिये आज न्यायकी हत्या की जाती है। छल-कपटका आश्रय लेकर हितकर कानूनको भी बदलनेकी दुष्प्रवृत्ति देखी जाती है। ऐसी परिस्थितिमें पुराणोंके पठन-पाठन, मनन और आदर्श चरित्रोंका प्रचार एवं प्रसार परमावश्यक है। यदि पुराण न हों तो भारतीय सभ्यता एवं महत्ताका प्रमाण क्या रहेगा? तथा बिना सभ्यता एवं संस्कृतिके देशका क्या अस्तित्व होगा? यही भारतीय पुराणोंकी महत्ताका रहस्य है।

सिद्धोंकी पौराणिक प्रासंगिकता

(गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज)

तपःपुञ्ज परम कारुणिक महर्षि व्यासरचित अठारह पुराण तथा उपपुराणादि समग्र सार्वभौम आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा सामाजिक आदि जीवन-दर्शनके जीवन्त भाष्य अथवा विश्वकोष हैं। पुराणोंमें भारतीय सांस्कृतिक सम्पत्ति सुरक्षित है। योगदर्शन ही नहीं, विशेष परिप्रेक्ष्यमें महायोगी शिवगोरक्ष—गोरक्षनाथजीद्वारा संरक्षित शिवोपदिष्ट नाथयोगामृत और अनेक नाथसिद्धयोगियोंके साधनामय जीवनके यत्र-तत्र सहज यथावश्यक संदर्भसे यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारी रहनी-करनीमें कितने व्यापकरूपमें पौराणिक प्रासंगिकताएँ भरी पड़ी हैं। स्कन्दपुराणके काशीखण्ड, नारदपुराण, मार्कण्डेयपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, वायुपुराण, पद्मपुराण, श्रीमद्भागवतपुराण, ब्रह्माण्डपुराण आदिमें सिद्धयोगियों और उनकी साधना-पद्धति तथा योगकी सामान्य उपादेयताओंका निरूपण इस तथ्यका संकेत है कि उनमें योग और सिद्धोंके सम्बन्धमें कितना उदार दृष्टिकोण परिलक्षित है।

गोरक्षसिद्धान्तसंग्रहमें ब्रह्माण्डपुराणके ललिताखण्डमें ललितापुरवर्णनमें योगमहाज्ञान-चिन्तनमें तत्पर महायोगी गोरक्षनाथ और अनेक सिद्धसमूह, दिव्य ऋषिगण तथा प्राणायामपरायण योगियोंके प्रसंग मिलते हैं।

ललितापुरके उत्तरकोणमें अत्यन [illegible] वायुलोक है। उस लोकमें वायुशरीरधारी, म [illegible] द्धसमूह,

दिव्य ऋषिगण, प्राणायामके अभ्यासी दूसरे योगी तथा योगपरायण, योगमहाज्ञानचिन्तनमें तत्पर श्रीगोरक्षनाथजी आदि अनेकानेक योगियोंके समुदाय निवास करते हैं।

श्रीमद्भागवतपुराणमें, वातरशना मुनियोंके संदर्भमें, नाथसिद्धोंके सम्बन्धमें यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। वातरशनाकी यह परम्परा ऋग्वेद (१०।१३६) में परिलक्षित है जो प्राणायामादि यौगिक क्रियाओंमें प्रवृत्त कायादण्डन तथा निवृत्तिप्रधान जीवन-यापनमें विश्वासी और आस्थावान् चित्रित किये गये हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः।
आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः॥

(५।४।११)

श्रीमद्भागवतमें वर्णित नवयोगेश्वरोंकी, नवनाथोंकी मान्यतामें शिवगोरक्ष महायोगीकी गणना नहीं की गयी है। उन्हें तो साक्षात् शिवका अवतार शिवस्वरूप कहा गया है।

आदिनाथ भगवान् महेश्वरने क्षीरसागरमें मणि-प्रदीप्त सप्तशृंग पर्वतपर भगवती उमाके प्रति महायोगज्ञानका वर्णन आरम्भ किया। भगवतीके निद्राभिभूत होनेपर मत्स्यके उदरसे निकलकर मत्स्येन्द्रनाथजीने यह योगोपदेश सुना। उन्होंने महेश्वरको देवीसहित नमस्कारकर समस्त वृत्तान्तका वर्णन किया।

तं कल्पयामास सुतं शुभाङ्गे
सोत्सङ्ग आस्थाप्य चुचुम्ब वक्त्रम्।
सुतो ममायं किल मत्स्यनाथो
विज्ञाततत्त्वोऽखिलसिद्धनाथः॥

(नारदपुराण उत्तर० ६९।२३)

संतयोगी ज्ञानेश्वरने नारदपुराणके इसी प्रासंगिक उद्धरणके अनुरूप श्रीमद्भगवद्गीताकी टीका ज्ञानेश्वरीके १८वें अध्यायमें वर्णन किया है कि क्षीरसमुद्रके तटपर श्रीशंकरने न जाने कब एक बार शक्ति-पार्वतीके कानमें जो उपदेश दिया था, वह क्षीरसमुद्रकी लहरोंमें किसी मत्स्यके पेटमें गुप्त मत्स्येन्द्रनाथके हाथ लगा—अचलसमाधिका उपभोग लेनेकी इच्छासे मत्स्येन्द्रनाथने गोरखनाथको उपदेश दिया।

क्षीरसिंधु परिसरीं। शक्तिच्या कर्णकुहरीं।
नैणाके श्रीत्रिपुरारी। सांगितलेजे।
ते क्षीरकल्लोला आंतु। मकरोदरीं गुप्तु।
होता तया चा हातु। पैहो जालें।
....
मग समाधि अव्यत्ययां। भोगावीं वासना यया।
ते मुद्रा श्रीगोरक्षराया। दिधलीं मीनीं॥

(ज्ञानेश्वरी, अध्याय १८)

अवधूत दत्तात्रेयकी तपस्या, योग-साधना और जीवन-वृत्तान्तका पर्याप्त वर्णन मार्कण्डेयपुराणके अनेक अध्यायोंमें प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धमें दत्तात्रेयका वर्णन उनकी योग-साधनाका परिचायक है। वे श्रीमद्भागवतमें दिष्टभुक्-रूपमें वर्णित हैं। उनका कथन है कि दिन-रातमें जो कुछ मिल जाता है, उसे मैं ग्रहण करता हूँ तथा दिष्ट-जैसा भोग करता हूँ, उससे संतुष्ट रहता हूँ।

वसेऽन्यदपि सम्प्राप्तं दिष्टभुक् तुष्टधीरहम्॥

(७।१३।३९)

मार्कण्डेयपुराणके १७से १९वें अध्यायमें दत्तात्रेयके सम्बन्धमें कहा गया है कि वे सती अनसूया और महर्षि अत्रिके पुत्रके रूपमें प्रकट हुए थे। उन्होंने कावेरी नदीके तटपर तथा, सह्याद्रिक्षेत्रमें तपस्या की थी। मार्कण्डेयपुराणके ३९वेंसे ४१वें अध्यायमें वर्णन है कि उन्होंने मदालसाके पुत्र अलर्कको योगोपदेशामृत प्रदान किया था। उनका कथन है—

समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी
शुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रियः।
समाप्नुयाद् योगमिमं महात्मा
विमुक्तिमाप्नोति ततः स्वयोगतः॥

मार्कण्डेय और श्रीमद्भागवतपुराणकी प्रासंगिकताके परिप्रेक्ष्यमें सिद्ध अवधूत-रूपमें वर्णित नाथसिद्ध दत्तात्रेयने शिवयोगी गोरखनाथको प्रणाम किया है।

निःसंदेह पौराणिक आख्यानों और प्रासंगिकताओंमें यथेष्ट रूपसे उदारता और सर्वमङ्गलमयताका स्वर अक्षर-अक्षरमें अनुप्राणित है।

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

निम्नलिखित श्लोक अनेक पुराणोंमें प्राप्त होता है—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

यह श्लोक बहुत महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि इससे शास्त्रोंका स्वरूप और इनके आविर्भावके क्रमका ठीक-ठीक ज्ञान हो जाता है। इस श्लोकसे परिचित न होनेके कारण ही आज वेद और पुराणके स्वरूप और कालके सम्बन्धमें अनेक भ्रमपूर्ण मत प्रचलित हो गये हैं। अतः इस श्लोकके अर्थसे परिचित होना अपेक्षित हो गया है।

'कृत', 'स्मृत' और 'विनिर्गत' (श्रुत) ग्रन्थ

उपर्युक्त वचनमें पुराणके लिये 'स्मृत' और वेदके लिये 'विनिर्गत' शब्दका प्रयोग किया गया है। दोनों ग्रन्थोंमेंसे किसीके लिये भी 'कृत' शब्दका प्रयोग नहीं है। इन अनुगुण शब्दोंका प्रयोग जान-बूझकर किया गया है। अतः जिज्ञासा होती है कि वेदके लिये 'विनिर्गत' शब्दका ही प्रयोग क्यों होता है, 'कृत' और 'स्मृत' शब्दका प्रयोग क्यों नहीं होता ? इसी तरह पुराण आदि शास्त्रोंके लिये 'स्मृत' शब्दका ही प्रयोग क्यों होता है, 'विनिर्गत' या 'कृत' शब्दका प्रयोग क्यों नहीं होता ?

इसका समाधान तभी सम्भव है, जब हम 'कृत', 'स्मृत' और 'विनिर्गत' शब्दोंके अर्थोंको ठीक-ठीक जान जायँ। संस्कृत-वाङ्मयमें ही 'स्मृत' और 'विनिर्गत' ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, अन्य वाङ्मयोंमें नहीं। अतः अन्य भाषाविदोंके लिये इनकी जानकारी विशेषरूपसे अपेक्षित है।

(क) 'कृत' ग्रन्थ

'कृत' ग्रन्थ वह होता है, जिसके अर्थ और शब्द किसी पुरुषके द्वारा निर्मित होते हैं, जैसे—मालती-माधव, रघुवंश आदि। 'मालती-माधव' भवभूतिकी रचना है। इसके संवाद, सामाजिक चित्रण आदि सभी अर्थ कविकी कल्पनासे प्रसूत हैं। समूची कथावस्तु ही कल्पित है। इसी तरह 'मालती-माधव'के अर्थ और शब्द किसी पुरुषद्वारा कल्पित हैं। इसलिये इस ग्रन्थको हम 'कृत' कहते हैं। रघुवंशकी कथावस्तु यद्यपि रामायणसे और पुराणोंसे ली गयी है, फिर भी इसे जो कल्पित माना जाता है, इसका कारण यह है कि कविलोग सरस बनानेके लिये उसके अर्थ और भावोंको अपनी कल्पनासे गढ़ लेते हैं। ध्वन्यालोक आदि आकर-ग्रन्थोंने इन्हें ऐसा करनेके लिये आदेश भी दे रखा है। दूसरी बात यह है कि कालिदासने अपने काव्य-रचना-प्रसङ्गको रामायण सुन-पढ़कर ही जाना है, ऋतम्भरा प्रज्ञासे उसका स्मरण नहीं किया है। अतः रघुवंश वाल्मीकि-रामायणकी तरह 'स्मृत' ग्रन्थकी कोटिमें नहीं आता। इस तरह कवियों एवं विद्वानोंकी कृतियाँ 'कृत' ग्रन्थकी कोटिमें आती हैं।

(ख) 'स्मृत' ग्रन्थ

शास्त्र दो दलोंमें विभक्त हैं। एक दलका नाम है—'श्रुति' (वेद) और दूसरे दलका नाम है 'स्मृति'। वेदोंको छोड़कर पुराण, उपपुराण, धर्मशास्त्र आदि सब शास्त्र 'स्मृत' (स्मरणके द्वारा प्राप्त) होनेके कारण 'स्मृति' कहलाते हैं। यह पङ्कजकी तरह योगरूढ़ शब्द है। पङ्कज कमलका पर्यायवाची शब्द है। कीचड़से उत्पन्न (**पङ्काज्जात इति पङ्कजः**) होनेके कारण इसमें यह व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ घटित होता है। अतः 'योग' है। फिर जोंक आदि अर्थको व्यावृत करनेके लिये कमल-अर्थमें रूढ़ भी माना जाता है। इस तरह 'स्मृत' ग्रन्थ वह कहलाता है, जिसके नित्य-नूतन अर्थको तपःपूत ऋतम्भरा प्रज्ञाके द्वारा स्मरण किया जाता है और बादमें उसे अपने शब्दोंमें बाँध लिया जाता है। पुराण इस तरहसे 'स्मृत' ग्रन्थ है। इसका अर्थ नित्य-नूतन है। इसके शब्द कल ब्रह्माके थे और आज व्यासके हैं, किंतु पुराणका अर्थ न तो ब्रह्माकी बुद्धिकी उपज है और न व्यासकी ही।

'कृत' ग्रन्थ भी परिस्थिति-विशेषमें 'स्मृत' हो सकते हैं। मान लीजिये, बीस वर्ष पहले हमने मालती-माधवको खूब समझकर पढ़ा था। बादमें परिस्थितिवश उसकी चर्चा भी छूट गयी। आज हम उसे याद करना चाह रहे हैं। ऐसी परिस्थितिमें पहले तो उसका धुँधला अर्थ स्मृति-पटलपर उभरने लगता है। कहीं स्मरणशक्तिने ठीक-ठीक साथ दिया, तब उसका पूरा-का-पूरा अर्थ याद हो आता है। शब्दोंकी आनुपूर्वी पहले भी याद न थी,

अतः उसका स्मरण न हो पायेगा। यदि इस स्मृत (याद किये हुए) अर्थको हम अपने शब्दोंमें बाँध लेते हैं तो 'मालती-माधव' नामका ग्रन्थ तैयार हो गया। यह ग्रन्थ हमसे 'स्मृत' कहा जायगा, न कि 'कृत'; क्योंकि इस ग्रन्थके अर्थको हमने नहीं बनाया है, इसके बनानेवाले तो भवभूति हैं। हमने तो इसे स्मरणमात्र किया है। हाँ, इस अर्थको हमने अपने शब्दोंमें बाँधा है। इसलिये इस अंशमें हमारा कृतित्व अवश्य है, किंतु इतनेसे हम मालती-माधवके 'कर्ता' नहीं हो सकते, केवल 'अनुवादक' हो सकते हैं। यह हुआ 'कृत' मालती-माधव और 'स्मृत' मालती-माधवका भेद।

'स्मृत मालती-माधव'में जैसे स्मर्ताका कर्तृत्व नहीं होता, वैसे ब्रह्मा या व्यासद्वारा 'स्मृत' पुराण आदि शास्त्रोंमें भी इनका कर्तृत्व सम्भव नहीं है। ये केवल 'स्मर्ता' कहे जाते हैं।

(ग) 'विनिर्गत' ग्रन्थ

'विनिर्गत' ग्रन्थ वह होता है, जिसका अर्थ, शब्द और उच्चारण किसी पुरुषके द्वारा कृत नहीं होता। संस्कृत-वाङ्मयमें ऐसे ग्रन्थको 'श्रुति' कहा जाता है। यह भी योगरूढ शब्द है। **'श्रूयत एव, न केनचित् क्रियत इति श्रुतिः।'** अर्थात् जो वाक्यसमूह सुना ही जाता है, किसी पुरुषके द्वारा किया नहीं जाता, उसे 'श्रुति' कहते हैं। यह योग (व्युत्पत्ति) है और यह 'श्रुति' शब्द वेद-रूप ग्रन्थमें रूढ भी है।

उदाहरणके लिये 'रेडियोसे विनिर्गत मालती-माधव'को रखा जा सकता है। मान लीजिये, हम 'मालती-माधव'को रेडियोसे सुन रहे हैं और लिपिबद्ध भी करते जा रहे हैं। पुस्तक तैयार हो गयी। प्रश्न है कि इस पुस्तकके कर्ता हम कहे जा सकते हैं क्या? उत्तर है—नहीं; क्योंकि हमने न तो इस ग्रन्थके शब्दका निर्माण किया है, न अर्थकी कल्पना की है और न उच्चारण ही बनाया है। ये सब-के-सब रेडियोसे विनिर्गत (निकले हुए) हैं। हमने तो इन्हें सुनकर लिखा भर है। इस तरह इस रेडियोसे विनिर्गत 'मालती-माधव'के हम न तो 'कर्ता' हो सकते हैं, न 'स्मर्ता' तथा न 'अनुवादक' ही केवल 'लिपिक' हो सकते हैं।

ठीक इसी तरह ब्रह्मा या अन्य ऋषि श्रुतिके वाक्योंके न कर्ता हो सकते हैं न स्मर्ता और न अनुवादक ही।

'कृत' ग्रन्थ अनित्य होते हैं, किंतु ब्रह्माद्वारा 'स्मृत' अर्थ और 'विनिर्गत' वाक्य नित्य-नूतन होते हैं। इसी बातको व्यक्त करनेके लिये उपर्युक्त वचनमें पुराणके लिये **'स्मृतम्'** और वेदके लिये **'विनिर्गताः'** पद दिये गये हैं।

शङ्का—यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि ऊपर उद्धृत पुराण वचनमें जो **'स्मृतम्'** और **'विनिर्गताः'** पद आये हैं, इनसे पुराण और वेदकी नित्यता नहीं प्रमाणित की जा सकती; क्योंकि इन दोनों पदोंका प्रयोग अनित्य ग्रन्थोंमें भी होता है। जैसा कि अभी-अभी 'स्मृत मालती-माधव' और 'विनिर्गत मालती-माधव'में इनका प्रयोग दिखलाया जा चुका है। इस तरह जब दोनों पद व्यभिचरित हैं, तब इनके प्रयोगसे यह कैसे समझा जा सकता है कि ब्रह्माने 'अर्थतः' नित्य-पुराणको स्मरण किया और उनके मुखोंसे 'शब्दतः', 'अर्थतः' और 'उच्चारणतः' नित्य-वेद उच्चरित हुए? रह गयी बात इन दोनों पदोंके योगरूढ होनेकी, तो यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि इनके योगरूढ होनेमें कोई एकतर पक्षपातिनी युक्ति नहीं है। फिर क्यों न इन्हें 'पावक'की तरह यौगिक ही मान लिया जाय?

समाधान—इस प्रश्नका उत्थान उद्धृत वचनके प्रसङ्गपर दृष्टि न डालनेसे होता है। देखना होगा कि 'ब्रह्माने किस काल और किस परिस्थितिमें पुराणको स्मरण किया। फिर वह कौन-सी परिस्थिति आयी कि वेद उनके मुखोंसे अपने-आप निकलते चले गये।'

इतिहाससे पता चलता है कि यह घटना उस समयकी है, जब भौतिक सृष्टिका आरम्भ भी न हुआ था। महाप्रलयमें ब्रह्मको छोड़कर और कुछ न था। जैसे शान्त सागरमें तरंग, फेन, बुदबुदका अस्तित्व नहीं रहता, वैसे ही जीव आदिका महाप्रलयमें पृथक् अस्तित्व नहीं हुआ करता। ब्रह्मने सृष्टिकी इच्छा की और भूत सृष्टिके बाद पहला प्राणी ब्रह्माको उत्पन्न किया। तुरंत उत्पन्न शिशुकी बुद्धि जैसे अत्यन्त अविकसित रहती है, वैसे नवजात ब्रह्माजीकी बुद्धि अविकसित थी। वे स्वयं समझ नहीं पाते थे कि वे कौन हैं, क्यों हैं और किसने इन्हें उत्पन्न किया है? इनकी उत्सुकता देखकर भगवान्ने आकाशवाणीके द्वारा इनसे तपस्या करायी। तपस्याके बलपर उनकी दो जिज्ञासाओंका समाधान हो गया। तपोबलसे उन्होंने प्रत्यक्ष देखा कि वे भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे उत्पन्न हैं। भगवान्ने उनकी शेष जिज्ञासाके

समाधानमें कहा कि 'तुम सृष्टिका निर्माण करो।' ब्रह्माजीको अब यह समझमें नहीं आ रहा था कि सृष्टि क्या होती है और उसका निर्माण कैसे होता है? ब्रह्माजीने अपनी जिज्ञासा भगवान्के सामने रखी। भगवान्ने कहा—'तुम फिर तपस्या करो। इसीसे तुम जान सकोगे कि सृष्टि क्या है और उसका निर्माण कैसे होता है?' ब्रह्मा फिर तप करने लगे। तपस्या जब सीमापर पहुँचने लगी, तब उसके प्रभावसे उन्हें पुराण याद आने लगा। यही बात **'पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्'**—इस पंक्तिसे कही गयी है।

अभी तपस्यामें उस पूर्णताकी अपेक्षा थी, जिसके द्वारा उनका हृदय रेडियो बन जाय, जिससे वह ईश्वरके द्वारा प्रेषित वेदोंको प्रतिफलित कर उनके कण्ठोंसे विनिर्गत कर सके। जब तपस्या पूर्ण हुई, तब कहीं भगवान्के भेजे हुए वेद उनके हृदयमें प्रतिफलित हुए और कण्ठोंसे उच्चरित होने लगे—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
(श्वेत० उ० ६।१८)

अर्थात् ब्रह्म पहले ब्रह्माको उत्पन्न करता है, फिर तपस्या पूर्ण होनेपर उनके पास वेदोंको भेजता है। **'प्रहिणोति'** शब्दसे यह स्वारसिक अर्थ निकलता है कि जैसे रेडियो-स्टेशन शब्दोंको भेजता है और रेडियो उसका प्रतिफलन करता है, वैसे ईश्वरके भेजे हुए वैदिक शब्द ब्रह्माके हृदयमें प्रतिफलित होकर कण्ठोंसे निकलने लगे।

विनिर्गमन—हाँ, तो रेडियोसे जिस तरह 'विनिर्गत मालती-माधव'का उच्चारण करनेवाला उसका कर्ता नहीं हो जाता, उसी तरह वेदके शब्दोंका, उनमें अनुविद्ध अर्थोंका और उदात्त आदि स्वरोंका कर्ता ब्रह्मा नहीं हो सकते। इस तरह इतिहाससे पता चलता है कि ब्रह्माने जिस पुराणका स्मरण किया, वह किसी मनुष्य-कृत मालती-माधवकी तरह 'कृत' ग्रन्थ नहीं था। वह तो अर्थरूप ब्रह्म ही था। इसी तरह उनके कण्ठोंसे जो वेद निकले उनका भी प्रेषण करनेवाला ब्रह्म ही था और वह प्रेषित शब्द भी ब्रह्म ही था।

दृष्टान्त और दार्ष्टान्तका विवेचन

इस तरह जो अनित्य अर्थ है, वह स्मृत और विनिर्गत होकर अनित्य रहता है, यह सही है, किंतु जो 'नित्य अर्थ' और 'नित्य शब्द' हैं, वे स्मृत और विनिर्गत होकर भी नित्य ही रहते हैं। जैसे ब्रह्म नित्य है। अतः वह अरबों लोगोंसे स्मृत होकर भी सदा नित्य ही रहता है, वैसे वेद और पुराणादि शास्त्र नित्य हैं। अतः ये 'विनिर्गत' और 'स्मृत' होकर भी नित्य ही रहते हैं।

नित्यतामें प्रमाण

स्थूणा-निखनन-न्यायसे वेद और पुराणकी नित्यताके प्रतिपादक कुछ वचन दिये जा रहे हैं—

(क) वेद—ब्रह्मरूप

वस्तुतः वेद और पुराण ब्रह्मके स्वरूप हैं। स्वयं वेदने अपनेको ब्रह्मस्वरूप बतलाया है—

ब्रह्म स्वयम्भू। (तै० आ०)

पुराणने इसी बातको दुहराया है—

वेदः नारायणः स्वयम्। (बृ० ना० पु० ४।१७)

ब्रह्मका स्वरूप सद्-रूप, चिद्-रूप और आनन्दरूप होता है—

विज्ञानमानन्दं ब्रह्म। (बृहदा० ३।९।२८)

'चित्'का अर्थ होता है ज्ञान। इस तरह ब्रह्म जैसे नित्य सत्-स्वरूप, नित्य आनन्द-रूप है, वैसे ही नित्य ज्ञान-रूप भी है। ज्ञानमें शब्दके अनुवेधका होना आवश्यक रहता है—

अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भाषते। (वाक्यपदीय)

नित्य-ज्ञानके लिये नित्य-शब्दका ही अनुवेध होना चाहिये। इस तरह नित्य-शब्द, नित्य-अर्थ, नित्य-सम्बन्धवाले वेद ब्रह्मरूप सिद्ध हो जाते हैं।

(ख) पुराण—ब्रह्मरूप

वेदने पुराणको अपने समान नित्य माना है। यह समता निम्नलिखित मन्त्रसे व्यक्त होती है—

ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह।
(अथर्व० ११।७।२४)

स्वयं पुराणने अपनेको ब्रह्म-स्वरूप माना है। पुराण वस्तुतः एक ही है। इसके अठारह प्रकरण ही अठारह पुराण कहे जाते हैं। ये अठारहों प्रकरण अठारह अवयवके रूपमें हैं। अवयवीसे अवयव भिन्न नहीं होता। पद्मपुराणने ब्रह्मको पुराणरूप बतलाते हुए कहा है कि ब्रह्म अनेक रूपोंमें अवतरित होता है। उसका एक रूप पुराण भी है—

एकं पुराणं रूपं वै। (प० पु०, स्व० खं० ६२।२)

यह भी बताया है कि कौन पुराण ब्रह्मका कौन-सा अवयव है,— जैसे १-ब्रह्मपुराण—भगवान्‌का मस्तक, २-पद्मपुराण—हृदय, ३-विष्णुपुराण—दाहिनी भुजा, ४-शिवपुराण—बायीं भुजा, ५-भागवतपुराण—ऊरु-युगल, ६-नारदीयपुराण—नाभि, ७-मार्कण्डेयपुराण—दाहिना चरण, ८-अग्निपुराण—बायाँ चरण, ९-भविष्यपुराण—दाहिना घुटना, १०-ब्रह्मवैवर्तपुराण—बायाँ घुटना, ११-लिङ्गपुराण—दाहिनी घुट्ठी, १२-वराहपुराण—बाँयी घुट्ठी, १३-स्कन्दपुराण—रोएँ, १४-वामनपुराण—त्वचा, १५-कूर्मपुराण—पीठ, १६-मत्स्यपुराण—मेदा, १७-गरुड-पुराण—मज्जा और १८-ब्रह्माण्डपुराण— अस्थि।

एकं पुराणं रूपं वै तत्र पाद्मं परं महत्।
ब्राह्मं मूर्धा हरेरेव हृदयं पद्मसंज्ञितम्॥
वैष्णवं दक्षिणो बाहुः शैवं वामो महेशितुः।
ऊरू भागवतं प्रोक्तं नाभिः स्यान्नारदीयकम्॥
मार्कण्डेयं च दक्षाङ्घ्रिर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते।
भविष्यं दक्षिणो जानुर्विष्णोरेव महात्मनः॥
ब्रह्मवैवर्तसंज्ञं तु वामजानुरुदाहृतः।
लैङ्गं तु गुल्फकं दक्षं वाराहं वामगुल्फकम्॥
स्कान्दं पुराणं लोमानि त्वगस्य वामनं स्मृतम्।
कौर्मं पृष्ठं समाख्यातं मात्स्यं मेदः प्रकीर्त्यते॥
मज्जा तु गारुडं प्रोक्तं ब्रह्माण्डमस्थि गीयते।
एवमेवाभवद्विष्णुः पुराणावयवो हरिः॥

(पद्मपुराण, स्वर्गखण्ड ६२। २—७)

इस तरह वेद और पुराण जब ब्रह्मरूप हैं, तब इन्हें अनित्य कहना स्वतः बाधित है। महाप्रलयमें जब ब्रह्मका सदंश और आनन्दांश विद्यमान रहते हैं, तब उसके चिदंशको भी विद्यमान रहना ही चाहिये। उनका वही चिदंश वेद और पुराण हैं। महाप्रलयके बाद भौतिक सृष्टिके निर्माणके लिये ब्रह्म ब्रह्माको प्रकट करता है और जैसे-जैसे ब्रह्माकी बुद्धिका विकास होता जाता है तथा तपस्याका सहयोग मिलता जाता है,वैसे-वैसे पहले ब्रह्मरूप पुराणका स्मरण होता है और पीछे वेदका प्राकट्य होता है।

वेदोंसे सृष्टि

जबतक ब्रह्माके पास वेद नहीं पहुँचे थे, तबतक वे सृष्टि और इसके निर्माणके विषयसे अनभिज्ञ थे। पुराण और वेदोंकी प्राप्तिके बाद उनकी सारी दुविधाएँ मिट गयीं। पश्चात् इन्हींकी सहायतासे वे भौतिक सृष्टिकी रचनामें समर्थ हुए। मनुने लिखा है—

वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे।

(मनु० १। २१)

ब्रह्माद्वारा सम्प्रदायका प्रवर्तन

सृष्टि-क्रमका विस्तार होनेपर ब्रह्माजीने सनक-सनन्दन, वसिष्ठ आदि मानसपुत्रोंको उत्पन्न किया। ब्रह्माने इन्हें पुराण और वेदोंको पढ़ाया। इसके बाद वसिष्ठ आदिने अपने शिष्योंको पढ़ाया। इस तरह शास्त्रोंके पठन-पाठनकी परम्परा चल पड़ी, जो आज भी चलती आ रही है—

वेदपुराणाध्ययनं गुर्वध्ययनपूर्वकम्, अधुनाध्ययनवत्।

व्यासद्वारा संक्षिप्त संस्करण

द्वापरके अन्तमें पुराणकी अध्ययन-परम्परामें विशृङ्खलता आ गयी थी। इसका एक कारण यह भी था कि ब्रह्माका स्मरण किया हुआ पुराण बहुत विशाल था। उसमें सौ करोड़ श्लोक थे—

तपश्चचार प्रथमममराणां पितामहः।

× × ×

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥

(मत्स्यपुराण ३। २-३)

इन सौ करोड़ श्लोकोंका पढ़ पाना तब कठिन हो रहा था; क्योंकि आयु और बुद्धिका अधिक ह्रास हो चुका था। आज कलियुगमें ब्रह्मा-स्मृत उस विशालकाय पुराणका पढ़ पाना तो और असम्भव ही है। अतः भगवान्‌की ज्ञानशक्तिके अवतार वेदव्यासने चार लाख श्लोकोंमें इस *ब्रह्माद्वारा स्मृत* पुराणका संक्षेप कर दिया। आज जो पुराण हमारे पास हैं, इसके शब्द व्यासजीके बनाये हुए हैं। अबतक ब्रह्मा-स्मृत पुराणका कोई संस्करण उपलब्ध नहीं हुआ है।

'स्मृत वाक्य'से 'विनिर्गत वाक्य' प्रबल है

यहाँ यह भ्रम नहीं होना चाहिये कि '*ब्रह्माको सर्वप्रथम* पुराण स्मृत हुआ, इसलिये यह परवर्ती वेदसे बढ़कर है।' क्योंकि इतिहासने स्पष्ट कर दिया है कि पुराण तपस्याकी

पूर्णताके पहले स्मृत हुआ, जबकि वेद उसकी पूर्णताके बाद ज्यों-के-त्यों श्रुत हुए। स्मरणमें बुद्धिकी कुण्ठासे गलती हो सकती है, किंतु श्रुत वाक्यमें कुण्ठाका प्रश्न नहीं उठता। इसलिये वेद स्वतः प्रमाण है और पुराण आदि स्मृति-वेदमूलक प्रमाण है। मीमांसाने स्पष्ट कर दिया है कि श्रुतिसे स्मृतिके विरोध होनेपर स्मृति अप्रमाण हो जाती है—

विरोधे त्वनपेक्षं स्यात्……। (जै० सू० १।३।३)

पुराणमें उल्लिखित विषय यदि वेदकी प्राप्त शाखाओंमें न मिले तो शास्त्रकारोंने बतलाया है कि पुराणका वह विषय मान्य होता है। तब अनुमान करना चाहिये कि तन्मूलक कोई श्रुति रही होगी। जैमिनि मुनिने तो यहाँतक बतला दिया है कि यदि स्मृतिकी कोई बात श्रुतिमें न मिल सके तो उसे अप्रामाणिक न समझना चाहिये, अपितु यह अनुमान करना चाहिये कि इस स्मृतिका मूल कोई-न-कोई श्रुति अवश्य है, जो अब अप्राप्य है—

"…… **असति ह्यनुमानम्**" (जै० सू०१।३।३)

यह पुराण विश्वकी अद्भुत सम्पत्ति है। इसमें सामाजिक, राजनीतिक आदि जितने वाद हैं, सबका किसी-न-किसी रूपमें परिचय मिल जाता है। पुराणके समान तत्त्वोंका प्रतिपादन करनेवाला और कोई ग्रन्थ इस समय नहीं है। वेदकी शाखाओंमें अधिकांशका लोप हो गया है। इसके पठन-पाठनके लिये विशेष सचेष्ट रहनेकी आवश्यकता है।

श्रेष्ठ भगवद्भक्त कौन हैं ?

ये हिताः सर्वजन्तूनां गतासूया अमत्सराः। वशिनो निस्पृहाः शान्तास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥
कर्मणा मनसा वाचा परपीडां न कुर्वते। अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवताः स्मृताः ॥
सत्कथाश्रवणे येषां वर्तते सात्त्विकी मतिः। तद्भक्तविष्णुभक्ताश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥
मातापित्रोश्च शुश्रूषां कुर्वन्ति ये नरोत्तमाः। गङ्गाविश्वेश्वरधिया ते वै भागवतोत्तमाः ॥
व्रतिनां च यतीनां च परिचर्यापराश्च ये। वियुक्तपरनिन्दाश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥
सर्वेषां हितवाक्यानि ये वदन्ति नरोत्तमाः। ये गुणग्राहिणो लोके ते वै भागवताः स्मृताः ॥
आत्मवत् सर्वभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमाः। तुल्याः शत्रुषु मित्रेषु ते वै भागवतोत्तमाः ॥
अन्येषामुदयं दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवाः। हरिनामपरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥
शिवे च परमेशे च विष्णौ च परमात्मनि। समबुद्ध्या प्रवर्तन्ते ते वै भागवताः स्मृताः ॥

(नारदपुराण १।५)

जो सब जीवोंके हितैषी हैं, जो दूसरोंका दोष नहीं देखते, जो किसीसे डाह नहीं करते, मन-इन्द्रियोंको वशमें रखते हैं, निःस्पृह और शान्त हैं, वे उत्तम भगवद्भक्त हैं। जो कर्म, मन और वचनसे दूसरोंको पीड़ा नहीं पहुँचाते, जिनका संग्रह करनेका स्वभाव नहीं है, वे भगवद्भक्त हैं। जिनकी सात्त्विकी बुद्धि उत्तम भगवत्कथा सुननेमें लगी रहती है तथा जो भगवान् और उनके भक्तोंके भी भक्त हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो श्रेष्ठ मनुष्य माता-पिताके प्रति गङ्गा और विश्वनाथका भाव रखकर उनकी सेवा करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो व्रतधारियों और यतियोंकी सेवामें लगे रहते हैं और परायी निन्दा कभी नहीं करते, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष सबके लिये हितभरे वचन बोलते हैं और केवल गुणोंको ही ग्रहण करते हैं, वे इस लोकमें भगवद्भक्त हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष समस्त जीवोंको अपने ही समान देखते हैं तथा शत्रु-मित्रमें भी समान भाव रखते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं। जो मनुष्य दूसरोंका अभ्युदय देखकर प्रसन्न होते हैं और सदा हरिनामपरायण रहते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं और जो परमेश्वर शिव एवं परमात्मा विष्णुके प्रति समबुद्धिसे बर्ताव करते हैं, वे श्रेष्ठ भगवद्भक्त हैं।

प्रधान वर्ण्य विषय

पञ्चलक्षणात्मक विषय

'इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्'—इतिहास एवं पुराणोंसे वेदार्थका उपबृंहण करना चाहिये, क्योंकि ये वेदके उपबृंहण हैं। वेदादि शास्त्रों, मन्वादि धर्मशास्त्रों, वेदान्तादि दर्शनशास्त्रों तथा पुराणेतिहास-ग्रन्थों—इन सभी शास्त्रोंका लक्ष्य है जीवका कल्याण करना। जीवका श्रेयः सम्पादन तथा उसे भगवत्प्राप्ति (मुक्ति) करा देनेमें ही इन सद्ग्रन्थोंका पर्यवसान है, यह आत्यन्तिक सत्य है। किंतु यहाँ एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि 'वेदादिके उपस्थित रहनेपर भी इन पुराणग्रन्थोंके आविर्भावकी क्या आवश्यकता पड़ी? जब सभी शास्त्रोंका प्रतिपाद्य एक ही है, सभीका लक्ष्य एक ही है, तब पुराणोंकी क्या उपयोगिता रह जाती है और पुराणों तथा अन्य शास्त्रोंमें क्या अन्तर रह जाता है? बात ठीक है, विचारणीय भी है, किंतु यह तथ्य सर्वदा अविस्मरणीय है कि महर्षि वेदव्यासजी त्रिकालदर्शी थे, जीवमात्रपर उनका यह परम अनुग्रह है कि उन्होंने भगवत्प्राप्तिके साधनोंका जैसा समावेश पुराणों तथा उपपुराणोंमें कर दिया है, वैसा वर्णन किसी भी शास्त्रमें नहीं मिलता। वेदादिके दुरूहतम रहस्योंको भी आख्यान-शैलीके माध्यमसे सरलतम बनाकर पुराणोंमें विस्तारसे समझाया गया है, जिसे एक साधारण बुद्धिका मानव भी अच्छी तरह ग्रहण कर सकता है। यह पुराणोंका अद्भुत वैशिष्ट्य है। विषयगत वैशद्यता भी उसका अपना ही वैशिष्ट्य है। उनमें लौकिक तथा पारलौकिक ज्ञानकी सभी बातोंको—जिनका बीज-रूपमें सूत्रपात वेदादि ग्रन्थोंमें हुआ है, विस्तारसे समझाया गया है। तथापि पुराणोंके अपने कुछ मुख्य प्रतिपाद्य विषय हैं, जिनकी उपस्थितिपर ही तत्तद्-ग्रन्थोंकी 'पुराण' संज्ञा होती है। पुराणोंकी परिभाषा बताते हुए सभीने यह स्वीकार किया है कि ज्ञात-सत्यार्थभूत-पञ्चलक्षणात्मक आख्यान-उपाख्यान, प्रबन्ध-कल्पनासे युक्त ग्रन्थोंका नाम पुराण है। इस सम्बन्धमें सभी पुराणोंमें प्रायः स्वल्पशब्दान्तरसे निम्नश्लोक प्राप्त होता है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

अर्थात् १-सर्ग, २-प्रतिसर्ग, ३-वंश, ४-मन्वन्तर तथा ५-वंशानुचरित—पुराणों तथा उपपुराणोंके ये पाँच लक्षण हैं। अर्थात् ये ही पाँच विषय पुराणोंके मुख्य प्रतिपाद्य हैं। विष्णुपुराणके आरम्भमें यह स्पष्ट किया गया है कि इन प्रधान विषयोंके अन्तर्गत किन-किन बातोंका समावेश होता है। जगत् तथा उसके नाना पदार्थोंकी उत्पत्ति अथवा सृष्टिको 'सर्ग' कहा जाता है। सृष्टिके विपरीत अर्थात् प्रलय तथा पुनः सृष्टि-करणको 'प्रतिसर्ग' कहा जाता है। देव, ऋषि तथा मनुष्योंकी संतान-परम्पराका उल्लेख करना 'वंश' कहलाता है तथा सृष्टिक्रमकी काल-गणना 'मन्वन्तर' में मानी जाती है और महर्षियों तथा राजाओंके चरित्रोंके वर्णनको 'वंशानुचरित' कहते हैं।

दशलक्षणात्मक विषय

सभी पुराणोंने उपर्युक्त पञ्चलक्षणोंको ही पुराण तथा उपपुराणोंका प्रमुख वर्ण्य विषय बताया है, किंतु श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणमें पुराणोंके दस विषयोंका परिगणन करते हुए पाँच लक्षणोंसे युक्त पुराणोंको उपपुराण तथा दस लक्षणोंवाले पुराणोंको महापुराण कहा है। इसका क्या रहस्य है, इससे पूर्व यह जानना आवश्यक है कि ये दस विषय कौन-कौनसे हैं?

श्रीमद्भागवत (२।१०।१-२) में पुराणोंके दस लक्षण इस प्रकार बताये गये हैं—

अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः।
मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः॥
दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्।
वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा॥

अर्थात् 'इस भागवतपुराणमें सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय—इन दस विषयोंका वर्णन है। इनमें जो दसवाँ आश्रय-तत्त्व है,

उसीका ठीक-ठीक निश्चय करनेके लिये कहीं श्रुतिसे, कहीं तात्पर्यसे और कहीं दोनोंके अनुकूल अनुभवसे महात्माओंने अन्य नौ विषयोंका बड़ी सुगम रीतिसे वर्णन किया है।'

ईश्वरकी प्रेरणासे गुणोंमें क्षोभ होकर रूपान्तर होनेसे जो आकाशादि पञ्चभूत, शब्दादि तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ, अहंकार और महत्तत्त्वकी उत्पत्ति होती है उसे 'सर्ग' कहते हैं। उस विराट् पुरुषसे उत्पन्न ब्रह्माजीके द्वारा जो विभिन्न चराचर सृष्टियोंका निर्माण होता है, उसका नाम है 'विसर्ग'। प्रतिपल नाशकी ओर बढ़नेवाली सृष्टिको एक मर्यादामें स्थिर रखनेसे भगवान् विष्णुकी जो श्रेष्ठता सिद्ध होती है, उसका नाम है 'स्थान'। अपने द्वारा सुरक्षित सृष्टिमें भक्तोंके ऊपर उनकी जो कृपा होती है, उसका नाम है 'पोषण'। मन्वन्तरोंके अधिपति जो भगवद्भक्ति और प्रजापालनरूप शुद्ध धर्मका अनुष्ठान करते हैं, उसे 'मन्वन्तर' कहते हैं। जीवोंकी वे वासनाएँ जो कर्मके द्वारा उन्हें बन्धनमें डाल देती हैं, 'ऊति' नामसे कही जाती हैं। भगवान्के विभिन्न अवतारोंके और उनके प्रेमी भक्तोंकी विविध आख्यानोंसे युक्त गाथाएँ 'ईशकथा' हैं। जब भगवान् योगनिद्रा स्वीकार करके शयन करते हैं, तब इस जीवका अपनी उपाधियोंके साथ उनमें लीन हो जाना 'निरोध' कहलाता है। अज्ञानकल्पित कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अनात्मभावका परित्याग करके अपने वास्तविक स्वरूप परमात्मामें स्थित होना ही 'मुक्ति' है। इस चराचर जगत्की उत्पत्ति और प्रलय जिस तत्त्वसे प्रकाशित होते हैं, वह परम ब्रह्म ही 'आश्रय' हैं। इसीको परमात्मा कहा गया है। यही परमात्मा सबका अधिष्ठान—आश्रय-तत्त्व है। उसका आश्रय वह स्वयं ही है, दूसरा कोई नहीं।

इन्हीं दस लक्षणोंको कुछ शब्दान्तरके साथ श्रीमद्-भागवतके ही द्वादश स्कन्धके सातवें अध्यायके नवें श्लोकमें इस प्रकार बताया गया है—

सर्गोऽस्याथ विसर्गश्च वृत्ती रक्षान्तराणि च।
वंशो वंशानुचरितं संस्था हेतुरपाश्रयः॥

अर्थात् १-सर्ग, २-विसर्ग, ३-वृत्ति, ४-रक्षा, ५-मन्वन्तर, ६-वंश, ७-वंशानुचरित, ८-संस्था, ९-हेतु तथा १०-अपाश्रय-ये दस लक्षण पुराणोंके हैं।

जब मूलप्रकृतिमें लीन गुण क्षुब्ध होते हैं, तब महत्तत्त्वकी उत्पत्ति होती है। महत्तत्त्वसे तामस, राजस और वैकारिक (सात्त्विक) तीन प्रकारके अहंकार बनते हैं। त्रिविध अहंकारसे ही पञ्चतन्मात्रा, इन्द्रिय और विषयोंकी उत्पत्ति होती है। इसी उत्पत्ति-क्रमका नाम 'सर्ग' है। परमेश्वरके अनुग्रहसे सृष्टिकी सामर्थ्य प्राप्त करके महत्तत्त्व आदि पूर्वकर्मोंके अनुसार अच्छी और बुरी वासनाओंकी प्रधानतासे एक बीजसे दूसरे बीजके समान जो यह चराचर शरीरात्मक जीवकी उपाधिकी सृष्टि करते हैं, इसे 'विसर्ग' कहते हैं। चर प्राणियोंके लिये अचर-पदार्थ—जीवन-निर्वाहकी सामग्री 'वृत्ति' है।

भगवान् युग-युगमें पशु-पक्षी, मनुष्य, ऋषि, देवता आदिके रूपमें अवतार ग्रहण करके अनेक लीलाएँ करते हैं। इन्हीं अवतारोंमें वे वेदधर्मके विरोधियोंका संहार भी करते हैं। उनकी यह अवतार-लीला विश्वकी रक्षाके लिये होती है, इसीलिये उसका नाम 'रक्षा' है। मनु, देवता, मनुपुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान्के अंशावतार—इन्हीं छः बातोंकी विशेषतासे युक्त समयको 'मन्वन्तर' कहते हैं। ब्रह्माजीसे जितने राजाओंकी सृष्टि हुई है, उनकी भूत, भविष्य और वर्तमानकालीन संतान-परम्पराको 'वंश' कहते हैं। उन राजाओं तथा उनके वंशधरोंके चरित्रका नाम 'वंशानुचरित' है। इस विश्व-ब्रह्माण्डका स्वभावसे ही प्रलय हो जाता है। इस प्रलयके चार भेद हैं—नैमित्तिक, प्राकृतिक, नित्य और आत्यन्तिक। तत्त्वज्ञ विद्वानोंने इन्हींको 'संस्था' कहा है। पुराणोंके लक्षणमें 'हेतु' नामसे जिसका व्यवहार होता है, वह 'जीव' ही है; क्योंकि वास्तवमें वही सर्ग-विसर्ग आदिका 'हेतु' है और अविद्यावश अनेक प्रकारके कर्मकलापमें उलझ गया है। जो लोग उसे चैतन्यप्रधानकी दृष्टिसे देखते हैं, वे उसे अनुशयी अर्थात् प्रकृतिमें शयन करनेवाला कहते हैं और जो उपाधिकी दृष्टिसे कहते हैं, वे उसे अव्याकृत अर्थात् प्रकृतिरूप मानते हैं। जीवकी वृत्तियोंके तीन विभाग हैं—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति। जो इन अवस्थाओंमें इनके अभिमानी विश्व, तैजस और प्राज्ञके मायामय रूपोंमें प्रतीत होता है और इन अवस्थाओंसे परे तुरीयतत्त्वके रूपमें भी लक्षित होता है, वही ब्रह्म है, उसीको यहाँ 'अपाश्रय' शब्दसे कहा गया है।

श्रीमद्भागवतके दो स्थलोंपर निर्दिष्ट उपर्युक्त दस लक्षणोंमें सर्वथा साम्य है, यह बात दोनोंके अर्थावबोधसे स्पष्ट

हो जाती है। शब्दान्तर है, परंतु तात्पर्यमें अभेद है। निम्न तालिकासे यह स्पष्ट हो जायगा कि किस विषयका किसके साथ साम्य है—

क्रम	द्वितीय स्कन्धके विषय	द्वादश स्कन्धके विषय
१-	सर्ग	सर्ग
२-	विसर्ग	विसर्ग
३-	स्थान	वृत्ति
४-	पोषण	रक्षा
५-	ऊति	हेतु
६-	मन्वन्तर	अन्तर
७-	ईशानुकथा	वंश-वंशानुचरित
८-	निरोध	संस्था—नित्य-प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृतिक प्रलय
९-	मुक्ति	संस्था—आत्यन्तिक प्रलय
१०-	आश्रय	अपाश्रय

श्रीमद्भागवतके समान ही ब्रह्मवैवर्तपुराणने भी पुराणोंको दशलक्षणात्मक बताते हुए उनके दस विषयोंको इस प्रकार गिनाया है—

सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्च स्थितिः तेषां च पालनम्।
कर्मणां वासना वार्ता मनूनां च क्रमेण च॥
वर्णनं प्रलयानां च मोक्षस्य च निरूपणम्।
तत्कीर्तनं हरेरेव वेदानां च पृथक् पृथक्॥
दशाधिकं लक्षणं च महतां परिकीर्तितम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १३३।८-१०)

अर्थात् 'सृष्टि, विसृष्टि, स्थिति, उनका पालन, कर्मोंकी वासना, मनुओंका वर्णन, प्रलयोंका वर्णन, मोक्षका निरूपण, श्रीहरिका गुणगान तथा देवताओंका पृथक्-पृथक् वर्णन—ये दस विषय पुराणोंके हैं।' ध्यानसे देखनेपर यह निश्चित होता है कि श्रीमद्भागवतके दस लक्षणोंको ही यहाँ शब्दान्तरके साथ कहा गया है। अर्थमें कोई भेद नहीं है।

पाँच लक्षणोंमें दस लक्षणोंका अन्तर्भाव

सूक्ष्म विवेचन करनेपर यही निष्कर्ष निकलता है कि अन्य पुराणोंमें सर्ग-प्रतिसर्ग आदि जो पाँच विषय गिनाये गये हैं, श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्तमें उन्हींको विस्तृत कर दस विषय कहा गया है। यह भी कहा जा सकता है कि दशलक्षणात्मक विषय पूर्वोक्त पाँच विषयोंकी विस्तृत व्याख्या-स्वरूप ही हैं। दस लक्षणवाले पुराणको महापुराण मानना तथा पाँच लक्षणवाले पुराणको उपपुराण माननेकी जो बात श्रीमद्भागवतमें कही गयी है, उसका तात्पर्य मात्र यही है कि वह श्रीमद्भागवतका ही मुख्य रूपसे लक्षण है, पुराण-सामान्यका नहीं। क्योंकि ऐसा न माननेपर अर्थात् दशलक्षणात्मक पुराणोंको ही महापुराण माननेपर तो केवल श्रीमद्भागवत तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण—ये दो ही महापुराणकी कोटिमें आयेंगे, अन्य सभी उपपुराण कहे जायँगे। तब तो कहीं अतिव्याप्ति होगी, कहीं अव्याप्ति हो जायगी। जबकि लक्षण या परिभाषाको अतिव्याप्ति, अव्याप्ति तथा असम्भव—इन तीन दोषोंसे रहित होना चाहिये। पुराणोंमें विशेष आदरके योग्य विष्णु, पद्म, स्कन्द, मत्स्य तथा वायु आदिमें यद्यपि दस लक्षणोंकी बात स्पष्ट-रूपसे नहीं दीखती तथापि वे सभी विषय इनमें आ गये हैं। अतः इस दृष्टिसे भी ये उपपुराण नहीं कहे जा सकते।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवत तथा विष्णुपुराणमें भी अद्भुत साम्य है। दोनोंके विषय प्रायः एक समान हैं। ऐसी स्थितिमें विष्णुको उपपुराण कथमपि नहीं कहा जा सकता। अतः महापुराणोंके लिये पाँच लक्षणोंका होना आवश्यक है न कि दस लक्षणोंका। वास्तवमें स्थिति यह है कि जो दस विषय बताये गये हैं, उनमेंसे सर्ग, विसर्ग, वंश, वंशानुचरित तथा मन्वन्तर—इन पाँच विषयोंको तो उसमें शब्दतः ग्रहण किया ही गया है, शेष पाँचका भी अन्तर्भाव इन्हीं पाँचोंमें हो जाता है, इसका विशेष विवेचन न करके यहाँ एक तालिका प्रस्तुत की जा रही है, जिससे यह बात स्पष्ट हो जायगी—

१-*सर्ग*—**सर्ग, विसर्ग, हेतु, ऊति, आश्रय, अपाश्रय।**
२-*प्रतिसर्ग*—**संस्था, निरोध।**
३-*मन्वन्तर*—**अन्तर।**
४-५-*वंश-वंशानुचरित*—**वंश, वृत्ति, स्थान-रक्षा, पोषण-ईशानुकथा।**

जिन विद्वानोंने बहुत अधिक परिश्रमसे ऊहापोहपूर्वक दस लक्षण और पाँच लक्षणोंकी तुलना की है, वे सभी अन्तमें इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि पञ्चलक्षणात्मकता ही वास्तविक

रूपसे पुराणोंकी मुख्य परिभाषा और स्वरूप है और सभी दस लक्षण इन पाँचोंमें ही अन्तर्निहित रहते हैं।

पुराणोंके पाँच लक्षणों अथवा पाँच विषयोंके स्थिर हो जानेपर एक महत्त्वपूर्ण बात यह हो जाती है कि पञ्च-लक्षणात्मक जो वर्णन पुराणोंमें है, उस वर्णनका लक्ष्य भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष-रूपसे ईश्वरतत्त्वका ही निरूपण करना है, क्योंकि सभी पुराणोंने उसे ही अन्तिम सत्य स्वीकार किया है। उसे कहीं विष्णु, कहीं कृष्ण, कहीं शिव तथा कहीं देवी कहा गया है और यही भक्तितत्त्वका बीजभूत भी है। विष्णुपुराणने (१।१।३१में) तो स्पष्ट ही कह दिया है कि—

विष्णोः सकाशादुद्भूतं जगत् तत्रैव च स्थितम्।
स्थितिसंयमकर्तासौ जगतोऽस्य जगच्च सः॥

अर्थात् 'यह जगत् विष्णुसे उत्पन्न हुआ है, उन्हींमें स्थित है, वे ही इसकी स्थिति और लयके कर्ता हैं तथा यह जगत् भी वे ही हैं।'

इसीलिये श्रीमद्भागवतमें दस लक्षणोंके विवेचन-प्रसंगमें कह दिया गया है कि दसवाँ जो आश्रय (ब्रह्म, भगवान्) नामक तत्त्व है, उसीके स्वरूप-परिज्ञानके लिये ही नौ तत्त्वोंको बताया गया है। स्कन्दपुराणका कथन है कि वेदादि शास्त्रों, रामायण, महाभारत और पुराणोंमें आदि-मध्य तथा अन्तमें अर्थात् सर्वत्र हरिका ही गुणगान रहता है[1]। इससे यह स्पष्ट होता है कि मुख्य तथा अवान्तररूपसे 'भगवच्चर्चा' ही पुराणोंका अन्यतम प्रतिपाद्य विषय है। आख्यानों, उपाख्यानों तथा गाथाओंके द्वारा पुराणोंमें उसी परम प्रभुकी महिमाका गान किया गया है।

पुराणोंमें सभी शास्त्रों, विद्याओं, कलाओं तथा ज्ञान-विज्ञानका समावेश

पुराण अनन्त ज्ञान-राशिके भण्डार हैं। इनका साहित्य अत्यन्त विशाल है। लौकिक तथा पारलौकिक ज्ञान-विज्ञानके सभी विषय इनमें भरे पड़े हैं। सृष्टिसे आजतकके तथा भविष्यके भी इतिहासको ये अपनेमें सँजोये हुए हैं। पुराणोंका आविर्भाव वेदार्थके उपबृंहणके लिये हुआ है। वर्तमानकालतक जितने ज्ञान-विज्ञान, कला तथा विद्याके क्षेत्रोंका और उनकी शाखा-प्रशाखाओंका आविष्कार हुआ है, त्रिकालदर्शी ऋषियोंने इन सभीका सारांश सूक्ष्मरूपसे इन पुराणोंमें संनिवेश किया है। इनका महर्षि वेदव्यासजीने सुचारुरूपसे सम्पादन और वर्गीकरण कर पुराण-ग्रन्थोंके रूपमें प्रस्तुत किया है। महर्षि वेदव्यासजीका यह अद्भुत वैशिष्ट्य है कि उन्होंने वेदादि शास्त्रोंमें प्रतिपादित जटिलतम विषयोंको भी आख्यान तथा उपाख्यानोंके माध्यमसे सर्वसाधारणके लिये भी बोधगम्य बना दिया है। यद्यपि पुराणों तथा उपपुराणोंमें कथाभाग अधिक है तथापि जिज्ञासुओंके लिये अनेक विद्या, कला, ज्ञान, विज्ञान तथा शास्त्रोंका भी इनमें सूक्ष्म किंतु पुराण-शैलीमें सुस्पष्ट-बोधगम्य विवेचन हुआ है। इस प्रकारके पुराणोंमें वायु, ब्रह्माण्ड, अग्नि, गरुड, नारद, शिवधर्मोत्तर तथा विष्णुधर्मोत्तर प्रमुख रूपसे गणनीय हैं। अग्निपुराणमें तो सभी विद्याओं (परा, अपरा) को बताया गया है—**'आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वविद्याः प्रदर्शिताः।'** (अग्नि० ३८३।५१)। विश्वकोशोंकी परम्परा इन्हींको देखकर आरम्भ हुई होगी। अतः प्राचीनतम विश्वकोश होनेपर भी पवित्रता, रचना-सौष्ठव और श्रेष्ठ पद्यबद्धताको देखते हुए ये आज भी सबसे श्रेष्ठ हैं। ये कण्ठस्थ करनेमें सुगम हैं। इन पुराणों तथा उपपुराणोंमें इतने अधिक विषयोंका समावेश है कि यदि उसकी एक सूचीमात्र भी बनायी जाय तो एक विशाल ग्रन्थ तैयार हो जायगा, क्योंकि विद्याएँ तथा कलाएँ अनन्त हैं, उनकी कोई इयत्ता नहीं है, उनका परिगणन असम्भव-सा है। तथापि पुराणोंमें एवं उपपुराणोंमें वेदादि शास्त्रों, मन्वादि धर्मशास्त्रों तथा अन्य कला-विज्ञान एवं उनके विषयोंका जिस रूपमें समावेश हुआ है, उसका संख्या-निर्देशपूर्वक

१-वेदे रामायणे चैव पुराणेषु च भारते। आदिमध्यावसानेषु हरिरेकोऽत्र नापरः॥ (स्कन्द० काशी० ९५।१२, हरिवंश २।४९ में भी कुछ शब्दान्तरसे यह स्लोक प्राप्त होता है।)

संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है, विशेष जानकारीके लिये पुराण-वाङ्मयका गम्भीर अध्ययन करना चाहिये।

चार वेद—पुराणोंमें वेदोंका ही विस्तार है। यह तथ्य निर्विवाद है। चारों संहिताओं, ब्राह्मण-ग्रन्थों तथा आरण्यकोंके विषय यहाँ पर्याप्त रूपसे विवेचित हैं। ऋग्वेद[१]की पूरी जानकारीके लिये विष्णुपुराणके तृतीय अंशके चतुर्थ अध्यायका अवलोकन किया जा सकता है। इसी प्रकार यजुर्वेद[२] शुक्ल तथा कृष्ण—दोनों शाखाओंका विशद वर्णन उसीके पाँचवें अध्यायमें है। फिर साम[३] तथा अथर्ववेदकी[४] शाखा-प्रशाखाओंका विवेचन छठे अध्यायमें हुआ है। इसी प्रकार श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धके छठे तथा सातवें अध्यायमें चारों वेदोंकी शाखा-प्रशाखाओंका सूक्ष्म वर्णन है। अग्निपुराणमें ऋग्विधान, यजुर्विधान आदि चारों वेदोंके विधान-ग्रन्थोंका सम्यक् रूपसे समावेश किया गया है। इसीके साथ वेदोंके मन्त्र और सूक्त भी विभिन्न कर्मकाण्डोंके प्रसङ्गमें उल्लिखित हैं। वैष्णवोंमें भागवत तथा विष्णु आदि पुराणोंकी एवं 'पुरुषसूक्त' की महिमा अपरिमेय है। भागवत तथा विष्णु आदि पुराणोंने समग्ररूपसे इसका अनेक बार उल्लेख किया है। पुराणोंमें वैदिक संहिताओंके मन्त्रोंकी व्याख्या भी विस्तारसे मिलती है। **'विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्र वोचम्'** (ऋक्० १।१५४।१) की व्याख्या भागवत (२।७।४०)में की गयी है। यहाँतक कि किंचित् शब्दान्तरके साथ पूरा मन्त्र यथावत् मिलता है। इसी प्रकार **'ईशावास्यमिदं सर्वम्०'** इस ईशोपनिषद्के मन्त्रकी व्याख्या भागवत (८।१।१०) में मिलती है। **'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया०'** (ऋग्वेद १।१६४।२०, अथर्व० ९।९।२०) नामक प्रसिद्ध वैदिक मन्त्रकी व्याख्या भागवतके एकादश स्कन्धके ग्यारहवें अध्यायके छठे श्लोकमें बड़ी विशदतासे की गयी है। इसी प्रकार **'चत्वारि शृंगा त्रयोऽस्य पादाः०'** इस ऋग्वेदके पूरे मन्त्रको भागवतने ८।१६।३१ में यथावत् लेते हुए इसका यज्ञपरक अर्थ किया है। वैदिक मन्त्रों तथा सूक्तोंके साथ ही वेदोंमें वर्णित आख्यानोंको पुराणोंमें विस्तारसे देखा जा सकता है, जैसे विष्णु आदिके अवतारकी कथाएँ, पुरूरवा-उर्वशी-आख्यान, शुनःशेप-आख्यान, नाचिकेतोपाख्यान, वृत्रासुर-आख्यान आदि। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि संहिताओंके विषय पुराणोंमें विशद-रूपसे विवेचित हैं।

चार उपवेद—आत्यन्तिक सूक्ष्म गवेषणापूर्वक विचार करनेपर ऋग्वेदका स्थापत्यवेद[५], यजुर्वेदका धनुर्वेद[६], सामवेदका गान्धर्ववेद[७] और अथर्ववेदका आयुर्वेद[८] उपवेद निश्चित होता है। विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें इन चारों उपवेदोंका साङ्गोपाङ्ग वर्णन हुआ है। स्थापत्यवेद और शिल्पशास्त्रका वर्णन इसमें सर्वाधिक विस्तारसे है। धनुर्वेदका ही वर्णन इसमें प्रायः सौ अध्यायोंमें प्राप्त होता है। गरुडपुराण अध्याय १४६से २०४ तक आयुर्वेदका सम्यक् वर्णन है।

आयुर्वेदके उपभेदोंका भी वर्णन पुराणोंमें प्राप्त होता है। अग्निपुराणके २८९वें अध्यायमें शालिहोत्रसार अश्वायुर्वेदका[९] वर्णन है और २९१वें अध्यायमें बुधके ग्रन्थ गजवैद्यकका सारांश वर्णित है, जिसे गजायुर्वेद[१०] कहा गया है। इसके साथ ही २९२वें अध्यायमें गवायुर्वेदका[११] तथा शान्त्यायुर्वेदका[१२] वर्णन है। इनमें घोड़े, हाथी तथा गाय आदिकी चिकित्साका वर्णन मिलता है। इसी अग्निपुराणके २८२वें अध्यायमें वृक्षायुर्वेदका[१३] भी वर्णन है। इसका अधिक वर्णन विष्णुधर्मोत्तरमें है। अन्य पशुओंकी चिकित्सा, उनके लक्षण तथा शान्तिके मन्त्र भी विष्णुधर्मोत्तर, अग्नि तथा गरुडपुराणमें विस्तारसे विवेचित हैं।

छः वेदाङ्ग—वेदाङ्गोंमें व्याकरण[१४] प्रमुख है। इसका नारदपुराणके पूर्वभागके द्वितीय पादके ५१वें अध्यायमें सूक्ष्म किंतु सुन्दर विवेचन हुआ है। नारदपुराणका व्याकरण 'कातन्त्र'-व्याकरणका सार है, जिसे माहेश्वर या कौमार-व्याकरण कहा जाता है। इसी प्रकार अग्निपुराणके ३४९वें अध्यायसे ३५९वें अध्यायतक लगभग १० अध्यायोंमें व्याकरणशास्त्रका वर्णन है। छन्दःशास्त्र[१५] या पिङ्गलशास्त्रका वर्णन गरुडपुराणके २०७ से २१२ अध्यायतक, नारदपुराणके पूर्व-भागके द्वितीय पादके ५७वें अध्यायमें वैदिक तथा लौकिक छन्दोंका वर्णन है। इसी प्रकार अग्निपुराणके ३२८वें अध्यायसे ३३५ अध्यायतक

छन्दःशास्त्रका विशद निरूपण मिलता है। ज्योतिषशास्त्रके[१६] लिये नारदपुराण तथा विष्णुधर्मोत्तरका विवेचन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। नारदपुराणके तीन अध्यायों (१।२।५४-५६) में त्रिस्कन्ध ज्योतिष (सिद्धान्त, संहिता तथा होरा) का सुन्दर निरूपण है जो नारदीय ज्योतिषके नामसे विख्यात है। निरुक्त[१७] सम्बन्धी सामग्री पुराणोंमें अत्यल्प है। नारदपुराणके पूर्वभागके द्वितीय पादके ५३वें अध्यायमें निरुक्तसे सम्बद्ध थोड़ेसे श्लोक प्राप्त होते हैं, जो मुख्यतया व्याकरणशास्त्रके स्वरवैदिक-प्रक्रिया एवं धातुप्रकरणसे अभिन्न-से प्रतीत होते हैं।

वेदादिके पाठका विधान, स्वरोंके उच्चारणकी विधि, सामवेदकी गान-प्रक्रिया और वर्णोंके स्पष्ट उच्चारणकी विधि जिस शास्त्रमें वर्णित हो उसे 'शिक्षा'[१८] शास्त्र कहा जाता है। इसका वर्णन नारदपुराणके पूर्वभागके द्वितीय पादके ५०वें अध्यायमें प्रायः तीन सौ श्लोकोंमें तथा अग्निपुराणके ३३६ वें अध्यायमें हुआ है। कल्पों[१९] का वर्णन प्रायः पुराणोंमें भरा पड़ा है। कल्पमें वैदिक एवं लौकिक कर्मकाण्डोंका समन्वय है, जिनमें श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, स्मार्तसूत्र और शुल्बसूत्र—ये चार गृहीत होते हैं। इनका वर्णन भविष्यपुराणमें सर्वाधिक है, जिसमें यज्ञ, इष्टापूर्त तथा संस्कारकी विधियाँ कही गयी हैं। वैसे कल्पोंके पाँच भेद होते हैं—(१) नक्षत्रकल्प, (२) वैतानकल्प, (३) संहिताविधानकल्प, (४) आङ्गिरसकल्प और (५) शान्तिकल्प। नक्षत्रकल्पमें यज्ञ और संस्कार आदि कर्मोंके मुहूर्तोंका निर्णय होता है। वैतानकल्पमें यज्ञों (हविर्यज्ञ, सोमयज्ञ और पाकयज्ञ—इन तीन संस्थाओं) की साङ्गोपाङ्ग विधि निरूपित होती है। संहिताकल्पमें विशेषकर वेदनिर्दिष्ट अश्वमेध, राजसूयादि यज्ञों और उससे भिन्न भी सभी विधियोंकी सम्पादन-प्रक्रिया प्राप्त होती है। आङ्गिरसकल्पमें शत्रु-राष्ट्रोंके लिये मारण, मोहन, वशीकरण तथा उच्चाटनादि अभिचारकर्मोंका निर्देश है। शान्तिकल्पमें विविध दैव, अन्तरिक्ष, अद्भुत आदि उत्पातों, ईति, भीति आदि भयोंके निवारणका तथा शत्रुराष्ट्रोंद्वारा किये गये मारण-मोहनादि प्रयोगोंकी शान्तिविधिका वर्णन है। ये सभी विषय पुराणोंमें विशेषकर भविष्य, अग्नि, गरुड तथा विष्णुधर्मोत्तरमें विस्तारसे प्राप्त होते हैं।

षड्दर्शन—पुराणोंमें सर्वदर्शनसंग्रहके सभी दर्शनोंके मूलभूत सिद्धान्तोंका समावेश हो गया है। इनमें सबसे प्राचीनतम दर्शन सांख्यदर्शन[२०] माना जाता है। सांख्यशास्त्रका साङ्गोपाङ्ग वर्णन ब्रह्मपुराणके २३५वें अध्यायसे लेकर २४४ तक प्रायः दस अध्यायोंमें हुआ है, जो करालजनक तथा महर्षि वसिष्ठके संवादके रूपमें वर्णित है। भागवतके तीसरे स्कन्धके दस अध्यायोंमें कपिल-देवहूति-संवादमें सेश्वर-सांख्यका वर्णन हुआ है, जिसमें २५ तत्त्वोंका विस्तारसे विवेचन है; किंतु एकादश स्कन्धके २२वें अध्यायमें २८ तत्त्वतक परिगणित हुए हैं। योग[२१] का विषय प्रायः प्रत्येक पुराणोंमें आया है; किंतु सबसे विशद वर्णन तथा योगदर्शनके साक्षात् पद्यबद्धानुवाद-जैसा ही वर्णन लिंगपुराणके पूर्वार्धके ८ से १० अध्यायों तथा ६६ से ८८ अध्यायोंमें हुआ है। प्राचीनतम योगशास्त्रका विशद वर्णन विष्णुपुराणके ६ठे अंशमें खाण्डिक्य और केशिध्वजके संवादमें तथा स्कन्दपुराणके काशीखण्डके ४१वें अध्यायमें लगभग १९० श्लोकोंमें हुआ है।

पूर्वमीमांसा[२२], प्राचीनन्याय[२३] नव्यन्याय और वैशेषिकदर्शनका[२४] पुराणोंमें यद्यपि स्वतन्त्र शीर्षकके रूपमें वर्णन परिलक्षित नहीं होता तथापि पुराणोंके विभिन्न प्रकरणोंमें इन दर्शनोंके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन हुआ है। विष्णुधर्मोत्तर-पुराणके तृतीय खण्डके चार, पाँच तथा छः अध्यायोंमें इनका कुछ संक्षेपसे किंतु अतिस्पष्ट विवेचन किया गया है। वहाँ न केवल विवेचन ही है, अपितु अत्यन्त प्रौढ़ पदावलीमें दर्शन-शास्त्रोंकी भाँति गद्ययुक्त लम्बे सूत्रोंद्वारा पारिभाषिक शब्दावलीमें उनके विषयोंको वर्गीकृत कर समझाया गया है। उदाहरणके लिये न्यायदर्शनके पदार्थोंकी परिगणना इस प्रकार की गयी है—'**अधिकरणं योगः पदार्थः हेत्वर्थ उद्देश्यो निदेशः प्रदेशोऽतिदेशः अपवर्गो वाक्यविशेषोऽर्थापत्तिः प्रसंग एकान्तो नैकान्तः पूर्वपक्षो निर्णयो विधानपर्यायोऽति-क्रान्तावेक्षणं संशयो व्याख्यानमनुमतिः स्वसंज्ञानिर्वचनं दृष्टान्तो वियोगो विकल्पः समुच्चयोऽर्थ इति।**' (विष्णुधर्मो॰ ३।६ गद्यभाग)।

आत्मतत्त्व, औपनिषदज्ञान, उत्तरमीमांसा, ब्रह्मसूत्र या

वेदान्तका[२५] निर्देश सभी पुराणोंमें विस्तारसे हुआ है। जिनमें भागवतका एकादश स्कन्ध, विष्णुपुराणका छठा अंश, गरुडपुराणके पूर्वभागके २३५ से २३९ तकके अध्याय मुख्य हैं। ब्रह्मसूत्रमें प्रायः आरम्भके सूत्र '**अथातो ब्रह्म-जिज्ञासा**'(१।१।१) से लेकर द्वितीय अध्यायके '**अविरोधश्चन्दनवत्**' (२।३।२३) सूत्रतक इस आत्मतत्त्व (ब्रह्म)की सर्वव्यापकताका वर्णन किया गया है और अन्तमें अर्चि और धूममार्गका सभी श्रुतियोंसे समन्वय दिखाकर आत्माको सर्वव्यापक और मुक्त दिखाया गया है। '**अर्चिरादिना तत्प्रथितेः**' (४।३।१) से ब्रह्मप्राप्तिकी बात कही गयी है। ब्रह्मसूत्रके इन सूत्रोंका भाष्य विष्णुपुराणके द्वितीय अंशके १५ तथा १६ वें अध्यायमें कितने सुन्दर ढंगसे हुआ है, इसके लिये एक श्लोक उदाहरण-स्वरूप दिखलाया जा रहा है, जिसमें ऋभु तथा निदाघके संवादमें आत्मा (परमात्मा)की सर्वव्यापकता दिखलायी गयी है—

एकः समस्तं यदिहास्ति किञ्चित्
तदच्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत्।
सोऽहं स च त्वं स च सर्वमेत-
दात्मस्वरूपं त्यज भेदमोहम्॥

(विष्णु० २।१६।२३)

अर्थात् 'इस संसारमें जो कुछ है,वह सब एक आत्मा ही है और वह अविनाशी है, उससे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। मैं, तू और ये सब आत्म-स्वरूप ही हैं, अतः भेद-ज्ञानरूप मोहको छोड़।'

इसी प्रकार श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके चौदहवें अध्याय तथा तीसरे स्कन्धके ३२वें अध्यायमें वेदान्तके सिद्धान्तोंका महत्त्वपूर्ण वर्णन है। ब्रह्मसूत्रके प्रथम अध्यायके प्रथमपादके द्वितीय सूत्र '**जन्माद्यस्य यतः**' में ब्रह्मका लक्षण किया गया है। श्रीमद्भागवतका प्रारम्भ ही इस सूत्रको लेकर हुआ है। यथा—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥

(१।१।१)

अर्थात् 'जिससे इस जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते हैं—क्योंकि वह सभी सद्रूप पदार्थोंमें अनुगत है और असत्-पदार्थोंसे पृथक् है; जड नहीं चेतन है, परतन्त्र नहीं स्वयं प्रकाश है, जो ब्रह्मा अथवा हिरण्यगर्भ नहीं प्रत्युत उन्हें अपने संकल्पसे ही जिसने उस वेदज्ञानका दान किया है, जिसके सम्बन्धमें बड़े-बड़े विद्वान् भी मोहित हो जाते हैं, जैसे तेजोमय सूर्यरश्मियोंमें जलका, जलमें स्थलका और स्थलमें जलका भ्रम होता है, वैसे ही जिसमें यह त्रिगुणमयी जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिरूपा सृष्टि मिथ्या होनेपर भी अधिष्ठान-सत्तासे सत्यवत् प्रतीत हो रही है, उस अपनी स्वयंप्रकाश ज्योतिसे सर्वदा और सर्वथा माया और मायाकार्यसे पूर्णतः मुक्त रहनेवाले परम सत्यरूप परमात्माका हम ध्यान करते हैं।'

श्रीमद्भागवतके अन्तमें भी स्पष्ट-रूपसे कहा गया है कि 'समस्त उपनिषदोंका सार है ब्रह्म और आत्माका एकत्वरूप अद्वितीय सद्वस्तु।' यही श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य विषय है। इसके निर्माणका प्रयोजन है एकमात्र कैवल्यमोक्ष। इस प्रकार अथ तथा इतिकी एकवाक्यतासे वेदान्तशास्त्रका ही परिपाक श्रीमद्भागवतपुराणमें हुआ है।

वैष्णवदर्शन और **पुराण**—वेदान्त-दर्शनके अन्तर्गत तीन ग्रन्थ हैं—'उपनिषद्', 'वेदान्तसूत्र' तथा 'श्रीमद्भगवद्-गीता।' इन तीनोंको 'प्रस्थानत्रयी' कहा जाता है। प्रथम प्रस्थान अर्थात् ईशादि बारह उपनिषदोंका नाम 'श्रुतिप्रस्थान' है। दूसरा प्रस्थान जिसे 'न्यायप्रस्थान' भी कहते हैं, 'ब्रह्मसूत्र' है। इन ब्रह्मसूत्रोंका नाम वेदान्तसूत्र, शारीरकमीमांसा, उत्तरमीमांसा भी है। ब्रह्मसूत्रोंके रचयिता भगवान् बादरायण अथवा श्रीवेदव्यासजी हैं। तीसरा प्रस्थान 'स्मृतिप्रस्थान' या 'गीता-प्रस्थान' कहलाता है। यहाँ केवल प्रस्थानत्रयीके द्वितीय प्रस्थान ब्रह्मसूत्रके वैष्णव भाष्योंपर विचार किया जा रहा है।

ब्रह्मसूत्रके आधारपर अनेकों वैष्णवाचार्योंने अपने मतवाद स्थापित किये हैं और भाष्यकी रचना की है, जिनमें रामानुजभाष्य, वल्लभाचार्यभाष्य, मध्वाचार्यभाष्य, निम्बार्कभाष्य, भास्कराचार्यभाष्य, विज्ञानभिक्षुभाष्य, श्रीकण्ठाचार्यभाष्य प्रमुख हैं। ये सभी आचार्य शंकरसे

परवर्ती हैं। इन सभी प्रधान आचार्योंने अपने मतवादकी पुष्टिमें उपनिषदोंके साथ-साथ विष्णु, भागवत आदि पुराणोंके अनेक वचनोंको उद्धृत किया है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराणोंमें इन आचार्योंके सिद्धान्तोंका पूर्ण परिपाक उपलब्ध है। यहाँ इन्हीं प्रमुख आचार्योंके मतोंका पौराणिक परिप्रेक्ष्यमें संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

विशिष्टाद्वैतदर्शन[२६]—इसके संस्थापक श्रीरामानुजाचार्य हैं। ब्रह्मसूत्रपर इनकी व्याख्या 'श्रीभाष्य' के नामसे विख्यात है। इनका कहना है कि ब्रह्म एक है और उसमें तीन वस्तुएँ हैं—(१) जड प्रकृति, (२) चेतन आत्मा और (३) सर्वनियन्ता, सत्यज्ञान, आनन्दस्वरूप निखिल कल्याणगुणोंका भाजन परमेश्वर। ब्रह्मका अद्वैत ही इन तीनों पदार्थोंकी समष्टिका नाम है। इस प्रकारके विशिष्ट ब्रह्मको श्रीरामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैत कहते हैं। अपने श्रीभाष्यमें उन्होंने अपने मतकी पुष्टिमें विष्णुपुराणके अनेक वचन उद्धृत किये हैं। आचार्यने विष्णुपुराणके आधारपर पहले परमात्माको ज्ञानस्वरूप मानकर फिर जीव और मायासे विशिष्ट उसे अनेक रूपोंमें विवर्तित दिखाया है और फिर तत्त्वतः उसे परमात्मा माना है। इस सिद्धान्तके प्रतिपादनमें उन्होंने विष्णुपुराणके द्वितीय अंशके १२वें अध्यायके ३९ से ४५ तकके श्लोकोंको विशेष समारोहके साथ अपने श्रीभाष्य (श्रीवत्सप्रदीप, मद्राससे प्रकाशित, वर्ष १९६३)के पृष्ठ २७ में उद्धृत किया है। उनमेंसे एक-दो वचन इस प्रकार हैं। यथा—

ज्ञानस्वरूपो भगवान् यतोऽसावशेषमूर्तिर्न तु वस्तुभेदः।
ततो हि शैलाब्धिधरादिभेदाञ्जानीहि विज्ञानविजृम्भितानि॥

(२।१२।३९)

अर्थात् 'क्योंकि भगवान् विष्णु ज्ञानस्वरूप हैं, इसलिये वे सर्वमय हैं, परिच्छिन्न पदार्थाकार नहीं हैं। अतः इन पर्वत, समुद्र और पृथ्वी आदि भेदोंको तुम एकमात्र विलास जानो।' इसी प्रकार—

यदा तु शुद्धं निजरूपि सर्वं कर्मक्षये ज्ञानमपास्तदोषम्।
तदा हि संकल्पतरोः फलानि भवन्ति नो वस्तुषु वस्तुभेदाः॥

'जिस समय जीव आत्मज्ञानके द्वारा दोषरहित होकर सम्पूर्ण कर्मोंका क्षय हो जानेसे अपने शुद्ध स्वरूपमें स्थित हो जाता है, उस समय आत्मवस्तुमें संकल्पवृक्षके फलरूप पदार्थ-भेदोंकी प्रतीति नहीं होती।' पुनः आगे कहा गया है कि विज्ञानसे अतिरिक्त कभी कहीं कोई पदार्थादि नहीं है। अपने-अपने कर्मोंके भेदसे भिन्न-भिन्न चित्तोंद्वारा एक ही विज्ञान नाना प्रकारसे मान लिया गया है। वह विज्ञान अति विशुद्ध, निर्मल, निःशोक और लोभादि समस्त दोषोंसे रहित है। वही एक सत्स्वरूप परम परमेश्वर वासुदेव है, जिससे पृथक् और कोई पदार्थ नहीं है। केवल एक ज्ञान ही सत्य है, उससे भिन्न और सब असत्य है।

आगे चलकर आचार्यजीने अपने श्रीभाष्यके पृ० ९६ से १०२ तकके पृष्ठोंमें विष्णुपुराणके ६ठे अंशके पाँचवें अध्यायके अनेक श्लोकोंको अपने मतकी पुष्टिमें उल्लिखित किया है। विशेष अध्ययनके लिये श्रीभाष्यका गम्भीर चिन्तन करना चाहिये, जिससे यह स्पष्ट हो जायगा कि पुराणोंमें इस दर्शनकी मूलभित्ति विद्यमान है।

द्वैताद्वैतदर्शन[२७] — इसके प्रवर्तक श्रीनिम्बार्काचार्य हैं। इनके मतमें यद्यपि ब्रह्म अद्वैत है, किंतु उसीमें जीवमय, स्त्री-पुरुषमय, चराचरजगत् विवर्तित है, अतः वह द्वैताद्वैत इस सार्थक नामसे अभिव्यञ्ज्य है। अपनी दशश्लोकीमें भी उन्होंने अपने मतका सार दिया है। उन्होंने अपने मतकी पुष्टिमें विष्णुपुराणके श्लोकोंको प्रमाणस्वरूप उद्धृत किया है। यथा ब्रह्मके निरूपणमें—

आश्रयश्चेतसो ब्रह्म द्विधा तच्च स्वभावतः।
भूप मूर्तममूर्तं च परं चापरमेव च॥
अमूर्तं ब्रह्मणो रूपं यत्सदित्युच्यते बुधैः॥
समस्ताः शक्तयश्चैता नृप यत्र प्रतिष्ठिताः।
तद्विश्वरूपवैरूप्यं रूपमन्यद्धरेर्महत्॥
समस्तशक्तिरूपाणि तत्करोति जनेश्वर।
एतत् सर्वमिदं विश्वं जगदेतच्चराचरम्।
परब्रह्मस्वरूपस्य विष्णोः शक्तिसमन्वितम्॥
एतान्यशेषरूपाणि तस्य रूपाणि पार्थिव।
यतस्तच्छक्तियोगेन युक्तानि नभसा यथा॥
द्वितीयं विष्णुसंज्ञस्य योगिध्येयं महामते।

(विष्णुपुराण ६।अ० ७)

अर्थात् 'राजन्! (भक्तोंके) मन (ध्यान) का आश्रय ब्रह्म है। वह स्वभावसे दो प्रकारका है—मूर्त और अमूर्त अथवा पर और अपर। जो विद्वानोंद्वारा सत् कहा जाता है, वह ब्रह्मका तात्त्विक रूप अमूर्त है। जिसमें समस्त व्यक्त शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं, वह ब्रह्मका दूसरा परम विचित्र विश्वरूप है। संसारकी समस्त शक्तियाँ इसीसे उत्पन्न होती हैं। सारा विश्व, समस्त चराचर-सृष्टि परब्रह्म विष्णुकी शक्तिसे समन्वित है। हे राजन्! ये सब जीव सर्वव्यापक विष्णुके व्यक्त रूप हैं। जिस प्रकार सारा विश्व तेजोवह आकाशसे व्याप्त है, उसी प्रकार ये जीव विष्णुकी शक्तिसे ओतप्रोत हैं। यह ध्यान करनेयोग्य विष्णुका दूसरा रूप है।' इस प्रकार ब्रह्म अद्वैत और द्वैत (द्वैताद्वैत) दोनों है। जीव और ब्रह्मके बीच वही सम्बन्ध है, जो अंश और अंशीके बीच (अंशांशिभाव) होता है।

द्वैतदर्शन[२८]— इसके प्रवर्तक आचार्य मध्व हैं। इनका दूसरा नाम आनन्दतीर्थ है। इनके द्वारा ब्रह्मसूत्रपर किया गया भाष्य आनन्दतीर्थभाष्य तथा पूर्णप्रज्ञाभाष्य भी कहलाता है। इनका मुख्य सिद्धान्त यही है कि ईश्वर भी सत्य है और जगत् भी सत्य है, इसीलिये इनका सिद्धान्त द्वैतसिद्धान्त कहलाता है। जीव-जगत् ईश्वरके अधीन है और मोक्षका मुख्य साधन विष्णुकी निर्मल भक्ति है। इन्होंने भी विष्णुपुराणके आधारपर ही अपने मतवादकी पुष्टि की है। इनके मतवादकी समीक्षा सौरपुराणमें भी मिलती है। इन्होंने अपने गीताभाष्य तथा ब्रह्मसूत्रभाष्य आदिमें ब्रह्म, पद्म, विष्णु, नारदीय तथा कूर्मपुराणके वचनोंका उदाहरण दिया है। इन्होंने गीताभाष्यके ८। १७में जो वचन दिया है, वह इस प्रकार है—

अनेकयुगपर्यन्तं महाविष्णोस्तथा निशा।
रात्र्यादौ लीयते सर्वमहरादौ तु जायते॥

जैसे कूर्मपुराणमें विष्णुके दिनमें सृष्टि होने तथा रात्रिमें प्रलय होनेकी बात कही गयी है, उसी प्रकार पद्मपुराणमें **'ह्रीयते त्वया जगद्यस्माद्धृदित्येवं प्रभाषसे'** कहकर जगत्की, भगवान् विष्णुद्वारा उत्पन्न, विलीन तथा संहत होनेकी बात कही गयी है। इसी प्रकार इन्होंने पुराणोंसे और भी अनेक वचन उद्धृत कर अपने मतको पुराणानुकूल सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है।

शुद्धाद्वैतदर्शन[२९]—श्रीवल्लभाचार्यजीका अद्वैतवेदान्त-दर्शन शुद्धाद्वैत तथा पुष्टिमार्गके नामसे प्रसिद्ध है। उन्होंने शांकरवेदान्तसे अपने मतकी भिन्नता प्रतिपादन करनेके विचारसे अद्वैतसे पूर्व शुद्ध शब्दका व्यवहार किया है तथा अपने सिद्धान्तको 'शुद्धाद्वैत' नामसे व्यवहृत किया है। भक्तिसम्प्रदायमें यही मत 'पुष्टिमार्ग'के नामसे प्रसिद्ध है। शुद्धाद्वैतका तात्पर्य है संशोधनसहित अद्वैत वेदान्तको स्वीकार करना।

शुद्धाद्वैतमें वेद-उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता—इस प्रस्थानत्रयीके साथ शब्दप्रमाणको परम प्रमाण मानते हुए श्रीमद्भागवतको वेदके समान प्रमाण माना गया है और प्रस्थानचतुष्टयकी स्थापना की गयी है। प्रमाणके बाद तीन प्रकारके प्रमेय जो इस सिद्धान्तको मान्य हैं, वे हैं—स्वरूपकोटि, तत्त्वकोटि और कार्यकोटि। श्रीवल्लभाचार्यजीके **'हरिरेव प्रमेयः सर्वभावापन्नः'**— (अणुभाष्य) इस भाष्यके अनुसार साक्षात् श्रीकृष्ण ही स्वरूप, तत्त्व तथा कार्यरूप निरूपित हैं। वेदान्तदर्शन (ब्रह्मसूत्र)के सूत्रोंमें जहाँ-जहाँ भी **'स्मर्यते च'** (४। २। १४), **'स्मरन्ति च'** (२। ३। ४७, ३। १। १४) तथा **'दर्शनाच्च'** (३। १। २०, ३। २। २१, ३। ३। ४८) आदि सूत्र आये हैं, उन सभी स्थलोंपर इन्होंने भागवतके ही अनेक प्रमाण दिये हैं, जिनमेंसे यहाँ कुछ उद्धृत किये जाते हैं। **'स्मर्यते च'** (४। २। १४) की व्याख्यामें श्रीमद्भागवतका उदाहरण दिया है, जैसे—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः।
मामेवं दयितं प्रेष्ठमात्मानं मनसा गताः।
ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम्॥
(१०। ४६। ४)

श्रीकृष्ण उद्धवसे कहते हैं—'प्यारे उद्धव! गोपियोंका मन नित्य-निरन्तर मुझमें ही लगा रहता है। उनके प्राण, उनका जीवन, उनका सर्वस्व मैं ही हूँ। मेरे लिये उन्होंने अपने पति-पुत्र आदि सभी सगे-सम्बन्धियोंको छोड़ दिया है। उन्होंने बुद्धिसे भी मुझे ही अपना प्यारा, अपना

प्रियतम—नहीं, नहीं, अपना आत्मा मान रखा है। मेरा यह व्रत है कि 'जो लोग मेरे लिये लौकिक और पारलौकिक धर्मोंको छोड़ देते हैं, उनका भरण-पोषण मैं स्वयं करता हूँ।' इसी प्रकार आगे कहा है—

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः।
वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य॥

(१०।४७।५८)

'इस श्रेष्ठ पृथ्वीपर केवल इन गोपियोंका ही शरीर धारण करना श्रेष्ठ एवं सफल है, क्योंकि ये सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णके परम प्रेममय दिव्य महाभावमें स्थित हो गयी हैं। प्रेमकी यह ऊँची-से-ऊँची स्थिति संसारके भयसे भीत मुमुक्षुजनोंके लिये ही नहीं, अपितु बड़े-बड़े मुनियों, मुक्त पुरुषों तथा हम भक्तजनोंके लिये भी वाञ्छनीय ही है। हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी। सत्य है, जिन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-कथाके रसका चसका लग गया है, उन्हें कुलीनताकी, द्विजातिसमुचित संस्कारकी और बड़े-बड़े यज्ञ-यागोंमें दीक्षित होनेकी क्या आवश्यकता है? अथवा यदि भगवान्‌की कथाका रस नहीं मिला, उसमें रुचि नहीं हुई तो अनेक महाकल्पोंतक बार-बार ब्रह्मा होनेसे ही क्या लाभ?'

अणुभाष्यमें श्रीमद्भागवतके ९।४।६३-६४, १०।८।४०, १०।६४।२२-२३ आदि अनेक प्रमाण यत्र-तत्र उल्लिखित हैं। सारांशमें यह समझना चाहिये कि श्रीवल्लभवेदान्तमें भागवतपुराण ही परम प्रमाण है। इसीलिये इस मार्गमें और इनके अनुयायिवर्गमें विद्वत्ताकी गवेषणाकी अपेक्षा श्रीकृष्णचन्द्रके पदानुरक्तिपर ही अधिक विशेष प्रेम रहता चला आ रहा है। श्रीवल्लभाचार्यजीने श्रीविष्णुस्वामिजीके मतका उपबृंहण किया है और यह शुद्धाद्वैत वेदान्त उसीकी एक शाखा है।

अचिन्त्यभेदाभेदवाद[३०]—वैष्णव मतोंमें श्रीमध्वाचार्यजीकी ही एक शाखा मध्वगौड़ीय चैतन्य महाप्रभुके द्वारा प्रवर्तित है। इस सिद्धान्तका नाम अचिन्त्य-भेदाभेदवाद है। यद्यपि इन्होंने वेदान्तसूत्र (ब्रह्मसूत्र) का भाष्य नहीं किया, किंतु इनकी शिष्य-परम्परामें श्रीबलदेवविद्याभूषणने इनके मतका प्रतिपादन अपने 'गोविन्दभाष्य'में किया है। श्रीचैतन्य-सम्प्रदायके मतानुसार श्रीमद्भागवत ही वेदान्तसूत्रका भाष्य है। इस मतके अनुसार ब्रह्मसूत्रके केवल **'स्मर्यते च'**, **'स्मरन्ति च'** इत्यादि सूत्र ही नहीं, अपितु सभी सूत्रोंके उदाहरण श्रीमद्भागवतसे ही प्रमाणित होते हैं। जैसे ब्रह्मसूत्रका द्वितीय सूत्र—**'जन्माद्यस्य यतः'** और श्रीमद्भागवतका प्रथम श्लोक **'जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादि॰'** इत्यादि। इसी प्रकार ब्रह्मसूत्रके **'शास्त्रयोनित्वात्'** (१।१।३) इस सूत्रका भाष्य चैतन्य-मतानुसार श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके दसवें अध्यायमें स्पष्ट प्रतीत होता है[१]। यद्यपि श्रीमद्भागवत तथा गीता आदिके अनुसार जीव पराप्रकृति और माया (जड) अपरा प्रकृति है तथा श्रीकृष्ण स्वयं इन दोनोंके स्वामी सर्वशक्तिमान् हैं तथापि इन तीनोंमें परस्पर भेद है। यह जो युगपत् नित्य-भेदाभेद-सम्बन्ध है, वह मानवबुद्धिके परे अथवा अतीत है अथवा अचिन्त्य है। इसीलिये यह अचिन्त्य-भेदाभेदके नामसे प्रसिद्ध है।

भेदाभेददर्शन[३१]—इसके प्रवर्तक श्रीभट्ट भास्कराचार्य हैं। इन्होंने शंकराचार्यके मतसे भिन्न अपने मतकी स्थापना की है। ब्रह्मसूत्र (३।२।११) के **'न स्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र'** सूत्रके अनुसार इनका मतवाद भेदाभेदवाद बताया गया है। संसारको नित्य मानते हुए उसे ईश्वररूप भी मानना भेदाभेद है। इस मतके स्वाभाविक भेदाभेद, निरुपाधिक भेदाभेद, सोपाधिक भेदाभेद तथा

१-स एव भूयो निजवीर्यचोदितां स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम्। अनामरूपात्मनि रूपनामनी विधित्समानोऽनुससार शास्त्रकृत्॥

(१।१०।२२)

अर्थात् 'उन्होंने (परमात्मा श्रीकृष्णने) ही फिर अपने नाम-रूपरहित स्वरूपमें नाम-रूपके निर्माणकी इच्छा की तथा अपनी काल-शक्तिसे प्रेरित प्रकृतिका, जो कि उनके अंशभूत जीवोंको मोहित कर लेती है और सृष्टिकी रचनामें प्रवृत्त रहती है, अनुसरण किया और व्यवहारके लिये वेदादि शास्त्रोंकी रचना की।'

अचिन्त्यभेदाभेद आदि कई अवान्तर प्रभेद हैं।

आचार्य भट्ट भास्करने अपने भास्करभाष्यमें यत्र-तत्र पुराणोंके श्लोकोंको उद्धृत कर अपने मतको प्रमाणित किया है। **'शब्द इति चेन्नातः प्रभावात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्'** (ब्रह्मसूत्र १।३।२८) के भाष्यमें **'इति पौराणिकाः'**, **'तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत्'** (ब्रह्मसूत्र २।३।२९) के भाष्यमें **'तथा चाहुः पौराणिकाः'** तथा **'स्मृतेश्च'** (ब्रह्मसूत्र ४।३।१०) के भाष्यमें **'पुराणस्मृतेश्च'** इत्यादि कहकर पुराणोंको स्मरण करते हुए उनके श्लोकोंको उद्धृत किया है, जिससे यह प्रतीत होता है कि पुराणोंमें सभी विचारों—दर्शनोंका स्पष्ट संकेत विद्यमान है।

समन्वयवाद[३२]— आचार्य विज्ञानभिक्षुने ब्रह्मसूत्रके विज्ञानामृत नामक भाष्यमें सभी दर्शनोंके समन्वयकी चेष्टा की है। उनका सिद्धान्त समन्वयवादके नामसे प्रसिद्ध है। सभी दर्शनोंके समन्वय होनेसे इनका मत भी भेदाभेदवाद-नामसे ही जाना जाता है। ब्रह्मसूत्रके अपने भाष्यमें इन्होंने प्रायः कूर्म, स्कन्द, विष्णु, मत्स्य, विष्णुधर्म तथा नरसिंहादि पुराणोंके सहस्रों श्लोकोंको उद्धृत किया है। यथा **'ईक्षतेर्नाशब्दम्'** (१।१।५) की व्याख्यामें विष्णुपुराणका यह श्लोक दिया है—

नैवाहस्तस्य न निशा नित्यस्य परमात्मनः।
उपचारस्तथाप्येष तस्येशस्य द्विजोच्यते॥

(६।४।४९)

इसी प्रकार **'सर्वथापि त एवोभयलिंगात्'** (ब्र०सू० ३।४।३४)के विवेचनमें कूर्मपुराणके निम्न श्लोक उद्धृत किये हैं—

भगवन् देवतारिघ्न हिरण्याक्षनिषूदन॥
चत्वारो ह्याश्रमा प्रोक्ता योगिनामेक उच्यते।

(१।२।७४-७५)

विशेष जिज्ञासाके लिये ब्रह्मसूत्रके विज्ञानामृतभाष्यके ४।३।११, ४।१।१३, ४।१।३, ३।४।२० इत्यादि अनेक स्थलोंको देखना चाहिये। यहाँ तो प्रमाणस्वरूप किंचित् वचनोंको ही दिखाया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि पुराणके वचन ही इन आचार्योंके लिये प्रवल प्रमाण-स्वरूप रहे हैं।

शिवाद्वैतदर्शन[३३]—इसके प्रवर्तक श्रीकण्ठाचार्यजी हैं। ब्रह्मसूत्रपर इनका भाष्य 'शैवभाष्य' या 'शिवाद्वैतभाष्य' कहा जाता है। इन्होंने अपने मतकी पुष्टिमें मुख्यतः शैवपुराणों—शिवपुराण, लिङ्गपुराण तथा कूर्मपुराण आदिके साथ-साथ वाल्मीकि-रामायणके स्थलोंको भी स्थान दिया है। यथा **'अपि च स्मर्यते'** ब्रह्मसूत्र (२।३।४४) के शैवभाष्यमें इन्होंने शिवपुराण, शतरुद्रसंहिताका निम्न श्लोक प्रमाणस्वरूप लिया है—

आत्मा तस्याष्टमी मूर्तिः शिवस्य परमात्मनः।
व्यापिकेतरमूर्तीनां विश्वं तस्माच्छिवात्मकम्॥

(२।१

इसी प्रकार **'पूर्ववद्वा'** (ब्र०सू० ३।२।२८) सू व्याख्यानमें पुराणोंके वचन देनेके अनन्तर **'इत्यादि पुराणव प्रमाणाच्च'** ऐसा लिखकर अन्य प्रमाणोंसे पुराणोंका प्रामाण्य अधिक प्रदर्शित किया है।

उपर्युक्त विवेचनमें श्रीवैष्णवाचार्योंके सिद्धान्तोंका सू परिचय देते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि उन सिद्धान्तोंका स्रोत पुराणोंमें प्राप्त होता है। श्रीरेणुकाचा श्रीकराचार्य (श्रीपतिपण्डित) के अतिरिक्त रुद्रभ विजयभट्ट, विष्णुक्रान्त आदि आचार्योंके भाष्य भी उल्लेखन हैं, जिन्होंने यत्र-तत्र अपने भाष्योंमें प्रमाणस्वरूप पुराणों वचन उद्धृत किये हैं।

चार्वाकदर्शन[३४]—इस दर्शनके विषयमें पुराणों विस्तृत उल्लेख प्राप्त होता है। इस सम्बन्धमें एक क भी पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड अ० १३, ब्रह्माण्डपुराणके उपोद्घात-पादके ७२-७३वें अध्यायमें, मत्स्यपुराण अ० ४७ वायुपुराण एवं शिवपुराणादिमें प्राप्त होती है, जिसका सारांश इस प्रकार है—

देवासुरसंग्राममें देवताओंने अनेक प्रसिद्ध दैत्यों, गन्धर्वों एवं दानवोंका वध कर दिया और अमृत पीनेके कारण वे स्वयं अमर बने रहे। दैत्यगुरु शुक्राचार्य दैत्योंको पुनर्जीवित करनेवाली संजीवनी-विद्या प्राप्त करनेके लिये हिमालय पर्वतपर शंकरकी आराधना करने लगे। इनकी तपस्यामें वाधा पहुँचानेके लिये अपनी पुत्री जयन्तीको शुक्राचार्यके पास उनकी सेवामें भेजा। शुक्राचार्य उसकी

आसक्त होकर अपने लक्ष्यसे दूर चले गये। उन्हीं दिनों जयन्तीसे देवयानीका जन्म हुआ। बादमें वे पुनः शिवकी आराधना करने लगे। इधर देवगुरु बृहस्पति अवसर देखकर शुक्राचार्यका रूप धारण कर संजीवनी-विद्याके नामसे दानवोंको चार्वाक-दर्शनका उपदेश करने लगे[१]। इसी बीच शुक्राचार्य भी संजीवनी-विद्या प्राप्त कर जब वहाँ लौटे तब उन्होंने अपने वेषमें वहाँ बृहस्पतिको देखा और दुःखी होते हुए उनसे कहा कि 'आप हमारे शिष्योंको लोकायत-मतका उपदेश देकर अनर्थ कर रहे हैं। मैं आपको अच्छी तरह जानता हूँ, आप देवाचार्य बृहस्पति हैं। आप मेरा रूप धारण कर इन्हें मोहमें डाल रहे हैं" और फिर अपने शिष्योंसे कहा—'ये बृहस्पति तुम्हें हमारा वेष धारण कर धोखा दे रहे हैं। मैं शिवजीसे संजीवनी-विद्या सीखकर आया हूँ। तुमलोग मेरी बात सुनो—इनका परित्याग करो। भगवान् शंकरने हमें तुमलोगोंके पास भेजा है।' इसपर बृहस्पतिने दानवोंसे कहा—'शिष्यो! यह ठीक हमारा रूप धारणकर तुमलोगोंको धोखा देना चाहता है। तुमलोगोंको इसकी वञ्चनामें नहीं पड़ना चाहिये।' इसपर सभी दानव 'साधु-साधु' कहकर शुक्राचार्यसे कहने लगे—'हमारे वास्तविक गुरु यही हैं, जो अपने कथनानुसार समयपर हमारे पास आ गये थे।' इसपर शुक्र अत्यन्त दुःखी हुए और इस तिरस्कारको न सहकर असुरोंको समृद्धिसे हीन होकर नष्ट हो जानेका शाप दे दिया तथा वहाँसे चले गये। जब पुनः एकान्त हुआ तो दानवोंने शुक्र-वेषधारी बृहस्पतिसे पुनः ज्ञान-तत्त्वकी बात पूछी। इसपर बृहस्पतिने उन्हें क्रम-क्रमसे चार्वाक, बौद्ध तथा जैनधर्मदर्शनका उपदेश दिया[२]। यही बृहस्पतिका उपदेश इन दर्शनोंका मूल है।

चार्वाकदर्शन नास्तिक-मत कहलाता है। इस सिद्धान्तके अनुसार केवल दृश्य जगत् ही सत्य है। केवल प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है। लौकिक सुख प्राप्त करना ही परम पुरुषार्थ है। अदृष्ट कुछ नहीं है और न परलोककी कोई सत्ता है। परलोकके लिये दृष्ट लौकिक सुखोंका परित्याग करना उचित नहीं। न्याय-वैशेषिक या नव्यन्यायके कर्कश तर्कोंके सामने अनुमितिवाद आदि सबल प्रमाणोंके विरुद्ध होनेसे यह मत स्थिर नहीं हो सका। पुराणोंमें पूर्वपक्षके रूपमें इस मतका प्रतिपादन हुआ है।

जैन-दर्शन[३५] और **पुराण**—पुराणोंमें जैनमतको 'अर्हत्'-मत कहा गया है और श्रीऋषभदेवजीको इस दर्शनका आद्य आचार्य बताया गया है। भगवान्‌के २४ अवतारोंमें इनकी गणना है। बौद्धोंके चार भेदोंकी भाँति जैनियोंके भी श्वेताम्बर और दिगम्बर (विवसन)—ये दो मुख्य भेद हैं। जैनियोंने बौद्धमत—क्षणिकवादको स्वीकार नहीं किया। '**प्रमेयकमलमार्तण्ड**' आदि जैन-न्याय-ग्रन्थोंमें प्रौढ़ तर्कोंके आधारपर चार्वाक, बौद्ध आदि मतोंका निरसन किया गया है। जैनदर्शन अनेकान्तपक्षीय सप्तभंगीन्याययुक्त स्यादवादके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें प्रत्यक्ष, अनुमान तथा उपमान—इन तीन ही प्रमाणोंको माना गया है। शास्त्रप्रमाण तथा अर्थापत्तिको ये प्रमाण स्वीकार नहीं करते। '**आप्तनिश्चयालंकार**' नामक जैन-ग्रन्थमें परमात्माको षडैश्वर्य-सम्पन्न न मानकर काम-क्रोधादिशून्य, जगत्पूज्य, सत्यवादी ज्ञानी पुरुषको ही परमेश्वर माना गया है। जैनदर्शनमें मोक्षको माना गया है, किंतु उसके साधनमें सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌ज्ञान एवं सम्यकचरित्र—इन तीनोंको सम्मिलितरूपसे कारण माना गया है, जो बहुत कुछ सनातन सिद्धान्तोंसे मिलता है। अहिंसापर जैन तथा बौद्धोंका विशेष आग्रह है। इसलिये पुराणोंने कहीं-कहीं इन दोनोंको एक ही मान लिया है। जैनियोंके लिये

१-यच्च यज्ञादिकं कर्म स्मार्तं श्राद्धादिकं तथा। तत्र नैवापवर्गोऽस्ति यत्रैषा श्रूयते श्रुतिः॥

(पद्म०, सृष्टि० १३। ३२२)

अर्थात् यज्ञ आदि वैदिक कार्य और श्राद्ध आदि स्मार्तकर्म मोक्षदायक या स्वर्गदायक नहीं हैं; क्योंकि इनके अनुष्ठानमें ऐसे दोष हैं, जिनके कारण यदि स्वर्ग मिलेगा तो फिर नरक किन कर्मोंसे प्राप्त होगा?

२-इन सभी विवरणोंसे यहाँ किसी धर्म या दर्शनकी आलोचना तथा निन्दा-स्तुतिसे कोई तात्पर्य नहीं है। पुराणोंमें इनका उल्लेख हुआ है और इनके सूत्र प्राप्त होते हैं। इसी दृष्टिसे यहाँ इनका संग्रह किया गया है।

तत्त्वार्थसूत्र सर्वाधिक आदरणीय तथा प्रमाणभूत है।

बौद्धदर्शन[३६] तथा **पुराण**—प्रायः सभी पुराणोंमें बौद्धमतकी तथा बौद्धावतारकी चर्चा है। तथापि पद्म, स्कन्द, कल्कि तथा एकाम्रादि पुराणोंमें विशेष रूपसे वर्णन आया है। बौद्धमतावलम्बी माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक—इन चार सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं। बौद्धमत शून्यवाद कहा जाता है। ये सारे जगत्‌को क्षणिक मानते हैं। बौद्धमत क्षणभङ्गुरवाद तथा क्षणिकवाद भी कहलाता है। इन्होंने प्रत्यक्षके साथ अनुमानको भी प्रमाण माना है। इनकी मान्यता है कि सारा संसार दुःखात्मक है। बोध-विज्ञानके द्वारा संसारसे अलग होना ही परम पुरुषार्थ है। इनके यहाँ विज्ञानका दूसरा नाम आलय-विज्ञान है। वासनाके परित्यागसे आलय-विज्ञानका उदय होता है तथा फिर रूपस्कन्ध, विज्ञानस्कन्ध, वेदनास्कन्ध, संज्ञास्कन्ध तथा संस्कारस्कन्ध—इस पञ्चविध स्कन्धात्मक चित्त और चैतात्मक सम्बन्धके पूर्णज्ञानसे सब दुःखोंका अन्त या निर्वाण होता है। पुराणोंमें प्रायः पूर्वपक्षके रूपमें ही बौद्धमतकी चर्चा है और भगवान् कल्किद्वारा अवतार ग्रहण कर शस्त्र तथा शास्त्र दोनोंसे बौद्धमतावलम्बियोंके पराजित होनेका वृत्तान्त भी पुराणोंमें विस्तारसे मिलता है।

माहेश्वर-दर्शन तथा पुराण—माहेश्वर-सम्प्रदायमें दार्शनिक दृष्टिसे प्रमुख चार भेद हैं—(१) पाशुपतदर्शन, (२) शैवदर्शन, (३) प्रत्यभिज्ञादर्शन, (४) वीरशैवदर्शन। पुराणोंमें विशेषरूपसे शैवपुराणोंमें सर्वत्र माहेश्वरदर्शनका विस्तृत विवेचन मिलता है। यहाँपर केवल पाशुपतदर्शन तथा प्रत्यभिज्ञादर्शनका सूक्ष्म विवेचन दिया जा रहा है—

पाशुपतदर्शन[३७] **या नकुलीश पाशुपतदर्शन**—पुराणोंमें इस दर्शनका विस्तारसे वर्णन है। इस दर्शनके संस्थापक नकुलीश (या लकुलीश) थे। इसलिये यह नकुलीश पाशुपत-दर्शन भी कहलाता है। पुराणोंमें नकुलीश्वर-लकुली और लकुलीश नाम भी प्राप्त होता है। इस सम्बन्धमें कूर्मपुराणके पूर्वार्धके ५३वें अध्याय तथा उत्तरार्धके ४४वें अध्याय और लिङ्गपुराणके पूर्वार्धके २४वें अध्यायमें विस्तारसे चर्चा है। दोनों पुराणोंकी कथाओंके सम्मिलितरूपसे अवलोकन करनेपर ऐसा लगता है कि भगवान् शिवने द्वापर और कलियुगकी संधिमें किसी मृतकाय (मृतशरीर) में प्रवेशकर कायावतार धारण किया, नकुलीश कहलाये। वे कुछ दिन सुमेरुगिरिकी गुफा निवासकर फिर कच्छ (गुजरात) के सिद्धक्षेत्र नामक स्थान स्थित हुए, जिसे नकुलीशके मृत-कायामें प्रवेश करने कायावतार सिद्धक्षेत्र कहा जाता है। तभीसे यह क्षेत्र एक पुण्य शैव-तीर्थ हो गया। उपर्युक्त विवरणसे स्पष्ट होता है कि भगवान् शिव ही नकुलीश्वरके रूपमें आविर्भूत हुए।

नकुलीशदर्शनका मुख्य ग्रन्थ पाशुपत पञ्चार्थसूत्र (पञ्चाध्यायी) माना जाता है। इस दर्शनकी मूलभित्ति पाँच पदार्थों—कार्य, कारण, योग, विधि और दुःखान्तके विवेचनपर आधारित है। सभी जड तथा चेतन पदार्थ पशु (कार्य) कहे गये हैं। ये सभी अपने ईश्वर—पति (शिव-महेश्वर) के अधीन हैं, जो कारण कहलाते हैं। जप-ध्यान आदि योगके तथा भस्मस्नान आदि व्रतके द्वारा दुःखका अन्त होता है। इन पञ्चार्थोंका यथार्थ ज्ञान ही मोक्षका मुख्य कारण है। संक्षेपमें यही नकुलीश-पाशुपतदर्शनका सारांश है। कूर्म, ब्रह्माण्ड, शिव (कारवण-माहात्म्य) तथा लिंगादि पुराणोंमें इसकी विस्तृत चर्चा आयी है।

प्रत्यभिज्ञादर्शन[३८]—प्रत्यभिज्ञादर्शन बहुत कुछ अद्वैत-वेदान्तदर्शनसे मिलता है। इसे माहेश्वरदर्शनका ही एक भेद माना जाता है। इसके ९२ आगम-ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, जिनमें मालिनी, सिद्धा तथा कामिक आगम—ये तीन अति प्रसिद्ध हैं। प्रत्यभिज्ञादर्शनको त्रिकदर्शन तथा काश्मीर-शैवदर्शन भी कहा जाता है। प्रत्यभिज्ञाका शाब्दिक अर्थ है पहचानना। इस दर्शनके अनुसार स्वप्रकाशस्वरूप निरन्तर अवभासमान दृक्क्रियाशक्तिका आविष्कार अर्थात् यह आत्मा ही परमेश्वर है। इस तरह आत्मा और परमात्माको ठीक-ठीक पहचानना ही वास्तविक प्रत्यभिज्ञा है। 'शिवसूत्र' आदि इस दर्शनके प्रारम्भिक मौलिक ग्रन्थ हैं।

पुराणोंमें—लिङ्गपुराणमें संक्षेपमें किंतु शिवपुराणकी कैलास-संहिता (वेंकटेश्वर-संस्करण) के अध्याय १६ से १९ तकमें विस्तारसे इस दर्शनके मौलिक सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया गया है। यहाँ शिवसूत्रोंकी विस्तृत व्याख्या की गयी है। 'प्रज्ञानं ब्रह्म', 'अयमात्मा ब्रह्म' आदि श्रुतिके २२ महावाक्योंका उल्लेखपूर्वक आत्मा-परमात्माकी प्रत्यभिज्ञापूर्वक [illegible]

दिखलायी गयी है। उसी क्रममें कहा गया है—'**इत्यादि शिवसूत्राणां वार्तिकं कथितं मया**' अर्थात् इस प्रकार मैंने (सुब्रह्मण्य-स्कन्दकुमार) शिवसूत्रोंकी व्याख्या की है। शिवपुराणकी वायवीयसंहिताके उत्तरभागमें भी इस दर्शनके मूलभूत विषयोंका वर्णन है।

आगम[३९] और **पुराण**—इष्टदेवकी प्रसन्नता-प्राप्तिके लिये ज्ञानसहित उपासना-विधानका निरूपक शास्त्र ही आगम कहलाता है। आगमोंके विषयमें यह श्लोक अत्यन्त प्रशस्त है—

आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजाश्रुतौ ।
एतस्मादागमः प्रोक्तः विद्वद्भिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥

— इसका तात्पर्य है कि 'तत्त्वदर्शी विद्वानोंने भगवान् शिवद्वारा कथित और पार्वतीद्वारा श्रुत विषयको आगम बतलाया है।' परंतु वैष्णवागमोंमें विष्णु तथा लक्ष्मीका, सौर तथा वैखानस आदि आगमोंमें सूर्य और ब्रह्माका वक्ता-श्रोताके रूपमें निर्देश किया गया है। इसलिये शक्ति और शक्तिमान्‌के संवादमें ही इस व्युत्पत्तिको चरितार्थ मानना होगा।

आगम-साहित्य अत्यन्त विशाल है तथापि मुख्यरूपसे ७ आगम प्रधान माने गये हैं—वैष्णवागम, शैवागम, शाक्तागम, वैखानस (ब्राह्म)-आगम, सौर-आगम, गाणपत्य-आगम तथा सुब्रह्मण्य (स्कान्द)-आगम। इनमेंसे एक-एकके अनेक भेद हैं। वैष्णवागमोंमें पाञ्चरात्र-आगम विशेष प्रसिद्ध हैं। अग्निपुराण अध्याय ३९में हयशीर्ष, त्रैलोक्य-मोहन, वैभव आदि २५ वैष्णव पाञ्चरात्रागमोंका नाम परिगणन किया गया है। इसी प्रकार शिव, कालिका आदि पुराणोंमें शैव, शाक्तादिके विभिन्न सम्प्रदायोंके उपासना-विधानका निर्देश है।

तन्त्र[४०] और **पुराण**—कुलार्णव-तन्त्र (अ० १७) में तन्त्रकी व्युत्पत्ति इस प्रकार बतलायी गयी है—

मुदं कुर्वन्ति देवानां मनांसि तारयन्ति च ।
तस्मात् तन्त्र इति ख्यातो दर्शितव्यः कुलेश्वरि ॥

—इसका भाव है—पूजा-उपासनासे देवताओंको प्रसन्न करानेवाले तथा साधकोंको संसार-समुद्रसे पार करनेवाले विधायक शास्त्र तन्त्रशास्त्र कहलाते हैं।

तन्त्रोंके मुख्य तीन भेद हैं—१-दक्षिण-मार्ग, २-वाम-मार्ग या कौलमार्ग तथा ३-मिश्रमार्ग। इनमें भी डामर, यामल आदि कई अवान्तर भेद हैं। तन्त्र-ग्रन्थोंमें सबसे प्रधान ग्रन्थ 'तन्त्रराज' है, जिसे प्रायः तीनों मार्गोंके अनुयायी प्रमाण मानते हैं।

पुराणोंमें तन्त्रोंका विशाल साहित्य उपलब्ध है। नारदपुराणके पूर्वभागके ६४ से ९१ तकके अध्यायोंमें प्रायः तन्त्रोंका ही विषय विवेचित है। इसके पूर्वभागके ८४ से ९१ तकके अध्यायोंमें तन्त्रराजके प्रायः सभी विषय आ गये हैं। इसी प्रकार गरुडपुराण तथा अग्निपुराण आदिमें अध्याय २३ से ३७, ७१ से ९१, १२३ से १४९ तक तथा पुनः २९३ से ३२६ तक विभिन्न तन्त्र-मन्त्रोंका निरूपण है।

वास्तुशास्त्र[४१]—वास-स्थान या निवास-स्थानको वास्तु कहा जाता है और इससे सम्बद्ध बातोंका जिस शास्त्रमें वर्णन रहता है, वह वास्तुशास्त्र है। मुख्यरूपसे वास्तुशास्त्रके अन्तर्गत भूमि-सम्बन्धी—नगर आदिकी रचना-सम्बन्धी तथा गृहके उपकरणभूत—वापी, कूप, तड़ाग, उद्यान-रचना, वृक्षारोपण, भैषज्य-दोहन आदि विषयोंका वर्णन रहता है। वास्तुके शुभाशुभ होनेपर ही भूमि-शोधनादिकी क्रिया सम्पन्न करनेपर निर्माणकार्य करना चाहिये। यदि वास्तु अशुभ हो तो गृहस्थको पद-पदपर कष्ट होता है, अनेक उपद्रव होते हैं और शुभ होनेपर सुख-शान्ति रहती है। इन दृष्टियोंसे वास्तुशास्त्रका ज्ञान आवश्यक कहा गया है।

मुख्यतः वास्तुशास्त्रका सम्बन्ध स्थापत्यकलासे है। ऋग्वेद तथा अथर्ववेदमें भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है। यद्यपि यह एक स्वतन्त्र शास्त्र है, इसके परवर्ती ग्रन्थोंमें 'वास्तुराजवल्लभ' तथा 'समराङ्गणसूत्रधार'—ये दो महत्त्वपूर्ण तथा उल्लेख्य ग्रन्थ हैं। किंतु पुराणोंमें विशेषरूपसे मत्स्यपुराण (अ० २५२-२५६), विष्णुधर्मोत्तरपुराण (द्वितीय खण्ड अ० २९, तृतीय खण्ड अ० ९४-९५), अग्निपुराण (अ० ९३, १०४-१०६) तथा गरुडपुराण आदिमें वास्तुशास्त्रके महत्त्वपूर्ण विषयोंका वर्णन हुआ है। मत्स्यपुराण (अ० २५२) में वास्तुशास्त्रके भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित्, भगवान् शंकर, इन्द्र, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश्वर,

शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र तथा बृहस्पति—ये अठारह उपदेष्टा आचार्य बताये गये हैं, जिनमेंसे देवताओंके शिल्पीके रूपमें विश्वकर्माकी तथा दानवोंके शिल्पीके रूपमें मयकी अधिक प्रसिद्धि है। **'विश्वकर्मशिल्पम्'** तथा **'मयशिल्पम्'**— ये इनके ग्रन्थ कहे जाते हैं।

वास्तुके प्रादुर्भावके कथा-विषयमें मत्स्यपुराण (अ० २५१) में बताया गया है कि प्राचीन कालमें अन्धकासुरके वधके समय भगवान् शंकरके ललाटसे पृथ्वीपर जो स्वेदबिन्दु गिरे, उनसे एक भयंकर आकृतिवाला पुरुष प्रकट हुआ, जो विकराल मुख फैलाये था। उसने अन्धकगणोंका रक्त पान किया, किंतु तब भी उसे तृप्ति नहीं हुई और वह भूखसे व्याकुल होकर त्रिलोकीको भक्षण करनेके लिये उद्यत हो गया। बादमें शंकर आदि देवताओंने उसे पृथ्वीपर सुलाकर वास्तुदेवताके रूपमें प्रतिष्ठित किया और उसके शरीरमें सभी देवताओंने वास किया, इसलिये वह वास्तु (वास्तुपुरुष या वास्तुदेवता) के नामसे प्रसिद्ध हो गया। देवताओंने उसे गृहनिर्माणादिके, वैश्वदेव बलिके तथा पूजन-यज्ञ-यागादिके समय पूजित होनेका वर देकर प्रसन्न किया। इसीलिये आज भी वास्तुदेवताका पूजन होता है। वास्तुदेवताके शरीरमें ६४ तथा ८१ देवताओंके स्थित होनेकी बात पुराणोंमें वर्णित है। इसी आधारपर पूजन आदिमें जो वास्तुचक्र बनता है, उसमें शिखी, जयन्त, पर्जन्य, इन्द्र, सूर्य आदि वास्तुमण्डलस्थ देवताओंका पूजन किया जाता है। इसके पूजनसे कोई विघ्न नहीं होता तथा सुख-शान्ति रहती है। अग्नि आदि पुराणोंमें इसकी विस्तृत पूजा-विधि निर्दिष्ट है। वाराहीसंहिताकी महोत्पली व्याख्यामें इस विषयका साङ्गोपाङ्ग विवेचन हुआ है।

शिल्पशास्त्र[४२]—पुराणोंमें प्रभासनामक अष्टम वसुके पुत्र विश्वकर्माको समस्त शिल्पशास्त्रों तथा कलाओंका आचार्य कहा गया है[१]। इन्होंने अपने पुत्रों तथा शिष्योंके साथ शिल्पशास्त्रका प्रसार-प्रचार किया। विविध कलाएँ जो मुख्यरूपसे हाथसे सम्पादित होती हैं, शिल्प कही जाती हैं; इन्हींका परिज्ञान करानेवाला शास्त्र शिल्पशास्त्र कहा जाता है, इसे शिल्पविद्या भी कहते हैं। इसके अन्तर्गत प्रासाद-शिल्प, आभूषण-घट्टन-शिल्प, धातु एवं रंगोंके मिश्रण-सम्बन्धी शिल्प, काष्ठशिल्प, उद्यान-रचना-शिल्प, पात्र-शिल्प, शस्त्रनिर्माण-शिल्प, वायुयान-निर्माण-शिल्प, भित्ति-शिल्प आदि विविध कलाओंका समावेश होता है। विविध शिल्पोंके ज्ञाता वास्तुकार, रथकार, मालाकार, कांस्यकार, लौहकार, काष्ठकार, स्वर्णकार, मणिकार, कुम्भकार आदि नामोंसे जाने जाते हैं। मत्स्य तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें शिल्पशास्त्रका विस्तारसे वर्णन है।

चित्रशास्त्र[४३]—चित्रशास्त्र या चित्रकला अति प्राचीन विद्या है। पुराणोंमें भगवान् नारायणको इस कलाका आद्य आचार्य तथा प्रवर्तक कहा गया है। विश्वकर्माने उनसे यह कला सीखी और फिर सर्वत्र इसका प्रचार-प्रसार हुआ। आज विश्वमें जिस चित्रकलासे सम्बन्धित अनेकों ग्रन्थ निर्मित हो रहे हैं, उसके मूल सूत्र पुराणोंमें विद्यमान हैं। इस सम्बन्धमें पुराणोंमें कथाएँ प्राप्त होती हैं, जिनका सारांश इस प्रकार है—

भगवान् नर-नारायण बदरिकाश्रममें लोक-कल्याणकी कामनासे तपस्या कर रहे थे। उनकी तपस्यासे देवराज इन्द्र सशंकित हो गये। उन्हें यह भय लगने लगा कि ये मेरा इन्द्रासन प्राप्त करनेके लिये ही ऐसी कठोर तपस्या कर रहे हैं। इन्द्रने नर-नारायणकी ऐसी तपस्यामें विघ्न डालनेके उद्देश्यसे कामदेव तथा कुछ अन्य देव-गन्धर्वोंको अनेक अप्सराओंके साथ वहाँ भेजा, किंतु वे उन्हें विचलित न कर सके और उनके शापसे भयभीत हो गये। उसी समय नारायणने आँखें खोलीं। वे तो सर्वान्तर्यामी हैं ही। इन्द्रकी चाल वे समझ ही गये थे। उन्होंने अप्सरा तथा गन्धर्वादिको अभय प्रदान करते हुए कहा—'इन्द्रके कहनेपर तुम्हें भी यह विश्वास था कि

१-विश्वकर्मा प्रभासस्य पुत्रः शिल्पी प्रजापतिः।
प्रासादभवनोद्यानप्रतिमाभूषणादिषु । तडागारामकूपेषु स्मृतः सोऽमरवर्धकिः॥
(मत्स्य० ५। २७-२८, विष्णुपु० १। १५। ११८-२५, ब्रह्मपु० १। १५६-१५९, वायुपु० २। ५। २८-३० तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण, [illegible]
सभी स्थलोंपर ये श्लोक प्रायः एक समान ही हैं।

'तपस्यासे च्युत कर देंगे', तुम्हें अपने सौन्दर्यपर अति गर्व है। अब तुम सभी मेरी रचना भी देखो।' ऐसा कहते हुए उन्होंने आम्रवृक्षके रससे पृथ्वीपर एक सुन्दर नारीकी आकृति बनायी और वह आकृति उठ खड़ी हो गयी[१]। त्रैलोक्यसुन्दरी तथा अद्वितीय रूपलावण्यसम्पन्ना वह और कोई नहीं, उर्वशी अप्सरा थी। नारायणने और भी कई नारी-चित्रोंकी रचना कर उन्हें प्राणवान् बनाया। उनमेंसे जो सबसे सुन्दर हो, उसे देवलोक ले जानेके लिये उनसे कहा। वे उर्वशीको लेकर चले गये।

उक्त कथानकमें चित्रशास्त्रके उद्भवके सम्बन्धमें महत्त्व-पूर्ण विवरण है। पुराणोंमें इस शास्त्रके विषयोंपर तथा चित्रोंकी रचनापर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। विष्णुधर्मोत्तरपुराणके तृतीय खण्डके प्रथम तथा द्वितीय अध्यायमें और पुनः ३५ से ४३ तकके अध्यायोंमें विस्तारसे देवता, ऋषि, मुनि, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरा, दैत्य, दानव, पशु-पक्षी, सूर्य, चन्द्र, शंख, पद्मादि निधियों, समुद्र, सागर, शैलशिखर, प्राकृतिक दृश्यों, उद्यानों, प्रातःकाल, सायंकाल, रात्रि, दिन तथा सर्वतोभद्रमण्डलादिके सुन्दर चित्रोंके आकार-प्रकार, उन्हें बनानेकी विधि और विविध रंगोंके प्रयोग आदिकी भी विधि निर्दिष्ट है। चित्रकलाके माहात्म्यमें कहा गया है—

यथा सुमेरुः प्रवरो नगानां यथाण्डजानां गरुडः प्रधानः।
यथा नराणां प्रवरः क्षितीशस्तथा कलानामिह चित्रकल्पः॥

(३।४३।३९)

अर्थात् 'जैसे पर्वतोंमें सुमेरुगिरि, पक्षियोंमें गरुड, मनुष्योंमें राजा श्रेष्ठ है, वैसे ही कलाओंमें चित्रकला सर्व-श्रेष्ठ है।'

प्रतिमाशास्त्र[४४]—इसे मूर्तिशास्त्र भी कहा जाता है। यद्यपि चित्रशास्त्रसे इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है तथापि प्रतिमाशास्त्रमें मुख्य रूपसे उपासनाके योग्य दैवी प्रतिमाओंके लक्षण, उनका परिमाण तथा रचनाविधि निर्दिष्ट रहती है। प्रतिमामण्डन, काश्यपशिल्पम्, शिल्परत्नम्, अंशुमतभेदागम, सुप्रभेदागम तथा पाञ्चरात्रागम आदि प्रतिमाशास्त्रके ग्रन्थोंमें बहुत विस्तारसे देवताओंकी विभिन्न प्रतिमाओं और शिवलिङ्गादिके साङ्गोपाङ्ग-रचनाकी विधि दी हुई है, किंतु पुराणोंमें भी इस विषयका संक्षेपमें परंतु स्पष्ट विवेचन मिलता है। मुख्यरूपसे विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३। अ० ४४—८५ तथा ९३), अग्निपुराण (अ० ४४-५५) तथा मत्स्यपुराण (अ० २५८-२६३) आदिमें यह सामग्री विशेष रूपसे विवेचित है।

पुराणोंमें विभिन्न देवताओं यथा—सपरिकर विष्णु, वासुदेवादि चतुर्व्यूह, रामादि अवतार, सद्योजात-वामदेव आदि शिव तथा उनका परिवार, शिवलिंग, अश्विनीकुमार, शचीसहित इन्द्र, चित्रगुप्त, धर्मराज, वरुण, स्वाहा-स्वधा आदिके साथ अग्निदेव, सावित्रीसहित ब्रह्मा, सरस्वती, दुर्गा आदि देवियाँ, सूर्यादि नवग्रहों, चौसठ योगिनियों, अष्टदिक्पाल, उन्चास मरुद्गण, हयग्रीव, विश्वकर्मा, चौदह स्त्रियोंसहित धर्म, तुम्बुरु आदि गन्धर्वगण, कश्यपादि प्रजापति, आकाशादि पञ्चभूतों तथा वेदादिशास्त्रोंकी प्रतिमाओंके लक्षण, उनका परिमाण तथा प्रतिमाओंके निर्माणकी विधि प्राप्त होती है। साथ ही यह भी निर्दिष्ट है कि देवताओंका स्वरूप कैसा है? उनकी उपासना कैसे करनी चाहिये आदि विविध बातें भी विवेचित हैं। पुराणोंमें बताया गया है कि प्रतिमा सुवर्ण आदि अष्टधातु, पत्थर, काष्ठ, मृत्तिका, सिकता तथा रत्नादिकी बनानी चाहिये। मनोमयी प्रतिमाके स्वरूपपर भी विस्तारसे बताया गया है। विभिन्न धातुओं, काष्ठ तथा शिला आदिके परीक्षण आदिके विधान भी निर्दिष्ट हैं। प्रतिमाओंके सात्त्विक, राजस तथा तामस—ये तीन भेद बताये गये हैं, साथ ही यह भी विवेचित है कि घरमें पूजाके लिये बननेवाली देवप्रतिमा तथा मन्दिर आदिमें स्थापनाके लिये बननेवाली प्रतिमामें क्या अन्तर है, उनका परिमाण क्या है! इस प्रकार पुराणोंमें प्रतिमाशास्त्रके महत्त्वपूर्ण विषयोंपर विवेचन प्राप्त होता है।

—क्रमशः

१-श्रीमद्भागवत (११।४) तथा ब्रह्माण्डपुराण (उपो० अ० ७) आदिमें भगवान् नारायणके ऊरुसे उनके योगबलद्वारा उर्वशीके प्रकट होनेकी बात है, किंतु विष्णुधर्मोत्तरपुराण (३।३५) में यह स्पष्ट उल्लेख है कि केवल चित्रकलाके प्रभावमात्रसे वह रूपवती अप्सरा खड़ी हो गयी थी—'चित्रेण सा ततो जाता रूपयुक्ता वराप्सराः'।

सामान्यतया मानवके लिये एक प्रश्न है कि जीवन कैसे बिताया जाय? वैसे तो जीवन-यापनके लिये प्रकृतिके कुछ नियम हैं, जिनके अनुसार स्वाभाविक रूपमें संसारके सम्पूर्ण प्राणी अपना निर्वाह करते हैं। मनुष्य विचारप्रधान प्राणी है। यह पशुत्वसे ऊपर उठकर दिव्यत्वकी ओर जा रहा है। पशुकी अपेक्षा मनुष्यकी यही विशेषता है कि पशु तो अपनी आँखोंके सामने कोई मोहक रूप देखकर उसे पानेके लिये दौड़ पड़ता है और उसके प्रलोभनमें फँसकर पीछे होनेवाली ताड़नापर दृष्टि नहीं रखता, उसे तो केवल वर्तमान सुख चाहिये। परंतु मनुष्य किसी आकर्षक वस्तुको देखकर उसे जानता है, विचार करता है और फिर यदि वह वस्तु अपने जीवनकी प्रगतिमें सहायक हुई तो उसे जहाँतक वह अपनी उन्नतिमें बाधक न हो, स्वीकार करता है और उसका उपयोग करता है। मनुष्यकी दृष्टि क्षणिक उपभोग-सुखपर, जो कि अत्यन्त तुच्छ और क्षुद्र है, कभी मुग्ध नहीं होती। यदि मुग्ध होती है तो अभी उसका पशुत्व निवृत्त नहीं हुआ है, जो कि अबसे बहुत पहले हो जाना चाहिये था। परंतु पूर्वसंस्कारों और वर्तमान जन्मके अभ्यास और कुसंगसे जब मनुष्यकी दृष्टि तमसाच्छन्न रहती है, तब उसका पशुत्व अपना काम करता रहता है और वह बुद्धिका प्रयोग न करके केवल मनको प्रिय लगनेवाले विषयोंके पीछे ही भटकता रहता है। यह पशुत्व है, जिसे नष्ट करके मनुष्यत्वको जाग्रत् करना पड़ेगा। यह मनुष्यत्वका जागरण सहसा भी सम्पन्न हो सकता है और क्रमविकाससे भी सम्भव है। जिनका मनुष्यत्व जाग्रत् है, उनके मनुष्यत्वकी रक्षा और दिव्यत्वकी जागृतिके लिये तथा जिनका सुषुप्त है, उनके पशुत्वकी निवृत्ति और मनुष्यत्वके जागरणके लिये एक ऐसे निर्दिष्ट पथकी आवश्यकता है जो केवल मनको प्रिय लगनेवाले विषयोंकी परिधिमें ही सीमित न हो, प्रत्युत ज्ञानके विश्वव्यापी आलोकसे देदीप्यमान हो और जिसमें पद-पदपर दिव्यभावकी झाँकी एवं उसकी ओर अग्रसर होनेके प्रत्यक्ष निदर्शन प्राप्त होते हों। यही पथ सदाचारका पथ है, जो पाशविक प्रवृत्तियों और उच्छृङ्खल वृत्तियोंको चूर-चूर करके एक ऐसी मर्यादामें स्थापित कर देता है, जो शान्ति और आनन्दका उदय है तथा जिसके मूलमें दिव्यताकी पूर्ण प्रतिष्ठा है।

शास्त्र कहते हैं कि जीवको मनुष्य-शरीर भगवान्‌की कृपासे प्राप्त होता है, उसे इस मानवयोनिमें ही यह अवसर प्राप्त है कि वह अपने भविष्यका निर्माण करे। यदि भोगासक्तिमें पड़कर वह अपना जीवन पशुवत् पापाचरणके द्वारा निर्वाह करता है तो स्वभावतः उसे इस भवाटवी—चौरासी लाख योनियोंमें भटकना पड़ेगा और पापाचरण करनेपर नरककी प्रचण्ड यातनाएँ भी भोगनी पड़ेंगी। और यदि शास्त्र-पुराणोक्त कथनोंके अनुसार सदाचार और धर्मसे युक्त अपनी जीवन-चर्या चलाता है तो अपना कल्याण करनेमें पूर्णतः समर्थ होता है। इसलिये भगवान्‌ने गीतामें कहा है कि—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

यदि हम अपना पतन नहीं होने देना चाहते तो हमें अपना उद्धार अपने-आप करना चाहिये। वस्तुतः हम ही अपने-आपके मित्र और शत्रु हैं। अतः जीवनमें क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये इसके लिये शास्त्र ही प्रमाण हैं—तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।

जो मनुष्य शास्त्र-पुराणोक्त विधिको तिलाञ्जलि देकर मनमाना आचरण करता है, उसे प्रचण्ड नरक-यातनाएँ भोगते हुए जन्म-मरणके बन्धनमें बँधा रहना पड़ता है, उसे न सफलता मिलती है, न सुख प्राप्त होता है और न परम गति ही मिलती है।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

यथेच्छ आचरण मानवका महान् पतन है। क्षणिक विषय-सुखके लिये बहुत-बहुत जन्मोंतक दुःख और कष्टमें जलते रहना कहाँकी बुद्धिमानी है? हम ऐसे भयङ्कर परिणामको जानते हुए भी ऐसी भूल क्यों करें? धर्मका पालन और शास्त्रोक्त जीवन-यापन यही इस भूलका सुधार है।

पुराणोंमें जीवन-चर्याका विशद विवेचन प्राप्त होता है। जन्मसे मरणपर्यन्त मनुष्यको क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये—इन सबका सविस्तार निरूपण हुआ है। यहाँ स्थानाभावके कारण संक्षेपमें जीवन-चर्याके आवश्यक विवरण तथा इनसे सम्बन्धित कुछ पौराणिक आख्यान भी यत्र-तत्र प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जो सर्वोपयोगी हैं।

संस्कार

वेद-पुराणों तथा धर्मशास्त्रोंमें संस्कारोंकी आवश्यकता बतलायी गयी है। जैसे खानसे सोना, हीरा आदि निकलनेपर उसमें चमक-प्रकाश तथा सौन्दर्यके लिये उसे तपाकर, तराशकर मल हटाना एवं चिकना करना आवश्यक होता है, उसी प्रकार मनुष्यमें मानवीय शक्तिका आधान होनेके लिये उसे सुसंस्कृत होना आवश्यक है, अर्थात् उसका पूर्णतः विधिपूर्वक संस्कार सम्पन्न करना चाहिये। वास्तवमें विधिपूर्वक संस्कार-साधनसे दिव्य ज्ञान उत्पन्न कर आत्माको परमात्माके रूपमें प्रतिष्ठित करना ही मुख्य संस्कार है और मानव-जीवन प्राप्त करनेकी सार्थकता भी इसीमें है।

संस्कारोंसे आत्मा—अन्तःकरण शुद्ध होता है। संस्कार मनुष्यको पाप और अज्ञानसे दूर रखकर आचार-विचार और ज्ञान-विज्ञानसे संयुक्त करते हैं। संस्कार मुख्यतः दो प्रकारके होते हैं—१-मलापनयन और २-अतिशयाधान। किसी दर्पण आदिपर पड़े हुए धूल आदि सामान्य मलको वस्त्र आदिसे पोंछना-हटाना या स्वच्छ करना मलापनयन कहलाता है और फिर किसी रंग या तेजोमय पदार्थद्वारा उसी दर्पणको विशेष चमत्कृत या प्रकाशमय बनाना अतिशयाधान कहलाता है। अन्य शब्दोंमें इसे ही भावना, प्रतियत्न या गुणाधान-संस्कार कहा जाता है।

संस्कारोंकी संख्यामें विद्वानोंमें प्रारम्भसे ही कुछ मतभेद रहा है। गौतमस्मृतिमें ४८ संस्कार बतलाये गये हैं। महर्षि अङ्गिराने २५ संस्कार निर्दिष्ट किये हैं। पुराणोंमें भी विविध संस्कारोंका उल्लेख है, परंतु उनमें मुख्य तथा आवश्यक षोडश संस्कार माने गये हैं। महर्षि व्यासद्वारा प्रतिपादित प्रमुख षोडश संस्कार इस प्रकार हैं[१]—१-गर्भाधान, २-पुंसवन, ३-सीमन्तोन्नयन, ४-जातकर्म, ५-नामकरण, ६-निष्क्रमण, ७-अन्नप्राशन, ८-वपन-क्रिया (चूडाकरण), ९-कर्णवेध, १०-व्रतादेश (उपनयन), ११-वेदारम्भ, १२-केशान्त (गोदान), १३-वेदस्नान (समावर्तन), १४-विवाह, १५-विवाहाग्निपरिग्रह, १६-त्रेताग्निसंग्रह।

आगे इन्हीं सोलह संस्कारोंका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। इनका आरम्भ जन्मसे पूर्व ही प्रारम्भ हो जाता है। विशेष जानकारीके लिये गृह्यसूत्रों, मनु आदि स्मृतियोंके साथ पुराणोंका भी गम्भीर अवलोकन करना चाहिये।

(१) गर्भाधान-संस्कार—विधिपूर्वक संस्कारसे युक्त गर्भाधानसे अच्छी और सुयोग्य संतान उत्पन्न होती है। इस संस्कारसे वीर्यसम्बन्धी तथा गर्भसम्बन्धी पापका नाश होता है, दोषका मार्जन तथा क्षेत्रका संस्कार होता है। यही गर्भाधान-संस्कारका फल है[२]। गर्भाधानके समय स्त्री-पुरुष जिस भावसे भावित होते हैं, उसका प्रभाव उनके रज-वीर्यमें भी पड़ता है। उस रज-वीर्यजन्य संतानमें भी वे भाव प्रकट होते हैं[३]। अतः शुभमुहूर्तमें शुभ मन्त्रसे प्रार्थना करके गर्भाधान करे। इस विधानसे कामुकताका दमन और शुभ-भावापन्न मनका सम्पादन हो जाता है। द्विजातिको गर्भाधानसे पूर्व पवित्र होकर इस मन्त्रसे प्रार्थना करनी चाहिये—

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि पृथुष्टुके।
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजौ॥

(बृहदारण्यक ६।४।२१)

'हे सिनीवाली देवि! एवं हे विस्तृत जघनोंवाली पृथुष्टुका देवि! आप इस स्त्रीको गर्भ धारण करनेकी सामर्थ्य दें और उसे पुष्ट करें। कमलोंकी मालासे सुशोभित दोनों अश्विनीकुमार तेरे गर्भको पुष्ट करें।'

१-गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च। नामक्रियानिष्क्रमणेऽन्नाशनं वपनक्रिया॥
कर्णवेधो व्रतादेशो वेदारम्भक्रियाविधिः। केशान्तः स्नानमुद्वाहो विवाहाग्निपरिग्रहः॥
त्रेताग्निसंग्रहश्चेति संस्काराः षोडश स्मृताः। (व्यासस्मृति १।१३-१५)

२-निषेकाद् बैजिकं चैनो गार्भिकं चापमृज्यते। क्षेत्रसंस्कारसिद्धिश्च गर्भाधानफलं स्मृतम्॥ (स्मृतिसंग्रह)

३-आहाराचारचेष्टाभिर्यादृशीभिः समन्वितौ। स्त्रीपुंसौ समुपेयातां तयोः पुत्रोऽपि तादृशः॥
(सुश्रुतसंहिता, शारीरस्थान, २।४६।५०)
अर्थात् स्त्री और पुरुष जैसे आहार, व्यवहार तथा चेष्टासे संयुक्त होकर परस्पर समागम करते हैं, उनका पुत्र भी वैसे ही स्वभावका होता है।

(२) पुंसवन-संस्कार—पुत्रकी प्राप्तिके लिये शास्त्रोंमें पुंसवन-संस्कारका विधान है। **'गर्भाद् भवेच्च पुंसूते पुंस्त्वरूपप्रतिपादनम्'** (स्मृतिसंग्रह)। इस गर्भसे पुत्र उत्पन्न हो, इसलिये पुंसवन-संस्कार किया जाता है। **'पुन्नाम्नो नरकात् त्रायते इति पुत्रः'** अर्थात् **'पुम्'** नामक नरकसे जो त्राण (रक्षा) करता है, उसे पुत्र कहा जाता है। इस वचनके आधारपर नरकसे बचनेके लिये मनुष्य पुत्र-प्राप्तिकी कामना करते हैं। मनुष्यकी इस अभिलाषाकी पूर्तिके लिये ही पुराणोंमें पुंसवन-संस्कारका विधान मिलता है। जब गर्भ दो-तीन मासका होता है अथवा गर्भिणीमें गर्भके चिह्न स्पष्ट हो जाते हैं, तभी पुंसवन-संस्कारका विधान बताया गया है।

शुभ मङ्गलमय मुहूर्तमें माङ्गलिक पाठ करके गणेश आदि देवताओंका पूजन कर वटवृक्षके नवीन अङ्कुरों तथा पल्लवों और कुशकी जड़को जलके साथ पीसकर उस रसरूप ओषधिको पति गर्भिणीके दाहिने नाकसे पिलाये और पुत्रकी भावनासे—

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

(यजु० १३।४)

—इत्यादि मन्त्रोंका पाठ करे। इन मन्त्रोंसे सुसंस्कृत तथा अभिमन्त्रित भाव-प्रधान नारीके मनमें पुत्रभावका प्रवाह प्रवाहित हो जाता है। जिसके प्रभावसे गर्भके मांस-पिण्डमें पुरुषके चिह्न उत्पन्न होते हैं।

पुंसवन-संस्कारका ही उपाङ्गभूत एक संस्कार होता है जो 'अवलोभन' कहलाता है। इस संस्कारका यह प्रयोजन है कि इससे गर्भस्थ शिशुकी रक्षा होती है और असमयमें गर्भ च्युत नहीं होने पाता। इसमें शिशुकी रक्षाके लिये सभी माङ्गलिक पूजन, हवनादि कार्योंके अनन्तर जल एवं ओषधियोंकी प्रार्थना की जाती है।

पुत्रकी प्राप्तिके लिये पुराणोंमें पुंसवन नामक एक व्रत-विशेषका विधान भी बतलाया गया है, जो एक वर्षतक चलता है। स्त्रियाँ पतिकी आज्ञासे ही इस व्रतका संकल्प लेती हैं। भागवतके छठे स्कन्ध, अध्याय १८-१९ में बताया गया है कि महर्षि कश्यपकी आज्ञासे दितिने इन्द्रके वधकी क्षमता रखनेवाले पुत्रकी कामनासे यह व्रत किया था।

(३) सीमन्तोन्नयन-संस्कार—गर्भके छठे या आठवें मासमें यह संस्कार किया जाता है। इस संस्कारका फल भी गर्भकी शुद्धि ही है। सामान्यतः गर्भमें ४ मासके बाद बालकके अङ्ग-प्रत्यङ्ग-हृदय आदि प्रकट हो जाते हैं। चेतनाका स्थान हृदय बन जानेके कारण गर्भमें चेतना आ जाती है। इसलिये उसमें इच्छाओंका उदय होने लगता है। वे इच्छाएँ माताके हृदयमें प्रतिबिम्बित होकर प्रकट होती हैं, जो 'दोहद' कहलाता है। गर्भमें जब मन तथा बुद्धिमें नूतन चेतनाशक्तिका उदय होने लगता है, तब इनमें जो संस्कार डाले जाते हैं, उनका बालकपर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। इस समय गर्भ शिक्षण-योग्य होता है। महाभक्त प्रह्लादको देवर्षि नारदजीका उपदेश तथा अभिमन्युको चक्रव्यूह-प्रवेशका उपदेश इसी समयमें मिला था। अतः माता-पिताको चाहिये कि इन दिनों विशेष सावधानीके साथ शास्त्रसम्मत व्यवहार रखें।

इस संस्कारमें घृतयुक्त यज्ञ-अवशिष्ट सुपाच्य पौष्टिक चरु (खीर) गर्भवती स्त्रीको खिलाया जाता है। संस्कारके दिन सुपाच्य पौष्टिक भोजनका विधान करके यह संकेत कर दिया गया है कि प्रसवपर्यन्त ऐसा ही सुपाच्य पौष्टिक भोजन देना चाहिये।

इस संस्कारमें पति शास्त्रवर्णित गूलर आदि वनस्पतिद्वारा गर्भिणीके सीमन्त (माँग) का **'ॐ भूर्विनयामि, ॐ भुवर्विनयामि, ॐ स्वर्विनयामि'** इन्हें पढ़ते पृथक्करणादि क्रियाएँ करते हुए यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

येनादितेः सीमानं नयति प्रजापतिर्महते सौभगाय।
तेनाहमस्यै सीमानं नयामि प्रजामस्यै जरदष्टिं कृणोमि॥

अर्थात् 'जिस प्रकार देवमाता अदितिका सीमन्तोन्नयन प्रजापतिने किया था, उसी प्रकार इस गर्भिणीका सीमन्तोन्नयन करके इसके पुत्रको जरावस्थापर्यन्त दीर्घजीवी करता हूँ।' इसके बाद वृद्धा ब्राह्मणियोंद्वारा आशीर्वाद दिलाया जाता है।

(४) जातकर्म-संस्कार—इस संस्कारसे गर्भस्रावजन्य सारा दोष नष्ट हो जाता है। बालकका जन्म होते ही यह संस्कार करनेका विधान है। नालच्छेदनसे पूर्व बालकको स्वर्णकी शलाकासे अथवा अनामिका अँगुलीसे मधु तथा घृत चटाया जाता है। इसमें स्वर्ण त्रिदोषनाशक है। घृत [illegible]

तथा वात-पित्तनाशक है एवं मधु कफनाशक है। इन तीनोंका सम्मिश्रण आयु, लावण्य और मेधाशक्तिको बढ़ानेवाला तथा पवित्रकारक होता है।

बालकके पिता अथवा आचार्यको बालकके कानके पास उसके दीर्घायुके लिये इस मन्त्रका पाठ करना चाहिये—

अग्निरायुष्मान्त्स वनस्पतिभिरायुष्मान्। तेन त्वायुषाऽऽयुष्मन्तं करोमि ॥ (पारस्कर १।१६।६)

'जिस प्रकार अग्निदेव वनस्पतियोंद्वारा आयुष्मान् हैं, उसी प्रकार उनके अनुग्रहसे मैं तुम्हें दीर्घायुसे युक्त करता हूँ। ऐसे ८ आयुष्य-मन्त्रोंको बालकके कानके पास गम्भीरतापूर्वक जप कर उसके मनको उत्तम भावोंसे भावित करे। पुनः पिताद्वारा पुत्रके दीर्घायु होने तथा उसके कल्याणकी कामनासे **'ॐ दिवस्परि प्रथमं जज्ञे'** (यजु० १२।१८-२८) इत्यादि ग्यारह मन्त्रोंका पाठ करते हुए बालकके हृदय आदि सभी अङ्गोंका स्पर्श करनेका विधान है। इस संस्कारमें माँके स्तनोंको धोकर दूध पिलानेका विधान इसलिये किया गया है कि माँके रक्त और मांससे उत्पन्न बालकके लिये माँका दूध ही सर्वाधिक पोषक पदार्थ है।

(५) नामकरण-संस्कार—इस संस्कारका फल आयु तथा तेजकी वृद्धि एवं लौकिक व्यवहारकी सिद्धि बताया गया है[4]। जन्मसे दस रात्रिके बाद ११ वें दिन या कुलक्रमानुसार सौवें दिन या एक वर्ष बीत जानेके बाद नामकरण-संस्कार करनेकी विधि है। पुरुष और स्त्रियोंका नाम किस प्रकारका रखा जाय, इन सारी विधियोंका वर्णन पुराणोंमें बताया गया है।

(६) निष्क्रमण-संस्कार—इस संस्कारका फल विद्वानोंने आयुकी वृद्धि बताया है—**(निष्क्रमणादायुषो वृद्धिरप्युद्दिष्टा मनीषिभिः)**। यह संस्कार बालकके चौथे या छठे मासमें होता है, सूर्य तथा चन्द्रादि देवताओंका पूजन कर बालकको उनके दर्शन कराना इस संस्कारकी मुख्य प्रक्रिया है। बालकका शरीर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाशसे बनता है। बालकका पिता इस संस्कारके अन्तर्गत आकाश आदि पञ्चभूतोंके अधिष्ठाता देवताओंसे बालकके कल्याणकी कामना करता है। यथा—

शिवे तेऽऽस्तां द्यावापृथिवी असंतापे अभिश्रियौ, शं ते सूर्य आ तपतु शं वातो वातु ते हृदे। शिवा अभि क्षरन्तु त्वापो दिव्याः पयस्वतीः ॥ (अथर्ववे० सं० ८।२।१४)

अर्थात् 'हे बालक! तेरे निष्क्रमणके समय द्युलोक तथा पृथिवीलोक कल्याणकारी सुखद एवं शोभास्पद हों। सूर्य तेरे लिये कल्याणकारी प्रकाश करें। तेरे हृदयमें स्वच्छ कल्याणकारी वायुका संचरण हो। दिव्य जलवाली गङ्गा-यमुना आदि नदियाँ तेरे लिये निर्मल स्वादिष्ट जलका वहन करें।'

(७) अन्नप्राशन-संस्कार—इस संस्कारके द्वारा माताके गर्भमें मलिन-भक्षण-जन्य जो दोष बालकमें आ जाते हैं, उनका नाश हो जाता है **(अन्नाशनान्मातृगर्भे मलाशाद्यपि शुद्ध्यति)**। जब बालक ६-७ मासका होता है और दाँत निकलने लगते हैं, पाचनशक्ति प्रबल होने लगती है, तब यह संस्कार किया जाता है।

शुभ मुहूर्तमें देवताओंका पूजन करनेके पश्चात् माता-पिता आदि सोने या चाँदीकी शलाका या चम्मचसे निम्नलिखित मन्त्रसे बालकको हविष्यान्न (खीर) आदि पवित्र और पुष्टिकारक अन्न चटाते हैं—

शिवौ ते स्तां व्रीहियवावबलासावदोमधौ।
एतौ यक्ष्मं वि बाधेते एतौ मुञ्चतो अंहसः ॥

(अथर्व० ८।२।१८)

अर्थात् हे 'बालक! जौ और चावल तुम्हारे लिये बलदायक तथा पुष्टिकारक हों। क्योंकि ये दोनों वस्तुएँ यक्ष्मा-नाशक हैं तथा देवान्न होनेसे पापनाशक हैं।'

इस संस्कारके अन्तर्गत देवोंको खाद्य-पदार्थ निवेदित कर अन्न खिलानेका विधान बताया गया है। अन्न ही मनुष्यका स्वाभाविक भोजन है, उसे भगवान्‌का कृपाप्रसाद समझकर ग्रहण करना चाहिये।

(८) वपनक्रिया (चूडाकरण-संस्कार)—इसका फल बल, आयु तथा तेजकी वृद्धि करना है। इसे प्रायः तीसरे वर्ष, पाँचवें या सातवें वर्ष अथवा कुलपरम्पराके अनुसार करनेका विधान है। मस्तकके भीतर ऊपरको जहाँपर बालोंका भँवर

४-आयुर्वर्चोऽभिवृद्धिश्च सिद्धिर्व्यवहतेस्तथा। नामकर्मफलं त्वेतत् समुद्दिष्टं मनीषिभिः॥ (स्मृतिसंग्रह)

होता है, वहाँ सम्पूर्ण नाड़ियों एवं संधियोंका मेल हुआ है। उसे 'अधिपति' नामका मर्मस्थान कहा गया है, इस मर्मस्थानकी सुरक्षाके लिये ऋषियोंने उस स्थानपर चोटी रखनेका विधान किया है। यथा—

नि वर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥ (यजु० ३। ६३)

'हे बालक! मैं तेरे दीर्घायुके लिये तथा तुम्हें अन्नके ग्रहण करनेमें समर्थ बनानेके लिये, उत्पादन-शक्ति-प्राप्तिके लिये, ऐश्वर्य-वृद्धिके लिये, सुन्दर संतानके लिये, बल तथा पराक्रम-प्राप्तिके योग्य होनेके लिये तेरा चूडाकरण (मुण्डन) संस्कार करता हूँ।' इस मन्त्रसे बालकको सम्बोधित करके शुभ मुहूर्तमें कुशल नाईसे बालकका मुण्डन करावे। बादमें सिरमें दही-मक्खन लगाकर बालकको स्नान कराकर माङ्गलिक क्रियाएँ करनी चाहिये।

(९) कर्णवेध—पूर्ण पुरुषत्व एवं स्त्रीत्वकी प्राप्तिके लिये यह संस्कार किया जाता है। शास्त्रोंमें कर्णवेधरहित पुरुषको श्राद्धका अधिकारी नहीं माना गया है। इस संस्कारको छः माससे लेकर सोलहवें मासतक अथवा तीन, पाँच आदि विषम वर्षमें या कुलक्रमागत आचारको मानते हुए सम्पन्न करना चाहिये। सूर्यकी किरणें कानोंके छिद्रसे प्रविष्ट होकर बालक-बालिकाको पवित्र करती हैं और तेज-सम्पन्न बनाती हैं। यद्यपि ब्राह्मण और वैश्यका रजतशलाका (सूई)से, क्षत्रियका स्वर्णशलाकासे तथा शूद्रका लौहशलाकाद्वारा कान छेदनेका विधान है तथापि वैभवशाली पुरुषोंको स्वर्णशलाकासे ही यह क्रिया सम्पन्न करानी चाहिये। पवित्र स्थानमें शुभ समयोंमें देवताओंका पूजनकर सूर्यके सम्मुख बालक अथवा बालिकाके कानोंका निम्नलिखित मन्त्रद्वारा अभिमन्त्रण करना चाहिये—'

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ँ् सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥
(यजु० २५। २१)

फिर बालकके प्रथम दाहिने कानमें तदनन्तर बायें कानमें सूईसे छेद करे। बालिकाके पहले बायें फिर दाहिने कानके वेधके साथ बायीं नासिकाके वेधका भी विधान मिलता है। इन वेधोंमें बालकोंको कुण्डल आदि तथा बालिकाको कर्णाभूषण आदि पहनाने चाहिये। कर्णवेधके नक्षत्रसे तीसरे नक्षत्रमें लगभग तीसरे दिन अच्छी तरहसे उष्ण-जल कानको धोना और स्नान कराना चाहिये। कर्णवेधके लि[ये] जन्मनक्षत्र, रात्रि तथा दक्षिणायन निषिद्ध समय माना गया है।

(१०) उपनयन (व्रतादेश) संस्कार—इस संस्कार[से] द्विजत्वकी प्राप्ति होती है। शास्त्रों तथा पुराणोंमें तो यहाँत[क] कहा गया है कि इस संस्कारके द्वारा ब्राह्मण-क्षत्रिय औ[र] वैश्यका द्वितीय जन्म होता है। विधिवत् यज्ञोपवीत धार[ण] करना इस संस्कारका मुख्य अङ्ग है। इस संस्कारके द्वारा अप[ने] आत्यन्तिक कल्याणके लिये वेदाध्ययन तथा गायत्री-जप औ[र] श्रौत-स्मार्त आदि कर्म करनेका अधिकार प्राप्त होता है।

शास्त्रविधिसे उपनयन-संस्कार हो जानेपर गुरु बालकके कंधों तथा हृदयका स्पर्श करते हुए कहता है—

मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु।
मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्॥

मैं वैदिक तथा लौकिक शास्त्रोंके ज्ञान करानेवाले वेदव्रत तथा विद्याव्रत—इन दो व्रतोंको तुम्हारे हृदयमें स्थापित कर रहा हूँ। तुम्हारा चित्त—मन या अन्तःकरण मेरे अन्तःकरणका ज्ञानमार्गमें अनुसरण करता रहे अर्थात् जिस प्रकार मैं तुम्हें उपदेश करता रहूँ, उसे तुम्हारा चित्त ग्रहण करता चले। मेरी बातोंको तुम एकाग्र-मनसे समाहित होकर सुनो और ग्रहण करो। प्रजापति ब्रह्मा एवं बुद्धि-विद्याके स्वामी बृहस्पति तुम्हें मेरी विद्याओंसे संयुक्त करें।'

इसी प्रकार वेदाध्ययनके साथ-साथ गुरुद्वारा बालक (वटु) को कई उपदेश प्रदान किये जाते हैं। प्राचीन कालमें केवल वाणीसे ही ये शिक्षाएँ नहीं दी जाती थीं, प्रत्युत गुरुजन तत्परतापूर्वक शिष्योंसे पालन भी करवाते थे।

(११) वेदारम्भ-संस्कार—उपनयन हो जानेपर बालकको वेदाध्ययनमें अधिकार प्राप्त हो जाता है। ज्ञानस्वरूप वेदोंके सम्यक् अध्ययनसे पूर्व मेधाजनन नामक एक उपाङ्ग-संस्कार करनेका विधान है। इस क्रियासे बालककी मेधा, प्रज्ञा, विद्या तथा श्रद्धाकी अभिवृद्धि होती है और वेदाध्ययन आदिमें विशेष अनुकूलता प्राप्त होती है तथा विद्याध्ययनमें कोई वि[घ्न]

नहीं होने पाता। ज्योतिर्निबन्धमें कहा गया है—

विद्यया लुप्यते पापं विद्ययाऽऽयुः प्रवर्धते।
विद्यया सर्वसिद्धिः स्याद्विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

'वेदविद्याके अध्ययनसे सारे पापोंका लोप होता है, आयुकी वृद्धि होती है, सारी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, यहाँतक कि उसके समक्ष साक्षात् अमृत रस अशन-पानके रूपमें उपलब्ध हो जाता है।'

गणेश और सरस्वतीकी पूजा करनेके पश्चात् वेदारम्भ—विद्यारम्भमें प्रविष्ट होनेका विधान है। शास्त्रोंमें कहे गये निषिद्ध तिथियोंमें वेदका स्वाध्याय नहीं करना चाहिये। अपने गुरुजनोंसे अङ्गोंसहित वेदों तथा उपनिषदोंका अध्ययन करना चाहिये। तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति कराना ही इस संस्कारका परम प्रयोजन है। 'वेदव्रत' नामके संस्कारमें महानाम्नी, महान्, उपनिषद् एवं उपाकर्म चार व्रत आते हैं। उपाकर्मको सभी जानते हैं। यह प्रतिवर्ष श्रावणमें होता है। शेष प्रथम महानाम्नीमें प्रतिवर्षान्त सामवेदके महानाम्नी आर्चिकके नौ ऋचाओंका पाठ होता है। प्रथम मुख्य ऋचा इस प्रकार है—

विदा मघवन् विदा गातुमनुश॰सिषो दिशः।
शिक्षा शचीनां पते पूर्वीणां पुरूवसो॥

(साम॰ ६४१)

इसका भाव है—'अत्यन्त वैभवशाली, उदार एवं पूज्य परमात्मन्! आप सम्पूर्ण वेद-विद्याओंके ज्ञानसे सम्पन्न हैं एवं आप सन्मार्ग और गम्य दिशाओंको भी ठीक-ठीक जानते हैं, हे आदिशक्तिके स्वामिन्! आप हमें शिक्षाका साङ्गोपाङ्ग रहस्य बतला दें।'

द्वितीय तथा तृतीय वर्षोंमें क्रमशः 'वैदिक महाव्रत' तथा 'उपनिषद्-व्रत' किया जाता है, जिसमें वेदोंकी ऋचाओं तथा उपनिषदोंका श्रद्धापूर्वक पाठ किया जाता है और अन्तमें सावित्री-स्नान होता है। इसके अनन्तर वेदाध्यायी स्नातक कहलाता है। इसमें सभी मन्त्र-संहिताओंका गुरुमुखसे श्रवण तथा मनन करना होता है। यह वेदारम्भ मुख्यतः ब्रह्मचर्याश्रम-संस्कार है।

(१२) केशान्त-संस्कार (गोदान)—वेदारम्भ-संस्कारमें ब्रह्मचारी गुरुकुलमें वेदोंका स्वाध्याय तथा अध्ययन करता है। उस समय वह ब्रह्मचर्यका पूर्ण पालन करता है तथा उसके लिये केश और श्मश्रु (दाढ़ी), मौञ्जी-मेखलादि धारण करनेका विधान है। जब विद्याध्ययन पूर्ण हो जाता है, तब गुरुकुलमें ही केशान्त-संस्कार सम्पन्न होता है। इस संस्कारमें भी आरम्भमें सभी संस्कारोंकी तरह गणेशादि देवोंका पूजन कर तथा यज्ञादिके सभी अङ्गभूत कर्मोंका सम्पादन करना पड़ता है। तदनन्तर श्मश्रु-वपन (दाढ़ी बनाने) की क्रिया सम्पन्न की जाती है, इसलिये यह श्मश्रु-संस्कार भी कहलाता है।

'केशानाम् अन्तः समीपस्थितः श्मश्रुभाग इति व्युत्पत्त्या केशान्तशब्देन श्मश्रूणामभिधानात् श्मश्रुसंस्कार एव केशान्तशब्देन प्रतिपाद्यते। अत एवाश्वलायनेनापि 'श्मश्रूणीहोन्दति' इति श्मश्रूणां संस्कार एवात्रोपदिष्टः।'

(संस्कारदीपक भाग २, पृ॰ ३४२)

पूर्वोक्त विवरणमें यह स्पष्ट किया गया है कि केशान्त शब्दसे श्मश्रु (दाढ़ी) का ही ग्रहण होता है, अतः मुख्यतः श्मश्रु-संस्कार ही केशान्त-संस्कार है। इसे गोदान-संस्कार भी कहा जाता है, क्योंकि गौ यह नाम केश (बालों) का भी है और केशोंका अन्तभाग अर्थात् समीपस्थित श्मश्रुभाग ही कहलाता है—

'गावो लोमानि केशा दीयन्ते खण्ड्यन्तेऽस्मिन्निति व्युत्पत्त्या 'गोदानं' नाम ब्राह्मणादीनां षोडशादिषु वर्षेषु कर्तव्यं केशान्ताख्यकर्मोच्यते।'

(रघु॰ ३। ३३ पद्यकी मल्लिनाथव्याख्या)

'गौ अर्थात् लोम-केश जिसमें काट दिये जाते हैं, इस व्युत्पत्तिके अनुसार 'गोदान' पद यहाँ ब्राह्मण आदि वर्णोंके सोलहवें वर्षमें करने योग्य केशान्त नामक कर्मका वाचक है।'

यह संस्कार केवल उत्तरायणमें किया जाता है। तथा प्रायः षोडशवर्षमें होता है।

(१३) (वेदस्नान) समावर्तन—समावर्तन विद्याध्ययनका अन्तिम संस्कार है। विद्याध्ययन पूर्ण हो जानेके अनन्तर स्नातक ब्रह्मचारी अपने पूज्य गुरुकी आज्ञा पाकर अपने घरमें समावर्तित होता है—लौटता है। इसीलिये इसे समावर्तन-संस्कार कहा जाता है। गृहस्थ-जीवनमें प्रवेश पानेका अधिकारी हो जाना समावर्तन-संस्कारका फल है।

वेद-मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित जलसे भरे हुए ८ कलशोंसे विशेष विधिपूर्वक ब्रह्मचारीको स्नान कराया जाता है, इसलिये यह वेदस्नान-संस्कार भी कहलाता है।

समावर्तन-संस्कारकी वास्तविक विधिके सम्बन्धमें आश्वलायन-स्मृतिके १४वें अध्यायमें पाँच प्रामाणिक श्लोक मिलते हैं, जिनके अनुसार केशान्त-संस्कारके बाद विधिपूर्वक स्नानके अनन्तर वह ब्रह्मचारी वेदविद्याव्रत-स्नातक कहलाता है। उसे अग्निस्थापन, परिसमूहन तथा पर्युक्षण आदि अग्निसंस्कार कर ऋग्वेदके दसवें मण्डलके १२८वें सूक्तकी सभी ९ वों ऋचाओंसे समिधाका हवन करना चाहिये। फिर गुरुदक्षिणा देकर, गुरुके चरणोंका स्मरण कर, उनकी आज्ञा ले स्विष्टकृत् होमके अनन्तर निम्न मन्त्रद्वारा वरुणदेवसे मौञ्जी-मेखला आदिके त्यागकी कामना करते हुए प्रार्थना करनी चाहिये—

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत। अवाधमानि जीवसे॥ (ऋग्वेद १।२५।२१)

इसका भाव है—हे वरुणदेव! आप हमारे कटि एवं ऊर्ध्वभागके मौञ्जी उपवीत एवं मेखलाको हटाकर सूतकी मेखला तथा उपवीत पहननेकी आज्ञा दें और निर्विघ्न अग्रिम जीवनका विधान करें। इसके बाद गुरुजन घर आते समय उसे लोक-परलोक-हितकारी एवं जीवनोपयोगी शिक्षा देते हैं—'सत्य बोलना। धर्मका आचरण करना। स्वाध्यायमें प्रमाद न करना। आचार्यके लिये प्रिय धन लाकर देना। संतान-परम्पराका उच्छेद न करना। सत्यमें प्रमाद न करना। कुशल-कर्मोंमें प्रमाद न करना। ऐश्वर्य देनेवाले कर्मोंमें प्रमाद न करना। स्वाध्याय और प्रवचनमें प्रमाद न करना। देवकार्यों और पितृकार्योंमें प्रमाद नहीं करना। माता-पिता, आचार्य तथा अतिथिको देवता माननेवाले होओ। जो अनिन्द्य कर्म हैं, उन्हींकी ओर प्रवृत्ति होनी चाहिये, अन्य कर्मोंकी ओर नहीं। हमारे जो शुभ आचरण हैं, तुम्हें उन्हींका आचरण करना चाहिये, दूसरोंका नहीं।'

जो हमारी अपेक्षा भी श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, उनका आसनादिके द्वारा तुम्हें आश्वासन (आदर) करना चाहिये। श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिये। अश्रद्धापूर्वक नहीं देना चाहये। अपने ऐश्वर्यके अनुसार देना चाहिये। लज्जापूर्वक देना चाहिये। भय मानते हुए देना चाहिये। मित्रतापूर्वक देना चाहिये। यदि तुम्हें कर्म या आचरणके विषयमें कोई संदेह उत्पन्न हो जाय, तो वहाँ जो विचारशील कर्ममें स्वेच्छासे भलीभाँति लगे रहनेवाले धर्ममति ब्राह्मण हों, उस विषयमें वे जैसा व्यवहार करते हों, वैसा तुम्हें भी करना चाहिये।

इसी प्रकार जिनपर संशययुक्त दोषारोपण किया गया हो, उनके विषयमें भी वहाँ जो विचारशील, स्वेच्छासे कर्मपरायण, सरल-हृदय, धर्माभिलाषी ब्राह्मण हों, वे जैसा व्यवहार करें, वैसा तुम्हें भी करना चाहिये। यह आदेश है। यह उपदेश है, यह वेदका रहस्य और ईश्वरकी आज्ञा है। इसी प्रकार तुम्हें उपासना करनी चाहिये। ऐसा ही आचरण करना चाहिये।'

इस उपदेश-प्राप्तिके अनन्तर स्नातकको पुनः गुरुको प्रणामकर मौञ्जी-मेखला आदिका परित्याग करके गुरुसे विवाहकी आज्ञा लेकर अपने माता-पिताके पास आना चाहिये और माता-पिता आदि अभिभावकोंको उस वेद-विद्याव्रत-स्नातकके घर आनेपर माङ्गलिक वस्त्राभूषणोंसे अलंकृतकर मधुपर्क आदिसे उसका स्वागत-सत्कारपूर्वक अर्चन करना चाहिये।

(१४) विवाह-संस्कार—पुराणोंके अनुसार ब्राह्म आदि उत्तम विवाहोंसे उत्पन्न पुत्र पितरोंको तारनेवाला होता है। विवाहका यही फल बताया गया है। यथा—

ब्राह्माद्युद्वाहसम्भूतः पितॄणां तारकः सुतः।
विवाहस्य फलं त्वेतत् व्याख्यातं परमर्षिभिः॥

(स्मृतिसंग्रह)

विवाह-संस्कारका भारतीय संस्कृतिमें अत्यधिक महत्त्व है। जिस दार्शनिक विज्ञान और सत्यपर वर्णाश्रमी आर्य-जातिके स्त्री-पुरुषोंका विवाह-संस्कार प्रतिष्ठित है, उसकी कल्पना दुर्विज्ञेय है। कन्या और वर दोनोंके स्वेच्छाचारी होकर विवाह करनेकी आज्ञा शास्त्रोंने नहीं प्रदान की है। इसके लिये कुछ नियम और विधान बने हैं, जिससे उनकी स्वेच्छाचारितापर नियन्त्रण होता है।

पाणिग्रहण-संस्कार देवता और अग्निके साक्षित्वमें करनेका विधान है। भारतीय संस्कृतिमें यह दाम्पत्य-सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर, युग-युगान्तरतक माना गया है।

(१५) विवाहाग्निपरिग्रह—विवाह-संस्कारमें लाजा-होम आदि क्रियाएँ जिस अग्निमें सम्पन्न की जाती हैं, वह 'आवसथ्य' नामक अग्नि कहलाती है। इसीको विवाहाग्नि भी कहा जाता है। उस अग्निका आहरण तथा उसकी परिसमूहन आदि क्रियाएँ इस संस्कारमें सम्पन्न होती हैं। शास्त्रोंमें निर्देश है कि किसी बहुत पशुवाले वैश्यके घरसे अग्निको लाकर विवाह-स्थलकी उपलिप्त पवित्र भूमिमें परिसमूहन तथा पर्युक्षणपूर्वक उस अग्निकी मन्त्रोंसे स्थापना करनी चाहिये और उसी स्थापित अग्निमें विवाह-सम्बन्धी लाजा-होम तथा औपासन होम करना चाहिये। तदनन्तर अग्निकी प्रदक्षिणा कर स्विष्टकृत् होम तथा पूर्णाहुति करनेका विधान है। कुछ विद्वानोंका मत है कि अग्नि कहीं बाहरसे न लाकर अरणि-मन्थनद्वारा उत्पन्न करनी चाहिये।

विवाहके अनन्तर जब वर-वधू अपने घर आने लगते हैं तब उस स्थापित अग्निको घर लाकर किसी पवित्र स्थानमें प्रतिष्ठित कर उसमें प्रतिदिन अपनी कुलपरम्परानुसार सायं-प्रातः हवन करना चाहिये। यह नित्य-हवन-विधि द्विजातिके लिये आवश्यक बतायी गयी है और नित्य-कर्ममें परिगणित है। सभी वैश्वदेवादि स्मार्त-कर्म तथा पाक-यज्ञ इसी अग्निमें अनुष्ठित किये जाते हैं। जैसा कि याज्ञवल्क्यने भी लिखा है—

कर्म स्मार्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही।

(या॰स्मृति, आचाराध्याय ५। ९७)

—इस अग्निको आनाय्याग्नि, गृह्याग्नि, आवसथ्याग्नि तथा विवाहाग्नि भी कहा जाता है। गृह्यसूत्रोंमें पठित सभी कर्म इसी स्थापित अग्निमें किये जाते हैं। सनातन संस्कृतिमें इस संस्कारका अत्यन्त महत्त्व है।

(१६) त्रेताग्निसंग्रह-संस्कार—

'स्मार्तं वैवाहिके वह्नौ श्रौतं वैतानिकाग्निषु'

(व्यासस्मृति २। १७)

स्मार्त या पाकयज्ञ-संस्थाके सभी कर्म वैवाहिक अग्निमें तथा हविर्यज्ञ एवं सोमयज्ञ-संस्थाके सभी श्रौत-कर्मानुष्ठानादि कर्म वैतानाग्नि (श्रौताग्नि-त्रेताग्नि) में सम्पादित होते हैं।

इससे पूर्व 'विवाहाग्निपरिग्रह-संस्कारके' परिचयमें यह स्पष्ट किया गया है कि विवाहमें घरमें लायी गयी आवसथ्य अग्नि प्रतिष्ठित की जाती है और उसीमें स्मार्त कर्म आदि अनुष्ठान किये जाते हैं। उस स्थापित अग्निसे अतिरिक्त तीन अग्नियों (दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य तथा आहवनीय) की स्थापना तथा उनकी रक्षा आदिका विधान भी शास्त्रोंमें निर्दिष्ट है। ये तीन अग्नियाँ त्रेताग्नि कहलाती हैं, जिसमें श्रौतकर्म सम्पादित होते हैं। जैसे वेदाध्ययन आवश्यक बताया गया है और वेदाध्ययनका प्रयोजन यज्ञ-कर्ममें पर्यवसित है, जिससे पुण्य और सद्‌गति प्राप्त होती है, वैसे ही इस त्रेताग्नि-क्रियाको आवश्यक तथा महत्त्वका संस्कार बताया गया है। इसी दृष्टिसे इसे अन्तिम संस्कार भी माना जाता है। शास्त्रोंमें यह निर्देश है कि गृहस्थ एक स्वतन्त्र यज्ञशालामें जिसे त्रेताग्निशाला भी कहा गया है, पूर्वोक्त तीन अग्नियोंकी विधिवत् स्थापना करे और उसमें हवनादि कार्य करे। वेदोंमें कर्म एवं उपासनासे सम्बन्धित ८४,००० मन्त्र केवल त्रेताग्निशालामें सम्पादन करने योग्य यज्ञोंके अनुष्ठान-विधानमें ही विनियुक्त हैं। ब्राह्मण-ग्रन्थों, ऋक्परिशिष्ट, अथर्वणपरिशिष्ट, श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र तथा जैमिनि आदिके मीमांसा आदि दर्शनोंमें विस्तारसे इनकी प्रयोगविधि तथा विस्तृत विवेचना प्राप्त होती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह संस्कार कितने महत्त्वका है! गृहस्थके लिये नित्य हवनके साथ ही श्रौतकर्मोंका विधान शास्त्रोंमें स्पष्ट बताया गया है। इन कर्मोंसे कर्ता सुसंस्कृत होता है और उसे परम पुरुषार्थकी प्राप्ति होती है।

भगवान् श्रीराम जब लंका-विजय कर सीताके साथ पुष्पक विमानसे वापस लौट रहे थे, तब उन्होंने मलयाचलके ऊपरसे आते समय सीताको अगस्त्यजीके आश्रमका परिचय देते हुए बताया कि यह अगस्त्य मुनिका आश्रम है, जहाँके त्रेताग्निमें सम्पादित यज्ञोंके सुगन्धित पूर्ण धुएँको सूँघकर मैं अपनेको सभी पाप-तापोंसे मुक्त अनुभव कर रहा हूँ।

अन्त्येष्टिक्रिया— कुछ आचार्योंने मृत-शरीरकी अन्त्येष्टिक्रियाको भी एक संस्कार माना है, जिसे पितृमेध, अन्त्यकर्म, अन्त्येष्टि अथवा श्मशानकर्म आदि नामोंसे भी कहा गया है। पुराणोंमें इस क्रियासे सम्बद्ध सभी विषयोंका वर्णन है तथा यह क्रिया अत्यन्त महत्त्वकी है। यहाँ इसका संक्षेपमें विवरण दिया जा रहा है—

इस संस्कारमें मुख्यतः संस्कृत अग्निसे दाहक्रियासे

लेकर द्वादशाहतकके कर्म सम्पन्न किये जाते हैं। मृत व्यक्तिके शरीरको स्नान कराकर, वस्त्रोंसे आच्छादित कर, तुलसी-स्वर्ण आदि पवित्र पदार्थोंको अर्पित कर, शिखासूत्र-सहित उत्तरकी ओर सिर करके चितामें स्थापित करना चाहिये और फिर औरस पुत्र या सपिण्डी या सगोत्री व्यक्ति सुसंस्कृत अग्निसे मन्त्रसहित चितामें अग्नि दे। अग्नि देनेवाले व्यक्तिको बारहवें दिनतक सपिण्डन-पर्यन्त सारे कर्म करने चाहिये। तीसरे दिन अस्थिसंचयन करके दसवें दिन दशाह कर तिलाञ्जलि देनी चाहिये। दस दिनतक आशौच रहता है, उसमें कोई नैमित्तिक कार्य नहीं करने चाहिये। बौधायनीयपितृमेधसूत्रोंमें इस क्रियाकी विशिष्ट विधि दी गयी है।

अन्त्येष्टि-क्रियाके रहस्यपर कुछ संक्षिप्त विचार इस प्रकार हैं—मृत्युके अनन्तर मृत शरीरको अग्नि प्रदान करके वैदिक मन्त्रोंद्वारा दाह-क्रिया सम्पन्न किया जाता है। वर्ण और आश्रमके अनुसार दशगात्र-विधान, षोडश-श्राद्ध, सपिण्डीकरण आदि क्रियाएँ भी इसी संस्कारके अन्तर्गत हैं। पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच प्राणवायु, मन और बुद्धि इन सत्रह वस्तुओंका सूक्ष्मशरीर लेकर जीव स्वकर्मानुसार षाट्कौशिक स्थूलशरीरमें प्रवेश करता है। वहीं प्रारब्धको समाप्तकर जब उपर्युक्त सत्रह वस्तुओंको लेकर स्थूल-शरीरसे वह निकलता है, उस समय जीवको सूक्ष्मशरीरके रक्षार्थ एक वायवीय शरीर मिलता है। इसीसे वह अपने कर्मानुसार कृष्ण या शुक्ल गतिको प्राप्त होता है। षाट्कौशिक स्थूलशरीरसे निकलते ही तत्काल वह वायवीय शरीरको ग्रहण करता है। इसी समय जीवकी प्रेत-संज्ञा पड़ती है अर्थात् वह अधिक चलनेवाला और हलका जीव बन जाता है। स्थूलशरीरमें अधिक समयतक निवास होनेके कारण शरीरके साथ उसका विशेष अभिनिवेश हो जाता है। अतएव जीव बारम्बार वायुप्रधान शरीरके द्वारा पूर्वशरीरके सूक्ष्मावयवों (परमाणुओं) की तरफ रहनेकी चेष्टा करता रहता है। इसलिये इसी प्रेतत्वसे मुक्तिके लिये दशगात्रादि श्राद्धक्रियाएँ शास्त्रोंमें बतलायी गयी हैं। मूर्ख, विद्वान् सभीके लिये '**प्रेतत्व-विमुक्तिकामः**' ऐसा श्राद्ध-प्रकरणमें पढ़ा जाता है। मृतककी वासना जमीनमें गड़े हुए तथा कहीं गन्धयुक्त पड़े हुए पूर्व शरीरपर न जाय और उससे जीवकी मुक्ति हो जाय, इसलिये हिंदुओंमें मृत शरीरको जलानेकी प्रथा प्रचलित हुई है। अग्निसंस्कारसे मृत शरीरका पार्थिवतत्त्व कण-कण जलकर रूपान्तर ग्रहण करता है। फिर भस्मरूप (फूल) पार्थिवतत्त्व भगवती भागीरथीकी पावन वारिधारामें प्रवाहित कर दिया जाता है। वह परम पवित्र जल उन भस्मकणोंको स्वस्वरूपमें परिवर्तित कर लेता है। फिर मृतका सम्बन्ध पूर्व-शरीरसे विच्छिन्न हो जाता है और शास्त्रविहित श्राद्धादिक क्रियाके द्वारा प्रदत्त जलादि सामग्रीसे तृप्त होकर वह प्रेत-शरीरको छोड़ देता है। संन्यासियोंके मृत शरीरके लिये अग्निसंस्कार शास्त्रमें नहीं बतलाया गया है। क्योंकि कामनानुबन्धी कर्मोंको तथा कृतकर्म-फलोंको त्यागनेसे और श्रीभगवच्चरणारविन्दोंमें गाढ़ अनुराग होनेसे शरीर, स्त्री, पुत्र, परिवार, धनादिकी वासना जीवन-दशामें ही छूट जाती है। अतएव शरीरसे निकली हुई संन्यासियोंकी आत्मा शीघ्रातिशीघ्र शुक्ल गतिसे प्रयाण कर जाती है। मृत शरीरकी ओर आकर्षण करनेवाली सामग्री ही नहीं रह जाती, इसलिये संन्यासियोंके लिये श्राद्धादिकी कल्पनाएँ नहीं की गयी हैं। हिंदुओंमें छोटे बालकोंका शरीर भी नहीं जलाया जाता। उसे भूमिके अंदर गाड़ दिया जाता है। सूक्ष्मशरीरके साथ स्थूल शरीरमें प्रविष्ट आत्माका गाढ़ सम्बन्ध (अभिनिवेश) स्थूल शरीरमें अल्प दिनोंमें नहीं होता। अतएव बालकोंकी मृत आत्मा पूर्व-शरीरका सम्बन्ध शीघ्रातिशीघ्र त्यागकर संचित कर्मानुसार अपर शरीरको प्राप्त करती है। इसी कारण अल्पवयस्क बालकोंके लिये यह संस्कार नहीं बतलाया गया है। मृत आत्माओंका प्रगाढ़ अन्वय (वासना) पूर्व-शरीरके ऊपर अवश्य रहता है। इसी आधारपर मुसलमान और ईसाई जातियोंमें भी जहाँपर शरीर गाड़ा जाता है, वहाँपर उनके धर्मग्रन्थोंमें कुछ क्रियाएँ बतलायी गयी हैं। उन्हीं जातियोंमें यह भी सिद्धान्त बतलाया गया है कि जबतक प्रलय नहीं होता, तबतक जीव मृत शरीरके पास ही सुख-दुःख भोगा करता है।

प्रेतयोनि—प्रसङ्गतः यहाँपर यह भी कह देना उचित है कि चौरासी लाख योनियोंमें एक प्रेतयोनि भी मानी गयी है। कुछ पापोंका परिणाम भोगनेके लिये प्रेतयोनि मिलती है। जलमें डूबकर, अग्निमें जलकर, वृक्षसे गिरकर, [illegible]

ऊपर अनशन करके मरनेवाले मनुष्य प्रेतयोनिमें जाते हैं। वहाँपर भी मृत आत्माओंके लिये वायु-प्रधान शरीर मिलता है। प्रेतोंके हृदयमें यह इच्छा सर्वदा बनी रहती है कि जहाँपर उनका धन है, उनके शरीरके पार्थिव परमाणु हैं, उनके शरीर-सम्बन्धी परिवार हैं, वहींपर रहें; अपने सम्बन्धियोंको अपनी तरह बनायें। सभी भौतिक पदार्थोंका संचय करनेकी सामर्थ्य वायुतत्त्वमें रहती है। यही कारण है कि प्रेत वायु-शरीरप्रधान होनेसे जिस योनिकी इच्छा करता है, वही साँप, बैल, भैंस आदि शरीरको ग्रहण कर लेता है, परंतु कुछ ही समयतक वह शरीर ठहर सकता है, पीछे सब पार्थिव परमाणु शीघ्र ही विखर जाते हैं। जिसका अन्त्येष्टि-संस्कार शास्त्रविहित क्रियाओंसे नहीं किया जाता, वह प्राणी कुछ दिनोंके लिये प्रेतयोनि प्राप्त करता है। शास्त्रोक्त विधिसे जब उसका प्रेतसंस्कार, दशगात्र-विधान, षोडश-श्राद्ध, सपिण्डन-विधान किया जाता है, तब वह प्रेत-शरीरसे छूट जाता है। मनुष्यसे इतर योनियोंमें जीवके ऊपर पञ्चकोशोंका विकास पूर्णरूपसे नहीं रहता है। इसलिये पशु-पक्षियोंकी आत्मा पूर्व-शरीरके साथ गाढ़ सम्बन्ध (अभिनिवेश) नहीं कर पाती, वहाँपर प्रकृति-माताके सहारेसे शीघ्रातिशीघ्र अन्य योनिको जीव प्राप्त कर लेता है। अतएव तिर्यग्-योनियोंके लिये दाहादि संस्कार नहीं बतलाये गये हैं।

आचार

वेद-पुराणादि शास्त्रोंमें आचार-विचारकी अत्यधिक महिमा है। वे कहते हैं जो मनुष्य आचारवान् हैं, उन्हें दीर्घ आयु, धन, संतति, सुख और धर्मकी प्राप्ति होती है। संसारमें वे विद्वानोंसे भी मान्यताको प्राप्त करते हैं और उन्हें नित्य अविनाशी भगवान् विष्णुके लोककी प्राप्ति होती है—

आचारवन्तो मनुजा लभन्ते
आयुश्च वित्तं च सुतांश्च सौख्यम्।
धर्मं तथा शाश्वतमीशलोक-
मत्रापि विद्वज्जनपूज्यतां च॥

सभी शास्त्रोंका यह निश्चित मत है कि आचार ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। आचारहीन पुरुष यदि पवित्रात्मा भी हो तो उसका परलोक और इहलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं—

आचारः परमो धर्मः सर्वेषामिति निश्चयः।
हीनाचारी पवित्रात्मा प्रेत्य चेह विनश्यति॥

यह भी कहा गया है कि '**आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः**' (विष्णुधर्मो० ३। २५१। ५) अर्थात् जो व्यक्ति आचारहीन है, उन्हें वेद भी पवित्र नहीं करते। अपवित्र व्यक्तिद्वारा अनुष्ठित धर्म निष्फल-सा होता है। इस सम्बन्धमें इतिहास-पुराणोंमें एक बड़ी रोचक कथा प्राप्त होती है। तदनुसार, वेदके एक शिष्य थे उत्तंक। उन्होंने कुछ खाकर खड़े-खड़े आचमन कर लिया, जिससे उन्हें राजा पौष्यकी पतिव्रता रानीका राजमहलमें दर्शनतक नहीं हुआ। जब पौष्यद्वारा उनकी उच्छिष्टता या अपवित्रताकी सम्भावना व्यक्त हुई और उत्तंकने भलीभाँति अपना हाथ, पैर, मुख धोकर पूर्वाभिमुख आसनपर बैठ, हृदयतक पहुँचने योग्य पवित्र जलसे तीन बार आचमन किया तथा अपने नेत्र, नासिका आदिका जलसिक्त अंगुलियोंद्वारा स्पर्शकर शुद्ध हो अन्तःपुरमें प्रवेश किया, तब उन्हें पतिव्रता रानीका दर्शन हुआ।

पुराणोंमें आचारपर बहुत सूक्ष्म विचार किये गये हैं, जिससे सामान्यजन परिचित न होनेके कारण पूर्ण लाभ नहीं उठा पाते। आचारके दो भेद माने गये हैं—एक सदाचार तथा दूसरा शौचाचार। मनुष्य-जीवनकी सफलताके लिये सदाचरणका होना अत्यन्त आवश्यक है। विष्णुपुराणमें और्व ऋषिने गृहस्थके सदाचारके विषयमें कहा है—

सदाचाररतः प्राज्ञो विद्याविनयशिक्षितः।
पापेऽप्यपापः परुषे ह्यभिधत्ते प्रियाणि यः।
मैत्रीद्रवान्तःकरणस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता॥

(३। १२। ४१)

'बुद्धिमान् गृहस्थ पुरुष सदाचारके पालन करनेसे ही संसारके बन्धनसे मुक्त होता है। सदाचारी विद्या और विनयसे युक्त रहता है तथा पापी पुरुषके प्रति भी पापमय, कष्टप्रद व्यवहार नहीं करता। वह सभीके साथ हित, प्रिय और मधुर भाषण करता है। सदाचारी पुरुष मैत्रीभावसे द्रवित अन्तःकरणवाले होते हैं, उनके लिये मुक्ति हस्तगत रहती है।'

सदाचारके अन्तर्गत काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, राग-द्वेष, झूठ, कपट, छल-छद्म, दम्भ आदि असत्-आचरणोंका त्याग तथा सत्य, अहिंसा, दया, परोपकार, क्षमा, धृति, इन्द्रियनिग्रह, अक्रोध आदि सत्-आचरणोंका ग्रहण मुख्य है। देवीभागवतमें कहा गया है कि—

आचारवान् सदा पूतः सदैवाचारवान् सुखी।
आचारवान् सदा धन्यः सत्यं सत्यं च नारद॥

(११।२४।९८)

विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें कहा गया है कि 'सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त होनेपर भी पुरुष यदि आचारसे रहित है तो उसे न विद्याकी प्राप्ति होती है और न अभीष्ट मनोरथोंकी ही। ऐसा व्यक्ति नरकका भागी बनता है'—

सर्वलक्षणयुक्तोऽपि नरस्त्वाचारवर्जितः।
न प्राप्नोति तथा विद्यां न च किञ्चिदभीप्सितम्।
आचारहीनः पुरुषो नरकं प्रतिपद्यते॥

(३।२५०।४)

इसके विपरीत जो सत्-आचारका पालन करता है, वह पुरुष स्वर्ग, कीर्ति, आयु, सम्मान तथा सभी लौकिक सुखोंका भोग करता है। आचारवान्‌को ही स्वर्ग प्राप्त होता है, वह रोगसे रहित रहता है, उसकी आयु लम्बी होती है और सभी ऐश्वर्योंका वह भोग करता है—

आचारः स्वर्गजनन आचारः कीर्तिवर्धनः।
आचारश्च तथायुष्यो धन्यो लोकसुखावहः॥
आचारयुक्तस्त्रिदिवं प्रयाति
आचारवानेव भवत्यरोगः।
आचारवानेव चिरं तु जीवे-
दाचारवानेव भुनक्ति लक्ष्मीम्॥

(विष्णुधर्मो० २७१।१, ४)

अतः शास्त्रोंमें वर्णित सदाचरणोंका ही सर्वदा व्यवहार करना चाहिये। कल्याणका यह परम श्रेयस्कर मार्ग है।

शौचाचार—सदाचारकी भाँति शौचाचारका भी पुराणोंमें विशेष महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। शौचाचारसे प्रत्यक्षतः शरीरादिकी बाह्यशुद्धि होती है। प्रातःकाल उठनेसे लेकर शयनपर्यन्त शौचाचारकी विधि पुराणोंमें वर्णित है, यहाँ शौचाचारके कुछ सूत्र प्रस्तुत किये जाते हैं—

प्रातःकाल उठनेके बाद भगवत्स्मरणके अनन्तर शौचकी विधि इस प्रकार बतायी गयी है—शौचके समय मृत्तिकाका प्रयोग अवश्य करना चाहिये। एक बार मूत्रेन्द्रिय तथा तीन बार पायु (मलस्थान) को मृत्तिका एवं जलसे प्रक्षालित करे। तदनन्तर दस बार बायाँ हाथ मिट्टीसे धोये तथा सात बार दोनों हाथ मिट्टीसे धोने चाहिये। तीन बार पाँवोंको मिट्टीसे धोये। इसके बाद आठ बार कुल्ला करना चाहिये तथा लघुशंकाके अनन्तर चार बार कुल्ला करना चाहिये।[1] उपर्युक्त विधान गृहस्थोंके लिये है। ब्रह्मचारियोंको इसका दुगुना, वानप्रस्थियोंको तिगुना तथा संन्यासियोंको चार गुना करना चाहिये।

दन्तधावन-विधि—शौचादि कृत्यके बाद दन्तधावन-विधि बतायी गयी है। मौन होकर दातौन अथवा मंजनसे दाँत साफ करने चाहिये। दातौनके लिये खैर, करंज, कदम्ब, बड़, इमली, बाँस, आम, नीम, चिचड़ा, बेल, आक, गूलर, बदरी, तिन्दुक आदिकी दातूनें अच्छी मानी जाती हैं।[2] लिसोढ़ा, पलाश, कपास, नील, धव, कुश, काश आदि वृक्षकी दातौन वर्जित हैं।

निषिद्धकाल—प्रतिपदा, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी, अमावास्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति, जन्मदिन, विवाह, व्रत, उपवास, रविवार और श्राद्धके अवसरपर दातौन नहीं करना चाहिये। रजस्वला तथा प्रसूतावस्थामें भी दातौन वर्जित है।

जिन-जिन अवसरोंपर दातौनका निषेध है, उन-उन अवसरोंपर तत्तद् वृक्षोंके पत्तों या सुगन्धित दन्तमंजनोंसे दाँत

१- पवित्रताके लिये कम-से-कम लघुशंकाके समय जलका प्रयोग तो अवश्य करना चाहिये। शौचविधि रात्रिमें तथा स्त्री और शूद्रके लिये आधी हो जाती है, मार्गमें चौथाई बरती जाती है तथा रोगियोंके लिये उनकी शक्तिपर निर्भर करती है।

२- खदिरश्च करञ्जश्च कदम्बश्च वटस्तथा। तिन्तिडी वेणुपृष्ठं च आम्रनिम्बौ तथैव च॥
अपामार्गश्च बिल्वश्च अर्कश्चौदुम्बरस्तथा। बदरी तिन्दुकास्त्वेते प्रशस्ता दन्तधावने॥

स्वच्छ कर लेना चाहिये।[3] निषिद्धकालमें जीभी करनेका निषेध नहीं है।

क्षौरकर्म—क्षौरकर्मके लिये बुधवार तथा शुक्रवारके दिन प्रशस्त हैं। शनि, मंगल तथा बृहस्पतिवार और प्रतिपदा, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी आदि तिथियाँ निषिद्ध कही गयी हैं। व्रत और श्राद्धके दिन भी क्षौरकर्ममें वर्जित हैं।

तैलाभ्यङ्गविधि—रविवारको तेल लगानेसे ताप, सोमवारको शोभा, भौमवारको मृत्यु (अर्थात् आयुकी क्षीणता), बुधवारको धन, गुरुवारको हानि, शुक्रवारको दुःख और शनिवारको सुख होता है। यदि निषिद्ध दिनोंमें तेल लगाना हो तो रविवारको पुष्प, गुरुवारको दूर्वा, भौमवारको मिट्टी और शुक्रवारको गोबर तेलमें डालकर लगानेसे दोष नहीं होता है—

तैलाभ्यङ्गे रवौ तापः सोमे शोभा कुजे मृतिः।
बुधे धनं गुरौ हानिः शुक्रे दुःखं शनौ सुखम्॥
रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वा भौमवारे च मृत्तिका।
गोमयं शुक्रवारे च तैलाभ्यङ्गे न दोषभाक्॥

स्नान—शरीरकी पवित्रताके लिये नित्य स्नानकी आवश्यकता है। शास्त्रोंमें स्नानके कई प्रकार बतलाये गये हैं। सामान्यतः शुद्ध जलसे सम्पूर्ण शरीरके मल-प्रक्षालनको स्नान कहा जाता है। मत्स्यपुराणमें कहा गया है कि स्नानके बिना शरीरकी निर्मलता और भावशुद्धि नहीं प्राप्त होती। अतः मनकी विशुद्धिके लिये सर्वप्रथम स्नानका विधान है। कुएँ आदिके निकाले हुए अथवा बिना निकाले हुए नदी-तालाब आदिके जलसे स्नान करना चाहिये। मन्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुषको 'ॐ नमो नारायणाय' इस मूल मन्त्रके द्वारा उस जलमें तीर्थ-भावनाकी कल्पना करनी चाहिये[4]। स्नानके लिये गङ्गाका जल तथा तीर्थोंका जल सर्वाधिक पवित्र माना जाता है। फिर अन्य नदियों, सरोवरों, तड़ागों, कूपों आदिके जल पवित्र माने गये हैं। गङ्गा, तीर्थों तथा नदियोंमें स्नानका विशेष महत्त्व बताया गया है। अन्य स्नानकी विशेष विधियाँ भी पुराणोंमें वर्णित हैं। यथा—प्रायश्चित्तस्नान, अभिषेकस्नान, भस्मस्नान तथा मृत्तिकास्नान आदि। अशक्तावस्थामें कटिभागसे नीचेके अङ्गोंका प्रक्षालन तथा गलेसे ऊपरके अङ्गोंके प्रक्षालनसे भी स्नानकी विधि पूरी हो जाती है। विशेष अशक्यावस्था तथा आपत्तिकालमें निम्न मन्त्रोंद्वारा मार्जन-स्नानकी विधि बतायी गयी है—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

—इस मन्त्रके द्वारा शरीरपर जलसे मार्जन करे तथा—

'आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः तस्मा अरं गमाम वो' —

इस मन्त्रके द्वारा भी शरीरपर जल छिड़कते हुए मार्जन-स्नान करना चाहिये। **'यस्य क्षयाय जिन्वथ'** कहकर नीचे जल छोड़े और **'आपो जनयथा च नः'** इससे पुनः मार्जन करे।

भोजनविधि—स्नानोपरान्त सन्ध्योपासन एवं पूजन आदिसे निवृत्त होनेके पश्चात् भोजनकी विधि है। भोजनके सम्बन्धमें दो बातें मुख्य हैं। एक तो उच्छिष्ट (जूठा) भोजन करना सर्वथा निषिद्ध है। भोजन प्रारम्भ करनेसे पूर्व हाथ-पैरोंको शुद्ध जलसे प्रक्षालित करना चाहिये तथा जलद्वारा आचमन कर मौन होकर भोजन करना चाहिये। भोजनके अन्तमें भी आचमन करनेकी विधि है।

भोजनकी दूसरी मुख्य बात है द्रव्य-शुद्धि। सदाचारपूर्वक अर्जित द्रव्यका ही भोजन मनुष्यके लिये लाभदायी होता है तथा उसके अन्तःकरण और बुद्धिको पवित्र रखता है। अतः स्थूल दृष्टिसे भोजनमें शुद्धता, पवित्रता और सात्त्विकता होनी ही चाहिये, पर साथ ही सूक्ष्मरूपसे सत्यतासे अर्जित धनसे बना भोजन परम पवित्र होता है। बिना परिश्रम किये किसी पराये व्यक्तिके अन्नका भोजन करनेकी प्रवृत्ति भी नहीं रखनी चाहिये।[5]

३- 'तत्तत्पत्रैः सुगन्धैर्वा कारयेद् दन्तधावनम्' (स्कन्दपु०, प्रभासखण्ड)

४- नैर्मल्यं भावशुद्धिश्च बिना स्नानं न विद्यते। तस्मान्मनो विशुद्ध्यर्थं स्नानमादौ विधीयते॥
अनुद्धतैरुद्धतैर्वा जलैः स्नानं समाचरेत्। तीर्थं प्रकल्पयेद् विद्वान् मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्॥
(मत्स्य० १०२।१-२)

५- अपने मित्र या सगे-सम्बन्धियोंके यहाँ विशेष आग्रह होनेपर विवशतापूर्वक भोजन करनेमें दोष नहीं है।

आशौच—जीवनमें कुछ अवस्थाएँ ऐसी भी आती हैं जब व्यक्ति आशौचावस्थामें रहता है। उस समय वह देवार्चन आदि कोई शुभ कार्य करनेका अधिकारी नहीं रहता।

जननाशौच-मरणाशौच—अपने परिवारमें नव-शिशुके जन्म होनेपर प्रायः तीन दिन तथा सगोत्रमें किसी व्यक्तिकी मृत्यु हो जानेपर दस रात्रिका आशौच माना गया है। आशौचावस्थामें देवकार्य, पितृकार्य, वेदाध्ययन तथा गुरुजनोंका अभिवादन आदि शुभकार्योंका निषेध किया गया है। यहाँतक कि देवमन्दिरमें प्रवेश तथा पूजन आदि करना भी वर्जित है।

स्त्रियोंके लिये प्रायः मासमें एक बार विशेष अवस्था आती है, जिसमें वे रजस्वला हो जाती हैं। इसमें तीन रात्रितक उनकी आशौचावस्था रहती है। इस अवधिमें स्त्रीको घरका कोई काम-काज नहीं करना चाहिये। यहाँतक कि किसी वस्तु या किसी व्यक्तिको स्पर्श भी नहीं करना चाहिये। इस अवस्थाके समाप्त होनेपर स्त्रीके लिये सचैल स्नानकी विधि है। तदनुसार उसके कपड़े तथा बर्तन आदि धोनेके बाद ही शुद्धता होती है।

आचमन—जिस प्रकार शरीरकी शुद्धि तथा पवित्रताके लिये स्नानादि कृत्योंका महत्त्व है, उसी प्रकार आभ्यन्तर एवं बाह्य पवित्रताके लिये पुराणोंमें आचमनका भी विशेष महत्त्व वर्णित है। प्रायः दैनिक कार्योंमें सामान्य शुद्धिके लिये प्रत्येक कार्यमें आचमनका विधान है। लघुशंका, शौच तथा स्नान आदिके अनन्तर आचमन करना आवश्यक है। अतः आचमनसे हम केवल अपनी ही शुद्धि नहीं करते, अपितु ब्रह्मासे लेकर तृणतकको तृप्त करते हैं।[६] कोई भी देवादि शुभ कार्य करनेके अनन्तर आचमन करना चाहिये।

आचमन-विधि—पूर्व, उत्तर या ईशान दिशाकी ओर मुख करके आसनपर बैठ जाय, शिखा बाँधकर हाथ घुटनोंके भीतर रखते हुए निम्न मन्त्रोंसे तीन बार आचमन करे—

'ॐ केशवाय नमः, ॐ नारायणाय नमः, ॐ माधवाय नमः।' आचमनके बाद अँगूठेके मूलभागसे होंठोंको दो बार पोंछकर **'ॐ हृषीकेशाय नमः'** उच्चारणकर हाथ धोवे। फिर अँगूठेसे आँख, नाक तथा कानका स्पर्श करे। अशक्त होनेपर तीन बार आचमन कर हाथोंको धोकर दाहिना कान छू ले। दक्षिण और पश्चिमकी ओर मुखकर आचमन नहीं करना चाहिये। चलते-फिरते भी नहीं करना चाहिये।

मादक द्रव्योंका निषेध—संसारमें मदिरा, ताड़ी, चाय, काफी, कोको, भाँग, अफीम, चरस, गाँजा, तंबाकू, बीड़ी-सिगरेट तथा चुरुट आदि जितनी भी मादक वस्तुएँ हैं, वे सब मनुष्यमात्रके लिये अव्यवहार्य हैं। इनका उपयोग मनुष्यको भीषण गर्तमें डालनेवाला होता है। पद्मपुराणके अनुसार धूम्रपान करनेवाले ब्राह्मणको दानतक देनेवाला व्यक्ति नरकगामी होता है तथा धूम्रपान करनेवाला ब्राह्मण ग्राम-शूकर होता है—

धूम्रपानरते विप्रे दानं कुर्वन्ति ये नराः।
ते नरा नरकं यान्ति ब्राह्मणा ग्रामशूकराः॥

(पद्मपुराण)

पद्मपुराणमें यह बात आयी है कि मादक द्रव्योंके सेवनसे व्यक्तिका आत्मिक पतन और उसकी शारीरिक हानि होती है। इसलिये किसी भी स्थितिमें इन वस्तुओंका सेवन कदापि नहीं करना चाहिये।

भारतीय संस्कृति एवं सनातनधर्ममें आचार-विचारको सर्वोपरि महत्त्व प्रदान किया गया है। मनुष्य-जीवनकी सफलताके लिये, वास्तविक उन्नतिको प्राप्त करनेके निमित्त आचारका आश्रय आवश्यक है। इससे अन्तःकरणकी पवित्रताके साथ-साथ लौकिक और पारलौकिक लाभ भी प्राप्त होता है।

६- (क) एवं स ब्राह्मणो नित्यमुपस्पर्शनमाचरेत्। ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगत् स परितर्पयेत्॥
(व्याघ्रपाद)

(ख) यःक्रियांकुरुतेमोहादनाचम्यैवनास्तिकः। भवन्ति हि वृथा तस्य क्रियाः सर्वा न संशयः॥
(पुराणसार)

दैनिक चर्या

मनुष्य-जीवनमें प्रातःकाल जागरणसे लेकर रात्रिमें शयनपर्यन्त दैनिक कार्यक्रमोंका पर्याप्त महत्त्व है। पुराणोंमें यह प्रकरण दैनन्दिन सदाचारमें निर्दिष्ट है। प्रायः कई सज्जन घंटे-दो-घंटेका समय भगवदाराधन, पूजा-पाठ, समाजसेवा तथा परोपकारादिके कार्योंमें व्यतीत करते हैं, परंतु शेष समय व्यवहार-जगत्‌में स्वेच्छाचारपूर्वक काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य तथा छल-कपटसे युक्त असत्-कार्योंमें भी लगाते हैं। जिससे पाप-पुण्य और सुख-दुःख दोनों उन्हें भोगना पड़ता है।

सच्चा सुख नित्य, सनातन और एकरस शान्तिमें है। उसके आश्रय हैं मङ्गलमय भगवान्। प्रत्येक स्त्री-पुरुषका प्रयत्न उन्हीं परम-प्रभुको प्राप्त करनेके लिये होना चाहिये। अतः इस भव-बन्धनसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये यह आवश्यक है कि चौबीस घंटेके सम्पूर्ण समयका कार्यक्रम भगवदाराधनके रूपमें हो। चलना-फिरना, उठना-बैठना, खाना-पीना, सोना आदि सब कुछ भगवान्‌की प्रीतिके लिये पूजारूपमें हो। पापाचरणके लिये कहीं भी अवकाश न हो, तभी स्वतः कल्याणका मार्ग प्रशस्त हो सकेगा। अपनी दिनचर्या शास्त्र-पुराणोक्त वचनोंके अनुसार ही चलानी चाहिये, जिससे जीवन भगवत्पूजामय बन जाय। यहाँ संक्षेपमें इसका किञ्चित् दिग्दर्शन करानेका प्रयास किया जाता है—

प्रातःजागरण—प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें अर्थात् सूर्योदयसे प्रायः डेढ़ घंटा पूर्व उठ जाना चाहिये। आँख खुलते ही दोनों करतलोंको देखते हुए निम्न श्लोकका पाठ करना चाहिये—

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम्॥

'हथेलियोंके अग्रभागमें लक्ष्मी निवास करती हैं, मध्यभागमें सरस्वती और मूलमें ब्रह्माजी निवास करते हैं। अतः प्रातः हथेलियोंका दर्शन करना आवश्यक है, इससे पुण्य लाभ होता है।'

भूमि-वन्दना—शय्यापर बैठकर पृथ्वीपर पैर रखनेसे पूर्व पृथ्वी माताका अभिवादन करना चाहिये और उनपर पैर रखनेकी विवशताके लिये उनसे क्षमा माँगते हुए निम्नलिखित श्लोकका पाठ करना चाहिये—

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

(विश्वामित्र-स्मृति ४५)

मङ्गल-दर्शन—तदनन्तर दर्पण, सोना, गोरोचन, चन्दन, मणि, सूर्य और अग्नि आदि माङ्गलिक वस्तुओंका दर्शन और मूर्तिमान् भगवान् माता-पिता, गुरु एवं ईश्वरको नमस्कार करना चाहिये। फिर शौचादिसे निवृत्त होकर रातका कपड़ा बदलकर आचमन करना चाहिये। पुनः निम्नलिखित श्लोकोंको पढ़कर पुण्डरीकाक्ष भगवान्‌का स्मरण करते हुए अपने ऊपर जलसे मार्जन करना चाहिये। इससे मान्त्रिक स्नान हो जाता है—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥
अतिनीलघनश्यामं नलिनायतलोचनम्।
स्मरामि पुण्डरीकाक्षं तेन स्नातो भवाम्यहम्॥

पुनः उपासनामय कर्महेतु दैनन्दिन संसार-यात्राके लिये भगवत्प्रार्थना कर उनसे आज्ञा प्राप्त करनी चाहिये—

त्रैलोक्यचैतन्यमयादिदेव
श्रीनाथ विष्णो भवदाज्ञयैव।
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं
संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये॥

(मन्त्रमहोदधि २१। ६)

अजपा-जप—इसके बाद अजपा-जपका संकल्प करना चाहिये, क्योंकि शास्त्रोक्त सभी साधनोंमें यह 'अजपा-जप' विशेष सुगम है। स्वाभाविक 'हंसो-हंसो'की जगह 'सोऽहं-सोऽहं' के जपका ध्यान करनेसे सोते-जागते सब स्थितियोंमें यह जप प्रचलित माना जाता है।

तदनन्तर भगवान्‌का ध्यान करते हुए नाम-कीर्तन करना चाहिये और प्रातःस्मरणीय श्लोकोंका पाठ करना चाहिये। तत्पश्चात् शौचादि कृत्योंसे निवृत्त होना चाहिये। शौचविधिमें शुद्धिके लिये जल और मृत्तिकाका प्रयोग बताया गया है[१], जो परम आवश्यक है।

१- शौचकी विधि 'आचार'-प्रकरणमें देखनी चाहिये।

आभ्यन्तरशौच[२]—व्याघ्रपादके अनुसार मिट्टी और लसे होनेवाला शौच बाह्यशौच कहा जाता है। इसकी बाधित आवश्यकता है, किंतु आभ्यन्तरशौचके बिना यह तेष्ठित नहीं हो पाता। शौचाचारविहीनकी की गयी सभी ज्याएँ भी निष्फल ही होती हैं[३]। मनोभावको शुद्ध रखना ाभ्यन्तरशौच माना गया है। किसीके प्रति ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, ाभ, मोह, घृणा आदिका न होना आभ्यन्तरशौच है। भगवान् ब्रमें विद्यमान हैं, इसलिये किसीसे द्वेष, क्रोधादि नहीं रना चाहिये। सबमें भगवान्‌का दर्शन करते हुए, सभी रिस्थितियोंको भगवान्‌का वरदान समझते हुए सबमें मैत्रीभाव ब्रना चाहिये, साथ ही प्रतिक्षण भगवान्‌का स्मरण करते हुए ाकी आज्ञा समझकर शास्त्रविहित कार्य करते रहना चाहिये।

स्नान—उषाकी लालीसे पूर्व ही स्नान करना उत्तम है। ासे प्राजापत्य-व्रतका फल प्राप्त होता है[४]। तेल लगाकर ा देहको मल-मलकर गङ्गादिमें स्नान करना मना है। वहाँ हर तटपर ही देह-हाथ मलकर नहा लेना चाहिये। इसके द नदीमें गोता लगावे। शास्त्रोंने इसे 'मलापकर्षण' न कहा है। यह अमन्त्रक होता है। स्वास्थ्य और चेता—दोनोंके लिये यह स्नान भी आवश्यक है। निवीती क्रर गमछेसे जनेऊको भी स्वच्छ कर ले[५]। इसके बाद खा बाँधकर दोनों हाथोंमें पवित्री पहनकर आचमन और गायाम कर दाहिने हाथमें जल लेकर संकल्पपूर्वक स्नान ना चाहिये।

स्नानसे पूर्व समस्त अङ्गोंमें निम्न मन्त्रसे मिट्टी लगानी हिये—

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥

तत्पश्चात् गङ्गाजीके द्वादशनामोंका कीर्तन करे, जिसे ोंने स्नानकालमें वहाँ अपने उपस्थित होनेका निर्देश दिया है—मन्त्र इस प्रकार है—

नन्दिनी नलिनी सीता मालती च मलापहा।
विष्णुपादाब्जसम्भूता गङ्गा त्रिपथगामिनी॥
भागीरथी भोगवती जाह्नवी त्रिदशेश्वरी।
द्वादशैतानि नामानि यत्र यत्र जलाशये॥
स्नानोद्यतः पठेज्जातु तत्र तत्र वसाम्यहम्[६]**।**

इसके बाद नाभिपर्यन्त जलमें जाकर जलकी ऊपरी सतह हटाकर, कान और नाक बंदकर प्रवाह या सूर्यकी ओर मुख करके स्नान करे। शिखा खोलकर तीन, पाँच, सात या बारह गोते लगावे। गङ्गाके जलमें वस्त्रको नहीं निचोड़ना चाहिये। शौचकालका वस्त्र पहनकर तीर्थोंमें स्नान करना तथा थूकना निषिद्ध है। स्नानके अनन्तर जलसे प्रक्षालित शुद्ध वस्त्र धारण कर देवार्चन करना चाहिये। ऊनी तथा कौशेय वस्त्र बिना धोये भी शुद्ध मान्य हैं।

तिलक-धारण—कुशा अथवा ऊनके आसनपर बैठकर पूजा, दान, होम, तर्पण आदि कर्मोंके पहले तिलक अवश्य धारण करना चाहिये। बिना तिलक इन कर्मोंको निष्फल बताया गया है।

शिखा-बन्धन—जहाँ शिखा रखी जाती है, वहाँ मेरुदण्डके भीतर स्थित ज्ञान तथा क्रियाशक्तिका आधार सुषुम्ना नाडी समाप्त होती है। यह स्थान शरीरका सर्वाधिक मर्मस्थान है। इस स्थानपर चोटी रखनेसे मर्मस्थान, क्रिया-शक्ति तथा ज्ञान-शक्ति सुरक्षित रहती है, जिससे भजन-ध्यान, दानादि शुभ कर्म सुचारुरूपसे सम्पन्न होते हैं। इसीलिये कहा गया है—

ध्याने दाने जपे होमे संध्यायां देवतार्चने।
शिखाग्रन्थिं सदा कुर्यादित्येतन्मनुरब्रवीत्॥

जपादि करनेके पूर्व आसनपर बैठकर तिलक धारण तथा शिखा-बन्धन करनेके पश्चात् संकल्पपूर्वक संध्यावन्दन

२- शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा। मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिस्तथान्तरम्॥ (आह्निक०, व्याघ्रपाद)
३- शौचे यत्नः सदा कार्यः शौचमूलो द्विजः स्मृतः। शौचाचारविहीनस्य समस्ता निष्फलाः क्रियाः॥ (दक्ष)
४- उषस्युषसि यत् स्नानं नित्यमेवारुणोदये। प्राजापत्येन तत् तुल्यं महापातकनाशनम्॥ (दक्ष)
५- यज्ञोपवीतं कण्ठे कृत्वा त्रिःप्रक्षाल्य। (आचाररत्न)
६-साधारण कूप, बावली आदिके जलमें गङ्गाजीका यह आवाहन तो आवश्यक है ही, अन्य पवित्र नदियोंके जलमें भी यह आवश्यक ा गया है।

करना चाहिये। संध्यामें प्राणायाम, '**सूर्यश्च°**' आदि मन्त्रसे अम्बुप्राशन, अघमर्षण, पापपुरुष-निरसन, सूर्योपस्थान कर आवाहनपूर्वक १०८ या उससे अधिक गायत्रीमन्त्रका जप करना चाहिये।

पञ्च महायज्ञ—संध्योपासनके अनन्तर पञ्च महायज्ञका विधान है। वे हैं—ब्रह्मयज्ञ (ऋषियज्ञ), पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ (बलिवैश्वदेव) और मनुष्ययज्ञ[७]। वेद-शास्त्रका पठन-पाठन एवं संध्योपासन, गायत्रीजप आदि ब्रह्मयज्ञ (ऋषियज्ञ) है, नित्य श्राद्ध-तर्पण पितृयज्ञ है, हवन देवयज्ञ है, बलिवैश्वदेव भूतयज्ञ है और अतिथि-सत्कार मनुष्ययज्ञ है। गृहस्थके घर प्रतिदिन चूल्हा-चक्की, झाड़ू, ऊखल एवं घड़ेसे जलने-मरनेवाले प्राणियोंके पापकी निष्कृतिके लिये इनकी पर्याप्त महत्ता है, अतः ये अनुदिन अनुष्ठेय हैं। देवयज्ञसे देवताओंकी, ऋषियज्ञसे ऋषियोंकी, पितृयज्ञसे पितरोंकी, मनुष्ययज्ञसे मनुष्योंकी और भूतयज्ञसे भूतोंकी तृप्ति भी होती है।

पितृतर्पणमें भी देवता, ऋषि, मनुष्य, पितर सम्पूर्ण भूतप्राणियोंको जलदान करनेकी विधि है। यहाँतक कि पहाड़, वनस्पति और शत्रु आदिको भी जल देकर तृप्त किया जाता है। देवयज्ञमें अग्निमें आहुति दी जाती है। वह सूर्यको प्राप्त होती है और सूर्यसे वृष्टि तथा वृष्टिसे अन्न और प्रजाकी उत्पत्ति होती है[८]। भूतयज्ञको बलिवैश्वदेव भी कहते हैं, इसमें अग्नि, सोम, इन्द्र, वरुण, मरुत् तथा विश्वेदेवोंके निमित्त आहुतियाँ एवं अन्नग्रासकी बलि दी जाती है।

मनुष्य-यज्ञमें घर आये हुए अतिथिका सत्कार करके उसे विधिपूर्वक यथाशक्ति भोजन कराया जाता है[९]। यदि भोजन करानेकी सामर्थ्य न हो तो बैठनेके लिये स्थान, आसन, जल प्रदानकर मीठे वचनोंद्वारा उसका स्वागत तो अवश्य ही करना चाहिये[१०]।

स्वाध्यायसे ऋषियोंका, हवनसे देवताओंका, तर्पण और श्राद्धसे पितरोंका, अन्नसे मनुष्योंका और बलिकर्मसे सम्पूर्ण भूतप्राणियोंका यथायोग्य सत्कार करना चाहिये[११]। इस प्रकार जो मनुष्य नित्य सब प्राणियोंका सत्कार करता है, वह तेजोमय मूर्ति धारण कर सीधे अर्चिमार्गके द्वारा परमधामको प्राप्त होता है[१२]। सबको भोजन देनेके बाद शेष बचा हुआ अन्न यज्ञशिष्ट होनेके कारण अमृतके तुल्य है, इसलिये ऐसे अन्नको ही सज्जनोंके खाने योग्य कहा गया है[१३]। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें भी प्रायः ऐसी ही बात कही है[१४]।

उपर्युक्त सभी महायज्ञोंका तात्पर्य सम्पूर्ण भूतप्राणियोंकी अन्न और जलके द्वारा सेवा करना एवं अध्ययन-अध्यापन, जप, उपासना आदि स्वाध्यायद्वारा सबका हित चाहना है। इनमें स्वार्थ-त्यागकी बात तो पद-पदमें बतलायी गयी है।

आहार—प्राणीके नेत्र, श्रोत्र, मुख आदिद्वारा आहरणीय रूप, शब्द, रस आदि विषयरूप आहार-शुद्धिसे मनकी शुद्धि होती है। मन शुद्ध होनेपर परमतत्त्वकी निश्चल स्मृति होती है।

निश्चल स्मृतिसे ग्रन्थिमोक्ष होता है[१५]। बलिवैश्वदेवके अनन्तर गौ, श्वान, काक, अतिथि तथा कीट-पतंगके निमित्त पञ्चबलि निकालनेका विधान है, जो भोजनके पूर्व तत्तद् जीवोंको देना चाहिये। अपने इष्टदेवको नैवेद्य निवेदित कर अर्थात् भगवान्‌को भोग लगाकर ही प्रसादरूपमें भोजन करनेका विधान है। प्रारम्भमें '**ॐ भूपतये स्वाहा, ॐ भुवनपतये स्वाहा, ॐ भूतानां पतये स्वाहा**'—इन मन्त्रोंसे तीन ग्रास निकालनेकी विधि है। इसका तात्पर्य है कि सम्पूर्ण पृथ्वीके

७- अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥ (मनु० ३। ७०)

८- अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते। आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥ (मनु० ३। ७६)

९- सम्प्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके। अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम्॥ (मनु० ३। ९९)

१०- तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता। एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥ (मनु० ३। १०१)

११- स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन्होमैर्देवान्यथाविधि। पितॄञ्छ्राद्धैश्च नॄनन्नैर्भूतानि वलिकर्मणा। (मनु० ३। ८१)

१२- एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति। स गच्छति परं स्थानं तेजोमूर्तिः पथार्जुना॥ (मनु० ३। ९३)

१३- अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात्। यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत्सतामन्नं विधीयते॥ (मनु० ३। ११८)

१४- यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः। भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥ (गीता ३। १३)

१५- आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः। स्मृतिलब्धे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः॥ (छान्दोग्य० ७। २६। २)

स्वामी एवं चतुर्दश भुवनोंके स्वामीको तथा चराचर जगत्के सम्पूर्ण प्राणियोंको मैं यह अन्न प्रदान करता हूँ। तदनन्तर '**ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा, ॐ व्यानाय स्वाहा, ॐ उदानाय स्वाहा** और **ॐ समानाय स्वाहा**'—इन पाँच मन्त्रोंसे लवणरहित पाँच ग्रास आत्मारूप ब्रह्मके लिये पञ्च आहुतिके रूपमें लेना चाहिये। तत्पश्चात् '**अमृतोपस्तरणमसि**' इस मन्त्रसे आचमन करे। इसका अर्थ है 'मैं अमृतमय अन्नदेवको आसन प्रदान करता हूँ।' फिर मौन होकर भोजन करना चाहिये। भोजनके अन्तमें '**अमृतापिधानमसि**' इस मन्त्रसे पुनः आचमन करना चाहिये। इसका अर्थ है 'मैं अमृतरूप अन्नदेवताको आच्छादित करता हूँ।' आहारकी पवित्रताके लिये यह आवश्यक है कि आहार उच्छिष्ट न हो तथा सत्यतासे अर्जित धनसे ही निर्मित किया गया हो।[१६]

कर्मक्षेत्र (गृहस्थाश्रमका पालन)—गृहस्थमात्रको घरके कामोंमें मन लगाना चाहिये। गृहस्थ-आश्रम सभी आश्रमोंका आधार कहा गया है। यह बात सबको स्मरण रखना चाहिये कि हम जो कुछ भी करें वह सब प्रभु-प्रीत्यर्थ ही करें। कर्म करके उसका सम्पूर्ण फल भगवान्के चरणोंमें अर्पित कर देना चाहिये। ऐसा करनेपर मनुष्यको कर्म-बन्धनमें बँधना नहीं पड़ेगा और उसके समस्त कर्म भगवदाराधनमें परिणत हो जायँगे। पुराणोंमें कहा गया है कि 'शरीरका निर्वाह हो जाय' यही लक्ष्य रखकर शरीरको कोई क्लेश पहुँचाये बिना, वर्णविहित, निन्दारहित कार्यके द्वारा धनका संचय करना चाहिये—

यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्मभिरगर्हितैः।
अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम्॥

शयन-विधि—जैसे मनुष्य सोकर उठनेपर शान्त चित्तसे जिसका चिन्तन करता है, उसका प्रभाव गहरा पड़ता है, उसी प्रकार सोनेसे पूर्व जिसका चिन्तन करता हुआ सोता है, उसका भी गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः शयनसे पूर्व पुराणोंकी सात्त्विक कथा या भक्तगाथा आदि श्रवण करते हुए शयन करना चाहिये। भविष्यपुराणमें कहा गया है—जो हाथ, पैर धोकर पवित्र हुआ मनुष्य पुराणोंकी सात्त्विक कथा सुनता है, वह ब्रह्महत्यादि पापोंसे मुक्त हो जाता है।[१७] पर यह भोजनसे पूर्व नियमित कथा-श्रवणकी विधि प्रतीत होती है।

इसके अतिरिक्त शयनसे पूर्व दिनभरके कार्योंका सम्यक् अवलोकन करना चाहिये तथा इस सम्बन्धमें यह चिन्तन करना चाहिये कि कोई गलत कार्य तो नहीं किया। यदि कोई गलत कार्य हो गया हो तो उसके लिये पश्चात्ताप-पूर्वक भगवान्से क्षमा-याचना करनी चाहिये और भविष्यमें फिर इस प्रकारकी गलतीकी पुनरावृत्ति न हो ऐसी प्रतिज्ञा करते हुए शयन करना चाहिये। इससे जीवनको निर्दोष बनानेमें विशेष सहायता मिलती है। विष्णुपुराणमें कहा गया है कि हाथ-पैर धोकर मनुष्य सायंकालीन भोजन करनेके पश्चात् जो जीर्ण न हो, बहुत बड़ी न हो, संकुचित न हो, ऊँची न हो, मैली न हो, जन्तुयुक्त न हो एवं जिसपर कुछ बिछावन बिछाया हो, उस शय्यापर शयन करना चाहिये। पूर्व और दक्षिणकी ओर सिर करके शयन करना उत्तम बतलाया गया है। उत्तर एवं पश्चिमकी ओर सिर करके सोनेका निषेध है।

संतान-प्राप्ति—स्त्री-सहवासका मुख्य उद्देश्य है पुत्रोत्पादनद्वारा वंशकी रक्षा तथा पितृऋणसे मुक्त होना। शास्त्रमर्यादानुसार संतानोत्पत्तिकी प्रक्रियाको भगवान्ने अपनी विभूतियोंमें गिना है—

'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।'
'प्रजनश्चास्मि कन्दर्पः।'

पुत्रार्थी अमावास्या, अष्टमी, पूर्णिमा और चतुर्दशी, व्रतोपवास तथा श्राद्ध आदि पर्वकालोंको छोड़कर ऋतुकालमें स्व-स्त्रीके पास जाय[१८]। रजोदर्शनकालमें अर्थात् स्त्रीके रजस्वला होनेपर भूलकर भी स्त्री-सहवास न करे, न उसके साथ एक शय्यापर सोये। रजस्वलागामी पुरुषकी प्रज्ञा, तेज, बल, चक्षु और आयु नष्ट हो जाती है।

१६-भोजनकी विशेष बातें 'आचार'-प्रकरणमें देखनी चाहिये।
१७- मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्महत्यादिभिर्विभो। पुराणं सात्त्विकं रात्रौ शुचिर्भूत्वा शृणोति यः॥
१८- ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरतः सदा। पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया॥

नवग्रह-उपासना
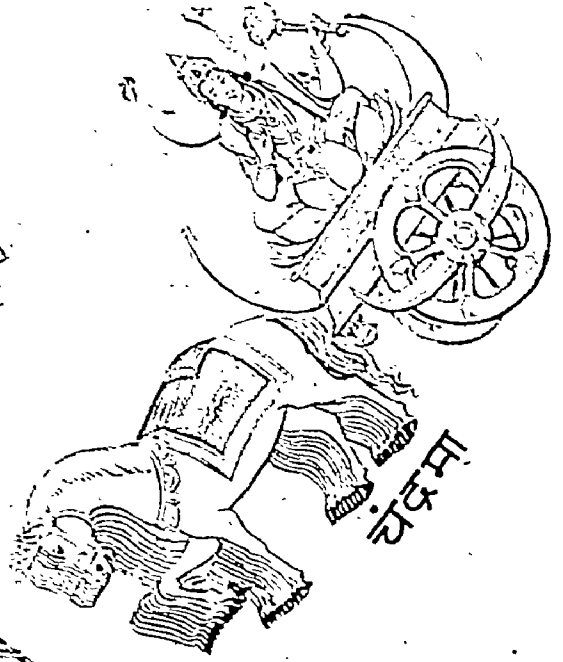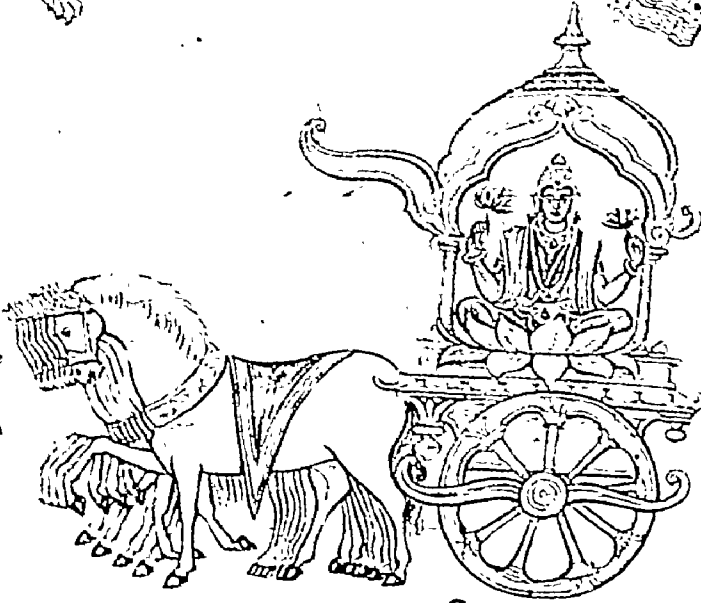
नोपगच्छेत् प्रमत्तोऽपि स्त्रियमार्तवदर्शने।
समानशयने चैव न शयीत तया सह॥
रजसाभिप्लुप्तां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः।
प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते॥

अतः गृहस्थ व्यक्तिको अपने कल्याणके लिये शास्त्र-मर्यादाका पालन करना चाहिये। वास्तवमें मनुष्यका शरीर खान-पान, भोग-विलासके लिये नहीं, प्रत्युत शास्त्र-मर्यादाका पालन करके भगवत्प्राप्ति करनेके लिये मिला है, जो प्रधान लक्ष्य है। इन्द्रियोंके विषयोंको राग-द्वेषरहित होकर इन्द्रियरूप अग्निमें हवन करनेसे परमात्माकी प्राप्ति होती है। शब्द, रूप आदिका श्रवण और दर्शन आदि करते समय अनुकूल तथा प्रतिकूल पदार्थोंमें राग-द्वेषरहित होकर उनका न्यायोचित सेवन करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता है और उसमें 'प्रसाद' होता है। उस 'प्रसाद' या 'प्रशम'से सारे दुःखोंका नाश होकर परमात्माके स्वरूपमें स्थिति हो जाती है। परंतु जबतक इन्द्रियाँ और मन वशमें नहीं होते तथा भोगोंमें वैराग्य नहीं होता, तबतक अनुकूल पदार्थके सेवनसे राग और हर्ष एवं प्रतिकूलके सेवनसे द्वेष और दुःख होता है। अतएव सम्पूर्ण पदार्थोंको नाशवान् और क्षणभङ्गुर समझकर न्यायसे प्राप्त हुए पदार्थोंका विवेक तथा वैराग्ययुक्त बुद्धिके द्वारा समभावसे ग्रहण करना चाहिये। दर्शन, श्रवण, भोजनादिकार्य रसबुद्धिका त्याग करके कर्तव्यबुद्धिसे भगवत्प्राप्तिके लिये करने चाहिये। पदार्थोंमें भोग-विलास-भावना, स्वाद-सुख या रमणीयता-बुद्धि ही मनुष्यके मनमें विकार उत्पन्न कर उसका पतन कराती है। अतः आसक्तिरहित होकर विवेक-वैराग्यपूर्वक धर्मयुक्त बुद्धिके द्वारा विहित विषय-सेवन करना उचित है। इससे हवनके लिये अग्निमें डाले हुए ईंधनकी तरह विषयवासना अपने-आप ही भस्म हो जाती है। फिर उनका कोई अस्तित्व या प्रभाव नहीं रह जाता। इस प्रकार साधनरत होनेसे परमात्माके स्वरूपमें स्थिर और अचल स्थिति हो जाती है तथा उनकी प्राप्ति हो जाती है।

देवोपासना

जीवनमें उपासनाका विशेष महत्त्व है। जब मनुष्य अपने जीवनका वास्तविक लक्ष्य निर्धारित कर लेता है, तब वह तन-मन-धनसे अपने उस लक्ष्यकी प्राप्तिमें संलग्न हो जाता है। मानवका वास्तविक लक्ष्य है भगवत्प्राप्ति। इस लक्ष्यको प्राप्त करनेके लिये उसे यथासाध्य संसारकी विषय-वासनाओं और भोगोंसे दूर रहकर भगवदाराधन एवं और अभीष्टदेवकी उपासनामें संलग्न होनेकी आवश्यकता पड़ती है। जिस प्रकार गङ्गाका अविच्छिन्न प्रवाह समुद्रोन्मुखी होता है, उसी प्रकार भगवद्-गुण-श्रवणके द्वारा द्रवीभूत निर्मल, निष्कलंक, परम पवित्र अन्तःकरणका भगवदुन्मुख हो जाना वास्तविक उपासना है।

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥

(श्रीमद्भा० ३।२९।११)

इसके लिये आवश्यक है कि चित्त संसार और तद्विषयक राग-द्वेषादिसे विमुक्त हो जाय। शास्त्रों और पुराणोंकी उक्ति है—'**देवो भूत्वा यजेद् देवान् नादेवो देवमर्चयेत्।**' देव-पूजाका अधिकारी वही है, जिसमें देवत्व हो। जिसमें देवत्व नहीं, वास्तवमें उसे देवार्चनसे पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं होती। अतः उपासकको भगवदुपासनाके लिये काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, अभिमान आदि दुर्गुणोंका त्यागकर अपनी आन्तरिक शुद्धि करनी चाहिये। साथ ही शास्त्रोक्त आचार-धर्मको स्वीकारकर बाह्य-शुद्धि कर लेनी चाहिये, जिससे उपासकके देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार तथा अन्तरात्माकी भौतिकता एवं लौकिकताका समूल उन्मूलन हो सके और उनमें रसात्मकता तथा पूर्ण-दिव्यताका आविर्भाव हो जाय। ऐसा जब हो सकेगा तभी वह उपासनाके द्वारा निखिल-रसामृतमूर्ति सच्चिदानन्दघन भगवत्स्वरूपकी अनुभूति प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकेगा।

मनुष्यकी प्रकृति, स्वभाव और रुचिमें वैभिन्त्र्य रहता है अर्थात् सबके स्वभाव, सबकी प्रकृति और सबकी रुचि एक-जैसी नहीं होती। इसलिये शास्त्र-पुराणोंमें देवोपासनाके

इसमें चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय—चारों प्रकारकी सामग्री हो। दीप कपासकी बत्तीमें कर्पूर आदि मिलाकर बनाया जाय। बत्तीकी लम्बाई लगभग चार अंगुलकी हो और दृढ़ हो। दीपकके साथ शिलापिष्टका भी उपयोग करना चाहिये। इसीको श्री अथवा आक कहते हैं, जो आरतीके समय सात बार घुमाया जाता है। दूर्वा और अक्षतकी संख्या सौसे अधिक समझनी चाहिये। जो वस्तु अपने पास न हो, उसके लिये चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं। अपनी शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार संकीर्णता नहीं करनी चाहिये।

पूजाके मन्त्र

भगवान् विष्णु, कृष्ण आदिकी पूजामें जिन मन्त्रोंका उपयोग होता है, वे इस प्रकार हैं—

आसन

सर्वान्तर्यामिणे देव सर्वबीजमयं ततः।
आत्मस्थाय परं शुद्धमासनं कल्पयाम्यहम्॥

'हे देव! आप सबके अन्तर्यामी और आत्मरूपसे स्थित हैं, इसलिये मैं आपको सर्वबीजस्वरूप उत्तम और शुद्ध आसन समर्पित कर रहा हूँ।'

स्वागत

यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवा ब्रह्महरादयः।
कृपया देवदेवेश मदग्रे संनिधौ भव॥
तस्य ते परमेशान स्वागतं स्वागतं प्रभो।

'हे देवदेवेश! ब्रह्मा, शिव आदि जिन आपके दर्शनके लिये लालायित रहते हैं, वे ही सबके आराध्य आप दया करके मेरे सम्मुख आवें। हे परमेश्वर! हे प्रभो! आपका स्वागत है, स्वागत है।'

आवाहन

कृतार्थोऽनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं तु मे।
यदागतोऽसि देवेश चिदानन्दमयाव्यय॥
अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यात् साधनस्य च।
यदपूर्णं भवेत् कृत्यं तथाप्यभिमुखो भव॥

'हे विज्ञानानन्दघन, हे अविनाशी, हे देवेश! आपने जो पदार्पण किया, इससे मैं कृतार्थ हो गया, आपने मेरे ऊपर महान् अनुग्रह किया। मेरा जीवन सफल हो गया। अज्ञान-वश, प्रमादवश और साधनोंकी कमीके कारण मैं आपकी पूजा पूर्णतः नहीं कर सकता, तथापि आप कृपा करके मेरे समक्ष रहें।'

पाद्य

यद्भक्तिलेशसम्पर्कात् परमानन्दसम्भवः।
तस्मै ते परमेशान पाद्यं शुद्धाय कल्पये॥

'हे परमेश्वर! जिन आपकी बिन्दुमात्र भक्तिका संस्पर्श हो जानेसे हृदय परमानन्दधाराका उद्‌गम बन जाता है, आपके उसी विशुद्ध स्वरूपको मैं पाद्य समर्पित कर रहा हूँ।'

आचमन

देवानामपि देवाय देवानां देवतात्मने।
आचामं कल्पयामीश सुधायाः स्रुतिहेतवे॥

'हे ईश! आप समस्त देवताओंके भी देवता—आराध्य देव हैं। और तो क्या, स्वयं आप ही देवताओंमें देवत्वरूपसे प्रकट हैं। आप सुधाके मूलस्रोत हैं, आपसे सुधाक्षरणके लिये आचमनीय जल समर्पित कर रहा हूँ।'

अर्घ्य

तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम्।
तापत्रयविमोक्षाय तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम्॥

'हे प्रभो! आपका अर्घ्य तीनों तापोंको हरनेवाला, दिव्य एवं परमानन्दरूप है, इसलिये तीनों तापोंसे मुक्ति प्राप्त करनेके लिये मैं आपको अर्घ्य समर्पित करता हूँ।

मधुपर्क

सर्वकल्मषहीनाय परिपूर्णसुधात्मकम्।
मधुपर्कमिमं देव कल्पयामि प्रसीद मे॥

'हे देव! आप समस्त कल्मषोंसे हीन हैं, आपके लिये मैं यह परिपूर्णसुधात्मक मधुपर्क समर्पित करता हूँ। आप अनुग्रह करके इसे स्वीकार करें।'

पुनराचमनीय

उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः।
शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम्॥

'जिन आपके स्मरण करने मात्रसे उच्छिष्ट अथवा अपवित्र भी पवित्र हो जाता है, ऐसे हे प्रभो! आपके लिये मैं आचमन समर्पित करता हूँ।'

स्नान

परमानन्दबोधाब्धिनिमग्ननिजमूर्तये ।
साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ते ॥

'अपने परमानन्दस्वरूप ज्ञान-समुद्रमें स्वयं निमग्न रहनेवाले हे ईश ! मैं आपके साङ्गोपाङ्गस्नानार्थ जल समर्पित करता हूँ।'

वस्त्र

मायाचित्रपटाच्छन्ननिजगुह्योरुतेजसे ।
निरावरणविज्ञान वासस्ते कल्पयाम्यहम् ॥

'आपने अपना परमज्योतिर्मय स्वरूप मायाके विचित्र वस्त्रमें ढँक रखा है, वास्तवमें आप आवरणरहित विज्ञान-स्वरूप हैं। ऐसे आपके लिये, हे देव ! मैं वस्त्र समर्पित कर रहा हूँ।'

उत्तरीय

यमाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहिनी सदा।
तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥

'जिन आपका आश्रय करके महामाया जगत्को मोहित करती है, ऐसे हे परमेश्वर ! आपके लिये मैं उत्तरीय समर्पित करता हूँ।'

यज्ञोपवीत

यस्य शक्तित्रयेणेदं सम्प्रोतमखिलं जगत्।
यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पये ॥

'जिन प्रभुकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयरूप तीन शक्तियोंके द्वारा यह जगत् गुँथा हुआ है, जो स्वयं यज्ञसूत्र हैं, उन आप प्रभुके लिये मैं यज्ञोपवीत समर्पित कर रहा हूँ।'

आभूषण

स्वभावसुन्दराङ्गाय नानाशक्त्याश्रयाय ते।
भूषणानि विचित्राणि कल्पयामि सुरार्चित ॥

'हे सुरपूजित ! आपका एक-एक अङ्ग स्वभावसे ही परम सुन्दर, परम मनोहर है, आप स्वयं समस्त शक्तियोंके आश्रय हैं। आपके लिये मैं विचित्र भूषण समर्पित करता हूँ।'

जल

समस्तदेवदेवेश सर्वतृप्तिकरं परम्।
अखण्डानन्दसम्पूर्ण गृहाण जलमुत्तमम् ॥

'हे समस्तदेवदेवेश ! हे अखण्ड आनन्दसे परिपूर्ण ! आपके लिये मैं सबको तृप्त कर देनेवाला यह उत्तम जल समर्पित करता हूँ, कृपया इसे स्वीकार करें।'

गन्ध

परमानन्दसौरभ्यपरिपूर्णदिगन्तरम् ।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वर ॥

'हे परमेश्वर ! जिन आपकी परमानन्दमय सुरभिसे दिग्-दिगन्त परिपूर्ण हो रहे हैं—मैं वही परम गन्ध आपके लिये समर्पित करता हूँ। आप कृपा करके इसे स्वीकार करें।'

पुष्प

तुरीयं गुणसम्पन्नं नानागुणमनोहरम्।
आनन्दसौरभं पुष्पं गृह्यतामिदमुत्तमम् ॥

'हे प्रभो ! त्रिगुणातीत, गुणयुक्त, अनेक गुणोंसे मनोहर, आनन्दसौरभसे सम्पन्न, यह उत्तम पुष्प मैं आपको समर्पित करता हूँ, इसे आप स्वीकार करें।'

धूप

वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यः सुमनोहरः।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

'हे नाथ ! वनस्पतियोंके रसोंसे संगृहीत, दिव्य, सुगन्धपूर्ण, निखिल देवताओंके आघ्राण करनेयोग्य यह सुमनोहर धूप मैं आपको समर्पित करता हूँ, कृपया इसे आप स्वीकार करें।'

दीप

सुप्रकाशो महादीपसर्वतस्तिमिरापहः।
सबाह्याभ्यन्तरं ज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

'हे देव ! परम तेजसे सम्पन्न, बाह्याभ्यन्तर ज्योतिर्मय, सब ओरसे अन्धकारको दूर करनेवाले उत्तम आलोकमय इस दीपकको आप स्वीकार करें।'

नैवेद्य

सत्पात्रसिद्धं सुहविर्विविधानेकभक्षणम्।
निवेदयामि देवेश सानुगाय गृहाण तत् ॥

'हे देवेश ! पवित्र पात्रमें बनाये हुए, अनेक प्रकारकी खाद्यसामग्रियोंसे युक्त यह उत्तम नैवेद्य अनुचरोंके सहित आपकी सेवामें समर्पित करता हूँ, आप कृपा करके इसे स्वीकार करें।'

उपर्युक्त सम्पूर्ण उपचार तत्तद् देवताओंके तत्तद् मन्त्रोंसे प्रदान किये जाते हैं। यदि किसी कारणवश मन्त्र उपलब्ध न हो तो भावनापूर्वक अपने अभीष्ट देवको नामोच्चारणद्वारा स्मरण कर पूजा करनेका भी विधान है।

उपर्युक्त उपचार उपलब्ध न होनेपर श्रद्धा और भावनापूर्वक पञ्चोपचार-पूजनकी विधि भी शास्त्रोंमें बतायी गयी है। पञ्चोपचार-पूजनमें गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य प्रमुख हैं।

निष्कर्ष यह कि भगवत्पूजा अतीव सरल है, जिसमें उपचारोंका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। महत्त्व भावनाका है। समयपर जो भी उपचार उपलब्ध हो जाय, उन्हें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक निश्छल दैन्यभावसे भगवदर्पण कर दिया जाय तो उस पूजाको भगवान् अवश्य स्वीकार करते हैं।

मानस-पूजा

इस बाह्यपूजाके साथ-साथ मानसपूजाका भी अत्यधिक महत्त्व है। पूजाकी पूर्णता मानसपूजनमें ही हो जाती है। भगवान्‌को किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं, वे तो भावके भूखे हैं। संसारमें ऐसे दिव्य पदार्थ उपलब्ध नहीं हैं, जिनसे परमेश्वरकी पूजा की जा सके। इसलिये पुराणोंमें मानस-पूजाका विशेष महत्त्व माना गया है। मानस-पूजामें भक्त अपने इष्टदेवको मुक्तामणियोंसे मण्डितकर स्वर्णसिंहासनपर विराजमान करता है। स्वर्गलोककी मन्दाकिनी गङ्गाके जलसे अपने आराध्यको स्नान कराता है, कामधेनु गौके दुग्धसे पञ्चामृतका निर्माण करता है। वस्त्राभूषण भी दिव्य अलौकिक होते हैं। पृथ्वीरूपी गन्धका अनुलेपन करता है। अपने आराध्यके लिये कुबेरकी पुष्पवाटिकासे स्वर्णकमल-पुष्पोंका चयन करता है। भावनासे वायुरूपी धूप, अग्निरूपी दीपक तथा अमृतरूपी नैवेद्य भगवान्‌को अर्पण करनेकी विधि है। इसके साथ ही त्रिलोककी सम्पूर्ण वस्तु, सभी उपचार सच्चिदानन्दघन परमात्मप्रभुके चरणोंमें भावनासे भक्त अर्पण करता है। यह है मानस-पूजाका स्वरूप। इसकी एक संक्षिप्त विधि भी पुराणोंमें वर्णित है। जो नीचे लिखी जा रही है—

१-ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं परिकल्पयामि।

(प्रभो ! मैं पृथिवीरूप गन्ध (चन्दन) आपको अर्पित करता हूँ।)

२-ॐ हं आकाशात्मकं पुष्पं परिकल्पयामि।

(प्रभो ! मैं आकाशरूप पुष्प आपको अर्पित करता हूँ।)

३-ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं परिकल्पयामि।

(प्रभो ! मैं वायुदेवके रूपमें धूप आपको प्रदान करता हूँ।)

४-ॐ रं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि।

(प्रभो ! मैं अग्निदेवके रूपमें दीपक आपको प्रदान करता हूँ।)

५-ॐ वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि।

(प्रभो ! मैं अमृतके समान नैवेद्य आपको निवेदन करता हूँ।)

६-ॐ सौं सर्वात्मकं सर्वोपचारं समर्पयामि।

(प्रभो ! मैं सर्वात्माके रूपमें संसारके सभी उपचारोंको आपके चरणोंमें समर्पित करता हूँ।) इन मन्त्रोंसे भावनापूर्वक मानस-पूजा की जा सकती है।

पूजाके पाँच प्रकार

शास्त्रोंमें पूजाके पाँच प्रकार बताये गये हैं—अभिगमन, उपादान, योग, स्वाध्याय और इज्या। देवताके स्थानको साफ करना, लीपना, निर्माल्य हटाना—ये सब कर्म 'अभिगमन'के अन्तर्गत हैं। गन्ध, पुष्प आदि पूजा-सामग्रीका संग्रह 'उपादान' है। इष्टदेवकी आत्मरूपसे भावना करना 'योग' है। मन्त्रार्थका अनुसन्धान करते हुए जप करना, सूक्त, स्तोत्र आदिका पाठ करना, गुण, नाम, लीला आदिका कीर्तन करना तथा वेदान्त-शास्त्र आदिका अभ्यास करना—ये सब 'स्वाध्याय' हैं। उपचारोंके द्वारा अपने आराध्यदेवकी पूजा 'इज्या' है। ये पाँच प्रकारकी पूजाएँ क्रमशः सार्ष्टि, सामीप्य, सालोक्य, सायुज्य और सारूप्य मुक्तिको देनेवाली हैं।

विशिष्ट उपासना

विशेष अवसरोंपर जो देवाराधन किया जाता है, जैसे—नवरात्रके अवसरपर दुर्गापूजा, सप्तशतीका पाठ, रामायण आदिके नवाह-पाठ, लक्ष-पार्थिवार्चन, महारुद्राभिषेक, श्रीमद्भागवतसप्ताह आदि विशेष प्रकारके अनुष्ठान विशिष्ट उपासनाएँ हैं। आरोग्यता एवं दीर्घजीवन-प्राप्तिके निमित्त महामृत्युञ्जयका जप एवं धन, संतान तथा अन्य कामनाओंके निमित्त किये जानेवाले अनुष्ठान भी इन्हींमें आते हैं।

मन्त्रानुष्ठान

मन्त्र शब्दका अर्थ है 'संसारी जीवके त्राणकारक, मननीय, ज्ञानमय अक्षरोंका समूह।'—

मननं सर्ववेदित्वं त्राणं संसार्यनुग्रहः।
मननात् त्राणधर्मत्वान्मन्त्र इत्यभिधीयते॥

(नार० पु० १।६४।३)

वह श्रीगुरुदेवकी कृपासे प्राप्त होता है। मन्त्र प्राप्त होनेपर भी यदि उसका अनुष्ठान न किया जाय, सविधि पुरश्चरण करके

उसे सिद्ध न कर लिया जाय, तो उससे उतना लाभ नहीं होता जितना होना चाहिये। श्रद्धा, भक्ति-भाव और विधिके संयोगसे मन्त्रोंके अक्षर अन्तर्हृदयमें प्रवेश कर अनुप्राणित करने लगते हैं। अनुष्ठानमें कुछ नियमोंकी आवश्यकता होती है। यहाँ संक्षेपमें उनका दिग्दर्शन कराया जाता है।

मन्त्रानुष्ठानके योग्य स्थान

मन्त्रानुष्ठान स्वयं करना अथवा सदाचारी विद्वान् ब्राह्मणके द्वारा कराना चाहिये। किसी पुण्यक्षेत्र, नदीतट, पवित्र वन-पर्वत, संगम, उद्यान, तुलसीकानन, गोशाला, देवालय, बिल्व, पीपल या आँवलेके वृक्षके नीचे अथवा अपने घरमें मन्त्रका अनुष्ठान शीघ्र फलप्रद होता है। सूर्य, अग्नि, गुरु, चन्द्रमा, दीपक, जल, ब्राह्मण और गौओंके सामने बैठकर जप करना उत्तम माना गया है। मुख्य बात यह है कि जहाँ बैठकर जप करनेसे चित्तमें प्रसन्नता बढ़े, वही स्थान सर्वश्रेष्ठ है। घरसे दसगुना गोष्ठ, सौगुना जंगल, हजारगुना तालाब, लाखगुना नदीतट, करोड़गुना पर्वत, अरबों-गुना शिवालय और गुरुका संनिधान अनन्तगुना श्रेष्ठ है। जिस स्थानपर स्थिरतासे बैठनेमें किसी प्रकारकी आशंका न हो, म्लेच्छ, दुष्ट, बाघ, साँप आदि किसी प्रकारका विघ्न न डाल सकते हों, जहाँके लोग अनुष्ठानके विरोधी न हों, जिस देशमें सदाचारी और भक्त निवास करते हों, किसी प्रकारका उपद्रव अथवा दुर्भिक्ष न हो, गुरुजनोंकी संनिधि और चित्तकी एकाग्रता सहज-भावसे ही रहती हो, वही जपके लिये उत्तम स्थान है।

आहार-शुद्धि

भोजनके रससे ही शरीर, प्राण और मनका निर्माण होता है। म्लान चित्तमें देवता और मन्त्रके प्रसादका उदय नहीं होता। अशुद्ध भोजनसे रोग, क्षोभ और ग्लानि होती है। शुद्ध भोजनसे मन पवित्र होता है। अन्याय, बेईमानी, चोरी, डकैती आदिसे उपार्जित दूषित अन्नद्वारा शुद्ध चित्तका निर्माण होना असम्भवप्राय है। इसी प्रकार अशुद्ध स्थानमें रखा दूध, दही आदि या कुत्ते आदिसे स्पृष्ट पदार्थ भी त्याज्य हैं।

गौके दूध, दही, घी, श्वेत तिल, मूँग, कन्द, केला, आम, नारियल, नारंगी, आँवला, साठी चावल, जौ, जीरा आदि हविष्यान्न व्रतोंमें उपादेय हैं। मधु, खारा नमक, तेल, लहसुन, प्याज, गाजर, उड़द, मसूर, कोदो, चना, बासी तथा परान्न त्याज्य है। जिन्हें भिक्षा लेनेका अधिकार है, उन संन्यासी आदिकोंके लिये भिक्षा परान्न नहीं है, पर भिक्षा सदाचारी, पवित्र, द्विजाति गृहस्थोंसे ही लेनी चाहिये।

मन्त्रानुष्ठानमें ब्रह्मचर्य एवं पवित्रतापूर्वक भू-शयन आदि आवश्यक हैं। अनुष्ठानकालमें कुटिल व्यवहार, क्षौर-कर्म, तैला-भ्यङ्ग तथा बिना भोग लगाये भोजन नहीं करना चाहिये। साधकको यथासम्भव पवित्र नदियों, देवखातों, तीर्थ, सरोवर, पुष्करिणी आदिमें मन्त्रोच्चारणपूर्वक स्नान करना चाहिये। यथाशक्ति तीनों समय संध्या और इष्टदेवकी पूजा करनी चाहिये। शिखा खोलकर, निर्वस्त्र होकर, एक वस्त्र पहनकर, सिरपर पगड़ी बाँधकर, अपवित्र होकर या चलते-फिरते जप करना निषिद्ध है। जपके समय माला पूरी हुए बिना बातचीत नहीं करनी चाहिये। जप समाप्त करने और प्रारम्भ करनेके पूर्व आचमन कर लेना चाहिये।

मलिन वस्त्र पहनकर, केश बिखेरकर और उच्चस्वरसे जप करना शास्त्रविरुद्ध है। जप करते समय इतने कर्म निषिद्ध हैं—आलस्य, जँभाई, नींद, छींकना, थूकना, डरना, अपवित्र अङ्गोंका स्पर्श और क्रोध। जापकको स्त्री, शूद्र, पतित, व्रात्य, नास्तिक आदिके साथ सम्भाषण, उच्छिष्ट मुखसे वार्तालाप, असत्य और कुटिल भाषण छोड़ देना चाहिये। अपने आसन, शय्या, वस्त्र आदिको शुद्ध एवं स्वच्छ रखना चाहिये। उबटन, इत्र, फूलमालाका उपयोग और गरम जलसे स्नान नहीं करना चाहिये। सोकर, बिना आसनके, चलते और खाते समय तथा बिना माला ढँके जो जप किया जाता है, उसकी गणना अनुष्ठानके जपमें नहीं होती। जिसके चित्तमें व्याकुलता, क्षोभ, भ्रान्ति हो, भूख लगी हो, शरीरमें पीड़ा हो, उसे और जहाँ स्थान अशुद्ध एवं अन्धकाराच्छन्न हो, वहाँ जप नहीं करना चाहिये। जूता पहने हुए अथवा पैर फैलाकर जप करना निषिद्ध है। और भी बहुत-से नियम हैं, उन्हें जानकर यथाशक्ति उनका पालन करना चाहिये। ये सब नियम मानस-जपके लिये नहीं है। शास्त्रकारोंने कहा है—

अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन्नपि।
मन्त्रैकशरणो विद्वान् मनसैव सदाभ्यसेत्॥
न दोषो मानसे जाप्ये सर्वदेशेऽपि सर्वदा।

अर्थात् मन्त्रके रहस्यको जाननेवाला जो साधक एकमात्र मन्त्रकी ही शरण हो गया है, वह चाहे पवित्र हो या अपवित्र, सब समय—चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते मन्त्रका

अभ्यास कर सकता है। मानस-जपमें किसी भी समय और स्थानको दोषयुक्त नहीं समझा जाता। कुछ मन्त्रोंके सम्बन्धमें अवश्य ही विभिन्न विधान है।

शास्त्रोंमें जप-यज्ञको सब यज्ञोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ कहा गया है। पद्म एवं नारदपुराणमें कहा गया है कि समस्त यज्ञ वाचिक जपकी तुलनामें सोलहवें हिस्सेके बराबर भी नहीं है। उपांशु-जपका फल वाचिक जपसे सौ गुना और मानस जपका सहस्रगुना होता है। मानस जप वह है, जिसमें अर्थका चिन्तन करते हुए मनमें ही मन्त्रके वर्ण, स्वर और पदोंकी आवृत्ति की जाती है। उपांशु-जपमें कुछ-कुछ जीभ और होंठ चलते हैं, अपने कानोंतक ही उनकी ध्वनि सीमित रहती है, दूसरा कोई नहीं सुन सकता। वाचिक जपका वाणीके द्वारा उच्चारण किया जाता है। तीनों ही प्रकारके जपोंमें मनके द्वारा इष्टका चिन्तन होना चाहिये। मानसिक स्तोत्र-पाठ और उच्चस्वरसे उच्चारणपूर्वक मन्त्र-जप—ये दोनों निष्फल हैं। गौतमी-तन्त्रमें कहा गया है 'सुषुम्णाके द्वारा मन्त्रका उच्चारण होनेपर उसमें शक्ति-संचार होता है।' पहले ऐसी भावना करनी चाहिये कि मन्त्रका एक-एक अक्षर चिच्छक्तिसे ओतप्रोत है और परम अमृतस्वरूप चिदाकाशमें उसकी स्थिति है। ऐसी भावना करते हुए जप करनेसे पूजा, होम आदिके बिना ही मन्त्र अपनी शक्ति प्रकाशित कर देते हैं। जप करनेमें प्राण-बुद्धिसे सुषुम्णाके मूलदेशमें स्थित जीवरूपसे मन्त्रका चिन्तन करते हुए मन्त्रार्थ और मन्त्रचैतन्यके ज्ञानपूर्वक मन्त्र-जप करनेका विधान है।

जपमें मालाका प्रयोग—साधकोंके लिये माला भगवान्‌के स्मरण और नाम-जपकी संख्या-गणनार्थ बड़ी ही सहायक होती है। इससे उतनी संख्या पूर्ण करनेके लिये सब समय प्रेरणा प्राप्त होती रहती है एवं उत्साह तथा लगनमें किसी प्रकारकी कमी नहीं आती। जो लोग बिना संख्याके जप करते हैं, उन्हें इस बातका अनुभव होगा कि जब कभी जप करते-करते मन अन्यत्र चला जाता है, तब मालूम ही नहीं होता कि जप हो रहा था या नहीं या कितने समयतक जप बंद रहा। यह प्रमाद हाथमें माला रहनेपर या संख्यासे जप करनेपर नहीं होता। यदि मन कभी कहीं चला भी जाता है तो मालाका चलना बंद हो जाता है, संख्या आगे नहीं बढ़ती और यदि माला चलती रही तो जीभ भी अवश्य चलती ही रहेगी। कुछ ही समयमें ये दोनों मनको आकृष्ट करनेमें समर्थ हो सकेंगी।

माला प्रायः तीन प्रकारकी होती है। करमाला, वर्णमाला और मणिमाला। अँगुलियोंपर जो जप किया जाता है, वह करमाला-जप है। इसका नियम यह है कि अनामिकाके मध्य-भागसे नीचेकी ओर चलें फिर कनिष्ठाके मूलसे अग्रभागतक और फिर अनामिका तथा मध्यमाके क्रमसे अग्रभागपर होकर तर्जनीके मूलतक जायँ। इस क्रमसे अनामिकाके दो, कनिष्ठाके तीन, पुनः अनामिकाका एक, मध्यभागका एक और तर्जनीके तीन पर्व—कुल दस संख्या होती है। मध्यमाके दो पर्व सुमेरुके रूपमें छूट जाते हैं। साधारण करमालाका यही क्रम है, परंतु अनुष्ठान-भेदसे इसमें अन्तर भी पड़ता है, जैसे—शक्तिके अनुष्ठानमें अनामिकाके दो पर्व, कनिष्ठाके तीन, पुनः अनामिकाका अग्रभाग एक मध्यमाके तीन पर्व और तर्जनीका एक मूलपर्व—इस प्रकार दस संख्या पूरी होती है। श्रीविद्यामें इससे भिन्न नियम है। मध्यमाका मूल एक, अनामिकाका मूल एक, कनिष्ठाके तीन, अनामिका और मध्यमाके अग्रभाग एक-एक और तर्जनीके तीन, इस प्रकार दस संख्या पूरी होती है। करमालासे जप करते समय अँगुलियाँ अलग-अलग नहीं होनी चाहिये। हथेली थोड़ी मुड़ी रहनी चाहिये। मेरुका उल्लङ्घन और पर्वोंकी सन्धि (गाँठ)का स्पर्श निषिद्ध है। हाथको हृदयके सामने लाकर अँगुलियोंको कुछ टेढ़ी करके वस्त्रसे उसे ढँककर दाहिने हाथसे ही जप करना चाहिये।

वर्णमालाका अर्थ है—अक्षरोंके द्वारा गणना करना। यह प्रायः अन्तर्जपमें काम आती है, परंतु बहिर्जपमें भी इसका निषेध नहीं है। वर्णमालाके द्वारा जप करनेका प्रकार यह है कि पहले वर्णमालाका एक अक्षर बिन्दु लगाकर उच्चारण कीजिये और फिर मन्त्रका इस क्रमसे अवर्गके सोलह, कवर्गसे पवर्गतकके पचीस और यवर्गके हकारतक आठ और पुनः एक लकार—इस प्रकार पचासतक गिनते जाइये, फिर लकारसे लौटकर अकारतक आ जाइये। सौकी संख्या पूरी हो जायगी। 'क्ष'को सुमेरु माना जाता है, उसका उल्लङ्घन नहीं होना चाहिये। संस्कृतमें 'त्र' और 'ज्ञ' स्वतन्त्र अक्षर नहीं, संयुक्ताक्षर माने जाते हैं। इसलिये उनकी गणना नहीं होती। वर्ग भी सात नहीं, आठ माने जाते हैं। आठवाँ शकारसे प्रारम्भ होता है। इसके द्वारा 'अं कं चं टं तं पं यं शं' यह गणना करके आठ बार और जपना चाहिये। ऐसा करनेसे जपकी संख्या एक सौ आठ हो जाती है। ये अक्षर तो मन्त्र

मणि हैं, इनका सूत्र है कुण्डलिनी-शक्ति। यह मूलाधारसे आज्ञाचक्रपर्यन्त सूत्ररूपसे विद्यमान है। उसीमें ये सब स्वर-वर्ण मणिरूपसे गुँथे हुए हैं। इन्हींके द्वारा आरोह और अवरोह-क्रमसे अर्थात् नीचेसे ऊपर और ऊपरसे नीचे जप करना चाहिये। इस प्रकार जो जप होता है, वह सद्यः सिद्धिप्रद होता है।

जिन्हें अधिक संख्यामें जप करना हो, उन्हें तो मणिमाला रखना अनिवार्य है। मणि (मनिया) पिरोये होनेके कारण इसे मणिमाला कहते हैं। यह माला अनेक वस्तुओंकी होती है, जैसे-रुद्राक्ष, तुलसी, शङ्ख, पद्मबीज, जीवपुत्रक (इंगुदी), मोती, स्फटिक, मणि-रत्न, मूँगा, सुवर्ण, चाँदी, चन्दन और कुशमूल। इन सभीके मणियोंसे माला तैयार की जा सकती है। इनमें वैष्णवोंके लिये तुलसी और स्मार्त, शैव, शाक्त आदिके लिये रुद्राक्ष सर्वोत्तम है। एक चीजकी मालामें दूसरी चीज न लगायी जाय। विभिन्न कामनाओंके अनुसार भी मालाओंमें भेद होता है और देवताओंके अनुसार भी। इनका विचार कर लेना चाहिये। मालाके मणि (दाने) छोटे-बड़े न हों। एक सौ आठ दानोंकी माला सब प्रकारके जपोंमें काम आती है। ब्राह्मण-कन्याओंके द्वारा निर्मित सूतसे माला बनायी जाय तो सर्वोत्तम है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके लिये क्रमशः श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण-वर्णके सूत्र श्रेष्ठ हैं। रक्तवर्णका प्रयोग सब वर्णोंके लोग सब प्रकारके अनुष्ठानोंमें कर सकते हैं। सूतको तिगुना कर पुनः उसे तिगुना कर देना चाहिये। प्रत्येक मणिको गूँथते समय प्रणवके साथ एक-एक अक्षरका उच्चारण करते जाना चाहिये—जैसे—'ॐ अं' कहकर प्रथम मणि तो 'ॐ आं' कहकर दूसरी मणि। बीचमें जो गाँठ देते हैं, उसके सम्बन्धमें विकल्प है। चाहे तो गाँठ दें चाहे तो न दें। दोनों ही बातें ठीक हैं। माला गूँथनेका मन्त्र अपना इष्टमन्त्र भी है। अन्तमें ब्रह्मग्रन्थि देकर सुमेरु गूँथे और पुनः ग्रन्थि लगाये। स्वर्ण आदिके सूत्रसे भी माला पिरोयी जा सकती है। रुद्राक्षके दानोंमें मुख और पुच्छका भेद भी होता है। मुख कुछ ऊँचा होता है और पुच्छ नीचा। पोहनेके समय यह ध्यान रखना चाहिये कि दानोंका मुख परस्परमें मिलता जाय अथवा पुच्छ। गाँठ देनी हो तो तीन फेरेकी अथवा ढाई फेरेकी लगानी चाहिये। ब्रह्मग्रन्थि भी लगा सकते हैं। इस प्रकार मालाका निर्माण करके उसका संस्कार करना चाहिये।

देवतातत्त्व—देवता मुख्यतया तैंतीस माने गये हैं। उनकी गणना इस प्रकार है—प्रजापति, इन्द्र, द्वादश आदित्य, आठ वसु और ग्यारह रुद्र। निरुक्तके दैवतकाण्डमें देवताओंके स्वरूपके सम्बन्धमें विचार किया गया है, वहाँके वर्णनसे यही तात्पर्य निकलता है कि वे कामरूप होते हैं। वेदान्त-दर्शनमें कहा गया है कि देवता एक ही समय अनेक स्थानोंमें भिन्न-भिन्न रूपसे प्रकट होकर अपनी पूजा स्वीकार कर सकते हैं। शास्त्रोंमें देवताओंके ध्यानकी सुस्पष्ट विधि निर्दिष्ट है। उसी रूपमें उनका ध्यान एवं उपासना की जानी चाहिये। वेदोंमें प्रायः सभी देवताओंका वर्णन आया है, जैसे इन्द्रके लिये '**वज्रहस्तः पुरन्दरः।**' उनके कर्मका भी वर्णन है कि वे वर्षाके अधिपति हैं और वृत्रवध आदि कर्म करते हैं। यहाँ कुछ देवताओंके ध्यान और मन्त्र लिखे जाते हैं।

इन्द्र

दिक्पतियोंके स्वामी इन्द्रका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये-इन्द्रका वर्ण पीला है, उनके शरीरपर मयूरपिच्छके सदृश सहस्र नेत्रोंके चिह्न हैं, उनके चार हाथ हैं, जिनमें वे क्रमशः अभय एवं वरमुद्रा तथा वज्र एवं अंकुश धारण किये हुए हैं। वे अनेक प्रकारके कौस्तुभ, माणिक्यादि आभूषण, स्वर्णकुण्डल एवं यज्ञोपवीत धारण किये ऐरावत हाथीपर इन्द्राणीके साथ विराजमान हैं। इन्द्रका मन्त्र है—'**ॐ इं इन्द्राय नमः।**'

अग्नि

अग्निका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—उनका वाहन छाग है। उनके सात हाथ हैं और सात जिह्वाओंसे सात ज्वालाएँ निकलती रहती हैं। शरीर स्थूल है, उनकी दायीं ओर स्वाहा और बायीं ओर स्वधा नामकी पत्नियाँ हैं। वे अपने हाथोंमें स्रुव, स्रुच्, तोमर एवं शक्ति आदि धारण किये हुए हैं। अग्निका मन्त्र है—'**ॐ रं वह्निचैतन्याय नमः।**'

कुबेर

कुबेरका ध्यान इस प्रकार है—धनाध्यक्ष कुबेर नवों निधियोंके स्वामी हैं। उनका वर्ण सुवर्णवत् पीत है। उनके दो हाथ हैं, जिनमें कुन्त एवं निधि लिये हैं और पीताम्बर धारण किये अति सुन्दर हैं। वे यक्ष-गुह्यकोंके स्वामी हैं तथा सपत्नीक नरवाहन—पालकीपर सवार या अश्वारूढ कहे गये हैं। कुबेरके मन्त्र छोटे-बड़े

कई हैं। छोटा प्रसिद्ध मन्त्र इस प्रकार है—'**ॐ वैश्रवणाय नमः**'।

वास्तुदेव

वास्तुपुरुषका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—वास्तुदेवताका शरीर नीले वर्णका है। वे शुभ स्थानपर सोये हुए हैं। उनके दो हाथ हैं, जिनमें मापदण्ड धारण किये हुए हैं; सब लोगोंके आश्रय एवं विश्वके बीज हैं। उन्हें जो प्रणाम करता है, उसके भयको वे नष्ट कर देते हैं। उनका मन्त्र है—'**ॐ वास्तोष्पतये नमः**।'

सभी साधना एवं उपासनाओंका अन्तिम फल भगवत्प्राप्ति या सायुज्य मुक्ति है। देवतालोग अपनी उपासनासे प्रसन्न होकर सांसारिक पुरुषार्थोंकी उपलब्धिके साथ भगवत्प्राप्तिमें भी सहायक होते हैं। ऊपर देवोपासनाकी संक्षिप्त विधि निर्दिष्ट है। विशेष जानकारीके लिये उनके उपासनापरक पुराण, आगमादि ग्रन्थ देखने चाहिये।

यज्ञ

भारतीय संस्कृति और वेद-पुराणोंमें यज्ञोंकी अपार महिमा निरूपित है। यज्ञोंके द्वारा विश्वात्मा प्रभुको संतृप्त करनेकी विधि बतलायी गयी है। अतः जो जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होना चाहते हैं, उन्हें यज्ञ-यागादि शुभ कर्म अवश्य करने चाहिये। वेद, जो परमात्माके निःश्वासभूत हैं, उनकी मुख्य प्रवृत्ति यज्ञोंके अनुष्ठान-विधानमें है। यज्ञोंद्वारा समुद्भूत पर्जन्य—वृष्टि आदिसे संसारका पालन करते हैं। इस प्रकार परमात्मा यज्ञोंके सहारे ही विश्वका संरक्षण करते हैं। यज्ञकर्ताको अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है।

ऋग्वेदका आरम्भ ही यज्ञके समस्त उपकरणोंके स्मरणसे होता है—'**ॐ अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्**।' यजुर्वेद शब्द ही यज्ञप्रतिपादक ग्रन्थका वाचक है। इसके प्रथम मन्त्र '**इषे त्वोर्जे॰**' का विनियोग दर्शपौर्णमास योगके पलाश-शाखा-छेदन विधिमें होता है। '**देवा यज्ञमतन्वत**' (यजु॰ १९। १२), '**यज्ञेन यज्ञमयजन्त॰**' (यजु॰ १९। १६), इन वेदमन्त्रों और '**यज्ञोऽध्ययनं दानम्**' (छान्दोग्य॰), '**अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यक्॰**' (मनु॰ ३। ७६), '**इज्याध्ययनदानानि॰**' (याज्ञवल्क्य॰ १। ५। ११८) आदि वचनोंसे यज्ञ धर्मका सर्वश्रेष्ठ प्रथम अङ्ग या स्कन्ध है।

श्रीमद्भगवद्गीताके तृतीय अध्यायके १० से १५ तकके श्लोकोंमें यज्ञपर ही संसारको आधृत कहा है और इसमें वेद और परमात्माकी प्रतिष्ठा कही है।

भगवान्ने गीतामें कहा है—

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥ (३। १०)

प्रजापति ब्रह्माने कल्पके आदिमें यज्ञसहित प्रजाओंकी सृष्टिकर उनसे कहा—'तुमलोग इस यज्ञके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होओ और यह यज्ञ तुमलोगोंको इच्छित भोग प्रदान करनेवाला हो।' गीतामें तो भगवान्ने यहाँतक कहा है कि यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और जो पापी लोग अपना शरीर-पोषण करनेके लिये अन्न पकाते हैं, वे पापको ही खाते हैं—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥
(३। १३)

इसलिये भगवान्ने कहा—'**तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्**' (गीता ३। १५)। सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सर्वदा यज्ञमें प्रतिष्ठित हैं। शरीर और अन्तःकरणकी शुद्धि तथा जीवनमें दिव्यताके आधानके लिये भी यज्ञकी आवश्यकता है—'**महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः**।' आचार्य जैमिनिका सम्पूर्ण मीमांसा-दर्शन, जो सभी दर्शनोंकी अपेक्षा बहुत बड़ा है, केवल यज्ञके अनुष्ठान-विधानका ही ज्ञापक है और अन्य सभी धर्म यज्ञके उपकारक या अङ्गमात्र हैं। उनकी दृष्टिमें केवल यज्ञ ही धर्म है और उनका प्रथम सूत्र '**अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः**' की प्रतिज्ञा कर केवल यज्ञों और उनकी विधियोंका ही प्रतिपादन करता है। कात्यायन आदि श्रौतसूत्रकारोंने भी अपने प्रथम सूत्र '**अथ यज्ञं व्याख्यास्यामः**' कहकर '**द्रव्यदेवतात्यागः**' इस परिभाषासे द्रव्यात्मक, देवतात्मक और त्यागक्रियात्मक—ये तीन यज्ञके लक्षण बताये हैं। द्रव्योंमें सोमरस, पुरोडाश, घृत, दधि, यवागू, हविष्, ओदन, तण्डुल, फल, जल—इन दस

पदार्थोंकी गणना की गयी है। इन्द्र, अग्नि, वरुण आदि वेदमन्त्रोक्त अनेक देवता हैं। क्रियामें समूचे यज्ञके अनुष्ठानकी प्रक्रिया उद्दिष्ट है, जिसमें ऋत्विग्वरण, मण्डपाच्छादन, वेदीकरण, स्रुवा आदि यज्ञपात्रोंका सम्मार्जन, यज्ञदीक्षाग्रहण, अग्नि-स्थापना, प्रतिष्ठा और समिदाधान, आज्यभागाहुति, प्रधानयाग, स्विष्टकृद्-हवन, वर्हिहोम, प्रणीताविमोक, पूर्णाहुतिहोम तथा तर्पण-मार्जन आदि अनेक क्रियाएँ सम्मिलित हैं।

वस्तुतः जिस अन्तर्वेदीय सदनुष्ठानद्वारा इन्द्रादिदेवगण प्रसन्न हों, स्वर्गादिकी प्राप्ति सुलभ हो, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक विपत्तियाँ दूर हों और सम्पूर्ण संसारका कल्याण हो, वह अनुष्ठान 'यज्ञ' कहलाता है। मत्स्यपुराणमें यज्ञका लक्षण इस प्रकार बताया गया है—

देवानां द्रव्यहविषां ऋक्सामयजुषां तथा।
ऋत्विजां दक्षिणानां च संयोगो यज्ञ उच्यते ॥

'जिस कर्मविशेषमें देवता, हवनीयद्रव्य, वेदमन्त्र, ऋत्विक् एवं दक्षिणा—इन पाँच उपादानोंका संयोग हो उसे यज्ञ कहा जाता है।'

वेदों, ब्राह्मणग्रन्थों तथा आश्वलायन, आपस्तम्ब, सत्याषाढ़ और पारस्कर आदि सूत्र-ग्रन्थोंमें यज्ञके अनेकों भेद-प्रभेद बताये गये हैं, परंतु मुख्यरूपसे इनका समाहार तीन प्रकारकी संस्थाओं—हविर्यज्ञ-संस्था, सोमयज्ञ-संस्था और पाकयज्ञ-संस्थाके अन्तर्गत हो जाता है। फिर एक-एकमें सात-सात यज्ञ सम्मिलित हैं। संक्षेपमें इनका परिचय इस प्रकार है—

१- हविर्यज्ञ-संस्था—मुख्य हविर्यज्ञके रूपमें ७ यज्ञ प्रकारोंका उल्लेख मिलता है, इनमेंसे एक-एक यज्ञके कई-कई भेद बतलाये गये हैं। पहला यज्ञ 'अग्न्याधेय' है, जिसे ब्राह्मण वसन्त ऋतुमें, क्षत्रिय ग्रीष्म ऋतुमें, वैश्य वर्षा ऋतुमें तथा कृत्तिका, रोहिणी आदि नक्षत्रोंमें प्रारम्भ करते हैं। इस यज्ञमें कई इष्टियाँ होती हैं और यह १३ रात्रियोंतक चलता है। घृत तथा दुग्धके द्वारा प्रतिदिनके किये जानेवाले हवनको 'अग्निहोत्र' कहा जाता है। इसीका एक भेद पिण्ड-पितृ-यज्ञ भी है। जिसका सम्पूर्ण विधान श्राद्धके समान होता है। इस क्रममें तीसरे मुख्य हविर्यज्ञके रूपमें 'दर्शपौर्णमास'का उल्लेख मिलता है, जो अमावास्या एवं पूर्णिमाको सम्पन्न किया जाता है। इसमें अग्नि और विष्णुको आहुतियाँ दी जाती हैं। हविर्यज्ञका चौथा भेद 'आग्रायण' है, इसमें साँवा नामक धान्यविशेषसे चरु बनाकर चन्द्रमाको आहुतियाँ दी जाती हैं। इसीके आयुष्यकामेष्टि, पुत्रकामेष्टि और मित्रविन्दा आदि भेद हैं। इसमें मित्रविन्दाकी कथा इसी पुराण-कथा-अङ्कमें उत्तम मन्वन्तरके प्रकरणमें विस्तारके साथ आयी है। प्रायः इन सभी यज्ञोंपर विभिन्न पुराणोंमें अनेकों कथाएँ प्राप्त होती हैं।

इसी प्रकार वैश्वानरी, कारीरि, पवित्री, व्रात्यपती आदि अनेकों इष्टियाँ हैं, जिनके लिये पुराणोंमें कहा गया है कि उन्हें विधि-विधानपूर्वक सम्पन्न करनेसे कर्ताकी दस पीढ़ियोंका उद्धार हो जाता है। पाँचवाँ हविर्यज्ञ 'चातुर्मास्य' है, जो चार-चार मासोंमें अनुष्ठेय है। इसके चार भेदोंका उल्लेख मिलता है, जो वैश्वदेवीय, वरुण-प्रघास, साकमेध और शुनासीरीयके नामसे जाने जाते हैं। छठा हविर्यज्ञ 'निरूढपशुबन्ध' है। यह प्रतिवत्सर वर्षा ऋतुमें किया जाता है। इसमें इन्द्र और अग्निके नामसे हवन होता है। यह पशुयाग कहलाता है। हविर्यज्ञका सातवाँ अन्तिम प्रकार 'सौत्रामणि' है। यह भी पशुयागके अन्तर्गत ही है। इसके विषयमें भागवतमें कई निर्देश दिये गये हैं। विस्तार-भयके कारण यहाँ हविर्यज्ञोंको मात्र संक्षिप्त रूपोंमें संकेतित किया है। विस्तृत जानकारीके लिये धर्मसूत्रों एवं ब्राह्मण-ग्रन्थोंका अवलोकन समीचीन होगा।

२-सोमयज्ञ-संस्था—यह आर्योंका अत्यन्त प्रसिद्ध याग रहा है। इसे कालावधिके आधारपर एकाह, अहीन और सम—इन तीन रूपोंमें देखा गया है। अग्निमें सोमलताके रसकी आहुति देनेके कारण यह सोमयाग कहलाता है। सोमयज्ञ-संस्थाके अन्तर्गत १६ ऋत्विजोंका उल्लेख आश्व० श्रौतसूत्र ४-१६ में इस प्रकार मिलता है— होता, मैत्रावरुण, अच्छावाक्, ग्रावस्तुत्, अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा, उन्नेता, ब्रह्मा, ब्राह्मणाच्छंशी, आग्नीध्र, पोता, उद्गाता, प्रस्तोता, प्रतिहती और सुब्रह्मण्य एवं १७ वाँ यजमान व्यक्ति।

सोमयज्ञ-संस्थाके मुख्य सात प्रकारोंमें अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्यामकी गणना होती है। इनके अन्य बहुतसे उपभेद भी

हैं, जिनमेंसे एक मासकी अवधितक चलनेवाले यज्ञ उशनस्तोम, गोस्तोम, भूमिस्तोम, वनस्पतिसव, बृहस्पतिसव, गौतमस्तोम, उपहव्य, चान्द्रमसी इष्टि, सौरी इष्टि आदि हैं। सूर्यस्तुत यज्ञ और विश्वस्तुत यज्ञ यशकी कामनासे, गोसव और पञ्चशारदीय पशुओंकी कामनासे तथा वाजपेय यज्ञ आधिपत्यकी कामनासे किया जाता है। इनमें वाजपेय यज्ञ महत्त्वपूर्ण है। इस यज्ञकी १७ दीक्षाएँ होती हैं। यह उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रयुक्त पूर्णिमा तिथिको आरम्भ होता है। इस यज्ञको सम्पादित करनेसे राजा सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है, ऐसा पुराणोंमें कहा गया है। पाण्डुके पुत्र धर्मात्मा युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ किया था, जिसका विस्तृत वर्णन भागवतपुराणके दशम स्कन्ध, अन्य पुराणों एवं महाभारतादि ग्रन्थोंमें भी प्राप्त होता है। पुराणोंमें विश्वजित् यज्ञको सारी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला बताया गया है। इसे सूर्यवंशी राजा रघुने किया था। पद्मपुराणमें विस्तारके साथ यह घटना आती है। इसी प्रकार ज्योति नामका एकाह यज्ञ ऋद्धिकी कामनासे किया जाता है। भ्रातृत्व-भावकी प्राप्तिके लिये विषुवत् सोम नामक यज्ञ, स्वर्गकामनासे आंगिरस यज्ञ, आयुकी कामनासे आयु-यज्ञ और पुष्टिकी इच्छासे जामदग्न्य-यज्ञका अनुष्ठान किया जाता है। यह यज्ञ ४ दिनोंतक चलता है।

शरद् ऋतुमें ५-५ दिनोंके सार्वसेन, दैव, पञ्चशारदीय, व्रतबन्ध और वावर नामक यज्ञ किये जाते हैं। जिनसे क्रमशः सेना तथा पशु, बन्धु-बान्धव, आयु एवं वाक्-शक्तिकी वृद्धि होती है। ६ दिनतक चलनेवाले यज्ञोंमें विशेष रूपसे पृष्ट्यावलम्ब और अभ्यासक्त आदि उत्तम हैं। अन्नादिकी कामनासे अनुष्ठेय सप्तरात्र यज्ञोंमें ऋषि-सप्तरात्र, प्राजापत्य, पवमानव्रत और जामदग्न्य आदि प्रधान हैं। जनकसप्तरात्र यज्ञ ऋद्धिकी कामनासे किया जाता है। अष्टरात्रोंमें महाव्रत ही मुख्य है। नवरात्रोंमें पृष्ठ्य और त्रिककुकी गणना होती है। दशरात्रोंमें आठ यज्ञ करणीय माने गये हैं, जिनमें अध्यर्ध, चतुष्टोम, त्रिककुप्, कुसुरुबिन्दु आदि मुख्य हैं। ऋद्धिकी कामनासे किया जानेवाला पुण्डरीक यज्ञ दो प्रकारका होता है। यह नवरात्र एवं दशरात्र दोनों ही प्रकारका होता है। मत्स्यपुराणके अ० ५३ के २५ से २७ तकके श्लोकोंमें,कार्तिक पूर्णमाकी तिथिमें मार्कण्डेयपुराणको दान करनेसे इस यज्ञके फलको प्राप्त करनेकी बात कही गयी है।

द्वादशाह यज्ञोंमें भरत-द्वादशाह मुख्य है; वैसे सामान्य-रूपसे द्वादशाह यज्ञ ४ बताये गये हैं, जो पृथक्-पृथक् संस्थाओंमें प्रयुक्त होते हैं। जो सभी कामनाओंको प्राप्त करके विश्वजयी होना चाहता है, उसे अश्वमेध यज्ञ करना चाहिये, जो सभी यज्ञोंका राजा है। श्रौतसूत्रोंमें शताधिक पृष्ठोंमें इसके विधानका वर्णन है। एक वर्षतक चलनेवाले इस यज्ञमें एक यज्ञीय अश्व छोड़ा जाता है और उसके पीछे राजाकी सेना चलती है। वह जबतक लौटकर वापस नहीं आता, तबतक पारिप्लव आख्यान चलते हैं। इस क्रममें दस-दस दिनोंपर पहले दिन ऋग्वेद, वैवस्वत मनुका आख्यान, दूसरे दिन यजुर्वेद और पितरोंका आख्यान, तीसरे दिन अथर्ववेद और वरुणादित्यका पौराणिक आख्यान, चौथे दिन आंगिरस (अथर्वण) वेद, विष्णु और चन्द्रमाका आख्यान, पाँचवें दिन भिषज्वेद और कद्रू-विनताका आख्यान, छठे-सातवें दिन असुरोंका आख्यान और आठवें दिन मत्स्यपुराणका आख्यान तथा कई पुराणोंका पाठ होता है।

इसी प्रकार दस-दस दिनोंपर उसी क्रमसे पाठ चलते हुए ३६० दिनोंके बाद दीक्षा होती है। इस तरहसे उसके बाद भी कई मासतक यह यज्ञ चलता रहता है। पुराणोंके अनुसार महाराज दशरथने राम आदिके जन्मकी कामनासे प्रायः तीन वर्षोंतक यह यज्ञ किया था, जिसमें इस यज्ञके अतिरिक्त अन्य सम्पूर्ण यज्ञोंको भी क्रमशः सम्पादित किया गया था।

३-पाकयज्ञ-संस्था—पाकयज्ञके अन्तर्गत सप्त-संस्थाओंका उल्लेख मिलता है। जो क्रमशः अष्टका, पार्वणश्राद्ध, श्रावणी, आग्रहायणी, चैत्री एवं आश्वयुजीके नामसे जानी जाती है। पाक-यज्ञ-संस्थाओंमें पहला अष्टकाश्राद्ध है। कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ—इन चार मासोंके कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथियाँ अष्टका कही जाती हैं। पर अष्टकाश्राद्ध मार्गशीर्ष, पौष और माघ—इन तीन मासोंकी कृष्णाष्टमियोंपर ही सम्पन्न होता है। इनमें पितरोंका श्राद्ध करनेका बहुत बड़ा माहात्म्य है। इसमें स्थालीपाक,आज्याहुति-पूर्वक पितरोंके श्राद्ध होते हैं।

पर्व-पर्वपर या पितरोंकी निधन-तिथिपर और महीने-महीनेपर होनेवाले श्राद्ध पार्वण कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त

एकोद्दिष्ट, आभ्युदयिक आदि श्राद्ध भी होते हैं, जिन्हें पाक-यज्ञोंमें गिना गया है। श्रावणी पूर्णिमाको होनेवाले सर्पबलि, गृह्यकर्म और वैदिक क्रियाओंको रक्षाबन्धनसहित श्रावणी कर्ममें गिना गया है, इन्हें चौथा पाक-यज्ञ कहा गया है। पारस्कर गृह्यसूत्रके तृतीय काण्डकी द्वितीय कण्डिकाके अनुसार आग्रहायणी कर्म पाँचवीं पाक-यज्ञ-संस्था है। उसमें सर्पबलि, स्थालीपाकपूर्वक श्रावणीके समान ही आज्याहुति और स्विष्टकृत्-हवन एवं भूशयनका कार्य होता है। चैत्रीमें शूलगव-कर्म (वृषोत्सर्ग) किया जाता है। पारस्कर गृह्य-सूत्रके तृतीय काण्डकी आठवीं कण्डिकाके अनुसार शूलगव-यज्ञ स्वर्ग, पुत्र, धन, पशु, यश एवं आयु प्रदान करनेवाला है। इसमें पशुपति रुद्रके लिये वृषभ (साँड़) छोड़े जानेका आदेश है। इसी दिन स्थालीपाकपूर्वक विधिवत् हवन भी किया जाता है।

सातवीं पाक-यज्ञ-संस्था आश्वयुजी कर्म है। इसका वर्णन पारस्कर गृह्यसूत्रके द्वितीय काण्डकी १६वीं कण्डिकामें विस्तारके साथ हुआ है। इसका पूरा नाम पृषातक यज्ञ है। इसमें ऐन्द्रिय हविष्यका दधि-मधुसे सम्मिश्रण कर इन्द्र, इन्द्राणी तथा अश्विनीकुमारोंके नामसे आश्विन-पूर्णिमाको हवन किया जाता है। उस दिन गायों और बछड़ोंको विशेष रूपसे एक साथ ही रखा जाता है। ब्राह्मणोंको भोजन करा देनेके उपरान्त इस कर्मकी समाप्ति होती है।

यद्यपि साधन-सम्पन्न व्यक्ति इन्हें अब भी करते हैं, परंतु वर्तमानमें इनमेंसे कुछ बड़े-बड़े यज्ञोंका सम्पादन सर्वसामान्यके लिये सम्भव नहीं है। साथ ही कलियुगमें अश्वमेधादि कुछ यज्ञोंका निषेध भी है। वर्तमानमें रुद्रयाग, महारुद्रयाग, अतिरुद्रयाग, विष्णुयाग, सूर्ययाग, गणेशयाग, लक्ष्मीयाग, शतचण्डीयाग, सहस्रचण्डीयाग, लक्षचण्डीयाग, महाशान्तियाग, कोटिहोम, भागवतसप्ताहयज्ञ आदि विशेष प्रचलित हैं।

ये यज्ञ सकाम भी किये जाते हैं और निष्काम भी। अग्नि, भविष्य, मत्स्य आदि पुराणोंमें जो यज्ञों तथा उनकी विधि आदिका विस्तृत तथा स्पष्ट विवरण मिलता है, वह वेद और कल्पसूत्रों (श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र आदि) पर आधृत है। अनेक राजाओं आदिके चरित्र-वर्णनमें विविध यज्ञानुष्ठानोंके सुन्दर आख्यान-उपाख्यान भी पुराणोंमें उपलब्ध होते हैं। इन यज्ञोंसे परमपुरुष नारायणकी ही आराधना होती है। श्रीमद्भागवत (४।१४।१८-१९) में स्पष्ट वर्णित है—

यस्य राष्ट्रे पुरे चैव भगवान् यज्ञपूरुषः।
इज्यते स्वेन धर्मेण जनैर्वर्णाश्रमान्वितैः॥
तस्य राज्ञो महाभाग भगवान् भूतभावनः।
परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निजशासने॥

जिसके राज्य अथवा नगरमें वर्णाश्रम-धर्मोंका पालन करनेवाले पुरुष स्वधर्म-पालनके द्वारा भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना करते हैं, हे महाभाग! भगवान् अपनी वेद-शास्त्ररूपी आज्ञाका पालन करनेवाले उस राजासे प्रसन्न रहते हैं, क्योंकि वे ही सारे विश्वकी आत्मा तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके रक्षक हैं। पद्मपुराणके सृष्टिखण्ड (३।१२४) में स्पष्ट कहा गया है कि—यज्ञसे देवताओंका आप्यायन अथवा पोषण होता है। यज्ञद्वारा वृष्टि होनेसे मनुष्योंका पालन होता है, इस प्रकार संसारका पालन-पोषण करनेके कारण ही यज्ञ कल्याणके हेतु कहे गये हैं।

यज्ञेनाप्यायिता देवा वृष्ट्युत्सर्गेण मानवाः।
आप्यायनं वै कुर्वन्ति यज्ञाः कल्याणहेतवः॥

सभी पुराणोंने यज्ञोंके यथासम्भव सम्पादनपर अत्यधिक बल दिया है। यज्ञोंका फल केवल इहलौकिक ही नहीं, अपितु पारलौकिक भी है। इनके अनुष्ठानसे देवों, ऋषियों, दैत्यों, नागों, किन्नरों, मनुष्यों तथा सभीको अपने अभीष्ट कामनाओंकी प्राप्ति ही नहीं हुई है, प्रत्युत उनका सर्वाङ्गीण अभ्युदय भी हुआ है। अतः इनका सम्पादन अवश्यकरणीय है।

निष्पाद्यन्ते नरैस्तैस्तु स्वधर्माभिरतैः सदा। विशुद्धाचरणोपेतैः सद्भिः सन्मार्गगामिभिः॥
स्वर्गापवर्गौ मानुष्यात् प्राप्नुवन्ति नरा मुने। यच्चाभिरुचितं स्थानं तद्यान्ति मनुजा द्विज॥

'जो मनुष्य सदा स्वधर्मपरायण, सदाचारी, सज्जन और सन्मार्गगामी होते हैं, उन्हींसे यज्ञका यथावत् अनुष्ठान हो सकता है। मुने! (यज्ञके द्वारा) मनुष्य इस मनुष्यशरीरसे ही स्वर्ग और अपवर्ग प्राप्त कर सकते हैं तथा और भी जिस स्थानकी उन्हें इच्छा हो, वहाँ भी जा सकते हैं।'

वर्णाश्रम-धर्म

वर्ण-व्यवस्था

भारतीय संस्कृतिमें तथा शास्त्रपुराणोंमें सनातनधर्मका आधार वर्णाश्रमकी व्यवस्था है। अनादिकालसे जीवोंके जो जन्म-जन्मान्तरोंमें किये हुए कर्म हैं, जिनका फलभोग नहीं हो चुका है, उन्हींके अनुसार उनमें यथायोग्य सत्त्व, रज और तमोगुणकी न्यूनाधिकता होती है। इन्हीं गुण-कर्मोंके अनुसार जीवको देव, पितर और तिर्यक् आदि विभिन्न योनियोंमें जाना पड़ता है।

भगवान् जगत्की सृष्टिके समय जीवके लिये जब मनुष्ययोनिका निर्माण करते हैं, तब उन जीवोंके गुण और कर्मोंके अनुसार उन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—इन चार वर्णोंमें उत्पन्न करते हैं, क्योंकि भगवान्का वचन है—

'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।'

जिनमें सत्त्वगुण अधिक होता है उन्हें ब्राह्मण, जिनमें सत्त्वमिश्रित रजोगुणकी अधिकता होती है उन्हें क्षत्रिय, जिनमें तमोमिश्रित रजोगुण अधिक होता है उन्हें वैश्य और जो रजोमिश्रित तमःप्रधान होते हैं उन्हें शूद्र बनाते हैं। विष्णुपुराणके प्रथम अंश, अध्याय ६ के अनुसार गुण-कर्म-विभागपूर्वक प्रजापति ब्रह्माके द्वारा चातुर्वर्ण्यकी सृष्टि हुई है। इत्थंभूत सृष्ट वर्णोंके लिये उनके स्वभावानुकूल पृथक्-पृथक् कर्मोंका विधान भी भगवान् ही कर देते हैं, जिससे ब्राह्मण शम-दमादि कर्मोंमें रत रहें, क्षत्रिय शौर्य-तेज आदिसे युक्त हों, वैश्य कृषि-गोरक्षामें लगे रहें और शूद्र सेवा-परायण हों।

ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म इस प्रकार कहे गये हैं—अन्तःकरणका निग्रह करना, इन्द्रियोंका दमन करना, धर्मपालनके लिये कष्ट सहना, बाहर-भीतरसे शुद्ध रहना, दूसरोंके अपराधोंको क्षमा करना, मन, इन्द्रिय और शरीरको सरल रखना, वेद-शास्त्र-ईश्वर तथा परलोक आदिमें श्रद्धा रखना, वेद-शास्त्रोंका अध्ययन-अध्यापन करना एवं परमात्माके तत्त्वका अनुभव करना[1]। इसके अतिरिक्त स्वयं अध्ययन करना और दूसरोंको अध्ययन कराना, स्वयं यज्ञ करना और दूसरोंका यज्ञ कराना, स्वयं दान देना तथा दूसरोंसे दान लेना ब्राह्मणके छः कर्म और बताये गये हैं[2]। ब्राह्मणोंके स्वाभाविक कर्मकी एक कथा इस प्रकार है—

वसिष्ठ और विश्वामित्र

एक बार गाधिपुत्र महाराज विश्वामित्र महर्षि वसिष्ठके आश्रममें जा पहुँचे। उनके साथ बहुत बड़ी सेना थी। नन्दिनी नामक कामधेनु गौके प्रसादसे वसिष्ठजीने सेनासमेत राजाको भाँति-भाँतिके भोजन कराये और रत्न तथा वस्त्राभूषण दिये। विश्वामित्रका मन गौके लिये ललचा गया और वसिष्ठजीसे गौको माँगा। वसिष्ठने कहा—इस गौको मैंने देवता, अतिथि, पितृगण और यज्ञके लिये रखा है। अतः इसे मैं नहीं दे सकता। विश्वामित्रको अपने जनबल और शस्त्रबलका गर्व था, उन्होंने जबरदस्ती नन्दिनीको ले जाना चाहा। नन्दिनीने रोते हुए वसिष्ठसे कहा—'भगवन्! विश्वामित्रके निर्दयी सिपाही मुझे बड़ी क्रूरताके साथ कोड़ों और डंडोंसे मार रहे हैं, आप इनके इस अत्याचारकी उपेक्षा कैसे कर रहे हैं?' वसिष्ठजीने कहा—

क्षत्रियाणां बलं तेजो ब्राह्मणानां क्षमा बलम्।
क्षमा मां भजते यस्माद् गम्यतां यदि रोचते॥

'क्षत्रियोंका बल तेज है और ब्राह्मणोंका बल क्षमा। मैं क्षमाको नहीं छोड़ सकता, तुम्हारी इच्छा हो तो चली जाओ।' नन्दिनी बोली—'यदि आप त्याग न करें तो बलपूर्वक मुझे कोई भी नहीं ले जा सकता।' वसिष्ठजीने कहा—'मैं त्याग नहीं करता, तुम रह सकती हो तो रह जाओ।'

इसपर नन्दिनीने रौद्ररूप धारण किया, उसकी पूँछसे आग बरसने लगी और अनेकों म्लेच्छ जातियाँ उत्पन्न हो गयीं। विश्वामित्रकी सेनाके छक्के छूट गये। नन्दिनीकी सेनाने विश्वामित्रके एक भी सिपाहीको नहीं मारा, वे सब डरके मारे भाग गये। विश्वामित्रको अपनी रक्षा करनेवाला कोई भी नहीं दीख पड़ा। तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने कहा—

धिग्बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजोबलं बलम्।

१-शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

२-अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥

'क्षत्रिय-बलको धिक्कार है, वास्तवमें ब्रह्म-तेजका बल ही 'बल' है।' इसके पश्चात् विश्वामित्रकी प्रेरणासे राजा कल्माषपादने वसिष्ठके सभी पुत्रोंको मार डाला, तो भी वसिष्ठने उनसे बदला लेनेकी चेष्टा न की।

क्षत्रियके स्वाभाविक कर्म यों कहे गये हैं—शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्धमें न भागना, दान देना तथा स्वामिभाव। इसके अतिरिक्त प्रजाकी रक्षा करना, यज्ञ करना, वेदोंका अध्ययन करना, विषयोंमें आसक्त न होना—ये सभी क्षत्रियोंके कर्म बताये गये हैं[3]। बड़े-से-बड़े बलवान् शत्रुका न्याययुक्त सामना करनेमें भय न करना तथा न्याययुक्त युद्ध करनेके लिये सदा ही उत्साहित रहना और युद्धके समय साहसपूर्वक गम्भीरतासे लड़ते रहना 'शूरवीरता' है। भीष्म-पितामहका जीवन इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

पितामह भीष्म

बालब्रह्मचारी पितामह भीष्ममें क्षत्रियोचित सभी गुण थे। उन्होंने प्रसिद्ध क्षत्रियशत्रु भगवान् परशुरामजीसे शस्त्रविद्या सीखी थी। जिस समय परशुरामजीने काशिराजकी कन्या अम्बासे विवाह कर लेनेके लिये भीष्मपर बहुत दबाव डाला, उस समय उन्होंने बड़ी नम्रतासे अपने सत्यकी रक्षाके लिये ऐसा करनेसे बिलकुल इनकार कर दिया; जब परशुरामजी किसी तरह न माने और बहुत धमकाने लगे, तब उन्होंने स्पष्ट कह दिया—

न भयान्नाप्यनुक्रोशान्नार्थलोभान्न काम्यया।
क्षात्रं धर्ममहं जह्यामिति मे व्रतमाहितम्॥
यच्चापि कत्थसे राम बहुशः परिवत्सरे।
निर्जिताः क्षत्रिया लोके मयैकेनेति तच्छृणु॥
न तदा जातवान् भीष्मः क्षत्रियो वापि मद्विधः।
पश्चाज्जातानि तेजांसि तृणेषु ज्वलितं त्वया॥
व्यपनेष्यामि ते दर्पं युद्धे राम न संशयः।

'भय, कृपा, धनके लोभ और कामनासे मैं कभी क्षात्र-धर्मका परित्याग नहीं कर सकता—यह मेरा दृढ व्रत है। परशुरामजी! आप जो लोगोंके सामने बड़ी डींग हाँका करते हैं कि मैंने बहुत वर्षोंतक अकेले ही क्षत्रियोंका अनेकों बार (इक्कीस बार) संहार किया है, तो उसके लिये भी सुनिये—उस समय भीष्म या भीष्मके समान कोई क्षत्रिय पैदा नहीं हुआ था। आपने तिनकोंपर ही अपना प्रताप दिखाया है। क्षत्रियोंमें तेजस्वी तो पीछेसे प्रकट हुए हैं। परशुरामजी! इस समय युद्धमें मैं आपके घमंडको निःसंदेह चूर्ण कर दूँगा।'

परशुरामजी कुपित हो गये। युद्ध छिड़ गया और लगातार तेईस दिनोंतक भयानक युद्ध होता रहा, परंतु परशुरामजी भीष्मको परास्त न कर सके। अन्ततः नारद आदि देवर्षियोंके और भीष्मजननी श्रीगङ्गाजीके प्रकट होकर बीचमें पड़नेपर तथा परशुरामजीके धनुष छोड़ देनेपर ही युद्ध समाप्त हुआ। भीष्मने न तो रणसे पीठ दिखायी और न पहले शस्त्रको ही छोड़ा (महा० उद्योग० १८५)।

महाभारतके अठारह दिनोंके संग्राममें दस दिनोंतक अकेले भीष्मजीने कौरवपक्षके सेनापतिके पदको सुशोभित किया। शेष आठ दिनोंमें कई सेनापति बदले।

भगवान् श्रीकृष्णने महाभारत-युद्धमें शस्त्र-ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा की थी। कहते हैं 'भीष्मने किसी कारणवश प्रण कर लिया कि मैं भगवान्‌को शस्त्र-ग्रहण करवा दूँगा।'

युद्धारम्भके तीसरे दिन भीष्मपितामहने जब बड़ा ही प्रचण्ड संग्राम किया, तब भगवान् श्रीकृष्णने कुपित होकर घोड़ोंकी रास हाथसे छोड़ दी और सूर्यके समान प्रभायुक्त अपने चक्रको हाथमें लेकर उसे घुमाते हुए रथसे कूद पड़े। श्रीकृष्णको चक्र हाथमें लिये हुए देखकर सब लोग ऊँचे स्वरसे हाहाकार करने लगे। भगवान् प्रलयकालकी अग्निके समान भीष्मकी ओर बड़े वेगसे दौड़े। श्रीकृष्णको चक्र लिये अपनी ओर आते देखकर महात्मा भीष्म तनिक भी नहीं डरे और अविचलित-भावसे अपने धनुषको टंकारते हुए कहने लगे—'हे देवदेव! हे जगन्निवास! हे माधव! हे चक्रपाणि! पधारिये। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे सबको शरण देनेवाले! मुझे बलपूर्वक इस श्रेष्ठ रथसे नीचे गिरा दीजिये। हे श्रीकृष्ण! आज आपके हाथसे मारे जानेपर मेरा इस लोक और परलोकमें बड़ा कल्याण होगा। हे यदुनाथ! आप स्वयं मुझे मारने दौड़े, इससे मेरा गौरव तीनों लोकोंमें बढ़ गया।'

३-प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥

अर्जुनने दौड़कर पीछेसे भगवान्‌के पैर पकड़ लिये और किसी प्रकार उन्हें लौटाया (महा० भीष्म० ५९)।

नवें दिनकी बात है, भगवान्‌ने देखा—भीष्मने पाण्डव-सेनामें प्रलय-सा मचा रखा है। भगवान् श्रीकृष्ण घोड़ोंकी रास छोड़कर कोड़ा हाथमें लिये फिर भीष्मकी ओर दौड़े। उनके तेजसे पग-पगपर मानो पृथ्वी फटने लगी। कौरवपक्षके वीर घबड़ा उठे और 'भीष्म मरे!', 'भीष्म मरे!!' कहकर चिल्लाने लगे। हाथीपर झपटते हुए सिंहकी भाँति भगवान्‌को अपनी ओर आते देखकर भीष्म तनिक भी विचलित न हुए और उन्होंने धनुष खींचकर कहा—

'हे पुण्डरीकाक्ष! हे देवदेव! आपको नमस्कार है। हे यादवश्रेष्ठ! आइये, आइये, आज इस महायुद्धमें मेरा वध करके मुझे वीरगति दीजिये। हे अनघ! हे देवदेव श्रीकृष्ण! आज आपके हाथसे मरनेपर मेरा लोकमें सर्वथा कल्याण हो जायगा। हे गोविन्द! युद्धमें आपके इस व्यवहारद्वारा आज मैं त्रिभुवनमें सम्मानित हो गया। हे निष्पाप! मैं आपका दास हूँ, आप मुझपर जी भरकर प्रहार कीजिये।'

अर्जुनने दौड़कर भगवान्‌के हाथ पकड़ लिये, पर भगवान् रुके नहीं और उन्हें घसीटते हुए आगे बढ़े। अन्तमें अर्जुनके प्रतिज्ञाकी याद दिलाने और सत्यकी शपथ खाकर भीष्मको मारनेकी प्रतिज्ञा करनेपर भगवान् लौटे।

दस दिन महायुद्ध करनेपर जब भीष्म मृत्युकी बात सोच रहे थे, तब आकाशमें स्थित ऋषियों और वसुओंने भीष्मसे कहा—'हे तात! तुम जो सोच रहे हो, वही हमें पसंद है।' इसके बाद शिखण्डीके सामने बाण न चलानेके कारण बालब्रह्मचारी भीष्म अर्जुनके बाणोंसे बिंधकर शरशय्यापर गिर पड़े। गिरते समय भीष्मने सूर्यको दक्षिणायनमें देखा, इसलिये उन्होंने प्राणत्याग नहीं किया।

५८ दिन शरशय्यापर रहनेके बाद सूर्यके उत्तरायण होनेपर भीष्मने प्राणत्यागका निश्चय किया और भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे सुरासुरोंके द्वारा वन्दित! हे त्रिविक्रम! हे शङ्ख-चक्र-गदाधारी! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे वासुदेव! हिरण्यात्मा, परमपुरुष, सविता, विराट्, जीवरूप, अणुरूप, परमात्मा और सनातन आप ही हैं। हे पुण्डरीकाक्ष! हे पुरुषोत्तम! आप मेरा उद्धार कीजिये। हे कृष्ण! हे वैकुण्ठ! हे पुरुषोत्तम! अव मुझे जानेके लिये आज्ञा दीजिये। मैंने मन्दबुद्धि दुर्योधनको बहुत समझाया था—

यतः कृष्णस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः।

'जहाँ श्रीकृष्ण हैं, वहीं धर्म है और जहाँ धर्म है, वहीं विजय है, परंतु उस मूर्खने मेरी बात नहीं मानी। मैं आपको पहचानता हूँ, आप ही पुराणपुरुष हैं। आप नारायण ही अवतीर्ण हुए हैं।

स मां त्वमनुजानीहि कृष्ण मोक्ष्ये कलेवरम्।
त्वयाहं समनुज्ञातो गच्छेयं परमां गतिम्॥

(महा० अनु० १६७।४५)

'हे श्रीकृष्ण! आप मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं शरीर-त्याग करूँ। आपकी आज्ञासे शरीर-त्यागकर मैं परमगतिको प्राप्त करूँगा।'

भगवान्‌ने आज्ञा दी, तब भीष्मने योगके द्वारा वायुको रोककर क्रमशः प्राणोंको ऊपर चढ़ाना आरम्भ किया। प्राणवायु जिस अङ्गको छोड़कर ऊपर चढ़ता था, उस अङ्गके बाण उसी क्षण निकल जाते और घाव भर जाते थे। क्षणभरमें भीष्मजीके शरीरसे सब बाण निकल गये, शरीरपर एक भी घाव न रहा और प्राण ब्रह्मरन्ध्रको भेदकर ऊपर चले गये। लोगोंने देखा, ब्रह्मरन्ध्रसे निकला हुआ तेज देखते-देखते आकाशमें विलीन हो गया।

वैश्यका स्वाभाविक कर्म खेती, गोपालन और क्रय-विक्रय-रूप सत्य व्यवहार करना है। इसके अतिरिक्त यज्ञ, अध्ययन और दान तथा व्याज लेना—ये चार कर्म वैश्यके लिये विशेष बताये गये हैं[४]।

मनुष्योंके और देवता, पशु, पक्षी आदि अन्य समस्त प्राणियोंके उपयोगमें आनेवाली समस्त पवित्र वस्तुओंको धर्मानुकूल खरीदना और बेचना तथा आवश्यकतानुसार उनको एक स्थानसे दूसरे स्थानमें पहुँचाकर लोगोंकी आवश्यकताओंको पूर्ण करना वाणिज्य—क्रय-विक्रय-रूप

४-(क) कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
(ख) पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च। वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च॥

व्यवहार है। वाणिज्य करते समय, वस्तुओंके खरीदने-बेचनेमें तौल, नाप और गिनती आदिमें कम देना या अधिक ले लेना, वस्तुओंको बदलकर या एक वस्तुमें दूसरी वस्तु मिलाकर अच्छीके बदले खराब दे देना अथवा खराबके बदले अच्छी ले लेना, नफा, आढ़त और दलाली आदि ठहराकर उससे अधिक लेना या कम देना; इसी तरह किसी भी व्यापारमें झूठ, कपट, चोरी और जबरदस्तीका या अन्य किसी प्रकारके अन्यायका प्रयोग करके दूसरोंके सत्त्वको हड़प लेना—ये सब वाणिज्यके दोष हैं। इन सब दोषोंसे रहित जो सत्य और न्याय-युक्त पवित्र वस्तुओंका खरीदना और बेचना है, वही क्रय-विक्रयरूप सत्य व्यवहार है; तुलाधारने इसी व्यवहारसे सिद्धि प्राप्त की थी। इनकी कथा इस प्रकार है—

तुलाधार

काशीमें तुलाधार नामक एक वैश्य व्यापारी थे। वे महान् तपस्वी और धर्मात्मा थे। न्याय और सत्यका आश्रय लेकर क्रय-विक्रयरूप व्यापार करते थे। जाजलिनामक एक ब्राह्मण समुद्र-तटपर कठिन तपस्या करते थे। उनकी जटाओंमें चिड़ियोंने घोंसले बना लिये थे, इससे उन्हें अपनी तपस्यापर गर्व हो गया। तब आकाशवाणी हुई कि 'हे जाजलि! तुम काशीके तुलाधारके समान धार्मिक नहीं हो, वे तुम्हारी भाँति गर्व नहीं करते।' जाजलि काशी आये और उन्होंने देखा—तुलाधार फल, मूल, मसाले, घी आदि बेच रहे हैं। तुलाधारने स्वागत-सत्कार और प्रणाम करके जाजलिसे कहा—'आपने समुद्रके किनारे बड़ी तपस्या की है। आपके सिरकी जटाओंमें चिड़ियोंने बच्चे पैदा कर दिये, इससे आपको गर्व हो गया और आप आकाशवाणी सुनकर यहाँ पधारे हैं; बताइये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' तुलाधारका ऐसा ज्ञान देखकर जाजलिको बड़ा आश्चर्य हुआ। जाजलिद्वारा तुलाधारसे धर्म-विषयक प्रश्न किये जानेपर उन्होंने धर्मका बहुत ही सुन्दर निरूपण किया और जाजलिने तुलाधारके मुखसे धर्मका रहस्य सुनकर बड़ी शान्ति प्राप्त की।

शूद्रका स्वाभाविक कर्म है[५]—सेवा करना, द्विजातिकी आज्ञाओंका पालन करना तथा जितने भी सेवाके कार्य हैं, उन सबको करके सबको संतुष्ट रखना अथवा सबके काममें आनेवाली वस्तुओंको कारीगरीसे तैयार करना और उन वस्तुओंसे उनकी सेवा करके अपनी जीविका चलाना—ये सभी परिचर्याएँ कर्मके अन्तर्गत हैं। शूद्रके स्वभावमें रजोमिश्रित तमोगुण प्रधान होता है, इस कारण उपर्युक्त कार्योंमें उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हो जाती है। इस तरह शूद्रके लिये सेवा-रूप कर्म स्वाभाविक है। अतएव उसके लिये इसका पालन करना बहुत ही सरल है[६] और इसका पालन करनेसे ही उसका कल्याण भी निश्चित है। **ब्रह्मपुराणकी कथा है**—'एक था ब्राह्मण और एक था चाण्डाल। दोनों ही चोरी करते थे, जिस कारण दोनोंमें मित्रता हो गयी थी। वृद्धावस्था होनेपर ब्राह्मणकी बुद्धिमें सुधार आया। उसकी सद्बुद्धि जाग्रत् हुई। वह चोरी आदि अनैतिक कार्योंसे विमुख हो गया। पर चाण्डालके मनमें पुनः चोरी करनेका भाव जाग्रत् होता था। इसने अपने मित्र ब्राह्मणको अपनी इच्छासे अवगत कराया, पर ब्राह्मणने स्पष्टरूपसे मना कर दिया तथा कहा कि अबतक मैंने जो चोरी आदि दुष्कृत किये हैं, उसका मुझे पश्चात्ताप है, उसके लिये मैं प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ। इस कार्यमें मैं तुम्हारा साथ नहीं दे सकता, मुझे अपना उद्धार करना है। ब्राह्मण देवताकी बात सुनकर चाण्डालकी बुद्धि भी सुधर गयी। उसने कहा—मैं इस कार्यमें भी तुम्हारा साथ दूँगा। काशीकी पञ्चकोशी परिक्रमामें स्थित एक मन्दिरके निकट वे दोनों व्यक्ति गये। अपने पाप-कर्मोंसे दोनोंका इतना पतन हो चुका था कि वे मन्दिरमें प्रवेश करनेके अधिकारी नहीं रह गये थे। अनन्तर ब्राह्मण प्रातःसे रात्रिपर्यन्त कठिन तपस्या, पूजा-अर्चा, व्रत तथा उपासनाके द्वारा अपना समय व्यतीत करने लगा और वह चाण्डाल भी नित्यकी पूजामें केवल देवालयके शिखरका दर्शन कर उसे प्रणाम करता तथा देवालयकी सेवा, झाड़ू-बुहारू कर देता था। इसके साथ ही एकादशीको निर्जल व्रत रहता था। मरनेके बाद उस ब्राह्मण तथा उस शूद्रकी समान गति हुई। इस कथासे यह सिद्ध होता है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—ये सभी समानरूपसे कल्याणके अधिकारी हैं। परंतु इन्हें कर्म करनेका अधिकार अपने वर्णाश्रमानुसार भिन्न-भिन्न है।

५-'परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।'

६-एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्। एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया॥

समाजमें धर्मकी स्थापना और रक्षाके लिये तथा समाज एवं जीवनको सुखी बनाये रखनेके लिये, जहाँ समाजकी जीवन-पद्धतिमें कोई बाधा उपस्थित हो, वहाँ प्रयत्नके द्वारा उस बाधाको दूर करनेके लिये, कर्मप्रवाहके भँवरको मिटानेके लिये, उलझनोंको सुलझानेके लिये और धर्मसंकट उपस्थित होनेपर समुचित व्यवस्था देनेके लिये परिष्कृत और निर्मल मस्तिष्ककी आवश्यकता है। धर्मकी और धर्ममें स्थित समाजकी भौतिक आक्रमणोंसे रक्षा करनेके लिये बाहुबलकी आवश्यकता है। मस्तिष्क और बाहुका यथायोग्य रीतिसे पोषण करनेके लिये धनकी तथा अन्नकी आवश्यकता है और उपर्युक्त कर्मोंको यथायोग्य सम्पन्न करानेके लिये शारीरिक परिश्रमकी आवश्यकता है।

इसलिये समाज-शरीरका मस्तिष्क ब्राह्मण है, बाहु क्षत्रिय है, ऊरु वैश्य है और चरण शूद्र है। चारों एक ही समाज-शरीरके चार आवश्यक अङ्ग हैं और एक दूसरेकी सहायतापर सुरक्षित और जीवित हैं। घृणा और अपमानकी तो बात ही क्या है, इनमेंसे किसीकी तनिक भी अवहेलना नहीं की जा सकती। न इनमें नीच-ऊँचकी कल्पना है। अपने-अपने स्थान और कार्यके अनुसार चारों ही बड़े हैं। ब्राह्मण ज्ञानबलसे, क्षत्रिय बाहुबलसे, वैश्य धनबलसे और शूद्र जनबल या श्रमबलसे बड़ा है तथा चारोंकी ही पूर्ण उपयोगिता है। इनकी उत्पत्ति भी एक ही भगवान्‌के शरीरसे हुई है—ब्राह्मणकी उत्पत्ति भगवान्‌के श्रीमुखसे, क्षत्रियकी बाहुसे, वैश्यकी ऊरुसे और शूद्रकी श्रीचरणोंसे हुई है।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोअजायत॥

(ऋग्वेद १०।९०।१२)

परंतु इनका यह अपना-अपना बल न तो स्वार्थसिद्धिके लिये है और न किसी दूसरेको दबाकर स्वयं ऊँचा बननेके लिये ही है। समाज-शरीरके आवश्यक अङ्गोंके रूपमें इनका योग्यतानुसार कर्म-विभाग है। और यह केवल धर्म-पालनकी प्रेरणाके लिये। ऊँच-नीचका भाव न होकर यथायोग्य कर्मविभाग होनेके कारण ही चारों वर्णोंमें एक शक्ति-सामञ्जस्य रहता है। कोई भी किसीकी न अवहेलना कर सकता है, न किसीके न्याय्य अधिकारपर आघात कर सकता है। इस कर्म-विभाग और कर्माधिकारके सुदृढ़ आधारपर रचित यह वर्णधर्म ऐसा सुव्यवस्थित है कि इसमें शक्ति-सामञ्जस्य अपने-आप ही रहता है। स्वयं भगवान्‌ने और धर्मनिर्माता ऋषियोंने प्रत्येक वर्णके कर्मोंका अलग-अलग स्पष्ट निर्देश करके तो सबको अपने-अपने धर्मका निर्विघ्न पालन करनेके लिये और भी सुविधा कर दी है एवं स्वकर्मका पूरा पालन होनेसे शक्ति-सामञ्जस्यमें कभी बाधा आ ही नहीं सकती।

ऋषिसेवित वर्णधर्ममें ब्राह्मणका पद सबसे ऊँचा है, वह समाजके धर्मका निर्माता है, उसीकी बनायी हुई विधिको सभी मानते हैं। वह सबका गुरु और पथप्रदर्शक है, परंतु वह धन-संग्रह नहीं करता, न दण्ड ही देता है, न भोग-विलासमें ही रुचि रखता है। दिन-रात तपस्या, धर्मपालन और ज्ञानार्जन-में लगा रहता है तथा अपने शम, दम, तितिक्षा, क्षमा आदिसे समन्वित महान् तपोबलके प्रभावसे दुर्लभ ज्ञाननेत्र प्राप्त करता है एवं उस ज्ञानकी दिव्य ज्योतिसे सत्यका दर्शन कर उस सत्यको बिना किसी स्वार्थके सदाचारपरायण, साधुस्वभाव पुरुषोंके द्वारा समाजमें वितरण कर देता है। बदलेमें कुछ भी चाहता नहीं। समाज अपनी इच्छासे जो दे देता या भिक्षासे जो कुछ मिल जाता है, उसीपर वह बड़ी सादगीसे अपनी जीवनयात्रा चलाता है। उसके जीवनका यही धर्ममय आदर्श है।

क्षत्रिय सबपर शासन करता है। अपराधीको दण्ड और सदाचारीको पुरस्कार देता है। दण्डबलसे दुष्टोंको सिर नहीं उठाने देता और धर्मकी तथा समाजकी दुराचारियों, चोरों, डाकुओं एवं शत्रुओंसे रक्षा करता है। क्षत्रिय दण्ड देता है, परंतु कानूनकी रचना स्वयं नहीं करता। ब्राह्मणके बनाये हुए कानूनके अनुसार ही वह आचरण करता है। ब्राह्मणरचित कानूनके अनुसार ही वह प्रजासे कर वसूल करता है और उसी कानूनके अनुसार प्रजाहितके लिये व्यवस्थापूर्वक उसे व्यय कर देता है। कानूनकी रचना ब्राह्मण करता है और धनका भंडार वैश्यके पास है। क्षत्रिय तो केवल विधिके अनुसार व्यवस्थापक और संरक्षकमात्र है।

धनका मूल वाणिज्य, पशु और अन्न सब [illegible]

हाथमें है। वैश्य धन उपार्जन करता है और उसे बढ़ाता है, किंतु अपने लिये नहीं। वह ब्राह्मणके ज्ञान और क्षत्रियके बलसे संरक्षित होकर धनको सब वर्णोंके हितमें उसी विधानके अनुसार व्यय करता है। न शासनपर उसका कोई अधिकार है और न उसे उसकी आवश्यकता ही है, क्योंकि ब्राह्मण और क्षत्रिय उसके वाणिज्यमें कभी कोई हस्तक्षेप नहीं करते, स्वार्थवश उसका धन कभी नहीं लेते, वरं उसकी रक्षा करते है और ज्ञानबल तथा बाहुबलसे ऐसी सुव्यवस्था करते हैं कि जिससे वह अपना व्यापार सुचारुरूपसे निर्विघ्न चला सकता है। इससे उसके मनमें कोई असंतोष नहीं है, वह प्रसन्नताके साथ क्षत्रियका प्राधान्य मानकर चलता है एवं मानना आवश्यक भी समझता है; क्योंकि इसीमें उसका हित है। वह प्रसन्नतासे राजाको कर देता है, ब्राह्मणकी सेवा करता है और विधिवत् आदरपूर्वक शूद्रको भरपूर अन्न-वस्त्रादि देता है।

शूद्रमें शारीरिक शक्ति प्रबल है, परंतु मानसिक शक्ति सामान्य है। अतएव शारीरिक श्रम ही उसके हिस्सेमें रखा गया है और समाजके लिये शारीरिक शक्तिकी बड़ी आवश्यकता भी है। परंतु इसकी शारीरिक शक्तिका मूल्य किसीसे कम नहीं है। श्रमबलके ऊपर ही तीनों वर्णोंकी प्रतिष्ठा है। यही आधार है। पैरके बलपर ही शरीर चलता है। अतएव तीनों वर्ण शूद्रको अपना प्रिय अङ्ग मानते हैं। उसके श्रमके बदलेमें वैश्य प्रचुर धन देता है, क्षत्रिय उसके धन-जनकी रक्षा करता है और ब्राह्मण उसे धर्मका, भगवत्प्राप्तिका मार्ग दिखाता है। न तो स्वार्थ-सिद्धिके लिये कोई वर्ण शूद्रकी वृत्ति हरण करता है, न स्वार्थवश उसे कम पारिश्रमिक देता है और न उसे अपनेसे नीचा मानकर किसी प्रकारका दुर्व्यवहार ही करता है। सब यही समझते हैं कि सब अपना-अपना स्वत्व ही पाते हैं, कोई किसीपर उपकार नहीं करता। परंतु सभी एक-दूसरेकी सहायता करते हैं और सब अपनी उन्नतिके साथ उसकी उन्नति करते हैं। उसकी उन्नतिमें अपनी उन्नति और अवनतिमें अपनी अवनति मानते हैं। ऐसी अवस्थामें श्रमबलयुक्त शूद्र संतुष्ट रहता है, चारोंमें कोई किसीसे ठगा नहीं जाता, कोई किसीसे अपमानित नहीं होता।

इस प्रकार गुण और कर्मके विभागसे ही वर्ण-विभाग बनता है। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि मनमाने कर्मसे वर्ण बदल जाता है। वर्णका मूल जन्म है और कर्म उसके स्वरूपकी रक्षामें प्रधान कारण है। इस प्रकार जन्म और कर्म—दोनों ही वर्णमें आवश्यक हैं। केवल कर्मसे वर्णको माननेवाले वस्तुतः वर्णको मानते ही नहीं। वर्ण यदि कर्मपर ही माना जाय तब तो एक दिनमें एक ही मनुष्यको न मालूम कितनी बार वर्ण बदलना पड़ेगा। फिर तो समाजमें कोई शृङ्खला या नियम ही न रहेगा। सर्वथा अव्यवस्था फैल जायगी। परंतु भारतीय वर्णधर्ममें ऐसी बात नहीं है। यदि केवल कर्मसे वर्ण माना जाता तो युद्धके समय ब्राह्मणोचित कर्म करनेको तैयार हुए अर्जुनको गीतामें भगवान् क्षत्रिय-धर्मका उपदेश न करते। मनुष्यके पूर्वकृत शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार ही उसका विभिन्न वर्णोंमें जन्म हुआ करता है। जिसका जिस वर्णमें जन्म होता है, उसे उसी वर्णके निर्दिष्ट कर्मोंका आचरण करना चाहिये; क्योंकि वही उसका 'स्वधर्म' है और 'स्वधर्म'का पालन करते-करते मर जाना भगवान् श्रीकृष्णने कल्याणकारक बतलाया है—**'स्वधर्मे निधनं श्रेयः ।'** साथ ही परधर्मको 'भयावह' भी बतलाया है। यह ठीक ही है; क्योंकि सब वर्णोंके स्वधर्मपालनसे ही सामाजिक शक्ति-सामञ्जस्य रहता है और तभी समाज-धर्मकी रक्षा एवं उन्नति होती है। स्वधर्मका त्याग और परधर्मका ग्रहण व्यक्ति और समाज दोनोंके लिये ही हानिकर है। अतः व्यवस्थित वर्णव्यवस्थाको मर्यादित रहने देना, उसका संरक्षण करना, तदनुसार चलना सबके लिये सर्वथा कल्याणकारक सिद्ध होगा।

क्षमाशील पुरुषोंमें एक ही दोषका आरोप होता है, दूसरेकी तो सम्भावना ही नहीं है, वह दोष यह है कि क्षमाशील मनुष्यको लोग असमर्थ समझ लेते हैं। किंतु क्षमाशील पुरुषका वह दोष नहीं मानना चाहिये, क्योंकि क्षमा बहुत बड़ा बल है। क्षमा असमर्थ मनुष्योंका गुण तथा समर्थोंका भूषण है।

आश्रम-व्यवस्था

वर्ण-व्यवस्थाकी भाँति आश्रम-व्यवस्था भी भारतीय संस्कृति एवं हिंदूधर्मका एक प्रमुख अङ्ग है। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास—इन चार आश्रमोंमें प्रत्येक व्यक्तिका कर्तव्यकर्म उसके वर्णके साथ-साथ आश्रमपर भी निर्भर करता है।

प्रारम्भके पचीस वर्ष ब्रह्मचर्य-आश्रमके अन्तर्गत माने गये हैं। प्राचीन कालमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बालक पाँचसे पचीस वर्षकी अवस्थातक गुरुगृहमें ब्रह्मचर्यका पालन करते थे। उस समय भूमिशयन, एक समय भिक्षान्न-भोजन, की निष्कपट सेवा, वेदपाठ और अपरा विद्याकी प्राप्तिके थ-साथ ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिके लिये चेष्टा—ये आवश्यक व्य थे। शूद्र बालक भी अपने अधिकारानुसार इस उच्च दर्शका अनुकरण करते थे। परनारी और परपुरुषका स्पर्श क्या उनके प्रति दृष्टिपात करना यहाँतक कि उनका चिन्तन अपराध था। पचीस वर्षकी अवस्था प्राप्त होनेपर ावर्तन-संस्कारके बाद पाणिग्रहण-संस्कारके द्वारा वे स्थाश्रममें प्रवेश करते थे।

आश्रम-व्यवस्थामें गृहस्थाश्रमको एक महत्त्वपूर्ण आश्रम ा गया है, जो सभी आश्रमोंका आधार है। सम्पूर्ण नकी जिम्मेदारियोंका निर्वाह इस आश्रममें ही होता है। ावस्था प्राप्त होनेपर व्यक्तिमें एक विशेष शक्तिका संचार ा स्वाभाविक है। काल व्यतीत होते-होते शरीर और तष्कमें प्रौढ़ता आती है। इस प्रकार पचास वर्षकी स्थातक शास्त्रोंने उसे अधिकार दिया कि वह पितृऋणसे ; होनेके लिये वंशवृद्धिके निमित्त संतान उत्पन्न करे तथा वकोपार्जन करता हुआ अपने परिवारका पालन-पोषण करे, ाज, देश और राष्ट्रकी सेवा करे। गृहस्थाश्रमके अनेक व्योंका वर्णन पुराणोंमें प्राप्त होते हैं। वास्तवमें सभी श्रमोंका आधार गृहस्थाश्रम ही है।

पचास वर्षकी अवस्थातक व्यक्तिका मस्तिष्क प्रायः पक्व हो जाता है। इसके बाद अवस्था प्रायः ढलने लगती शरीर शिथिल होने लगता है। उसकी संतान भी तबतक ावस्थाको प्राप्त हो जाती है। पारलौकिक चिन्तन तथा भगवदाराधनकी ओर उसकी प्रवृत्तियाँ विशेष रूपसे उन्मुख होने लगती हैं। इसलिये उसमें गृहस्थ-जीवनकी जिम्मेदारियोंसे मुक्त होनेकी भावना जाग्रत् होना स्वाभाविक है। अतः शास्त्रकारोंने पचास वर्षकी अवस्थासे पचहत्तर वर्षकी अवस्थाको वानप्रस्थ आश्रमकी संज्ञा दी है। इस आश्रममें गृहस्थाश्रमके सुखोंका त्याग करता हुआ व्यक्ति निवृत्तिमार्गकी ओर अग्रसर होता है। वह मुख्यरूपसे वनमें, एकान्तमें तथा तीर्थस्थलोंमें निवास करता हुआ निष्काम कर्म—भगवच्चिन्तन, आराधन एवं तपोमय जीवन व्यतीत करता है। तीर्थयात्रा, व्रत, व्रतोद्यापन, परोपकार, समाजसेवा तथा अन्य सभी पारमार्थिक कार्य इस आश्रममें सम्पन्न किये जा सकते हैं।

जीवनका अन्तिम आश्रम है संन्यास-आश्रम। सभी प्रकारके दायित्वोंसे संन्यास लेनेका विधान इस आश्रममें है। जीवन-निर्वाहमात्रके लिये जो कर्म करना आवश्यक हो, उसके अतिरिक्त वह सभी कर्मोंसे संन्यास ले लेता है तथा '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' की भावनासे ब्रह्मचिन्तनमें ही अपना समय व्यतीत करता है।

वर्णाश्रमधर्म पुनर्जन्म और कर्मवादके सिद्धान्तपर अवलम्बित है। इसका मुख्य सिद्धान्त है कि यह जड देह पाञ्चभौतिक और नश्वर है। देह आत्मा नहीं है, आत्मा अविनाशी है। एक परमात्मा ही अनेक रूप धारण करके लीला कर रहे हैं। जीव ही शिव है। वर्णाश्रमधर्मका अन्तिम लक्ष्य है शिवत्वकी प्राप्ति।

जीवके इस जन्मका प्रारब्धभोग सञ्चितकर्म—अदृष्टसे होता है। परंतु इसी जन्ममें शास्त्रानुसार आचरण करके अपने-अपने अधिकारके अनुसार निष्काम कर्म करते रहनेपर पाप-पुण्य दोनोंसे मुक्ति मिल जाती है। सञ्चितकर्मकी राशि श्रीभगवान्‌की उपासनाके द्वारा क्षय हो जाती है। अतएव श्रीभगवान्‌के नाम-रूपका आश्रय लेना पड़ता है। मनुष्य पहले स्थूल-बहिरङ्ग देवमूर्तिकी पूजा करके क्रमशः अन्तरङ्ग मनसे सूक्ष्म पूजाका अधिकारी होता है, उसके द्वारा क्रमशः उसमें पराभक्तिका उदय होता है।

'तुम मेरे हो, मैं तुम्हारा हूँ' यह द्वैत सिद्धान्त है। 'तुम और

मैं एक हूँ' इसकी उपलब्धि अद्वैतवादमें अभ्यस्त होनेपर स्वतः होती है। द्वैत-अद्वैतके परे पहुँचनेपर मुक्ति मिलती है।

जन्म-जन्मान्तरके चक्रसे उद्धार पाना मनुष्य-जीवनका परम और चरम लक्ष्य है। वर्णाश्रम इसीकी साधनाका पथ दिखलाता है।

पुराणोंमें चार आश्रमोंके धर्म और पालनीय नियम

ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास—ये चार आश्रम शास्त्रोंमें बताये गये हैं। इनके पालनीय नियमोंका विवरण नीचे संक्षेपमें दिया जा रहा है।

ब्रह्मचर्य

यथाशक्ति अध्ययन करते हुए ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करनेवाले पुरुषको चाहिये कि वह अपने धर्ममें तत्पर रहे, विद्वान् बने, सम्पूर्ण इन्द्रियोंको अपने अधीन रखे, मुनिव्रतका पालन करे, गुरुका प्रिय और हित करनेमें लगा रहे, सत्य बोले तथा धर्मपरायण एवं पवित्र रहे। नित्य संध्या-वन्दन करे। नित्य स्नान करके देवता-ऋषियोंका तर्पण, देवताओंका पूजन तथा अग्न्याधान करे। मधु, मांस, सुगन्धित द्रव्य, माला, रस, स्त्री, सभी प्रकारके आसव तथा प्राणियोंकी हिंसा सर्वथा त्याग दे। शरीरमें उबटन (साबुन-तेल) आदि न लगाये, आँखोंमें सुरमा न डाले, जूता तथा छाताका व्यवहार न करे। काम, क्रोध और लोभ न करे। नाच-गान तथा वाद्यसे दूर रहे। जूआ, कलह, निन्दा, झूठ आदिसे बचे। स्त्रियोंकी ओर सकाम दृष्टिसे न देखे, किसीकी निन्दा न करे। सदा अकेला सोये। कभी वीर्यपात न करे। अनिच्छासे स्वप्नमें कहीं वीर्यपात हो जाय तो स्नानकर सूर्यका पूजन करके तीन बार **'पुनर्मा'** इस ऋचाका पाठ करे। भोजनके समय अन्नकी निन्दा न करे। भिक्षाके अन्नको हविष्य मानकर ग्रहण करे। गुरुकी आज्ञा लेकर एक बार भोजन करे। एक स्थानपर रहे, एक आसनसे बैठे और नियत समयमें भ्रमण करे। पवित्र और एकाग्रचित्त होकर दोनों समय अग्निमें हवन करे। सदा बेल या पलाशका दण्ड लिये रहे। रेशमी अथवा सूती वस्त्र या मृगचर्म धारण करे। ब्रह्मचारी मूँजकी मेखला पहने, जटा धारण करे, प्रतिदिन स्नान करे, यज्ञोपवीत पहने, वेदके स्वाध्यायमें लगा रहे तथा लोभहीन होकर नियमपूर्वक व्रतका पालन करे।

गार्हस्थ्य

गृहस्थ-आश्रम ही चारों आश्रमोंका आश्रयभूत तथा मूल है। इस संसारमें जो कोई भी विधि-निषेधरूप शास्त्र कहा गया है, उसमें पारंगत विद्वान् होना गृहस्थ द्विजोंके लिये उत्तम बात है। गृहस्थ पुरुषके लिये केवल अपनी ही स्त्रीपर प्रेम रखना, सदा सत्पुरुषोंके आचारका पालन करना और जितेन्द्रिय होना परमावश्यक है। इस आश्रममें उसे श्रद्धापूर्वक पञ्चमहायज्ञोंके द्वारा देवता आदिका यजन करना चाहिये। गृहस्थको उचित है कि वह देवता और अतिथिको भोजन करानेके बाद बचे हुए अन्नका स्वयं आहार करे। वेदोक्त कर्मोंके अनुष्ठानमें संलग्न रहे। अपने वर्ण-धर्मके अनुसार निर्दोष अर्थका उपार्जन करके गृहस्थधर्मका पालन करे तथा अपनी शक्तिके अनुसार प्रसन्नतापूर्वक यज्ञ करे और दान दे। गृहस्थको चाहिये कि हाथ, पैर, नेत्र, वाणी तथा शरीरके द्वारा होनेवाली चपलताका परित्याग करे अर्थात् इनके द्वारा कोई अनुचित कार्य न होने दे। यही सत्पुरुषोंका बर्ताव (शिष्टाचार) है। स्वच्छ वस्त्र पहने, उत्तम व्रतका पालन करे, शौच-संतोष आदि नियमों और सत्य-अहिंसा आदि यमोंके पालनपूर्वक यथाशक्ति लोकसेवा करता रहे। शिष्टाचारका पालन करते हुए जिह्वा और उपस्थको वशमें रखे। सबके साथ मित्रताका बर्ताव करे। स्वयं सादगीसे रहकर सबका सदा हित-साधन करे। जन्मसे लेकर अन्त्येष्टिपर्यन्त यथायोग्य यथाविधि सब संस्कार करे। शास्त्रका अनुसरण करे। माता-पिता-कुटुम्ब आदिका आदरपूर्वक भरण-पोषण करे।

वानप्रस्थ

वानप्रस्थी मुनि सब प्रकारके संस्कारोंद्वारा शुद्ध होकर ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते हुए घरकी ममता त्याग कर गाँवसे बाहर निकलकर जनकोलाहलरहित शान्त स्थानमें निवास करे। प्रातः और सायंकालके समय स्नान करे। सदा वनमें ही रहे। गाँवमें फिर कभी प्रवेश न करे। अतिथिको आश्रय दे और समयपर उनका सत्कार करे। जंगली फल, मूल, पत्ता अथवा सावाँ खाकर जीवन-निर्वाह करे। बहते हुए जल, वायु आदि सब वनकी वस्तुओंका ही सेवन करे। अपने

व्रतके अनुसार सदा सावधान रहकर क्रमशः उपयुक्त वस्तुओंका आहार करे। कभी आलस्य न करे। जो कुछ भोजन अपने पास उपस्थित हो, उसीमेंसे अतिथिको भिक्षा दे। नित्यप्रति पहले देवता और अतिथियोंको भोजन दे। उसके बाद मौन होकर स्वयं अन्न ग्रहण करे। हलका भोजन करे। मनमें किसीके साथ स्पर्धा न रखे, देवताओंका सहारा ले। इन्द्रियोंका संयम करे, सबके साथ मित्रताका बर्ताव करे। क्षमाशील बने और दाढ़ी-मूँछ तथा सिरके बालोंको धारण किये रहे। समयपर अग्निहोत्र और वेदोंका स्वाध्याय करे तथा सत्य-धर्मका पालन करे। शरीरको सदा पवित्र रखे। धर्म-पालनमें कुशलता प्राप्त करे। सदा वनमें रहकर चित्तको एकाग्र किये रहे। इस प्रकार उत्तम धर्मोंका पालन करनेवाला जितेन्द्रिय वानप्रस्थी स्वर्गपर विजय पाता है।

संन्यास

श्रेष्ठ संन्यासी नाम, गोत्र आदि तथा देश, काल, शास्त्रज्ञान, कुल, अवस्था, आचार, व्रत और शीलका विज्ञापन न करे। किसी भी स्त्रीसे बातचीत न करे। पहलेकी देखी हुई किसी भी स्त्रीका स्मरणतक न करे। उनकी चर्चासे भी दूर रहे तथा स्त्रियोंका चित्र भी न देखे। सम्भाषण, स्मरण, चर्चा और चित्रावलोकन— स्त्री-सम्बन्धी इन चार बातोंका जो मोहवश आचरण करता है, उसके चित्तमें अवश्य ही विकार उत्पन्न होता है और उस विकारसे उसका धर्म निश्चय ही नष्ट हो जाता है। तृष्णा, क्रोध, असत्य, माया, लोभ, मोह, प्रिय, अप्रिय, शिल्पकला, व्याख्यानमें योग देना, कामना, राग, संग्रह, अहंकार, ममता, चिकित्साका व्यवसाय, धर्मके लिये साहसका कार्य, प्रायश्चित्त, दूसरेके घरपर रहना, मन्त्र-प्रयोग, औषध-वितरण, विषदान, आशीर्वाद देना—ये सब संन्यासीके लिये निषिद्ध हैं।

संन्यासी स्वप्नमें भी कभी किसीका दिया हुआ दान न ले, दूसरेको भी न दिलाये और न स्वयं किसीको देने-लेनेके लिये ही प्रेरित करे। स्त्री, भाई, पुत्र आदि तथा अन्य बन्धु-बान्धवोंके शुभ या अशुभ समाचारको सुनकर या देखकर भी संन्यासी कभी कम्पित (विचलित) न हो, वह शोक और मोहको सर्वथा त्याग दे। अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (किसी वस्तुका संग्रह न करना), उद्दण्डताका अभाव, किसीके सामने दीन न बनना, स्वाभाविक प्रसन्नता, स्थिरता, सरलता, स्नेह न करना, गुरुकी सेवा करना, श्रद्धा, क्षमा, इन्द्रियसंयम, मनोनिग्रह, सबके प्रति उदासीनताका भाव, धीरता, स्वभावकी मधुरता, सहनशीलता, करुणा, लज्जा, ज्ञान-विज्ञान-परायणता, स्वल्प आहार तथा धारणा— ये मनको वशमें रखनेवाले संन्यासियोंके विख्यात सुधर्म हैं,। द्वन्द्वोंसे रहित, सत्त्वगुणमें सर्वदा स्थित और सर्वत्र समान दृष्टि रखनेवाला, तुरीयाश्रममें स्थित परमहंस संन्यासी साक्षात् नारायणका स्वरूप है।

संन्यासी गाँवमें एक रात रहे और बड़े नगरमें पाँच रात, किंतु यह नियम वर्षाके अतिरिक्त समयके लिये ही है, वर्षामें चार महीनेतक वह किसी एक ही स्थानपर निवास करे। यति गाँवमें दो रात कभी न रहे। यदि रहता है तो उसके अन्तःकरणमें राग आदिका प्रसङ्ग आ सकता है, इससे वह नरकगामी होता है। गाँवके एक किनारे किसी निर्जन प्रदेशमें मन और इन्द्रियोंको संयममें रखते हुए निवास करे। कहीं भी अपने लिये मठ या आश्रम न बनाये। जैसे कीड़े सदा घूमते रहते हैं, उसी प्रकार आठ महीनोंतक संन्यासी इस पृथ्वीपर विचरता रहे। केवल वर्षाके चार महीनोंमें वह किसी एक स्थानपर जो पवित्र जलसे घिरा हुआ और एकान्त-सा हो, निवास करे। संन्यासी सम्पूर्ण भूतोंको अपने ही समान देखता हुआ अन्धे, जड, बहरे, गूँगे और पागलकी तरह चेष्टा रखता हुआ पृथ्वीपर विचरण करे।

अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सत्य, सरलता, क्रोधका अभाव, दोषदृष्टिका त्याग, इन्द्रियसंयम और चुगली न करना—इन आठ व्रतोंका सदा सावधानीके साथ पालन करे। इन्द्रियोंको वशमें रखे। पाप, शठता और कुटिलतासे सदा रहित होकर बर्ताव करे। खानेके लिये अन्न और शरीर ढँकनेके लिये वस्त्रके अतिरिक्त और किसी वस्तुका संग्रह न करे।

बुद्धिमान् संन्यासीको चाहिये कि न तो दूसरोंके लिये भिक्षा माँगे तथा न सब प्राणियोंके लिये दयाभावसे संविभागपूर्वक कभी कुछ देनेकी इच्छा ही करे। दूसरोंके अधिकारका अपहरण न करे। काम, क्रोध, घमंड, लोभ और

मोह आदि जितने भी दोष हैं, उन सबका परित्याग करके संन्यासी सब ओरसे ममताको हटा ले। अपने मनमें राग और द्वेषको स्थान न दे। मिट्टीके ढेले, पत्थर और सुवर्णको समान समझे। प्राणियोंकी हिंसासे सर्वथा दूर रहे तथा सब ओरसे निःस्पृह होकर मुनिवृत्तिसे रहे। सबके साथ अमृतके समान मधुर बर्ताव करे, पर कहीं भी आसक्त न हो और किसी भी प्राणीके साथ परिचय न बढ़ावे। जितने भी कामना और हिंसासे युक्त कर्म हैं, उन सबका एवं लौकिक कर्मोंका न स्वयं अनुष्ठान करे और न दूसरोंसे कराये। सब प्रकारके पदार्थोंकी आसक्तिका त्याग करके थोड़ेमें संतुष्ट हो सर्वत्र विचरता रहे। स्थावर और जङ्गम सभी प्राणियोंके प्रति समान भाव रखे। किसी दूसरे प्राणीको उद्वेगमें न डाले और स्वयं भी किसीसे उद्विग्न न हो। संन्यासीको उचित है कि भविष्यके लिये विचार न करे, बीती हुई घटनाका चिन्तन न करे और वर्तमानकी भी उपेक्षा कर दे।

नेत्रसे, मनसे और वाणीसे कहीं भी दोषदृष्टि न करे। सबके सामने और दूसरोंकी आँख बचाकर कोई बुरा काम न करे। जैसे कछुआ अपने अङ्गोंको सब ओरसे समेट लेता है, उसी प्रकार इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे हटा ले।

मान-अपमानमें समान-भावसे रहे। छहों ऊर्मियोंसे प्रभावित न हो। निन्दा, अहंकार, मत्सर (डाह) गर्व, दम्भ, ईर्ष्या, असूया (दोषदृष्टि), इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि छोड़कर अपने शरीरको मुर्देके समान मानकर आत्मासे अतिरिक्त दूसरी किसी भी वस्तुको बाहर-भीतर न स्वीकार करते हुए, न तो किसीके सामने मस्तक झुकाये न यज्ञ और श्राद्ध करे, न किसीकी निन्दा या स्तुति करे। अकेला ही स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करता रहे। दैवेच्छासे भोजन आदिके लिये जो कुछ भी मिल जाय, उसीपर संतुष्ट रहे। न किसीका आवाहन करे न विसर्जन। न मन्त्रका प्रयोग करे, न उसकी व्याख्या करे। कोई उसका अपना घर या आश्रम न हो। जनशून्य भवन, वृक्षकी जड़, देवालय, घास-फूसकी कुटिया, अग्निहोत्रशाला, नदीतट, पुलिन (कछार) भूगृह, (गुफा) पर्वतीय गुफा, झरनेके समीप, चबूतरे या वेदीपर अथवा वनमें रहे। जो संन्यासी निष्काम, निर्गुण, शान्त, अनासक्त, निराश्रय, आत्मपरायण और तत्त्वका ज्ञाता होता है, वह मुक्त हो जाता है—इसमें कोई संदेह नहीं है।

व्रतोपवास

पुराणोंमें मनुष्योंके कल्याणके लिये यज्ञ, तपस्या, तीर्थसेवन, दान आदि अनेक साधन बताये गये हैं। उनमेंसे एक साधन व्रतोपवास भी है। इसकी बड़ी महिमा है। अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये व्रतोपवास आवश्यक है। इससे बुद्धि, विचार और ज्ञान-तन्तु विकसित होते हैं। शरीरके अन्तस्तलमें परमात्माके प्रति भक्ति, श्रद्धा और तल्लीनताका संचार होता है। पारमार्थिक लाभके साथ-साथ व्रतोपवाससे लौकिक लाभ भी होते हैं। व्यापार, व्यवसाय, कला-कौशल, शास्त्रानुसंधान और उत्साहपूर्वक व्यवहार-कुशलताका सफल सम्पादन किये जानेमें मन निगृहीत रहता है, जिससे सुखमय दीर्घजीवनके आरोग्य-साधनोंका स्वतः संचय हो जाता है।

यद्यपि रोग भी पाप हैं और ऐसे पाप व्रतोंसे दूर होते ही हैं, तथापि कायिक, वाचिक, मानसिक और सांसर्गिक पाप, उपपाप, महापापादि भी व्रतोपवाससे दूर होते हैं। उनके समूल नाशका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि व्रतारम्भके पूर्व पापयुक्त प्राणियोंका मुख हतप्रभ रहता है और व्रतकी समाप्ति होते ही वह सूर्योदयके कमलकी भाँति खिल उठता है। पुण्य-प्राप्तिके लिये किसी पुण्यतिथिमें उपवास करने या किसी उपवासके कर्मानुष्ठानद्वारा पुण्य संचय करनेके सङ्कल्पको व्रत कहा जाता है। यम-नियम और शम-दम आदिका पालन, भोजन आदिका परित्याग अथवा जल-फल आदिपर रहना तथा समस्त भोगोंका त्याग करना—ये सब व्रतके अन्तर्गत समाहित होते हैं। शास्त्रोक्त नियम ही व्रत कहे जाते हैं। व्रतीको शारीरिक संताप सहन करना पड़ता है, इसीलिये इसे तप भी कहा जाता है। इन्द्रिय-निग्रहको दम और मनोनिग्रहको शम कहा गया है। व्रतमें इन्द्रियोंका नियमन (संयम) करना होता है, इसलिये इसे नियम भी कहते हैं। जो द्विजातिगण

विधिपूर्वक अग्निहोत्र, सोमयज्ञ, हविर्यज्ञ तथा पाकयज्ञादिके अनुष्ठानमें असमर्थ हैं, उनके लिये व्रत, उपवास और नियमोंका पालन करना ही परम कल्याणकारी है। इनके पालनसे देवगण व्रतीपर प्रसन्न होकर उसे भोग तथा मोक्ष सब कुछ प्रदान कर देते हैं। क्षमा, सत्य, दया, दान, शौच, इन्द्रिय-संयम, देवपूजा, हवन, संतोष और चोरीका अभाव—इन नियमोंका पालन सामान्यतः सभी व्रतोंमें आवश्यक माना गया है—

क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
देवपूजाग्निहरणं संतोषोऽस्तेयमेव च॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः।

(अग्नि० १७५। १०-११)

सभी पापोंसे उपावृत (निवृत्त) होकर सब प्रकारके भोगोंका त्याग करते हुए सद्गुणोंके साथ वास करना ही उपवास कहलाता है। उपवास करनेवाले व्रतीको स्नान आदि क्रियासे शुद्ध होकर देव, गुरु, ब्राह्मण, साधु, गौकी पूजा, सत्सङ्ग-सेवन, भगवत्कथा-श्रवण तथा दान-पुण्य आदिके कार्य अवश्य करने चाहिये।

जल, फल, मूल, दधि, हवि, ब्राह्मणकी इच्छा, ओषधि और गुरु (पूज्यजनों) के वचन—इन आठसे व्रत नहीं बिगड़ते। होमावशिष्ट खीर, भिक्षान्न, सत्तू, कण (गोरैड़ या तृणपुष्प) यावक (जौ), शाक, गोदुग्ध, दही, घी, मूल, आम, अनार, नारंगी और कदलीफल आदि खानेयोग्य हविष्य हैं।

व्रतीको तामसी वस्तुओंके सेवन, स्त्री-सम्पर्क तथा अलङ्करण एवं शृंगारके साधनोंसे सर्वथा दूर रहना चाहिये। बार-बार जल पीने, दिनमें शयन करने तथा मैथुनादि-सहवाससे व्रत दूषित हो जाता है। तात्पर्य यह है कि जैसे भी हो पवित्र रहते हुए अपने संकल्पित व्रतका अनुष्ठान करता रहे, इसीमें परम कल्याण है।

व्रतके अधिकारी

जो अपने वर्णाश्रमके आचार-विचारमें रत रहते हों, निष्कपट, निर्लोभी, सत्यवादी, सम्पूर्ण प्राणियोंका हित चाहनेवाले, वेदके अनुयायी, बुद्धिमान् तथा पहलेसे निश्चय करके यथावत् कर्म करनेवाले हों—ऐसे गुणोंसे सम्पन्न ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, स्त्री-पुरुष सभी व्रताधिकारी है।[1] केवल सौभाग्यवती पतिव्रता स्त्रियोंके लिये यह कहा गया है कि वे पतिकी आज्ञासे व्रतकी दीक्षा लें।

व्रतोंके अनेक भेदोपभेद हैं, जिन्हें मुख्यतः नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य—इन श्रेणियोंमें विभक्त किया जा सकता है। प्रायः सभी व्रतोंके आरम्भ करनेसे पूर्व भगवान्‌की पूजापूर्वक व्रतमें संकल्पित होनेके लिये आज्ञा ली जाती है तथा मानस-पूजा-युक्त प्रार्थना की जाती है। जिसे यहाँपर संक्षेपमें दिया जा रहा है। स्नानादि तथा पञ्चगव्यादिके प्राशनसे पवित्र तथा शुद्ध होकर तत्तद्व्रतोंके यथेष्ट समयोंमें—शुभ मुहूर्तमें व्रतके स्वामी देवतासे इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

'हे व्रतपते! मैं कीर्ति, संतान, विद्या आदि सौभाग्य, आरोग्य, अभिवृद्धि, निर्मलता तथा भोग एवं मोक्षके लिये इस व्रतका अनुष्ठान करता हूँ। यह श्रेष्ठ व्रत मैंने आपके समक्ष ग्रहण किया है। जगत्पते! आपके प्रसादसे इसमें निर्विघ्न सिद्धि प्राप्त हो। संतोंके पालक! इस श्रेष्ठ व्रतको ग्रहण करनेके पश्चात् यदि इसकी पूर्तिके हुए बिना ही मेरी मृत्यु हो जाय तो भी आपके प्रसन्न होनेसे वह अवश्य ही पूर्ण हो जाय। केशव! आप व्रतस्वरूप हैं, संसारकी उत्पत्तिके स्थान एवं जगत्‌को कल्याण प्रदान करनेवाले हैं, मैं सम्पूर्ण मनोरथोंकी सिद्धिके लिये इस स्थानमें आपका आवाहन करता हूँ, आप मेरे समीप उपस्थित हों। मनके द्वारा प्रस्तुत किये हुए पञ्चगव्य, पञ्चामृत तथा उत्तम जलके द्वारा मैं भक्तिपूर्वक आपको स्नान कराता हूँ। आप मेरे पापोंके नाशक हों। अर्घ्यपते! गन्ध, पुष्प और जलसे युक्त उत्तम अर्घ्य एवं पाद्य ग्रहण कीजिये, आचमन कीजिये तथा मुझे सदा सम्मानके योग्य बनाइये। व्रतोंके स्वामिन्! यह पवित्र वस्त्र ग्रहण कीजिये और मुझे सदा सुन्दर वस्त्र एवं आभूषणों आदिसे आच्छादित किये रहिये।

१- निजवर्णाश्रमाचारनिरतः शुद्धमानसः। अलुब्धः सत्यवादी च सर्वभूतहिते रतः॥
पूर्वं निश्चयमाश्रित्य यथावत्कर्मकारकः। अवेदनिन्दको धीमानधिकारी व्रतादिषु॥
(स्कन्दपुराण)

गन्धस्वरूप परमात्मन्! यह परम निर्मल उत्तम सुगन्धसे युक्त चन्दन लीजिये तथा मुझे पापकी दुर्गन्धसे रहित और पुण्यकी सुगन्धसे युक्त कीजिये। भगवन्! यह पुष्प लीजिये और मुझे सदा फल-फूल आदिसे परिपूर्ण बनाइये। यह फूलकी निर्मल सुगन्ध आयु तथा आरोग्यकी वृद्धि करनेवाली हो। संतोंके स्वामिन्! गुगुल और घी मिलाये हुए इस दशाङ्ग-धूपको ग्रहण कीजिये। धूपद्वारा पूजित परमेश्वर! आप मुझे उत्तम धूपकी सुगन्धसे सम्पन्न कीजिये। दीपस्वरूप देव! सबको प्रकाशित करनेवाले इस प्रकाशपूर्ण दीपको जिसकी शिखा ऊपरकी ओर उठ रही है, ग्रहण कीजिये और मुझे भी प्रकाशयुक्त एवं ऊर्ध्वगति (उन्नतिशील एवं ऊपरके लोकोंमें जानेवाला) बनाइये। अन्नादि उत्तम वस्तुओंके अधीश्वर! इस अन्न आदि नैवेद्यको ग्रहण कीजिये और मुझे ऐसा बनाइये जिससे मैं अन्न आदि वैभवसे सम्पन्न, अन्नदाता एवं सर्वस्व-दान करनेवाला हो सकूँ। प्रभो! व्रतके द्वारा आराध्यदेव! मैंने मन्त्र, विधि तथा भक्तिके बिना ही जो आपका पूजन किया है, वह आपकी कृपासे परिपूर्ण सफल हो जाय। आप मुझे धर्म, धन, सौभाग्य, गुण, संतति, कीर्ति, विद्या, आयु एवं मोक्ष प्रदान करें। व्रतपते! प्रभो! आप इस समय मेरे द्वारा की हुई इस पूजाको स्वीकार करके पुनः यहाँ पधारने और वरदान देनेके लिये अपने स्थानको जायँ (अग्नि० ७५। ४४—५८)।

इस प्रकार भगवदाज्ञा प्राप्तकर व्रतमें संकल्पित होना चाहिये। सामान्यतः कोई विशेष व्रतोपवास प्रारम्भ करना हो तो उसे शुभ मुहूर्तमें, शुभ समयमें प्रारम्भ करना चाहिये। व्रतकी कुछ सामान्य विधियाँ भी हैं, जिनका उपयोग विशेष व्रतोंमें किया जाना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि व्रतके आरम्भमें क्षौरादिकृत्य एवं स्नानादिसे निवृत्त होकर श्रीगणपति, मातृका और पञ्चदेव (गणेश, सूर्य, विष्णु, शिव, दुर्गा) आदिका पूजन करके व्रतदेवताकी सुवर्णमयी मूर्ति बनाकर उसे कलश आदिपर प्रतिष्ठित करे फिर पञ्चोपचार, दशोपचार या षोडशोपचारसे पूजन करे। जिस मास, पक्ष, तिथि, वार और नक्षत्र आदिमें व्रत हो, उसका अधिष्ठाता उस व्रतका उपास्य देवता होता है।

उपर्युक्त प्रकारसे (जितनी अवधिका व्रत हो उ अवधितक) यथाविधि व्रत करके उसके पूर्ण हो जाने उद्यापन करना चाहिये। व्रतीको इस बातका ध्यान रख चाहिये कि व्रतारम्भके बाद यदि क्रोध, लोभ, मोह ग आलस्यवश उसे अधूरा छोड़ दे तो तीन दिन अन्नका त्याग व पुनः व्रतारम्भ करे[२]।' व्रतमें तथा तीर्थयात्रा और श्राद्ध दूसरेका अन्न लेनेसे जिसका अन्न होता है उसीको उसका पु प्राप्त हो जाता है।

आपत्तिमें अथवा अशक्यताकी स्थितिमें व्रतादि धर्मका स्वयं न कर सके तो पति, पत्नी, पुत्र, पुरोहित, भाई या मित्र प्रतिनिधिके रूपमें कराया जा सकता है। उपर्युक्त प्रतिनि प्राप्त न हों तो यह कार्य ब्राह्मणद्वारा भी सम्पन्न हो सकता है।

व्रतोंके अनेक भेद हैं, तथापि मुख्यरूपसे इन्हें कायि वाचिक, मानसिक, नित्य, नैमित्तिक, काम्य, एकभु अयाचित, मितभुक्, चान्द्रायण और प्राजापत्यके रूपमें सम जा सकता है।

शस्त्राघात, मर्माघात और कार्यहानि आदिजनित हिंसा त्यागसे कायिक, सत्य बोलने और प्राणिमात्रमें निर्वैर रहने वाचिक तथा मनको शान्त रखनेकी दृढ़तासे मानसिक व्र होता है।

पुण्य-संचयके एकादशी आदि नित्य-व्रत, पापक्षय चान्द्रायणादि नैमित्तिक व्रत और सुख-सौभाग्यादिके 'व सावित्री' आदि काम्यव्रत कहे गये हैं। इनमें द्रव्यविशेष भोजन और पूजनादिकी साधनाके द्वारा साध्यव्रत 'प्रवृत्तिरू होते हैं और केवल उपवासादि करनेके द्वारा साध्य 'निवृत्तिरूप' हैं।

एकभुक्तव्रतके स्वतन्त्र, अन्याङ्ग और प्रतिनिधि— तीन भेद हैं। दिनार्ध व्यतीत होनेपर स्वतन्त्र 'एकभुक्त' हो है। मध्याह्नमें 'अन्याङ्ग' किया जाता है और 'प्रतिनि आगे-पीछे भी हो सकता है।

'नक्तव्रत' रातमें किया जाता है, उसमें यह विशेषता कि गृहस्थ रात्रि होनेपर उस व्रतको करे और संन्यासी त विधवा सूर्य रहते हुए करे।

२-क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभङ्गो भवेद्यदि। दिनत्रयं न भुञ्जीत शिरसो मुण्डनं भवेत्॥ (ग० पु० आ० १२८। १९)

'अयाचित' व्रतमें बिना माँगे जो कुछ मिले उसीको निषेधकाल बचाकर दिन या रातमें जब अवसर हो तभी (केवल एक बार) भोजन करे और 'मिभुक्'में प्रतिदिन दस ग्रास (या एक नियत प्रमाणका) भोजन करे। अयाचित और मितभुक् दोनों व्रत परमसिद्धि देनेवाले हैं।

चन्द्रकी प्रसन्नता, चन्द्रलोककी प्राप्ति अथवा पापादिकी निवृत्तिके लिये 'चान्द्रायण' व्रत किया जाता है। यह चन्द्रकलाके समान बढ़ता और घटता है। जैसे अमावास्याके पीछेकी शुक्ल प्रतिपदाको १, द्वितीयाको २, तृतीयाको ३, इस क्रमसे बढ़ाकर पूर्णिमाको १५ ग्रास भोजन करे। फिर पूर्णिमाके पीछेकी कृष्ण प्रतिपदाको १४, द्वितीयाको १३, तृतीयाको १२, उत्क्रमसे घटाकर चतुर्दशीको १ और अमावास्याको निराहार रहनेसे एक चान्द्रायण होता है। यह 'यवमध्य' कहा जाता है। इसका दूसरा प्रकार इस प्रकार है—अमावास्याके पीछेकी शुक्ल प्रतिपदाको १४, द्वितीयाको १३ और तृतीयाको १२ के उत्क्रमसे घटाकर पूर्णिमाको १ और पूर्णिमाके पीछेकी कृष्ण-प्रतिपदाको १, द्वितीयाको २ और तृतीयाको ३के क्रमसे बढ़ाकर अमाके पहलेकी चतुर्दशीको १४ ग्रास भोजन करे और अमाको निराहार रहे। यह चान्द्रायण है। इसको 'पिपीलिकातनु' कहते हैं।

प्राजापत्य-व्रत १२ दिनोंमें होता है। इसमें व्रतारम्भके पहले ३ दिनोंमें प्रतिदिन २२ ग्रास भोजन करे फिर ३ दिनतक प्रतिदिन २६ ग्रास भोजन करे। उसके बाद ३ दिन आपाचित (पूर्ण पकाया हुआ) अन्न २४ ग्रास भोजन करे और फिर ३ दिन सर्वथा निराहार रहे। इस प्रकार १२ दिनमें एक प्राजापत्य होता है। ग्रासका प्रमाण है जितना मुँहमें आ सके।

उपर्युक्त व्रत मास, पक्ष, तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण, समय और देवपूजासे सम्बन्ध रखते हैं। यथा-वैशाख, भाद्रपद, कार्तिक और माघ आदि मासोंके 'मास'-व्रत; शुक्ल और कृष्णपक्षके 'पक्ष'-व्रत; प्रतिपद्, एकादशी, अमा और पूर्णिमा आदिके 'तिथि'-व्रत; सूर्य, सोम और भौमादिके 'वार'-व्रत; रोहिणी, अनुराधा और श्रवण आदिके 'नक्षत्र'-व्रत व्यतीपातादिके 'योग'-व्रत; भद्रा आदिके 'करण'-व्रत; गणेश, विष्णु आदि देवताओंके व्रत- 'देव'-व्रत कहलाते हैं।

यहाँपर प्रत्येक मासमें किये जानेवाले प्रधा व्रतोंकी एक तालिका दी गयी है। व्रतोंकी पूर्ण ज्ञानादिके लिये व्रतग्रन्थों तथा पुराणों और पूजापद्ध देखना चाहिये।

१-चैत्र—संवत्सरप्रतिपदाव्रत, अरुन्धतीव्रत, स् रामनवमी, हनुमज्जयन्ती, अशून्यशयनव्रत, भर्तृद्वादशी

२-वैशाख—अक्षयतृतीया, निम्बसप्तमी, गङ्गार परशुरामजयन्ती।

३-ज्येष्ठ—वटसावित्री, निर्जला एकादशी, गङ्गादशहरा

४-आषाढ़—हरिशयनी एकादशी, स्कन्दषष्ठी, सूर्यस व्यासपूर्णिमा (गुरुपूर्णिमा)।

५-श्रावण—नागपञ्चमी, दूर्वाष्टमी, श्रावणी पूर्णिमा।

६-भाद्रपद—हरतालिका, गणेशचतुर्थी, ऋषिप मुक्ताभरणसप्तमी, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, वामनद्वा अनन्तचतुर्दशी, अगस्त्यव्रत।

७-आश्विन—उपाङ्गललिता, महालय, देवीनव विजयादशमी, शरत्पूर्णिमा।

८-कार्तिक—करवाचौथ (कर्कचतुर्थी), धनत्रयोद नरकचतुर्दशी, दीपावली, गोवर्द्धन (अन्नकूट), यमद्विती वैकुण्ठचतुर्दशी, भीष्मपञ्चक-व्रत, हरिबोधिनी, कार्ति पूर्णिमा, मनोरथपूर्णिमा।

९-मार्गशीर्ष—कालभैरवाष्टमी, दत्तजयन्ती।

१०-पौष—भद्राष्टमी, मकरसंक्रान्ति।

११-माघ—वसन्तपञ्चमी, अचलासप्तमी, भीमाष्टमी।

१२-फाल्गुन—महाशिवरात्रि, होलिका आदि।

इन सभी व्रतोपवासोंमें व्यक्तिको सात्त्विकताका आश्रय कर अपने त्रिविध तापोंको दूर करनेके लिये, अन्तःकरणक शुद्धिके लिये, विशेषतः भगवत्प्रीतिके लिये ही इनका अनुष्ठान करना चाहिये। इनके अनुष्ठानसे परम कल्याण होता है। बुद्धि निर्मल हो जाती है, विचारोंमें सत्त्वगुणका उद्रेक होता है, विवेकशक्ति प्राप्त होती है। सत्-असत्का निर्णय स्वतः होने लगता है और अन्तमें सन्मार्गमें प्रवृत्त होते हुए कर्ता या अनुष्ठाता लौकिक तथा पारलौकिक सुखोंको प्राप्त करता है। इसीलिये 'व्रतोपवासकी महिमा बताते हुए कहा गया है कि व्रतोपवासके अनुष्ठानसे पापोंका प्रशमन होता है, ईप्सित

है, देवताओंका आश्रयण प्राप्त होता है। त प्रसन्न होते हैं और वे अपने अभीष्ट ते हैं, इसमें कोई संदेह नहीं। जो व्यक्ति निर्दिष्ट विधिसे व्रतोपवासका अनुष्ठान करते हैं, वे संसारमें सभी दुःखोंसे रहित होते हैं और स्वर्गलोकमें ऐश्वर्यका भोग करते हुए देवताओंद्वारा सम्मान प्राप्त करते हैं।'

दान

नमें दानका अत्यधिक महत्त्व बतलाया प्रकारका नित्यकर्म है। मनुष्यको प्रतिदिन करना चाहिये—

देयम्, ह्रिया देयम्, भिया देयम्'

द्धासे दे अथवा लज्जासे दे या भयसे दे, ो प्रकार अवश्य देना चाहिये। मानवजातिके आवश्यक है। दानके बिना मानवकी उन्नति है। इस प्रसङ्गमें एक कथा आती है—एक य और असुर तीनोंकी उन्नति अवरुद्ध हो ब पितामह प्रजापति ब्रह्माजीके पास गये और करनेके लिये उनकी प्रार्थना करने लगे। तीनोंको मात्र एक अक्षरका उपदेश स्वर्गमें भोगोंके बाहुल्यसे भोग ही माना गया है, अतः देवगण कभी वृद्ध न य-भोग भोगनेमें लगे रहते हैं। उनकी इस रकर प्रजापतिने देवताओंको 'द' के द्वारा मनका उपदेश दिया। ब्रह्माके इस उपदेशसे कृतकृत्य मानकर उन्हें प्रणाम कर वहाँसे

वसे ही हिंसा-वृत्तिवाले होते हैं, क्रोध और का व्यापार है, अतएव प्रजापतिने उन्हें इस के लिये 'द' के द्वारा जीवमात्रपर 'दया' दिया। असुरगण ब्रह्माकी इस आज्ञाको से चले गये।

योनि होनेके कारण, सदा लोभवश कर्म ग्रहमें ही लगे रहते हैं। इसलिये प्रजापतिने 'द' के द्वारा उनके कल्याणके लिये 'दान' किया। मनुष्यगण भी प्रजापतिकी आज्ञाको -मनोरथ होकर उन्हें प्रणामकर वहाँसे चले त्रको अपने अभ्युदयके लिये दान अवश्य करना चाहिये।

विभवो दानशक्तिश्च महतां तपसां फलम्।

विभव और दान देनेकी सामर्थ्य अर्थात् मानसिक उदारता—ये दोनों महान् तपके ही फल हैं। विभव होना तो सामान्य बात है। यह तो कहीं भी हो सकता है, पर उस विभवको दूसरोंके लिये देना यह मनकी उदारतापर ही निर्भर करता है, जो जन्म-जन्मान्तरकें पुण्य-पुञ्जसे प्राप्त होता है।

महाराज युधिष्ठिरके समयकी एक घटना है—किन्हीं ब्राह्मण देवताके पिताका देहान्त हो गया। उनके मनमें यह भाव आया कि मैं अपने पिताका दाह-संस्कार चन्दनकी चितापर करूँ। पर उनके पास चन्दनकी लकड़ीका सर्वथा अभाव था। वे राजा युधिष्ठिरके पास गये और उन्होंने उनसे सारा वृत्तान्त बताकर पिताके दाह-संस्कारके निमित्त चन्दन-काष्ठकी याचना की। महाराज युधिष्ठिरके पास चन्दन-काष्ठकी कोई कमी नहीं थी तथा ऐसे समय वे उन ब्राह्मणको देना भी चाहते थे, परंतु उस समय अनवरत वर्षा होनेके कारण सम्पूर्ण काष्ठ भीग चुके थे। गीली लकड़ीसे दाह-संस्कार नहीं हो सकता था अतः उन्हें वहाँसे निराश लौटना पड़ा। इसके अनन्तर वे इसी कार्यके निमित्त राजा कर्णके पास पहुँचे। राजा कर्णके सामने भी ठीक वही परिस्थिति थी। अनवरत वर्षाके कारण सम्पूर्ण काष्ठ गीले हो चुके थे। परंतु ब्राह्मणको पितृ-दाहके लिये चन्दनकी सूखी लकड़ीकी आवश्यकता थी। कर्णने यह निर्णय लिया कि उनका राज्यसिंहासन चन्दनकी लकड़ीसे बना हुआ है, जो एकदम सूखा है। अतः उन्होंने कारीगरोंको बुलाकर सिंहासनसे काष्ठ निकालनेका तत्काल आदेश दे दिया और इस प्रकार उन ब्राह्मणके पिताका दाह-संस्कार चन्दनकी चितापर सम्पन्न हो सका। चन्दनके काष्ठका सिंहासन महाराज युधिष्ठिरके पास भी था, पर यह सामयिक ज्ञान और मनकी उदारता उन्हें प्राप्त न थी, जिसके कारण वे इस दानसे वञ्चित

रह गये और यह श्रेय कर्णको ही प्राप्त हो सका। इसीलिये कर्णको दानवीरकी उपाधि भी प्राप्त हुई।

शास्त्रोंमें दानके लिये स्थान, काल और पात्रका विस्तृत विचार किया गया है। दान किसी शुभ स्थानपर अर्थात् तीर्थ आदिमें शुभकालमें, अच्छे मुहूर्त्तमें सत्पात्रको देना चाहिये। यद्यपि यह विचार सर्वथा उचित है, परंतु अनवसरमें भी यदि अवसर प्राप्त हो जाय तो भी दानका अपना एक वैशिष्ट्य है—जिस पात्रको आवश्यकता है, जिस स्थानपर आवश्यकता है और जिस कालमें आवश्यकता है, उसी क्षण दान देनेका एक अपना विशेष महत्त्व है। विशेष आपत्तिकालमें तत्क्षण पीड़ित समुदायको अन्न, आवास, भूमि आदिकी जो सहायता प्रदान की जाती है, वह इसी कोटिका दान है। यह दान व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों प्रकारसे होता है। शास्त्रों तथा पुराणोंमें दानके विभिन्न स्वरूप वर्णित हैं—

(१) दैनिक जीवनमें जिस प्रकार व्यक्तिके द्वारा और सत्कर्म सम्पन्न होते हैं उसी प्रकार दान भी नित्य-नियमपूर्वक करना चाहिये। इस प्रकारके दानमें अन्न-दानका विशेष महत्त्व बताया गया है।

(२) विभिन्न पर्वोंपर तथा विशेष अवसरोंपर जो दान दिये जाते हैं उन्हें नैमित्तिक दान कहते हैं, शास्त्र-पुराणोंमें इसकी विस्तारपूर्वक व्यवस्था बतायी गयी है। जैसे सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहणके समय ताम्र अथवा रजतपात्रमें काले तिल, स्वर्ण तथा द्रव्यादिका दान। एकादशी, अमावास्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति तथा व्यतीपात आदि पुण्यकालमें विशेष रूपसे दानका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। इनमें अन्नदान, द्रव्यदान, स्वर्णदान, भूमिदान तथा गोदान आदिका विशेष महत्त्व है।

(३) वेद-पुराणोंमें कुछ ऐसे दानोंका भी वर्णन है, जो मनुष्यकी कामनाओंकी पूर्तिके लिये किये जाते हैं, जिनमें तुलादान, गोदान, भूमिदान, स्वर्णदान, घटदान आदि अष्ट, दश तथा षोडश महादान परिगणित हैं।—ये सभी प्रकारके दान काम्य होते हुए भी यदि निःस्वार्थभावसे भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त करनेके निमित्त भगवदर्पण-बुद्धिसे किये जायँ तो वे ब्रह्मसमाधिमें परिणत होकर भगवत्प्राप्ति करानेमें विशेष सहायक सिद्ध हो सकेंगे।

(४) कुछ दान बहुजनहिताय, बहु[...] भावनासे सर्वसाधारणके हितमें करनेकी परम्परा है[...] विद्यालय, औषधालय, भोजनालय (अन्नक्षेत्र), गोशाला, धर्मशाला, कुएँ, बावड़ी, ताल[...] सर्वजनोपयोगी स्थानोंका निर्माण आदि कार्य यदि[...] द्रव्यसे बिना यशकी कामनासे भगवत्प्रीत्यर्थ कि[...] परमकल्याणकारी सिद्ध होंगे।

सामान्यतः न्यायपूर्वक अर्जित किये हुए धन[...] बुद्धिमान् मनुष्यको दान-कार्यमें ईश्वरकी प्रसन्न[...] लगाना चाहिये।

न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन धीम[...]
कर्तव्यो विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव[...]

(स[...]

अन्यायपूर्वक अर्जित धनका दान करनेसे कोई[...] होता। यह बात '**न्यायोपार्जितवित्तस्य**' इस वचनसे[...] है। दान देनेका अभिमान तथा लेनेवालेपर किसी[...] उपकारका भाव न उत्पन्न हो, इसके लिये इस[...] कर्तव्य पदका प्रयोग हुआ है। अर्थात् 'धनका इत[...] दान करना' यह मनुष्यका कर्तव्य है। मानवका मु[...] है—ईश्वरकी प्रसन्नता प्राप्त करना। अतः दानरूप[...] पालन करते हुए भगवत्प्रीतिको बनाये रखना भी[...] है। इसीलिये '**कर्तव्यो विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव**[...] शब्दोंका प्रयोग किया गया है। यदि किसी व्यक्तिके[...] हजार रुपये हों, उसमेंसे यदि उसने एक सौ रुपये दान[...] तो बचे हुए ९०० रुपयोंमें ही इसका ममत्व और[...] रहेगी। इस प्रकार दान ममता या आसक्तिको कम[...] अन्तःकरणकी शुद्धिरूप प्रत्यक्ष (दृष्ट) फल प्रदान[...] और शास्त्र-प्रमाणानुसार वैकुण्ठलोककी प्राप्तिरूप[...] (अदृष्ट) फल भी प्रदान करता है।

देवीभागवतमें तो यह स्पष्ट कहा गया है कि[...] उपार्जित धनद्वारा किया गया शुभ कर्म व्यर्थ है। इस[...] इहलोकमें कीर्ति ही होती है और न परलोकमें कोई[...] फल ही मिलता है।

अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येण सुकृतं कृतम्।
न कीर्तिरिह लोके च परलोके च तत्फलम्॥

(देवीभागवत ३।१२।८)

उपार्जित धनके दशमांशका दान करनेका यह विधान ान्य कोटिके मानवोंके लिये किया गया है, पर जो व्यक्ति वशाली, धनी और उदारचेता हैं, उन्हें तो अपने उपार्जित को पाँच भागोंमें विभक्त करना चाहिये।

धर्माय यशसे अर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते॥

(१) धर्म, (२) यश, (३) अर्थ (व्यापार आदि जीविका), (४) काम (जीवनके उपयोगी भोग),) स्वजन (परिवार) के लिये। इस प्रकार पाँच प्रकारके का विभाग करनेवाला इस लोकमें और परलोकमें भी नन्दको प्राप्त करता है।

यहाँ व्यापार आदि आजीविकाके लिये धनका विभाग लिये किया गया है कि जिससे जीविकाके साधनोंका ाश न हो; क्योंकि भागवतमें यह स्पष्ट कहा गया है कि ए सर्वस्व-दानसे जीविका भी नष्ट हो जाती हो, बुद्धिमान् ष उस दानकी प्रशंसा नहीं करते, क्योंकि जीविकाका साधन रहनेपर ही मनुष्य दान, यज्ञ, तप आदि शुभकर्म करनेमें र्थ होता है।

न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते।
दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः॥

जो मनुष्य अत्यन्त निर्धन हैं, अनावश्यक एक पैसा भी खर्च नहीं करते तथा अत्यन्त कठिनाईपूर्वक अपने परिवारका भरण-पोषण कर पाते हैं, ऐसे लोगोंके लिये दान करनेका विधान शास्त्र नहीं करते। इतना ही नहीं, यदि पुण्यके लोभसे अवश्य पालनीय वृद्ध माता-पिताका तथा साध्वी पत्नी और छोटे बच्चोंका पालन न करके उनका पेट काटकर जो दान करते हैं, उन्हें पुण्य नहीं प्रत्युत पापकी ही प्राप्ति होती है।

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि।
मध्वापातो विषास्वादः स धर्मप्रतिरूपकः॥

जो धनी व्यक्ति अपने स्वजन—परिवारके लोगोंके दुःखपूर्वक जीवित रहनेपर उनका पालन करनेमें समर्थ होनेपर भी पालन न कर दूसरोंको दान देता है, वह दान मधुमिश्रित विष-सा स्वादप्रद है और धर्मके रूपमें अधर्म है।

पुराणोंमें दानके सम्बन्धमें तो यहाँतक कह दिया है कि जितनेमें पेट भर जाता है, उतनेमें ही मनुष्यका अधिकार है; उससे अधिकमें जो अधिकार मानता है, वह चोर है, दण्डका भागी है।

यावद्भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

दानकी महत्ता

ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न यच्छसि। इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति॥
गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य संचयात्। स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः स्थितिः॥
दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं विदुः॥
उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम्। तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम्॥
दानोपभोगवन्ध्या या सुहृद्भिर्या न भुज्यते। पुंसां यदि हि सा लक्ष्मीरलक्ष्मीः कतमा भवेत्॥

'यदि अधिक न हो सके तो अपने भोजनके ग्रासोंमेंसे ही कुछ ग्रास याचकोंको क्यों न दिया जाय? क्योंकि इच्छानुरूप ा किसके पास कब हुआ है? कब हो सकता है? अपनी स्थितिके अनुसार ही दानकी महिमा कही गयी है और उसीमें त्व है। धन बचाकर संचय करनेसे कोई लाभ नहीं है। जलद (बादल) गण जलदान करनेके कारण ही आकाशमें ऊँचे कर विहार करते हैं और जलोंका आकर समुद्र पृथ्वीपर नीचे पड़ा हुआ एक ही जगह स्थित रहता है। जो दान प्रत्युपकार करनेवाले योग्य पात्रको उचित देश-कालमें कर्तव्य-बुद्धिसे दिया जाता है, उसे ही सात्त्विक दान कहा गया है। जैसे ाशयकी रक्षाका उपाय जलाशयके अंदर स्थित गंदे जलको बहा देना ही कहा गया है, उसी प्रकार उपार्जित धनका दान उसकी रक्षा और वृद्धिका कारण बनता है। यदि दान-भोगसे रहित और मित्रोंके द्वारा उपयोगमें न आनेवाली सम्पत्ति भी क्तिकी लक्ष्मी कही जाय तो अलक्ष्मी किसका नाम होगा?

रह गये और यह श्रेय कर्णको ही प्राप्त हो सका। इसीलिये कर्णको दानवीरकी उपाधि भी प्राप्त हुई।

शास्त्रोंमें दानके लिये स्थान, काल और पात्रका विस्तृत विचार किया गया है। दान किसी शुभ स्थानपर अर्थात् तीर्थ आदिमें शुभकालमें, अच्छे मुहूर्तमें सत्पात्रको देना चाहिये। यद्यपि यह विचार सर्वथा उचित है, परंतु अनवसरमें भी यदि अवसर प्राप्त हो जाय तो भी दानका अपना एक वैशिष्ट्य है—जिस पात्रको आवश्यकता है, जिस स्थानपर आवश्यकता है और जिस कालमें आवश्यकता है, उसी क्षण दान देनेका एक अपना विशेष महत्त्व है। विशेष आपत्तिकालमें तत्क्षण पीड़ित समुदायको अन्न, आवास, भूमि आदिकी जो सहायता प्रदान की जाती है, वह इसी कोटिका दान है। यह दान व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों प्रकारसे होता है। शास्त्रों तथा पुराणोंमें दानके विभिन्न स्वरूप वर्णित हैं—

(१) दैनिक जीवनमें जिस प्रकार व्यक्तिके द्वारा और सत्कर्म सम्पन्न होते हैं उसी प्रकार दान भी नित्य-नियमपूर्वक करना चाहिये। इस प्रकारके दानमें अन्न-दानका विशेष महत्त्व बताया गया है।

(२) विभिन्न पर्वोंपर तथा विशेष अवसरोंपर जो दान दिये जाते हैं उन्हें नैमित्तिक दान कहते हैं, शास्त्र-पुराणोंमें इसकी विस्तारपूर्वक व्यवस्था बतायी गयी है। जैसे सूर्यग्रहण तथा चन्द्रग्रहणके समय ताम्र अथवा रजतपात्रमें काले तिल, स्वर्ण तथा द्रव्यादिका दान। एकादशी, अमावास्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति तथा व्यतीपात आदि पुण्यकालमें विशेष रूपसे दानका महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। इनमें अन्नदान, द्रव्यदान, स्वर्णदान, भूमिदान तथा गोदान आदिका विशेष महत्त्व है।

(३) वेद-पुराणोंमें कुछ ऐसे दानोंका भी वर्णन है, जो मनुष्यकी कामनाओंकी पूर्तिके लिये किये जाते हैं, जिनमें तुलादान, गोदान, भूमिदान, स्वर्णदान, घटदान आदि अष्ट, दश तथा षोडश महादान परिगणित हैं।—ये सभी प्रकारके दान काम्य होते हुए भी यदि निःस्वार्थभावसे भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त करनेके निमित्त भगवदर्पण-बुद्धिसे किये जायँ तो वे ब्रह्मसमाधिमें परिणत होकर भगवत्प्राप्ति करानेमें विशेष सहायक सिद्ध हो सकेंगे।

(४) कुछ दान बहुजनहिताय, बहुजनसुखायकी भावनासे सर्वसाधारणके हितमें करनेकी परम्परा है। देवालय, विद्यालय, औषधालय, भोजनालय (अन्नक्षेत्र), अनाथालय, गोशाला, धर्मशाला, कुएँ, बावड़ी, तालाब आदि सर्वजनोपयोगी स्थानोंका निर्माण आदि कार्य यदि न्यायोपार्जित द्रव्यसे बिना यशकी कामनासे भगवत्प्रीत्यर्थ किये जायँ तो परमकल्याणकारी सिद्ध होंगे।

सामान्यतः न्यायपूर्वक अर्जित किये हुए धनका दशमांश बुद्धिमान् मनुष्यको दान-कार्यमें ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये लगाना चाहिये।

न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन धीमतः।
कर्तव्यो विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव च॥

(स्कन्दपुराण)

अन्यायपूर्वक अर्जित धनका दान करनेसे कोई पुण्य नहीं होता। यह बात '**न्यायोपार्जितवित्तस्य**' इस वचनसे स्पष्ट होती है। दान देनेका अभिमान तथा लेनेवालेपर किसी प्रकारके उपकारका भाव न उत्पन्न हो, इसके लिये इस श्लोकमें कर्तव्य पदका प्रयोग हुआ है। अर्थात् 'धनका इतना हिस्सा दान करना' यह मनुष्यका कर्तव्य है। मानवका मुख्य लक्ष्य है—ईश्वरकी प्रसन्नता प्राप्त करना। अतः दानरूप कर्तव्यका पालन करते हुए भगवत्प्रीतिको बनाये रखना भी आवश्यक है। इसीलिये '**कर्तव्यो विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव च**' इन शब्दोंका प्रयोग किया गया है। यदि किसी व्यक्तिके पास एक हजार रुपये हों, उसमेंसे यदि उसने एक सौ रुपये दान कर दिये तो बचे हुए ९०० रुपयोंमें ही इसका ममत्व और आसक्ति रहेगी। इस प्रकार दान ममता या आसक्तिको कम करके अन्तःकरणकी शुद्धिरूप प्रत्यक्ष (दृष्ट) फल प्रदान करता है और शास्त्र-प्रमाणानुसार वैकुण्ठलोककी प्राप्तिरूप अप्रत्यक्ष (अदृष्ट) फल भी प्रदान करता है।

देवीभागवतमें तो यह स्पष्ट कहा गया है कि अन्यायसे उपार्जित धनद्वारा किया गया शुभ कर्म व्यर्थ है। इससे न तो इहलोकमें कीर्ति ही होती है और न परलोकमें कोई पारलौकिक फल ही मिलता है।

अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येन सुकृतं कृतम्।
न कीर्तिरिह लोके च परलोके च तत्फलम्॥

(देवीभागवत ३। १२। ८)

उपार्जित धनके दशमांशका दान करनेका यह विधान सामान्य कोटिके मानवोंके लिये किया गया है, पर जो व्यक्ति वैभवशाली, धनी और उदारचेता हैं, उन्हें तो अपने उपार्जित धनको पाँच भागोंमें विभक्त करना चाहिये।

धर्माय यशसे अर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते॥

(१) धर्म, (२) यश, (३) अर्थ (व्यापार आदि आजीविका), (४) काम (जीवनके उपयोगी भोग), (५) स्वजन (परिवार) के लिये। इस प्रकार पाँच प्रकारके धनका विभाग करनेवाला इस लोकमें और परलोकमें भी आनन्दको प्राप्त करता है।

यहाँ व्यापार आदि आजीविकाके लिये धनका विभाग इसलिये किया गया है कि जिससे जीविकाके साधनोंका विनाश न हो; क्योंकि भागवतमें यह स्पष्ट कहा गया है कि जिस सर्वस्व-दानसे जीविका भी नष्ट हो जाती हो, बुद्धिमान् पुरुष उस दानकी प्रशंसा नहीं करते, क्योंकि जीविकाका साधन बने रहनेपर ही मनुष्य दान, यज्ञ, तप आदि शुभकर्म करनेमें समर्थ होता है।

न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते।
दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः॥

जो मनुष्य अत्यन्त निर्धन हैं, अनावश्यक एक पैसा भी खर्च नहीं करते तथा अत्यन्त कठिनाईपूर्वक अपने परिवारका भरण-पोषण कर पाते हैं, ऐसे लोगोंके लिये दान करनेका विधान शास्त्र नहीं करते। इतना ही नहीं, यदि पुण्यके लोभसे अवश्य पालनीय वृद्ध माता-पिताका तथा साध्वी पत्नी और छोटे बच्चोंका पालन न करके उनका पेट काटकर जो दान करते हैं, उन्हें पुण्य नहीं प्रत्युत पापकी ही प्राप्ति होती है।

शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि।
मध्वापातो विषास्वादः स धर्मप्रतिरूपकः॥

जो धनी व्यक्ति अपने स्वजन—परिवारके लोगोंके दुःखपूर्वक जीवित रहनेपर उनका पालन करनेमें समर्थ होनेपर भी पालन न कर दूसरोंको दान देता है, वह दान मधुमिश्रित विष-सा स्वादप्रद है और धर्मके रूपमें अधर्म है।

पुराणोंमें दानके सम्बन्धमें तो यहाँतक कह दिया है कि जितनेमें पेट भर जाता है, उतनेमें ही मनुष्यका अधिकार है; उससे अधिकमें जो अधिकार मानता है, वह चोर है, दण्डका भागी है।

यावद्भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

दानकी महत्ता

ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न यच्छसि। इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति॥
गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य संचयात्। स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः स्थितिः॥
दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं विदुः॥
उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम्। तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम्॥
दानोपभोगवन्ध्या या सुहृद्भिर्या न भुज्यते। पुंसां यदि हि सा लक्ष्मीरलक्ष्मीः कतमा भवेत्॥

'यदि अधिक न हो सके तो अपने भोजनके ग्रासोंमेंसे ही कुछ ग्रास याचकोंको क्यों न दिया जाय? क्योंकि इच्छानुरूप धन किसके पास कब हुआ है? कब हो सकता है? अपनी स्थितिके अनुसार ही दानकी महिमा कही गयी है और उसीमें गौरव है। धन बचाकर संचय करनेसे कोई लाभ नहीं है। जलद (बादल) गण जलदान करनेके कारण ही आकाशमें ऊँचे रहकर विहार करते हैं और जलोंका आकर समुद्र पृथ्वीपर नीचे पड़ा हुआ एक ही जगह स्थित रहता है। जो दान प्रत्युपकार न करनेवाले योग्य पात्रको उचित देश-कालमें कर्त्तव्य-बुद्धिसे दिया जाता है, उसे ही सात्त्विक दान कहा गया है। जैसे जलाशयकी रक्षाका उपाय जलाशयके अंदर स्थित गंदे जलको बहा देना ही कहा गया है, उसी प्रकार उपार्जित धनका दान ही उसकी रक्षा और वृद्धिका कारण बनता है। यदि दान-भोगसे रहित और मित्रोंके द्वारा उपयोगमें न आनेवाली सम्पत्ति भी व्यक्तिकी लक्ष्मी कही जाय तो अलक्ष्मी किसका नाम होगा?

तीर्थ

[भगवान्‌के अवतारोंके प्राकट्य-स्थल, ब्रह्मा आदि विशिष्ट देवताओंकी यज्ञ-भूमियाँ और क्षेत्र, विशिष्ट नदियोंके संगम और पवित्र वन, पर्वत, देवखात, झील, झरने तथा प्रभावशाली संत, भक्त, ऋषि-मुनि महात्माओंकी तपःस्थलियाँ और साधनाके क्षेत्र आदि तीर्थ कहे जाते हैं। तीर्थोंमें जानेसे सत्संगके साथ-साथ वहाँके पूर्वोक्त सभी तत्त्वोंके सूक्ष्म तेजस्वी संस्कार उपलब्ध होते हैं। इससे पाप नष्ट होकर पुण्योंका संचय होता है—

प्रभावाददद्भुताद् भूमेः सलिलस्य च तेजसा। परिग्रहान्मुनीनां च तीर्थानां पुण्यता स्मृता॥

'श्रद्धा-विश्वाससे तीर्थका फल बढ़ता है। तीर्थमें जाने तथा रहनेवालेको प्रतिग्रह, काम, क्रोध, लोभ, मोह, दम्भ, परनिन्दा और ईर्ष्या-द्वेषसे बचना चाहिये। तीर्थोंमें पाप करनेसे पापकी वृद्धि होती है। अतः पापसे सर्वथा दूर रहना चाहिये।

भारतके चारों धाम और सातों पुरियोंकी भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णके जन्म एवं आवास-स्थल होनेसे तथा बदरिकाश्रम, रामेश्वरम् आदि धामोंकी नर-नारायणके तपस्या करने तथा भगवान् श्रीराम आदिद्वारा देव-स्थापन करनेसे अत्यन्त महत्ता है। गङ्गा आदि नदियाँ नाम लेनेसे ही साधकको तार देती हैं। इसी प्रकार पुष्कर, मानसरोवर आदि ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न हुए हैं और उनके द्वारा यज्ञ आदि करनेके कारण वे महान् तीर्थ हैं। जिसका शरीर और मन संयत होता है, उसे तीर्थोंका विशेष फल मिलता है। अग्नि, इन्द्र आदि देवताओंके द्वारा यज्ञ करने, कुरुके द्वारा तप करने तथा भगवान् श्रीकृष्णके गीतोपदेशसे कुरुक्षेत्रकी विशेषता हुई है।

गणपति आदि देवता एवं ऋषि-मुनि, पितर, संत, ब्राह्मणोंका स्मरण, पूजन करके तीर्थयात्राका शुभारम्भ करना चाहिये और यान आदिका आश्रय छोड़कर शुद्ध भावसे धर्माचरणको बढ़ाते हुए तीर्थोंमें निवास करना चाहिये। यहाँ पुराण-प्रसिद्ध भारतके कुछ विशिष्ट तीर्थोंका परिचय दिया जा रहा है। इनमें कुछ प्राचीन तीर्थ जिनके अब नाम बदल गये हैं, जहाँ जानेके मार्गका ठीक पता नहीं है, यथा-सम्भव उनके वर्तमान नाम और स्थल-परिचय तथा जानेके मार्गोंका भी निर्देश किया जा रहा है, जिससे पाठकोंको विशेष लाभ होगा—]

विविध तीर्थ—

नदी-रूप तीर्थ

१-देवनदी गङ्गा—तीर्थोंमें सर्वाधिक महिमा गङ्गा नदीकी है। यह हिमालयके उत्तरी भाग गङ्गोत्तरीसे निकलकर नारायणपर्वतके पार्श्वसे अनेक नामोंमें व्यक्त होती हुई ऋषिकेश, हरिद्वार, कान्यकुब्ज, कानपुर, प्रयाग, विन्ध्याचल, वाराणसी, बक्सर, पाटलिपुत्र, मुद्‌गगिरि, मंदरगिरि, अंगदेश (भागलपुर), बंगदेश आदिको पवित्र करती हुई गङ्गासागरमें मिल जाती है। इसकी महिमासे सभी पुराण, उपपुराण, वेदशास्त्र, निबन्ध, काव्य-ग्रन्थ भरे पड़े हैं। स्कन्दपुराणमें इनकी उत्पत्ति गङ्गा-दशहरा है। पुराणोंमें इन्हें विष्णुपादोद्भवा, शिवशीर्ष-निवासिनी, शन्तनुकी पत्नी, भीष्म एवं अन्य आठ वसुओंकी माता, जह्नुके द्वारा पान किये जानेके कारण जाह्नवीके नामसे प्रसिद्ध होना वर्णित है। तीनों लोकोंमें रहनेसे आकाश-गङ्गा, स्वर्ग-गङ्गा, त्रिपथगा, पातालगङ्गा, हेमवती आदि नामोंसे और भगीरथके द्वारा लाये जानेके कारण भागीरथी नामसे भी ये प्रसिद्ध हैं। पुराणोंमें इन एक-एक नामों और विषयोंसे सम्बद्ध अनेक कथाएँ प्राप्त होती हैं। सगरके साठ हजार पुत्र गङ्गा-जलके स्पर्श-मात्रसे ही तर गये थे। विस्तारसे जाननेके लिये पुराणोंमें इन प्रकरणोंको देखना चाहिये। उनमें गङ्गापर कवच, स्तोत्र, शतनाम, सहस्रनाम आदि अनेक स्तुतियाँ एवं पूजा-पद्धतियाँ भी मिलती हैं। गङ्गाजलमें कभी कीड़े नहीं पड़ते और यह कभी बासी या अपवित्र भी नहीं होता।

२-यमुना—गर्गसंहितामें, जो पुराणके लक्षणोंसे युक्त है, उसमें यमुना-कवच, स्तोत्र, पटल, पद्धति, सहस्रनाम आदि कई स्तोत्र हैं। यमुनाके मुख्य नामोंमें कालिन्दी, यमी, सूर्यपुत्री, कृष्णा, गम्भीरा, महानदी, गङ्गामिश्रा, नीलाम्बरा, वृन्दारण्यविभूषणा, माधवी आदि एक सहस्र नाम वर्णित हैं। यह हिमालयके कलिन्द पर्वतसे निकलकर यमुनोत्तरी और इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) मथुरा, आगरा आदि नगरोंको पवित्र करती हुई प्रयागमें गङ्गासे मिल जाती है। जैसे गङ्गा शन्तनुकी पत्नी अथवा शिवकी पत्नी कही गयी हैं, वैसे यमुना भगवान् श्रीकृष्णकी पत्नी कही गयी हैं। पुराणोंमें सृंजय-पुत्र सहदेवके

तथा राजा भरत और राजा युधिष्ठिरके द्वारा इनके तटपर अनेक यज्ञ करनेकी बात आती है। मान्धाता, सोमक, अम्बरीष एवं शन्तनु आदिने भी इनके किनारे अनेक यज्ञ किये थे। भरतने तो तीन सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। इन्हींके एक द्वीपमें पराशरसे सत्यवतीके पुत्र व्यास उत्पन्न हुए थे, जिन्होंने वेदोंका विस्तार किया। पद्मपुराणमें यमुनाकी महिमाका वर्णन है। इनके किनारे निगमोद्‌बोध, द्वारका, मधुवन, पुष्कर आदि अन्य तीर्थ तथा प्रयाग आदिके होनेकी बात कही गयी है। पद्मपुराणमें शिवशर्मा आदि अनेक ऐसे लोगोंकी कथाएँ आती हैं, जिन्हें यमुनामें स्नान करते ही अनेक जन्मोंकी बात याद हो गयी थी। ये सब सुन्दर कथाएँ वहीं देखनी चाहिये।

३-सरस्वती नदी—पुराणोंमें इस पवित्र नदीका अनेकधा उल्लेख हुआ है। ब्रह्मपुराण, स्कन्दपुराण, शिवपुराण, भागवतपुराण आदिमें प्रायः तीस सरस्वती नदियोंके वर्णन प्राप्त होते हैं। उनकी कथाओंके भी उल्लेख मिलते हैं। जब ब्रह्माजी पुष्करमें अपना महान् यज्ञ कर रहे थे, तो ऋषियोंकी प्रार्थनापर ब्रह्मपत्नी सरस्वती नदीके रूपमें वहाँ प्रकट हुई थीं। अत्यन्त प्रभायुक्त शरीर होनेके कारण उस समय उनका नाम सुप्रभा हुआ था। इसी प्रकार नैमिषारण्यमें जब अठासी हजार ऋषि पुराणोंकी चित्र-विचित्र कथा-वार्ता और स्वाध्यायमें रत थे, तब उनकी सहायताके लिये उनके ध्यान करनेपर सरस्वती वहाँ प्रकट हुई थीं। वहाँ उनका नाम काञ्चनाक्षी है। वे कुछ दूर प्रवाहित होकर गोमती नदीमें मिल गयी हैं। वहीं उनके प्रभावसे चक्रतीर्थका उदय हुआ है। पुराणोंके गया-माहात्म्यमें बताया गया है कि महाराज गय जब गया नगरीमें अपने महान् यज्ञका अनुष्ठान कर रहे थे, तब वहाँ उनके ध्यान करनेपर सरस्वती नदी प्रकट हो गयीं। ये गयाके ब्रह्मयोनि पर्वतके पाससे एक कुण्ड बनाती हुई फल्गु नदीमें जा मिली हैं। गयासे तीन मील दूर पक्की सड़कसे दो किलोमीटरके अन्तरपर भी सरस्वती नदी है, जिसके तटपर सरस्वती देवीका मन्दिर है।

प्रयागकी सरस्वती तो बहुत प्रसिद्ध हैं। यहाँ ये गङ्गा-यमुनाके बीचसे होकर दुर्गके नीचेसे प्रवाहित होती हुई संगम-स्थलपर गङ्गामें मिलती हैं। पुराणोंमें आता है कि एक बार समृद्धिशाली उत्तर कौशलमें सम्पूर्ण भारतके मुनियोंकी मण्डली एकत्र हुई। उन दिनों वहाँ उद्दालक मुनि महान् यज्ञ कर रहे थे। उनका कार्य सिद्ध करनेके लिये सरस्वती देवी उस देशमें आयी थीं। वहाँकी सरस्वती मनोरमा नामसे विख्यात हुईं और वे सरयू नदीमें मिली हुई हैं। कुरुक्षेत्र-माहात्म्यके अनुसार जब महात्मा कुरु कुरुक्षेत्रमें यज्ञ कर रहे थे, उस समय सरस्वती देवी अपने-आप आ गयी थीं और नदीके रूपमें प्रवाहित हो गयी थीं। ये सरस्वती नदी सुरेणुके नामसे जानी जाती हैं। वहाँ ये बहती हुई दृषद्वती नदीमें मिल जाती हैं।

कुरुक्षेत्रके पास ही पृथूदक तीर्थ है, जहाँ महाराज पृथुने महान् तपस्या की थी और विश्वामित्रने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था, वहाँ सरस्वती नदी प्रवाहित होती है, जिसके तटपर ब्रह्मयोनि, अवकीर्ण-तीर्थ, बृहस्पति-तीर्थ और ययाति-तीर्थ हैं। यहाँके ययाति-तीर्थपर महाराज ययातिने एक सौ यज्ञ किये थे और राजाकी कामनाके अनुसार सरस्वती नदीने दुग्ध, घृत और मधुको प्रवाहित किया था। यहाँ सरस्वती नदीके दोनों तटोंपर पक्के घाट बने हुए हैं और परशुरामजी, विश्वामित्र तथा वसिष्ठजीके आश्रम हैं। यहाँ सूर्य-तीर्थ, शुक्र-तीर्थ, फल्गुतीर्थ और सोमतीर्थ भी अवस्थित हैं। पुराणोंके अनुसार यह सरस्वती ओघवती नामसे विख्यात हैं।

भागवत एवं अन्य पुराणोंके अनुसार जब ब्रह्माजीने पुण्यमय हिमालयपर महान् यज्ञ किया था तब सरस्वती देवी विमलोदका नामसे वहाँ प्रकट हुई थीं। भागवतमें उन्हें प्राची सरस्वती भी कहा गया है। फिर सातों सरस्वतियाँ[१] एकत्र होकर वहाँ पहुँचीं। इसलिये उसे सप्तसारस्वत-तीर्थकी उपाधि प्राप्त हुई। दूसरा सप्त-सारस्वततीर्थ कुरुक्षेत्रकी सीमाके भीतर भी है, जहाँ मंकणक मुनिको सिद्धि प्राप्त हुई थी। मंकणकका चरित्र पुराणोंमें बहुत विख्यात है। एक बार उनका हाथ कुशके अग्रभागसे छिद गया था। वहाँसे रक्त न बहकर शाकका रस प्रवाहित होने लगा, जिसे देखकर वे आनन्दमग्न होकर नृत्य करने लगे थे। उनका प्रभाव इतना अधिक था कि उनके तेजसे मोहित होकर समस्त स्थावर, जङ्गम प्राणी भी नृत्य करने लगे थे। इससे देवता लोग घबरा

१-सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विशाला, मनोरमा, ओघवती, सुरेणु और विमलोदका ये सरस्वती नदियोंके सात नाम हैं।

गये और व्याकुल होकर भगवान् शंकरसे प्रार्थना करने लगे कि इनके नृत्यसे पागल होकर तीनों लोक नष्ट हो सकते हैं। समस्त संसार नाचते-नाचते मरणासन्न हो रहा है, अतः आप कोई उपाय करें। तब भगवान् शंकरने ब्राह्मणका रूप धारण कर उनसे पूछा कि आप किस आनन्दातिरेकके कारण उन्मत्त होकर नृत्य कर रहे हैं। इसपर मंकणकने कहा कि 'देखते नहीं कि मेरे हाथसे शाकका रस चू रहा है?' इसपर शंकरजीने 'इधर देखिये!' ऐसा कहकर अपने अँगूठेको जोरसे पटका, जिससे बर्फके समान सफेद भस्म झरने लगा। यह देखकर मंकणक भगवान् शंकरको पहचान गये और उनके चरणोंपर गिरकर उनकी स्तुति करने लगे। फिर शंकरजीको सप्तसारस्वत तीर्थमें निवास करनेको कहा।

भगवान् शंकरके 'तथास्तु' कहनेपर यह तीर्थ महान् महिमामय हो गया। इसी प्रकार देवल, जैगीषव्य, दधीचि आदिके आश्रमोंपर सरस्वतीके आनेकी कथा पुराणोंमें प्राप्त होती है। सरस्वती नदीके एक पुत्रका भी वर्णन पुराणोंमें मिलता है, जो दधीचि ऋषिके पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुआ था। उसका नाम भी सारस्वत था। उसने सभी मुनियोंको वेद-पुराण पढ़ाये। एक बार सारस्वतने बारह वर्षके अकालको दूरकर संसारको सस्य-सम्पन्न बनाया था। सारस्वत-वंशमें उत्पन्न पंजाबके ब्राह्मणोंकी एक शाखा आज भी सारस्वतब्राह्मण कहलाती है।

इस प्रकार अन्य भी अनेक सरस्वती नदियोंका वर्णन पुराणोंमें प्राप्त होता है, जिनका उल्लेख विस्तारभयसे नहीं किया जा रहा है। वस्तुतः सरस्वती ब्रह्म-प्रिया, ज्ञानदेवी हैं, जिन्हें नदीके रूपमें पुराणोंमें वर्णनका विषय बनाया गया है।

४-नर्मदा—जिस प्रकार गङ्गा-यमुना आदि नदियोंके कवच, पटल, पद्धति, शतनाम, सहस्रनाम आदि स्तोत्र प्रसिद्ध हैं, वैसे नर्मदा नदीके भी सभी प्रकारके स्तोत्र प्राप्त हैं। स्कन्दपुराणका सम्पूर्ण रेवाखण्ड इन्हींके प्रतिपादनमें पर्यवसित होता है। जैसे गङ्गाजीको शन्तनुकी पत्नी कहा गया है, वैसे ही ये राजा पुरुकुत्सकी पत्नी और त्रसद्दस्युकी माता थीं। ये भगवान् शंकरकी पत्नी भी कही गयी हैं। रेवाखण्डके अनुसार चन्द्रवंशीय राजा हिरण्यतेजाके तपसे इनका पृथ्वीपर अवतरण हुआ। ये विन्ध्यपर्वतके पुत्र पर्यङ्कगिरि अथवा अमरकंटकसे निकल कर पश्चिमकी ओर बहती हुई १२०० किलोमीटर चलकर अरब समुद्रमें गिरती हैं। जहाँ इनके मुहानेपर भरुच या भड़ौच नामका क्षेत्र स्थित है। इसे भृगुक्षेत्र भी कहते हैं यहाँ राजा बलिने दस अश्वमेध यज्ञ किये थे। यह नर्मदा-तटपर पचपन तीर्थ प्रसिद्ध हैं, जिनमें शंखोद्धार दशाश्वमेध, धूतपाप, कोटीश्वर, ब्रह्मतीर्थ, भास्करतीर्थ गौतमेश्वर आदि विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं।

इसके कुछ पूर्व करनाली और नर्मदा नदीका संगम है जहाँ चन्द्रमाने घोर तप किया था। इसे सोमेश्वर-तीर्थ भी कहा जाता है। नर्मदाके तटपर ओंकारेश्वर, केदारेश्वर, मंडला ब्रह्माण्डघाट, होशंगाबाद, बागदासंगम आदि कई मुख्य तीर्थ हैं। कहा जाता है कि 'सरस्वतीमें तीन दिन और यमुनामें सात दिन तथा गङ्गामें एक दिन स्नान करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है, परंतु नर्मदाके तो दर्शनमात्रसे ही व्यक्ति पवित्र हो जाता है।'—

त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम्।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम्॥

(मत्स्यपु०, अध्याय १८६। ११)

पुराणोंके अनुसार वृत्रासुर और इन्द्रका युद्ध इसी नर्मदाके तटपर हुआ था। भागवतके अनुसार श्रीकृष्ण और रुक्मिणीके भ्राता रुक्मकके युद्धका स्थान भी यही है। मत्स्यपुराणमें १८६ से १९४ तकके अध्याय नर्मदा-माहात्म्यसे ही सम्बद्ध हैं। रत्नोंकी खान वैदूर्य पर्वत नर्मदा नदीके आरम्भिक भागपर है। पुराणोंके अनुसार इसीके तटपर राजा शर्यातिका यज्ञ हुआ था। अग्निदेवकी उत्पत्ति भी नर्मदाभूमिमें ही है।

५-गोदावरी—गङ्गा, यमुना, नर्मदा एवं सरस्वतीके भाँति गोदावरीपर भी पुराणोंमें पर्याप्त विवरण मिलता है इसके अनेक स्तोत्र भी उपलब्ध हैं। ब्रह्मपुराणमें एकत्र १३[illegible] अध्यायोंमें इस नदीकी चर्चा हुई है। पुराणोंके अनुसार मध्य-प्रदेशके नासिक नगरसे तीस किलोमीटर पश्चिम ब्रह्मगिरि पर्वतसे निकलकर प्रायः १८०० किलोमीटरतक प्रवाहित होकर यह मछलीपत्तनम् नरसापुरके उत्तर और राजमहेन्द्रीसे सत्तर किलोमीटर पूर्व सात भागोंमें विभक्त होकर सप्त-गोदावरीके नामसे वंग-सागरमें प्रविष्ट हो जाती है महर्षि गौतमने शंकरजीकी कृपासे इन्हें पृथ्वीपर अवतरित

स्कन्दपुराणके अनुसार शिप्राको भगवान्‌के स्वेदबिन्दुसे उत्पन्न माना गया है। बृहस्पतिके सिंहराशिमें आनेपर इसके तटपर कुम्भका मेला लगता है। यहाँ सोमतीर्थ, देवप्रयाग, योग-तीर्थ, कपिलाश्रम, दशाश्वमेध, खरगता नदीका संगम, पापमोचनतीर्थ, व्यासतीर्थ और नौ नद-तीर्थ आदि हैं। काफी दूरतक आगे बहकर यह नर्मदा नदीमें मिल जाती है।

१०-इक्षुमती—कपिलदेवजीका आश्रम इसी नदीके तटपर स्थित था। यह नदी हिमालय पर्वतसे निकलकर कुमायूँ, रुहेलखण्ड आदि जनपदोंसे प्रवाहित होती हुई कान्यकुब्ज या कन्नौज नगरके पास गङ्गामें मिल जाती है। इसे उर्दूमें इख्तन नदी कहा गया है। उत्तरप्रदेशके लोग इसे काली नदी कहते हैं। वाल्मीकिरामायण (२। ६९। १७)में वर्णन आता है कि जब वसिष्ठजीके दूत भरतजीको बुलाने गये थे तो रास्तेमें यह नदी उन्हें मिली थी और उसे पारकर कैकय देशमें पहुँचे थे।

११-पयोष्णी—यह पैनगङ्गा नामकी वर्तमान नदी विन्ध्यपर्वतसे निकलकर दक्षिणकी ओर बहती हुई अनेक ग्रामों, नगरोंको पवित्र करती हुई गोदावरीमें मिलती है। इसमें स्नान करनेका बहुत महत्त्व है। इसीके तटपर मेघङ्कर तीर्थ है, जिसे भगवान् विनायकका साक्षात् स्वरूप बताया गया है।

तीर्थं मेघंकरं नाम स्वयमेव जनार्दनः ॥
यत्र शार्ङ्गधरो विष्णुर्मेखलायामवस्थितः ।

(म० पु० २२। ४०-४१)

कहा जाता है कि सृष्टिके आरम्भमें जब ब्रह्माजी यज्ञ कर रहे थे तो उनके प्रणीतापात्रके गर्म जलसे इस नदीकी उत्पत्ति हुई थी, जिससे इसका नाम पयोष्णी हुआ। नदीका तट बहुत ऊँचा है और बँधे हुए पक्के घाटके ऊपर शार्ङ्गधर भगवान्‌का भव्य मन्दिर है। इसके तटपर पिंगलेश्वरी देवी नामकी मूर्ति भी प्राचीन कालसे प्रतिष्ठित है। पुराणोंमें इसकी बहुत महिमा है। राजा नल और दमयन्तीकी कथामें इसका निरन्तर उल्लेख मिलता है। इसके तटपर वराह-तीर्थ है, जहाँ राजा नृगने यज्ञ किया था। जहाँ सोम-पानकर इन्द्र और दक्षिणा पाकर ब्राह्मण लोग आनन्दमग्न हो गये थे। अमूर्तरयाके पुत्र राजा गयने भी इसके तटपर ७ अश्वमेध यज्ञ किये थे, जिससे इन्द्र परम प्रसन्न हो गये थे।

१२-गण्डकी—गङ्गा-यमुनाके समान ही इस नदीपर भी कई स्तोत्र हैं और इसके कई नाम भी हैं। यह नदी हिमालयके धौलगिरिके एकमात्र नारायण पर्वतसे सप्तगङ्गा या सप्तगण्डक नामक स्थानसे प्रकट होकर मुक्तिनाथ, भैरहवा आदिसे प्रवाहित होकर सोनपुर पटनाके पास गङ्गा नदीमें मिल जाती है। भगवान् विष्णुके गण्डस्थलके स्वेदसे प्रकट होनेके कारण इसका नाम गण्डकी हुआ—

गण्डस्वेदोद्भवा यत्र गण्डकी सरितां वरा ॥
भविष्यति न संदेहो यस्या गर्भे भविष्यति ।

(वराहपु० १४४। १२२-२३)

इसके ऊपरी भागमें सुवर्णमिश्रित शालग्राम मिलते हैं, इसलिये इसे हिरण्यवती भी कहते हैं। इसका अधिकांश भाग नेपालमें पड़ता है। भागवत एवं ब्रह्माण्डपुराणमें बलरामजीकी तीर्थयात्रा-प्रसंगमें यहाँ जानेका तथा इसकी विशेष महिमाका उल्लेख हुआ है। पुराणोंमें इसे गङ्गाकी सात धाराओंमेंसे एक माना गया है। जरासंध-वधके समय कृष्ण, अर्जुन, भीमसेन आदि इसमें सादर स्नान करके पार हुए थे। पुराणोंके अनुसार इसमें यात्रा तथा स्नान करनेवालेको अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है, अन्तमें वह सूर्यलोकको प्राप्त करता है। इसके जलमें भगवान्‌का निवास है।

१३-तमसा—इस नामकी भारतमें कई नदियाँ हैं। एक हिमालयसे निकलकर अयोध्याके दक्षिण ओरसे बहती है,जहाँ महाराज दशरथने सैकड़ों यज्ञ किये थे। दूसरी नदी ऋक्ष पर्वतसे निकलकर चित्रकूटके बगलसे बहती हुई वाराणसी और प्रयागके बीचमें गोपीगंजसे कुछ दूर भीटी नामक स्थानमें गङ्गामें मिल जाती है। महर्षि वाल्मीकिका आश्रम वहींपर था और उन्होंने वाल्मीकि-रामायणकी रचना यहीं की थी। पुराणोंमें इसका जल बहुत पवित्र माना गया है। तुलसीदासके अनुसार लव-कुशका जन्म यहींपर हुआ था और वनवासके समय सीता भी यहींपर रहीं और उन्होंने जो वट लगाया उसे सीतावट कहा जाता है। तीसरी तमसा हरिद्वारके नीचेसे बहकर कानपुरके पास गङ्गामें मिलती है।

१४-सिंधु नदी—इस नामकी भी भारतमें कई नदियाँ हैं, जो बड़ी सिंधु, छोटी सिंधु, काली सिंधु आदि नामोंसे विभाजित होती हैं। ऐतिहासिक लोग बड़ी सिंधुके नामसे ही

भारतका हिन्दुस्तान या इंडिया नाम मानते हैं, क्योंकि इसे पश्चिमके लोग हिंद और इण्डस कहते हैं। पुराणोंमें आता है कि यह नदी वरुण-सभामें रहकर उनकी उपासना करती है। भागवतके अनुसार मार्कण्डेयजीको यहींपर भगवान्‌के दर्शन हुए थे। इसे भी गङ्गाकी सात धाराओंमें एक तथा अग्निका उत्पत्ति-स्थान माना गया है। यह हिमालय पहाड़के पश्चिम भागसे निकलकर प्रायः दो हजार किलोमीटर लम्बी और अन्तमें छः किलोमीटरकी चौड़ाईके रूपमें अरब सागरमें मिल जाती है। दूसरी सिंधु काली सिंधु या काली नदी अथवा निर्विन्ध्याके नामसे कही जाती है। यह नदी शुक्तिमान् पर्वतसे निकलकर विन्ध्यके बगलसे बहकर यमुनामें मिलती है। रंतिदेवकी राजधानी दशपुर या मन्दसौर नगर इसीके तटपर स्थित है, जो उनकी कीर्तिको आज भी उज्ज्वलित कर रहा है। विन्ध्यके बगलसे बहनेके कारण इसका नाम निर्विन्ध्या है और यह बहुत पवित्र मानी गयी है।

१५-कावेरी—इस नामकी भी कई नदियाँ हैं। बड़ी कावेरी कूर्मपुराण अध्याय २ के अनुसार चन्द्र-तीर्थसे प्रकट होती है। पुराणोंके अनुसार अग्नि देवताकी १६ नदी-पत्नियोंमेंसे यह भी एक है। चन्द्रतीर्थ, जहाँसे कावेरी निकली है, कर्नाटक प्रान्तके कूर्गके पास ब्रह्मगिरि पर्वतपर है। इसके तटपर श्रीरंगपट्टम्, नरसीपुर, तिरुमकुल, शिवसमुद्रम् आदि कई तीर्थ एवं नगर हैं। तिरुचिरापल्ली नगर भी इसके पश्चिम तटपर है, जहाँ रावणका भाई त्रिशिरा रहता था। श्रीरंगम्‌की जगहपर कावेरीकी दो धाराएँ हो गयी हैं और उनके मध्यमें आदिरंगम्, मध्यरंगम् और अन्तरंगम्—ये तीन द्वीप बन गये हैं। इनमें अन्तरंगम्‌को ही श्रीरंगम् कहा गया है, यहाँ भगवान् नारायणकी शेषशायी विश्वप्रसिद्ध मूर्ति है और यह वैष्णवोंका सर्वाधिक आदरणीय क्षेत्र है। यह कोलिडमके पास बंग-सागरमें मिल जाती है।

दूसरी छोटी नदी कावेरी पारियात्र पर्वतके कवेश्वर नामक स्थानसे प्रकट होकर ओंकारेश्वर मान्धाताके पास नर्मदामें मिल जाती है। कुबेरने कावेरी-नर्मदा-संगमपर ही तपस्या कर यक्षों और राज-राजाओंका आधिपत्य प्राप्त किया था। ब्रह्माण्ड, वायुपुराणके अनुसार इसे युवनाश्वकी पुत्री, जह्नुकी पत्नी और सुहोत्रकी माता कहा गया है।

१६-कृतमाला नदी—यह मलयपर्वतसे निकली हुई दक्षिण भारतकी नदी है। इसका सम्बन्ध सम्पूर्ण मत्स्यपुराणसे है। भगवान् मत्स्य पहले इसी नदीसे निकलकर राजा सत्यव्रतके हाथमें आये थे, जो इसके तटपर संध्या कर रहे थे। भागवत ५। १९। १८, १०। ७९। १६, वामनपुराण १३। ३२ और मत्स्यपुराणमें इसका बार-बार वर्णन आया है। दक्षिण भारतका मदुरई नगर इसी नदीके तटपर बसा हुआ है, जिसे दक्षिण भारतका मथुरा भी कहते हैं। इस नदीको आजकल बेगई या बेगा कहते हैं। यहाँका मीनाक्षी-मन्दिर विश्वमें प्रसिद्ध है। इसमें २७ गोपुर लगे हैं। कहा जाता है कि जब इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी थी तब यहीं स्नान कर वे मुक्त हुए थे। यहाँ कृतमालाके तटपर दूसरा दिव्य मन्दिर सुन्दरेश्वरका है, जिसपर नीलकण्ठने शिवलीलार्णव नामक ग्रन्थ लिखा है। यहाँ नटराजके सभा-मण्डपको सहस्र-स्तम्भ-मण्डप कहते हैं। बहुत पहले पाण्डुनरेशको यहीं तप करनेसे पार्वती पुत्रीके रूपमें प्राप्त हुई थीं। पिताकी मृत्युके बाद उसकी माता रानी कांचनमालाने अपनी पार्वतीरूपा पुत्री मीनाक्षीका विवाह सुन्दरेश्वरसे किया था।

१७-साबरमती—महात्मा गाँधीके साबरमती आश्रमके पास अहमदाबाद या गाँधीनगरमें बहनेवाली नदीका मूल नाम साभ्रमती है। इस नदीके भी कई नाम हैं, जैसे—चन्दना, वन्दना, नन्दना आदि। वाल्मीकि-रामायणके किष्किन्धाकाण्ड ४०। २०में भी इसका उल्लेख मिलता है। यह काश्यपी गङ्गा पद्मपुराणके अनुसार सभी रोग एवं दोषोंको हरनेवाली है। पुराणोंके अनुसार सत्ययुगमें कृतवती, त्रेतामें गिरिकर्णिका और द्वापरमें चन्दना कहलाती है। कश्यप ऋषिकी तपस्यासे प्रसन्न होकर देवाधिदेव महादेवने उन्हें यह गङ्गा प्रदान की थी।

इस नदीके किनारे जगन्नाथ-मन्दिर, भीमनाथ-मन्दिर, दधीचि-आश्रम, राधावल्लभ-मन्दिर, भद्रकाली-मन्दिर आदि स्थित हैं। यहाँ कार्तिक एवं वैशाखमें विशेष मेला लगता है। यहाँसे २० किलोमीटर दूर नैर्ऋत्य कोणमें कश्यपजीका आश्रम है, जो भद्रेश्वर नामक स्थानमें स्थित है। इस स्थानका भद्रेश्वर-मन्दिर अति प्राचीन है। अनेक नदियोंका संगम इस नदीमें हुआ है।

१८-चन्द्रभागा—कालिकापुराणमें चन्द्रभागा नदीका

माहात्म्य प्रायः ३० अध्यायोंमें प्राप्त होता है। महर्षि वसिष्ठ तथा देवी अरुन्धतीका प्रथम मिलन और परिणय इसी नदीके तटपर हुआ था। यह पंजाब प्रान्तकी मुख्य नदी है, जो वर्तमानमें चिनाव नदीके नामसे जानी जाती है। वैसे भारतवर्षमें चन्द्रप्रभा और चन्द्रभागा नामकी छोटी-बड़ी कई नदियाँ हैं। विष्णुपुराणके अनुसार यह स्थान व्रात्यों एवं म्लेच्छोंसे भरा है। कालिकापुराणके अनुसार इसके बगलमें शिप्रा नदी बहती है। चन्द्रमाका स्पर्श करनेके कारण इस नदीका जल अमृत-तुल्य माना जाता है। इस नदीका विवाह समुद्रसे हुआ था। चन्द्रमाके द्वारा अपनी गदासे पर्वतमें प्रहार करनेसे इस नदीकी उत्पत्ति हुई थी।

यहाँ ऊपर केवल १८ नदियोंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है। वैसे भारतमें प्रसिद्ध नदियोंकी संख्या प्रायः पाँच हजारसे भी अधिक है,जिनका उल्लेख विभिन्न गजेटियरों और पुराण-ग्रन्थोंमें मिलता है। विस्तार-भयसे सबका उल्लेख न कर केवल कुछ नाम लिये जाते हैं। यथा—शतद्रु (सतलज), चन्द्रभागा, दृषद्वती, विपाशा (व्यासनदी), वितस्ता (झेलम), विपापा, बाहुदा, वेत्रवती, कृष्णावेणा, इरावती (रावी), देविका, स्थूलबालुका, वेदस्मृति, वेदवती, त्रिदिवा, ईक्षुला, करीषिणी, गन्धवती, चित्रवाहा, चित्रसेना, श्वेतगङ्गा, धूतपापा, विचिता, लोहितारिणी, वैतरणी, शतकुम्भा, वेणा, भीमरथी, शतवला, नीवारा, सुप्रयोगा, कुण्डली, उरमालिनी, भीमा, नीरा, ओघवती, पाटलावती, असिक्री (चंद्रभागा), धृतवती, पुरावती, मेना, हेमा, अनुष्णा, सदावीरा, करतोया, कुशधारा, वीरमती, सुवस्त्रा, गौरी, पञ्चमी, ज्योतिरथा, विश्वामित्रा, रथचित्रा, रंजला, तुंगभद्रा, विदिशा, शोणभद्र, ब्रह्मपुत्र, फल्गु, ताम्रा, कपिला, वेदाश्वा, महापगा, भरद्वाजी, कौशिकी, कमला, चन्द्रमा, दुर्गावती, चित्रशीला, बृहद्वती, जाम्बुनदी, ब्राह्मणी, चित्रोत्पला, चित्ररथा, मन्दाकिनी, शुक्तिमती, कुमारी, रसकुल्या इत्यादि।

भारतके पवित्र कुल-पर्वत

पुराणोंके अनुसार नदियोंकी तरह पर्वतोंको भी पूज्य एवं आदरणीय बताया गया है। दक्षिण भारतके वेंकटगिरि और श्रीशैलको साक्षात् नारायणरूप माना गया है। स्कन्दपुराणमें नारायणगिरि, शालग्रामपर्वत, अरुणाचल, सिंहाचल, सुमेरु, मन्दर, हिमवान्, विन्ध्याचल, चित्रकूट, पारिजात, अञ्जनगिरि आदि सभीको भगवान्का रूप निरूपित किया गया है। विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें पर्वतोंकी पूजा-विषयक सम्पूर्ण सामग्री दी गयी है। स्कन्दपुराणमें अरुणाचल पर्वतको साक्षात् शिवका रूप कहा गया है—

तत्र देवः स्वयं शम्भुः पर्वताकारतां गतः।

(स्कन्द० अरु० मा० उत्त० ४।१२)

अरुणाचलके नीचे अरुणाचलेश्वरका मन्दिर है,जिसका गोपुर सम्पूर्ण विश्वके मन्दिरोंसे चौड़ा है और १० मंजिलसे भी अधिक ऊँचा है। परिक्रमामें चार गोपुर हैं जो १०-१० मंजिल ऊँचे हैं। इस मन्दिरके ऊपर पार्वतीजीका भी बहुत बड़ा मन्दिर है।

वेंकटगिरिपर वेंकटेश भगवान् या बालाजीका मन्दिर है। नीचे कपिल-सरोवर है, जिसमें स्नान कर प्रायः ७ किलोमीटर तक सीढ़ियों तथा पर्वतीय ऊँचाईपर सीधे चढ़ना पड़ता है। इस प्रकार १० किलोमीटरकी चढ़ाईमें सात पर्वतोंको पार करना पड़ता है। ऊपर जानेपर आकाशगङ्गा, वैकुण्ठ-तीर्थ, गोविन्दराज मन्दिरका दर्शन कर तीसरे दरवाजेमें वैकुण्ठ-प्रदक्षिणाके बाद स्वर्ण-मण्डप, सभामण्डप और जगमोहनसे चार द्वार आगे पूर्वमें खड़े बालाजीका दर्शन होता है।

व्रजमें गिरिराज पर्वतकी महत्ता भी सर्वविदित है, जिनकी पूजा स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने व्रजवासियोंके साथ की थी तथा स्वयं गिरिराजरूप धारण किया था। आज भी सहस्रों नर-नारी गिरिराज पर्वतको साक्षात् भगवद्रूप मानकर परिक्रमा और पूजन करते हैं।

इस प्रकार पर्वतोंका देवता-रूप या भगवान्का स्वरूप होना सिद्ध होता है। उनकी पूजाकी परम्परा भी सृष्टिके आरम्भसे ही चली आयी है। यहाँ कतिपय मुख्य पर्वतोंका विशेष-रूपसे परिचय दिया जा रहा है—

(१) हिमालय—यह सभी पर्वतोंका राजा है और भारतवर्षके उत्तरमें स्थित है। यह अनेक ऋषि-मुनियों एवं राजाओंकी तपःस्थली एवं गङ्गा, यमुना, सरयू, ब्रह्मपुत्र इत्यादि

नदियोंका उद्‌गम-स्थल है। धर्मात्मा पाण्डवोंका प्रारम्भिक जीवन इसी क्षेत्रमें व्यतीत हुआ और अन्तिम दिनोंमें वे यहीं गलकर पञ्चत्वको प्राप्त हुए। भगवान् शंकरका निवास-स्थान कैलास भी इसी क्षेत्रमें है। पुराणोंमें इसे पार्वतीजीका पिता कहा गया है। पुराणोंके अनुसार गङ्गा और पार्वती इनकी दो पुत्रियाँ हैं और मैनाक, सप्तशृङ्ग आदि सौ पुत्र हैं। हिमालयके क्रोडमें बदरीनाथ, केदारनाथ, मान-सरोवर आदि अनेक तीर्थ तथा शिमला, मंसूरी, दार्जिलिंग आदि श्रेष्ठ नगर हैं। यह बहुमूल्य रत्नों एवं ओषधियोंका प्रदाता है। गौरीशंकर, कंचनजंगा, एवरेस्ट , धौलागिरि, नंगापर्वत, गोसाईं-स्थान, अन्नपूर्णा आदि विशिष्ट चोटियाँ विश्वकी सर्वश्रेष्ठ चोटियोंमेंसे एक हैं।

(२) विन्ध्याचल—यह भारतका दूसरा महत्त्वपूर्ण पर्वत है, जो इसे उत्तर और दक्षिणके दो भागोंमें विभक्त करता हुआ अरावलीसे लेकर राजशाहीतक फैला हुआ है। इसमेंसे तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, क्षिप्रा, वेणा, कुमुद्वती, गौरी, दुर्गावती आदि अनेक बड़ी नदियाँ निकली हुई हैं और इसके अन्तर्गत रोहतासगढ़, चुनारगढ़, कलिंजर आदि अनेक महान् दुर्ग हैं तथा चित्रकूट, विन्ध्याचल आदि अनेक पावन तीर्थोंकी स्थिति है। पुराणोंके अनुसार इस पर्वतने सुमेरुसे ईर्ष्या रखनेके कारण सूर्यदेवका मार्ग रोक दिया था और आकाशतक बढ़ गया था, जिसे अगस्त्य ऋषिने निवृत्त किया। यह शरभंग, अगस्त्य इत्यादि अनेक श्रेष्ठ ऋषियोंकी तपःस्थली रहा है। हिमालयके समान इसका भी धर्मग्रन्थों एवं पुराणोंमें विस्तृत उल्लेख मिलता है।

(३) पारिजात—यह पर्वत सात कुल-पर्वतोंमें विशेष पवित्र है और विन्ध्यके दक्षिण-पश्चिममें स्थित है। इस पर्वतसे वेदवती, कालीसिंधु, वेत्रवती, चर्मण्वती, साभ्रमती, अवन्ती एवं शिप्रा आदि नदियाँ निकलकर पश्चिम भारतको पवित्र करती हैं। ये सभी नदियाँ मध्यभारतके पश्चिमी भाग, पश्चिम भारत और गुजरातसे विशेषरूपेण सम्बद्ध हैं। मार्कण्डेयपुराण और विष्णुपुराणके अनुसार यह पर्वत भरुक और बालव क्षत्रियोंका निवास-स्थान था। मार्कण्डेयजीको इसी पर्वतपर बालमुकुन्दका दर्शन हुआ था।

मत्स्यपुराणके अनुसार तारकासुरने इसी पर्वतकी कन्दरामें कई सौ वर्षोंतक निराहार रहकर, पञ्चाग्नि तापकर, अङ्गोंको अग्निमें हवन कर ब्रह्माजीको प्रसन्न किया था और सात दिनके बालकको छोड़कर अन्य किसीसे भी न मरनेका वर प्राप्त किया था। भगवान् श्रीरामकी वानरी सेनामें इसी पर्वतके बंदर अधिक थे ऐसा ब्रह्माण्डपुराणमें उल्लेख है। इसकी उपत्यकामें इन्दौर, देवास, गोधरा, धार, केवड़ेश्वर, पावागिरि, जैनतीर्थ, गाँधीनगर, वीरमगाँव, सुरेन्द्रनगर आदि नगर बसे हुए हैं।

(४) मलयगिरि—यह ट्रावनकोर जिलेमें दक्षिण भारतके प्रायः दक्षिणी भागमें स्थित है। इसमेंसे कृतमाला या बेगई तथा उत्पलावती नामकी दो नदियाँ निकलकर प्रवाहित होती हैं। यह मलयगिरि चोल देशसे लेकर सुदूर दक्षिणतक फैला हुआ है। यहाँका मलयगिरि-चन्दन बहुत ही प्रसिद्ध है और भगवान् विष्णुको अत्यधिक प्रिय है। महर्षि अगस्त्य इसी पर्वतपर निवास करते थे। ऐसा श्रीमद्भागवतके छठे स्कन्ध और मत्स्यपुराणके सातवें अध्यायमें वर्णित है। इसका उत्तर भाग मैसूरको स्पर्श करता है। चन्द्रगिरि पर्वत इसके दूसरी ओर है।

(५) महेन्द्राचल—महेन्द्रगिरि भारतवर्षमें दो माने जाते हैं। एक पूर्वी घाटपर तथा एक पश्चिमी घाटपर। वाल्मीकि-रामायणका महेन्द्रगिरि पश्चिमी घाटपर है। जहाँसे हनुमान्‌जी कूदकर लंका गये थे। दूसरा महेन्द्रगिरि जो पुराणोंमें वर्णित है, पूर्वीघाटके उत्तरमें है और उड़ीसाके मध्य भागतक फैला हुआ है, पुराणोंके अनुसार यह परशुरामजीका निवास-स्थान बताया गया है। इस पर्वतपर स्थित परशुराम-तीर्थमें स्नान करनेसे अश्वमेध-यज्ञका फल मिलता है। इस पर्वतके पूर्वी ढालपर युधिष्ठिरका बनवाया हुआ मन्दिर बड़ा ही आकर्षक है। थोड़ी दूर पूर्वमें ही पाण्डवोंकी माता कुन्तीका मन्दिर है। यहींपर गोकर्णेश्वर मन्दिरकी स्थिति है। पुराणोंके अनुसार लाङ्गूलिनी, ऋषिकुल्या, ईक्षुधरा आदि नदियाँ निकली हुई हैं, जिससे यह लगता है कि यह पर्वत और पश्चिमतक फैला हुआ है। क्योंकि ऋषिकुल्या जिसे रासकोइल कहा गया है, वह नदी दक्षिण-पूर्वसे बहकर सोन नदीमें मिलती है। वायुपुराण, मत्स्यपुराण, भागवतपुराण, ब्रह्माण्डपुराण आदिमें इसका अनेकधा उल्लेख किया गया है।

(६) शुक्तिमान्—इस पर्वतका नाम शक्ति पर्वत है जो मध्य-प्रदेशके रायगढ़ नामक नगरसे लेकर बिहारके मानभूमके डालमा पर्वततक फैला हुआ है। इसमें अब बहुतसे औद्योगिक नगर विकसित हो गये हैं। यह विन्ध्याचल पर्वतके दक्षिणसे लेकर बीचसे उसे काटता हुआ सुदूर पूर्वतक चला गया है। इसीकी उपत्यकामें हीराकुंड, सुन्दरगढ़, रावलकिला, चाईबासा आदि स्थान तथा औद्योगिक नगर बसे हुए हैं। इस पर्वतसे निकलनेवाली नदियोंमें काशिका, शुक्तिमती, मन्दगा, कुमारी आदि मुख्य हैं। पुराणोंमें इसका वर्णन भी यथास्थान प्राप्त होता है।

(७) चित्रकूट—पुराणों एवं भारतीय धर्मग्रन्थोंमें चित्रकूट पर्वतकी महिमा अनेक रूपोंमें वर्णित की गयी है। महर्षि वाल्मीकिने कहा है कि जबतक मनुष्य चित्रकूटके शिखरोंका अवलोकन करता रहता है, तबतक वह कल्याण-मार्गपर चलता रहता है तथा उसका मन पापकर्ममें नहीं फँसता—

यावता चित्रकूटस्य नरः शृङ्गाण्यवेक्षते।
कल्याणानि समाधत्ते न पापे कुरुते मनः॥

(वा० रा० २। ५४। ३०)

यद्यपि चित्रकूट स्वयं एक पर्वत है, परंतु इसपर कामदगिरि नामकी एक पहाड़ी है, जहाँ स्वयं भगवान् रामने वनवासकालमें निवास किया था तथा प्रस्थान करते समय इस लघु पर्वतको वरदान भी दिया था, जिसके कारण आज भी सहस्रों नर-नारी प्रतिदिन नियमपूर्वक कामदगिरिकी परिक्रमा और पूजन करते हैं।

श्रीमद्भागवत, चतुर्थस्कन्धके प्रथम अध्यायके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और शिव—इन तीनों त्रिदेवोंको यहीं क्रमशः चन्द्रमा, दत्तात्रेय और दुर्वासाके रूपमें जन्म ग्रहण करना पड़ा था। इसी प्रकार यहाँ प्रवेश करते ही राजा नल, धर्मराज युधिष्ठिर आदिके क्लेश नष्ट हो गये थे। भगवान् श्रीरामके वनवास, नल और युधिष्ठिरकी तपश्चर्या एवं पग-पगपर पवित्र तीर्थोंकी स्थितिके कारण चित्रकूटका माहात्म्य अत्यधिक है।

विभिन्न रामायणों, पद्मपुराण, स्कन्दपुराण आदि एवं महाभारतादि ग्रन्थोंमें चित्रकूटका अमित माहात्म्य तथा परम रम्य वर्णन उपलब्ध होता है। यहाँपर अत्रिका आश्रम, कामदगिरि, भरतकूप, सीता-रसोई, हनुमानधारा, राघव-प्रयाग, कोटितीर्थ, प्रमोदवन, जानकीकुण्ड, सिरसावन, स्फटिक-शिला, अनसूयाजी, गुप्त गोदावरी, यज्ञवेदी आदि तीर्थ एवं पवित्र स्थान विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं।

(८) ऋक्षवान्—इसका वर्णन कई पुराणोंमें प्राप्त होता है। यह अत्रिमुनिका निवासस्थल एवं उनकी तपःस्थली कहा गया है। जब प्रसेन मृगयामें गया हुआ सिंहके द्वारा मारा गया था, तब भगवान् श्रीकृष्णने इसी पर्वतपर उसकी तलाश की थी। इस पर्वतसे बिहारमें बहनेवाली सोन, उड़ीसामें बहनेवाली महानदी, चित्रकूटमें बहनेवाली मन्दाकिनी, गोंडवानामें बहनेवाली नर्मदा, भोपालसे सागरकी ओर बहकर बेतवामें मिलनेवाली दशार्णा (धसान) नदी तथा तमसा, मंजुला आदि नदियाँ निकली हुई हैं। इससे सिद्ध होता है कि चित्रकूटके पासका पर्वत जो गोंडवानातक जाकर पारिजातको स्पर्श करता है, वही ऋक्ष है। यह विन्ध्याचलसे सटे हुए दक्षिणमें स्थित एक प्रकारसे उसका मध्य भाग है। क्योंकि आजकल अरावलीसे लेकर राजशाहीतक विन्ध्याचलको माना जाता है। उसमें कई पर्वत सम्मिलित हो जाते हैं। इस पर्वतकी उपत्यकामें भोपाल, सागर, जबलपुर आदि अनेक प्रसिद्ध नगर बसे हुए हैं। इनके अतिरिक्त अन्य बहुतसे तीर्थस्थान, मन्दिर, झील, झरने आदि भी इस पर्वतमें स्थित हैं।

(९) सह्यगिरि—इस पर्वतकी महिमापर स्कन्द-पुराणका 'सह्याद्रिखण्ड' एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है। यह पर्वत पश्चिमी घाट-पर्वतके पास स्थित है, जो आज भी इसी नामसे जाना जाता है। यह भी महर्षि अगस्त्यका निवास-क्षेत्र था। दक्षिण शालग्राम, धर्मस्थल, सुब्रह्मण्य क्षेत्र, बंगलौर, यादवगिरि आदि अनेक तीर्थस्थल इसी पर्वतकी उपत्यकामें बसे हैं।

इस पर्वतका राजर्षि नहुषके जीवन-चरित्रसे विशेष सम्बन्ध रहा है। इनमें एक विशेष तीर्थ सह्यामलक तीर्थ है, जिसका विस्तृत वर्णन नरसिंहपुराणके कई अध्यायोंमें मिलता है। नरसिंहपुराणमें सप्तकुलाचल पर्वतोंके साथ इसका बार-बार उल्लेख प्राप्त होता है। प्रायः पश्चिमी घाटका पहाड़ या मलाबारका उत्तरीभाग 'सह्याचल-खण्ड' में है। शिगेल तथा

नरसिंह या नृसिंहवाड़ी क्षेत्र भी यहीं स्थित है। प्रायः सभी पुराणोंमें स्वल्प शब्दान्तरसे इस पर्वत-विशेषको और इससे जुड़े हुए अन्य क्षेत्रोंको सारी पृथ्वीमें मनोरम प्रदेश बतलाया गया है। यथा—

सह्यस्य चोत्तरे या तु यत्र गोदावरी नदी।
पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः॥

(ब्रह्मपुराण २७।४३, मार्कण्डेयपुराण ५७।३४, वायुपुराण पूर्वार्ध ४५।११२, मत्स्यपुराण ११४।३७ इत्यादि)

(१०) माल्यवान् एवं ऋष्यमूक पर्वत—वियजनगर, हम्पी एवं हास्पससे कुछ दूरीपर माल्यवान् एवं ऋष्यमूक पर्वत है, जहाँ भगवान् श्रीरामने लक्ष्मणजीके साथ वनवासका वर्षाकालीन समय व्यतीत किया था। यहाँ विरूपाक्षमन्दिर, स्फटिक-शिला, विट्ठल-मन्दिर और तुंगभद्रा नदी भी है। इसी पर्वतपर हजाराराम-मन्दिर भी है। थोड़ी ही दूरपर अंजनीपर्वत एवं पम्पा-सरोवर है।

(११) श्रीशैल या मल्लिकार्जुन पर्वत— दक्षिण भारतमें सिकन्दराबादसे द्रोणाचल जानेवाली लाइनपर करमूल स्टेशन है। वहाँसे सौ किलोमीटर दूर बीहड़ जंगलमें श्रीशैल या मल्लिकार्जुन पर्वत है। यहाँ वृक्ष नहीं हैं; किंतु भगवान् शिवका दिव्य ज्योतिर्लिङ्ग इसी पर्वतपर है, जो मल्लिकार्जुनके नामसे प्रसिद्ध है। थोड़ी दूरपर शिखरेश्वर पर्वत है, जहाँ हाटकेश्वर महादेवका मन्दिर है। थोड़ी दूरपर बिल्व-वन है। मल्लिकार्जुनपर धर्माम्बा देवीका मन्दिर दर्शनीय है।

(१२) अरुणाचलपर्वत—गोडूरसे ४० किलोमीटरकी दूरीपर अरुणाचल पर्वत है। यद्यपि यह पर्वत बहुत ऊँचा नहीं है, परंतु रमण महर्षिका आश्रम होनेसे विशेष प्रसिद्ध है। पुराणोंमें इसका अनेक रूपोंमें उल्लेख मिलता है।

(१३) रैवतगिरि—इसका वर्णन पुराणोंमें बार-बार आया है। यह बलरामजीका क्रीडाक्षेत्र रहा है। वर्तमानमें यह गुजरातप्रान्तके जूनागढ़ नगरके समीपका गिरनार पर्वत है। पुराणोंके अनुसार अर्जुनने सुभद्राका हरण यहींसे किया था। इसका एक नाम उज्जयन्त पर्वत भी है। प्रभासक्षेत्र यहाँसे बहुत निकट ही स्थित है। यहाँ भगवान् दत्तात्रेयका विशेष रूपसे निवास-स्थान कहा जाता है। यह 'सिद्ध-क्षेत्र'के नामसे प्रख्यात है। पर्वतके नीचे दामोदरकुण्ड, है, जो स्वर्णरेखा नदीको बाँधकर बनाया गया है। पर्वतकी चढ़ाई प्रायः चार किलोमीटर है, जिसमें २५०० सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। पर्वतपर चढ़नेके बाद भर्तृहरिकी गुफा मिलती है, जिसमें गोपीचन्द एवं भर्तृहरिकी मूर्तियाँ हैं। इसके आगे सोरठ-मन्दिर है।
इस पर्वतके प्रान्तमें अम्बिकाशिखर, दत्तशिखर, नेमिनाथ-शिखर, पाण्डव-गुफा, भरतवन, हनुमानधारा, जटाशंकर आदि स्थान विशेष उल्लेखनीय हैं।

(१४) कामगिरि या कामाख्या—ब्रह्मपुत्र नदीके उत्तरकी ओर आसाममें गौहाटी नगरसे कुछ दूरपर कामगिरि पहाड़ी है। यहाँ नीचे उमानन्द नामक चट्टानी टापूपर शिव-मन्दिर है। यह मन्दिर ब्रह्मपुत्र नदीके ठीक बीचोबीचमें है। पहाड़के ऊपर देवीके आनन्दाख्य तथा कामाख्या—दो मन्दिर हैं। वैसे यहाँ श्रीपीठ, ब्रह्मपीठ आदि कई पीठ हैं। इससे थोड़ी दूर आगे पर्वतके पास ही परशुराम-कुण्ड है।

(१५) रामगिरि या रामटेक पर्वत—बंगाल-नागपुर रेलवे लाईनकी एक शाखा रामटेक नामक स्थानपर जाती है, जो नागपुरसे ४० किलोमीटरकी दूरीपर है। इसीके पास रामगिरि या रामटेक पर्वत है। पुराणोंमें इसे महातीर्थकी संज्ञा देकर इसकी महत्ता प्रतिपादित हुई है। गरुडपुराण (८१।८) में **'रामगिर्याश्रमं परम्'**—ऐसा कहा गया है। पर्वतके शिखरपर भगवान् श्रीरामका मन्दिर और एक पुराना किला भी है। इसके अतिरिक्त अन्य पवित्र स्थान भी इस पर्वत-प्रान्तकी पवित्रता एवं अलौकिकता सिद्ध करते हैं।

(१६) गोवर्धन-पर्वत—मथुरासे बीस किलोमीटर उत्तर तथा बरसानेसे १८ किलोमीटर पश्चिमोत्तर गोवर्धन पर्वत है, जो वर्तमानमें छोटी पहाड़ीके रूपमें है। यह ७ किलोमीटर लंबा और २ किलोमीटर चौड़ा है। इसकी ऊँचाई बिलकुल ही कम है। इसकी परिक्रमा मात्र २० किलोमीटरकी है, जिसे श्रद्धालु भक्तजन पूर्ण करते हैं। यह पर्वत मानसी गङ्गाका उद्गम-स्थान है। परिक्रमा-मार्गमें गोविन्दकुण्ड, राधाकुण्ड, कृष्णकुण्ड, कुसुम-सरोवर आदि अनेक पवित्र कुण्ड एवं सर मिलते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने इन्द्रके कोपसे व्रजको बचानेके लिये अपनी उँगलीपर इसी पर्वतको धारण किया था। यह सुप्रसिद्ध कथा है। उस समय इसका विस्तार अधिक था।

भागवत, विष्णुपुराण आदिमें इसकी विशेष महत्ता है।

इन पर्वतोंके अतिरिक्त भारतमें अन्य भी मंगलप्रस्थ, ऋषभगिरि, कूटगिरि, कोलाचल, वारिधार, ककुब्गिरि, नीलगिरि आदि सहस्रों पर्वत हैं, जो पवित्र एवं स्मरणीय हैं परंतु विस्तारभय एवं स्थानाभावके कारण यहाँ उनकी चर्चा नहीं की जा रही है।
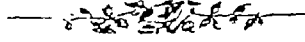
सात मोक्षदायिनी पुरियाँ

पुराणोंमें मुक्तिके पाँच मुख्य कारण बतलाये गये हैं। इनमें ब्रह्मज्ञान प्रथम हेतु है। द्वितीय है भक्तिद्वारा भगवत्कृपाकी प्राप्ति। तृतीय है अपने पुत्र-पौत्रादिकों, गोत्रजों, कुटुम्बियों तथा अन्य व्यक्तियोंद्वारा गया आदि तीर्थोंमें सम्पादित श्राद्ध-कर्म। चौथा है धर्मयुद्ध तथा गोरक्षा आदिमें हुई मृत्यु। पाँचवाँ है कुरुक्षेत्र आदि प्रधान तीर्थों और सात प्रधान मोक्षदायिनी पुरियोंमें निवासपूर्वक शरीर-त्याग। पुराणोंमें तीर्थोंके माहात्म्यको विस्तारसे बतलाया गया है। यद्यपि सभी तीर्थ उत्तम फलोंके देनेवाले एवं सेव्य हैं तथापि अपने वैशिष्ट्यके कारण ये पुरियाँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। अयोध्या, मथुरा, मायावती (हरिद्वार), काशी, काञ्ची, अवन्तिका, द्वारावती—ये सात पुरियाँ मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। इसीलिये गरुडपुराण (२।४९।११४)में कहा है—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

यहाँ इन सात पुरियोंका संक्षिप्त माहात्म्य दिया जा रहा है—

(१) अयोध्या—यह सात मोक्षदायिनी पुरियोंमें प्रथम है। 'स्कन्दपुराण'के वैष्णवखण्डके अयोध्यामाहात्म्यके अनुसार यह विष्णुके सुदर्शनचक्रपर बसी है। 'भूतिशुद्ध-तत्त्व'के अनुसार यह भगवान् श्रीरामचन्द्रके धनुषाग्रपर स्थित है। इसका आकार मछलीके समान लम्बा है और इसका मान सहस्रधारा-तीर्थसे एक योजन पूर्वतक, ब्रह्मकुण्डसे एक योजन पश्चिमतक, दक्षिणमें तमसा नदीतक एवं उत्तरमें सरयू नदीतक निर्दिष्ट है (स्कन्द वै० खं० अ० मा० १।६४।६५)। पहले ब्रह्माजीने अयोध्यामें ब्रह्मकुण्डकी स्थापना की थी। इसी प्रकार यहाँ भगवती सीताद्वारा निर्मित एक सीताकुण्ड भी है, जिसे भगवान् श्रीरामने वर देकर समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला बना दिया। इसमें स्नान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। इससे पूर्व सरयूमें ऋणमोचनतीर्थ है, जहाँ लोमशजीने विधिपूर्वक स्नान किया था। अयोध्यामें सहस्रधारासे पूर्व 'स्वर्गद्वार' है। यहाँ किया हुआ यज्ञ, हवन, दान, पुण्यादि अक्षय हो जाता है। पुराणोंके अनुसार सरयू नदीके तटपर अवस्थित यह नगर सूर्यवंशी राजाओंकी राजधानी रहा है। भगवान् श्रीरामकी जन्मभूमि होनेके कारण भी इसका महत्त्व लोकविश्रुत है।

(२) मथुरा-वृन्दावन—पुराणोंमें मथुराके मधुपुरी, मधुपुर आदि कई नाम आये हैं। वराहपुराणके तीस अध्यायोंमें इसका माहात्म्य है। नारदपुराणके उत्तरभागके ७५से ८० तकके अध्यायोंमें इसका विस्तृत वर्णन है। यह यमुना नदीके दोनों ओर बसा है। विशेष कर इसका विस्तृत भाग यमुनाके दक्षिण तटपर है। पुराणोंके अनुसार यह मुख्यतया भगवान् श्रीकृष्णकी जन्मभूमिके रूपमें विख्यात है।

(३) मायापुरी—हरिद्वार—यह पवित्र सात पुरियोंमें तीसरे स्थानपर आती है। वराहपुराणके १४५-१४६ अध्यायोंमें इसकी विशेष महिमा वर्णित है। ब्रह्माण्डपुराणके अन्तिम खण्डके चालीसवें अध्यायमें भी इसकी महिमा है। सतीदेवीकी मूर्ति एवं शक्तिपीठ होनेके कारण यह विशेष प्रसिद्ध है। कनखलसे ऋषिकेशतकका प्रान्त मायापुरी कहा जाता है। गङ्गाजी पर्वतसे उतरकर सर्वप्रथम यहीं समतल भूमिपर प्रवेश करती हैं, इसलिये इसका दूसरा नाम गङ्गाद्वार भी है। इसके दोनों ओर पवित्र तीर्थोंकी स्थिति है।

(४) काशी या वाराणसी—काशी नगरी भगवान् शंकरके त्रिशूलपर बसी हुई है। यह प्रलयकालमें भी नष्ट नहीं होती—ऐसा कहा गया है। वरुणा और असीके बीचमें स्थित होनेके कारण इसे वाराणसी भी कहा गया है। यहाँ गजघाटसे लेकर दुर्गाघाट, सिन्धियाघाट, ललिताघाट, केदारघाट, मणिकर्णिका आदि सैकड़ों घाट हैं। विश्वेश्वर लिंगस्वरूप

न्दिर, अन्नपूर्णा-मन्दिर, ज्ञानवापी, ढुण्ढिराज
डपाणि, लांगुलीश्वर, दुर्गा-मन्दिर, हनुमान-मन्दिर,
, पिशाचमोचन तथा सहस्रों अन्य मन्दिर एवं
-स्थान हैं, जो अविमुक्त क्षेत्र काशीकी शोभा बढ़ाते
ही महिमापर 'काशीरहस्य' और 'काशीखण्ड' दो
थ हैं।

काञ्ची—पेलार नदीके तटपर स्थित शिवकाञ्ची
काञ्ची—इन दो नामोंसे दो भागोंमें विभक्त यह
ा पुरी है। शिवकाञ्ची विष्णुकाञ्चीसे बड़ी है। यह
५ किलोमीटर दक्षिण-पश्चिमकी ओर स्थित है।
मुख्य मन्दिर एकाम्रेश्वर-मन्दिर है। इसमें
र, कामाख्या-मन्दिर, सुब्रह्मण्यम्-मन्दिर आदि
एवं सर्वतीर्थ-सरोवर भी है। विष्णु और काञ्चीमें
स्वामी तथा देवराज स्वामीके मन्दिर हैं, इनके
और अन्य कई मन्दिर हैं। ब्रह्माण्डपुराणमें
ो महिमा विशेष रूपसे वर्णित है।

) **अवन्तिका या उज्जैन**—उज्जैनको पृथ्वीकी
ा गया है। यहाँ महाकालका ज्योतिर्लिङ्ग और
वीका शक्तिपीठ प्रसिद्ध है। पुराणोंके अनुसार यह
राजा कार्तवीर्यकी भी राजधानी रही है। विक्रमादित्य
समयमें यह कभी सम्पूर्ण भारतकी और कभी
राजधानी रही है। स्कन्दपुराणके दो खण्ड
-माहात्म्य और अवन्तीखण्ड इसी पुरीकी महिमामें
पर्यवसित हुए हैं। उज्जैन नगर मध्य-प्रदेशकी राजधानी भोपालसे प्रायः १२५ किलोमीटर पश्चिम है। शिप्रा नदी उज्जैनके ठीक बीचोबीचसे बहती है। यहाँ बड़े गणेश, सिद्ध-वट, कालभैरव-मन्दिर, यन्त्र-महल, माधव-क्षेत्र, अंकपाद आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। अंकपादमें ही भगवान् श्रीकृष्णने सान्दीपनि ऋषिसे ३२ विद्याओं एवं ६४ कलाओंका अध्ययन किया था। इसमें बिल्वकेश्वर महादेव, रुद्र-सरोवर, नीलगङ्गासंगम, दशाश्वमेध, व्यास-तीर्थ आदि भी प्रसिद्ध हैं।

(७) द्वारका—यह चार धामोंमें भी परिगणित है। स्कन्द-पुराणका प्रभास-खण्ड इसकी महिमा-रूपमें निबद्ध है। इसके भी पहले द्वारावती, कुशस्थली आदि कई नाम रहे हैं। यह वर्तमान गुजरात प्रदेशके काठियावाड़ जिलेमें पश्चिम समुद्र-तटपर स्थित है। पुराणोंके अनुसार भगवान् श्रीकृष्णके शरीर-त्यागके बाद द्वारका समुद्रमें डूब गयी थी, फिर भी उसके कुछ अवशेष अब भी स्थित हैं। भगवान् श्रीकृष्णने अपने जीवनका अधिकांश भाग यहीं व्यतीत किया था। इनके पहले यहाँ ककुद्मीका राज्य था, जिसकी कन्या रेवतीसे बलदेवजीने विवाह किया था। प्रभासखण्डके अनुसार द्वारकाके प्रभावसे कीट-पतंग, पशु-पक्षी आदि भी मुक्त हो जाते हैं। यहाँ निष्पाप-सरोवर, रणछोड़जीका मन्दिर, श्रीकृष्ण-महल, वल्लभाचार्यकी बैठक, वासुदेव-मन्दिर, शंखोद्धारतीर्थ, नागनाथ, पिण्डारक-तीर्थ, कामनाथ, माधवपुर, नारायण-सरोवर आदि कई महत्त्वपूर्ण तीर्थ हैं।

चार धाम

) **बदरीनाथ**—स्कन्दपुराणके वैष्णव-खण्डमें प्रायः
यायोंमें बदरीनाथधामकी विस्तृत महिमा है। वैसे
ा, पद्मपुराण, श्रीमद्भागवत आदिमें भी इसकी
हिमा है। यह अनादि-सिद्ध क्षेत्र माना गया है। यह
के उत्तरदिशाका हिमालयपर स्थित पहला धाम माना
। यहाँके मन्दिरमें अलकनन्दासे थोड़ी दूरपर
-शिलामें बनी हुई बदरीनाथकी चतुर्भुज-मूर्ति है।
हिनी ओर कुबेरकी और बायीं ओर उद्धवजीकी मूर्ति
नाथके पास ही नारदशिला, वरुणशिला, कपाल-
तीर्थ, वसुधारा-तीर्थ, पञ्चतीर्थ, गङ्गा-संगम आदि
तीर्थ हैं। यहाँ शंकराचार्यका मन्दिर है। यहाँका ब्रह्मकपाल-तीर्थ, कपाल-मोचन, अलकनन्दा नदी और तप्त-कुण्ड आदि भी प्रसिद्ध तीर्थ हैं। इन सभी तीर्थोंकी विस्तृत कथाएँ स्कन्दादि पुराणोंमें वर्णित हैं।

(२) जगन्नाथपुरी—पुराणोंमें जगन्नाथजीके पुरुषोत्तम-क्षेत्र, श्रीक्षेत्र, विरजाक्षेत्र आदि अनेक नामोंके विस्तृत माहात्म्य प्राप्त होते हैं। इनमें सबसे बड़ा है स्कन्दपुराणका पुरुषोत्तम-क्षेत्र-माहात्म्य, जिसमें प्रायः ५० अध्यायोंमें इसकी महिमा वर्णित है। उसके बाद दूसरा पुराण ब्रह्मपुराण है, जिसमें प्रायः ३० अध्यायोंमें प्रारम्भसे ही इस धामका माहात्म्य है।

इसी प्रकार नारदपुराणके उत्तरभागमें भी प्रायः १५ अध्यायोंमें इसका माहात्म्य वर्णित है। गरुडपुराण, ब्रह्माण्डपुराण, अग्निपुराण और पद्मपुराणमें भी इसका माहात्म्य आया है। यह स्थान पूर्वसमुद्रके तटप्रान्तमें स्थित है और प्रसिद्ध विशाल श्रीजगन्नाथजीका मन्दिर चार महाद्वारों तथा दो परकोटोंके भीतर है। इसमें भगवान् कृष्ण, बलराम और सुभद्राकी मूर्तियाँ स्थापित हैं। कहा जाता है कि इन मूर्तियोंका निर्माण राजा इन्द्रद्युम्नके समयमें विश्वकर्माने ही किया था। यहाँ आषाढ़ शुक्ल द्वितीयाको प्रतिवर्ष महान् उत्सव होता है। चैतन्य महाप्रभुका अधिकांश, विशेषकर पिछला जीवन यहीं बीता था। पुराणोंके अनुसार यहाँ गुड़ीचा-मन्दिर, कपालमोचन, गभीरा-मठ, शंकराचार्यके गोवर्धन-मठ और भोगवर्धन-मठ, तोता गोपीनाथ और कबीरके मठ, चक्रनारायण, सुनार गौरांग-मठ, लोकनाथ महादेव-मन्दिर, बिल्वेश्वर महादेव, श्वेत माधव, नानकदेवका छोटा छत्ता, नरेन्द्र-सरोवर आदि अनेक मन्दिर और मठ हैं। यहाँसे थोड़ी दूरपर भार्गवी-मठ तथा थोड़ी दूरपर साक्षी गोपाल तीर्थ है। वहींसे थोड़ी दूरपर नीलमाधवका मन्दिर है।

(३) रामेश्वरम्—स्कन्दपुराणके सेतु-क्षेत्र-माहात्म्यमें इसकी प्रायः १०० अध्यायोंमें महिमा वर्णित है। भारतके सर्वथा दक्षिण समुद्री-तटपर रावणपर विजय प्राप्त करनेके लिये भगवान् श्रीरामके द्वारा स्थापित किया हुआ यह रामेश्वरधाम है, जो एक समुद्रके द्वीपमें स्थित है। जब यहाँ भगवान् श्रीरामने पुल बाँधा था, तब वहाँ गन्धमादन-क्षेत्रमें भगवान् शंकरकी स्थापना की थी। रामेश्वर-माहात्म्यके अनुसार श्रीरामचन्द्रजीने यहाँ इनकी स्थापनाके पहले गणेशजीकी स्थापना की। यहाँ लक्ष्मणतीर्थ, सीतातीर्थ, गन्धमादन, साक्षी विनायक आदि अनेकों तीर्थ है, जिनका माहात्म्य पुराणोंमें वर्णित है। रामेश्वरम्‌की गणना द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंमें भी है। इसकी स्थापनाकी कथाएँ भी प्राप्त होती हैं, जिन्हें द्वादश-ज्योतिर्लिङ्गोंके कथा-संग्रहमें देखना चाहिये।

(४) द्वारका—यह भी चारों धामोंमेंसे एक है। इस पावन तीर्थका वर्णन इसी लेखमें 'सात मोक्षदायिनी पुरियाँ' के अन्तर्गत आ चुका है। उसका अवलोकन वहीं किया जा सकता है।

सप्त बदरी

भगवान् नारायण सम्पूर्ण संसारके कल्याणकी कामनासे युग-युगमें बदरीनाथके रूपमें पृथ्वीपर अवस्थित रहते हैं। पञ्च केदारके समान ही ये बदरीक्षेत्र भी परम पवित्र एवं आवागमनके बन्धनोंसे मुक्त करनेवाले हैं। ये सभी क्षेत्र उत्तराखण्डमें ही हैं। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(१) आदिबदरी—पुराण एवं भारतीय अन्यान्य धर्म-ग्रन्थोंमें कम-से-कम चार स्थानोंपर आदिबदरीका उल्लेख मिलता है। बदरीनाथकी मूर्ति पहले तिब्बती क्षेत्रके धुलिंग मठमें थी। इस स्थानपर जानेके लिये वर्तमान बदरीसे बहुत दूर कष्टपूर्ण मार्ग माताघाटीको पार करना पड़ता है। यह स्थान बहुत ही रमणीक है।

(२) ध्यानबदरी—यह स्थान उरगम ग्राममें कुम्हार-चट्टीसे ६ मील दूर है।

(३) वृद्धबदरी—यह उषीमठके कुम्हारचट्टीसे ढाई मीलकी दूरीपर है।

(४) भविष्यबदरी—यह स्थान जोशीमठसे ग्यारह मीलकी दूरीपर है। वस्तुतः जोशीमठसे जो स्थान नीतीघाटी होकर कैलास जाता है, उस मार्गपर जोशीमठसे ६ मीलपर तपोवन है। यहाँ गरम जलका कुण्ड है। तपोवनसे तीन मील ऊपर जो विष्णुमन्दिर है, यही भविष्यबदरीका स्थान है। मन्दिरके पास वृक्षके नीचे एक शिला है, जिसमें ध्यानपूर्वक देखनेसे भगवान्‌की आधी आकृति स्पष्ट दिखलायी पड़ती है। कहा जाता है कि भविष्यमें भगवान्‌की वह आकृति पूरी हो जायगी। भविष्यबदरीके पास ही लाता देवीका मन्दिर और आकाशसे गिरी खड्ड है। यहाँ चौबीस वर्षोंके बाद बड़ा भारी मेला लगता है।

(५) योगबदरी—पाण्डुकेश्वरसे दो मीलकी दूरीपर योगबदरीका मन्दिर है, जिन्हें पाण्डुकेश्वर भी कहा जाता है। यह मूर्ति कुरुवंशी महाराज पाण्डुके द्वारा स्थापित है। किन्दममुनिके द्वारा शाप दे दिये जानेके बाद महाराज पाण्डुने अपनी दोनों रानियों—कुन्ती एवं माद्रीके साथ इसी स्थानपर तपस्या की थी। युधिष्ठिरादि पाँचों पाण्डवोंका जन्मस्थान भी

यही प्रदेश था, ऐसा पुराणोंमें वर्णित है। यह प्रदेश बड़ा ही पुनीत एवं रमणीक है।

(६) नृसिंहबदरी—श्रीनृसिंहबदरीका स्थान जोशी-मठमें है। यहाँ नरसिंह भगवान्‌का मन्दिर है, जिसमें शालग्राम-शिलापर अवस्थित भगवान् नरसिंहकी अद्भुत मूर्ति है। जब पुजारी नीराजनके समय दर्शन कराते हैं, तब भलीभाँति दर्शन होता है।

(७) प्रधानबदरी (बदरीनाथ)—पुराणोंमें श्रीबदरी-क्षेत्रकी महिमा अनेक स्थानोंपर उपलब्ध होती है। महाभारतके अनुसार अन्य तीर्थोंमें स्वधर्मका विधिपूर्वक पालन करते हुए मृत्यु होनेसे मुक्ति होती है, परंतु बदरीक्षेत्रके तो दर्शनमात्रसे ही मुक्ति मनुष्यके हाथ आ जाती है—

अन्यत्र मरणान्मुक्तिः स्वधर्मविधिपूर्वकात्।
बदरीदर्शनादेव मुक्तिः पुंसां करे स्थिता॥

जहाँ सनातन परमात्मा भगवान् नारायण विराजमान हैं, वहाँ सम्पूर्ण जगत् है और समस्त तीर्थ तथा देवालय हैं। बदरी ही परमतीर्थ, तपोवन और साक्षात् परात्पर ब्रह्म है। वही जीवोंके स्वामी परमेश्वर हैं, जिन्हें जानकर शास्त्ररूपी दृष्टिवाले विद्वान् शोकसे रहित हो जाते हैं—(महाभारत, वन॰ तीर्थ॰ ९०। २८-३०)।

इसी प्रकार वराहपुराणके अनुसार मनुष्य कहींसे भी बदरी-आश्रमका स्मरण करता रहे तो वह पुनरावृत्तिवर्जित वैष्णवधामको प्राप्त होता है—

श्रीबदर्याश्रमं पुण्यं यत्र यत्र स्थितः स्मरेत्।
स याति वैष्णवं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितः॥

(वराहपुराण १४१। ६७)

बदरीक्षेत्रको भी वेदोंके तुल्य अनादिसिद्ध कहा गया है। (स्कन्द॰, वै॰ बदरि॰ २। २)। श्रीबदरीनाथके माहात्म्यके लिये देवीभागवतपुराण, स्कन्दपुराणान्तर्गत वैष्णव-खण्ड, बदरीमाहात्म्य एवं वराहपुराणके १४१वें अध्याय आदिको देखना चाहिये।

पञ्च केदार

प्राचीन कालमें भगवान् शंकरने एक बार महिषका रूप धारण किया था। उनके उस महिष-रूपके पाँच विभिन्न अङ्ग कालान्तरमें पाँच स्थानोंपर प्रतिष्ठित हुए। वे ही स्थान जगत्‌में पञ्च केदारके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

(१) श्रीकेदारनाथ—प्रसिद्ध पाँचों केदार-क्षेत्र उत्तराखण्डमें ही हैं। उनमें श्रीकेदारनाथ मुख्य केदार-पीठ है। इसे प्रथम केदार भी कहा गया है। द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंके वर्णनके प्रसङ्गमें इसका विस्तृत परिचय मिलता है। इस स्थानपर महिषरूपधारी शिवका पृष्ठभाग प्रतिष्ठित है। सत्ययुगमें उपमन्युने इसी स्थानपर भगवान् शंकरकी आराधना की थी। द्वापरयुगमें यह क्षेत्र पाण्डवोंकी तपःस्थली रहा है। वस्तुतः केदारक्षेत्र अनादि है। केदारनाथमें भगवान् शंकरका नित्य सांनिध्य बताया गया है। केदारनाथमें कोई निर्मित मूर्ति नहीं है। पाँच मुखोंसे युक्त त्रिकोण एक बड़ी शिला है। यात्री स्वयं जाकर भगवान् केदारनाथकी पूजा करते हैं और उन्हें अङ्कमाल देते हैं।

(२) श्रीमध्यमेश्वर—यह द्वितीय केदार-क्षेत्र है। इन्हें मनोमहेश्वर या मदमहेश्वरके नामसे भी जाना जाता है। इस स्थानपर महिषरूपधारी भगवान् शिवकी नाभि प्रतिष्ठित है। उखीमठसे मध्यमेश्वरकी दूरी १८ मीलके लगभग है। वहाँ जानेके लिये उखीमठसे ही मार्ग जाता है। यह तीर्थ परम पवित्र एवं मोक्षदाता है, ऐसा पुराणोंमें वर्णित है।

(३) श्रीतुङ्गनाथ—इस तीर्थको तृतीय केदार-क्षेत्र कहा जाता है। यहाँपर महिषरूपधारी भगवान् शिवकी बाहु प्रतिष्ठित है। केदारनाथसे बदरीनाथ जाते समय ही श्रीतुङ्गनाथ मिलते हैं। श्रीतुङ्गनाथके मन्दिरमें शिवलिङ्ग तथा अन्य कई मूर्तियाँ हैं। यहाँ पातालगङ्गा नामक एक अत्यन्त शीतल जलकी धारा है। तुङ्गनाथके शिखरपरसे पूर्वकी ओर नन्दादेवी, पञ्चचुली तथा द्रोणाचलशिखर आदि स्पष्टरूपसे दृष्टिगोचर होते हैं।

(४) श्रीरुद्रनाथ—यहाँ महिष-रूप शिवका मुख प्रतिष्ठित है। श्रीरुद्रनाथका उल्लेख चतुर्थ केदार-क्षेत्रके रूपमें किया जाता है। श्रीतुङ्गनाथसे रुद्रनाथ-शिखर स्पष्टरूपेण

दृष्टिगत होता है।

(५) श्रीकल्पेश्वर—यह पञ्चम केदार-क्षेत्र है। यहाँ भगवान् शिवकी जटाएँ प्रतिष्ठित हैं। हेलंग (कुम्हारचट्टी) में मुख्य मार्ग छोड़कर अलकनन्दाको पुलसे पार करके छः मील जानेपर श्रीकल्पेश्वरका मन्दिर मिलता है। इस स्थानका नाम उरगम है।

पञ्च सरोवर

भगवान् ब्रह्मा एवं विष्णुके द्वारा अधिवासित एवं प्रतिष्ठित होनेके कारण कुछ सरोवर अत्यन्त पवित्रतम तीर्थोंमें परिगणित हैं। वहाँ अभिगमन एवं स्नान आदिका विशेष महत्त्व है। सरोवर तथा कुण्ड-रूप तीर्थोंमें मार्जन तथा आचमनका भी स्नानके तुल्य ही फल प्राप्त होता है। पुराणोंमें पाँच सरोवरोंको मुख्य माना गया है। यथा—

(१) मानसरोवर—पुराणोंने इस सरोवरका अत्यधिक माहात्म्य बतलाया है। यह ब्रह्माजीकी संकल्प-शक्तिसे सृष्टिके आरम्भमें निर्मित हुआ था। इससे सरयू और ब्रह्मपुत्र—ये दो बड़ी नदियाँ निःसृत हैं। यहाँ कुमुदा नामसे सतीदेवीका शक्तिपीठ है। पितरोंके श्राद्धके लिये यह तीर्थ प्रायः सर्वोत्तम माना गया है। यहाँ जप करनेसे तत्काल सिद्धि होती है। हंस पक्षी केवल इसी सरोवरमें रहते हैं।

(२) विन्दुसरोवर—भागवतादि महापुराणोंमें यह उल्लेख है कि कर्दम प्रजापतिको वर देते समय भगवान् विष्णुके नेत्रोंसे जो करुणापूरित अश्रुविन्दु गिरे, उससे यह सरोवर निर्मित हुआ। यह महर्षि कर्दमकी तपःस्थली रही है। भगवान् कपिलदेवका अवतार यहींपर हुआ था। भगवान् कपिल और उनकी माता देवहूतिकी भी यह निवासस्थली रही है। इसीलिये यह सिद्धाश्रम या सिद्धपुरके नामसे भी प्रसिद्ध है। यह सरोवर गुजरात-प्रदेशमें स्थित है।

(३) नारायण-सरोवर—पुराणोंमें 'नारायणसर' नामसे कई सरोवरोंका उल्लेख आता है जो विभिन्न क्षेत्रोंमें स्थित है। इनमेंसे दो विशेष प्रसिद्ध हैं। प्रथम पश्चिमी समुद्र-तटवर्ती नारायणसर तथा द्वितीय हिमालयमें नारायण पर्वतके चरणमें स्थित नारायण-सरोवर। यह द्वितीय सरोवर अत्यन्त महत्त्वका है। इसका जल अधिकांश समय हिमाच्छादित रहता है। ऐसी प्रसिद्धि है कि सिद्ध-महात्माओं तथा पुण्यात्माओंको ही यहाँके दर्शन सुलभ हो पाते हैं। यहाँका मार्ग दुर्गम है। गङ्गाका मूल उद्‌गम भी नारायण-सरसे ही माना गया है।

(४) पम्पा-सरोवर—पुराणोंके साथ ही रामायणमें भी इसका उल्लेख हुआ है। यह मध्य भारतमें तुंगभद्रा नदीके उत्तर और किष्किन्धाके दक्षिणी भागमें है। इसका आलंकारिक वर्णन किष्किन्धाकाण्डके आरम्भमें हुआ है। इस सरोवरके तटपर पितरोंके लिये श्राद्ध करनेका मत्स्य आदि पुराणोंमें अत्यधिक महत्त्व प्रदर्शित हुआ है।

(५) पुष्कर-सरोवर—पुराणोंमें पुष्कर-सरोवरकी अत्यधिक महिमा गायी गयी है। पद्मपुराणके सम्पूर्ण सृष्टि-खण्डमें प्रायः इसी तीर्थका माहात्म्य प्रतिपादित है। यहाँ ब्रह्माजीने विशाल यज्ञ किया था। जिस प्रकार देवताओंमें मधुसूदन श्रेष्ठ हैं, वैसे ही सरोवरोंमें पुष्कर श्रेष्ठ है। यहाँ कार्तिक-पूर्णिमाके स्नानका महत्त्व कई सौ वर्षोंतक अग्निहोत्र करनेसे भी अधिक बतलाया गया है। यह सरोवर अजमेरमें है।

सप्तक्षेत्र

भगवान्‌के अवतारके स्थान, विशिष्ट संत-महात्माओं, ऋषियों, मुनियों तथा धर्मात्मा राजर्षियोंकी निवासस्थली या तपःस्थलीको क्षेत्र भी कहा जाता है, जो पवित्र तीर्थ माने जाते हैं। पुराणोंमें ऐसे अनेक क्षेत्रोंका माहात्म्य बताया गया है, जिनमेंसे सात प्रमुख हैं, जो सप्तक्षेत्रके नामसे प्रसिद्ध हैं। आगे उन्हींका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है।

(१) कुरुक्षेत्र—प्रसिद्ध चन्द्रवंशी राजा कुरुद्वारा हल चलाकर भूमिको पवित्र कर कुरुक्षेत्रकी स्थापना की गयी थी। इसे कुरुजांगल भी कहा गया है। भागवतमें

इसे धर्मक्षेत्र कहा गया है। यह पुण्यप्रद क्षेत्र हरियाणा-प्रान्तमें है।

(२) हरिहरक्षेत्र—हरिहरक्षेत्रका माहात्म्य वराहपुराणमें विशेषरूपसे वर्णित है। कभी यहाँ महर्षि पुलस्त्यने तपस्या की थी। राजा आदिभरत (जडभरत) ने भी यहाँ रहकर तपस्या की थी। इसे पुलहाश्रम भी कहा जाता है। यहाँ गङ्गा-सरयू-सोन तथा गंडकी—इन चार नदियोंका संगम है।

(३) प्रभासक्षेत्र—यह द्वारकासे थोड़ी दूर उत्तर सौराष्ट्रमें स्थित है। स्कन्दपुराणके प्रभास-खण्डमें इस क्षेत्रका माहात्म्य बताया गया है। यह शैवों तथा वैष्णवों आदि सभीका महान् पवित्र तीर्थ है। दक्ष प्रजापतिके शापसे क्षय-रोगग्रस्त चन्द्रमाने यहाँ तपस्या कर रोगसे मुक्ति पायी थी। भगवान् श्रीकृष्णके चरणमें जरा नामक व्याधने यहीं बाण मारा था। यदुवंशियों तथा वृन्दावनकी गोपियोंका यही देहोत्सर्ग-तीर्थ माना जाता है। यहाँका गोपीचन्दन अति प्रसिद्ध है।

वायुपुराण (२।४२) में यह उल्लेख आता है कि जब सभी तत्त्वोंको प्राप्तकर भी वेदव्यासजीको आत्यन्तिकी शान्ति नहीं हो पायी थी, तब उन्हें सुमेरुगिरिकी उपत्यकामें कठिन तपस्याके बाद भगवान् वेदपुरुष नारायणके विराट् स्वरूपके दर्शन हुए। जिनके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, सभी तीर्थ-क्षेत्र, यज्ञ-यागादि, धर्म, वेद, पुराण आदि मूर्तिमान् होकर प्रतिष्ठित थे। जिनमें प्रभास-क्षेत्र भगवान्के हनुदेश और कण्ठके मध्य स्थित था।

(४) भृगुक्षेत्र—यह नर्मदा और समुद्रके संगमपर स्थित है तथा प्रभासक्षेत्रसे दक्षिण है। इसे आजकल भड़ोच कहते हैं। प्राचीन कालमें इसका नाम जम्बूमार्ग था। राजा बलिने यहाँ निवास कर दस अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किये थे। महर्षि भृगुद्वारा प्रतिष्ठित यहाँका भृग्वीश्वर नामक शिवलिङ्ग अति प्रसिद्ध है, जो नर्मदाके तटपर भास्कर-तीर्थ और द्वादशादित्य-तीर्थोंके पास है। इस क्षेत्रमें ५५ मुख्य तीर्थ हैं। महर्षि भृगुकी दीर्घकालीन निवासस्थली तथा तपःस्थलीके कारण यह भृगुक्षेत्र कहलाता है। इनकी पुत्र-परम्परामें महर्षि जमदग्नि तथा परशुरामजीकी भी यह तपःस्थली रही है। पुराणोंमें इस क्षेत्रकी अत्यन्त महिमा बतायी गयी है।

(५) पुरुषोत्तमक्षेत्र—पुराणोंमें पुरुषोत्तम-क्षेत्रको अति पवित्र तथा पुण्यप्रद बताया गया है। इसे जगन्नाथ-धाम भी कहा जाता है। चार धामोंके वर्णनमें इसका विस्तृत माहात्म्य वर्णित हुआ है, अतः वहीं अवलोकन करना चाहिये।

(६) नैमिषक्षेत्र—इसे आदितीर्थ कहा जाता है। यह उत्तर प्रदेशके सीतापुर जनपदसे लगभग ४० किलोमीटर पूर्वकी ओर है। यह स्वायम्भुव मनु-शतरूपाकी तपःस्थली है। आदिगङ्गा गोमती जिसे धेनुमती भी कहा जाता है, यहींपर प्रवाहित हैं। चक्रतीर्थ, ललितादेवी-शक्तिपीठ, हत्याहरण, मिश्रित-तीर्थ आदि अनेक पुण्यप्रद तीर्थ इस क्षेत्रके अन्तर्गत हैं। नैमिष-क्षेत्रकी परिक्रमा ८४ कोशकी है। इसकी गणना प्रधान द्वादश अरण्योंमें भी है।

(७) गयाक्षेत्र—गया-तीर्थकी अत्यधिक महिमा है। वायुपुराण, पद्मपुराण तथा अग्नि आदि पुराणोंमें गयाका विस्तृत माहात्म्य प्रतिपादित है। पितृतीर्थके रूपमें गयाकी अत्यधिक प्रसिद्धि है। पितर कामना करते हैं कि उनके वंशमें कोई ऐसा पुत्र उत्पन्न हो, जो गया जाकर वहाँ उनका श्राद्ध करे। गयामें पिण्डदानसे पितरोंको अक्षय तृप्ति होती है। गया-क्षेत्रके तीर्थोंमें फल्गु नदी, विष्णुपद, गयासिर, गदाधर-मन्दिर, प्रेतशिला, ब्रह्मकुण्ड, अक्षयवट आदि प्रमुख हैं। गयाका नाम गय नामक असुरके नामपर पड़ा है। इसके इतिहासके सम्बन्धमें तथा नारायण-शिला (धर्मशिला) के विषयमें रोचक आख्यान है, जो इस प्रकार है—

धर्मकी पुत्री धर्मवती अपने पति महर्षि मरीचिके चरण दबा रही थी। उसी समय वहाँ ब्रह्माजी पधारे। ये मेरे श्वशुर हैं, यह जानकर धर्मवतीने उठकर उनका स्वागत किया, किंतु महर्षि मरीचिने पतिसेवा-त्यागरूप इसे अपराध माना और पत्नीको शिला हो जानेका शाप दिया। इसके पश्चात् धर्मवतीने सहस्र वर्षतक कठोर तपस्या की। इससे प्रसन्न होकर भगवान् नारायण तथा सभी देवताओंने उसे वरदान दिया कि उसके शिला-रूपपर सभी देवताओंकी स्थिति रहेगी।

गय नामक असुर केवल तपस्यामें ही प्रीति रखता था। वह दीर्घकालतक निष्कामभावसे तप करता रहा। भगवान् नारायणने उसे वरदान दिया कि उसकी देह समस्त तीर्थोंसे भी अधिक पवित्र हो जाय। इस वरदानके पश्चात् भी असुर गय तपस्या करता ही रहा। उसके तपसे त्रिलोकी संतप्त होने लगी। देवता संत्रस्त हो उठे। अन्तमें भगवान् विष्णुके आदेशसे ब्रह्माजीने गयके पास जाकर यज्ञ करनेके लिये उसकी देह माँगी। गय सो गया और उसके शरीरपर यज्ञ किया गया, किंतु यज्ञ पूरा होनेपर असुर फिर उठने लगा। उस समय वह धर्मवती शिला देवताओंने गयासुरके ऊपर रख दी। इतनेपर भी असुर उठने लगा तो सभी देवताओंके साथ स्वयं भगवान् विष्णु गदाधर-रूपमें उसके ऊपर स्थित हुए। गय नामक असुरकी यह पूरी देह, जो दस मील विस्तृत है, परम पवित्र है। उसपर कहीं भी पिण्डदान करनेसे पितर प्रेतयोनि तथा नरकसे छूटकर अक्षय तृप्ति प्राप्त करते हैं। आश्विनके कृष्ण-पक्षमें यहाँ श्राद्ध करनेका अत्यधिक महत्त्व है।

द्वादश अरण्य

वेदोंमें वन, उपवन, अरण्य, नदियोंके संगम तथा पर्वतकी उपत्यकाओंमें विशुद्ध बुद्धि, भगवत्तत्त्वके दर्शन और भगवत्-साक्षात्कारके अनुकूल वातावरण होनेकी बात कही गयी है (ऋग्वेद ८।६।२८, वा० सं० २६।१५)। वहाँ योगसिद्धियाँ, समाधि और देवताओंका अनुग्रह शीघ्र प्राप्त होता है। इसलिये ऋषि-मुनि प्रायः ऐसे ही स्थानोंमें आश्रम बनाकर निवास करते थे। ऋषियोंके गुरुकुल भी वन और नदियोंके समीप ही होते थे। जहाँ अग्निहोत्रके योग्य समिधा, स्नान आदिके लिये जलाशय, संध्या, जप-तपके योग्य शान्त स्थान और भोजनके लिये कन्दमूल आदि फल सरलतासे उपलब्ध हो जाते थे। अपने इस अलौकिक वैशिष्ट्यसे तपःपूत ये अरण्य-प्रान्त अत्यधिक पवित्र हैं। पुराणोंमें भारतके वर्णन-प्रसंगमें अनेकों अरण्योंका माहात्म्य बताया गया है। यहाँ उनमेंसे अतिप्रसिद्ध और पुण्यप्रद, साक्षात्-तीर्थरूप मात्र बारह अरण्योंका परिचय दिया जा रहा है।

(१) दण्डकारण्य—पुराणोंके अनुसार महाराज इक्ष्वाकुके सौ पुत्र थे। उनमेंसे एकका नाम दण्डक भी था। वह शुक्राचार्यका शिष्य था। उसका समस्त राज्य उसीके नामसे दण्डक-क्षेत्र कहा जाता था। एक बार मृगयामें थककर वह शुक्राचार्यके आश्रमपर गया और वहाँ उनकी कुमारी कन्या अरजाके साथ अभद्र व्यवहार किया। शुक्राचार्यने रुष्ट होकर उसके राज्यको एक सप्ताहमें धूलि-वर्षासे नष्ट हो जानेका शाप दे दिया, जिससे वह अबतक प्रायः अरण्य-रूप ही धारण किये रह गया। ऋषियोंकी प्रार्थनापर भगवान् श्रीरामने उसे परम पवित्र कर दिया था। वैसे अगस्त्य, सुतीक्ष्ण, शरभङ्ग आदि ऋषिगण पहलेसे ही वहाँ निवास कर रहे थे। इसका क्षेत्र गोदावरी नदीसे लेकर चित्रकूटतक माना जाता है। ऋषियोंके निवास होनेके कारण एवं गोदावरी, नर्मदा, सोन तथा महानदी आदि नदियोंका पार्श्ववर्ती स्थान होनेसे यह बहुत पवित्र माना जाता है। इसमें कोटिरुद्र, ब्रह्मगिरि, त्र्यम्बकेश्वर, मान्धाता आदि अनेक पवित्र तीर्थ-स्थान हैं। मल्लिकार्जुन, श्रीशैल आदि ज्योतिर्लिङ्ग भी इसी क्षेत्रमें हैं।

(२) विन्ध्यारण्य—पुराणोंके अनुसार यहाँ तप एवं साधना करनेसे अतिशीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। इसके सम्बन्धमें पुराणोंमें अनेक कथाएँ आयी हैं। उनमें कुछ कथाएँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं, जैसे—(१) देवीने शुम्भ-निशुम्भका वधकर यहाँ निवास किया था। (२) कृष्णकी बहन—नन्दकी कन्या योगमाया भी अष्टभुजाके रूपमें परिणत हुई थी, जिसका निवास-स्थान यहीं है। (३) एक बार यह विन्ध्यपर्वत सूर्यको रोकनेके लिये सुमेरुसे भी ऊँचा गगनमण्डलमें उठ गया था, फिर अगस्त्यजीने इसे पृथ्वीके बराबर किया।

इसपर कालिंजर, चरणाद्रि, लोहित आदि अनेक दुर्ग, गुप्तेश्वर महादेव आदि अनेक गुफाएँ और शैव क्षेत्र भी हैं। पुराणोंके अनुसार भगवान् श्रीरामने वनवासके समय १२ वर्षतक यहाँ निवास किया था। इसकी सीमा सभी अन्य अरण्योंसे बड़ी है। विन्ध्यवासिनी इसीके उत्तरी भागमें स्थित हैं। यहाँ चैत्र तथा आश्विनमें विशेष मेला लगता है।

(३) पुष्करारण्य—पद्मपुराणका सृष्टिखण्ड तथा

नारदपुराणका अधिकांश उत्तर भाग इसकी महिमासे ओतप्रोत है। ब्रह्माजीने कमलका फूल गिराकर वज्रनाभ नामक दैत्यका वध किया था, इससे इसका नाम पुष्कर पड़ा। यहाँ चारों ओर भीषण अरण्य है। यह ब्रह्माजीके यज्ञ-क्षेत्रके रूपमें विशेष प्रसिद्ध है। इस वनमें सरस्वती नदी भी प्रवाहित होती है। पुराणोंमें यहाँ निवास करने, साधना साधने, तप करने, स्नान-दान, श्राद्ध आदि करनेका अपार माहात्म्य बतलाया गया है। यह अरण्य अजमेरमें है।

(४) **नैमिषारण्य**—पुराणोंमें नैमिषारण्यको सबसे अधिक पवित्र कहा गया है। एक बार ऋषियोंके मनमें यह उत्कण्ठा हुई कि विश्वका कौन-सा भाग सर्वाधिक पवित्र है, जहाँ जाकर भगवान्‌का स्मरण-भजन किया जाय। उन्होंने यह बात ब्रह्माजीसे कही। तब ब्रह्माजीने एक मनोमय चक्र निर्मित कर चलाया और ऋषियोंसे चक्रके अनुगमनके लिये कहा तथा बताया कि जहाँ इसकी नेमि शीर्ण हो जाय, उसे ही सर्वाधिक पवित्र स्थान समझा जाय। जब ऋषि चक्रके पीछे-पीछे चले तो वह नैमिष वनके मध्यमें गिरा। यह स्थान चक्र-तीर्थ कहलाता है। नैमिषारण्यमें सूतजीने शौनक आदि अट्ठासी हजार शिष्योंको अठारह पुराणों तथा उपपुराणोंकी कथा सुनायी थी।

(५) **कुरुजाङ्गल**—कुरुक्षेत्र नामसे पहले यहाँ प्रायः जंगलमात्र था। सुन्द और उपसुन्द दानवोंकी मुख्य निवासभूमि यहीं थी। इसके दर्शनमात्रसे समस्त पापोंकी निवृत्ति हो जाती है। यहाँ मान्धाताने यज्ञ किया था और मुद्‌गल आदिने यहीं रहकर मुद्गलपुराणकी रचना की थी। ऐसा पुराणों तथा महाभारतमें उल्लेख है।

(६) **उत्पलावर्तकारण्य**—यह अरण्य गङ्गाके दक्षिणी तटपर कानपुरसे कुछ दूर पश्चिममें फैला हुआ है। कहा जाता है कि महर्षि वाल्मीकिका आश्रम यहीं था, जहाँ सीताजीने अन्तिम समयमें निवास कर लव-कुशको जन्म दिया और महर्षिने रामायणकी रचना कर उन्हें पढ़ाया। मत्स्यपुराणके अनुसार यहाँ लोलादेवीका मन्दिर है। मार्कण्डेयपुराणके अनुसार मन्वन्तराधिपति उत्तम मनुका इस अरण्यसे सम्बन्ध रहा है। इस वनमें गङ्गाके किनारे कमलोंकी विशेष उत्पत्तिके कारण इसका नाम उत्पलारण्य या उत्पलावर्तक पड़ा। अन्य पुराणोंके अनुसार ब्रह्मावर्त भी इसीका नाम है, क्योंकि ब्रह्माजी भी कमल (उत्पल) के आसनपर ही विराजमान रहते हैं।

(७) **जम्बुकारण्य**—यह देवताओं, पितरों तथा ऋषियोंको अत्यन्त प्रिय है। पुराणोंके अनुसार यहाँ जानेमात्रसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। यहाँ प्रवाहित होनेवाली नर्मदामें तथा जम्बू-सरोवरमें स्नान करनेसे तत्क्षण सिद्धि प्राप्त होती है। यह महर्षि भृगुकी तपःस्थली तथा अनेक ऋषि-मुनियोंका निवास-भूमि रहा है। पद्मपुराणके स्वर्गखण्डमें यहाँका महत्त्व वर्णित है।

(८) **अर्बुदारण्य**—पुराणोंके अनुसार हिमालयके सौ पुत्रोंमेंसे यह एक है। यहाँ एक रात निवास करनेसे हजार गोदानका पुण्य प्राप्त होता है। पद्मपुराणके अनुसार वसिष्ठ, भृगु, गौतम तथा दत्तात्रेयने यहाँ रहकर दीर्घकालतक तपस्या की थी, जिनके नामोंसे सम्बद्ध अनेक आश्रम, कुण्ड, मूर्तियाँ आज भी यहाँ विद्यमान हैं। यहाँ अर्बुदादेवीकी भी एक मूर्ति है। इसे आजकल आबूपर्वत कहते हैं, जो राजस्थानमें है। द्वारका जाते समय भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ पधारे थे।

(९) **हिमवदरण्य**—यह सभी अरण्योंसे विशाल है। यह व्यास, पराशर, देवर्षि नारद, शुकदेव, अर्जुन, कर्ण, कृष्ण आदिकी तपःस्थली रहा है। भारतके सौ पर्वतोंको इसका पुत्र बताया गया है। बालखिल्यों तथा शेषनागने भी यहाँ रहकर तपस्या की थी। यह सर्वाधिक रमणीय है। गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, ब्रह्मपुत्र आदि पवित्र नदियोंका यह उद्‌गम-स्थान है तथा शंकर-पार्वतीकी यह क्रीडाभूमि है। इसका शेष वर्णन सप्त-कुलाचलोंमें हुआ है। अतः वहाँ अवलोकन करना चाहिये।

(१०) **धर्मारण्य**—इस नामसे पुराणोंमें चार अरण्योंका उल्लेख मिलता है—एक पश्चिम समुद्रके पास सिद्धपुर-क्षेत्रमें, दूसरा हिमालयमें कण्वाश्रमके समीप, तीसरा मध्यप्रदेशके वनमें तथा चौथा गयाके पास। इनमें दो अधिक प्रसिद्ध हैं— गयाका धर्मारण्य और सिद्धपुरका धर्मारण्य। स्कन्दपुराणके धर्मारण्यखण्डसे इन दोनोंकी संगति बैठ जाती है। इन दोनोंमें भी विशेषकर गया-क्षेत्र ही पुराणोंमें धर्मारण्य-नामसे व्याख्यात है। यहाँ धर्मने विशेष तपस्या की थी, इसीलिये इसका नाम धर्मारण्य पड़ा। यहाँ प्रवेश

करनेमात्रसे सब पापोंसे मुक्ति हो जाती है और पितरोंकी अर्चा करनेसे सर्वमनोरथप्रद महायज्ञका फल प्राप्त होता है।

(११) वेदारण्य—स्कन्दपुराणकी सूतसंहिताका समग्र भाग वेदारण्यकी महिमा-कथनमें ही पर्यवसित होता दीखता है। यह वेदारण्य दक्षिण भारतमें स्थित है। यह शैव क्षेत्र है। यहाँ भगवान् शिवके कई मन्दिर हैं। मुख्य शिवलिंग वेदपुरीश्वर महादेवके नामसे विख्यात है। सूतसंहिताके अनुसार यह अरण्य समग्र ज्ञानका प्रकाशक और मोक्षप्रद है।

(१२) सैन्धवारण्य—यह अरण्य सौवीर और सिन्धुदेशोंकी सीमापर स्थित है। पुराणोंके अनुसार इसके आसपास केतुमाला और मेध्या नामकी नदियाँ प्रवाहित होती हैं। यह अरण्य सदा ही सिद्ध ऋषि-मुनियों एवं महात्माओंका आवास-स्थल रहा है—'**ख्यातं च सैन्धवारण्यं पुण्यं द्विजनिषेवितम्।**' यहाँ अनेक वैखानस और सिद्ध-मुनियोंके आश्रम थे। यह स्थान आजकल पाकिस्तानके पश्चिमी भागमें पड़ गया है।

चतुर्दश प्रयाग

नाम	सरिता-संगम	नाम	सरिता-संगम
१-प्रयागराज—	गङ्गा-यमुना-सरस्वती।	८-इन्द्रप्रयाग—	भागीरथी-व्यासगङ्गा।
२-देवप्रयाग—	अलकनन्दा-भागीरथी।	९-सोमप्रयाग—	सोमनदी-मन्दाकिनी।
३-रुद्रप्रयाग—	अलकनन्दा-मन्दाकिनी।	१०-भास्करप्रयाग—	भास्वती-भागीरथीगङ्गा।
४-कर्णप्रयाग—	पिण्डर गङ्गा-अलकनन्दा।	११-हरिप्रयाग—	हरिगङ्गा-भागीरथी।
५-नन्दप्रयाग—	अलकनन्दा-नन्दा।	१२-गुप्तप्रयाग—	नीलगङ्गा-भागीरथी।
६-विष्णुप्रयाग—	विष्णुगङ्गा-अलकनन्दा।	१३-श्यामप्रयाग—	श्यामगङ्गा-भागीरथी।
७-सूर्यप्रयाग—	अलसतरङ्गिणी-मन्दाकिनी।	१४-केशवप्रयाग—	अलकनन्दा-सरस्वती।

इनमें प्रथम ५ प्रयाग मुख्य हैं।

प्रधान द्वादश देवी-विग्रह एवं उनके स्थान

त्रिपुरारहस्य माहात्म्यखण्डमें भारतवर्षके बारह प्रधान देवी-विग्रह एवं उनके स्थानोंका स्पष्ट निर्देश हुआ है। इसके अनुसार जगज्जननी भगवती महाशक्ति कांचीपुरमें **कामाक्षी**-रूपसे, मलयगिरिमें '**भ्रामरी**' या '**भ्रमराम्बा**'-नामसे, केरल (मलाबार) में **कुमारी** (कन्याकुमारी), आनर्त (गुजरात) में **अम्बा**, करवीर (कोल्हापुर) में **महालक्ष्मी**, मालवा (उज्जैन) में **कालिका**, प्रयागमें **ललिता** (अलोपी) तथा विन्ध्यगिरिमें **विन्ध्यवासिनी** रूपसे प्रतिष्ठित हैं। वे वाराणसीमें **विशालाक्षी**, गयामें **मङ्गलावती**, बंगालमें **सुन्दरी** और नेपालमें **गुह्यकेश्वरी** कही जाती हैं। मङ्गलमयी पराम्बा पार्वती इन बारह रूपोंसे भारतमें स्थित हैं। इन विग्रहोंके दर्शनसे ही मनुष्य सभी पापोंसे छूट जाता है। दर्शनमें अशक्त प्राणी सावधान-चित्त होकर प्रतिदिन प्रातःकालमें इनका स्मरण करे। ऐसा करनेवाला उपासक सारे पापोंसे मुक्ति प्राप्त कर भगवतीके परमधामके अधिकारीके रूपमें मोक्षको प्राप्त करता है।

इक्यावन सिद्ध-क्षेत्र

पुराणोंके अन्तर्गत सिद्ध-क्षेत्रोंकी महिमाका विस्तारसे वर्णन हुआ है। सिद्ध क्षेत्रोंकी कुल संख्या ५१ मानी गयी है। जिनका विवरण इस प्रकार है—१-कुरु-क्षेत्र, २-बदरिकाश्रम-क्षेत्र ३-नारायण-क्षेत्र, ४-गया-क्षेत्र, ५-पुरुषोत्तम-क्षेत्र (जगन्नाथ-पुरी), ६-वाराणसी-क्षेत्र, ७-वाराह-क्षेत्र (अयोध्याके निकट), ८-पुष्कर-क्षेत्र, ९-नैमिषारण्य-क्षेत्र, १०-प्रभास-क्षेत्र, ११-प्रयाग-क्षेत्र, १२-शूकर-क्षेत्र (सोरों), १३-पुलहाश्रम (मुक्तिनाथ), १४-कुब्जाम्रक-क्षेत्र (ऋषिकेश), १५-द्वारका, १६-मथुरा, १७-केदार-क्षेत्र, १८-पम्पा-क्षेत्र, १९-बिन्दुसर (सिद्धपुर), २०-तृणबिन्दु-वन, २१-दशपुर (मन्दसौर),

२२-गङ्गासागर-संगम, २३-तेजोवन, २४-विशाखसूर्य (विशाखापत्तनम्), २५-उज्जयिनी, २६- दण्डक (नासिक), २७-मानस (मानसरोवर), २८-नन्दा- क्षेत्र, (नन्दादेवी पर्वत), २९-सीताश्रम (बिठूर), ३०-कोकामुख, ३१-मन्दार (भागलपुर), ३२-महेन्द्र-क्षेत्र (मंडासा), ३३-ऋषभ-क्षेत्र, ३४-शालग्राम-क्षेत्र, (दामोदर- कुण्ड), ३५-गोनिष्क्रमण-क्षेत्र, ३६-सह्य-क्षेत्र (सह्याद्रि), ३७-पाण्ड्य-क्षेत्र, ३८-चित्रकूट-क्षेत्र, ३९-गन्धमादन-क्षेत्र, (रामेश्वर), ४०-हरिद्वार-क्षेत्र, ४१-वृन्दावन-क्षेत्र, ४२-हस्तिनापुर, ४३-लोहाकुल (लोहार्गल), ४४-देवशाल, ४५-कुमारिका-क्षेत्र (कुमारस्वामी), ४६-देवदारुवन (आसाम), ४७-लिङ्ग-स्फोट-क्षेत्र, ४८-अयोध्या-क्षेत्र, ४९-कुण्डिन-क्षेत्र, ५०-त्रिकूट-क्षेत्र, ५१-माहिष्मती-क्षेत्र।

इन इक्यावन सिद्ध-क्षेत्रोंका विस्तृत माहात्म्य पुराणों एवं अन्यान्य धर्मग्रन्थोंमें उपलब्ध होता है। विस्तारभयके कारण मात्र उनके नामोंका ही निर्देश किया गया है।

तीर्थका फल किसे मिलता है और किसे नहीं मिलता ?

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥

जिसके हाथ, पैर और मन भलीभाँति संयमित हैं अर्थात् जिसके हाथ सेवामें लगे हैं, पैर तीर्थादि भगवत्-स्थानोंमें जाते हैं और मन भगवान्‌के चिन्तनमें संलग्न है, जिसे अध्यात्मविद्या प्राप्त है, जो धर्मपालनके लिये कष्ट सहता है, जिसकी भगवान्‌के कृपापात्रके रूपमें कीर्ति है, वह तीर्थके फलको प्राप्त होता है।

प्रतिग्रहादपावृत्तः संतुष्टो येन केनचित्।
अहंकारविमुक्तश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥

जो प्रतिग्रह नहीं लेता, जो अनुकूल या प्रतिकूल—जो कुछ भी मिल जाय, उसीमें संतुष्ट रहता है तथा जिसमें अहंकारका सर्वथा अभाव है, वह तीर्थके फलको प्राप्त होता है।

अदम्भको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्वसङ्गैर्यः स तीर्थफलमश्नुते ॥

जो पाखण्ड नहीं करता, नये-नये कामोंको आरम्भ नहीं करता, थोड़ा आहार करता है, इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर चुका है, सब प्रकारकी आसक्तियोंसे छूटा हुआ है, वह तीर्थके फलको प्राप्त होता है।

अक्रोधनोऽमलमतिः सत्यवादी दृढव्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते ॥

जिसमें क्रोध नहीं है, जिसकी बुद्धि निर्मल है, जो सत्य बोलता है, व्रतपालनमें दृढ़ है और सब प्राणियोंको अपने आत्माके समान अनुभव करता है, वह तीर्थके फलको प्राप्त होता है।

तीर्थान्यनुसरन् धीरः श्रद्दधानः समाहितः।
कृतपापो विशुद्ध्येत् किं पुनः शुद्धकर्मकृत् ॥

जो तीर्थोंका सेवन करनेवाला धैर्यवान्, श्रद्धायुक्त और एकाग्रचित्त है, वह पहलेका पापाचारी हो तो भी शुद्ध हो जाता है, फिर जो शुद्ध कर्म करनेवाला है, उसकी तो बात ही क्या है।

अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः।
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः ॥

जो अश्रद्धालु है, पापात्मा (पापका पुतला—पापमें गौरवबुद्धि रखनेवाला), नास्तिक, संशयात्मा और केवल तर्कमें ही डूबा रहता है—ये पाँच प्रकारके मनुष्य तीर्थके फलको प्राप्त नहीं करते। (स्कन्दपुराण)

नृणां पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत्।
यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम् ॥

पापी मनुष्योंके तीर्थमें जानेसे उनके पापकी शान्ति होती है। जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, ऐसे मनुष्योंके लिये तीर्थ यथोक्त फल देनेवाला है।

कामं क्रोधं च लोभं च यो जित्वा तीर्थमाविशेत्।
न तेन किंचिदप्राप्तं तीर्थाभिगमनाद् भवेत् ॥

जो काम, क्रोध और लोभको जीतकर तीर्थमें प्रवेश करता है, उसे तीर्थयात्रासे कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं रहती।

तीर्थानि च यथोक्तेन विधिना संचरन्ति ये।
सर्वद्वन्द्वसहा धीरास्ते नराः स्वर्गगामिनः ॥

जो यथोक्त विधिसे तीर्थयात्रा करते हैं, सम्पूर्ण द्वन्द्वोंको सहन करनेवाले वे धीर पुरुष स्वर्गमें जाते हैं।

गङ्गादितीर्थेषु वसन्ति मत्स्या
देवालये पक्षिगणाश्च सन्ति।
भावोज्झितास्ते न फलं लभन्ते
तीर्थाच्च देवायतनाच्च मुख्यात्॥
भावं ततो हृत्कमले निधाय
तीर्थानि सेवेत समाहितात्मा।

गङ्गा आदि तीर्थोंमें मछलियाँ निवास करती हैं, देवमन्दिरोंमें पक्षिगण रहते हैं, किंतु उनके चित्त भक्तिभावसे रहित होनेके कारण उन्हें तीर्थसेवन और देवमन्दिरमें निवास करनेसे कोई फल नहीं मिलता। अतः हृदयकमलमें भावका संग्रह करके एकाग्रचित्त होकर तीर्थसेवन करना चाहिये।

(नारदपुराण)

मानस-तीर्थका महत्त्व

एक बार अगस्त्यजीने लोपामुद्रासे कहा—'निष्पापे! मैं उन मानस-तीर्थोंका वर्णन करता हूँ जिन तीर्थोंमें स्नान करके मनुष्य परमगतिको प्राप्त होता है, उसे सुनो। सत्य, क्षमा, इन्द्रिय-संयम, सब प्राणियोंके प्रति दया, सरलता, दान, मनका दमन, संतोष, ब्रह्मचर्य, प्रियभाषण, ज्ञान, धृति और तपस्या—ये प्रत्येक एक-एक तीर्थ हैं। इनमें ब्रह्मचर्य परमतीर्थ है। मनकी परमविशुद्धि तीर्थोंका भी तीर्थ है। जलमें डुबकी मारनेका नाम ही स्नान नहीं है, जिसने इन्द्रिय-संयमरूप स्नान किया है, वही स्नात है और जिसका चित्त शुद्ध हो गया है, वही पवित्र है।

जो लोभी, चुगलखोर, निर्दय, दम्भी और विषयोंमें आसक्त है, वह सारे तीर्थोंमें भलीभाँति स्नान कर लेनेपर भी पापी और मलिन ही है। शरीरका मैल उतारनेसे ही मनुष्य निर्मल नहीं होता, मनके मलको निकाल देनेपर ही भीतरसे सुनिर्मल होता है। जलजन्तु जलमें ही पैदा होते हैं और जलमें ही मरते हैं, परंतु वे स्वर्गमें नहीं जाते, क्योंकि उनके मनका मल नहीं धुलता। विषयोंमें अत्यन्त राग ही मनका मल है और विषयोंसे वैराग्य ही निर्मलता है। चित्त अन्तरकी वस्तु है, उसके दूषित रहनेपर केवल तीर्थ-स्नानसे शुद्धि नहीं होती। जैसे सुराभाण्डको चाहे सौ बार जलसे धोया जाय, वह अपवित्र ही है, वैसे ही जबतक मनका भाव शुद्ध नहीं है, तबतक उसके लिये दान, यज्ञ, शौच, तप, तीर्थसेवन और स्वाध्याय—सभी अतीर्थ हैं। जिसकी इन्द्रियाँ संयममें हैं, वह मनुष्य जहाँ रहता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्करादि तीर्थ विद्यमान हैं। ध्यानसे विशुद्ध हुए, राग-द्वेषरूपी मलका नाश करनेवाले ज्ञानजलमें जो स्नान करता है, वही परमगतिको प्राप्त करता है।

शृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघे।
येषु सम्यङ्नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम्॥
सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च॥
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं संतोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता॥
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम्।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा॥
न जलाप्लुतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते।
स स्नातो यो दमस्नातः शुचिः शुद्धमनोमलः॥
यो लुब्धः पिशुनः क्रूरो दाम्भिको विषयात्मकः।
सर्वतीर्थेष्वपि स्नातः पापो मलिन एव सः॥
न शरीरमलत्यागान्नरो भवति निर्मलः।
मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यन्तः सुनिर्मलः॥
जायन्ते च म्रियन्ते च जलेष्वेव जलौकसः।
न च गच्छन्ति ते स्वर्गमविशुद्धमनोमलाः॥
विषयेष्वतिसंरागो मानसो मल उच्यते।
तेष्वेव हि विरागोऽस्य नैर्मल्यं समुदाहृतम्॥
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानान्न शुध्यति।
शतशोऽपि जलैर्धौतं सुराभाण्डमिवाशुचि॥
दानमिज्या तपः शौचं तीर्थसेवाश्रुतं तथा।
सर्वाण्येतान्यतीर्थानि यदि भावो न निर्मलः॥
निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव च वसेन्नरः।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च॥
ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्॥

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड ६।२९-४१)

गृहस्थोंके लिये पुराणोक्त कुछ सामान्य नियम

१. प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व उठना चाहिये। उठते ही भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये।
२. शौच-स्नानादिसे निवृत्त होकर भगवान्‌की उपासना, संध्या, तर्पण आदि करने चाहिये।
३. बलिवैश्वदेव करके समयपर सात्त्विक भोजन करना चाहिये।
४. प्रतिदिन प्रातःकाल माता, पिता, गुरु आदि बड़ोंको प्रणाम करना चाहिये।
५. इन्द्रियोंके वश न होकर उनको वशमें करके उनसे यथायोग्य काम लेना चाहिये।
६. धन कमानेमें छल, कपट, चोरी, असत्य और बेईमानीका त्याग कर देना चाहिये। अपनी कमाईके धनमें यथायोग्य सभीका अधिकार समझना चाहिये।
७. माता-पिता, भाई-भौजाई, बहन-फूआ, स्त्री-पुत्र आदि परिवार सादर पालनीय हैं।
८. अतिथिका सच्चे मनसे सत्कार करना चाहिये।
९. अपनी शक्तिके अनुसार दान करना चाहिये। पड़ोसियों तथा ग्रामवासियोंकी सदा सत्कारपूर्ण सेवा करनी चाहिये।
१०. सभी कर्म बड़ी सुन्दरता, सफाई और नेकनीयतीसे करने चाहिये।
११. किसीका अपमान, तिरस्कार और अहित नहीं करना चाहिये।
१२. अपने किसी कर्मसे समाजमें विशृङ्खलता और प्रमाद नहीं पैदा करना चाहिये।
१३. मन, वचन और शरीरसे पवित्र, विनयशील और परोपकारी बनना चाहिये।
१४. सब कर्म नाटकके पात्रकी भाँति अपना नहीं मानना चाहिये, परंतु करना चाहिये ठीक सावधानीके साथ।
१५. विलासितासे बचकर रहना चाहिये—अपने लिये खर्च कम करना चाहिये। बचतके पैसे गरीबोंकी सेवामें लगाने चाहिये।
१६. स्वावलम्बी बनकर रहना चाहिये, अपने जीवनका भार दूसरेपर नहीं डालना चाहिये।
१७. अकर्मण्य कभी नहीं रहना चाहिये।
१८. अन्यायका पैसा, दूसरेके हकका पैसा घरमें न आने पावे, इस बातपर पूरा ध्यान देना चाहिये।
१९. सब कर्मोंको भगवान्‌की सेवाके भावसे—निष्कामभावसे करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।
२०. जीवनका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है, भोग नहीं—इस निश्चयसे कभी डिगना नहीं चाहिये और सारे काम इसी लक्ष्यकी साधनाके लिये करने चाहिये।
२१. किसीके घरमें जिधर स्त्रियाँ रहती हों (जनानेमें), नहीं जाना चाहिये। अपने घरमें भी स्त्रियोंको किसी प्रकारसे सूचना देकर जाना चाहिये।
२२. जिस स्थानपर स्त्रियाँ नहाती हों या जिस रास्तेसे स्त्रियाँ ही जाती हों, उधर नहीं जाना चाहिये।
२३. भूलसे तुम्हारा पैर या धक्का किसीको लग जाय तो उससे क्षमा माँगनी चाहिये।
२४. कोई आदमी रास्ता भूल जाय तो उसे ठीक रास्तेपर डाल देना चाहिये, चाहे ऐसा करनेमें स्वयंको कष्ट भी क्यों न हो।
२५. दूसरोंकी सेवा इस भावसे नहीं करनी चाहिये कि उसके बदलेमें कुछ इनाम मिलेगा, सेवा जब निष्काम भावसे की जायगी, तभी सेवाका सच्चा आनन्द प्राप्त हो सकेगा।
२६. भगवत्प्रार्थनाके समय आँखें बंद रखकर मनको स्थिर रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये और उस समय 'भगवान्‌के चरणोंमें बैठा हूँ' ऐसी भावना अवश्य होनी चाहिये।
२७. किसी स्थानमें जायँ, जहाँ हमारा आदर-सत्कार हो और हमारे साथ कोई मित्र या अतिथि हो तो हमें उसे भूल न जाना चाहिये, प्रत्युत उसे भी अपने आदर-सत्कारमें सम्मिलित कर लेना चाहिये।

[अष्टादश महापुराण संस्कृत वाङ्मयकी अमूल्य निधि हैं। ये अत्यन्त प्राचीन तथा वेदार्थको स्पष्ट करनेवाले हैं, ः 'पुराण' कहा गया है। पुराणोंकी अनादिता, प्रामाणिकता, मङ्गलमयता तथा यथार्थताका शास्त्रोंमें सर्वत्र उल्लेख है। कुछ ऐसी धारणा है कि पुराण बहुत प्राचीन नहीं हो सकते, क्योंकि पुराणोंमें बुद्धदेवकी कथा तथा उनके पीछेकी अर्वाचीन घट भी उल्लेख मिलता है, परंतु यह बात उचित नहीं। ज्योतिषके ज्ञानकी सहायतासे जैसे परवर्ती सूर्य एवं चन्द्रग्रहणका स ही बता दिया जाता है, वैसे ही ऋषिगण योगप्रभावसे भविष्यकी सब घटनाओंको जान सकते थे, क्योंकि वे त्रिकालदर्श भावी घटनाओंके विषयमें उन्हें ज्ञान होना कोई अस्वाभाविक नहीं था। वेदोंमें पुराणोंका उल्लेख मिलता है तथा पुराणोंको कहा भी गया है, अतः वेदोंको माननेपर पुराणोंकी प्राचीनता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

वास्तवमें पुराण ही भारतीय संस्कृतिके सच्चे और आदर्श इतिहास हैं। किसी मानव-समाजका इतिहास तभी पूर्ण चाहिये, जब उसका इतिवृत्त सृष्टिके आरम्भसे लेकर वर्तमानकालतक क्रमबद्ध-रूपसे दिया जाय। अन्यथा उसे अधूरा ही चाहिये। इतिहासकी इस वास्तविक कल्पनाको पुराणोंमें ही हम साकाररूपमें होते देखते हैं। कुछ लोग पुराणोंमें लिखे असम्भव कहकर कपोलकल्पित कहनेका भी साहस कर बैठते हैं, परंतु भारतीय वाङ्मयमें वस्तु-कथनके तीन प्रकार ब हैं। प्रभुवाक्य, सुहृद्-वाक्य और कान्तावाक्य।

प्रभुवाक्य वह है, जिसमें सीधा आदेश हो और जिन वाक्योंके शब्द बदले भी नहीं जा सकें। वेदादिके वाक्य प्रभु-व सुहृद्-वाक्यका तात्पर्य है रोचक शब्दोंमें सुहृद्वत् अपनी बात बताना। तात्पर्यको सुरक्षित रखते हुए सुहृद्-वाक्यमें शब्द सकते हैं। पुराणोंकी यही शैली है। पुराणोंमें, जहाँ कोई बात कही गयी है, उनका विस्तारसे तथा प्रायः कथाओं प्रस्तुतीकरण हुआ है। काव्य कान्ता-वाक्यका अनुसरण करते हैं।

पुराणोंमें अनेक अलौकिक घटनाओंका उल्लेख मिलता है, परंतु इससे उनमें अविश्वास नहीं करना चाहिये, क्योंकि अ घटना लौकिक नहीं होती। सूर्योदय और सूर्यास्त जगत्की एक आश्चर्यजनक घटना है। बीजसे वृक्षकी उत्पत्ति भी एक आः घटना है; परंतु हमें इसे देखनेका अभ्यास पड़ जानेके कारण इनमें कोई आश्चर्य नहीं होता।

पुराणोंमें राजाओंकी वंशावलियोंका वर्णन भी है, किंतु वह वर्णन केवल कौतूहल-पूर्तिके लिये नहीं, प्रत्युत वेदक समझाने, विषयभोगोंकी आकाङ्क्षाको छुड़ाने और चित्तको भगवदुन्मुख करनेके लिये हुआ है।

जिन लोगोंके लिये यह लोक ही सब कुछ है, उनकी ऐहलौकिक भोगाकाङ्क्षाको शिथिल किये बिना उनसे ब्रह्मज्ञान करना निरर्थक ही होगा। इसीसे पुराणोंमें कर्मकाण्डके अन्तर्गत परलोकके प्रचुर सुखकी प्राप्तिके लिये यज्ञानुष्ठानके विधि बताये गये हैं, किंतु इन सबका वास्तविक तात्पर्य मनुष्यको भगवत्प्राप्तिके मार्गमें प्रवृत्त करना ही है। हमारे पूर्वकृत पा उत्पन्न हुए संस्कार हमारी ब्रह्मज्ञान-प्राप्तिमें प्रबल अन्तराय हैं। हमें यज्ञादि पुण्यकर्मोंके द्वारा इन पाप-संस्कारोंका नाश कर तभी हम ब्रह्मज्ञान प्राप्त करके मोक्ष पानेमें समर्थ हो सकेंगे।

अतः पुराणवर्णित प्रसंग काल्पनिक नहीं हैं, वे सर्वथा सत्य हैं। ऋषिप्रणीत ग्रन्थोंमें वर्णित प्रसंग ऐसे चमत्कारपूर्ण हैं। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक—तीनों ही अर्थ होते हैं। इसलिये जो लोग इनका आध्यात्मिक अर्थ करते अपनी दृष्टिसे ठीक ही करते हैं। पुराणोंमें कुछ ऐसे भी प्रसंग मिलते हैं जो समीचीन प्रतीत नहीं होते, इसका कारण यह है कुछ प्रसंग तो ऐसे हैं जिनमें किसी निगूढ़ तत्त्वका विवेचन करनेके लिये आलंकारिक भाषाका प्रयोग किया गया है। इन्हें स लिये भगवत्कृपा, सात्त्विकी श्रद्धा और गुरुपरम्पराके अध्ययनकी आवश्यकता है। कुछ ऐसी बातें हैं जो सच्चे इतिहास समीचीन प्रतीत न होनेपर भी सत्य प्रकाश करनेकी दृष्टिसे उन्हें ज्यों-का-त्यों लिख दिया गया है। इसका कारण यह है कि पु ऋषि, मुनि आजकलके इतिहास-लेखकोंकी भाँति किसी दुराग्रहके मोहसे मिथ्याको सत्य बनाकर लिखना पाप समझत सत्यवादी, सत्याग्रही और सत्यके प्रकाशक थे।

एक बात और है, जो बुद्धिवादी लोगोंकी दृष्टिमें प्रायः खटकती है, वह है पुराणोंमें जहाँ जिस देवता, तीर्थ या व्रत महत्त्व बतलाया गया है, वहाँ उसे ही सर्वोपरि माना है और अन्य सबके द्वारा उसकी स्तुति करायी गयी है। यह बात यह विचित्र लगती है, परंतु इसका तात्पर्य यह है कि भगवान्का यह लीलाभिनय ऐसा आश्चर्यमय है कि इसमें एक ही विभिन्न-विचित्र लीलाव्यापारके लिये और विभिन्न रुचि, स्वभाव तथा अधिकार-सम्पन्न साधकोंके कल्याणके लिये अनन्त रूपोंमें नित्य प्रकट है। भगवान्के ये सभी रूप नित्य पूर्णतम और सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। अपनी-अपनी रुचि और निष्ठाके

जो जिस रूप और नामको इष्ट बनाकर भजता है, वह उसी दिव्य नाम और रूपमेंसे समस्त रूपमय एकमात्र भगवान्‌को प्राप्त कर लेता है; क्योंकि भगवान्‌के सभी रूप पूर्णतम हैं और उन समस्त रूपोंमें एक ही भगवान् लीला कर रहे हैं। व्रतोंके सम्बन्धमें भी यही बात है। अतएव श्रद्धा एवं निष्ठाकी दृष्टिसे साधकके कल्याणार्थ जहाँ जिसका वर्णन है, वहाँ उसे सर्वोपरि बताना युक्तियुक्त ही है और परिपूर्णतम भगवत्-सत्ताकी दृष्टिसे सत्य तो है ही। तीर्थोंकी बात यह है कि भगवान्‌के विभिन्न नाम-रूपोंकी उपासना करनेवाले संतों-महात्माओं और भक्तोंने अपनी कल्याणमयी सत्-साधनाके प्रतापसे विभिन्न रूपमय भगवान्‌को अपनी-अपनी रुचिके अनुसार नाम-रूपमें अपने ही साधन-स्थानमें प्राप्त कर लिया और वहीं उनकी प्रतिष्ठा की। एक ही भगवान् अपनी पूर्णतम स्वरूप-शक्तिके साथ अनन्त स्थानोंमें अनन्त नाम-रूपोंके साथ प्रतिष्ठित हुए। भगवान्‌के प्रतिष्ठास्थान ही तीर्थ हैं, जो श्रद्धा, निष्ठा और रुचिके अनुसार सेवन करनेवालोंको यथायोग्य फल देते हैं। यही तीर्थ-रहस्य है। इस दृष्टिसे प्रत्येक तीर्थको सर्वोपरि बताना उचित ही है।

सब एक हैं इसकी पुष्टि तो इसीसे हो जाती है कि शैव कहे जानेवाले पुराणोंमें विष्णुकी और वैष्णव पुराणोंमें शिवकी महिमा गायी गयी है और दोनोंको एक बताया गया है।

यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथा शिवः। अन्तरं शिवविष्णवोश्च मनागपि न विद्यते॥ (स्कन्द०, काशीख० २३।४१)

'जैसे शिव हैं वैसे ही विष्णु हैं तथा जैसे विष्णु हैं वैसे ही शिव हैं। शिव और विष्णुमें किंचित् भी अन्तर नहीं है।'

यो विष्णुः स शिवो ज्ञेयो यः शिवो विष्णुरेव सः। (स्कन्द०, माहे० ८।२०)

'जो विष्णु हैं, उन्हींको शिव जानना चाहिये और जो शिव हैं, वे ही विष्णु हैं। भगवान् शिव कहते हैं 'विष्णो! जैसे मैं हूँ, वैसे तुम हो। 'यथाहं त्वं तथा विष्णो'' (स्कन्द०, काशी० २७।१८३)

वस्तुतः पुराण सर्वसाधारणकी सर्वाङ्गीण उन्नति और परम-कल्याणकी साधन-सम्पत्तिके अटूट भण्डार हैं। पुराण ही अध्यात्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, तन्त्र-मन्त्रशास्त्र और कलाशास्त्र हैं। पुराण इतिहास तथा जीवनकोष हैं। पुराण सनातन आर्य संस्कृतिका स्वरूप और वेदकी सरस तथा सरलतम व्याख्या हैं। पुराणोंमें ही तीर्थोंका इतिहास और उनकी विस्तृत सूची है। पुराणोंमें परलोक-विज्ञान, प्रेत-विज्ञान, जन्मान्तर और लोकान्तररहस्य, कर्मरहस्य तथा कर्मफल-निरूपण, नक्षत्रविज्ञान, रत्नविज्ञान, प्राणिविज्ञान, आयुर्वेद और शकुनशास्त्र आदि इतने महत्त्वपूर्ण और उपादेय विषय हैं कि जिनकी व्याख्या करना तो बहुत दूरकी बात है, पूरी सूची बना पाना भी प्रायः असम्भव है। इतने महत्त्वपूर्ण विषयोंपर इतनी गम्भीर गवेषणा करके इनका रहस्य सरल भाषामें स्पष्ट कर देना पुराणोंका ही काम है।

अपनी-अपनी श्रद्धा, रुचि, निष्ठा तथा अधिकारके अनुसार साधारण अपढ़ मनुष्यसे लेकर बड़े-से-बड़े विचारशील बुद्धिवादी पुरुषोंके लिये भी इनमें उपयोगी साधन-सामग्री भरी है। ज्ञान-विज्ञान, वैराग्य, भक्ति, प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, यज्ञ, दान, तप, संयम, नियम, सेवा, भूतदया, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, व्यक्तिधर्म, नारीधर्म, मानवधर्म, राजधर्म, सदाचार और व्यक्ति-व्यक्तिके विभिन्न कर्तव्योंके सम्बन्धमें बड़े ही विचारपूर्ण और कल्याणकारी अनुभूत उपदेश अतीव रोचक भाषामें भरे पड़े हैं। साथ ही पुरुष, प्रकृति, विकृति, प्राकृतिक दृश्य, ऋषि-मुनियों तथा राजाओंकी वंशावली एवं सृष्टिक्रम आदिका भी निगूढ़ वर्णन है। प्रस्तुत प्रकरणमें अष्टादश महापुराणोंके संक्षिप्त परिचय और प्रमुख रोचक कथाएँ प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है, जिससे पाठकोंको पुराणोंकी विषयवस्तुका परिज्ञान हो सके तथा वे इनमें वर्णित आदर्शोंको अपने जीवनमें उतार सकें।—सम्पादक]

यथाग्निः सुसमिद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात्। पापानि भगवद्भक्तिस्तथा दहति तत्क्षणात्॥
संचिन्तितः कीर्तित एव नित्यं महानुभावो भगवाननन्तः। समन्ततोऽघं विनिहन्ति मेघं वायुर्यथा भानुरिवान्धकारम्॥
न भूप देवार्चनयज्ञतीर्थस्नानव्रताचारतपःक्रियाभिः। तथा विशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते॥
कथा विशुद्धा नरनाथ तथ्यास्ता एव पथ्या हरिभक्तकथ्याः। संकीर्त्यते यासु पवित्रकीर्तिर्विशुद्धमूर्तिर्निजदत्तभक्तिः॥

(नारदजीने राजा अम्बरीषको उपदेश दिया है—) जैसे अत्यन्त प्रज्वलित अग्नि लकड़ियोंके ढेरको तुरंत जला डालती है, उसी प्रकार भगवान्‌की भक्ति समस्त पापराशिको तत्काल भस्म कर देती है। जैसे वायु बादलोंको और भगवान् सूर्य अन्धकारको नष्ट कर डालते हैं, ठीक उसी तरह शक्तिशाली भगवान् अनन्त प्रतिदिन अपना ध्यान और कीर्तन करनेपर सब ओरसे पापोंका नाश कर देते हैं। राजन्! देवपूजन, यज्ञ, तीर्थ-स्नान, व्रत-पालन तथा तपस्याके अनुष्ठानसे भी अन्तःकरण वैसा शुद्ध नहीं होता, जैसा हृदयमें भगवान् अनन्तके विराजमान होनेपर होता है। नरेश्वर! वे ही कथाएँ शुद्ध, सत्य, लाभदायक और हरिभक्तोंके कहनेयोग्य होती हैं, जिनमें अपने सेवकोंको उत्तम भक्ति प्रदान करनेवाले, पवित्रकीर्ति एवं विशुद्धस्वरूप भगवान् विष्णुका कीर्तन होता है।

ब्रह्मपुराण
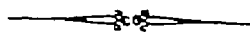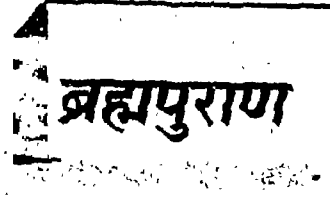
श्रीब्रह्माजीद्वारा कथित होने तथा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णको ब्रह्म मानकर इनका निरूपण करनेके कारण यह 'ब्रह्मपु कहा गया है। महापुराणोंके गणना-क्रममें प्रायः सर्वत्र प्रथम संख्यापर परिपठित होनेके कारण यह 'आदिपुराण' भी कहा है। इसके प्रारम्भिक दो श्लोकोंमेंसे एकमें ब्रह्मका तटस्थ-लक्षण और दूसरेमें स्वरूप-लक्षण बताया गया है। उपनिषद्में ब्र तटस्थ-लक्षण इस प्रकार है—'**यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति** (तै० भृगुवल्ली प्र० अनु०) अर्थात् ये प्राणी जिससे उत्पन्न होते हैं, जिसके सहारे जीवित रहते हैं और अन्तमें जिसमें प्रवेश जाते हैं, वह ब्रह्म है।

श्रुतिने ब्रह्मके स्वरूप-लक्षणमें बताया है कि ब्रह्म सत्स्वरूप, चित्स्वरूप और आनन्दस्वरूप होता है—'**सत्यं ज्ञानम ब्रह्म**'। ब्रह्मपुराणमें '**नित्यानन्दमयं प्रसन्नममलम्**' (ब्रह्म० पु० १। ३) लिखकर उक्त श्रुतिका अनुवाद कर दिया गया है। इ तरह ब्रह्मपुराणने यह स्पष्ट कर दिया है कि ब्रह्मके निरूपणमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित आदिका निरूप उसीका स्वरूपभूत है।

सम्पूर्ण ब्रह्मपुराणमें २४६ अध्याय हैं। इसमें किसी प्रकारका खण्डात्मक, स्कन्धात्मक या भागात्मक विभाजन नहीं है इसकी श्लोक-संख्या लगभग चौदह हजार है। इसमें लोमहर्षण सूतका शौनकादि ऋषियोंके साथ संवाद है। उसमें पहले-पह सृष्टिकी उत्पत्ति तथा महाराज पृथुका पावन चरित्र वर्णित है। गोरूपधारिणी पृथ्वीसे राजा पृथुने ही सर्वप्रथम समस्त अन्नों पदार्थोंका दोहन किया और इन पदार्थोंसे प्रजाने जीवन धारण किया। इन्हीं महाराज पृथुके सम्बन्धसे ही इसका नाम पृथ्वी हुआ इसके अनन्तर चौदह मन्वन्तरों तथा विवस्वान् (सूर्य) की संतति-परम्पराका वर्णन है और फिर क्रमशः सूर्यवंश एवं चन्द्रवंशके वर्णनमें श्रीकृष्णचरित्रका विस्तृत वर्णन है। इसी प्रसंगमें जम्बूद्वीप तथा उसके विभिन्न वर्षोंसहित भारतवर्षकी महिमा तथ भगवन्नामका अलौकिक माहात्म्य है। तदनन्तर सूर्य आदि ग्रहों और भुवर् आदि लोकोंकी स्थिति तथा श्रीविष्णुके प्रभावका माहात्म्य प्रदर्शित है। इसके बाद विविध तीर्थोंका वर्णन और व्यासजीका मुनियोंके साथ मोक्षके विषयमें संवाद है। उसीके अन्तर्गत ब्रह्माजीका भृगु आदि मुनीश्वरोंके साथ संवाद है। तदनन्तर भगवान् सूर्य (आदित्य)की महिमा, अदितिके गर्भसे उनके अवतार ग्रहण करनेसे आदित्य नाम होने तथा उनके वंशका वर्णन है। फिर विस्तारसे भगवती पार्वतीका पावन चरित्र है। एकाम्रकक्षेत्र, उत्कलक्षेत्र तथा पुरुषोत्तमक्षेत्रकी महिमामें राजा इन्द्रद्युम्नका वैष्णवभक्तिपरक आख्यान है। उसी क्रममें भगवान पुरुषोत्तमकी पूजा एवं दर्शनका फल भी बताया गया है। तदनन्तर कल्पान्तजीवी महामुनि मार्कण्डेयका दिव्य चरित्र तथा उनके द्वारा कल्पक्षयके समय प्रलयपयोधिके मध्य वटवृक्षपर भगवान् बालमुकुन्दके दर्शनका अद्भुत वर्णन है।

इसके बाद एक सौ छः (अध्याय ७० से १७५ तकके) अध्यायोंमें विस्तारसे गौतमी-माहात्म्य वर्णित है, जो ब्रह्माजी तथा देवर्षि नारदके कथोपकथनमें है। वहाँ गङ्गाके दो भेद बतलाये गये हैं। एक तो गौतमी गङ्गा अर्थात् गोदावरी है और द्वितीय भागीरथी गङ्गा हैं। भगवान् शंकरकी जटामें आवर्तित भगवती गङ्गाको दो विभूतियाँ लोकोपकारकी दृष्टिसे पृथ्वीपर ले आयीं—एक महर्षि गौतम तथा द्वितीय राजा भगीरथ। इसीलिये गङ्गादेवी दो अंशोंमें विभक्त हो गयीं। विन्ध्यपर्वतके दक्षिणमें जो गङ्गा हैं, वे गौतमी गङ्गा, आदिगङ्गा या गोदावरी कहलाती हैं और विन्ध्यके उत्तरमें जो गङ्गा हैं, वे भागीरथी गङ्गाके नामसे प्रसिद्ध हैं।

गौतमी गङ्गाके इस आख्यानका अतीव रोचक वर्णन इसमें किया गया है। इसके साथ ही ब्रह्मगिरिसे पूर्वी समुद्रमें

लनेतक गोदावरी नदीके तटवर्ती विभिन्न तीर्थोंका विशद तथा मनोहारी वर्णन है। इसके अन्तर्गत लगभग १०० अध्यायोंमें य: प्रत्येक अध्यायमें गौतमीके तटवर्ती तीर्थोंके माहात्म्यमें अनेक रोचक तथा महत्त्वपूर्ण आख्यान हैं, यथा—परोपकारी गोत तथा व्याधका आख्यान, अञ्जना-केसरी तथा हनुमान्‌का आख्यान, भार्गव-अङ्गिरा-आख्यान, कक्षीवान्-आख्यान, लखिल्योत्पत्ति-आख्यान, अजीगर्त-शुनःशेप-आख्यान, दधीचि-लोपामुद्रा-पिप्पलाद-आख्यान, कपोत-उलूक-आख्यान, ापस्तम्बोपाख्यान, सरमा-पणि-आख्यान, मौद्गल्योपाख्यान, मधुच्छन्दस्-आख्यान, नागमाता कद्रू तथा गरुडमाता विनताका ख्यान, परशु-शाकल्य-वृत्तान्त, चिच्चिकपक्षी-आख्यान आदि। गौतमी-माहात्म्यके अन्तिम १०६वें अध्यायमें पुनः दावरीकी महिमाका वर्णन करते हुए कहा गया है कि 'गङ्गा' इस शब्दके नामोच्चारणमात्रसे पुण्य प्राप्त होता है, पापोंका समूल य होता है और विष्णुपद प्राप्त होता है।

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

(ब्र० पु० १७५।८२)

गौतमीमें बृहस्पतिके सिंह-राशिस्थ होनेपर वहाँ स्नान-दानका विशेष महत्त्व बतलाया गया है। गौतमी-माहात्म्यके विस्तृत र्णनके अनन्तर वासुदेव-महिमा, पुरुषोत्तम-क्षेत्र-महिमा तथा महर्षि कण्डुका दिव्य चरित्र वर्णित है। फिर अध्याय १७९ से १२ तक लगभग ३४ अध्यायोंमें श्रीकृष्णावतारकी विस्तृत कथा, उनके मथुरा, वृन्दावन, गोकुल, व्रज तथा द्वारकाकी विभिन्न ीलाओंसे लेकर सपरिकर स्वधामगमन और परीक्षित्‌के राज्यारोहणका वृत्तान्त है, जो भागवत, विष्णु तथा पद्मादि पुराणोंके मान ही है।

तदनन्तर कर्म-विपाक, नरक, पातक-उपपातक, ब्रह्मलोक, पितृश्राद्ध, पितृकल्प, वर्णाश्रम-धर्म, सदाचारमहिमा, ातुर्युगोंका वृत्तान्त, चतुर्विध प्रलयोंके स्वरूपोंका विवेचन है। तदुपरान्त योग तथा सांख्य-दर्शनके मूल सिद्धान्तों तथा पचीस त्त्वोंकी व्याख्या, वसिष्ठ तथा करालजनकके महत्त्वपूर्ण संवादमें क्षर-अक्षर, मोक्षधर्म, विद्या-अविद्या तथा अन्तमें ब्रह्मवादका नरूपण किया गया है।

फलश्रुतिमें इस ब्रह्मपुराणको चतुर्विध पुरुषार्थकी प्राप्ति करानेवाला और सभी वर्णोंके लिये प्रशस्त बतलाया गया है तथा जो व्यक्ति वेदतुल्य इस पुराणका नित्य श्रद्धासहित पाठ या श्रवण करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त करता है।

इदं यः श्रद्धया नित्यं पुराणं वेदसम्मितम्।
सम्पठेच्छृणुयान्मर्त्यः स याति भवनं हरेः॥

(ब्र० पु० २४६।२७)

जो मनुष्य एकमात्र भगवान्‌की भक्तिमें चित्त लगाकर पवित्र हो, अभीष्ट वर देनेवाले लोकगुरु भगवान् विष्णुको प्रणाम करके स्वर्ग और मोक्ष प्रदान करनेवाले इस पुराणका निरन्तर श्रवण करता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। वह इस लोकमें उत्तम सुख भोगकर स्वर्गमें भी दिव्य सुखका अनुभव करता है। तत्पश्चात् प्राकृत गुणोंसे मुक्त हो भगवान् विष्णुके निर्मल पदको प्राप्त होता है। इसलिये एकमात्र मुक्तिमार्गकी इच्छा रखनेवाले स्वधर्मपरायण श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको, मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले कल्याणकामी उत्तम क्षत्रियोंको, विशुद्ध कुलमें उत्पन्न वैश्योंको तथा धर्मनिष्ठ शूद्रोंको भी प्रतिदिन इस पुराणका श्रवण करना चाहिये। एकमात्र धर्म ही परलोकमें गये हुए प्राणीके लिये बन्धुकी भाँति सहायक है। मनुष्य धर्मसे ही राज्य प्राप्त करता है, धर्मसे ही वह स्वर्गमें जाता है तथा धर्मसे ही आयु, कीर्ति, तपस्या एवं धर्मका उपार्जन करता है और धर्मसे ही उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। इस लोकमें तथा परलोकमें भी धर्म ही मनुष्यके लिये माता-पिता और सखा है। इस लोकमें धर्म ही रक्षक तथा मोक्षप्रदाता है। यह श्रेष्ठ पुराण धर्मकी वृद्धि करनेवाला तथा परम गोपनीय एवं वेदके तुल्य प्रामाणिक है।

———

कथा-आख्यान—

परहितके लिये सर्वस्व-दान

पर्वतराज हिमालयकी पुत्री पार्वती भगवान् शंकरको पतिरूपमें पानेके लिये कठिन तपस्या कर रही थीं। तपस्याके अन्तमें ब्रह्माजीने उन्हें आश्वासन दिया कि भगवान् शिव तुम्हें पतिरूपमें प्राप्त होंगे। एक दिन वे भगवान् शंकरका चिन्तन कर रही थीं कि उन्हें पानीमें डूबनेवाले बालककी करुण-पुकार सुनायी दी, जिसे एक ग्राहने पकड़ रखा था। जब-जब ग्राह उसे खींचता, तब-तब उसका क्रन्दन और बढ़ जाता था। श्रीपार्वती दौड़कर वहाँ पहुँचीं। वह बालक ग्राहके मुखमें पड़ा थर-थर काँप रहा था। श्रीपार्वतीने ग्राहसे प्रार्थना की— 'ग्राहराज! मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ। तुम इस बालकको छोड़ दो।'

ग्राहने कहा—'विधाताने मेरे आहारका यह नियम बनाया है कि छठे दिन जो तुम्हारे पास आ जाय, उसे तुम खा लेना। आज विधाताने इसे ही मेरे पास भेजा है। मैं इसे किसी प्रकार छोड़ नहीं सकता।' उमा बोलीं—'ग्राहराज! इस बालकको तो छोड़ ही दो। इसके बदले मैं तुम्हें अपनी तपस्याका पुण्य देती हूँ।' यह सुनकर ग्राह कुछ शान्त हो गया। उसने कहा—'ठीक है, यदि तुम पूरी-की-पूरी तपस्या दे दो तो मैं इसे छोड़ दूँगा।' करुणामयी माँने तुरंत ही संकल्प कर अपनी पूरी तपस्या ग्राहको दे दी। तपस्याका फल पाते ही वह ग्राह मध्याह्नके सूर्यकी तरह प्रकाशित हो उठा। उसने कहा—'देवि! तुम अपनी तपस्या वापस ले लो। मैं तुम्हारे कहनेसे ही इसे छोड़ देता हूँ, किंतु पार्वतीने उसे स्वीकार नहीं किया।

ग्राहराजने देवीकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और बच्चेको छोड़ दिया। बालकने आँसूभरी आँखोंसे देवीकी ओर देखकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। देवीने दुलार-पुचकारकर उस बच्चेको सबल बना दिया। बालकको बचाकर उमा बहुत संतुष्ट थीं। आश्रममें आकर वे पुनः तपस्याका उपक्रम करने लगीं, तब भगवान् शंकर प्रकट हो गये और बोले— 'कल्याणि! अब तुम्हें तपस्या करनेकी आवश्यकता नहीं है। तुमने वह तपस्या मुझे ही अर्पित की है। वह अनन्तगुना होकर तुम्हारे लिये अक्षय बन गयी है।'

(ला०बि०मि०)

जगन्नाथधाम

पुरुषोत्तमक्षेत्र (जगन्नाथधाम) का महत्त्व वर्णनातीत है। यहाँ भगवान् श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम नामसे विख्यात हैं। अतः इस क्षेत्रको पुरुषोत्तमक्षेत्र भी कहते हैं। इस क्षेत्रका नाम लेनेमात्रसे मनुष्य मुक्त हो जाता है। बहुत पहले स्वयं भगवान्ने इस क्षेत्रमें नीलमणिकी प्रतिमा बनाकर स्थापित की थी। उस मूर्तिका इतना प्रभाव था कि उसके दर्शनमात्रसे लोग मुक्त हो जाते थे। कारणविशेषसे उस प्रतिमाका दर्शन दुर्लभ हो गया।

दूसरे सत्ययुगमें राजा इन्द्रद्युम्नने पुनः उस प्रतिमाको स्थापित करनेका प्रयास किया। राजा इन्द्रद्युम्नकी राजधानी अवन्ती (उज्जैन) थी। वे परमधार्मिक, शूर-वीर और समस्त गुणोंके आकर थे। वे प्रयत्नपूर्वक गुरुजनोंकी सेवा और सत्सङ्ग किया करते थे। इसीका परिणाम निकला कि उनके

नमें इन्द्रियोंको रोककर मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छा ाग्रत् हुई। इसके लिये उन्होंने तीर्थ-सेवन आवश्यक ामझा। शीघ्र ही वे किसी तीर्थके लिये उज्जैनसे निकल पड़े। ाजा उनसे पिताका प्यार पाती थी, अतः सारी प्रजा उनके साथ हो गयी। धीरे-धीरे वे दक्षिण समुद्र (बंगालकी खाड़ी)-तटपर आ गये।

एक ओर समुद्र लहरा रहा था, दूसरी ओर उसीके तटपर एक विशाल वट-वृक्ष भी शोभा पा रहा था। राजा इन्द्रद्युम्नने अनुमानसे समझ लिया कि मैं पुरुषोत्तमतीर्थमें आ पहुँचा हूँ। उन्होंने इन्द्रनील-प्रतिमाकी बहुत खोज की, पर वह न मिली। इससे उनके मनमें आया कि यह क्षेत्र भगवान्‌की प्रतिमाके बिना शून्य है, अतः मैं तपस्याके द्वारा भगवान्‌को प्रसन्न कर उनका दर्शन प्राप्त करूँ और उनकी आज्ञासे मूर्तिकी भी स्थापना करूँ। ऐसा सोचकर उन्होंने चारों दिशाओंके राजाओंको आमन्त्रित किया। उस राजसभामें सर्वसम्मतिसे यह प्रस्ताव पारित हुआ कि राजा इन्द्रद्युम्न एक साथ दो कार्य करें। एक ओर ये अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान करें और दूसरी ओर भगवान्‌के मन्दिरका निर्माण भी प्रारम्भ करें।

राजा इन्द्रद्युम्नकी तत्परतासे समयपर दोनों कार्य सम्पन्न हो गये। मन्दिर बहुत ही आकर्षक बना था, किंतु यह तय नहीं हो पाता था कि पत्थर, मिट्टी, लकड़ीमेंसे किसके द्वारा भगवान् जगन्नाथजीकी प्रतिमा बनायी जाय। इस समस्याके समाधानके लिये राजाने पुनः भगवान्‌की शरण ली। भक्तवत्सल भगवान्‌ने स्वप्नमें राजासे कहा—'राजन्! तुम्हारे यज्ञ और भक्तिसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, अब तुम चिन्ता छोड़ दो। इस तीर्थमें जो विश्वप्रसिद्ध प्रतिमा है, उसकी प्राप्तिका उपाय बता रहा हूँ। कल सूर्योदय होनेपर तुम प्रतिमा लानेके लिये अकेले ही समुद्रतटपर जाना। वहाँ एक विशाल वृक्ष दीख पड़ेगा, जिसका कुछ भाग जलमें और कुछ भाग स्थलपर है। कुल्हाड़ीसे उसे काटना। काटनेपर वहाँ एक अद्भुत घटना घटेगी और उसीसे प्रतिमाका निर्माण होगा।'

राजा इन्द्रद्युम्न स्वप्नके आदेशसे अकेले ही समुद्र-तटपर गये। वहाँ लहलहाता हुआ वह वृक्ष दीख पड़ा। उन्होंने स्वप्नादेशके अनुसार उसे काट गिराया। इसी समय भगवान् विष्णु और विश्वकर्मा ब्राह्मणके वेषमें वहाँ आ पहुँचे। भगवान् विष्णुने उनसे कहा—'आइये हम दोनों वृक्षकी छायामें बैठ जायँ। मेरे ये साथी चतुर शिल्पी हैं। मेरे निर्देशके अनुसार ये उत्तम प्रतिमा बना देंगे।'

विश्वकर्माने एक ही क्षणमें कृष्ण, बलराम और सुभद्राकी प्रतिमा बना दी। यह चमत्कार देखकर राजाको बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'भगवन्! आप दोनोंके व्यवहार मनुष्य-जैसे नहीं हैं। मैं आपका यथार्थ परिचय पाना चाहता हूँ।'

भगवान् बोले—'मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ, वर माँगो।' भगवान्‌का दर्शन कर और उनके मधुर वचन सुनकर राजाको हर्षातिरेकसे रोमाञ्च हो आया। उन्होंने गद्‌गद वाणीसे उनकी स्तुति की और अन्तमें वे चरणोंमें लोटकर बोले—'मैं चाहता हूँ कि आपके दुर्लभ पदको प्राप्त करूँ।' भगवान्‌ने कहा—'मेरी आज्ञासे अभी तुम दस हजार नौ सौ वर्षोंतक राज्य करो। उसके बाद तुम्हें मेरे उस पदकी प्राप्ति होगी, जिसे प्राप्त करनेके बाद सब कुछ प्राप्त हो जाता है। जबतक सूर्य और चन्द्र रहेंगे, तबतक तुम्हारी अक्षय कीर्ति फैली रहेगी। तुम्हारे यज्ञसे प्रकट होनेवाला तालाब इन्द्रद्युम्न नामसे प्रख्यात तीर्थ होगा। इस सरोवरमें एक बार भी स्नान कर मनुष्य इन्द्रलोकको प्राप्त करेगा। जो इसके तटपर पिण्डदान करेगा, वह इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार कर स्वयं इन्द्रलोक चला जायगा।'

राजाको वरदान देकर विश्वकर्माके साथ भगवान् अन्तर्हित हो गये। राजा बहुत देरतक आनन्दमें मग्न होकर वहीं ठहरे रहे। चेत आनेपर वे विमानाकार रथोंमें तीनों मूर्तियोंको बैठाकर बाजे-गाजेके साथ ले आये और शुभ मुहूर्तमें उन्होंने उनकी प्रतिष्ठा करवायी। इस प्रकार राजा इन्द्रद्युम्नके सत्प्रयाससे जगन्नाथजीका दर्शन सर्वसुलभ हो गया।

जो किसी दुर्बलका अपमान नहीं करता, सदा सावधान रहकर शत्रुके साथ बुद्धिपूर्वक व्यवहार करता है, बलवानोंके साथ युद्ध पसंद नहीं करता तथा समय आनेपर पराक्रम दिखाता है, वही धीर है।

अतिथि-सत्कार

एक दिन एक व्याध भयानक वनमें शिकार करते समय पत्थर-पानी-हवाकी चोटसे अत्यन्त दुर्गतिमें पड़ गया। कुछ दूर आगे बढ़नेपर उसे एक वृक्ष दीखा। उसकी छायामें जानेपर उसे कुछ आराम मिला। तब उसे स्त्री-बच्चोंकी चिन्ता सताने लगी। इधर सूर्यास्त भी हो गया था। ठंडके कारण उसके हाथ-पैरमें कम्पन हो रहा था और दाँत किटकिटा रहे थे।

उसी वृक्षपर एक कपोत अपनी पत्नीकी चिन्तामें घुल रहा था। उसकी स्त्री पतिव्रता थी और अभी चारा चुगकर आयी नहीं थी। वस्तुतः वह इसी व्याधके पिंजड़ेमें पड़ी थी। कपोत उसके न लौटनेपर विलाप कर रहा था। पतिका विलाप सुनकर कपोती बोली—'नाथ! मैं पिँजड़ेमें बँधी हुई हूँ। कृपया आप मेरी चिन्ता न कर अतिथि-धर्मका पालन करें। यह व्याध भूख और ठंडसे मरा जा रहा है। सायंकाल अपने आवासपर आ भी गया है। यह आर्त अतिथि है। यद्यपि यह शत्रु है, फिर भी अतिथि है। अतः इसका सत्कार करें। इसने जो मुझे पकड़ रखा है, वह मेरे किसी कर्मका फल है। इसके लिये व्याधको दोष देना व्यर्थ है। आप अपनी धर्ममयी बुद्धिको स्थिर करें। थके हुए अतिथिके रूपमें सारे देवता और पितर पधारते हैं। अतिथि-सत्कारसे सबका सत्कार हो जाता है। यदि अतिथि निराश होकर लौट जाता है तो सभी देवता और पितर भी लौट जाते हैं। आप इस बातपर ध्यान न दें कि इस व्याधने आपकी पत्नीको पकड़ रखा है; क्योंकि अपकार करनेवालेके साथ जो अच्छा बर्ताव करता है, वही पुण्यका भागी माना जाता है।'

कपोत अपनी पत्नीके धार्मिक प्रवचनसे बहुत प्रभावित हुआ। उसमें धर्ममयी बुद्धि जाग पड़ी। उसने व्याधके सामने उपस्थित होकर कहा—'तुम मेरे घरपर आये हुए अतिथि हो। मेरा कर्तव्य है कि मैं प्राण देकर भी तुम्हारी सेवा करूँ। इस समय तुम भूख और ठंडसे मृतप्राय हो रहे हो। थोड़ी देर प्रतीक्षा करो।' इतना कहकर वह उड़ा और कहींसे जलती हुई एक लकड़ी ले आया। उसे लकड़ीके ढेरपर रख दिया। धीरे-धीरे आग जल उठी। उससे व्याधकी जकड़न दूर हो गयी। तब कपोतने व्याधकी परिक्रमा कर अपनेको अग्निमें झोंक दिया। व्याध उसे अग्निमें प्रवेश करते देख घबरा गया और अपनेको धिक्कारने लगा। फिर उसने कपोती तथा अन्य पक्षियोंको पिँजड़ेसे निकालकर छोड़ दिया। कपोतीने भी अपने पतिके पथका अनुसरण किया। तत्पश्चात् कपोत और कपोती देवताके समान दिव्य शरीर धारणकर विमानपर चढ़कर स्वर्गलोककी ओर प्रस्थित हुए। उन्हें जाते देखकर व्याधने उनकी शरण ली और अपने उद्धारके लिये उपाय पूछा। इसपर कपोतने उसे गोदावरीमें स्नान करनेकी बात बतायी। एक मासतक स्नान करके व्याध भी स्वर्गलोकको चला गया। गोदावरीका वह स्थान आज भी कपोत-तीर्थके नामसे विख्यात है।

जो अपना कर्तव्य छोड़कर दूसरेके कर्तव्यका पालन करता है तथा मित्रके साथ असत् आचरण करता है, वह मूर्ख कहलाता है।

भागीरथी गङ्गा

राजा सगरकी दो पत्नियाँ थीं, किंतु किसीसे भी संतान न हुई। महर्षि वसिष्ठने इसके लिये राजाको उपाय बतलाया कि वे पत्नीसहित ऋषियोंकी सेवा किया करें।

एक बार राजा सगरके यहाँ एक महर्षि पधारे। राजाकी सेवासे संतुष्ट होकर महर्षिने वरदान दिया कि तुम्हारी एक पत्नीसे एक ही पुत्र होगा, जो वंशधर होगा और दूसरी पत्नीसे साठ हजार पुत्र होंगे। समय पाकर महर्षिका वरदान फलीभूत हुआ। महाराजकी दुश्चिन्ताएँ मिट गयीं। उन्होंने बहुतसे अश्वमेध-यज्ञ किये। एक अश्वमेध-यज्ञमें उनके घोड़ेको इन्द्रने चुरा लिया। रक्षक राजकुमारोंने घोड़ेकी खोजमें आकाश-पाताल एक कर दिया, किंतु घोड़ा नहीं मिला। हारकर राजकुमारोंने भगवान्‌की शरण ली, तब आकाशवाणी हुई—'सगरपुत्रो! तुम्हारा घोड़ा रसातलमें बँधा है।' राजकुमार रसातल जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने घोड़ेको बँधा पाया। एक व्यक्ति वहीं सो रहा था, उन लोगोंने समझा कि यही चोर है और वे उसे जगानेके लिये मारने-पीटने लगे।

वस्तुतः वे कपिलमुनि थे। घोड़ेसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं था। वे सगर-पुत्रोंके कटु वाक्यों एवं अनुचित पाद-प्रहारसे क्षुब्ध हो गये। उन्होंने उन्हें रोषपूर्ण दृष्टिसे देखा। देखते ही वे सब जलकर राख हो गये। देवर्षि नारदने इस बातकी सूचना राजा सगरको दी। राजा बहुत चिन्तित हुए। अन्तमें उन्होंने धैर्य धारणकर अपने पौत्र अंशुमान्‌को घोड़ा लानेका भार सौंपा। राजकुमार अंशुमान्‌ने भगवान् कपिलकी आराधना की और उनकी आज्ञासे घोड़ा लाकर अपने पितामहको सौंप दिया। यज्ञ सम्पन्न हो गया।

सगरके साठ हजार पुत्रोंका अभी उद्धार नहीं हो पाया था। अंशुमान् और इनके पुत्र दिलीप दोनों इस उद्धार-कार्यमें सफल नहीं हुए। दिलीपके पुत्र भगीरथ परम तेजस्वी थे। उन्होंने राजा सगरसे पूछा कि इन सबका उद्धार कैसे होगा। राजाने बताया कि इसका उपाय भगवान् कपिल ही बता सकते हैं। भगीरथकी अभी बाल्यावस्था ही थी। वीर बालक भगीरथ रसातलमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने भगवान् कपिलसे अपनी अभिलाषा कह सुनायी। भगवान् कपिलने आज्ञा दी कि तुम भगवान् शंकरकी आराधना कर उनकी जटासे गङ्गाजीको लाकर अपने पितरोंकी राखको आप्लावित करवा दो। बालक भगीरथ कैलास जाकर भगवान् शंकरकी तपस्या करने लगे। भगवान् शंकरने संतुष्ट होकर अपनी जटामें विराजमान गङ्गा उन्हें दे दी और यह भी बताया कि अब तुम गङ्गाकी स्तुति

करो। उनकी कृपासे करुणामयी गङ्गा माता प्रसन्न हो गयीं। वे भगीरथके कथनानुसार हिमालयसे बहती हुई रसातल पहुँचीं और अपने जलसे आप्लावित कर उन्होंने साठ हजार सगर-पुत्रोंका उद्धार कर दिया।

इस तरह भगवान् शंकरकी जटामें स्थित गङ्गा दो भागोंमें बँटकर जीवोंपर अनुकम्पा कर रही हैं। विन्ध्यगिरिके उत्तर-भागमें ये भागीरथी गङ्गा कहलाती हैं और दक्षिण-भागमें गौतमी-गङ्गा (गोदावरी) नामसे जानी जाती हैं।

जो न चाहनेवालोंको चाहता है और चाहनेवालोंको त्याग देता है तथा जो अपनेसे बलवान्‌के साथ वैर बाँधता है, उसे मूढ़ विचारका मनुष्य कहते हैं।

मौतकी भी मौत

जो ईश्वरका भक्त होता है, उसका स्वामी ईश्वर होता है। उसपर मौतका अधिकार नहीं होता। अनधिकार चेष्टा करनेसे मौतकी भी मौत हो जाती है।

गोदावरीके तटपर 'श्वेत'नामक एक ब्राह्मण रहते थे। उनका सब समय निरन्तर साम्ब सदाशिवकी पूजामें व्यतीत होता था। वे अतिथियोंको शिव समझकर उनका भलीभाँति आदर-सत्कार किया करते थे। उनका शेष समय भगवान्‌के ध्यानमें बीतता था। उनकी आयु पूरी हो चुकी थी, किंतु उन्हें इस बातका ज्ञान न था। उन्हें न रोग था न शोक, इसलिये आयु पूरी हो चुकी है, इसका आभास नहीं हुआ। उनका सारा ध्यान शिवमें केन्द्रित था। यमदूत समयसे उन्हें लेने आये, परंतु वे उनके घरमें प्रवेश नहीं कर पाते थे। इधर मृत्युका समय अतिक्रमण कर चुका था। चित्रगुप्तने मृत्युसे पूछा—'मृत्युदेव ! श्वेत अबतक यहाँ क्यों नहीं आया ? तुम्हारे दूत भी नहीं आये।' यह सुनकर मृत्युको श्वेतपर बहुत क्रोध आया। वे स्वयं उन्हें लेने दौड़े। गृहके द्वारपर यमदूत भयसे काँपते दिखायी पड़े। उन्होंने मृत्युसे कहा—'नाथ ! हम क्या करें ? श्वेत तो शिवके द्वारा सुरक्षित है। उसे तो हम देख भी नहीं पा रहे हैं, पास पहुँचना तो अत्यन्त कठिन है।'

दूतोंकी बात सुनकर मौतका क्रोध और भभक उठा। वे झट ब्राह्मणके घरमें प्रवेश कर गये। ब्राह्मण देवताको यह पता न था कि कहाँ क्या हो रहा है ? मृत्युदेवको झपटते देखकर भैरव बाबाने कहा—'मृत्युदेव ! आप लौट जाइये।' किंतु मृत्युदेवने उनकी बातको अनसुनी कर श्वेतपर फंदा डाल दिया। भक्तपर मृत्युका यह आक्रमण भैरव बाबाको सहन न हुआ। उन्होंने मृत्युपर डंडेसे प्रहार किया। मृत्युदेव वहीं ठंडे हो गये। यमदूत भागकर यमराजके पास पहुँचे। वे डरके मारे थर-थर काँप रहे थे। मृत्युकी मृत्यु सुनकर यमराजको बड़ा क्रोध हो आया। उन्होंने हाथमें यमदण्ड ले लिया और अपनी सेनाके साथ श्वेतके पास पहुँच गये।

वहाँ भगवान् शंकरके पार्षद पहलेसे ही खड़े थे। सेनापति कार्तिकेयके शक्ति-अस्त्रसे सेनासहित यमराजकी भी मृत्यु हो गयी। यह अपूर्व समाचार सुनकर भगवान् सूर्य देवताओंके साथ ब्रह्माके पास पहुँचे और ब्रह्मा सबके साथ घटनास्थलपर आये। देवताओंने भगवान् शंकरकी स्तुति की और कहा—'भगवन् ! यमराज सूर्यके पुत्र हैं। ये लोकपाल हैं। उन्होंने कोई अपराध या पाप नहीं किया है, अतः इनका वध नहीं होना चाहिये। इन्हें जीवित कर दें, नहीं तो अव्यवस्था हो जायगी। भगवन् ! आपसे की हुई प्रार्थना कभी व्यर्थ नहीं होती।'

भगवान् आशुतोषने कहा—'मैं भी व्यवस्थाके पक्षमें हूँ। वेदकी एक व्यवस्था है कि जो मेरे अथवा भगवान् विष्णुके भक्त हैं, उनके स्वामी स्वयं हमलोग होते हैं। मृत्युका उनपर कोई अधिकार नहीं होता। यमराजके लिये यह व्यवस्था की गयी है कि वे भक्तोंको अनुचरोंके साथ प्रणाम करें।'

इसके बाद भगवान् आशुतोषने नन्दीके द्वारा गौतमी गङ्गा (गोदावरी) का जल मरे हुए लोगोंपर छिड़कवाया। तत्क्षण सब-के-सब स्वस्थ होकर उठ खड़े हुए।

प्रतिशोध ठीक नहीं होता

बालक पिप्पलादने जब होश सँभाला, तब ओषधियोंको अभिभावकके रूपमें देखा। वृक्ष फल देते थे, पक्षी दाने लाते थे और मृग हरी वस्तुएँ। ओषधियाँ अपने राजा सोमसे माँगकर अमृतकी घूँटें पिप्पलादको पिलाया करती थीं। यह दृश्य देखकर पिप्पलादने वृक्षोंसे पूछा—'देखा यह जाता है कि मनुष्य माता-पितासे मनुष्य तथा वनस्पतियोंसे वनस्पति पैदा होते हैं, किंतु मैं आप वनस्पतियोंका पुत्र होकर भी मनुष्य कैसे हो गया ?' इसके उत्तरमें वनस्पतियोंने पिप्पलादको उसके जन्मकी कथा सुनाते हुए कहा—'महर्षि दधीचि तुम्हारे पिता और सती प्रातिथेयी माता हैं। इस तरह तुम मनुष्यके ही पुत्र हो। तुम्हारे माता-पिता हमें पुत्रकी तरह मानते थे, अतः हम भी तुम्हें पुत्र ही मानती आ रही हैं। तुम्हारी माँने अपना पेट चीरकर तुम्हें पैदा किया था और हमें सौंपकर स्वयं सती हो गयी थीं। तुम्हारे माता-पिताके मर जानेके वाद समूचा वन

बहुत दिनोंतक रोता रहा। वे हमें प्यार करते थे और हम सब न्हें।' इतना कहकर वनस्पतियाँ फूट-फूटकर रो पड़ीं।

यह सुनकर बालक पिप्पलादको बहुत विस्मय हुआ। सने अपने माता-पिताकी कहानी जाननी चाही। वनस्पतियोंने नके माता-पिताको श्रद्धासे नमनकर उनकी जीवन-गाथा ारम्भ की—'तुम्हारे पिताका नाम दधीचि था। उनमें सभी त्तम गुण विद्यमान थे। तुम्हारी माता उत्तम कुलकी कन्या नौर पतिव्रता थीं। उनका नाम गभस्तिनी था। वे लोपामुद्राकी ाहन थीं। तुम्हारे माता-पिताने तपस्या कर इतनी सामर्थ्य मर्जन कर ली थी कि उनके आश्रमपर दैत्य-दानवोंका भाक्रमण नहीं हो पाता था। एक दिन विष्णु, इन्द्र आदि सभी वता आश्रममें आये। दैत्योंपर विजय पानेसे वे प्रसन्न थे। ुम्हारे माता-पिताने उनका भावभीना सत्कार किया। वताओंने कहा—'आप-जैसे महर्षि जब हम लोगोंपर इतनी कृपा रखते हैं, तब हमारे लिये क्या दुर्लभ है? हमने शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर ली है। अब चाहते हैं कि अपने अस्त्र-शस्त्र आपके आश्रममें रख दें, क्योंकि तीनों लोकोंमें आपका आश्रम ही निरापद स्थान है। यहाँ आपकी तपस्याके प्रभावसे दैत्य आदि प्रवेश नहीं कर पाते।'

उदारचेता मुनिने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तुम्हारी माताने उन्हें रोकते हुए कहा—'नाथ! यह कार्य विरोध उत्पन्न करनेवाला है। इस काममें आप न पड़ें। आप तो समदर्शी हैं। आपके लिये शत्रु-मित्र बराबर हैं। अस्त्र-शस्त्र रखनेसे दैत्य और दानव आपसे शत्रुता रखने लगेंगे। धरोहर-रूपमें किसीका धन रखना साधु पुरुषोंके लिये उचित नहीं कहा गया है।'

महर्षि दधीचिने कहा—'देवता सृष्टिके रक्षक हैं और मैंने 'हाँ' कर भी दिया है, इसलिये अब 'नहीं' कहना अनुचित है।' देवता अस्त्र-शस्त्र आश्रममें रखकर चले गये। इधर दैत्य महर्षिसे द्वेष करने लगे। महर्षिको चिन्ता हुई कि दैत्य बड़े वीर तो हैं ही, साथ ही तपस्वी भी हैं। जब वे आक्रमण करेंगे तब मैं शस्त्रोंकी रक्षा नहीं कर पाऊँगा, ऐसा विचारकर उन्होंने अस्त्र-शस्त्रोंकी रक्षाके लिये एक उपाय किया। उन्होंने पवित्र जलको अभिमन्त्रित कर उससे अस्त्र-शस्त्रोंको नहलाया और उस जलको स्वयं पी लिया। तेज निकल जानेसे वे सभी अस्त्र-शस्त्र शक्तिहीन हो गये। इसलिये वे धीरे-धीरे नष्ट हो गये।

बहुत दिनोंके बाद देवता महर्षिके आश्रममें पहुँचे, क्योंकि उनके शत्रुओंने फिर सिर उठाया था। महर्षिने उन्हें बतलाया कि उन अस्त्रोंकी सुरक्षाके लिये उनका तेज मैंने पी लिया है। वे अब मेरी हड्डियोंमें मिल गये हैं। आप हड्डियाँ ही ले जायँ। मेरे शरीरका यह सुन्दर उपयोग हो रहा है। महर्षिने योगके द्वारा शरीरका त्याग कर दिया। विश्वकर्माने उन हड्डियोंसे दिव्य अस्त्रोंका निर्माण किया। वे ही देवताओंकी विजयके कारण बने।

'इस अवसरपर माता गभस्तिनी नदी-तटपर गयी थीं। पार्वतीकी पूजामें लगे रहनेसे लौटनेमें देर हो गयी थी। उस समय वे गर्भवती थीं। आश्रममें आनेपर उन्होंने अपने पतिदेवको नहीं देखा। अग्निदेवताने सारी घटना उन्हें सुना दी। उन्होंने पतिके कार्यकी सराहना की, फिर तीनों अग्नियोंकी पूजा करके अपना पेट चीरकर तुम्हें हाथसे निकाल दिया। तुम्हें हमलोगोंको सौंपकर पतिके केश आदिके साथ वे अग्निमें प्रवेश कर गयीं। उस समय आश्रमका प्रत्येक प्राणी दुःखसे संतप्त होकर रो उठा। सब कह रहे थे कि दधीचि और प्रातिथेयी (गभस्तिनी) जितना हमें प्यार देते थे, उतना अपने माता-पिता भी प्यार नहीं कर पाते। हमें धिक्कार है कि हम उनके दर्शनोंसे वञ्चित हो गये। अब यह बालक ही हमलोगोंके लिये दधीचि और प्रातिथेयी है। वनस्पतियोंने कथाका उपसंहार करते हुए कहा कि यही कारण है कि हम वनवासी तुम्हें पुत्रसे अधिक मानते हैं।'

बालक पिप्पलादको अपनी कथा सुनकर बहुत दुःख हुआ। माताने पेट चीरकर जो उसे निकाला था, इस बातसे उसे अधिक पीड़ा हुई। वह रोता हुआ बोला—'मैं अभागा हूँ, जो माताके कष्टका कारण बना। मैं उनकी सेवा तो कुछ कर ही न सका।' उसके बाद देवताओंके कृत्यपर उसे क्रोध हो आया। उसने कहा—'मैं देवताओंसे प्रतिशोध लूँगा। उन्होंने मेरे पिताका वध किया है, अतः मैं उनका वध करूँगा।' वनस्पतियोंने समझाया कि प्रतिशोध ठीक नहीं होता। तुम्हारे माता-पिताने विश्वके हितके लिये आत्मदान किया है। तुम भी उन्हींके पथपर चलो।

बच्चेके अन्तःकरणमें प्रतिशोधकी भावना शान्त नहीं हुई। उसने भगवान् शंकरकी प्रार्थना की कि शत्रुओंके नाशके लिये आप मुझे शक्ति दीजिये। भगवान्ने उसे 'कृत्या' दी। पिप्पलादने उसे आज्ञा दी कि तू मेरे शत्रु देवताओंको खा जा। देवता भाग खड़े हुए और उन्होंने भगवान् शंकरकी शरण ली। भगवान् शंकरने पिप्पलादको समझाया कि तुम्हारे पिताने विश्वके हितके लिये अपना प्राण दे दिया है। उनके समान दयामय कौन होगा ? तुम्हारी माता भी उन्हींके साथ पतिलोक चली गयीं। उनकी समता किससे होगी ? तुम भी अपने [माता]-पिताके रास्तेपर ही चलो। तुम्हारे प्रतापसे देवता संकटमें [प]ड़ गये हैं। उन्हें तुम बचाओ। यही तुम्हारा कर्तव्य है। प्रतिशोध अच्छा नहीं होता।

पिप्पलाद शान्त हो गया। उसने भगवान् शंकरका उपदेश मान लिया। भगवान्ने और देवताओंने भी पिप्पलादको वरदान माँगनेको कहा। पिप्पलादने वर माँगा कि मैं अपने माता-पिताको देखना चाहता हूँ। दिव्य लोकसे उसके माता-पिता दिव्य विमानसे उपस्थित हो गये। उन्होंने कहा—'पुत्र ! तुम धन्य हो। तुम्हारी कीर्ति स्वर्गलोकतक पहुँच चुकी है। तुमने भगवान् शंकरका प्रत्यक्ष दर्शन किया है।' वचन समाप्त होते ही आकाशसे पिप्पलादके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी। देवताओंने जय-जयकार किया।

(ला०बि०मि०)

व्रतमें जागरण और संगीतका महत्त्व

अवन्ती (उज्जैन) के छोरपर एक चाण्डाल रहता था। [व]ह संगीतका मर्मज्ञ था। उसमें विष्णुकी भक्ति कूट-कूटकर [भ]री थी। वह सदाचारी था, व्रतका दृढ़तासे पालन करता था, [प्र]त्येक मासकी एकादशी तिथिको निराहार-निर्जल रहकर [उ]पवास करता और रातमें जागरण करता था तथा प्रेमार्द्र-[हृ]दयसे भगवान्के नाम, रूप, लीला और धामका गीत गाया [क]रता था। यह उसका नियम था जो कभी भंग नहीं होता था। [द्वा]दशी तिथिको वह दामाद, कन्याओं और भानजोंको भोजन [क]राकर स्वयं भोजन करता था।

एक बार एकादशीको वह भगवान्के लिये वनसे फूल [ल]ाने गया। अच्छे-अच्छे फूलोंके चयनमें वह मग्न था। इसी [ब]ीच एक ब्रह्मराक्षसने उसे पकड़ लिया और उसे खाना चाहा। [च]ाण्डालने प्रार्थना की कि आज तुम मुझे छोड़ दो, कल खा [ले]ना। आज रातको एकादशीका जागरण और कीर्तन करना [है]। भगवान्के कार्यमें तुम्हें विघ्न नहीं पहुँचाना चाहिये। कल [स]बेरे मैं घर न जाकर सीधे तुम्हारे पास पहुँच जाऊँगा। मेरी [ब]ातपर विश्वास करो। विश्वासके लिये मैं शपथ भी खाता हूँ। [च]ाण्डालके शपथपर उसे विश्वास हो गया। उसने उसे छोड़ [दि]या। चाण्डाल फूल लेकर भगवान् विष्णुके मन्दिरपर आया। [पु]जारीने उसके हाथोंसे फूल लेकर जलसे छींटा देकर [भ]गवान्को अर्पण कर दिया। चाण्डाल मन्दिरके बाहर बैठकर [भ]गवान्को संगीत-सुमन भेंट करने लगा।

प्रातःकाल होनेपर वह अपने वचनको सत्य करनेके लिये ब्रह्मराक्षसके पास पहुँचा। विस्मयसे राक्षसकी आँखें विकसित हो गयीं। चाण्डालने नम्रतासे कहा—'राक्षस ! अपने वचनके अनुसार मैं अपना शरीर तुम्हें अर्पण करने आया हूँ। इससे तुम अपनी क्षुधा मिटा लो।' राक्षसने उसके रातभरका कार्य-क्रम सुना और कहा—'तुम अपनी रात्रिचर्याका पुण्य हमें दे दो, मैं तुम्हें छोड़ दूँगा।' चाण्डाल राजी नहीं हुआ। तब राक्षसने एक पहर जागनेके ही पुण्यका फल माँगा। चाण्डाल फिर भी उसे न मानते हुए बोला—'तुम इधर-उधरकी बातें क्यों करते हो, तुमसे मुझे खानेकी बातचीत हुई थी, न कि पुण्य देनेकी। मैं उपवासके एक क्षणका पुण्य भी नहीं दे सकता। तुम मुझे खाकर अपना वादा पूरा करो।'

राक्षस गिड़गिड़ाकर बोला—'तुमने जो अन्तिम गीत गाया है, उसीका पुण्य मुझे दे दो।' इसपर चाण्डालने एक शर्त रखकर कहा कि 'यदि आजसे तुम किसी प्राणीको न खाओ, तब मैं अन्तिम गीतका पुण्य तुम्हें अर्पण कर दूँगा।' ब्रह्मराक्षसने उसकी शर्त स्वीकार कर ली। इससे प्रभावित होकर चाण्डालने उसे अन्तिम गीतके फलके साथ-साथ आधे मुहूर्तके जागरणका भी फल दे दिया। फल प्राप्त करते ही राक्षसमें शान्ति और उदात्त भावना भर गयी। इस घटनासे चाण्डालके मनमें वैराग्य हो गया। वह अपनी पत्नीका भार पुत्रोंपर रखकर पृथ्वी माताकी परिक्रमा करने लगा और अन्तमें परम गतिको प्राप्त हुआ।

सृष्टि-रचनाके लिये जब ब्रह्माजीने तप किया, तब सर्वप्रथम उन्हें पुराणका स्मरण हुआ। उस समय पिण्डीभूत एक ही पुराण था। उसमें सौ करोड़ श्लोक थे[१]। ब्रह्माके द्वारा स्मृत वही पुराण चौदहों भुवनोंमें प्रचलित हुआ। द्वापरके अन्तमें जब बुद्धिका ह्रास होने लगा, तब भगवान् व्यासदेवने सौ करोड़ श्लोकोंको चार लाखमें संक्षिप्त कर अठारह भागोंमें विभक्त कर दिया[२]। इन अठारह पुराणोंमें ब्रह्मपुराणको पहला और पद्मपुराणको दूसरा स्थान प्राप्त है। पद्मपुराण नाम पड़नेका कारण यह है कि इसमें उस समयके वृत्तान्तका वर्णन है, जिस समय यह जगत् स्वर्णमय कमलके रूपमें परिणत था। इस पद्मपुराणकी श्लोक-संख्या पचपन हजार है[३]।

पद्मपुराणमें सात खण्ड हैं। पहला-सृष्टिखण्ड, दूसरा-भूमिखण्ड, तीसरा-स्वर्गखण्ड, चौथा-ब्रह्मखण्ड, पाँचवाँ-पातालखण्ड, छठा-उत्तरखण्ड और सातवाँ-क्रियायोगसार। यह बात पद्मपुराणके स्वर्गखण्डके प्रथम अध्यायके तेईससे छब्बीस श्लोकोंमें वर्णित है। नारदपुराणमें इसके पाँच ही खण्ड बताये गये हैं। नारदपुराणकी विषयानुक्रमणिकामें उक्त विभागक्रममें निर्दिष्ट ब्रह्मखण्डका स्वर्गखण्डमें और क्रियायोगसारका उत्तरखण्डमें अन्तर्भाव मान लेना चाहिये। इस पुराणकी कुछ संक्षिप्त कथाएँ नीचे दी जा रही हैं—

कथा-आख्यान—

संत-समागमके लिये तप

एक बार भीष्मजीने हरिद्वारमें परम उग्र तप किया। इस तपका एकमात्र उद्देश्य यह था कि उन्हें किसी महापुरुषका सांनिध्य प्राप्त हो, जिनसे ज्ञानका अर्जन किया जा सके। भीष्मजी अपनी पितृ-भक्तिके कारण विश्वविश्रुत हो गये थे। वे जितने वीर थे, उतने ही धर्मनिष्ठ भी थे। वे उन दिनों संध्या, हवन, स्वाध्याय और तर्पणके द्वारा देवताओं एवं पितरोंको तृप्त करते हुए शेष समयमें भगवान्‌के ध्यानमें निमग्न रहते थे। कठोर नियमके पालनसे उनका शरीर सूख गया था। उनके इस नियमने भगवान् ब्रह्माको प्रसन्न कर लिया। ब्रह्माने अपने पुत्र पुलस्त्यजीको आज्ञा दी—'तुम भीष्मके पास जाओ और उनके मनमें जो-जो कामनाएँ हों, उन्हें पूरी कर दो।'

पिताकी आज्ञा शिरोधार्य कर पुलस्त्यजी हरिद्वारमें भीष्मजीके पास आये। उस समय भीष्मजी ध्यानमग्न थे। उनका ध्यान भंग करते हुए पुलस्त्यजीने कहा—'वीर! तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारी तपस्यासे मेरे पिता ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हैं। उन्होंने ही मुझे तुम्हारे पास भेजा है, अतः तुम स्वेच्छानुसार मुझसे वर माँगो।' यह सुनकर भीष्मजीने जब आँखें खोलीं, तब सामने पुलस्त्यजीको देखा। देखते ही वे उनके चरणोंपर गिर पड़े। फिर साष्टाङ्ग प्रणाम करके उन्होंने कहा—'आज मेरा जन्म सफल हो गया, जो आपके पवित्र एवं दुर्लभ चरणोंके दर्शन हुए। आप इस कुशकी चटाईपर विराजमान हों।'

तदनन्तर भीष्मजीने पाद्य और पलाशके दोनेमें दूब, चावल, फूल, कुश, सरसों, दही, शहद, जौ और दूधका अर्घ्य

---

१. पुराणमेकमेवासीत् तदा कल्पान्तरेऽनघ। त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥ (म० पु० ५३।४)

२. कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप॥
व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे युगे।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा॥
तथाष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते। (म० पु० ५३।८-१०)

३. तद्वृत्तान्ताश्रयं तद्वत् पाद्यमित्युच्यते बुधैः। पाद्यं तत्पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणीह कथ्यते॥ (म० पु० ५३।१४)

बनाकर प्रस्तुत किया। भीष्मजीकी विनम्रतासे प्रसन्न होकर पुलस्त्यजीने कुशासनपर बैठकर उनके पाद्य और अर्घ्यको स्वीकार किया और उनके सद्गुणोंकी प्रशंसा करते हुए कहा—'तुम जो चाहो, पूछो। मैं तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दूँगा।' ये ही प्रश्न और इनके उत्तर पद्मपुराणमें विस्तारपूर्वक वर्णित हैं।

इस तरह भीष्मजीने अपने आचरणसे प्रत्येक मनुष्यके लिये यह कर्तव्य निर्देश किया है कि वह अपने नित्य-कर्मको निभाते हुए अपने जीवनको प्रशस्त बनानेके लिये सत्संगति अवश्य किया करे। यदि संतकी संगति सुलभ न हो तो उसके लिये तपस्या करे। (ला०बि०मि०)

सत्यकी महिमा

(नन्दा गायको दिव्य लोककी प्राप्ति)

एक बार ग्वालोंने गोचर-भूमि और जलकी सुविधा देखकर सरस्वती नदीके आस-पास डेरा डाल दिया। उनके पास गायोंका एक बहुत बड़ा झुंड था। उन्होंने गायोंके रहनेके लिये बाड़ लगा दी और अपने लिये घर बना लिये। ग्वाले चारों ओर गायोंकी रक्षा करते थे। गायें भी घास पाकर बहुत प्रसन्न थीं। उन गायोंके झुंडमें एक हृष्ट-पुष्ट गाय थी, जिसका नाम नन्दा था। वह सदा प्रसन्न रहती थी और सब गौओंके आगे निर्भय होकर चला करती थी। एक दिन वह झुंडसे बिछुड़ गयी और वहाँ पहुँच गयी, जहाँ एक भयंकर बाघ मुँह बाये बैठा था। बाघ गरजते हुए नन्दापर टूट पड़ा। बेचारी नन्दाकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गयी। उसे अपना नन्हा बछड़ा याद आने लगा। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली।

बाघ बोला—'मालूम पड़ता है कि तुम्हारी आयु समाप्त हो गयी है। तभी तो तुम मेरे पास अपने-आप आयी हो। फिर शोक क्यों कर रही हो?'

नन्दाने बाघको प्रणाम किया और कहा—'मेरा अपराध क्षमा करो, मुझे अपने जीवनका शोक नहीं है। मैं अपने बच्चेके लिये शोक कर रही हूँ। वह अभी बहुत छोटा है। पहली ब्यानका बच्चा होनेके कारण वह मुझे प्राणोंसे बढ़कर प्यारा है। अभी वह घास भी नहीं सूँघता। मेरे न रहनेपर उसकी क्या दशा होगी? मैं उसे दूध पिलाना चाहती हूँ और उसका मस्तक चाटना चाहती हूँ। यदि तुम मुझे थोड़ी देरके लिये छोड़ दो तो मैं बछड़ेको प्यार कर और हिताहितका उपदेश देकर लौट आऊँगी। उसके बाद तुम मुझे खा जाना।'

बाघने नन्दाकी बातको अनसुनी कर दी। तब नन्दाने बहुत-बहुत शपथें खायीं। शपथोंका प्रभाव बाघपर पड़ा। उसने नन्दाको लौट जाने दिया। नन्दा उतावलीके साथ बछड़ेकी ओर बढ़ी। दूरसे ही उसने अपने बछड़ेकी पुकार सुनी। अब उसकी उतावली और बढ़ गयी। वह दौड़ती हुई बछड़ेके पास जा पहुँची। उसकी आँखोंके आँसू और जोरसे बहने लगे थे। बछड़ेने पूछा—'माँ! तुम तो सदा प्रसन्न रहती थी। आज इस तरह क्यों रो रही हो?' नन्दाने आप-बीती कह सुनायी और अन्तमें कहा—'वत्स! मुझे महान् दुःख इसलिये हो रहा है कि अब मैं तुम्हें देख न सकूँगी। मैं बाघको शपथ देकर आयी हूँ, अतः सत्यकी रक्षाके लिये मुझे उसके पास जाना ही होगा।'

बछड़ेने कहा—'माँ! तुम्हारे साथ मैं भी चलूँगा। यदि बाघ मुझे मार डालेगा तो मुझे वह उत्तम गति मिलेगी जो मातृ-भक्त पुत्रोंको मिला करती है।' नन्दाने बेटेको ऐसा करनेसे मना किया। उसके बाद नन्दाने पुत्रको संसारमें रहनेके बहुत-से ढंग बताये और धर्मपर अटल रहनेपर जोर दिया। पुत्रको प्यार देनेके बाद नन्दाने अपनी माता, सखियों और गोप-गोपियोंका अभिनन्दन किया तथा बाघके पास लौटनेका अपना निश्चय सुनाया। उन लोगोंको नन्दाका निश्चय पसंद नहीं आया। उन्होंने कहा कि अपनी रक्षाके लिये शपथ और सत्यकी दुहाई देना कर्तव्य होता है, अतः तुम मत जाओ, किंतु सत्यवादिनी नन्दाने कहा कि 'दूसरेके प्राणोंको बचानेके लिये झूठ बोलना पाप नहीं है, किंतु अपने बचावके लिये झूठ बोलना पाप है। मैं सत्यकी रक्षा चाहती हूँ; क्योंकि सत्य ही उत्तम तप है।'

सत्यवादिनी नन्दा सबको अनुनय-विनयसे मनाकर बाघके पास पहुँची। ठीक इसी अवसरपर मातृ-भक्त बछड़ा भी अपनी पूँछ उठाये दौड़ता हुआ बाघ और अपनी माँके बीचमें आकर खड़ा हो गया, मानो वह बाघसे प्रार्थना कर रहा

हो कि 'तुम मुझे ही खा लो और मेरी माँको छोड़ दो।'

नन्दाने बाघसे कहा—'मैं सत्यधर्मका पालन करती हुई तुम्हारे पास आ गयी हूँ। अब तुम मेरे मांससे अपनी इच्छा पूरी कर लो।'

बाघ नन्दाकी सत्यनिष्ठाको देखकर आश्चर्यचकित हो गया। उसने कहा—'तुम्हारी शपथ सुनकर मैं इस कौतूहलमें पड़ गया था कि यह जाकर लौटेगी या नहीं! सत्यकी परीक्षाके लिये ही मैंने तुम्हें भेजा था। मैं तुम्हारे भीतर सत्यकी खोज कर रहा था, उसे पा लिया। आजसे तुम मेरी बहन हुई और यह बछड़ा हमारा भानजा। तुम्हारी सत्यनिष्ठासे मैं बहुत ही प्रसन्न हूँ और तुम्हारा स्वागत करता हूँ। तुम्हारी धर्मनिष्ठाने मेरे भी जीवनको बदल दिया है। अब मैं भी हिंसावृत्ति छोड़कर धर्मको अपनाऊँगा। बहन! अब मुझे धर्मका उपदेश दो।' नन्दाने उससे सभी प्राणियोंको अभयदान देनेके लिये कहा; क्योंकि जो लोगोंको अभयदान देता है, वह सभी भयोंसे मुक्त होकर परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है।

नन्दाकी संगतिसे बाघको अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त स्मरण हो आया। उसने कहा—'बहन! पूर्वजन्ममें मैं राजा था। एक बार इसी वनमें शिकार खेलने आया, तब मुझसे एक अधर्म हो गया। मैंने दूध पिलाती हुई एक मृगीको मार दिया। उसीके शापसे मैं बाघ बन गया हूँ। बाघ बन जानेके पश्चात् मैं बिलकुल भूल गया था कि मैं राजा हूँ। यह तुम्हारी संगतिका प्रताप है कि मुझे अपने पूर्वजन्मकी बातें स्मरण हो आयीं। तुम धन्य हो और तुम्हारी संगति धन्य है। अच्छा, तुम अपना नाम सुनाकर मुझे कृतार्थ करो।'

नन्दाने अपना नाम सुनाया। नाम सुनते ही बाघका शरीर छूट गया और राजा अपने तेजस्वी रूपमें आ गये। ठीक उसी समय नन्दाके सत्यसे आकृष्ट होकर धर्मराज वहाँ प्रकट हो गये। उन्होंने प्रसन्नताके साथ कहा—'तुम्हारी धर्मनिष्ठासे मैं संतुष्ट हूँ। तुम मुझसे वर माँग लो।'

नन्दाने तीन वर माँगे—(१) मैं पुत्रके साथ उत्तम पदको पाऊँ, (२) यह स्थान तीर्थ बन जाय और (३) यहाँ सरस्वती-नदीका नाम मेरे नामसे 'नन्दा' पड़ जाय।

इसके बाद नन्दा तत्काल पुत्रके साथ उत्तम लोकमें चली गयी। राजा प्रभञ्जनने भी अपने राज्यको पा लिया।

विश्वहितके लिये आत्मदान

सत्ययुगमें कालकेय नामसे प्रसिद्ध दानवोंका एक समूह था, उनका विचार बहुत ही कलुषित था। वे समस्त विश्वका नाश कर देना चाहते थे। अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिये उन लोगोंने वृत्रासुरका आश्रय लेकर देवताओंपर चढ़ाई कर दी। देवता बुद्धिमान् थे। वे ब्रह्माकी शरणमें गये। ब्रह्माने उनकी जीतका एक ही उपाय बतलाया कि दधीच ऋषि यदि अपनी हड्डी दे दें और उससे वज्र बने तो उसीसे वृत्रासुरका संहार सम्भव है। इसके अतिरिक्त और उपाय नहीं है। विवश होकर देवता दधीच ऋषिके पास गये। उन्होंने अपनी माँग उनके सामने रखी। दधीच ऋषिने जब समझ लिया कि मेरी हड्डीसे विश्वकी रक्षा हो सकेगी, तब बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्होंने अपने शरीरका त्याग कर हड्डी देवताओंको अर्पित कर दी। इस महान् त्यागको देखकर देवताओंको रोमाञ्च हो आया।

विश्वकर्माने महर्षि दधीचकी हड्डीसे वज्र तैयार किया।

उसी वज्रसे वृत्रासुरका संहार हुआ। कालकेय दानवोंका भी बहुत कुछ सफाया हो गया। बचे हुए दानवोंने समुद्रमें छिपकर अपनी जान बचायी। इस तरह महर्षि दधीचके आत्मदानने विश्वको विनाशसे बचा लिया।

परलोकको न बिगड़ने दें

(अलोभसे अक्षय-लोककी प्राप्ति)

एक बार सप्तर्षिगण सनातन ब्रह्मलोकपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छासे तीर्थोंमें विचर रहे थे। इसी बीच भयानक अकाल पड़ गया। जनताको अन्नके लिये कष्ट होने लगा। शिलोञ्छवृत्तिसे भी जीविका चलाना कठिन हो गया था। सप्तर्षियोंको भी उपवास करने पड़ रहे थे। घूमते हुए वे सौराष्ट्र पहुँचे। वहाँका राजा वृषादर्भि बहुत प्रजा-वत्सल था। वह निरन्तर घूम-घूमकर लोगोंके अभावकी पूर्ति करता रहता था। राजाने सप्तर्षियोंको अन्नकी खोजमें भटकते देखा, तब उसने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और प्रार्थना की—'मुनिवर! आपलोग ब्राह्मण हैं। ब्राह्मणोंका दान लेना कर्तव्य है। मैं आपको दूध देनेवाली गायें, अन्न, वस्त्र, रत्न, स्वर्ण आदि जो चाहें, देनेको तैयार हूँ। आप इस तरह कष्ट क्यों झेल रहे हैं?'

सप्तर्षियोंने कहा—'राजाका प्रतिग्रह (दान) अधिक निषिद्ध है, इसलिये आप इन वस्तुओंको और किसीको दे दें।' यह कहकर सप्तर्षि आगे बढ़ गये। राजाने उन्हें देनेका दूसरा मार्ग अपनाया। वह गूलर-फलोंमें स्वर्ण भरवाकर उन्हें उनके रास्तेमें बिखेरवा दिया। ऋषियोंकी दृष्टि जमीनमें लगी थी। सबसे पहले अत्रि ऋषिको एक गूलर-फल मिला, वह वजनदार था, अतः उन्होंने अन्य ऋषियोंको सावधान करते हुए कहा—'मैं इतना अल्पबुद्धि नहीं हूँ कि गूलर-फलमें छिपाये हुए द्रव्यको न परख सकूँ। ये गूलर-फल हमलोगोंके लिये त्याज्य हैं।' वसिष्ठ, कश्यप आदि ऋषियोंने भी धर्मके तत्त्व सुनाये और गूलर-फलको यों ही छोड़कर आगे बढ़ गये। कुछ दूर बढ़नेपर शुनःसख नामका एक व्यक्ति उनके साथ हो गया। आगे जानेपर एक बहुत बड़ा सरोवर मिला, जो कमलोंसे भरा हुआ था। ऋषियोंने कमलकी मृणालोंको इकट्ठा किया। तत्पश्चात् स्नानकर संध्या-तर्पण करनेके बाद जब वे भगवान्को भोग लगानेके लिये कमलनालके पास पहुँचे, तब वहाँ एक भी कमलनाल न थी। कमलनालोंको किसने चुराया, यह एक प्रश्न था। सभी ऋषियोंने अपनी-अपनी निष्कलङ्कताके लिये शपथें खायीं। ये सभी शपथें धर्मके गम्भीर रहस्योंको प्रकट करनेवाली थीं। जब शुनःसखकी बारी आयी, तब उसने शपथमें कहा—'जिसने कमलनालकी चोरी की हो वह दुर्बुद्धि ब्रह्मलोकको जाय।' ऋषियोंने ताड़ लिया कि इसीने चोरी की है। तब ऋषियोंने कहा—'तुमने चोरी की है।' शुनःसखने इसे स्वीकार कर लिया। उसने कहा कि 'आपके मुखसे धर्मके तत्त्वोंको सुननेके लिये ही मैंने मृणालोंकी चोरी की है। मैं इन्द्र हूँ और आपलोगोंको विमानपर बैठाकर ले चलनेके लिये आया हूँ। आपलोगोंने लोभपर विजय पानेके कारण अक्षय-लोकपर भी विजय पा ली है।' इन्द्रने बड़े सम्मानके साथ ऋषियोंको विमानपर बैठाया और अक्षयलोकमें पहुँचा दिया।

संतसे वार्तालापकी महिमा

(प्रेतत्वसे छुटकारा)

पृथु नामक एक कर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। वे प्रतिदिन संध्या, होम, तर्पण, जप-यज्ञ आदि धार्मिक कार्योंमें लगे रहते थे। उन्होंने मन और इन्द्रियोंको वशमें कर लिया था। वे सभी प्राणियोंमें परमात्माके दर्शन करते और सबकी भलाई करते रहते थे। वे इसके लिये सदा सतर्क रहते थे कि उनका परलोक न बिगड़ जाय। वे सबसे मीठी वाणी बोलते थे और सबका आदर करते थे।

एक बार वे तीर्थयात्राके विचारसे घरसे निकल पड़े। कुछ दूर जानेपर मार्गमें एक ऐसा स्थान मिला, जहाँ न पानी था न कोई वृक्ष। वहाँकी सारी भूमि काँटोंसे भरी थी। इतनेमें उनकी दृष्टि पाँच भयानक आकृतियोंपर पड़ी। उन्हें देखकर उनके हृदयमें कुछ भयका संचार हो आया, किंतु वे सावधान हो गये और

उन्होंने पूछा—'तुमलोग कौन हो ? तुम्हारे रूप इतने विकराल क्यों हैं ?' प्रेतोंने कहा—'हम बहुत दिनोंसे भूख-प्याससे पीड़ित हैं। हमारा ज्ञान और विवेक नष्ट हो गया है। हम इतना भी न समझ पाते कि कौन दिशा किधर है ? हमें न पृथ्वी दीखती है न आकाश। हमलोग बहुत कष्टमें हैं। हममेंसे एकका नाम पर्युषित, दूसरेका नाम सूचीमुख, तीसरेका नाम शीघ्रग, चौथेका नाम रोधक और पाँचवेंका नाम लेखक है।'

वे ब्राह्मण इन नामोंको सुनकर चौंक पड़े और पूछने लगे, 'तुमलोगोंको ये विचित्र नाम क्यों प्राप्त हुए हैं ?'

तब उनमेंसे एकने कहा—'जब मैं मनुष्य था, तब स्वयं तो स्वादिष्ट भोजन करता था और ब्राह्मणोंको बासी (पर्युषित) भोजन देता था। इसी पापसे मेरा नाम 'पर्युषित' पड़ा है। मेरे इस साथीका नाम 'सूचीमुख' इसलिये पड़ा है कि इसने अन्न चाहनेवाले ब्राह्मणोंकी हिंसा की थी। इसी पापसे इसे सुईकी तरह मुख प्राप्त हुआ है, जिससे अन्न-जल मिलनेपर भी यह भरपेट खा-पी नहीं सकता। तीसरे साथीका 'शीघ्रग' नाम इसलिये पड़ गया कि भूखे ब्राह्मणोंके अन्न माँगनेपर यह वहाँसे शीघ्रतापूर्वक भाग जाता था। चौथे साथीका 'रोधक' नाम इसलिये पड़ा है कि यह किवाड़ बंदकर स्वयं स्वादिष्ट भोजन किया करता था। पाँचवें साथीका 'लेखक' नाम इसलिये पड़ा है कि किसीके कुछ माँगनेपर यह पैरसे धरती कुरेदने लगता था।'

यह सुनकर ब्राह्मणने पूछा—'तुम सब खाते क्या हो ?' प्रेत लज्जित हो गया और बोला कि 'आप हमारे आहारके सम्बन्धमें न पूछते तो अच्छा होता; क्योंकि हमारा आहार बहुत घृणित है। बलगम, मल, मूत्र, स्त्रीके शरीरका रज यही हमारा भोजन है। हम सब घरोंमें जा भी नहीं सकते, केवल उन्हीं घरोंमें जाते हैं जहाँ अपवित्रता रहती है। जहाँ बलिवैश्वदेव, वेदमन्त्रोंका उच्चारण, होम, व्रत नहीं होते, वहाँ हम भोजन करते हैं।'

तत्पश्चात् प्रेतोंने ब्राह्मणसे पूछा—'हम इस प्रेत-योनिमें बहुत दुःखी हैं। आप तपस्याके धनी हैं। कृपया बताइये कि किस-किस कर्मसे जीव प्रेतयोनिमें नहीं पड़ता।' ब्राह्मणने उत्तर दिया—'जो व्रतोंका अनुष्ठान करता है, अग्निका सेवन करता है, देवता, अतिथि, गुरु तथा पितरोंकी पूजा करता है, वह प्रेतयोनिमें नहीं पड़ता। जिसके हृदयमें सभी प्राणियोंके प्रति दया भरी है, जो समता (समान-दृष्टि) रखता है और जो छहों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या) शत्रुओंको जीत लेता है, वह प्रेत-योनिमें नहीं पड़ता।'

प्रेतोंने पुनः पूछा—'हम बहुत दुःखी हैं। आपकी बातोंमें हमें सुख मिलता है। इसलिये यह भी बताइये कि जीव किस कर्मसे प्रेत-योनिमें जाता है ?'

ब्राह्मण देवताने बताया—'यदि कोई द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) शूद्रके अन्नको पेटमें लिये हुए मर जाता है, तो वह प्रेत होता है। जो शराब, मांस और परायी स्त्रीका सेवन करता है, वह प्रेत होता है। जो किसीकी धरोहर हड़प लेता है और विश्वासघात करता है, वह अवश्य प्रेत होता है। जो आचार्य अनेक ऋत्विजोंको मिली हुई दक्षिणाको स्वयं हड़प जाता है, वह प्रेत होता है।'

ब्राह्मण देवताकी बात पूरी होते ही नगाड़ोंकी आवाज सुनायी पड़ने लगी और फूलोंकी वर्षा होने लगी, साथ ही पाँच विमान भी उतर आये। इसके बाद आकाशवाणी सुनायी दी—'ब्राह्मणके साथ वार्तालाप करने एवं पुण्यकर्मोंके कीर्तनके प्रभावसे पाँचों प्रेतोंको दिव्यलोक मिले हैं।'

देखते-देखते पाँचों प्रेत दिव्य शरीर धारणकर विमानपर चढ़कर दिव्यलोकको चले गये।

प्रणाम करनेसे ब्रह्माकी आयुकी प्राप्ति

भृगुके पुत्र थे—मृकण्डु। उन्होंने अपनी पत्नीके साथ घोर तपस्या की। कुछ दिनोंके बाद उनके पुत्र हुआ। जब वह पाँच वर्षका हुआ, तब एक सिद्धकी दृष्टि उसपर पड़ी। बालकको देखकर वे विचारमग्न हो गये। वे सोच रहे थे कि यह बालक बहुत ही सुशील और सुन्दर है, किंतु बेचारेकी आयु छः मास ही शेष है। उसके पिताके पूछनेपर सिद्धने यह बात बता दी और कहा कि इससे कुछ अच्छे कार्य करा लो।

मृकण्डुजीने पुत्रका उपनयन कर दिया, उसे संध्या सिखा

दी और एक नियम बताया कि जो कोई मिल जाय, उसे प्रसन्नताके साथ प्रणाम किया करो। बालकने अपने पिताकी आज्ञाको शिरोधार्य किया। सबमें परमात्माकी स्थिति मानकर वह छोटा बालक सबको श्रद्धाके साथ प्रणाम करने लगा। इस तरह नियम-पालन करते हुए उसे पाँच महीने पचीस दिन बीत गये। अब उसकी आयुके केवल पाँच दिन ही शेष थे। इसी बीच उधर सप्तर्षि आ निकले। नियमानुसार बालकने बड़ी श्रद्धासे उन्हें भी प्रणाम किया। सप्तर्षियोंने **'आयुष्मान् भव वत्स'** कहकर आशीर्वाद दे दिया। पीछे विचार करनेपर उन्हें ज्ञात हुआ कि इसकी आयु तो केवल पाँच ही दिन शेष है। अपनी बात झूठी न हो जाय, इस भयसे वे लोग बच्चेको ब्रह्मलोक ले गये। नियमानुसार बालकने ब्रह्माजीको भी प्रणाम किया। भगवान् ब्रह्माजीने भी **'आयुष्मान् भव'** कहकर दीर्घायु होनेका आशीर्वाद दिया। ऋषियोंने बताया कि इसकी आयु तो पूरी हो रही है। आप ऐसा करें कि आप भी झूठे न हों और हम भी झूठे न बनें। ब्रह्माजीने कहा—'इसकी आयु मेरी आयुके बराबर होगी।'

इस तरह सप्तर्षियोंने ब्रह्माजीसे वरदान दिलाकर बालकको उसके घरपर पहुँचा दिया। बालक बहुत प्रसन्न था। उसने अपने माता-पिताको प्रणाम कर सब बातें सुना दीं। माता-पिता आनन्दविभोर हो गये। इस तरह प्रणामके साधनसे मार्कण्डेयजीने ब्रह्माकी लम्बी आयु पायी।

प्रेमियोंके लिये भगवान् भी विह्वल

भगवान् श्रीरामके वियोगसे भरत, शत्रुघ्न, माताएँ और पुरवासी जितने विह्वल रहते थे, श्रीराम भी उनसे मिलनेके लिये उतने ही विह्वल रहते थे। वे चौदह वर्षोंके बीच उनसे मिलनेका उपाय ढूँढ़ते रहते थे। एक बार यही उपाय उन्होंने अत्रि ऋषिसे पूछा।

अत्रि ऋषिने बतलाया कि 'पुष्कर-क्षेत्र'में 'अवियोगा' नामकी एक वापी है, वहाँ सभी प्रेमियों, स्वजनोंके साथ संयोग हो जाता है। वे स्वजन चाहे इस लोकमें हों या परलोकमें।'

भगवान् श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ ऋक्षवान् पर्वत, विदिशा नगरी और चर्मण्वती आदिको पारकर पुष्करक्षेत्रमें अवियोगा बावलीपर जा पहुँचे। वहाँ वे सायंकालिक कृत्य समाप्तकर अपने पिता, भरत, शत्रुघ्न, माताओं और पुरवासियोंका स्मरण करते-करते सो गये। स्वप्नमें उनका सबसे प्रत्यक्षकी तरह मिलन हो गया। सीता और लक्ष्मणने भी ठीक ऐसा ही स्वप्न देखा।

प्रातःकाल इस स्वप्नको ऋषियोंने सत्य बतलाया। ऋषियोंने यह भी बतलाया कि 'मृत पुरुषका जब स्वप्नमें दर्शन हो,तब उनका श्राद्ध करना चाहिये। अतः आप चक्रवर्तीजीका श्राद्ध कर दें। हमलोग पूरा सहयोग करेंगे।' 'कुतपवेला'में श्राद्ध हुआ। मुनि समयपर आ गये थे, किंतु भोजनके समय सीताजी झाड़ीमें छिप गयीं। मुनियोंके जानेके बाद सीताजी झाड़ीसे बाहर निकल आयीं। भगवान् श्रीरामने इसका कारण पूछा। भगवती सीताने बतलाया—'स्वामिन्! आज मैंने बहुत ही आश्चर्य देखा। आपके नामोच्चारण करते ही स्वर्गीय महाराजश्री यहाँ आ उपस्थित हुए। उनके साथ उन्हींके समान रूपवाले दो पुरुष और आ गये। वे तीनों ब्राह्मणोंके अङ्गोंसे सटे हुए थे। मुझे तो इस क्षेत्रमें अपने जनोंके प्रत्यक्ष दर्शन हो गये। उन्हें प्रत्यक्ष देखकर मैं लजाकर आपके पाससे हट गयी।'

भगवान् श्रीराम सीताके वचनसे बहुत प्रसन्न हुए और आदरके साथ उन्हें हृदयसे लगा लिया। भगवान् तो प्रेमरूप ही हैं। कोई उनसे मिलनेके लिये एक पग बढ़ाता है तो वे सौ पग बढ़ाते हैं।

भगवान् आश्रितोंकी देखभाल करते हैं

बात उस समयकी है जब शत्रुघ्नको मथुरामें और लव-कुश आदि राजकुमारोंको भिन्न-भिन्न स्थानोंमें भगवान् श्रीरामने नियुक्त कर रखा था। भगवान्ने उन्हें सन्मार्गपर अत्यधिक दृढ़ बनानेके लिये प्रत्येकसे अलग-अलग मिलना चाहा। विभीषणसे मिलना अधिक आवश्यक था; क्योंकि उनके अनुचर राक्षस थे। वे देवता और मनुष्यके प्रति कलुषित आचरण कर सकते थे। इसलिये लङ्कापुरीमें जाकर राक्षस-राजको फिरसे बोध कराना आवश्यक था।

भगवान् श्रीरामके साथ भरत भी चलनेको तैयार हो गये। लक्ष्मणपर नगर-रक्षाका भार सौंपकर भगवान् श्रीरामने पुष्पक-विमानका स्मरण किया। उस विमानपर दोनों भाई चढ़कर सबसे पहले गान्धार देश गये। वहाँ भगवान्ने भरतके दोनों पुत्रोंकी राजनीतिका निरीक्षण किया। उन्हें उचित शिक्षा देकर वे पूर्व दिशामें जाकर लक्ष्मणके पुत्रोंसे मिले। वहाँ छः रातें बितायीं। उसके बाद दोनों भाई दक्षिण दिशाकी ओर बढ़े। गङ्गा-यमुनाके संगममें स्नानकर महर्षि भरद्वाजको प्रणाम कर अत्रि मुनिके आश्रमपर गये। उनका आशीर्वाद लेकर जनस्थानकी ओर बढ़े। वहाँ उन्होंने भरतसे वहाँकी आपबीती घटनाएँ सुनायीं। किष्किन्धापुरीमें दोनों भाई उतर गये। कपिराज सुग्रीव दोनों भाइयोंको देखकर बहुत हर्षित हुए। उन्होंने उन्हें सादर प्रणाम कर अपने सिंहासनपर बैठाया और बड़ी प्रसन्नतासे निवेदन किया कि 'मैं, मेरा परिवार, सारा राज्य आपको न्यौछावर है।' ऐसा कहकर कपिराज सुग्रीव उनके चरणोंपर गिर पड़े। उसके बाद हनुमान्, अंगद, जाम्बवान्, नल-नील आदि छोटे-बड़े लोगोंसे वह सभाभवन ठसाठस भर गया। लोगोंके नेत्र अद्भुत रसपान कर रहे थे। प्रेमाश्रुओंसे सभाभवन गीला हो गया।

जब सुग्रीवको पता चला कि भगवान् श्रीराम विभीषणको भी कृतार्थ करने जा रहे हैं, तब उन्होंने भी साथ चलनेके लिये प्रार्थना की। भगवान्ने सुग्रीवको भी साथ ले लिया। विमान तुरंत ही समुद्र-तटपर जा पहुँचा। भगवान्ने भरतको वह स्थल दिखाया, जहाँ विभीषण शरणागत हुए थे और तीन ही दिनोंमें पुल बननेकी बात भी बतायी। इसके बाद विमान समुद्रके उस पार जा पहुँचा, जहाँ सीताकी अग्निपरीक्षा हुई थी। उस स्थानपर विमान तबतक रुका रहा, जबतक भगवान् वहाँका वृत्तान्त बताते रहे। विमान देखकर राक्षसोंने विभीषणको भगवान् श्रीरामके आनेकी सूचना दी। विभीषणजी दौड़ते हुए आये और पृथ्वीपर लेटकर उन्होंने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। विभीषणने कहा—'भगवन्! मेरा जन्म सफल हो गया और मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो गये; क्योंकि आपके चरणोंका दर्शन हुआ। इसके बाद विभीषण भरतजी और सुग्रीवजीसे गले मिले। उन्हें रावणके जगमगाते भवनमें ठहराया गया। उन्हें आसनपर बैठाकर और उनकी पूजा कर विभीषण बोले—'मैं भगवान्को क्या भेंट करूँ; क्योंकि कुटुम्बके साथ मुझे इन्होंने प्राणदान दिया है। सारी लङ्का मुझे दी है। इस तरह सारी वस्तुएँ इन्हींकी दी हुई हैं तो इन्हें क्या भेंट दूँ? फिर भी हम सब आपको समर्पित हैं।' थोड़ी ही देरमें दर्शनार्थियोंसे वह सारा स्थान भर गया। सबने श्रीराम-भरत और सुग्रीवके दर्शन कर अपने जीवनको कृतार्थ किया। राजमाता कैकसी अपने बहुओंके साथ भगवान्के पास आना चाहती थीं, किंतु मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम स्वयं जाकर उनसे मिले। कैकसी बहुत प्रसन्न थीं। उन्होंने उन्हें बहुत आशीर्वाद दिये और यह भी बतलाया कि मेरे पतिदेवने, जितनी घटनाएँ घटी हैं, मुझे पहले ही बतला रखा था। इसलिये मैंने तुम्हें पहचान लिया कि तुम विष्णु हो, सीता लक्ष्मी हैं और वानर देवता हैं; तुम्हें अमर यश प्राप्त हो। विभीषणकी पत्नी सरमा सीतासे बहुत प्रेम करती थी। उन्हें देखनेके लिये व्यग्र रहा करती थी। इसलिये उसने प्रेमोपालम्भमें कहा—'भगवन्! सीताके बिना आप शोभा नहीं पाते, उन्हें भी साथ लाना चाहिये था।'

भगवान् श्रीरामने सरमासे कहा—'मुझे छोड़कर सीता चली गयी है। उसके बिना मुझे एक क्षण भी चैन नहीं मिलता, सारी दिशाएँ सूनी-सूनी दीखती हैं।'

सबको विदा कर भगवान् श्रीरामने विभीषणको उचित मार्गका निर्देश दिया। यह भी बतलाया कि तुम्हें अपने बड़े भाई कुबेरके आज्ञानुसार चलना चाहिये, देवताओंका प्रियकर होना चाहिये, उनका कभी अपराध नहीं करना चाहिये तथा यदि कोई मनुष्य लङ्कामें आ जाय तो उसे कोई हानि न पहुँचाने पावे। विभीषणने भगवान्‌की आज्ञाको सिरपर चढ़ाया। विभीषणके कहनेसे भगवान्‌ने पुलको कई टुकड़ोंमें तोड़ दिया। उसी अवसरपर वायुदेवता वहाँ आये। उन्होंने श्रीरामसे निवेदन किया कि लङ्कामें वामन भगवान्‌की मूर्ति पड़ी हुई है। इसे आप कान्यकुब्जमें ले जाकर प्रतिष्ठित कर दें। तत्पश्चात् विभीषणने मूर्तिको बहुमूल्य रत्नोंसे विभूषित कर पुष्पक-विमानपर रख दिया। इसके बाद भगवान् भरत और सुग्रीवके साथ पुष्पक-विमानपर चढ़कर समुद्र-पार आये और भूतभावन रामेश्वरकी पूजा की। भगवान् शंकरने सुधासिक्त वाणीमें उन्हें आशीर्वाद दिया।

इसके बाद भगवान् पुष्करकी ओर बढ़े और वहाँ पितामह ब्रह्मासे मिलकर मथुरापुरीमें शत्रुघ्नके पास गये। शत्रुघ्नने अपने पुत्रोंके साथ भगवान् श्रीरामको प्रणाम किया। भगवान् श्रीरामने यहाँ पाँच दिन बिताये। इस तरह अपने आश्रितोंकी देखभाल कर गङ्गातटपर पहुँचकर उन्होंने भगवान् वामनकी स्थापना की, लङ्कासे प्राप्त धनको ब्राह्मणोंको दक्षिणाके रूपमें देकर संतुष्ट किया तथा यहींसे सुग्रीवको किष्किन्धा भेज दिया और स्वयं भरतके साथ पुष्पकपर सवार होकर अयोध्या लौट आये।

पातिव्रत-धर्मका महत्त्व

जिस तरह माता-पिता पुत्रके लिये परमात्माकी मूर्ति होते हैं, उसी तरह पत्नीके लिये पति परमात्माकी मूर्ति होता है। जिस तरह केवल माता-पिताकी सेवासे सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, उसी तरह केवल पतिकी सेवासे सभी सिद्धियाँ मिल जाती हैं। पूर्वकालकी बात है, मध्यदेशमें सैव्या नामकी एक पतिव्रता ब्राह्मणी थी। वह पतिको परमात्मा ही समझकर उसकी सेवामें निरन्तर लगी रहती थी। पूर्वजन्मके पापसे उसके पतिके शरीरमें कोढ़ हो गया था। उसके मनमें भी विकार भरे रहते थे। फलस्वरूप वह सैव्याको फटकारता भी रहता था, किंतु सैव्या प्रेमकी मूर्ति थी। वह पतिके मारको भी प्यार ही समझती थी।

एक दिन उसके पतिने एक वेश्याको जाते देखा। वेश्या बड़ी सुन्दरी थी। वह उसे पानेके लिये व्यग्र हो उठा और लम्बी-लम्बी साँसें खींचने लगा। उसकी साँसोंको सुनकर पतिव्रता दौड़कर उसके पास पहुँची और पूछने लगी—'आपको क्या कष्ट है? बताइये, मैं उसे दूर करूँगी। आप ही मेरे सब कुछ हैं। मैं आपके दुःखको सहन नहीं कर सकती।' पतिने बताया—'जिसे न पानेसे मुझे कष्ट है, उसे तुम दे नहीं सकती। अभी-अभी एक वेश्या इस मार्गसे गयी है। उसे देखकर उसे पानेकी इच्छा मुझे सता रही है। उसे पाये बिना मैं मर भी सकता हूँ।' पतिव्रताने पतिको धीरज बँधाया और कहा—'मैं आपका मनोरथ पूर्ण करूँगी।' दूसरे दिन प्रातःकाल पतिव्रता गोबर और झाड़ू लेकर वेश्याके घर जा पहुँची। उसके आँगन तथा गलीमें झाड़ू लगाकर गोबरसे लीप दिया। किसीकी दृष्टि पड़नेके पहले वह घर आ गयी। तीन-चार दिनोंतक यह क्रम चलता रहा। वेश्याको पता नहीं चल पाता था कि यह सफाई कौन कर जाता है। उसके नौकर-चाकर भी उद्विग्न थे। अन्तमें सभी लोगोंने मिलकर योजना बनायी कि आज रातको जागकर सफाई करनेवालेका पता लगाया जाय। अगले दिन ज्यों ही सैव्या झाड़ू लगाने लगी, त्यों ही वेश्याने उसे देख लिया। सैव्या अपने पातिव्रतधर्मके कारण विख्यात हो चुकी थी। उसे सब लोग जानते थे। वेश्या भी सैव्याको पहचान गयी। वह दौड़कर उसके पास पहुँची और कहने लगी—'आप मुझे नरकमें क्यों डालना चाहती हैं?' सैव्याने नम्रतासे कहा—'मैं आपकी सेवा अपनी इच्छाकी पूर्तिके लिये कर रही हूँ। जबतक आप प्रसन्न नहीं होंगी, मैं आपकी सेवा करती रहूँगी।' वेश्याने सैव्यासे कहा—'आप सोना, चाँदी, कपड़ा आदि जो चाहें उसे माँग लें। मैं सब कुछ देनेको तैयार हूँ। इसके लिये सेवाकी आवश्यकता न थी।' पतिव्रताने कहा—'मुझे धन आदिकी इच्छा नहीं है। मुझे तो आपसे ही काम है।' इसके बाद पतिव्रताने लजाते-लजाते

अपने पतिकी इच्छा सुना दी। दुर्गन्धयुक्त कोढ़ी मनुष्यके साथ संसर्गकी बात सोचकर वेश्याके मनमें बड़ी घृणा हुई। फिर भी सैव्यासे डरकर उसने केवल एक रातके लिये उसके पतिसे मिलना स्वीकार कर लिया।

पतिव्रताका पति कोढ़से लँगड़ा भी हो गया था। वह चलकर वेश्याके पास नहीं पहुँच सकता था, अतः सैव्या उसे कंधेपर चढ़ाकर वेश्याके घर ले चली। रात अँधेरी थी। आकाशमें घटाएँ घिरी थीं। अतः रास्तेमें उसके पतिका सड़ा-गला अङ्ग माण्डव्य मुनिके शरीरसे जा टकराया। मुनिकी समाधि भङ्ग हो गयी। समाधि भङ्ग होनेसे उन्हें शूलीका भयानक कष्ट होने लगा। चोर समझकर राजाके सिपाहियोंने उन्हें भूलसे शूलीपर चढ़ा दिया था। तीव्र वेदनासे पीड़ित होकर माण्डव्य ऋषिने शाप दे दिया—'जिसने मुझे असह्य वेदनाका अनुभव कराया है, वह सूर्योदय होते-होते भस्म हो जाय।' शाप देते ही कोढ़ी पृथ्वीपर गिरकर बेहोश हो गया।

पतिव्रतासे अपने पतिकी दुर्दशा देखी नहीं गयी। उसने कहा—'आजसे सूर्यका उदय ही न हो।' इतना कहकर पतिको घर ले आयी और सेवा करने लगी। इधर सूर्यके न उदय होनेसे संसारमें हाहाकार मच गया। लोग समझ नहीं पाते थे कि ऐसा क्यों हो रहा है। अन्तमें ब्रह्माजी देवताओंके साथ सैव्याके पास पहुँचे। उसे समझाया कि तुमने संसारके विनाशकी बात क्यों नहीं सोची? जब सूर्य उदय नहीं होगा, तब संसार कैसे बचेगा? पतिव्रताने कहा—'मेरे लिये पति ही सब कुछ हैं। मुनिके शापसे इनकी मृत्यु न हो इसलिये मैंने सूर्यको शाप दिया है।' ब्रह्माने कहा—'तुम सूर्योदय हो जाने दो, तुम्हारे पतिको मैं जिलाकर स्वस्थ कर दूँगा।' पतिव्रताके 'हाँ' करते ही सूर्योदय हो गया। सूर्योदय होते ही सैव्याका पति

राखका ढेर हो गया और शीघ्र ही उस राखसे स्वस्थ एवं सुन्दर रूपमें वह ब्राह्मण प्रकट हुआ। उसी समय आकाशसे विमान उतरा, जिसपर वह पतिव्रता पतिके साथ बैठकर स्वर्गलोक चली गयी।

सबसे बढ़कर धर्म—माता-पिताकी पूजा

एक बार कार्तिकेय और गणेश छोटी अवस्थामें अपनी माताके पास खेल रहे थे। यह दृश्य देवताओंको बहुत प्यारा लगा। उन्होंने अमृतसे बना एक दिव्य लड्डू पार्वतीजीको दिया। कार्तिकेय और गणेश दोनोंने उसे लेना चाहा। माता पार्वतीने कहा—'बच्चो! इस लड्डूके सम्बन्धमें तुम्हारे पिताकी और मेरी इच्छा यह है कि इसका विभाजन न किया जाय। तुम दोनोंमें जिसका धर्म सबसे बढ़कर सिद्ध हो, उसे ही यह दिया जाय।' यह सुनते ही कार्तिकेय प्रशस्त धर्म-अर्जनके लिये मोरपर बैठकर तीर्थयात्राके लिये निकल पड़े। वे समझते थे कि तीर्थयात्रासे मिलनेवाला धर्म ही सर्वोत्तम होता है।

गणेशजी जानते थे कि माता-पिताके परिक्रमा-मात्रसे तीर्थयात्रासे अधिक फल मिलता है। झट उन्होंने अपने माता और पिताकी प्रेमसे परिक्रमा की और उनके चरणोंमें प्रणाम कर उनके आगे जा विराजे। मोर चाहे जितने वेगसे उड़ता हो, सभी तीर्थोंकी यात्रासे लौटनेमें देर तो होगी ही। अतः कार्तिकेयजी इसके बाद आये। आते ही उन्होंने लड्डू माँगा। तब माता-पिताने दोनों कुमारोंको अपना निर्णय सुनाया—

'सभी तीर्थोंमें स्नानसे, सभी देवोंकी पूजासे, सभी यज्ञों एवं व्रतोंसे बढ़कर माता-पिताकी पूजा होती है। इसकी सोलहवीं कलाकी भी समानता सभी मिलकर नहीं कर सकते। अतः यह मोदक गणेशको मिलेगा।'

माता-पिताकी इसी पूजाके प्रभावसे गणेशजी सभी देवताओंमें अग्रपूज्य हो गये।

सूर्यकी आराधनासे सफेद कोढ़का नाश

मद्रदेशमें भद्रेश्वर नामके एक राजा थे। वे सभी धार्मिक कृत्योंको किया करते थे। फिर भी अदृष्टकी प्रेरणासे उनके हाथमें सफेद कोढ़ हो गया। इस प्रत्यक्ष रोगसे उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। उन्होंने विचार किया कि किसी पवित्र क्षेत्रमें जाकर इस शरीरका परित्याग कर दें। उन्होंने यह विचार लोगोंके सामने रखा। ब्राह्मणोंने बतलाया कि आपकी अनुपस्थितिसे यह राष्ट्र ही नष्ट हो जायगा। अतः आप इसका त्याग न करें। रह गया रोग, उसका भी प्रतीकार है। आप सूर्यकी आराधना करें। हम सहयोग देंगे।

विधि-विधानसे पूजा प्रारम्भ हो गयी। ब्राह्मण, अमात्यगण और प्रजाका हार्दिक सहयोग मिला। सूर्य-भगवान्‌की कृपासे उनका वह रोग एक वर्षमें समाप्त हो गया।

पाँच पितृभक्त पुत्र

पुत्रके लिये माता-पिताकी भक्ति ही एकमात्र धर्म है। इसके अतिरिक्त पुत्रके लिये और कोई धर्म नहीं है। एक वर्ष, एक मास, एक पक्ष, एक सप्ताह अथवा एक दिन भी जो पुत्र माता-पिताकी भक्ति करता है, वह वैकुण्ठलोकको प्राप्त करता है।

(१) पितृभक्त यज्ञशर्मा

द्वारकामें शिवशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहते थे। वे योगशास्त्रके पारङ्गत विद्वान् थे। सभी सिद्धियाँ उन्हें प्राप्त थीं। उनके पाँच पुत्र थे—यज्ञशर्मा, वेदशर्मा, धर्मशर्मा, विष्णुशर्मा और सोमशर्मा। ये पाँचों ही पुत्र पिताके परम भक्त और तपस्वी थे।

एक बार शिवशर्माने अपने पुत्रोंके पितृप्रेमकी परीक्षा लेनी चाही। वे सर्वसमर्थ तो थे ही, उन्होंने मायाका प्रयोग किया। पाँचों पुत्रोंके सामने उनकी माता दारुण ज्वरसे पीड़ित हो गयीं। कोई उपचार काम न आया। देखते-देखते मर गयीं। विवश हो पुत्रोंने इसकी सूचना पिताको दी और अगले कर्तव्यका निर्देश चाहा।

पिता तो परीक्षणपर तुले ही थे। आज्ञा दी—'यज्ञशर्मा! तुम तीक्ष्ण शस्त्रसे अपनी माताको खण्ड-खण्ड काटकर इधर-उधर फेंक दो।' आज्ञाकारी पुत्रने पिताकी आज्ञाका अक्षरशः पालन किया।

(२) पितृभक्त वेदशर्मा

इसके पश्चात् पिताने वेदशर्मासे कहा—'पुत्र! मैंने एक स्त्रीको देखा है। उसके बिना मैं रह नहीं सकता। तुम मेरे लिये उसे प्रसन्न कर लो और बुला लाओ।' वेदशर्मा पिताकी आज्ञा शिरोधार्य कर उस नारीके पास पहुँचे और उसके बिना अपने पिताकी विह्वलता सुनायी।

स्त्रीने वेदशर्माकी प्रार्थनाको ठुकराते हुए कहा—'तुम्हारा पिता बूढ़ा और रोगी है। उसके मुखसे कफ निकलता रहता है। उससे मैं विवाह नहीं करना चाहती। मैं तो तुम्हें चाहती हूँ। तुम रूपवान् और नवयौवनसे सम्पन्न हो। उस बूढ़ेके पीछे तुम क्यों व्याकुल हो। तुम जो चाहोगे, मैं सदा दिया करूँगी।

वेदशर्मा ऐसी असंगत बात सुनकर आश्चर्यचकित होकर बोला—'देवि! तुम मेरी माताके सदृश हो। अपने पुत्रसे ऐसी अधार्मिक बात तुम्हें नहीं कहनी चाहिये। मैंने कोई अपराध भी तो नहीं किया है कि तुम ऐसी असंगत बात सुनाकर मुझे व्यथित कर रही हो। मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ, तुम मेरे पिताको वरण कर लो। तुम जो चाहोगी, मैं वही दूँगा।'

स्त्रीने कहा—'यदि तुम देना चाहते हो तो तीनों देवों और इन्द्रके साथ सभी देवोंको यहाँ बुला दो। मैं उनका दर्शन करना चाहती हूँ।'

वेदशर्माने अपनी तपस्याका उपयोग किया। सभी देव

महामति गणेशजीकी मातृ-पितृ-भक्ति

वहाँ आ विराजे। सारा वातावरण पवित्र हो गया। देवताओंने वेदशर्माको आदर दिया और वरदान माँगनेको कहा। वेदशर्माने पिताके चरणोंमें निर्मल प्रेम माँगा। वरदान देकर देवता अन्तर्हित हो गये। इसके पश्चात् भी वह स्त्री वेदशर्माके पिताको वरण करनेके लिये तैयार नहीं हुई और बोली—'इस घटनासे तो केवल तुम्हारी तपस्याके बलका पता चला। उन देवताओंसे मेरा कोई लेना-देना नहीं है। यदि तुम अपने पिताके लिये मुझे कुछ देना चाहते हो तो अपना सिर स्वयं काटकर मुझे दे दो।'

वेदशर्माको प्रसन्नता हुई कि पिताकी आज्ञाके पालनमें वह सफल हुआ। झट उसने तलवारसे अपना सिर काटकर उसे दे दिया। स्त्री खूनसे लथपथ वेदशर्माके सिरको लेकर उसके पिताके पास पहुँची। उसके भाई वहीं थे। इस दृश्यको देखकर उन्हें रोमाञ्च हो आया। उनके मुखसे निकल पड़ा—'हम लोगोंमें वेदशर्मा ही धन्य है, जिसने पिताके लिये अपने शरीरका सदुपयोग किया।'

(३) धर्मशर्माकी पितृभक्ति

पिताने वेदशर्माके उस कटे सिरको धर्मशर्माको देते हुए कहा—'बेटा! अपने भाईके इस सिरको लो और इसे जीवित कर दो।' धर्मशर्माने धर्मराजका आह्वान किया। धर्मराज प्रकट होकर बोले—'वत्स! तुमने मुझे क्यों बुलाया है? तुम्हें क्या चाहिये?' धर्मशर्माने कहा—'यदि मेरी पितृभक्ति सही है, तो मेरा यह भाई जीवित हो जाय।' धर्मराजने तुरंत उसके भाईको जीवित कर दिया। फिर धर्मशर्माको पितृभक्तिका वरदान देकर वे अन्तर्हित हो गये। वेदशर्माने जब आँखें खोलीं, तब वहाँ न तो वह स्त्री थी और न उसके प्रिय पिता। उसने पूछकर सारी बातें जान लीं। फिर दोनों भाई पितासे आ मिले।

(४) विष्णुशर्माकी पितृभक्ति

इसके बाद भी उनके पिता चिन्तित ही दिखायी पड़े। उन्होंने विष्णुशर्माको सम्बोधित किया—'बेटा! मैं रुग्ण हूँ। अमृतके बिना मैं स्वस्थ न हो सकूँगा। तुम देवलोकसे मेरे लिये अमृतसे भरा कलश ले आओ।'

विष्णुशर्माने योगकी शक्तिका आश्रय लिया। वे तीव्रगतिसे स्वर्गलोककी ओर बढ़े। अमृतका कलश देना देवता क्यों चाहेंगे! इन्द्रने विष्णुशर्माको रास्तेमें ही प्रलोभित करनेके लिये मेनकाको भेजा। मेनकाने अपनी माया अच्छी तरह फैलायी। उसकी सुन्दरता और गीतकी मधुरतासे कण-कण आप्लावित हो उठा। वह झूलेमें झूल रही थी। झूलेने उसमें निखार ला दिया था। विष्णुशर्माने यह सब देखा और सुना, परंतु उनपर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वे सबको छोड़ते हुए आगे बढ़ रहे थे। अब मेनकाको इनके पीछे लगना पड़ा। उसने दीनताभरे शब्दोंमें प्रणय-याचना की, किंतु विष्णुशर्मा-जैसे पितृभक्तपर उसकी कोई माया न चली। इसके पश्चात् इन्द्रने अनेक विघ्न प्रकट किये। इन्द्रकी इस चेष्टासे विष्णुशर्माको क्रोध हो आया। वे इन्द्रको पदच्युत कर दूसरे इन्द्रको उनके पदपर बैठानेकी बात सोचने लगे। तब इन्द्र हाथमें अमृत-कलश लेकर प्रकट हुए और उन्होंने सम्मानके साथ विष्णुशर्माको दे दिया।

अमृत-कलश लेकर विष्णुशर्मा घर लौटे और उसे पिताको दे दिया। पिता बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने पुत्रोंसे कहा—'बच्चो! तुम्हारी सेवासे मैं प्रसन्न हूँ। तुम सब वरदान माँगो।' पुत्रोंने अपनी माताको जीवित देखना चाहा। पिताने यह वरदान उन्हें दे दिया। थोड़ी ही देर बाद ममता और स्नेह लुटाती हुई उनकी माता वहाँ आ पहुँची। उसने हर्षमें भरकर कहा—'तुम सभी पुत्रोंके कारण मेरा भाग्य चमक उठा है। न जाने मैंने कौन-से पुण्य किये थे कि मुझे तुम्हारे-जैसे पुत्र मिले।'

माताको हर्षित देख सभी पुत्र आनन्दसे विह्वल हो गये। उन्होंने कहा—'हमारा कोई बहुत बड़ा पुण्य है, जिससे हमलोगोंने तुम्हें माताके रूपमें पाया।'

पिता भी अपने प्रिय पुत्रोंपर अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—'पुत्रो! तुमलोग और वरदान माँगो। मेरे संतुष्ट होनेपर तुम्हें अक्षयलोक भी प्राप्त हो सकता है।' पुत्रोंने वरदानमें अक्षय लोक ही माँगा। पिताके 'तथास्तु' कहते ही दीप्तिशाली विमान उतर आया। भगवान्‌ने माता-पितासहित सभी पुत्रोंको विष्णुलोक चलनेके लिये कहा, परंतु शिवशर्माने कहा—'मैं, मेरी स्त्री और मेरा छोटा पुत्र अभी उस लोकमें नहीं जाना चाहते, पीछे आयेंगे। आप चार पुत्रोंको ही वह दिव्य धाम दें।'

भगवान् विष्णुने उन चारों भाग्यवान् पुत्रोंको ही साथ

चलनेके लिये कहा। उन चारोंका स्वरूप विष्णुका-सा हो गया। वे वैकुण्ठलोक पधार गये।

(५) पितृभक्त सोमशर्मा

चारों पुत्रोंको विष्णुलोक प्रदान कर शिवशर्मा संतुष्ट थे। अब उन्हें अपने छोटे पुत्र सोमशर्माके सत्त्वको परखना था। एक दिन उन्होंने सोमशर्मासे कहा—'बेटा! तुम हममें स्नेह तो रखते ही हो, इस बार एक कठिन कार्य दे रहा हूँ। अमृतसे भरा हुआ यह घड़ा हम तुझे सौंपकर तीर्थयात्रा करने जा रहे हैं। इस घड़ेकी सावधानीसे रक्षा करना।'

सोमशर्माको पिताकी कोई आज्ञा मिलनेपर बहुत हर्ष होता था। इस बार भी उन्हें बहुत हर्ष हुआ। उन्होंने माता-पिताको इस ओरसे निश्चिन्त बनाकर तीर्थयात्राके लिये भेज दिया। इसके बाद वे बड़ी तत्परतासे अमृतकुम्भकी रखवाली करने लगे।

दस वर्षके पश्चात् माता-पिता लौटे। उन्होंने मायासे अपने शरीरोंमें कोढ़ पैदा कर लिया था। वे मांसके पिण्डकी तरह त्याज्य दीख रहे थे। यह देखकर सोमशर्माको बड़ी व्यथा हुई, साथ-साथ विस्मय भी हुआ। उन्होंने पूछा—'आप दोनों तो विष्णुतुल्य हैं। आपको यह अधम रोग कैसे हो गया?' पिताने कहा—'पुत्र! अदृष्टका भोग तो भोगना ही पड़ता है। किसी जन्मका कोई पाप उदित हुआ होगा।'

सोमशर्माको दोनोंका कष्ट देखकर बड़ा कष्ट होता। वे जी-जान देकर उनकी सेवामें जुट गये। मल-मूत्र साफ करते, मवाद धोते, मलहम-पट्टी करते, समयसे खिलाते, समयसे सुलाते, सब समय सेवामें लगे रहते, परंतु पिता अग्निशर्मा कठोर बने रहते। वे सदा डंडेसे फटकारा करते थे, परंतु प्रेमी सोमशर्माको उसमें पिताका प्यार ही झलकता था। पिताकी ओरसे डाँट-फटकार और मारकी झड़ी लगी रहती, परंतु सोमशर्माकी बोली सदा मधुर निकलती और व्यवहारमें आदर झलकता था।

समर्थ पिताने एक दिन सोचा—'मैंने तो बहुत ही कठोरता बरती है, किंतु सोमशर्मामें कभी प्रेमकी कमी नहीं आयी। पितृप्रेमकी परीक्षामें तो यह उत्तीर्ण है, अब कुछ इसकी तपस्याकी परीक्षा कर लूँ।'

समर्थ शिवशर्माने पुत्रपर मायाका प्रयोग किया—सुरक्षित अमृतके घड़ेसे अमृतका अपहरण कर लिया। इसके बाद सोमशर्मासे बोले—'बेटा! अमृतसे भरा हुआ कुम्भ मैंने सुरक्षाके लिये तुम्हें सौंपा था, उसे लाकर दो। उसे पीकर हम स्वस्थ हो जायँगे।'

सोमशर्माने अमृतकुम्भको खाली पाया। उसमें अमृतकी एक बूँद भी न थी, उन्हें चिन्ता हुई कि इस सुरक्षित कुम्भसे अमृत कौन ले गया! विवश होकर उन्होंने अपनी तपस्याकी शरण ली। वे आँखें बंद करके बोले—'यदि मैंने निश्छल तपस्या की है और अन्य धर्मोंका भी आदरसे पालन किया है तो अमृतका यह घड़ा पहलेकी तरह भर जाय।' जब आँखें खोलीं, तो घड़ा अमृतसे लबालब भरा हुआ था। उन्हें संतोष हुआ कि अब इससे पिता-माता स्वस्थ हो जायँगे। झट वह घड़ा पिताजीके सामने रखकर उनके चरणोंमें प्रणिपात किया।

बिना अमृत पीये ही माता-पिता भले-चंगे हो गये। दोनोंके शरीर पहले-जैसे दीप्तिमान् हो उठे। वे वस्तुतः रोगी तो थे नहीं। इधर सोमशर्मा माता-पिताको स्वस्थ देख प्रसन्नतासे भर गये, उधर पिता इनकी पितृ-भक्ति और तपस्या देख फूले न समाये। पिताने सोमशर्माको बहुत-बहुत आशीर्वाद दिया। इतनेमें उनकी इच्छासे विष्णुलोकसे एक विमान उतरा और उसपर सोमशर्मासहित माता-पिता बैठकर परम धामको चले गये।

यही सोमशर्मा अगले जन्ममें प्रह्लाद हुए।

तृष्णासे मानवता मर जाती है

सोमशर्मा नामका एक गृहस्थ व्यक्ति था। उसका परिवार भरा-पूरा था। पत्नी थी और उसके कई पुत्र थे। स्वयं वह बहुत बड़ा लोभी था। वह चाहता था कि उसके रुपयोंकी संख्या दिन-दूनी, रात-चौगुनी बढ़ती जाय, कभी घटे नहीं। इसलिये वह भयानक कृपण बन गया था। न पत्नीको प्यार देता था, न पुत्रोंको। पैसे बचानेके लिये उनसे कतराया करता था। न कभी पूजन करता और न कभी श्राद्ध। पत्नी स्मरण दिलाती कि 'आज ससुरजीका श्राद्ध है, आज सासजीका श्राद्ध है' तो सुनते ही वह एक-दो दिनके लिये घर छोड़ देता था। दानके नामपर तो उसके प्राण ही निकलने लगते थे।

उसने खेतीके साथ-साथ अश्वशाला, गोशाला आदि व्यवसायके साधन भी जुटा रखे थे। वह पशुओंको खरीदता और बेचता था, अन्नका दाम अत्यधिक चढ़ाये रखता था। प्रतिदिन धन जोड़ता रहता था। इस तरह धन बढ़ानेकी तृष्णाने उससे कोई धर्म-कार्य नहीं होने दिया। उसकी मुहरें हजारसे लाख, लाखसे करोड़, करोड़से अरब और अरबसे बढ़कर दस खरबतक पहुँच चुकी थीं। जैसे-जैसे उसकी मुहरें बढ़तीं, वैसे-वैसे उसकी तृष्णा भी बढ़ती जाती और वैसे-वैसे उसकी मानवता भी मरती जाती थी। वह न किसी रोगीकी सहायता कर सकता था, न किसी नंगेका तन ढक सकता था और न किसी निराश्रयको आश्रय दे पाता था। धनको भिन्न-भिन्न स्थानोंमें गाड़कर रखता था। स्त्री-पुत्रोंको भी इसकी जानकारी नहीं होने देता था। इसी स्थितिमें मौतकी छाया उसपर मँडराने लगी। मरते समय घरवालोंने पूछा कि 'धन कहाँ-कहाँ गाड़ रखे हो?' इस विषयमें उसने उनसे कुछ नहीं कहा, क्योंकि घरवालोंसे बढ़कर उसकी ममता मुहरोंपर थी, मानवता मर चुकी थी, इसलिये वह बतानेमें हिचकिचाता रहा और अन्तमें मर गया।

सत्संगतिसे मानवता जी जाती है

जो मरते समय भी अपने लोगोंको गड़ा धन नहीं बता पाता, उससे भी सत्संगति अच्छा कार्य करा लेती है। संतकी संगतिका प्रभाव ही ऐसा होता है।

एक बार तीर्थयात्राके प्रसंगसे एक संत सोमशर्माके पास पधारे। उन्होंने इससे रातभर ठहरनेके लिये स्थान माँगा। संतके पवित्र दर्शनसे इसमें श्रद्धाका संचार हो आया। इस बार अतिथि इसे शत्रु न दीखकर हितैषी दीख पड़े। कुढ़न और व्यग्रताकी जगह आज प्रसन्नताने ले ली थी। उसने संतका आदर किया, ठहराया और उनकी थकान मिटानेके लिये अङ्गोंको दबाया। उनके चरण धोकर मस्तकपर चढ़ाया। दूध-दही देनेमें आज कृपणता न हुई। उसकी स्त्री तो साध्वी थी ही। उसने सेवामें पूरा सहयोग दिया।

दूसरे दिन हरिशयनी एकादशी थी। खाने-पीनेका प्रश्न ही नहीं था। उस व्यक्तिने संतको उस दिन वहीं ठहरा लिया। संतने एकादशी-व्रतकी कथा भी सुनायी। परिवारके सभी लोगोंने उस दिन एकादशी-व्रत किया। रातभर कीर्तन, नृत्य और गीत चलते रहे। उस दिन तृष्णासे आहत उस व्यक्तिने दक्षिणा भी दी। इसीके प्रभावसे सोमशर्मा अगले जन्ममें ब्राह्मण हुआ, उसे विदुषी पत्नी मिली और महर्षि वसिष्ठका उपदेश मिला, जिसके आचरणसे उसे 'सुव्रत' नामका महाभागवत पुत्र मिला। सुव्रतके कारण दम्पतिको वैकुण्ठ भी मिला।

सुनीथाकी कथा

अभिभावक उपेक्षा न करें

अभिभावकोंको चाहिये कि वे अपनी संतानकी सँभालमें तनिक भी उपेक्षा न आने दें। इनके द्वारा की गयी थोड़ी भी उपेक्षा संतानके लिये घातक बन जाती है।

सुनीथा मृत्यु देवताकी कन्या थी। बचपनसे ही वह देखती आ रही थी कि उसके पिता धार्मिकोंको सम्मान देते हैं और पापियोंको दण्ड। सहेलियोंके साथ खेलनेमें प्रायः वह इन्हीं बातोंका अनुकरण किया करती थी। एक बार वह सहेलियोंके साथ खेलती हुई दूर निकल गयी। वहाँ एक सुन्दर गन्धर्वकुमार सरस्वतीकी आराधनामें लीन था। उसपर दृष्टि पड़ते ही सुनीथा उसपर कोड़े बरसाने लगी। भोलेपनसे इसे वह खेल ही समझती रही। गन्धर्वकुमारको खलता कि 'वह किसीकी तपस्यामें विघ्न पहुँचा रही है, किसीका अपमान कर रही है।' किंतु सुनीथाकी बुद्धिमें कुछ नहीं आता। वह

प्रतिदिन आती और निरपराध गन्धर्वकुमारको सताती। एक दिन गन्धर्वकुमारको क्रोध हो गया, वह बोला—'भले लोग मारनेवालेको मारते नहीं और गाली देनेवालेको गाली नहीं देते।'

सुनीथामें सत्यवादिता आदि सभी गुण कूट-कूटकर भरे थे। उसने अपने पितासे सारी घटना ज्यों-की-त्यों सुना दी। भोली होनेसे वह गन्धर्वकुमारकी बातें समझ न पाती थी, उन्हें समझानेके लिये उसने पिताजीसे आग्रह किया। मृत्युने अपनी ीकी जिज्ञासापर चुप्पी साध ली, जो अच्छी न थी। पुराणने 'दोष' माना है, क्योंकि मारनेवालेको मारना नहीं चाहिये र गाली देनेवालेको गाली नहीं देनी चाहिये'—इन ग्योंका अर्थ जो बच्ची नहीं समझ पाती और अभिभावकसे झना चाहती है, उसे न समझाना अवश्य अनर्थकारक हो कता है। हुआ भी ऐसा ही। पिताके चुप्पी साध लेनेसे थाका वह पापाचार रुका नहीं। सखियोंके साथ गन्धर्व-ारके पास जाना और कोड़ोंसे उसे पीटना उसका दिनका कार्य हो गया। कोई कबतक सहेगा! एक दिन

र्धर्वकुमारने शाप देते हुए कहा—'विवाह हो जानेपर तुम्हारे र्भसे ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा जो देवताओं एवं ब्राह्मणोंकी निन्दा या करेगा और घोर पापाचारमें लग जायगा।'

इस बार भी सुनीथाने सच-सच बातें पिताको सुना दीं। शापकी बात सुनकर पिताको बहुत दुःख हुआ। उन्होंने इस बार समझाया—'निर्दोष तपस्वीको पीटना अच्छा काम नहीं है। ऐसा तुमने क्यों किया? तुमसे भारी पाप हो गया है। तुम्हें शाप भी लग गया है। अतः अब तुम पुण्य-कर्मोंका अनुष्ठान करो, सत्संगति करो और विष्णुके ध्यानमें लग जाओ।'

सखित्वका आदर्श

वयस्क होनेपर पिताको सुनीथाके विवाहकी चिन्ता हुई। वे अपनी कन्याको साथ लेकर देवताओं और मुनियोंके पास गये। सबका एक ही उत्तर था—'इससे जो संतान होगी, वह भयानक पापी होगी। अतः हम इसे स्वीकार न करेंगे।' इस तरह शापके कारण सुनीथाका विवाह ही रुक गया। अब तपस्याके अतिरिक्त सुनीथाके पास और कोई उपाय न था। वह पिताकी आज्ञासे वनमें जाकर तपस्या करने लगी, किंतु चिन्ता उसका पिण्ड छोड़ना नहीं चाहती थी।

रम्भा आदि अप्सराएँ सुनीथाकी सखियाँ थीं। वे उसकी सहायताके लिये आ पहुँचीं। उन्होंने सुनीथाको ढाढ़स बँधाया। रम्भाने उसे पुरुषोंको मोहित करनेवाली विद्या दी। सुनीथाने उसका अच्छा अभ्यास कर लिया। जब वह विद्या सिद्ध हो गयी, तब सखियाँ सुनीथाको लेकर वरकी खोजमें निकल पड़ीं। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वे गङ्गाके तटपर पहुँचीं। वहाँ सुनीथाकी दृष्टि अङ्ग नामक रूपवान्, तेजस्वी अत्रिमुनिके पुत्रपर पड़ी, जो वहाँ तपस्या कर रहे थे, उन्हें देखते ही सुनीथा मोहित हो गयी। रम्भा तो यही चाहती थी। रम्भा उस तपस्वीके इतिहाससे सुपरिचित थी, जानती थी कि अत्रि-पुत्र अङ्ग इन्द्रके समान वैभवशाली और विष्णुके समान पुत्रके पानेका वरदान पा चुका है। हो सकता था कि इस वरदानके प्रभावसे सुनीथाको मिला शाप प्रभावहीन हो जाय। अतः सुनीथाका उसपर मोहित होना उसे बहुत अच्छा लगा। अब रहा उस ब्राह्मण कुमारका सुनीथापर आसक्त होना, वह तो सुनीथाके लिये बायें हाथका खेल था, क्योंकि यह विद्या उसे सिद्ध थी।

रम्भाने मायाका भी प्रयोग किया। सुनीथा तो अत्यन्त रूपवती थी ही, रम्भाकी मायाने उसमें और चार चाँद लगा दिये। अब उसकी तुलना संसारमें नहीं रह गयी थी। उसका

यौवन भी अद्वितीय हो गया। उसके गीतोंमें सौ-सौ आकर्षण भर उठे। सुनीथा झूलेपर बैठकर संगीत गाने लगी। सुनते ही अङ्गका ध्यान टूट गया। वे खिंचे हुए-से स्वरके उद्गमकी ओर बढ़ते चले गये। सुनीथापर जब उनकी दृष्टि पड़ी तो उनके हाथ-पैर शिथिल हो गये। वे तन-मनसे उसे चाहने लगे और अपनेको सँभालकर बोले—'सुन्दरि! तुम कौन हो?' सुनीथा चुप रही। रम्भा आगे आकर बोली—'महोदय! यह मृत्युकी कन्या है। इसमें सब शुभ लक्षण मिलते हैं। यह पतिकी खोजमें निकली है। हमलोग इसकी सखियाँ हैं।' रम्भाके अनुकूल वचन सुनकर अत्रिकुमार अङ्गको बहुत संतोष हुआ। उनकी अकुलाहट कुछ कम हो गयी। उन्होंने अपने पवित्र कुलकी प्रशंसा की और बतलाया कि मैंने विष्णु भगवान्‌से यह वरदान प्राप्त कर लिया है कि मुझे 'इन्द्र-सा ऐश्वर्यशाली और विष्णुके समान विश्वका पालन करनेवाला पुत्र प्राप्त हो, किंतु योग्य कन्या न मिलनेसे अबतक मैंने विवाह नहीं किया है। यह कुलीन कन्या यदि मुझे ही वरण कर ले तो इसे अदेय वस्तु भी दे सकता हूँ।'

रम्भा तो यही चाहती थी, अतः बोली—'हमलोग भी योग्य वरकी ही खोजमें हैं। यदि आप चाहते हैं तो सुनीथा आपकी धर्मभार्या बन रही है, किंतु याद रखें, आप इससे सदा प्यार करते रहें, इसके दोष-गुणोंपर कभी ध्यान न दें। आप इस बातका प्रत्यक्ष विश्वास दिलाइये। इस बातकी प्रतीतिके लिये अपना हाथ सुनीथाके हाथमें दीजिये।' अङ्गको रम्भाकी ये बातें भगवान्‌के वरदानकी तरह प्रिय लग रही थीं। उन्होंने अपना हाथ सुनीथाके स्विन्न हाथपर रख दिया।

इस तरह दोनोंको गान्धर्व-विवाहके द्वारा जोड़कर रम्भा बहुत संतुष्ट हुई और विदा माँगकर अपनी सखियोंके साथ घर वापस आ गयी।

वरदानके साथ शापका संघर्ष

वरदानके प्रभावसे सुनीथाका पुत्र सभी लक्षणोंसे सम्पन्न हुआ। पुत्रका नाम वेन रखा गया। अत्रिके वंशके अनुरूप इस बच्चेने वेद, दर्शन आदि सारी विद्याओंमें निपुणता प्राप्त कर ली। धनुर्वेदमें भी यह निष्णात हो गया। शील-सौजन्यने इसकी सुन्दरतामें मिखार ला दिया था। वेनमें अद्भुत तेज था। आचार-विचारमें कोई उसकी समता नहीं कर पाता था।

उस समय वैवस्वत मन्वन्तर था जब कि राजाकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी। उस समय राजाके विना प्रजाको कष्ट होने लगा था। विश्वभरमें वेनका प्रभाव उद्दीप्त था। वेनके समकक्ष और कोई तरुण न था। सबने मिलकर इसे प्रजापतिके पदपर प्रतिष्ठित कर दिया। वेनके राज्यमें चतुर्दिक् सुख-शान्ति प्रतिष्ठित हो गयी। सभी संतुष्ट और सुखी थे। धर्मकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही थी।

बहुत दिनोंसे गन्धर्वकुमारका शाप वेनपर अपना प्रभाव प्रकट करना चाह रहा था, किंतु अनुकूल परिस्थिति न पाकर दबा हुआ था। संयोगसे वेनकी एक घोर नास्तिकसे भेंट हो गयी। इस संसर्गसे शापको पनपनेका अवसर मिल गया। नास्तिकताका प्रभाव उसपर उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया। थोड़े ही दिनोंमें वेन घोर नास्तिक बन बैठा। वेद, पुराण, स्मृति आदि शास्त्र इसे जाल-ग्रन्थ दीखने लगे। संध्योपासन, तर्पण, यज्ञ, श्राद्ध आदि सत्कर्म उसे जाल दीखते और ब्राह्मण बहुत बड़े वञ्चक। माता-पिताके सामने सिर झुकाना भी उसे बुरा लगने लगा। वेन समर्थ तो था ही, उसने सम्पूर्ण वैदिक क्रिया-कलापोंपर रोक लगा दी। राज्यमें धर्मका लोप हो गया। पाप जोरोंसे बढ़ने लगा।

पिता अङ्ग अपने पुत्रका यह घोर अत्याचार देखकर बहुत दुःखी हो गये। उनकी समझमें नहीं आ रहा था कि भगवान् विष्णुका वह वरदान विफल कैसे हो रहा है। वे शापकी बात नहीं जानते थे। सुनीथा सब बातें समझ तो रही थी, किंतु उसे खोलना नहीं चाहती थी। अत्रिकुमार अङ्गने पुत्रको समझा-बुझाकर रास्तेपर लाना चाहा, पर उन्हें सफलता नहीं मिली।

इसी बीच सप्तर्षि आये। अब वरदानको चेतनेका अवसर आ गया था। सप्तर्षियोंने बहुत प्यारसे वेनको समझाते हुए कहा—'वेन! दुःसाहस छोड़ दो। अपने पुराने रास्तेपर आ जाओ। सारी जनता तुमपर अवलम्बित है। धर्मके पथपर लौट आओ और प्रजापर अत्याचार करना बंद कर दो।'

किंतु अहंकारकी मूर्ति वेनने सप्तर्षियोंको फटकारते हुए कहा—'मैं ज्ञानियोंका ज्ञानी हूँ। विश्वका ज्ञान मेरा ही ज्ञान है। जो मेरी आज्ञाके विरुद्ध चलता है, उसे मैं कठोर दण्ड देता हूँ। आपलोग भी मेरा भजन करें।'

ऋषियोंने जब वेनके इस रोगको असाध्य समझा और उसके पापको बलपूर्वक निकालना चाहा, तब झट उन्होंने वेनको पकड़ लिया और उसके बायें हाथको भलीभाँति मथा। फलस्वरूप इस हाथसे एक काला-कलूटा और नाटा पुरुष उत्पन्न हुआ। इसीके रूपमें वेनका सब पाप निकल गया। यह देख ऋषि बहुत प्रसन्न हुए। अब उन्होंने वेनके दाहिने हाथको मथा। इससे अपने वरदानको फलीभूत करनेके लिये भगवान् विष्णु ही पृथुके रूपमें प्रकट हुए।

पापके निकलते ही वेनकी नास्तिकता भी पूरी तरह निकल गयी थी। सप्तर्षियोंकी कृपासे वेनने अपनी पहली अवस्था प्राप्त कर ली थी। वे नर्मदाके तटपर चले गये। तृणविन्दुके आश्रममें रहकर उन्होंने घोर तपस्या की। भगवान्ने उन्हें दर्शन दिया और लम्बी सत्संगति चलायी। भगवान्ने उन्हें आश्वस्त करनेके लिये कहा—'वत्स! तुम्हारी माँको जो शाप मिला था, उससे तुम्हारा उद्धार करनेके लिये ही मैंने तुम्हारे पिताको सुयोग्य पुत्र प्राप्त होनेका वरदान दिया था। अब तुम घर लौट जाओ। पृथुकी सहायतासे अश्वमेध आदि यज्ञ और विविध दान-उपदान कर मेरे लोकमें आना।'

(ला०बि०मि०)

सीता-शुकी-संवाद

एक दिन परम सुन्दरी सीताजी सखियोंके साथ उद्यानमें खेल रही थीं। वहाँ उन्हें शुक पक्षीका एक जोड़ा दिखायी दिया, जो बड़ा मनोरम था। वे दोनों पक्षी एक डालीपर बैठकर इस प्रकार बोल रहे थे—'पृथ्वीपर श्रीराम नामसे प्रसिद्ध एक

बड़े सुन्दर राजा होंगे। उनकी महारानी सीताके नामसे विख्यात होंगी। श्रीरामजी बड़े बुद्धिमान् और बलवान् होंगे। वे समस्त राजाओंको अपने वशमें रखते हुए सीताके साथ ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करेंगे। धन्य हैं वे जानकीदेवी और धन्य हैं श्रीराम, जो एक दूसरेको प्राप्त होकर इस पृथ्वीपर आनन्दपूर्वक विहार करेंगे।'

उनको ऐसी बातें करते देख सीताजीने सोचा—'ये दोनों मेरे ही जीवनकी मनोरम कथा कह रहे हैं। इन्हें पकड़कर सभी बातें पूछूँ।' ऐसा विचारकर उन्होंने अपनी सखियोंके द्वारा उन दोनोंको पकड़वाकर मँगवाया और उनसे कहा—'तुम दोनों बहुत सुन्दर हो, डरना नहीं। बताओ, तुम कौन हो और कहाँसे आये हो? राम कौन हैं? और सीता कौन हैं? तुम्हें उनकी जानकारी कैसे हुई? इन सारी बातोंको शीघ्रातिशीघ्र बताओ। मेरी ओरसे तुम्हें कोई भय नहीं होना चाहिये।'

सीताजीके इस प्रकार पूछनेपर उन पक्षियोंने कहा—'देवि! वाल्मीकि नामसे प्रसिद्ध एक बहुत बड़े महर्षि हैं, जो धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ माने जाते हैं। हम दोनों उन्हींके आश्रममें रहते हैं। महर्षिने रामायण नामक एक महाकाव्यकी रचना की है, जो सदा ही मनको प्रिय जान पड़ता है। उन्होंने शिष्योंको उसका अध्ययन कराया है तथा प्रतिदिन वे सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें संलग्न रहकर उसके पद्योंका चिन्तन किया करते हैं। उसका कलेवर बहुत बड़ा है। हमलोगोंने उसे पूरा-पूरा सुना है। बारम्बार उसका गान तथा पाठ सुननेसे हमें भी उसका अभ्यास हो गया है। राम और सीता कौन हैं—यह हम बताते हैं तथा इसकी भी सूचना देते हैं कि श्रीरामके साथ क्रीडा करनेवाली जानकीके विषयमें क्या-क्या बातें होनेवाली हैं, तुम ध्यान देकर सुनो। महर्षि ऋष्यशृंगके द्वारा कराये हुए पुत्रेष्टि

यज्ञके प्रभावसे भगवान् विष्णु राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न—ये चार शरीर धारण करके प्रकट होंगे। देवाङ्गनाएँ भी उनकी उत्तम कथाका गान करेंगी। श्रीराम महर्षि विश्वामित्रके साथ भाई लक्ष्मणसहित हाथमें धनुष लिये मिथिला पधारेंगे। वहाँ वे एक ऐसे धनुषको, जिसे दूसरा कोई उठा भी नहीं सकेगा, तोड़ डालेंगे और अत्यन्त मनोहर रूपवाली जनककिशोरी सीताको अपनी धर्मपत्नीके रूपमें ग्रहण करेंगे। फिर उन्हींके साथ श्रीरामजी अपने विशाल साम्राज्यका पालन करेंगे। ये तथा और भी बहुत-सी बातें जो वहाँ रहते समय हमारे सुननेमें आयी हैं, संक्षेपमें मैंने तुम्हें बता दीं। अब हम जाना चाहते हैं, हमें छोड़ दो।'

कानोंको अत्यन्त मधुर प्रतीत होनेवाली पक्षियोंकी ये बातें सुनकर सीताजीने उन्हें मनमें धारण कर लिया और पुनः उनसे इस प्रकार पूछा—'राम कहाँ होंगे ? किसके पुत्र हैं और कैसे वे दूल्हा-वेशमें आकर जानकीको ग्रहण करेंगे तथा मनुष्यावतारमें उनका श्रीविग्रह कैसा होगा ? उनके प्रश्नको सुनकर शुकी मन-ही-मन जान गयी कि ये ही सीता हैं। उन्हें पहचानकर वह सामने आकर उनके चरणोंमें गिरकर बोली—'श्रीरामका मुख कमलकी कलीके समान सुन्दर होगा। नेत्र बड़े-बड़े और खिले हुए पङ्कजकी शोभाको धारण करनेवाले होंगे। नासिका ऊँची, पतली तथा मनोहारिणी होगी। दोनों भौंहें सुन्दर ढंगसे मिली होनेके कारण मनोहर प्रतीत होंगी। गला शङ्खके समान सुशोभित और छोटा होगा। वक्षःस्थल उत्तम, चौड़ा और शोभासम्पन्न होगा, उसमें श्रीवत्सका चिह्न होगा। सुन्दर जाँघों और कटिभागकी शोभासे युक्त दोनों घुटने अत्यन्त निर्मल होंगे, जिनकी भक्तजन आराधना करेंगे। श्रीरामजीके चरणारविन्द भी परम शोभायुक्त होंगे और सभी भक्तजन उनकी सेवामें सदा संलग्न रहेंगे। श्रीरामजी ऐसा ही मनोहर रूप धारण करनेवाले हैं। जिसके सौ मुख हैं, वह भी उनके गुणोंका बखान नहीं कर सकता, फिर हमारे-जैसे पक्षीकी क्या बिसात है। परम सुन्दर रूप धारण करनेवाली लावण्यमयी लक्ष्मी भी जिनकी झाँकी करके मोहित हो गयीं, उन्हें देखकर पृथ्वीपर दूसरी कौन स्त्री है, जो मोहित न होगी। उनका बल और पराक्रम महान् है। वे अत्यन्त मोहक रूप धारण करनेवाले हैं। मैं श्रीरामका कहाँतक वर्णन करूँ, वे सब प्रकारके ऐश्वर्यमय गुणोंसे युक्त हैं। परम मनोहर रूप धारण करनेवाली वे जानकीदेवी धन्य हैं, जो श्रीरामजीके साथ हजारों वर्षोंतक प्रसन्नतापूर्वक विहार करेंगी, परंतु सुन्दरि ! तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है, जो इतनी चतुरता और आदरके साथ श्रीरामके गुणोंका कीर्तन सुननेके लिये प्रश्न कर रही हो ?'

शुकीकी ये बातें सुनकर जनककुमारी सीता अपने जन्मकी ललित एवं मनोहर चर्चा करती हुई बोलीं—'जिसे तुमलोग जानकी कह रहे हो, वह जनककी पुत्री मैं ही हूँ। मेरे मनको लुभानेवाले श्रीराम जब यहाँ आकर मुझे स्वीकार करेंगे, तभी मैं तुम्हें छोड़ूँगी, अन्यथा नहीं; क्योंकि तुमने अपने वचनोंसे मेरे मनमें लोभ उत्पन्न कर दिया है। अब तुम इच्छानुसार खेल करते हुए मेरे घरमें सुखसे रहो और मीठे-मीठे पदार्थ भोजन करो।' यह सुनकर शुकीने जानकीजीसे कहा— 'साध्वि ! हम वनके पक्षी हैं, पेड़ोंपर रहते हैं और सर्वत्र विचरा करते हैं। हमें तुम्हारे घरमें सुख नहीं मिलेगा। मैं गर्भिणी हूँ, अपने स्थानपर जाकर बच्चे पैदा करूँगी। उसके बाद फिर तुम्हारे यहाँ आ जाऊँगी।' उसके ऐसा कहनेपर भी सीताजीने उसे नहीं छोड़ा। तब उसके पति शुकने विनीत वाणीमें उत्कण्ठित होकर कहा—'सीता ! मेरी सुन्दरी भार्याको छोड़ दो। इसे क्यों रख रही हो ? शोभने ! यह गर्भिणी है। सदा मेरे मनमें बसी रहती है। जब यह बच्चोंको जन्म दे लेगी, तब मैं इसे लेकर तुम्हारे पास आ जाऊँगा।' शुकके ऐसा कहनेपर जानकीजीने कहा—'महामते ! तुम आरामसे जा सकते हो, किंतु तुम्हारी यह भार्या मेरा प्रिय करनेवाली है। मैं इसे अपने पास बड़े सुखसे रखूँगी। इसे अपनी सखी बनाकर रखूँगी।'

यह सुनकर पक्षी दुःखी हो गया। उसने करुणायुक्त वाणीमें कहा—'योगीलोग जो बातें कहते हैं, वह सत्य ही है—किसीसे कुछ न कहे, मौन होकर रहे, नहीं तो उन्मत्त प्राणी अपने वचनरूपी दोषके कारण ही बन्धनमें पड़ता है। यदि हम इस पेड़पर बैठकर वार्तालाप न करते होते तो हमारे लिये यह बन्धन कैसे प्राप्त होता ? इसलिये मौन ही रहना चाहिये था।' इतना कहकर पक्षी पुनः बोला—'सुन्दरि ! मैं अपनी इस भार्याके बिना जीवित नहीं रह सकता, इसलिये इसे

छोड़ दो। सीता! तुम बड़ी अच्छी हो। मेरी प्रार्थना मान लो।' इस तरह नाना प्रकारकी बातें कहकर उसने समझाया, परंतु सीताजीने शुकीको नहीं छोड़ा। तब शुकीने पुनः कहा—'सीते! मुझे छोड़ दो। अन्यथा शाप दे दूँगी।' सीताजीने कहा—'तुम मुझे डराती-धमकाती हो! मैं इससे तुम्हें नहीं छोड़ूँगी।' तब शुकी क्रोध और दुःखमें आकुल होकर जानकीजीको शाप दिया—'अरी! जिस प्रकार तू मुझे इस समय अपने पतिसे विलग कर रही है, वैसे ही तुझे स्वयं भी गर्भिणी-अवस्थामें श्रीरामसे अलग होना पड़ेगा।' यों कहकर पतिवियोगके शोकमें उसके प्राण निकल गये। उसने श्रीरामका स्मरण तथा पुनः-पुनः राम-नामका उच्चारण करते हुए प्राण-त्याग किया था, इसलिये उसे ले जानेके लिये सुन्दर विमान आया और वह शुकी उसपर बैठकर भगवान्के धामको चली गयी।

भार्याकी मृत्यु हो जानेपर शुक शोकसे आतुर होकर बोला—'मैं मनुष्योंसे भरी हुई श्रीरामकी नगरी अयोध्यामें जन्म लूँगा और इसका बदला चुकाऊँगा। मेरे ही वाक्यसे उद्वेगमें पड़कर इसे पतिवियोगका भारी दुःख उठाना पड़ेगा।' यह कहकर उसने भी अपना प्राण छोड़ दिया। (पद्म०, पाताल०)

(मो०ला०अ०)

सत्कर्ममें श्रमदानका अद्भुत फल

बृहत्कल्पकी बात है। उस समय धर्ममूर्ति नामक एक प्रभावशाली राजा थे। उनमें कुछ अलौकिक शक्तियाँ थीं। वे इच्छाके अनुसार रूप बदल सकते थे। उनकी देहसे तेज निकलता रहता था। दिनमें चलते तो सूर्यकी प्रभा मलिन हो जाती थी और रातमें चलते तो चाँदनी फीकी पड़ जाती थी। उन्होंने कभी पराजयका मुख नहीं देखा था। इन्द्रने उनसे मित्रता कर ली थी। इन्होंने कई बार दैत्यों और दानवोंको हराया था। इनकी पत्नी भानुमती भी इतनी सुन्दरी थी कि उस समय तीनों लोकोंमें कोई नारी उसकी बराबरी नहीं कर सकती थी। वह जितनी रूपवती थी, उतनी ही गुणवती भी थी।

राजाका सबसे बड़ा सौभाग्य यह था कि उनके कुलगुरु महर्षि वसिष्ठ थे। एक दिन उन्होंने बड़ी विनम्रतासे गुरुजीसे पूछा—'गुरुदेव! मेरे पास इस समय जो सब तरहकी समृद्धियाँ एकत्रित हैं, इसका कारण बहुत बड़ा पुण्य होगा। उस पुण्यकर्मको मैं जानना चाहता हूँ। जिससे उस तरहका कोई पुण्य मैं पुनः कर सकूँ, जिसके फलस्वरूप अगले जन्ममें मुझे इसी तरहकी सुख-सुविधा प्राप्त हो।'

महर्षि वसिष्ठने बतलाया—'पूर्वकालमें लीलावती नामकी एक वेश्या थी। वह शिव-भक्तिमें लीन रहती थी। एक बार उसने पुष्कर-क्षेत्रमें चतुर्दशी तिथिको लवणाचल (नमकका पहाड़) का दान किया था। उसने सोनेका एक वृक्ष भी तैयार करवाया था, जिसमें सोनेके फूल और सोनेकी ही देवताओंकी प्रतिमाएँ लगी थीं। इस स्वर्णवृक्षके निर्माणमें तुमने निष्कामभावसे उसकी सहायता की थी। उस समय तुम उस वेश्याके नौकर थे। सोनेके वृक्ष और फूल बनानेमें तुम्हें अतिरिक्त मूल्य मिल रहा था, किंतु तुमने उस वेतनको यह समझकर नहीं लिया कि यह धर्मका कार्य है। तुम्हारी पत्नीने उन फूलों और मूर्तियोंको तपा-तपाकर भलीभाँति चमकाया था। तुम दोनों आज जो कुछ हो वह केवल उसी श्रमदानका फल है। उस जन्ममें तुम्हारे पास पैसे नहीं थे, इसलिये लीलावतीकी तरह तुमने कोई दान-पुण्य नहीं किया था। इस जन्ममें तुम राजा हो, अतः अन्नके पहाड़का विधि-विधानके साथ दान करो। जब केवल 'श्रमदान' से तुम सातों द्वीपोंके अधिपति हो गये हो और तुम्हारी पत्नी तीनों लोकोंमें अप्रतिम रूपवती और गुणवती बन गयी है, तब इस अन्नके पहाड़के दानका क्या फल होगा, इसे तुम स्वयं समझ सकते हो। देखो, इस लवणाचलके दानसे वेश्या भी शिवलोकको चली गयी और उसके सब पाप जलकर खाक हो गये थे।' धर्ममूर्तिने बड़े उत्साहके साथ अपने गुरुकी आज्ञाका पालन किया।

(ला० त्रि० मि०)

अष्टादश महापुराणोंकी शृङ्खलामें विष्णुपुराणका स्थान सर्वातिशायी है। यह वैष्णवदर्शन तथा वैष्णव भक्ति-उपासनाका मूलाधार है। विष्णुपरक होनेपर भी यह पुराण साम्प्रदायिकतासे सर्वथा दूर है। भगवान् विष्णुकी महिमाका गान तथा भगवद्भक्तिकी उद्भावना करना ही इसका प्रमुख उद्देश्य है। इन्हींके नामसे यह 'विष्णुपुराण' कहा जाता है। अन्य पुराणोंसे परिमाणमें न्यून होनेपर भी इसका महत्त्व अत्यधिक है। इसे 'पुराणसंहिता' कहा गया है (विष्णु० १।१।२६, ३०)। यह पुराणसंहिता ही समस्त पुराणोंका मूल बीज है। विशेषकर श्रीमद्भागवतपुराण सर्वथा इसीका उपबृंहण है और ध्रुव, प्रह्लाद, रहूगण, जडभरत आदिके चरित्र एवं उपाख्यान, सृष्टिवर्णन, ज्योतिश्चक्रोंका वर्णन, सातों द्वीपोंका भूगोल, मन्वन्तरों तथा वेद आदि शाखाओंका वर्णन, वर्णाश्रमोंके आचार, कलि-धर्म-निरूपण तथा सूर्य-चन्द्रवंशका वर्णन भागवतमें इसी विष्णुपुराणके आधारपर हुआ है। जैसे विष्णुपुराणके पञ्चम अंशमें श्रीकृष्ण-चरित्र विस्तारसे वर्णित है, वैसे ही इसे भागवतके दशम स्कन्धमें और अधिक विस्तृतरूपसे वर्णित किया गया है। किंतु शुकदेवजीकी वर्णन-शैलीमें उसके छन्द और कथानक अधिक रोचक हो गये हैं, इसीलिये भागवतका प्रचलन अधिक हो गया। शंकर मध्व, निम्बार्क, रामानुज, भास्कर, वल्लभ एवं बलदेव-विद्याभूषण आदि आचार्योंने विष्णुपुराणके श्लोकोंको अपने पक्षके समर्थनके लिये वेदान्तभाष्य, उपनिषद्भाष्य, गीताभाष्य और विशेषकर विष्णुसहस्रनामके भाष्योंमें उद्धृत किया है। इससे भी इस पुराणकी प्राचीनताका बोध होता है, वैसे ये दोनों ही पुराण वैष्णवोंके उपजीव्य हैं।

महापुराणोंके गणना-क्रममें प्रायः सर्वत्र विष्णुपुराण तृतीय स्थानपर परिगणित है (नारद० ९२।१-३, श्रीमद्भा० १२।८।२३-२४, विष्णु० ३।६।२१-२४) परंतु संख्याकी दृष्टिसे तृतीय होनेपर भी ऐतिहासिक घटना-चक्रकी दृष्टिसे विष्णुपुराण ही सर्वप्रथम पुराण मान्य होना चाहिये; क्योंकि इसके रचयिता व्यासजीके पिता श्रीपराशरजी हैं। विष्णुपुराणके प्रथम अध्यायमें ही इस बातका निर्देश है कि जब पराशरके पिता शक्तिको राक्षसोंने मार डाला तब क्रोधाविष्ट पराशरने अपने पिताके प्रतिशोधमें राक्षसोंके विनाशार्थ 'रक्षोघ्न-सत्र' प्रारम्भ किया। उसमें हजारों राक्षस गिर-गिर कर स्वाहा होने लगे। इसपर राक्षसोंके पिता पुलस्त्यजीने तथा वसिष्ठ (पराशरके पितामह) ने आकर पराशरके क्रोधको अनुचित बताया। वसिष्ठके समझानेपर वे शान्त हुए। पराशरके यज्ञसे निवृत्त हो जानेपर तथा वसिष्ठके द्वारा अर्घ्य-पाद्य और सान्त्वनापूर्ण शब्दोंसे सम्मानित होनेपर महर्षि पुलस्त्य अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने पराशरको विष्णुपुराणके रचयिता होनेका आशीर्वाद दिया—**'पुराण संहिताकर्ता भवान् वत्स भविष्यति'** (विष्णु० १।१।२६)। तत्पश्चात् मैत्रेयजी-द्वारा सृष्टि आदिके विषयमें प्रश्न करनेपर पराशरजीको सम्पूर्ण पुराणसंहिता (विष्णुपुराण) का स्मरण हो आया और उन्होंने मैत्रेयजीको—**'पुराणसंहितां सम्यक् तां निबोध यथातथम्'** (विष्णु० १।१।३०) कहकर यह पुराण सुनाया। पराशरजी तथा मैत्रेयका यही संवाद विष्णुपुराण है। व्यासके पिता पराशरजीकी रचना होनेसे इसकी प्राचीनता असंदिग्ध समझी जा सकती है।

उपलब्ध विष्णुपुराण ६ अंशों (खण्डों) में विभक्त है और उसमें अवान्तर प्रकरणोंका विभाग अध्याय-नामसे है। प्रथम अंशमें २२ तथा द्वितीयमें १६ अध्याय हैं। इसी प्रकार तीसरे, चौथे, पाँचवें तथा छठे अंशमें क्रमशः १८, २४, ३८ तथा ८ अध्याय हैं। संकलन करनेसे कुल १२६ अध्याय हैं। इसका चतुर्थ अंश गद्यमय है। मत्स्यपुराण (५३।१६-१७) तथा नारदपुराण (९४।१-२) में इसकी श्लोक-संख्या तेईस हजार बतायी गयी है। किंतु उपलब्ध विष्णुपुराणमें लगभग ६ हजार श्लोक ही प्राप्त होते हैं। वास्तवमें तथ्य यह है कि विष्णुधर्मोत्तरपुराण, जो कि एक उपपुराणके रूपमें मान्य है, इसी

विष्णुपुराणका उत्तरार्ध है। इन दोनोंके श्लोक मिलानेपर नारदादि पुराणोंमें वर्णित विष्णुपुराणकी श्लोक-संख्या पूर्ण हो जाती है।

इस पुराणमें पुराणोंके पञ्चलक्षण—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, वंशानुचरित तथा मन्वन्तरका सम्यक् रूपसे परिपाक हुआ है। इसके प्रथम अंशमें विस्तारसे सृष्टिका वर्णन हुआ है। सृष्टिका कारण वहाँ ब्रह्म (विष्णु) को कहा गया है तथा उसकी शक्तिका भी विवरण दिया गया है। द्वितीय अंशमें मुख्य-रूपसे भूगोल तथा खगोलका वर्णन है। तृतीय अंशमें मन्वन्तर, वेदकी शाखाओंका विस्तार, वर्णाश्रमधर्म तथा श्राद्धोंका निरूपण किया गया है। चतुर्थ अंशमें मुख्यरूपसे सूर्य तथा चन्द्रवंशी राजाओंके दिव्य आख्यान बताये गये हैं, जिनमें इक्ष्वाकु, मान्धाता, सगर तथा ययाति और उसके पाँचों पुत्रोंका विस्तारसे वर्णन है तथा फिर कलियुगके राजवंशोंका निदर्शन है और कलियुगकी श्रेष्ठता प्रदर्शित की गयी है। पञ्चम अंशमें विस्तारसे श्रीकृष्ण-चरित्र है। षष्ठ अंशमें कलिधर्म-निरूपण, प्रलय-वर्णन करते हुए अन्तमें भगवान् वासुदेवके माहात्म्य तथा उनके पारमार्थिक स्वरूप-प्रसंगमें केशिध्वज तथा खाण्डिक्यका महत्त्वपूर्ण आख्यान वर्णित है। सार-रूपमें कहा जाय तो यह पुराण भक्ति, ज्ञान तथा उपासनाका विलक्षण ग्रन्थ है। इस पुराणपर संस्कृतमें रत्नगर्भ, श्रीधर तथा विष्णुचित्त आदि आचार्योंकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्राचीन टीकाएँ हैं तथा हिन्दी, अंग्रेजी, जर्मन आदि भाषाओंमें इसके कई अनुवाद हो चुके हैं। इस पुराणके श्रवण तथा पाठ करनेसे श्रीहरिके चरणारविन्दोंमें अखण्ड भक्ति प्राप्त होती है।

कथा-आख्यान—

स्त्री, शूद्र और कलियुगकी महत्ता

एक बार कुछ मुनि मिलकर विचार करने लगे कि किस समयमें थोड़ा-सा पुण्य भी महान् फल देता है और कौन उसका सुखपूर्वक अनुष्ठान कर सकते हैं? वे जब कोई निर्णय नहीं कर सके, तब निर्णयके लिये व्यासजीके पास पहुँचे। व्यासजी उस समय गङ्गाजीमें स्नान कर रहे थे। मुनिमण्डली उनकी प्रतीक्षामें गङ्गाजीके तटपर स्थित एक वृक्षके पास बैठ गयी। उस वृक्षके पासके लोग गङ्गाजीमें स्नान कर रहे व्यासजीकी बोली अच्छी तरह सुन सकते थे। वृक्षके पास बैठे मुनियोंने देखा कि व्यासजी गङ्गाजीमें डुबकी लगाकर जलसे ऊपर उठे और **'शूद्रः साधुः'**, **'कलिः साधुः'** पढ़कर उन्होंने पुनः डुबकी लगायी। जलसे ऊपर उठकर **'योषितः साधु धन्यास्तास्ताभ्यो धन्यतरोऽस्ति कः'** पढ़कर पुनः डुबकी लगायी, मुनिगण इसे सुनकर संदेहमें पड़ गये। व्यासजीद्वारा पढ़े गये मन्त्र नदी-स्नान-कालमें पढ़े जानेवाले मन्त्रोंमेंसे नहीं थे। वे जो पढ़ रहे थे, उनका अर्थ है—'कलियुग प्रशंसनीय है, शूद्र साधु है, स्त्रियाँ श्रेष्ठ हैं, वे ही धन्य हैं, उनसे अधिक धन्य और कौन है? मुनिगण संदेहका समाधान प्राप्त करने आये थे, परंतु यह सुनकर वे पहलेसे भी विकट संदेहमें पड़ गये और जिज्ञासासे एक दूसरेको देखने लगे।

कुछ देर बाद स्नान कर लेनेपर नित्यकर्मसे निवृत्त होकर व्यासजी जब आश्रममें आये, तब मुनिगण भी उनके

समीप पहुँचे। वे सब जब यथायोग्य अभिवादनादिके अनन्तर आसनोंपर बैठ गये तब व्यासजीने उनमें

आगमनका उद्देश्य पूछा। मुनियोंने कहा कि हमलोग आपसे एक संदेहका समाधान कराने आये थे, किंतु इस समय उसे रहने दिया जाय, अभी हमें यह बतलाया जाय कि आपने स्नान करते समय कई बार कहा था कि 'कलियुग प्रशंसनीय है, शूद्र साधु है, स्त्रियाँ श्रेष्ठ और सर्वाधिक धन्य हैं, सो क्या बात है? यह बात यदि गोपनीय न हो तो हमें कृपा करके बतायें। यह जान लेनेके बाद हम जिस आन्तरिक संदेहके समाधानके लिये आये थे, उसे कहेंगे।

व्यासजी उनकी बातें सुनकर बोले कि मैंने कलियुग, शूद्र और स्त्रियोंको जो बार-बार साधु-साधु कहा, उसका कारण आपलोग सुनें। जो फल सत्ययुगमें दस वर्ष जप-तप और ब्रह्मचर्यादि करनेसे मिलता है, उसे मनुष्य त्रेतामें एक वर्ष, द्वापरमें एक मास और कलियुगमें केवल एक दिनमें प्राप्त कर लेता है। जो फल सत्ययुगमें ध्यान, त्रेतामें यज्ञ और द्वापरमें देवार्चन करनेसे प्राप्त होता है, वही कलियुगमें भगवान् श्रीकृष्णका नाम-कीर्तन करनेसे मिल जाता है। कलियुगमें थोड़े-से परिश्रमसे ही लोगोंको महान् धर्मकी प्राप्ति हो जाती है। इन कारणोंसे मैंने कलियुगको श्रेष्ठ कहा।

शूद्रको श्रेष्ठ कहनेका कारण बतलाते हुए व्यासजीने कहा कि द्विजको पहले ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए वेदाध्ययन करना पड़ता है और तब गार्हस्थ्य-आश्रममें प्रवेश करनेपर स्वधर्माचरणसे उपार्जित धनके द्वारा विधिपूर्वक यज्ञ-दानादि करने पड़ते हैं। इसमें भी व्यर्थ वार्तालाप, व्यर्थ भोजन और व्यर्थ यज्ञ उनके पतनके कारण होते हैं, इसलिये उन्हें सदा संयमी रहना आवश्यक होता है। सभी कार्योंमें विधिका ध्यान रखना पड़ता है। विधि-विपरीत करनेसे दोष लगता है। द्विज भोजन और पानादि भी अपने इच्छानुसार नहीं कर सकते। उन्हें सम्पूर्ण कार्योंमें परतन्त्रता ही रहती है। वे अत्यन्त क्लेशसे पुण्यलोकोंको प्राप्त करते हैं, किंतु जिसे केवल मन्त्रहीन पाकयज्ञका ही अधिकार है, वह शूद्र द्विज-सेवासे ही सद्गति प्राप्त कर लेता है, इसलिये वह द्विजकी अपेक्षा धन्यतर है। शूद्रके लिये भक्ष्याभक्ष्य अथवा पेयापेयका नियम द्विज-जैसा कड़ा नहीं है। इन कारणोंसे मैंने उसे श्रेष्ठ कहा।

स्त्रियोंको श्रेष्ठ कहनेका कारण बतलाते हुए व्यासजीने कहा कि पुरुष जब धर्मानुकूल उपायोंद्वारा प्राप्त धनसे दान और यज्ञ करते हैं एवं अन्य कष्टसाध्य व्रतोपवासादि करते हैं, तब पुण्यलोक पाते हैं, किंतु स्त्रियाँ तो तन-मन-वचनसे पतिकी सेवा करनेसे ही उनकी हितकारिणी होकर पतिके समान शुभलोकोंको अनायास ही प्राप्त कर लेती हैं जो कि पुरुषको अत्यन्त परिश्रमसे मिलते हैं, इसलिये मैंने उन्हें श्रेष्ठ कहा।

कलियुग, शूद्र एवं स्त्रियोंको साधुवाद देनेका रहस्य बतलाकर व्यासजीने मुनियोंसे कहा कि अब आपलोग जिस लिये आये थे, वह कहिये। मैं आपसे सब बातें स्पष्टतासे कहूँगा। मुनियोंको अपनी समस्याओंका समाधान मिल चुका था, इसलिये उन्होंने व्यासजीसे कहा कि हम लोग आपसे पूछने आये थे कि किस समयमें थोड़ा-सा पुण्य भी महान् फल देता है और कौन उसका सुखपूर्वक अनुष्ठान कर सकते हैं? इनका उचित उत्तर आपने इसी प्रश्नके उत्तरमें दे दिया, इसलिये अब हमें कुछ पूछना नहीं है। बिना पूछे ही अपने प्रश्नोंके उचित उत्तर पानेके कारण आश्चर्यसे उत्फुल्ल नेत्रोंवाले समागत तपस्वियोंसे व्यासजीने कहा कि आपलोगोंका अभिप्राय दिव्य दृष्टिसे जानकर मैंने बिना पूछे ही सब कुछ कह दिया। जिन लोगोंने गुण-रूप जलसे अपने समस्त दोष धो डाले हैं, उनके थोड़े-से प्रयत्नसे ही कलियुगमें धर्म सिद्ध हो जाता है। शूद्रोंको द्विज-सेवा-परायण होनेसे और स्त्रियोंको पतिकी सेवा मात्र करनेसे ही अनायास धर्मकी सिद्धि हो जाती है, इसीलिये ये तीनों धन्यतर हैं। सत्ययुगादि तीन युगोंमें भी द्विजको ही धर्म-सम्पादन करनेमें महान् कष्ट उठाना पड़ता है। कलियुगमें एक महान् गुण है कि इस युगमें केवल श्रीकृष्णनामका कीर्तन करनेसे ही कोई भी परमपद प्राप्त कर लेता है।

व्यासजीके वचनोंमें अपनी शङ्काओंका समाधान प्राप्तकर महाभाग ऋषिगण व्यासजीका पूजन कर और उनके कथनानुसार निश्चय कर अपने-अपने स्थानको लौट गये। (रा० प० सिं०)

धन्य कौन ?

एक बार भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुरसे दुर्योधनके यज्ञसे निवृत्त होकर द्वारका लौटे थे। यदुकुलकी लक्ष्मी उस समय ऐन्द्री लक्ष्मीको भी मात कर रही थी। सागरके मध्य स्थित श्रीद्वारकापुरीकी छटा अमरावतीकी शोभाको भी तिरस्कृत कर रही थी। इन्द्र इससे मन-ही-मन लज्जित तथा अपनी राज्य-लक्ष्मीसे द्वेष-सा करने लग गये थे। हृषीकेश नन्दनन्दनकी अद्भुत राज्यश्रीकी बात सुनकर उसे देखनेके लिये उसी समय बहुत-से राजा द्वारका पधारे। इनमें कौरव-पाण्डवोंके साथ पाण्ड्य, चोल, कलिङ्ग, बाह्लीक, द्रविड़, खश आदि अनेक देशोंके राजा-महाराजा भी सम्मिलित थे। इन सभी राजा-महाराजाओंके साथ भगवान् श्रीकृष्ण सुधर्मासभामें स्वर्णसिंहासनपर विराजमान थे। अन्य राजा-महाराजागण भी चित्र-विचित्र आसनोंपर यथास्थान चारों ओरसे उन्हें घेरे बैठे थे। उस समय वहाँकी शोभा बड़ी विलक्षण थी। ऐसा लगता था मानो देवताओं तथा असुरोंके बीच साक्षात् प्रजापति ब्रह्माजी विराज रहे हों।

इसी समय मेघनादके समान तीव्र वायुका नाद हुआ और बड़े जोरोंकी हवा चली। ऐसा लगता था कि अब भारी वर्षा होगी और दुर्दिन-सा दीखने लग गया। पर लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ जब कि इस तुमुल दुर्दिनका भेदन करके उसमेंसे साक्षात् देवर्षि नारद निकल पड़े। वे ठीक अग्निशिखाके सदृश नरेन्द्रोंके बीच सीधे उतर पड़े। नारदजीके पृथ्वीपर उतरते ही वह दुर्दिन (वायु-मेघादिका आडम्बर) समाप्त हो गया। समुद्र-सदृश नृपमण्डलीके बीच उतरकर देवर्षिने सिंहासनासीन श्रीकृष्णकी ओर मुख करके कहा—'पुरुषोत्तम ! देवताओंके बीच आप ही परम आश्चर्य तथा धन्य हैं।' इसे सुनकर प्रभुने कहा—'हाँ, मैं दक्षिणाओंके साथ आश्चर्य और धन्य हूँ।' इसपर देवर्षिने कहा—'प्रभो ! मेरी बातका उत्तर मिल गया, अब मैं जाता हूँ।' श्रीनारदको चलते देख राजाओंको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कुछ भी समझ न सके कि बात क्या है। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—'प्रभो ! हमलोग इस दिव्य तत्त्वको कुछ जान न पाये, यदि गोप्य न हो तो इसका रहस्य हमें समझानेकी कृपा करें। इसपर भगवान्‌ने कहा—'आपलोग धैर्य रखें, इसे स्वयं नारदजी ही सुना रहे हैं। यों कहकर उन्होंने देवर्षिको इसे राजाओंके सामने स्पष्ट करनेके लिये कहा।

नारदजी कहने लगे—'राजाओ ! सुनो, जिस प्रकार मैं इन श्रीकृष्णके माहात्म्यको जान सका हूँ, वह तुम्हें बतलाता हूँ। एक बार मैं सूर्योदयके समय एकान्तमें गङ्गा-किनारे घूम रहा था। इतनेमें ही वहाँ एक पर्वताकार कछुआ आया। मैं उसे देखकर चकित रह गया। मैंने उसे हाथसे स्पर्श करते हुए कहा—'कूर्म ! तुम्हारा शरीर परम आश्चर्यमय है। वस्तुतः तुम धन्य हो; क्योंकि तुम निःशङ्क और निश्चिन्त होकर इस गङ्गामें सर्वत्र विचरते हो, फिर तुमसे अधिक धन्य कौन होगा ?' मेरी बात पूरी भी न हो पायी थी कि बिना ही कुछ सोचे वह कछुआ बोल उठा—'मुने ! भला मुझमें आश्चर्य क्या है तथा प्रभो ! मैं धन्य भी कैसे हो सकता हूँ ? धन्य तो हैं ये देवनदी गङ्गा, जो मुझ-जैसे हजारों कछुए तथा मकर, नक्र, झषादिसंकुल जीवोंकी आश्रयभूता शरणदायिनी हैं। मेरे-जैसे असंख्य जीव इनमें भरे हैं— विचरते रहते हैं, भला इनसे अधिक आश्चर्य तथा धन्य और कौन हैं ?'

नारदजीने कहा—'राजाओ ! कछुएकी बात सुनकर मुझे बड़ा कुतूहल हुआ और मैं गङ्गादेवीके सामने जाकर बोला—'सरित्-श्रेष्ठे गङ्गे ! तुम धन्य हो; क्योंकि तुम तपस्वियोंके आश्रमोंकी रक्षा करती हो, समुद्रमें मिलती हो, विशालकाय श्वापदोंसे सुशोभित हो और सभी आश्चर्योंसे विभूषित हो।' इसपर गङ्गा तुरंत बोल उठीं—'नहीं, नहीं, देवगन्धर्वप्रिय देवर्षे ! कलहप्रिय नारद ! मैं क्या आश्चर्यविभूषित या धन्य हूँ। इस लोकमें सर्वाश्चर्यकर परमधन्य तो समुद्र ही है, जिसमें मुझ-जैसी सैकड़ों बड़ी-बड़ी नदियाँ मिलती हैं।' इसपर मैंने जब समुद्रके पास जाकर उसकी ऐसी प्रशंसा की तो वह जलतलको फाड़ता हुआ ऊपर उठा और बोला— 'मुने ! मैं कोई धन्य नहीं हूँ, धन्य तो है यह वसुन्धरा, जिसने मुझ-जैसे कई समुद्रोंको धारण कर रखा है और वस्तुतः सभी आश्चर्योंकी निवासभूमि भी यह भूमि ही है।'

समुद्रके वचनोंको सुनकर मैंने पृथ्वीसे कहा—'देहधारियोंकी योनि पृथ्वी ! तुम धन्य हो। शोभने ! तुम समस्त

आश्चर्योंकी निवासभूमि भी हो।' इसपर वसुन्धरा चमक उठी और बड़ी तेजीसे बोल गयी—'अरे! संग्राम-कलहप्रिय नारद! मैं धन्य-वन्य कुछ नहीं हूँ, धन्य तो हैं ये पर्वत जो मुझे भी धारण करनेके कारण 'भूधर' कहे जाते हैं और सभी प्रकारके आश्चर्योंके निवासस्थल भी ये ही हैं।' मैं पृथ्वीके वचनोंसे पर्वतोंके पास उपस्थित हुआ और कहा कि 'वास्तवमें आपलोग बड़े आश्चर्यमय दीख पड़ते हैं। सभी श्रेष्ठ रत्न तथा सुवर्ण आदि धातुओंके शाश्वत आकर भी आप ही हैं, अतएव आपलोग धन्य हैं।' पर पर्वतोंने भी कहा—'ब्रह्मर्षे! हमलोग धन्य नहीं हैं। धन्य हैं प्रजापति ब्रह्मा और वे सर्वाश्चर्यमय जगत्के निर्माता होनेके कारण आश्चर्यभूत भी हैं।'

अब मैं ब्रह्माजीके पास पहुँचा और उनकी स्तुति करने लगा—भगवन्! एकमात्र आप ही धन्य हैं, आप ही आश्चर्यमय हैं। सभी देव, दानव आपकी ही उपासना करते हैं। आपसे ही सृष्टि उत्पन्न होती है, अतएव आपके तुल्य धन्य अन्य कौन हो सकता है?' इसपर ब्रह्माजी बोले—'नारद! इन धन्य, आश्चर्य आदि शब्दोंसे तुम मेरी क्यों स्तुति कर रहे हो? धन्य और आश्चर्य तो ये वेद हैं, जिनसे यज्ञोंका अनुष्ठान तथा विश्वका संरक्षण होता है।' जब मैं वेदोंके पास जाकर उनकी प्रशंसा करने लगा तो उन्होंने यज्ञोंको धन्य कहा। तब मैं यज्ञोंकी स्तुति करने लगा। इसपर यज्ञोंने मुझे बतलाया कि—'हम धन्य नहीं, विष्णु धन्य हैं, वे ही हमलोगोंकी अन्तिम गति हैं। सभी यज्ञोंके द्वारा वे ही आराध्य हैं।'

तदनन्तर मैं विष्णुकी गतिकी खोजमें यहाँ आया और आप राजाओंके मध्य श्रीकृष्णके रूपमें इन्हें देखा। जब मैंने इन्हें धन्य कहा, तब इन्होंने अपनेको दक्षिणाओंके साथ धन्य बतलाया। दक्षिणाओंके साथ भगवान् विष्णु ही समस्त यज्ञोंकी गति हैं। यहीं मेरा प्रश्न समाहित हुआ और इतनेसे ही मेरा कुतूहल भी निवृत्त हो गया। अतएव मैं अब जा रहा हूँ।'

यों कहकर देवर्षि नारद चले गये। इस रहस्य तथा संवाद-को सुनकर राजालोग भी बड़े विस्मित हुए और सबने एकमात्र प्रभुको ही धन्यवाद, आश्चर्य एवं सर्वोत्तम प्रशंसाका पात्र माना।

प्रतिशोधका त्याग

'रक्षा करो भगवन्! बचाओ करुणासिन्धो! मेरे आचार्योंको क्षमा करो कृपानिधान!' बालक प्रह्लाद अपनी करुण आर्त-पुकारमें भगवान्से विनय करते रहे, पर उनके देखते-देखते ही अग्नि-शिखाके समान प्रज्वलित शरीरवाली 'कृत्या'ने 'शण्डामर्क' नामक दोनों कुल-पुरोहितोंको निर्जीव कर दिया।

हिरण्यकशिपुके हितैषी इन दोनों कुटिल आचार्योंने उसे प्रसन्न करनेके लिये अपनी विद्याका दुरुपयोगकर प्रह्लादको भस्म करने हेतु इस प्रचण्ड कृत्याको उत्पन्न किया था, परंतु परिणाम विपरीत हुआ।

शोक-मग्न दुःखित प्रह्लाद अत्यन्त विह्वल हो उठे। उनके सामने दोनों आचार्योंके शव पड़े हुए थे। उन्होंने भगवान्से प्रार्थना करते हुए कहा—'भगवन्! जिन लोगोंने मुझे विष देकर, अग्निमें जलाकर, हाथीके पैरोंके नीचे कुचलवाकर, सर्पोंसे डँसवाकर मारनेका प्रयत्न किया, उनके प्रति भी यदि मेरी समान-रूपसे मैत्री-भावना रही हो, यदि मेरे हृदयमें कभी प्रतिशोधकी भावना जाग्रत् न हुई हो और मुझसे शत्रुता रखनेवालोंमें भी मैं सर्वदा सर्वव्यापी भगवान्को देखता रहा होऊँ तो उस सत्यके प्रभावसे दोनों दैत्य-पुरोहित जीवित हो जायँ।'

यथा सर्वगतं विष्णुं मन्यमानोऽनपायिनम्।
चिन्तयाम्यरिपक्षेऽपि जीवन्त्वेते पुरोहिताः॥
ये हन्तुमागता दत्तं यैर्विषं यैर्हुताशनः।
यैर्दिग्गजैरहं क्षुण्णो दष्टः सर्पैश्च यैरपि॥
तेष्वहं मित्रभावेन समः पापोऽस्मि न क्वचित्।
यथा तेनाद्य सत्येन जीवन्त्वसुरयाजकाः॥

(विष्णुपुराण १।१८।४१-४३)

इतना कहकर प्रह्लादने ज्यों ही उनका स्पर्श किया, त्यों ही वे दोनों उठ बैठे और मुक्तकण्ठसे कृतज्ञतापूर्ण हृदयसे प्रह्लादके आत्मभावकी प्रशंसा करने लगे। (स्वा० ओं० आ०)

शिवपुराण

[अष्टादश महापुराणोंमें चौथे स्थानपर कहीं शिव और कहीं वायुपुराण परिगणित है। विषयवस्तुकी दृष्टिसे दोनों ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। अतः यहाँ दोनोंका संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।—सम्पादक]

अठारह महापुराणोंमें शिवपुराणका भी एक स्थान है। विष्णुपुराणमें तृतीय अंशके छठे अध्यायके बाईसवें श्लोकमें लिखा है कि **'ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा'**—इसी प्रकार भागवतके बारहवें स्कन्धमें तथा मार्कण्डेयपुराण और पद्मपुराणके विभिन्न खण्डोंमें शिवपुराणका महापुराणकी तालिकामें निर्देश मिलता है। बृहद्धर्मपुराणके पूर्वखण्डके २५वें अध्यायमें उपपुराण और महापुराणकी तालिका मिलती है। वहाँ भी शिवपुराण महापुराणके अन्तर्गत कहा गया है।

शिवपुराण बारह संहिताओंमें विभक्त है—१-विद्येश्वर, २-रौद्र, ३-वैनायक, ४-भौम, ५-मातृ, ६-रुद्रैकादश, ७-कैलास, ८-शतरुद्र, ९-कोटिरुद्र, १०-सहस्रकोटिरुद्र, ११-वायवीय, १२-धर्मसंहिता। इन संहिताओंके श्लोकोंकी संख्याओंका एकत्र योग करनेपर एक लाख संख्या होती है—

विद्येश्वरं तथा रौद्रं वैनायकमनुत्तमम्। भौमं मातृपुराणं च रुद्रैकादशकं तथा॥
कैलासं शतरुद्रं च कोटिरुद्राख्यमेव च। सहस्रकोटिरुद्राख्यं वायवीयं ततः परम्॥
धर्मसंज्ञं पुराणं चेत्येवं द्वादशसंहिताः। तदेवं लक्षमुद्दिष्टं शैवं शाखाविभेदतः॥

वङ्गवासी शास्त्रप्रकाशने विद्येश्वर, कैलास, वायवीय, धर्मसंहिता, सनत्कुमार और ज्ञानसंहिता—इन छः संहिताओंके साथ शिवपुराणका प्रकाशन किया है। कुछ गवेषकोंने ज्ञानसंहिता और सनत्कुमारसंहिताको स्कन्दपुराणके ब्रह्मोत्तरखण्डका अंश माना है, कुछ लोगोंने शिवपुराण नामक उपपुराणका अंश माना है, कुछ लोगोंने 'मानवीयसंहिता' नामकी एक संहिता भी शिवपुराणके अन्तर्गत मानी है। यह संहिता मनु और उनके पिता भास्करदेवके कथोपकथनके माध्यमसे विश्वसृष्टि और उसके नियन्ताके स्वरूप तथा मुक्ति-तत्त्व आदिका विवरण प्रस्तुत करती है। शिवपुराण एक प्रामाणिक ग्रन्थ माना गया है।

शिवपुराणका कलेवर बृहत् है। इसमें अनेक ज्ञातव्य विषय हैं। सूतजीने कहा है कि इस विषयमें नारदजीने ब्रह्माजीके पास शिवतत्त्वको जाननेके लिये जो प्रश्न किया था, मैंने अपने पितृदेवसे जो सुना है, वही कह रहा हूँ। पितामहने नारदजीसे कहा—'नारद! तीनों लोकोंके कल्याणकी कामनासे तुमने जो मुझसे जिज्ञासा की है, इस विषयको सुननेपर तीनों लोकोंके प्राणियोंका पाप विनष्ट हो जाता है।'

प्रथम ब्रह्म थे, उनकी जो कामना हुई, वही प्रकृति या माया थी। ब्रह्मसे पुरुष आविर्भूत हुआ। ये दोनों मिलकर किस प्रकार सृष्टि हो—यह विचार करने लगे। तदनन्तर आकाशवाणी हुई—'तुमलोग तपस्या करो।' दोनोंने कठोर तपस्या की। बहुत दिनोंतक तपस्यामें निरत रहनेपर वे ध्यान-मग्न हो गये। तब उनके शरीरसे जलधारा निकलने लगी, जिससे सभी कुछ जलमय हो गया और वे दोनों जलके बीच शयन करने लगे, इसीलिये उस पुरुषका नाम नारायण और प्रकृतिका नाम नारायणी हुआ। उस समय प्रकृति और पुरुषको छोड़कर और कुछ भी न था। तदनन्तर प्रकृतिसे महत्तत्त्व (बुद्धि), उससे अहंकारतत्त्व, अहंकारसे पञ्चतन्मात्र (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द), पञ्चतन्मात्रसे पञ्चभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश), पञ्चभूतसे पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं। मनीषियोंकी दृष्टिमें यह माना गया है कि शिवपुराणसे सांख्यशास्त्रकी उत्पत्ति होती है। ये सभी तत्त्व नारायणका आश्रयण कर जलमें सोये हुए थे। उनकी नाभिसे एक परम मनोहर अतिशय विशाल कमल प्रकट हुआ। उस कमलसे हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) उत्पन्न हुए। मायासे अभिभूत होनेके कारण ब्रह्मा अपनी उत्पत्तिके

कारणको नहीं जान सके। तब आकाशवाणी हुई—'तपस्या करो।' बारह वर्षोंतक तपस्या करनेपर उनके सम्मुख शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मको धारण किये हुए भगवान् विष्णु प्रकट हुए। भगवान् विष्णुने कहा—'मैंने तुम्हारा सत्त्वगुणसे निर्माण किया है। अव्यक्त चौबीस तत्त्वोंकी भी मैंने ही पूर्वमें सृष्टि की है। ब्रह्मा यह सुनकर विष्णुके स्वरूपको न जानकर क्षुब्ध हो उनसे युद्ध करने लगे। दोनोंके विवादकी शान्ति और ज्ञानके उदयके लिये एक अद्‌भुत विशाल ज्योतिर्लिङ्गका आविर्भाव हुआ। इसके प्रभावसे ब्रह्मा और विष्णु युद्धसे विरत हो गये। दोनों ही आश्चर्यचकित हो गये और इस लिङ्गके स्वरूपको जाननेके लिये ब्रह्मा हंसका स्वरूप धारण कर ऊपरकी ओर गये और विष्णु वराहरूप धारणकर नीचेकी ओर। दोनोंने इस रूपमें हजार वर्ष व्यतीत किये, परंतु वे विफल होकर लौट आये। ब्रह्माने विष्णुसे कहा—'हम दोनों ही इस लिङ्गके स्वरूपका निर्णय नहीं कर सकते और 'ज्योतिर्लिङ्ग क्या है'—यह न जानकर भी हमलोग इसे पुनः-पुनः प्रणाम करते रहे, इस प्रकार सौ वर्ष व्यतीत हो गये। तदनन्तर ॐकारात्मक आनन्दमय शब्द प्रकट हुआ। वे पुनः आश्चर्यचकित हो गये; क्योंकि इस स्थानमें पाँच मुख और दस भुजावाली कर्पूरके समान गौरवर्ण एवं विविध आभूषणोंसे अलङ्कृत एक मूर्ति दृष्टिगोचर हुई। ये ही शिव थे, जिन्होंने ब्रह्मा और विष्णुको जगत्‌की सृष्टि और पालन करनेका निर्देश किया। तत्पश्चात् ब्रह्माण्डकी सृष्टि और पुनः ऋषि आदिकी सृष्टि हुई। शिवपुराणमें प्रकृतिस्वरूपा भगवतीकी अभिव्यक्ति, उनका शरीरत्याग और शिवपूजाका विधान कहा गया है। कुछ संहिताओंके विषयोंका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

ज्ञानसंहिता

इसमें तारकासुरकी कथा, शिवकी तपस्या, देवताओंका शिवके पास जाना, तारकासुरके वधार्थ पुत्रकी उत्पत्तिके लिये प्रार्थना, मदन-दाह, पार्वतीकी तपस्या, शिव-पार्वती-विवाह, कार्तिकेयका जन्म, तारकासुरका वध, तारकासुरके पुत्रोंका त्रिपुरमें निवास, शिवके द्वारा त्रिपुरका ध्वंस, देवोंको शिवसे वर-प्राप्ति, शिवपूजा-विधि, केतकीके पुष्पका शिवपूजनमें निषेध, व्याधकी कथा, शिवरात्रिकी प्रशंसा, भक्तिके द्वारा ही शिवतत्त्वके ज्ञानकी प्राप्तिका वर्णन है।

विद्येश्वरसंहिता

इसमें गङ्गा-यमुना-सङ्गम, प्रयागतीर्थमें शौनक आदि महामुनियोंके द्वारा यज्ञ आरम्भ करनेपर व्यासशिष्य सूतका आना, मुनियोंके द्वारा सूतसे वेदान्तसारकी किसी पुराणकथाको कहनेके लिये अनुरोध करना, सूतकी उक्ति—जगदीश्वर महादेव ही सभी तत्त्वोंसे श्रेष्ठ परात्परतत्त्व हैं। परम भक्ति ही उनके दर्शनकी प्राप्तिका साधन है। कानके द्वारा महादेवके गुणोंका श्रवण, वाणीसे गुणकीर्तन एवं मनसे सदा उनका मनन ही महासाधन है। श्रवण आदिमें असमर्थ व्यक्तिके लिये लिङ्गपूजा ही साधन है। ब्रह्मा और विष्णुका युद्ध देखनेपर शिवके पास देवोंका गमन, तेजोमय लिङ्गकी उत्पत्ति और उसके देखनेपर युद्धकी शान्ति, भैरवके द्वारा ब्रह्माके सिरका काटना, शिवकी कृपासे पुनः ब्रह्माको सिरकी प्राप्ति, प्रणवका स्वरूप-कथन, बन्धन और मुक्तिके स्वरूपका वर्णन है।

कैलाससंहिता

इसमें वाराणसी-धाममें सूतके द्वारा मुनियोंके प्रति प्रणवके अर्थका व्याख्यान, कैलासधाममें देवीद्वारा प्रणवके अर्थकी जिज्ञासा, प्रणवके अर्थको प्रकाश करनेवाले यन्त्रका स्वरूप, शिवपूजाविधि, कार्तिकेय और वामदेव मुनिका कथोपकथन, सनत्कुमारसंहिता, गुरुके उपदेशसे प्रणवकी उपासना, योगपट्ट आदिका निरूपण, नैमिषारण्यमें सनत्कुमारका आना, व्यास आदिसे भेंट और शिवकी पूजाके विषयमें प्रश्न, सनत्कुमारके द्वारा पृथिवी आदि संस्थानका क्रम-कथन, सात द्वीपोंका वर्णन, नरक आदिका तथा ऊपरके लोकों और योगके माहात्म्यका एवं रुद्रके माहात्म्यका वर्णन, रुद्रस्तुति, सनत्कुमारका चरित्रवर्णन, विष्णुलोक और शिवलोकका वर्णन, रुद्रके स्थानकी सभीकी अपेक्षा श्रेष्ठताका वर्णन, तीर्थ-वर्णन, शिवपूजाके पुष्पोंका विवरण, शिवकी प्रीतिके सम्पादक धर्मोंका संक्षिप्त वर्णन, शिवके श्मशानवासका कारण-निरूपण, प्रणवकी उपासना, दुर्वासाके प्रति

महादेवका ध्यानयोगवर्णन, हर-पार्वती-संवादमें काशी-माहात्म्य-वर्णन, शिवकी कृपासे गुहको दण्डपाणित्वकी प्राप्ति, मण्डुकीकी कथा, राजा प्रतापमुकुटसे ॐकारेश्वरका दर्शन, नन्दीकी तपस्या, शिवके द्वारा वरदान, नन्दीका विवाह, शिवके नीलकण्ठ होनेके कारणका वर्णन, त्रिपुरदाह, ब्राह्मणोंका माहात्म्य-वर्णन, शरीरमें स्थित नाडियोंका वर्णन है।

वायवीयसंहिता (पूर्वभाग)

इसमें महादेवकी कृपासे श्रीकृष्णको पुत्र-प्राप्ति, पुराणोंकी संख्याका वर्णन, ब्रह्माद्वारा ऋषियोंके प्रति शिवतत्त्वका वर्णन, ब्रह्माके आदेशसे यज्ञ करनेके लिये ऋषियोंका नैमिषारण्यमें जाना, शिवतत्त्व और मायाके स्वरूपका वर्णन, काल-परिणामकथन, प्राकृतसृष्टि-वर्णन, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरके आपसमें एकका दूसरेके अधीनस्थ होनेका एवं ब्रह्मासे महादेवकी उत्पत्तिका वर्णन, रुद्रसे शक्तिस्वरूपा स्त्रीकी सृष्टि, दक्ष-यज्ञ, देवीका शरीर-त्याग, वीरभद्र और कालीकी सृष्टि, दक्षको बकरेके सिरकी प्राप्ति, शुम्भ और निशुम्भके वधके लिये कौशिकीका आविर्भाव, त्रिविध शब्दके अर्थकी व्याख्या, पाशुपतव्रत और उसका माहात्म्य, दूधकी प्राप्तिके लिये बालक उपमन्युकी तपस्या और दुग्धके समुद्रकी प्राप्तिका वर्णन है।

वायवीयसंहिता (उत्तरभाग)

इसमें श्वेतकल्पमें प्रयागमें मुनियोंकी जिज्ञासाकी शान्तिके लिये वायुके द्वारा शिवके माहात्म्यका वर्णन, शिवके पशुपति नाम होनेके कारणका वर्णन, ब्रह्मा और विष्णुके प्रति शिवके स्वरूपका वर्णन, परब्रह्म और अपर ब्रह्मकी एकताका वर्णन, शिवके द्वारा देवीके प्रति शैवधर्मका कथन, शिवका पञ्चाक्षर-मन्त्र और उसका माहात्म्य-वर्णन, दीक्षा-प्रयोग और काम्य शिवकी पूजा, शिवस्तोत्र, योगका उपदेश, नन्दीके द्वारा शिवकथाका वर्णन है।

धर्मसंहिता

इसमें शिवमाहात्म्यवर्णन, श्रीकृष्णको उपमन्युके द्वारा शिवमन्त्रकी दीक्षा, शिवके उदरसे शुक्रका आविर्भाव, भक्तोंके प्रति देवीकी दया और सिद्धि-लाभ, रुद्रदैत्यका वध, बाण राजाके साथ युद्ध, कालीकी तपस्या, नित्य और नैमित्तिक शिवपूजाविधि, विविध पापों एवं उनके फलोंका वर्णन, धर्मवर्णन, अन्न आदि दानोंका विधान, एक दिनकी आराधनासे ही शिवकी कृपा, शिवके सहस्रनाम, धर्मका उपदेश और तुला-पुरुषका दान, पञ्चब्रह्म और उसका विधान, स्त्रीके स्वभाव आदिका वर्णन, मृत्यु-चिह्न और आयुका प्रमाण, राजा पृथुके पुत्र आदिकी कथा, पृथुका चरित्रवर्णन, सूर्यवंशका वर्णन, पितृकल्प और श्राद्ध आदिका वर्णन है।

रौद्रसंहिता

इसमें हिमालयके साथ मेनकाका विवाह, पार्वतीजन्म, पार्वतीके साथ शिवके विवाह आदि कथाओंका वर्णन, तीन असुरोंकी नगरीके नाशकी कथाका वर्णन है। रुद्रैकादशसंहिताको भी रुद्रसंहिताका ही भाग कतिपय गवेषकोंने स्वीकार किया है। इसमें १९ अध्याय हैं। इनमें जगत्की सृष्टि, तारकासुरकथा, शिव-पार्वती-विवाह, तीन असुरोंकी नगरीका ध्वंस, शैव-उपासना-पद्धति, गणेशके युद्धकी कथा और उनका विवाह-वर्णन, शिव-माहात्म्य, शिवका लिङ्गस्वरूप, रत्नमयलिङ्गस्वरूप, अर्जुनकी तपस्या, शिवरात्रिरहस्य, परमज्ञान, मुक्तितत्त्वका वर्णन है।

कोटिरुद्रसंहिता

इसमें विविध तीर्थोंमें शिवके लिङ्गोंका माहात्म्य-वर्णन, लिङ्गपूजा-पद्धति और शैवतत्त्वका वर्णन है।

भौमसंहिता

इसमें श्रीकृष्ण और उपमन्युके कथोपकथनका वर्णन, कैलासमें श्रीकृष्णकी तपस्या और शिवको प्रसन्नकर श्रीकृष्णको संतानकी प्राप्ति, नरक एवं विविध पाप तथा संसारचक्रसे मुक्तिका साधन-वर्णन और उसके लिये अन्नदान, तपस्या,

पुराण-श्रवणका विधान, पृथिवी और सात द्वीपोंका वर्णन है।

इस प्रकार शिवपुराणके परिमाणमें भेद होनेपर भी धर्मसंहितापर्यन्त शिवपुराणके रूपको सभीने स्वीकार किया है। वायवीयसंहिताका पूर्वार्ध और उत्तरार्ध इसके अन्तर्गत होनेसे इसे वायुपुराण भी कहा जाता है।

कथा-आख्यान—

नारदजीका कामविजय-विषयक अभिमान-भङ्ग

हिमालय पर्वतपर एक बड़ी पवित्र गुफा थी, जिसके समीप ही गङ्गाजी बह रही थीं। वहाँका दृश्य बड़ा मनोरम तथा पवित्र था। देवर्षि नारद एक बार घूमते-घामते वहाँ पहुँचे तो आश्रमकी पवित्रता देखकर उन्होंने वहीं तप करनेकी ठानी। फिर तो उन्होंने भगवान्‌का स्मरण किया, श्वास रोका। मन निर्मल तो था ही, सहज ही समाधि लग गयी। सौ सहस्र अयुत वर्ष बीत गये, पर नारदजीकी समाधि भङ्ग न हुई। उनकी गति देख इन्द्रको बड़ा भय हुआ। उन्होंने सोचा कि देवर्षि मेरा पद लेना चाहते हैं। अतएव उन्होंने कामदेवको आदरपूर्वक बुलाकर बड़ा सम्मान किया और पूरी सामग्रीके साथ नारदजीके पास तपोभङ्गके लिये तत्काल भेज दिया।

वहाँ जाकर कामदेवने अपनी सारी कलाओंका प्रयोग किया, पर मुनिपर उसकी एक न चली। कारण कि वह यही स्थान था, जहाँ भगवान् शंकरने कामको जलाया था। रतिके रोने-पीटनेपर उन्होंने कहा था कि कुछ समय बीतनेपर कामदेव जीवित तो हो जायगा और इसे पुनर्देह भी प्राप्त हो जायगी, पर इस स्थानपर यहाँसे जितनी दूरतककी पृथ्वी दिखलायी पड़ती है, वहाँतक कामके बाणोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगी[1]। विवश होकर कामदेव अपने सहायकोंके साथ अमरावती लौट गया और नारदजीकी सुशीलताका वर्णन करने लगा। उसने कहा—'न तो नारदजीको काम ही है और न क्रोध ही, क्योंकि उन्होंने मुझे पास बुलाकर सान्त्वना दी और मधुर वचनोंसे मेरा आतिथ्य किया।' यह सुनकर सभी आश्चर्यसे दंग रह गये।

इधर नारदजीकी तपस्या पूरी हो गयी। वे वहाँसे सीधे चलकर भगवान् शंकरके पास पहुँचे और अपनी कथा सुनायी। शंकरजीने उन्हें सिखाया—'नारदजी! इसे अब आप कहीं भी न कहियेगा।' विशेषकर विष्णु भगवान् पूछें भी तो आप इसे छिपा लीजियेगा।' पर नारदजीको यह सब अच्छा नहीं लगा, वे वीणा लेकर वैकुण्ठको चल दिये और वहाँ जाकर भी अपना काम-विजयका माहात्म्य गाने लगे। भगवान्‌ने सोचा—'इनके हृदयमें सकल शोकदायक अहंकारका मूल अंकुर उत्पन्न हो रहा है, सो इसे झट उखाड़ डालना चाहिये' और वे बोले—'महाराज! आप ज्ञान-वैराग्यके मूर्त-रूप ठहरे, भला आपको मोह कैसे सम्भव है।' नारदजीने अभिमानसे ही कहा—'प्रभो! यह आपकी कृपामात्र है।'

विष्णुलोकसे जब नारदजी भूलोकपर आये, तब देखते क्या हैं कि एक बहुत बड़ा विस्तृत नगर जगमगा रहा है। यह नगर वैकुण्ठसे भी अधिक रम्य तथा मनोहर है। भगवान्‌की मायाकी बात वे न समझ सके। उन्होंने सोचा—'यह नगर कहाँसे आ गया। मैं तो बराबर संसारका पर्यटन करता रहता हूँ। आजतक तो यह नगर दीखा नहीं था।' इधर-उधर लोगोंसे पूछनेपर पता चला कि इस नगरका राजा शीलनिधि अपनी लड़की 'श्रीमती'का स्वयंवर कर रहा है। इसीकी तैयारीमें नगर सजाया गया है। देश-विदेशके राजालोग पधार रहे हैं। नारदजी कौतुकी तो स्वभावसे ही ठहरे। तुरंत पहुँच गये राजाके यहाँ। राजाने भी अपनी लड़कीको बुलाकर नारदजीको प्रणाम कराया। तत्पश्चात् उनसे उस लड़कीका लक्षण पूछा। नारदजी तो उसके लक्षणोंको देखकर चकित रह गये। उसके लक्षण सभी विलक्षण थे—जो इसे विवाह ले, वह अजर-अमर हो जाय, संग्रामक्षेत्रमें वह सर्वथा अजेय हो। सम्पूर्ण चराचर विश्व उसकी सेवा करे। वह सर्वथा सर्वश्रेष्ठ हो

१-कश्चित्समयमासाद्य जीविष्यति सुराः स्मरः। परं त्विह स्मरोपायश्चरिष्यति न कश्चन॥
इह यावद् दृश्यते भूर्जनैः स्थित्वामराः सदा। कामवाणप्रभावोऽत्र न चलिष्यत्यसंशयम्॥
(शिवपुराण, रुद्रसंहिता २।२।२०-२१)

जाय। नारदजीने ऊपरसे राजाको कुछ कहकर छुट्टी ली और चले इस यत्नमें कि कैसे इसे पाया जाय।

सोचते-विचारते उन्हें एक उपाय सूझा। वे झट भगवान् विष्णुकी प्रार्थना करने लगे। प्रभु प्रकट हुए। नारदजी बोले—'नाथ! मेरा हित करो। अपना रूप मुझे दे दो। आपकी कृपाके बिना कोई उपाय उसे प्राप्त करनेका नहीं है।' प्रभुने कहा—'वैद्य जिस प्रकार रोगीकी ओषधि करके उसका कल्याण करता है, उसी प्रकार मैं तुम्हारा हित अवश्य करूँगा।' यद्यपि भगवान्‌की ये बातें बड़ी स्पष्ट थीं, नारदजी इस समय मोह तथा कामसे अंधे-से हो रहे थे, इसलिये कुछ न समझकर,'भगवान्‌ने मुझे अपना रूप दे दिया'—यह सोचकर तत्काल स्वयंवर-सभामें जा विराजे। इधर भगवान्‌ने उनका मुँह तो बंदरका बना दिया, पर शेष अङ्ग अपने-से बना दिये थे।

अब राजकुमारी जयमाल लेकर स्वयंवर-सभामें आयी। जब नारदजीपर उसकी दृष्टि पड़ी, तब वह बंदरका मुँह देखकर जल-भुन-सी गयी। भगवान् विष्णु भी राजाके रूपमें वहाँ बैठे थे। श्रीमतीने उनके गलेमें जयमाल डाल दी। वे उसे लेकर चले गये। इधर नारदजी बड़े दुःखी और बेचैन हुए। उनकी दशाको दो हरगण अच्छी प्रकार जानते थे। उन्होंने कहा—'जरा अपना मुँह आइनेमें देख लीजिये।' नारदजीको दर्पण तो नहीं मिला, पानीमें अपना मुँह देखा तो निराला बंदर। अब दौड़े विष्णुलोकको। बीचमें ही श्रीमतीके साथ भगवान् मिल गये। नारदजीके क्रोधका अब क्या पूछना। झल्ला पड़े—'ओहो! मैं तो जानता था कि तुम भले व्यक्ति हो, पर वास्तवमें तुम इसके सर्वथा विपरीत निकले। समुद्र-मन्थनके अवसरपर असुरोंको तुमने मद्य पिलाकर अचेत कर दिया और स्वयं कौस्तुभादि चार रत्न और लक्ष्मीतकको ले लिया। शंकरजीको बहकाकर दे दिया विष। यदि उन कृपालुने उस समय उस हलाहलको न पी लिया होता तो तुम्हारी सारी माया नष्ट हो जाती और आज हमारे साथ यह कौतुक। अच्छा चलो, तुमने मेरी अभीष्ट कन्या छीनी, अतएव तुम भी स्त्रीके विरहमें मेरे-जैसे ही विकल होओगे।

भगवान्‌ने अपनी माया खींच ली। अब नारदजी देखते हैं तो न वहाँ राजकुमारी है और न लक्ष्मी ही। वे बड़ा पश्चात्ताप करने लगे और 'त्राहि-त्राहि' कहकर प्रभुके चरणोंपर गिर पड़े। भगवान्‌ने उन्हें सान्त्वना दी और सौ बार शिवनाम जपनेको कहकर आशीर्वाद दिया कि अब माया तुम्हारे पास न फटकेगी। (शिवपुराण-पार्वतीसंहिता)

नल-दमयन्तीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

पूर्वकालमें आबू पर्वतके समीप एक आहुक नामका भील रहता था। उसकी पत्नीका नाम आहुजा था। वह बड़ी पतिव्रता तथा धर्मशीला थी। वे दम्पति बड़े शिवभक्त एवं अतिथि-सेवक थे। एक बार भगवान् शंकरने इनकी परीक्षा लेनेका विचार किया। वे एक यतिका रूप धारण करके संध्या-समय आहुकके दरवाजेपर जाकर कहने लगे—'भील! तुम्हारा कल्याण हो, मैं आज रातभर यहीं रहना चाहता हूँ, तुम दया करके एक रात मुझे रहनेके लिये स्थान

दे दो।' इसपर भीलने कहा—'स्वामिन्! मेरे पास स्थान बहुत थोड़ा है, उसमें आप कैसे रह सकते हैं?' यह सुनकर यति चलनेको ही थे कि पत्नीने पतिसे कहा— 'स्वामिन्! यतिको लौटाइये नहीं, गृहस्थधर्मका विचार कीजिये, इसलिये आप दोनों तो घरके भीतर रहें, मैं अपनी रक्षाके लिये कुछ बड़े शस्त्रोंको लेकर दरवाजेपर बैठी रह जाऊँगी।' भीलने सोचा कि यह बात तो ठीक ही कहती है, परंतु इसे बाहर रखकर मेरा घरमें रहना ठीक नहीं; क्योंकि यह अबला है। अतएव उसने यति तथा अपनी पत्नीको घरके भीतर रखा और स्वयं शस्त्र धारणकर बाहर बैठा रहा। रात बीतनेपर हिंस्र पशुओंने उसपर आक्रमण किया और उसे मार डाला। प्रातः होनेपर जब यति और उसकी पत्नी बाहर आये तो उसे मरा देखा। यह देखकर यति बहुत दुःखी हुए। पर भीलनीने कहा—'महाराज! इसमें शोक तथा चिन्ताकी क्या बात है? ऐसी मृत्यु तो बड़े भाग्यसे ही प्राप्त होती है। अब मैं भी इनके साथ सती हो जाऊँगी। इसमें तो हम दोनोंका ही परम कल्याण हो गया।' यों कहकर चितापर अपने पतिको रखकर वह भी उसी अग्निमें प्रविष्ट हो गयी।

तब भगवान् शंकर डमरू-त्रिशूल आदि आयुधोंके साथ प्रकट हो गये। उन्होंने बार-बार उस भीलनीसे वर माँगनेको कहा, पर वह कुछ न बोलकर सर्वथा ध्यानमग्न हो गयी। तब भगवान्ने उसे वरदान दिया कि अगले जन्ममें तुम्हारा पति निषधदेशमें राजा वीरसेनका पुत्र नल होगा और तुम्हारा जन्म विदर्भदेशके राजा भीमसेनकी पुत्री दमयन्तीके रूपमें होगा। यह यति भी हंस होगा और यही तुम दोनोंका संयोग करायेगा। वहाँ तुमलोग अनन्त राजसुखोंका उपभोग करके अन्तमें दुर्लभ मोक्षपदको प्राप्त करोगे।'

यों कहकर वे प्रभु शंकर वहीं अचलेश्वर लिङ्गके रूपमें स्थित हो गये और कालान्तरमें ये ही दोनों भील-दम्पति नल-दमयन्तीके रूपमें अवतीर्ण हुए।

अभिमानी रावणकी शिव-भक्ति

एक बार राक्षसराज रावण कैलासपर्वतपर महादेवजीकी आराधना करने लगा। वहाँ महादेवजीको प्रसन्न होते न देख वह हिमालयके वृक्षखण्डक नामक दक्षिणभागमें जाकर तपस्यामें लीन हो गया। वहाँ भी जब उसने शिवजीको प्रसन्न होते नहीं देखा, तब वह अपना मस्तक काट-काटकर चढ़ाने लगा। नौ मस्तक काटकर चढ़ा देनेके बाद जब एक मस्तक बच रहा, तब शंकरजी प्रसन्न हो गये और बोले—'राक्षसराज! अभीष्ट वर माँगो।' रावणने कहा—'महाराज! मुझे अतुल बल दें और मेरे मस्तक पूर्ववत् हो जायँ।' भगवान् शंकरने उसकी अभिलाषा पूर्ण की। इस वरकी प्राप्तिसे देवगण और ऋषिगण बहुत दुःखी हुए। उन्होंने नारदजीसे पूछा—'देवर्षे! इस दुष्ट रावणसे हमलोगोंकी रक्षा किस प्रकार हो?' नारदजीने कहा—'आपलोग जायँ, मैं इसका उपाय करता हूँ।' तब जिस मार्गसे रावण जा रहा था, उसी मार्गपर वीणा बजाते हुए नारदजी उपस्थित हो गये और बोले—'राक्षसराज! तुम धन्य हो, तुम्हें देखकर मुझे असीम प्रसन्नता हो रही है। तुम कहाँसे आ रहे हो और बहुत प्रसन्न दीख रहे हो?' रावणने कहा—'ऋषिवर! मैंने आराधना करके शिवजीको प्रसन्न किया है।' रावणने सभी वृत्तान्त ऋषिके सम्मुख प्रस्तुत कर दिया। उसे सुनकर नारदजीने कहा—'राक्षसराज! शिव तो उन्मत्त हैं, तुम मेरे प्रिय शिष्य हो इसलिये कह रहा हूँ, तुम उनपर विश्वास मत करो और लौटकर उनके दिये हुए वरदानको प्रमाणित करनेके लिये कैलासको उठाओ। यदि तुम उसे उठा लेते हो तो तुम्हारा अबतकका प्रयास सफल माना जायगा।' अभिमानी रावण लौटकर कैलासपर्वतको उठाने लगा। ऐसी स्थिति देखकर शिवजीने कहा—'यह क्या हो रहा है?' तब पार्वतीजीने हँसते हुए कहा—'आपका शिष्य आपको गुरु-दक्षिणा दे रहा है। जो हो रहा है, वह ठीक ही है।' यह बलदर्पित अभिमानी रावणका कार्य है,ऐसा जानकर शिवजीने उसे शाप देते हुए कहा—'अरे दुष्ट! शीघ्र ही तुम्हें मारनेवाला उत्पन्न होगा।' यह सुनकर नारदजी वीणा बजाते हुए चल दिये और रावण भी कैलासपर्वतको वहीं रखकर विश्वस्त होकर चला गया।

—(म० प्र० गो०)

किरातवेषधारी शिवजीकी अर्जुनपर कृपा

जब पाँचों पाण्डव द्रौपदीसहित वनमें अज्ञात-वास कर रहे थे, तब उनके कष्टोंको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण तथा महर्षि व्यासजीने अर्जुनसे भगवान् शिवको प्रसन्न करके वर प्राप्त करनेके लिये कहा तथा उसके लिये उपाय बताया। वीर अर्जुन अपने तथा राज्यपर आये हुए संकटोंका नाश करनेके लिये व्यासजीके निर्देशानुसार इन्द्रकील पर्वतपर गये। वहाँ उन्होंने जाह्नवीके मनोहर तटपर मनोरम पार्थिव शिवलिङ्गका निर्माण किया और वे उसका विधिवत् पूजन करते हुए तप करने लगे। गुप्तचरोंद्वारा जब इन्द्रको अर्जुनके इस तपका पता लगा, तब वे अपने पुत्रका मनोरथ समझ गये और वृद्ध ब्रह्मचारीका वेष धारण कर उसकी परीक्षा लेनेके उद्देश्यसे वहाँ आये तथा अर्जुनका आतिथ्य ग्रहण करनेके बाद अनेक प्रकारसे उसे तपसे विमुख करनेका प्रयत्न करने लगे, परंतु अर्जुनका दृढ़ निश्चय देखकर वे अपने वास्तविक रूपमें प्रकट

हो गये। फिर तो वे उसे शंकरके दिव्य मन्त्रका उपदेश देकर तथा अपने अनुचरोंको अर्जुनकी रक्षाके लिये आदेश देकर अन्तर्धान हो गये।

तदुपरान्त महर्षि व्यासके कथनानुसार अर्जुन भगवान् शिवका ध्यान कर एक पैरपर खड़े हो गये तथा सूर्यकी ओर एकाग्र दृष्टि करके शिवजीके दिव्य पञ्चाक्षर-मन्त्र (ॐ नमः शिवाय)का जप करने लगे। उनके घोर तपको देखकर देवगण आश्चर्यचकित हो गये। वे भगवान् शिवके पास गये और अर्जुनको वर प्रदान करनेके लिये प्रार्थना करने लगे। देवताओंकी बात सुनकर भगवान् शिव हँस पड़े और उन्हें निश्चिन्त रहनेके लिये कहे। वे आश्वस्त होकर अपने-अपने स्थानको लौट गये।

इधर दुर्योधनद्वारा भेजा हुआ 'मूक' नामका एक मायावी राक्षस सूकरका रूप धारण कर अनेक प्रकारका भयंकर शब्द करता हुआ तथा वृक्ष-पर्वतादिको उखाड़ता हुआ वहाँ पहुँचा, जहाँ अर्जुन तप कर रहे थे। उसे देखते ही अर्जुन समझ गये कि यह निश्चय ही मेरा अनिष्ट करना चाहता है, अतः उसे मार देनेके उद्देश्यसे बाणका संधान करने लगे। उसी समय भक्तवत्सल सर्वज्ञ शिव अर्जुनकी रक्षा करने तथा उनकी परीक्षा लेनेके उद्देश्यसे अपने गणोंसहित भीलका वेष धारण कर वहाँ उपस्थित हुए। वह भीलसमूह मुँहसे विविध शब्दोंका घोष कर रहा था। इधर सूकरने भी भयंकर घोष किया। अर्जुन उस भीलराजके शब्दको सुनकर मन-ही-मन शङ्का करने लगे कि कहीं ये किरातवेषधारी भगवान् शिव तो ही नहीं हैं ? इस प्रकार वे सोच-विचार कर ही रहे थे, तबतक वह सूकर वहाँ आ गया और भीलराज तथा अर्जुन—दोनोंने उसे मारनेके उद्देश्यसे एक साथ बाण छोड़े। भीलराजका बाण सूकरके पुच्छभागमें लगा और मुखसे निकलता हुआ पृथ्वीमें चला गया, जबकि अर्जुनका बाण मुखसे पुच्छभागकी ओर निकलकर पृथ्वीपर गिर गया और सूकर तुरंत मर गया।

तदुपरान्त अर्जुन अपना बाण उठानेके लिये झुके ही थे कि उसी समय भीलराजकी आज्ञासे उनका अनुचर भी उस बाणको उठानेके लिये झपटा और अर्जुनसे बाण माँगने लगा। अर्जुनने बहुत समझाया कि यह बाण मेरा है, इसमें मेरा नाम भी अङ्कित है, परंतु वह अपने हठपर अड़ा रहा। इस प्रकार दोनोंमें बहुत देरतक वाद-विवाद होता रहा। अन्तमें उसने अर्जुनको कृतघ्न तथा मिथ्याभाषी आदि शब्दोंद्वारा अपमानित करते हुए युद्धके लिये ललकारा। तब अर्जुन क्रुद्ध होकर

बोले—'मैं तुमसे नहीं, तुम्हारे राजासे युद्ध करूँगा।' गणके द्वारा अर्जुनकी बातको सुनकर किरातवेषधारी भगवान् शिव अपने गणोंसहित युद्धके लिये वहाँ उपस्थित हुए और दोनोंमें भयंकर युद्ध होने लगा। अर्जुनके बाणोंके आघातसे घबराकर शिवगण चारों दिशाओंमें भागने लगे। किरातराजने अर्जुनके कवच तथा सभी बाणोंको नष्ट कर दिया। तब अर्जुन भगवान् शिवका स्मरण कर उस किरातका पैर पकड़कर उसे घुमाने लगे। उसी समय भगवान् शंकरने अपना परमसुन्दर वास्तविक रूप प्रकट कर दिया, जिसे देखकर अर्जुन अवाक् रह गये तथा लज्जित होते हुए अनेक प्रकारसे पश्चात्ताप करने लगे। वे शिवजीको प्रणाम करके स्तुति करने लगे। तब शिवजी उन्हें अनेक प्रकारसे आश्वस्त करते हुए बोले—'मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, वर माँगो।' किंतु अर्जुन भक्तिभावसे पूर्ण हो अनेक प्रकारसे उनकी स्तुति करते हुए बारम्बार प्रणाम करने लगे। भगवान् शिव हँसकर पुनः बोले—'मैं तुमपर अत्यधिक प्रसन्न हूँ, जो तुम्हें अभीष्ट हो वह माँगो।' अर्जुनने कहा—'नाथ! मेरे ऊपर जो शत्रुओंके संकट थे, वे तो आपके दर्शनमात्रसे ही नष्ट हो गये, अतः जिससे मेरी इहलोककी परासिद्धि हो ऐसी कृपा करें। तब भगवान् शिवने अपना अजेय पाशुपत-अस्त्र अर्जुनको दिया और कहा—'वत्स! इस अस्त्रसे तुम सदा अजेय रहोगे, जाओ विजय प्राप्त करो। मैं श्रीकृष्णसे भी तुम्हारी सहायताके लिये कहूँगा।' इस प्रकार भगवान् शिव अर्जुनको आशीर्वाद देकर अन्तर्धान हो गये और अर्जुन प्रसन्नचित्त हो अपने बन्धुओंके पास लौट आये।

गुणनिधिपर भगवान् शिवकी कृपा

पूर्वकालमें यज्ञदत्त नामक एक ब्राह्मण थे। समस्त वेद-शास्त्रादिका ज्ञाता होनेसे उन्होंने अतुल धन एवं कीर्ति अर्जित की थी। उनकी पत्नी सर्वगुणसम्पन्न थी। कुछ दिनोंके बाद उन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम गुणनिधि रखा गया। बाल्यावस्थामें इस बालकने कुछ दिन तो धर्मशास्त्रादि समस्त विद्याओंका अध्ययन किया, परंतु बादमें वह कुसंगतिमें पड़ गया। कुसंगतिके प्रभावसे वह धर्मविरुद्ध कार्य करने लगा। वह अपनी मातासे द्रव्य लेकर जूआ खेलने लगा और धीरे-धीरे अपने पिताद्वारा अर्जित धन तथा कीर्तिको नष्ट करने लगा। कुसंगतिके प्रभावसे उसने स्नान-संध्या आदि कार्य ही नहीं छोड़ा, अपितु शास्त्र-निन्दकोंके साथ रहकर वह चोरी, परस्त्रीगमन, मद्यपानादि कुकर्म भी करने लगा, परंतु उसकी माता पुत्र-स्नेहवश न तो उसे कुछ कहती थी और न उसके पिताको ही। इसीलिये यज्ञदत्तको कुछ भी पता नहीं चला। जब उनका पुत्र सोलह वर्षका हो गया तब उन्होंने बहुत धन खर्च करके एक शीलवती कन्यासे गुणनिधिका विवाह कर दिया, परंतु फिर भी उसने कुसंगतिको न छोड़ा। उसकी माता उसे बहुत समझाती थी कि तुम कुसंगतिको त्याग दो, नहीं तो यदि तुम्हारे पिताको पता लग गया तो अनिष्ट हो जायगा। तुम अच्छी संगति करो तथा अपनी पत्नीमें मन लगाओ। यदि तुम्हारे कुकर्मोंका राजाको पता लग गया तो वह हमें धन देना बंद कर देगा और हमारे कुलका यश भी नष्ट हो जायगा, परंतु बहुत समझानेपर भी वह नहीं सुधरा, अपितु उसके अपराध और बढ़ते ही गये। उसने वेश्यागमन तथा द्यूतक्रीडामें घरकी समस्त सम्पत्ति नष्ट कर दी। एक दिन वह अपनी सोती हुई माँके हाथसे अँगूठी निकाल ले गया और उसे जूएमें हार गया। अकस्मात् एक दिन गुणनिधिके पिता यज्ञदत्तने उस अँगूठीको एक जुआरीके हाथमें देखा, तब उन्होंने उससे डाँटकर पूछा—'तुमने यह अँगूठी कहाँसे ली?' जुआरी डर गया और उसने गुणनिधिके सम्बन्धमें सब कुछ सत्य-सत्य बता दिया। जुआरीसे अपने पुत्रके विषयमें सुनकर यज्ञदत्तको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे लज्जासे व्याकुल होते हुए घर आये और उन्होंने अँगूठीके सम्बन्धमें प्राप्त हुई गुणनिधिके विषयकी सारी बातें अपनी पत्नीसे कहीं। माताने गुणनिधिको बचानेका प्रयास किया, किंतु यज्ञदत्त क्रोधसे भर उठे और बोले कि 'मेरे साथ तुम भी अपने पुत्रसे नाता तोड़ लो तभी मैं भोजन करूँगा।' पतिकी बात सुनकर वह उनके चरणोंपर गिर पड़ी और गुणनिधिको एक बार क्षमा कर देनेकी प्रार्थना की, जिससे यज्ञदत्तका क्रोध कुछ कम हो गया।

जब गुणनिधिको इस घटनाका पता चला तब उसे बड़ी आत्मग्लानि हुई। वह अपनी माताके उपदेशोंका स्मरण कर शोक करने लगा तथा अपने कुकर्मोंके कारण अपनेको

धिक्कारने लगा और पिताके भयसे घर छोड़कर भाग गया, परंतु जीविकाका कोई भी साधन न होनेसे जंगलमें जाकर रुदन करने लगा। इसी समय एक शिवभक्त पुरुष विविध प्रकारकी पूजन-सामग्रियोंसे युक्त हो अपने साथ अनेक शिवभक्तोंको लेकर जा रहा था। उस दिन सभी व्रतोंमें उत्तम तथा सभी वेदों एवं शास्त्रोंद्वारा वर्णित शिवरात्रि-व्रतका दिन था। उसीके निमित्त वे भक्तगण शिवालयमें जा रहे थे। उनके साथ ले जाये गये विविध पक्वान्नोंकी सुगन्धसे गुणनिधिकी भूख बढ़ गयी। वह उनके पीछे-पीछे इस उद्देश्यसे शिवालयमें चला गया कि जब ये लोग भोजनको शिवजीके निमित्त अर्पण कर सो जायँगे तब मैं उसे ले लूँगा। उन भक्तोंने शिवजीका षोडशोपचार पूजन किया तथा नैवेद्य अर्पित करके वे शिवजीकी स्तुति करने लगे। कुछ देर बाद उन भक्तोंको नींद आ गयी, तब छिपकर बैठे हुए गुणनिधिने भोजन उठा लिया, परंतु लौटते समय उसका पैर लगनेसे एक शिवभक्त जाग गया और वह चोर-चोर कहकर चिल्लाने लगा। गुणनिधि जान बचाकर भागा, परंतु एक नगररक्षकने उसे अपने तीरसे मार गिराया। तदुपरान्त उसे लेनेके लिये बड़े भयंकर यमदूत आये और उसे ले जाने लगे। तभी भगवान् शिवने अपने गणोंसे कहा कि इसने मेरा परमप्रिय शिवरात्रिका व्रत तथा रात्रि-जागरण किया है, अतः इसे यमगणोंसे छुड़ा लाओ। यमगणोंके विरोध करनेपर शिवगणोंने उन्हें शिवजीका संदेश सुनाया और उसे छुड़ाकर शिवजीके पास ले गये। शिवजीके अनुग्रहसे वह

महान् शिवभक्त कलिङ्गदेशका राजा हुआ। वही अगले जन्ममें भगवान् शंकर तथा माँ पार्वतीके कृपाप्रसादसे यक्षोंका अधिपति कुबेर हुआ। (म० प्र० गो०)

महान् तीर्थ—माता-पिता

माँ! पहले विवाह मैं करूँगा। एकदन्तके सहसा ऐसे वचन सुनकर पहले तो शिवा हँसीं और अपने प्रिय पुत्र विनायकसे स्नेहयुक्त स्वरमें बोलीं—'हाँ, हाँ! विवाह तो तेरा भी होगा ही, पर स्कन्द तुझसे बड़ा है। पहले····।'

'नहीं माँ! बड़ा हुआ तो क्या····' माँकी बात बीचमें ही काटते हुए लम्बोदरने कहा।

'अरे! वह देख, स्कन्द भी आ रहा है।'—शिवा बोलीं।'

स्कन्दने जब यह सुना तब अपने हठी स्वभावके कारण उन्होंने कहा—'माँ! नियमानुसार पहले मेरा विवाह होगा।'

एकदन्तने कहा—'नहीं, पहले मेरा होगा।'

शशाङ्कशेखरने दूरसे ही देखा—दोनों बालक माँके पास खड़े हैं। वे भी बालकोंके पास आ गये। शिवाने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा—'प्रभो! ये दोनों अपनी-अपनी बातपर अड़े हैं, अतः आप ही इन्हें समझाइये न!'

शिवने पूर्ण वृत्तान्त सुना और बड़ी देरतक हँसनेके पश्चात् वे गम्भीर होकर बोले—'गणेश और स्कन्द! पहले किसका विवाह हो, इसके लिये तुम दोनोंको परीक्षा देनी होगी, जो उसमें उत्तीर्ण होगा, उसीका विवाह पहले कर दिया जायगा।' दोनोंने सहमति प्रकट की।

आशुतोषने परीक्षाका अत्यन्त सूक्ष्म विवरण बताया—'देखो, जो पृथ्वीकी परिक्रमा कर पहले लौटेगा, उसीका विवाह पहले होगा।'

मयूरवाहन कार्तिकेय तत्क्षण मंदरगिरिसे द्रुतगतिसे चल

पड़े। मूषकवाहन मूक शान्त खड़े थे। बेचारा चूहा भी अपनी गोल-गोल आँखोंसे टुकुर-टुकुर निहार रहा था।

'अरे, खड़ा-खड़ा मुँह क्या ताक रहा है! तेरा बड़ा भाई चला भी गया। तू भी जा न परिक्रमापर।'—भगवतीने गणेशसे कहा।

अचानक गणेशको न जाने क्या सूझा, उन्होंने माता-पितासे विनय करते हुए कहा—'मैं अभी आ रहा हूँ, तबतक आप दोनों यहीं बैठें'—कहते हुए गणेश भवनकी ओर दौड़ पड़े। शिवा-शिव एक-दूसरेको देखते रह गये।

'क्या करने गया है?' अभी दोनों आश्चर्यचकित एक दूसरेको देख ही रहे थे कि गणेश हाथमें पूजाकी थाली लिये शीघ्रतापूर्वक आते दीख पड़े। निकट आकर उन्होंने पूजाकी थाली दोनोंके चरणोंमें रख दी और हाथ जोड़कर माता-पिताकी परिक्रमा करने लगे। शिव-पार्वती इस विचित्र दृश्यको देखकर अपनी हँसी रोक न सके और बोले—'अरे, यह क्या नवीन आयोजन हो रहा है?' बिना प्रत्युत्तर दिये गणेशने सात परिक्रमाएँ पूर्ण कीं तथा पूजाकी थाली उठाकर माता-पिताकी आरती उतारी, उन्हें चन्दन लगाया, भोगकी कटोरी सामने रखी और दोनोंको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया! फिर वे उठकर बोले—'करो मेरा विवाह।'

शिवा-शिव दोनों जी भरकर हँसे। शिवने पूछा—'अरे, क्या गिरि-काननोंसहित सप्तद्वीपमयी सम्पूर्ण वसुन्धराकी परिक्रमा हो गयी?'

बुद्धिसिन्धु गणेशने स्वीकृतिमें सिर हिलाते हुए कहा—'अब और रह ही क्या गया है?' वेद-शास्त्रोंके द्वारा उद्घोषित प्रमाणके अनुसार माता-पिताकी परिक्रमा करनेसे पृथ्वीकी परिक्रमा पूरी होती है। आशुतोष भगवान् शिव और माता पार्वतीने भी यह स्वीकार किया और इस प्रतियोगितामें सिद्धविनायक गणेशकी विजय हुई।

इससे सिद्ध हुआ कि माता-पिता ही महान् तीर्थ हैं। यदि कोई पुत्र सम्पूर्ण धराकी परिक्रमा करनेका फल प्राप्त करना चाहता है तो वह अपने माता-पिताकी प्रदक्षिणा करे। अपने माता-पिताको छोड़कर तीर्थयात्रा करनेवाला पुत्र माता-पिताकी हत्याके पापका भागी बनता है। अन्य तीर्थ तो दूर हैं, परंतु धर्मका साधनभूत तीर्थ तो निकट ही सुलभ हैं। पुत्रके लिये माता-पिता तथा स्त्रीके लिये पति-जैसे शुभ तीर्थ घरमें ही विद्यमान हैं—

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्तिं च करोति यः।
तस्य वै पृथिवीजन्यफलं भवति निश्चितम्॥
अपहाय गृहे यो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत्।
तस्य पापं तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा॥
पुत्रस्य च महत्तीर्थं पित्रोश्चरणपङ्कजम्।
अन्यतीर्थं तु दूरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुनः॥
इदं संनिहितं तीर्थं सुलभं धर्मसाधनम्।
पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थं गेहे सुशोभनम्॥

(शिवपुराण, रु०सं०, कु०खं० १९। ३९-४२)

धन्य धन्य गिरिराजकुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥
पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा॥
× × × ×
जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहिभवन समाना॥
नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा॥
ते सिर कटु तुंबरि समतूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला॥
जिन्ह हरिभगति हृदयँ नहिं आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी॥
जो नहिं करइ राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना॥
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती॥
गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज विमोहनसीला॥
रामकथा सुरधेनु सम सेवत सव सुख दानि।
सतसमाज सुरलोक सव को न सुनै अस जानि॥

धिक्कारने लगा और पिताके भयसे घर छोड़कर भाग गया, परंतु जीविकाका कोई भी साधन न होनेसे जंगलमें जाकर रुदन करने लगा। इसी समय एक शिवभक्त पुरुष विविध प्रकारकी पूजन-सामग्रियोंसे युक्त हो अपने साथ अनेक शिवभक्तोंको लेकर जा रहा था। उस दिन सभी व्रतोंमें उत्तम तथा सभी वेदों एवं शास्त्रोंद्वारा वर्णित शिवरात्रि-व्रतका दिन था। उसीके निमित्त वे भक्तगण शिवालयमें जा रहे थे। उनके साथ ले जाये गये विविध पक्वान्नोंकी सुगन्धसे गुणनिधिकी भूख बढ़ गयी। वह उनके पीछे-पीछे इस उद्देश्यसे शिवालयमें चला गया कि जब ये लोग भोजनको शिवजीके निमित्त अर्पण कर सो जायँगे तब मैं उसे ले लूँगा। उन भक्तोंने शिवजीका षोडशोपचार पूजन किया तथा नैवेद्य अर्पित करके वे शिवजीकी स्तुति करने लगे। कुछ देर बाद उन भक्तोंको नींद आ गयी, तब छिपकर बैठे हुए गुणनिधिने भोजन उठा लिया, परंतु लौटते समय उसका पैर लगनेसे एक शिवभक्त जाग गया और वह चोर-चोर कहकर चिल्लाने लगा। गुणनिधि जान बचाकर भागा, परंतु एक नगररक्षकने उसे अपने तीरसे मार गिराया। तदुपरान्त उसे लेनेके लिये बड़े भयंकर यमदूत आये और उसे ले जाने लगे। तभी भगवान् शिवने अपने गणोंसे कहा कि इसने मेरा परमप्रिय शिवरात्रिका व्रत तथा रात्रि-जागरण किया है, अतः इसे यमगणोंसे छुड़ा लाओ। यमगणोंके विरोध करनेपर शिवगणोंने उन्हें शिवजीका संदेश सुनाया और उसे छुड़ाकर शिवजीके पास ले गये। शिवजीके अनुग्रहसे वह

महान् शिवभक्त कलिङ्गदेशका राजा हुआ। वही अगले जन्ममें भगवान् शंकर तथा माँ पार्वतीके कृपाप्रसादसे यक्षोंका अधिपति कुबेर हुआ। (म० प्र० गो०)

महान् तीर्थ—माता-पिता

माँ! पहले विवाह मैं करूँगा। एकदन्तके सहसा ऐसे वचन सुनकर पहले तो शिवा हँसीं और अपने प्रिय पुत्र विनायकसे स्नेहयुक्त स्वरमें बोलीं—'हाँ, हाँ! विवाह तो तेरा भी होगा ही, पर स्कन्द तुझसे बड़ा है। पहले····।'

'नहीं माँ! बड़ा हुआ तो क्या····' माँकी बात बीचमें ही काटते हुए लम्बोदरने कहा।

'अरे! वह देख, स्कन्द भी आ रहा है।'—शिवा बोलीं।'

स्कन्दने जब यह सुना तब अपने हठी स्वभावके कारण उन्होंने कहा—'माँ! नियमानुसार पहले मेरा विवाह होगा।'

एकदन्तने कहा—'नहीं, पहले मेरा होगा।'

शशाङ्कशेखरने दूरसे ही देखा—दोनों बालक माँके पास खड़े हैं। वे भी बालकोंके पास आ गये। शिवाने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा—'प्रभो! ये दोनों अपनी-अपनी बातपर अड़े हैं, अतः आप ही इन्हें समझाइये न!'

शिवने पूर्ण वृत्तान्त सुना और बड़ी देरतक हँसनेके पश्चात् वे गम्भीर होकर बोले—'गणेश और स्कन्द! पहले किसका विवाह हो, इसके लिये तुम दोनोंको परीक्षा देनी होगी, जो उसमें उत्तीर्ण होगा, उसीका विवाह पहले कर दिया जायगा।' दोनोंने सहमति प्रकट की।

आशुतोषने परीक्षाका अत्यन्त सूक्ष्म विवरण बताया—'देखो, जो पृथ्वीकी परिक्रमा कर पहले लौटेगा, उसीका विवाह पहले होगा।'

मयूरवाहन कार्तिकेय तत्क्षण मंदरगिरिसे द्रुतगतिसे चल

पड़े। मूषकवाहन मूक शान्त खड़े थे। बेचारा चूहा भी अपनी गोल-गोल आँखोंसे टुकुर-टुकुर निहार रहा था।

'अरे, खड़ा-खड़ा मुँह क्या ताक रहा है! तेरा बड़ा भाई चला भी गया। तू भी जा न परिक्रमापर।'—भगवतीने गणेशसे कहा।

अचानक गणेशको न जाने क्या सूझा, उन्होंने माता-पितासे विनय करते हुए कहा—'मैं अभी आ रहा हूँ, तबतक आप दोनों यहीं बैठें'—कहते हुए गणेश भवनकी ओर दौड़ पड़े। शिवा-शिव एक-दूसरेको देखते रह गये।

'क्या करने गया है?' अभी दोनों आश्चर्यचकित एक दूसरेको देख ही रहे थे कि गणेश हाथमें पूजाकी थाली लिये शीघ्रतापूर्वक आते दीख पड़े। निकट आकर उन्होंने पूजाकी थाली दोनोंके चरणोंमें रख दी और हाथ जोड़कर माता-पिताकी परिक्रमा करने लगे। शिव-पार्वती इस विचित्र दृश्यको देखकर अपनी हँसी रोक न सके और बोले—'अरे, यह क्या नवीन आयोजन हो रहा है?' बिना प्रत्युत्तर दिये गणेशने सात परिक्रमाएँ पूर्ण कीं तथा पूजाकी थाली उठाकर माता-पिताकी आरती उतारी, उन्हें चन्दन लगाया, भोगकी कटोरी सामने रखी और दोनोंको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया! फिर वे उठकर बोले—'करो मेरा विवाह।'

शिवा-शिव दोनों जी भरकर हँसे। शिवने पूछा—'अरे, क्या गिरि-काननोंसहित सप्तद्वीपमयी सम्पूर्ण वसुन्धराकी परिक्रमा हो गयी?'

बुद्धिसिन्धु गणेशने स्वीकृतिमें सिर हिलाते हुए कहा—'अब और रह ही क्या गया है?' वेद-शास्त्रोंके द्वारा उद्घोषित प्रमाणके अनुसार माता-पिताकी परिक्रमा करनेसे पृथ्वीकी परिक्रमा पूरी होती है। आशुतोष भगवान् शिव और माता पार्वतीने भी यह स्वीकार किया और इस प्रतियोगितामें सिद्धविनायक गणेशकी विजय हुई।

इससे सिद्ध हुआ कि माता-पिता ही महान् तीर्थ हैं। यदि कोई पुत्र सम्पूर्ण धराकी परिक्रमा करनेका फल प्राप्त करना चाहता है तो वह अपने माता-पिताकी प्रदक्षिणा करे। अपने माता-पिताको छोड़कर तीर्थयात्रा करनेवाला पुत्र माता-पिताकी हत्याके पापका भागी बनता है। अन्य तीर्थ तो दूर हैं, परंतु धर्मका साधनभूत तीर्थ तो निकट ही सुलभ हैं। पुत्रके लिये माता-पिता तथा स्त्रीके लिये पति-जैसे शुभ तीर्थ घरमें ही विद्यमान हैं—

पित्रोश्च पूजनं कृत्वा प्रक्रान्तिं च करोति यः।
तस्य वै पृथिवीजन्यफलं भवति निश्चितम्॥
अपहाय गृहे यो वै पितरौ तीर्थमाव्रजेत्।
तस्य पापं तथा प्रोक्तं हनने च तयोर्यथा॥
पुत्रस्य च महत्तीर्थं पित्रोश्चरणपङ्कजम्।
अन्यतीर्थं तु दूरे वै गत्वा सम्प्राप्यते पुनः॥
इदं संनिहितं तीर्थं सुलभं धर्मसाधनम्।
पुत्रस्य च स्त्रियाश्चैव तीर्थं गेहे सुशोभनम्॥

(शिवपुराण, रु०सं०, कु०खं० १९। ३९-४२)

धन्य धन्य गिरिराजकुमारी। तुम्ह समान नहिं कोउ उपकारी॥
पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा॥
× × × ×
जिन्ह हरिकथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहिभवन समाना॥
नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोरपंख कर लेखा॥
ते सिर कटु तुंबरि समतूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला॥
जिन्ह हरिभगति हृदयँ नहिं आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी॥
जो नहि करइ राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना॥
कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरिचरित न जो हरषाती॥
गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज बिमोहनसीला॥
रामकथा सुरधेनु सम सेवत सब सुख दानि।
सतसमाज सुरलोक सब को न सुनै अस जानि॥

वायुपुराण

स्कन्दपुराण, मत्स्यपुराण और नारदपुराणके अनुसार श्वेतकल्पके प्रसङ्गमें वायुद्वारा प्रोक्त, शिवके माहात्म्यसे संयुक्त पुराण वायवीय या वायुपुराणके नामसे विख्यात है। नारदपुराणके पूर्वभागके ९५वें अध्यायमें वायुपुराणकी बड़ी सुन्दर अनुक्रमणिका है। इसमें इसे २४००० श्लोकोंमें उपनिबद्ध कहा गया है। सर्गारम्भमें मन्वन्तरके पश्चात् इसमें अत्यन्त विस्तारके साथ माघ-माहात्म्य वर्णित है। तत्पश्चात् विस्तृत दानधर्म, राजधर्म, लोक-व्यवहार, व्रत-निर्णय, नर्मदा-माहात्म्य आदिसे युक्त शिव-संहितात्मक भाग वर्णित है। नर्मदामाहात्म्यमें ओंकारेश्वरकी विशेष महिमा है। इसके अनुसार जहाँ नर्मदा नदी पश्चिम सागरमें मिलती है, वहाँ तीस नदियोंका संगम कहा गया है तथा साठ करोड़ साठ हजार तीर्थ बतलाये गये हैं। किंतु यह विवरण वर्तमान वायुपुराणमें नहीं मिलता; अपितु इससे मिलता-जुलता विवरण मत्स्य एवं स्कन्दपुराणमें दृष्टिगत होता है। नारदपुराणके अनुसार इसमें विस्तृत माघ-माहात्म्य एवं *नर्मदा-माहात्म्य आदि खण्ड भी सम्मिलित हैं, वायुपुराणका* माघ-माहात्म्य आज भी लेथो अक्षर एवं हस्तलिखित प्रतियोंके रूपमें विभिन्न संग्रहालयोंमें सुरक्षित हैं।

वर्तमानमें उपलब्ध वायुपुराणमें प्रक्रिया, अनुषंग, उपोद्घात एवं उपसंहार—ये चार पाद, ११२ अध्याय और प्रायः १२००० के लगभग श्लोक प्राप्त होते हैं। इसके प्रारम्भमें पुराणोंकी महिमा, ऋषियोंद्वारा नैमिषारण्य-क्षेत्रमें द्वादश वार्षिक सत्रका समायोजन और तीनसे लेकर छःतकके अध्यायोंमें सृष्टि-प्रक्रियाका वर्णन हुआ है।

वायुपुराणका सर्ग या सृष्टि-निरूपण ७ से ९ पुनः ६४ से ७० तकके अध्यायोंमें काश्यपीय प्रजा-सर्गमें विस्तारसे वर्णित हुआ है। सूर्यवंश, चन्द्रवंश, पृथुवंश, ऋषिवंशके साथ इसके ८३वें अध्यायमें वरुण-वंशका भी वर्णन हुआ है। इस पुराणमें भुवनकोशका वर्णन और ज्योतिश्चक्र, ज्योतिष्-संनिवेशके साथ-साथ विभिन्न राजाओंद्वारा देश, प्रदेश, मण्डल, नगर एवं गया, उत्कल आदि तीर्थोंके निर्माणकी कथा भी अतीव मनोरम है। वायुपुराणके अध्याय ९६ में शम्भुस्तव और अध्याय ५४ का नीलकण्ठस्तव भाव और काव्य-रचनाकी दृष्टिसे मनोहर है। कथा-वर्णनके दृष्टिकोणसे ज्यामघ तथा पृथु एवं कार्तवीर्यकी कथाएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

वायुपुराणके ११ से लेकर १५ अध्यायोंमें पाशुपतयोग और योगसे प्राप्त होनेवाली सिद्धियोंका निरूपण हुआ है। इसके बीसवें अध्यायमें प्रणवकल्प है तथा २१ और २२ अध्यायमें ३२ कल्पोंका नामोल्लेखपूर्वक विस्तृत परिचय दिया गया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न कल्पोंमें होनेवाले २८ व्यासोंका भी वर्णन है। वायुपुराणके २६वें अध्यायमें त्रिवर्ग, लक्ष्यालक्ष्य-प्रदृश्य, त्रिमात्रिक प्रणवकी उत्पत्तिके बार, सभी स्वर-व्यञ्जन-वर्णों तथा चारों वेदोंकी उत्पत्ति आदिका वर्णन है।

इसके ५७ वें अध्यायमें यज्ञोंकी उत्पत्ति तथा उनके सम्पादन-शैलीकी विधि है। ८५ से ८६ तकके अध्यायोंमें सम्पूर्ण संगीतशास्त्र, गन्धर्ववेदके अङ्ग-षड्ज, ऋषभ, गान्धार आदि सातों स्वर तथा सौवीरी, हरिणास्या, कलोपनता, शार्ङ्गी, उत्तर-मन्द्रा, शुद्ध षड्जा आदि मूर्च्छनाओंका विवरण है। इसी अध्यायमें स्वर, ग्राम एवं मूर्च्छनाओंके इन्द्रादि देवता भी निरूपित हैं। इसके ८७वें अध्यायमें संगीतके ३०० अलंकारोंका भी वर्णन हुआ है।

वायुपुराणके साध्य तथा कर्मकाण्डके भाग बड़े ही उपयोगी हैं। इसमें नीतिके श्लोक, भारतका प्राचीन इतिहास बड़े सुन्दर एवं सुव्यवस्थित ढंगसे यत्र-तत्र क्रमबद्ध-रूपमें दृष्टिगोचर होता है। इसे सभी सम्प्रदायके लोग बड़े आदरसे देखते हैं। लौकिक एवं पारमार्थिक दृष्टिकोणसे इसकी उपादेयता अक्षुण्ण है।

कथा-आख्यान—

पुराण-वक्ता सूतजी

महाराज पृथुने यज्ञका आयोजन कर रखा था। उसमें सोम-रस निचोड़ा जा रहा था। देवराज इन्द्रको हविर्भाग देना था। ऋत्विजोंसे एक असावधानी यह हो गयी कि इन्द्रके हविर्भागमें बृहस्पतिका हविर्भाग गलतीसे मिल गया एवं इसे ही इन्द्रको अर्पण कर दिया गया। इसी हविसे तेजस्वी सूतकी उत्पत्ति हुई। उनका नाम रोमहर्षण (लोमहर्षण) रखा गया।

शास्त्रोंमें इन्द्रको क्षत्रिय और बृहस्पतिको ब्राह्मण माना गया है। क्षत्रियवर्ण इन्द्रके हविर्भागमें ब्राह्मणवर्ण बृहस्पतिके हविर्भागके सांकर्यसे उत्पन्न रोमहर्षणको लक्षणासे 'सूत' कहा गया है। अभिधासे सूत उसे कहते हैं, जो ब्राह्मण-कन्यामें क्षत्रिय-पुरुषसे उत्पन्न हुआ हो। रोमहर्षणकी उत्पत्तिमें यह वाच्यार्थ इसलिये बाधित है कि अग्निकुण्डमें न तो कोई साक्षात् ब्राह्मणजातीया कन्या थी और न क्षत्रियजातीय पुरुष ही था। इन दोनोंका न तो लौकिक सम्पर्क हुआ था और न रोमहर्षण योनिज ही थे। अग्निसे उत्पन्न होनेके कारण रोमहर्षण अयोनिज थे।

रोमहर्षणने व्याससे शिक्षा-दीक्षा पायी। महर्षि व्यासने रोमहर्षणको अठारहों पुराण पढ़ाये। तीक्ष्ण प्रतिभा होनेके कारण रोमहर्षणने सभी ग्रन्थोंको अविकल कण्ठस्थ कर लिया था। महर्षि व्यास रोमहर्षणपर पुराणोंका भार डालकर इनकी सुरक्षाकी चिन्तासे मुक्त हो गये थे।

'यथा नाम तथा गुणः'—यह लोकोक्ति आगे चलकर रोमहर्षणपर पूर्णतया चरितार्थ हुई। जब वे पुराण सुनाने लगते थे, तब श्रोता मन्त्रमुग्ध हो जाते थे। क्षण-क्षणमें उन्हें रोमाञ्च हो आया करता था।

एक बार नैमिषारण्यमें दृषद्वती नदीके तटपर मुनियोंने बारह वर्षोंमें पूर्ण होनेवाले सत्रका आयोजन किया था। इस सत्रमें साठ हजार ऋषि उपस्थित थे। शौनक ऋषि उनके मुखिया थे। ऋषियोंने इस सत्रमें रोमहर्षणजीको आमन्त्रित किया। जब रोमहर्षण वहाँ पधारे तो इन्हें अत्यधिक सम्मान दिया गया। मुनियोंने रोमहर्षणको श्रद्धापूर्वक व्यासके आसनपर बैठाया और वे इनसे श्रद्धाके साथ पुराण सुनने लगे।

रोमहर्षणने मुनियोंको ब्रह्मपुराण, वायुपुराण, ब्रह्माण्ड-पुराण, नारदपुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, गरुडपुराण और भागवत-पुराण आदि सुनाये। जब वे ग्यारहवाँ पुराण सुना रहे थे, तब बलरामजीके द्वारा इनकी मृत्यु हो गयी। ऋषियोंको तो सभी पुराण सुनने थे, अतः उन्होंने अवशिष्ट पुराणोंको इनके पुत्र उग्रश्रवासे सुना। 'रौमहर्षणि, सौति' आदि शब्द उग्रश्रवाको रोमहर्षणका पुत्र बतलाते हैं।

(ला० वि० मि०)

परमात्मरूप शिव

ब्रह्माकी रात्रिका अवसान हो रहा था। भगवान् विष्णु शेष-शय्यापर पौढ़े हुए थे। उन्होंने खेल-खेलमें अपनी नाभिसे एक विशाल कमल उत्पन्न किया और उससे मनोविनोद करने लगे। इसी बीच वहाँ ब्रह्मा आ पहुँचे। ब्रह्माने उनसे मीठी वाणीमें पूछा—'आप कौन हैं, जो एकार्णवके बीच इस प्रकार सो रहे हैं?' ब्रह्माके प्रिय वचन सुनकर भगवान् विष्णु शय्यासे उठ बैठे और अपना परिचय देते हुए बोले— 'सृष्टिका निर्माण मेरे हाथोंमें है। अब आप भी अपना परिचय दीजिये और यह भी बतलाइये कि मैं आपका क्या हित करूँ?'

ब्रह्माने कहा—'जैसे सृष्टिके आदिकर्ता आप हैं, वैसे ही मैं भी सृष्टिका आदिकर्ता हूँ। मुझमें ही सब कुछ स्थित है। आप मेरे उदरमें प्रवेश कर सब कुछ देख सकते हैं।'

भगवान् विष्णु उनके मुखमें प्रवेश कर गये। वहाँ उन्होंने अठारह द्वीपों एवं सात सागरोंसे युक्त सातों लोकोंको देखा। इस ऐश्वर्यको देखकर भगवान् विष्णुके मुखसे निकल गया—'इस व्यक्तिकी तपस्याका प्रभाव अद्भुत है।'

ब्रह्माके उदरसे निकलकर भगवान् विष्णुने कहा—'ब्रह्मन्! आप भी मेरे पेटमें घुसकर देखें।' भगवान् विष्णुकी प्रियकर वाणी सुनकर ब्रह्मा उनके उदरमें प्रवेश कर गये। ब्रह्माने भी उन दृश्योंको देखा जिन्हें भगवान् विष्णुने ब्रह्माके उदरमें देखा था। ब्रह्माण्डका इतना विस्तार था कि ब्रह्मा उसका

ओर-छोर नहीं पा रहे थे। इधर भगवान् विष्णुने ब्रह्माके निकलनेके सभी द्वार बंद कर दिये। अन्तमें ब्रह्मा सूक्ष्म रूप धारण कर कमलकी नालके द्वारा बाहर आकर कमलपर बैठ गये। उस समय उनका वर्ण कमलके रंगका हो गया था।

इस प्रकार दोनोंने दोनोंके ऐश्वर्यको देखकर यह समझ लिया था कि दोनों ही सृष्टिके मूल कारण हैं। अब यह समझना शेष रह गया था कि दोनोंमें श्रेष्ठ कौन है? दोनों ही अपनेको श्रेष्ठ ठहरा रहे थे, अतः तनाव बढ़ने लगा।

यहाँ दोनों देव जीवकोटिके हैं। जीव चाहे जितना ऐश्वर्य-सम्पन्न हो जाय, वह मायाके घेरेके भीतर ही रहता है। मायासे परे केवल परमात्मा ही होता है। सूर्यके सम्मुख जैसे छाया नहीं हो पाती, वैसे परमात्माके सम्मुख माया कभी नहीं हो पाती। हाँ, तो ब्रह्मा और विष्णुमें होड़ लग गयी। तब दयालु परब्रह्म परमात्मा उन्हें मायासे ऊपर उठानेके लिये शंकरके रूपमें तीव्र गतिसे उन दोनोंकी ओर बढ़े।

परमात्मामें दयाका सागर लहराता रहता है। जैसे माता अपने बच्चेको गिरते देखकर तुरंत सहारा देनेके लिये दौड़ पड़ती है, वैसे ही परमात्मरूप शंकर भी उन दोनों देवोंको सहारा देनेके लिये दौड़ पड़े थे। तेजीसे चलनेके कारण उनके पैरोंकी चोट खाकर जलकी बड़ी-बड़ी बूँदें आकाशमें उठने लगीं। हवामें भी क्षोभ उत्पन्न हो गया। कभी बहुत गर्म और कभी बहुत ठंडी हवाके झकोरे आने लगे। इस आश्चर्यको देखकर ब्रह्माने विष्णुसे पूछा—'सहसा हवाके ये झकोरे कैसे आने लगे हैं? मोटी-मोटी बूँदें कहाँसे गिरने लगी हैं? यह कमल तृण-सा कैसे हिलने लगा है?'

भगवान् विष्णुने स्नेहसिक्त वाणीमें कहा—'भगवान् शंकर आ रहे हैं। उनके आगमनसे ही ये घटनाएँ घट रही हैं। ये परब्रह्म परमात्मा हैं। आइये, हम दोनों मिलकर इनकी स्तुति करें।' ब्रह्माने कहा—'ईश्वर तो मैं और आप दो ही हैं। यह तीसरा कहाँसे आ गया?' इतना कहते-कहते ब्रह्माको क्रोध हो आया। भगवान् विष्णुने प्रेमसे समझाते हुए कहा—'ब्रह्मन्! आप ऐसा न कहें, ये संसारके आदिकारण परमात्मा हैं। ये जीवोंके जीव हैं। ये बीजी हैं और हम-आप बीजयोनि हैं। अतः हमलोगोंको आदरके साथ इनकी स्तुति करनी चाहिये।' भगवान् विष्णुके सान्त्वनामय शब्दोंसे ब्रह्माको ब्रह्मका बोध हो गया। फिर दोनों देवोंने मिलकर शंकरकी स्तुति की, जो 'शार्वस्तव' नामसे प्रसिद्ध हुआ।

अमृत-तुल्य इस स्तुतिको सुनकर परमात्मा सदाशिव बहुत प्रसन्न हुए। जानते हुए भी उन्होंने स्नेह बढ़ानेके लिये पूछा—'आप दोनों कौन हैं? आप दोनोंमें बहुत ही उत्कृष्ट प्रेम है। उससे मैं बहुत प्रभावित और प्रसन्न हूँ। आप दोनों वरदान माँग लीजिये।' विष्णुके सुझानेपर ब्रह्माने वरदान माँगा कि 'आप मेरे पुत्र हों।' भगवान् सदाशिवने कहा—'मैं आपकी इच्छा तब पूर्ण करूँगा, जब आपको सृष्टि-रचनामें सफलता न मिलेगी और आपको क्रोध हो जायगा, तब मैं उसी क्रोधसे उत्पन्न होऊँगा। तब मैं प्राणरूप ग्यारहवाँ रुद्र कहलाऊँगा।

भगवान् विष्णुने अपने लिये वरदानमें केवल भक्ति माँगी। उससे भगवान् सदाशिवको बहुत संतोष हुआ। उन्होंने अपना आधा शरीर उन्हें माना। तभीसे वे 'हरिहर' रूपमें पूजे जाते हैं।

लोकहितके लिये विषपान

भगवान् शंकरकी गोराई श्वेत रंगकी है। उसमें कण्ठकी नीलिमा बहुत ही भली लगती है। इस नीलिमाका रहस्य महर्षि वसिष्ठको ज्ञात न था। उन्होंने भगवान् कार्तिकेयसे इसके सम्बन्धमें पूछा, तब भगवान् कार्तिकेयने उन्हें इस सम्बन्धका इतिहास सुनाया—

'मैं माँकी गोदमें बैठा था। उस समय पिताजीने मेरी माताजीको अपने कण्ठकी नीलिमाका रहस्य सुनाया था—समुद्रका मन्थन हो रहा था। अमृत निकलनेके पहले उल्वण-विष निकला। उसकी लपट न सह सकनेके कारण जितने दैत्य और देवता थे, वे सभी जिसे जिधर मार्ग मिला उधर भाग खड़े हुए। वे हाँफते हुए ब्रह्माके पास पहुँचे। ब्रह्माने उन्हें भयभीत देखकर पूछा—'आपलोग घबराये हुए क्यों हैं? आप तो बलवान् हैं, वीर हैं, इस तरह घबरायें नहीं। देवताओंने विषके निकलने और उसके मारक प्रभावकी बात बतायी। ब्रह्माने कहा कि 'उसकी तीक्ष्णताको मैं भी नहीं सह सकता हूँ। केवल सदाशिव ही इसका प्रतीकार कर सकते हैं।'

इसके बाद ब्रह्माने शंकरकी स्तुति की। भगवान् शंकर वहाँ प्रकट हो गये। उन्होंने ब्रह्मासे पूछा—'मैं तुम्हारा क्या हित करूँ ? ब्रह्माने विषकी भयानकतासे लोकके संरक्षणकी माँग की। भगवान् शंकरने तत्क्षण विषको उठाकर पी लिया। तभीसे भगवान् शंकरका कण्ठ नीला पड़ गया, किंतु इससे भगवान् सदाशिवके गोरे रंगकी शोभा बढ़ गयी। उस शोभासे ब्रह्माने प्रभावित होकर कहा—

शोभसे त्वं महादेव कण्ठेनानेन सुव्रत ॥

(वायुपु०, पूर्वा० ५४। ९२)

(ला० बि० मि०)

कुवलाश्वके द्वारा जगत्की रक्षा

पूर्वकालमें धुन्धु नामका एक राक्षस हुआ था। वह ब्रह्मासे वरदान पाकर देवताओं, दानवों, दैत्यों, नागों, गन्धर्वों और राक्षसोंके द्वारा अवध्य हो गया था तथा तीनों लोकोंको जीतकर अपने अधीन कर लिया था। वह अहंकारका पुतला था, अतः सदा अमर्षमें भरा रहता और सदा सबको सताया करता था। अन्तमें उसके मनमें एक भयानक विचार उत्पन्न हुआ। वह सारे विश्वका विनाश करनेपर तत्पर हो गया। इसके लिये उसने उज्जालक नामक मरु-प्रदेशमें तपस्या प्रारम्भ कर दी।

उसने अनुयायियोंके साथ बालूके पहाड़को हटाकर और जमीनपर लेटकर अपने ऊपर सारा बालू लाद लिया। फिर प्राणायाम साधकर उसकी कठिन तपस्या प्रारम्भ हुई। इस घोर तपस्याका एकमात्र उद्देश्य था—विश्वका विनाश।

इस तपस्या-कालमें भी उसका सतानेवाला काम रुका नहीं था। वह वर्षके अन्तमें जब साँसें छोड़ता, तब चारों ओर आगके गोले गिरने लगते, भयानक भूचाल आते, सात दिनोंतक सारी पृथ्वी काँपती रहती, सारा आकाश धुएँ और धुंधसे ढक जाता था। इन प्रलयकारी क्रियाओंसे समस्त प्राणी भयभीत रहते थे। बहुतोंकी मृत्यु हो जाती थी।

उत्तङ्क मुनिका आश्रम मारवाड़में था, अतः वह अत्यधिक प्रभावित होता था। उन्होंने विश्वके त्राणके लिये कमर कस ली। वे राजा बृहदश्वके पास पहुँचे। उन्होंने कहा—'राजन्! आप धुन्धुको मार डालिये, नहीं तो वह सारे विश्वका विनाश कर डालेगा। उसे आप ही मार सकते हैं। एक तो आप स्वयं समर्थ हैं, दूसरे मेरी प्रार्थनासे भगवान् विष्णु अपना तेज आपमें आविष्ट कर देंगे।'

उस समय राजा बृहदश्व अपने पुत्र कुवलाश्वको राज्यपर अभिषिक्त कर वन जा रहे थे। उन्होंने उत्तङ्क मुनिसे कहा—'मुनिवर! आपका विचार बहुत उदात्त है। उसका कार्यरूपमें परिणत होना भी आवश्यक है, किंतु वह कार्य अब मेरा पुत्र कुवलाश्व करेगा; क्योंकि मैंने वानप्रस्थ-आश्रमके लिये अस्त्र-शस्त्रका त्याग कर दिया है।'

कुवलाश्वने पिताके इस आदेशको शिरोधार्य कर लिया। उसका मन विश्वके कल्याणकी भावनासे भर गया। उसने पुत्रों और सेनाके साथ युद्धके लिये प्रस्थान कर दिया। उत्तङ्क मुनि भी उसके साथ थे। इस अवसरपर भगवान् विष्णु अपने तेजः-स्वरूपसे कुवलाश्वमें प्रविष्ट हो गये। विश्वमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ पड़ी। बिना बजाये ही देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। आकाशसे फूलोंकी वृष्टि होने लगी। सारा वातावरण दिव्य गन्धसे सिक्त हो गया। वायु अनुकूल होकर बहने लगी।

कुवलाश्व दल-बलके साथ धुन्धुके स्थानपर जा पहुँचे। वहाँ बालूके समुद्रके अतिरिक्त और कुछ दीखता न था। परिश्रमके साथ बालूका वह समुद्र खोदा जाने लगा। सात दिनोंके प्रयासके बाद वह खुदाई पूरी हुई। तब अनुयायियोंके साथ धुन्धु दीख पड़ा। उसका स्वरूप बड़ा विकराल था। कुवलाश्वके पुत्रोंने उसे घेरकर उसपर आक्रमण कर दिया। धुन्धु क्रुद्ध होकर उनके सभी अस्त्र-शस्त्रोंको चबा डाला। तत्पश्चात् उनपर अपने मुखसे प्रलयकालीन अग्निके समान आगके गोले उगलने लगा। थोड़ी ही देरमें कुवलाश्वके इक्कीस हजार पुत्र जलकर खाक हो गये। केवल तीन पुत्र बच गये। यह देख राजा कुवलाश्व धुन्धुपर टूट पड़े। इस बार धुन्धुने अपार जलराशि प्रकट की। महाबली कुवलाश्वने योगबलसे सबका शोषण कर लिया। फिर आग्नेयास्त्रका प्रयोगकर धुन्धुको सदाके लिये सुला दिया। तभीसे कुवलाश्व धुन्धुमार नामसे विख्यात हुए।

भक्तका अद्भुत अवदान

(भक्त गयासुरकी कथा)

कीचसे जैसे कमल उत्पन्न होता है, वैसे ही असुर-जातिसे भी कुछ भक्त उत्पन्न हो जाते हैं। भक्तराज प्रह्लादका नाम प्रसिद्ध है। गयासुर भी इसी कोटिका भक्त था। बचपनसे ही गयका हृदय भगवान् विष्णुके प्रेममें ओतप्रोत रहता था। उसके मुखसे प्रतिक्षण भगवान्‌के नामका उच्चारण होता रहता था।

गयासुर बहुत विशाल था। उसने कोलाहल पर्वतपर घोर तप किया। हजारों वर्षतक उसने साँस रोक ली, जिससे सारा संसार क्षुब्ध हो गया। देवताओंने ब्रह्मासे प्रार्थना की कि 'आप गयासुरसे हमारी रक्षा करें।' ब्रह्मा देवताओंके साथ भगवान् शंकरके पास पहुँचे। पुनः सभी भगवान् शंकरके साथ विष्णुके पास पहुँचे। भगवान् विष्णुने कहा—'आप सब देवता गयासुरके पास चलें, मैं भी आ रहा हूँ।'

गयासुरके पास पहुँचकर भगवान् विष्णुने पूछा—'तुम किसलिये तप कर रहे हो ? हम सभी देवता तुमसे संतुष्ट हैं, इसलिये तुम्हारे पास आये हुए हैं। वर माँगो।'

गयासुरने कहा—'मेरी इच्छा है कि मैं सभी देव, द्विज यज्ञ, तीर्थ, ऋषि, मन्त्र और योगियोंसे बढ़कर पवित्र हो जाऊँ।' देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक गयासुरको वरदान दे दिया। फिर वे प्रेमसे उसे देखकर और उसका स्पर्श कर अपने-अपने लोकोंमें चले गये। इस तरह भक्तराज गयने अपने शरीरको पवित्र बनाकर प्रायः सभी पापियोंका उद्धार कर दिया। जो उसे देखता और जो उसका स्पर्श करता, उसका पाप-ताप नष्ट हो जाता। इस तरह नरकका दरवाजा ही बंद हो गया।

भगवान् विष्णुने अपने भक्तके पवित्र शरीरका उपयोग सदाके लिये करना चाहा। किसीका शरीर तो अमर रह नहीं सकता। गयके उस पवित्र शरीरके पातके बाद प्राणियोंको उसके शरीरसे वह लाभ नहीं मिलता, अतः भगवान्‌ने ब्रह्माको भेजकर उसके शरीरको मँगवा लिया। गयासुर अतिथिके रूपमें आये हुए ब्रह्माको पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपने जन्म और तपस्याको सफल माना। ब्रह्माने कहा—'मुझे यज्ञ करना है। इसके लिये मैंने सारे तीर्थोंको ढूँढ़ डाला, परंतु मुझे ऐसा कोई तीर्थ नहीं प्राप्त हुआ जो तुम्हारे शरीरसे बढ़कर पवित्र हो, अतः यज्ञके लिये तुम अपना शरीर दे दो।' यह सुनकर गयासुर बहुत प्रसन्न हुआ और वह कोलाहल पर्वतपर लेट गया।

ब्रह्मा यज्ञकी सामग्रीके साथ वहाँ पधारे। प्रायः सभी देवता और ऋषि भी वहाँ उपस्थित हुए। गयासुरके शरीरपर बहुत बड़ा यज्ञ हुआ। ब्रह्माने पूर्णाहुति देकर अवभृथ-स्नान किया। यज्ञका यूप (स्तम्भ) भी गाड़ा गया।

भक्तराज गयासुर चाहते थे कि उसके शरीरपर सभी देवताओंका वास हो। भगवान् विष्णुका निवास गयासुरको अधिक अभीष्ट था, इसलिये उसका शरीर हिलने लगा। जब सभी देवता उसपर बस गये और भगवान् विष्णु गदाधरके रूपमें वहाँ स्थित हो गये, तब भक्तराज गयासुरने हिलना बंद कर दिया। तबसे गयासुर सबका उद्धार करता आ रहा है। यह एक भक्तका विश्वके कल्याणके लिये अद्भुत अवदान है।

(ला० वि० मि०)

ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्य

महर्षि याज्ञवल्क्यका शास्त्र-ज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान अपूर्व है। यज्ञवल्कके वंशज होनेके कारण इनका नाम याज्ञवल्क्य पड़ा। इनके पिताका नाम ब्रह्मा था।

एक बार राजा जनकने यज्ञका आयोजन किया। उस यज्ञमें हजारों ऋषि पधारे। राजा जनकने यह जानना चाहा कि उपस्थित ऋषियोंमें सर्वश्रेष्ठ प्रवचन करनेवाले कौन हैं ? इसके लिये राजाने एक उपाय किया। उन्होंने एक हजार गौओंको गोशालामें रोक लिया। प्रत्येक गायके सींगोंमें दस-दस पाद सुवर्ण बँधे हुए थे। राजाने हाथ जोड़कर ऋषियोंसे कहा—'मैं आपलोगोंकी शरणमें हूँ। आप सब-के-सब महान् हैं। मैं चाहता हूँ कि आपलोगोंमें जो सबसे बड़े ब्रह्मनिष्ठ हों, वे इन गौओंको ले जायँ।' सभी विद्वान् थे, सभी ज्ञानी थे। प्रत्येकने चाहा कि यह धन हमें मिले, किंतु किसी ब्राह्मणका साहस नहीं हुआ। तब महर्षि याज्ञवल्क्यने अपने ब्रह्मचारीको आदेश

दिया कि 'इन गौओंको हाँक ले चलो।'

यह सुनकर उपस्थित ब्राह्मणोंमें हलचल मच गयी। सब कह रहे थे कि यह हम सबमें अपनेको ब्रह्मनिष्ठ कैसे कह रहा है ? विदेहराज जनकके होता अश्वलने पूछा—'याज्ञवल्क्य ! हमलोगोंमें क्या तुम्हीं ब्रह्मनिष्ठ हो ?' महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा—'ब्रह्मनिष्ठको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं तो गौओंकी ही इच्छा करता हूँ।' लोगोंमें क्रोधका संचार बढ़ता गया। याज्ञवल्क्यने प्रसन्नताके साथ कहा—'आपलोग क्रोध न करें। जो चाहें, मुझसे प्रश्न करें।'

फिर तो एक ओर सारे ऋषि हो गये और दूसरी ओर अकेले याज्ञवल्क्य। एक-एक कर ऋषियोंने याज्ञवल्क्यसे गहन-से-गहन प्रश्न पूछा। महर्षि याज्ञवल्क्यने सबका सटीक उत्तर दिया। उसके बाद याज्ञवल्क्यजीकी बारी आयी। इन्होंने पृथक्-पृथक् प्रश्न पूछे, किंतु उनमेंसे एकने भी कोई उत्तर नहीं दिया।

उनमें शाकल्य प्रधान थे। वे बहुत क्रुद्ध हुए और बोले—'तुम हमलोगोंको तुच्छ समझकर सब धन अकेले हड़प लेना चाहते हो। मेरे प्रश्नोंका तो उत्तर दो।' महर्षि याज्ञवल्क्यने उनके सभी प्रश्नोंका सटीक उत्तर दिया। याज्ञवल्क्यजी उत्तर देते जाते और शाकल्य भिन्न-भिन्न प्रश्न पूछते जाते। तब याज्ञवल्क्यजीने कहा—'तुमने तो हजारों प्रश्न कर लिये,पर तुम मेरे एक प्रश्नका तो उत्तर दो।' याज्ञवल्क्यजीके उस गहन प्रश्नका समाधान न हो सका, अतः शाकल्य वहीं ढेर हो गये। तब सब लोग डरकर चुप हो गये।

वाद संधाय सम्भाषामें ही होना चाहिये, विगृह्य सम्भाषामें नहीं। शाकल्यको उत्तर पाकर संतुष्ट होकर सत्य वस्तुको मान लेना चाहिये था; क्योंकि वाद सत्य अर्थके बोधके लिये ही होता है। इस कथासे शिक्षा मिलती है कि वादसे जब सत्यका पता लग जाय, तब झट उसे स्वीकार कर लेना चाहिये, भले ही उससे अपना पुराना मत खण्डित होता हो।

जहाँ मन, वहीं हम

सुशील नामके एक ब्राह्मण थे। उनके दो पुत्र थे। बड़ेका नाम था सुवृत्त और छोटेका वृत्त। दोनों युवा थे। दोनों गुणसम्पन्न तथा कई विद्याओंमें विशारद थे। घूमते-घामते दोनों एक दिन प्रयाग पहुँचे। उस दिन थी श्रीकृष्णजन्माष्टमी। इसलिये श्रीबेणीमाधवजीके मन्दिरमें महान् उत्सव था। महोत्सव देखनेके लिये वे दोनों भी निकले। वे लोग सड़कपर निकले ही थे कि बड़े जोरकी वर्षा आ गयी, इसलिये दोनों भाई मार्ग भूल गये। किसी निश्चित स्थानपर उनका पहुँचना कठिन था। अतएव एक तो वेश्याके घरमें चला गया, दूसरा भूलता-भटकता माधवजीके मन्दिरमें जा पहुँचा। सुवृत्त चाहता था कि वृत्त भी उसके साथ वेश्याके यहाँ ही रह जाय, पर वृत्तने इसे स्वीकार नहीं किया। वह माधवजीके मन्दिरमें पहुँचा भी, पर वहाँ पहुँचनेपर उसके संस्कार बदले और वह लगा पछताने। वह मन्दिरमें रहते हुए भी सुवृत्त और वेश्याके ध्यानमें डूब गया। वहाँ भगवान्की पूजा हो रही थी। वृत्त उसे सामनेसे ही खड़ा देख रहा था। पर वह वेश्याके ध्यानमें ऐसा तल्लीन हो गया था कि वहाँकी पूजा, कथा, नमस्कार, स्तुति, पुष्पाञ्जलि, गीत-नृत्यादिको देखते-सुनते हुए भी न देख रहा था और न सुन रहा था। वह तो बिलकुल चित्रके समान वहाँ निर्जीव-सा खड़ा था।

इधर वेश्यालयमें गये सुवृत्तकी दशा विचित्र थी। वह पश्चात्तापकी अग्निमें जल रहा था। वह सोचने लगा—'अरे ! आज भैया वृत्तके हजारों जन्मोंके पुण्य उदय हुए जो वह जन्माष्टमीकी रात्रिमें प्रयागमें भगवान् माधवका दर्शन कर रहा है। ओह ! इस समय वह प्रभुको अर्घ्य दे रहा होगा। अब वह पूजा-आरतीका दर्शन कर रहा होगा। अब वह नाम एवं कथा-कीर्तनादि सुन रहा होगा। अब तो नमस्कार कर रहा होगा। सचमुच आज उसके नेत्र, कान, सिर, जिह्वा तथा अन्य सभी अङ्ग सफल हो गये। मुझे तो बार-बार धिक्कार है,जो मैं इस पापमन्दिर-वेश्याके घरमें आ पड़ा। मेरे नेत्र मोरके पाँखके समान हैं, जो आज भगवद्दर्शन न कर पाये। मेरे हाथ, जो आज प्रभुके सामने नहीं जुड़े, कलछुलसे भी गये बीते हैं। हाय ! आज संत-समागमके बिना मुझे यहाँ एक-एक क्षण युगसे बड़ा मालूम होने लगा है। अरे ! देखो तो मुझ दुरात्माके आज कितने जन्मोंके पाप उदित हुए कि प्रयाग-जैसी मोक्षपुरीमें आकर भी मैं घोर दुष्ट-सङ्गमें फँस गया।'

इस तरह दोनोंके सोचते रात बीत गयी। प्रातःकाल उठकर वे दोनों परस्पर मिलने चले। वे अभी सामने आये ही थे कि वज्रपात हुआ और दोनोंकी तत्क्षण मृत्यु हो गयी। तत्काल वहाँ तीन यमदूत और दो भगवान् विष्णुके दूत आ उपस्थित हुए। यमदूतोंने तो वृत्तको पकड़ा और विष्णुदूतोंने सुवृत्तको साथ लिया। ज्यों ही वे लोग चलनेके लिये तैयार हुए, त्यों ही सुवृत्त घबराया-सा बोल उठा—'अरे ! आपलोग यह कैसा अन्याय कर रहे हैं। कलके पूर्व तो हम दोनों समान थे। पर आजकी रात मैं वेश्यालयमें रहा हूँ और वह वृत्त, मेरा छोटा भाई माधवजीके मन्दिरमें रहकर परम पुण्य अर्जन कर चुका है। अतएव भगवान्के परमधाममें वही जानेका अधिकारी हो सकता है।'

अब भगवान्के दोनों पार्षद ठहाका मारकर हँस पड़े। वे बोले—'हमलोग भूल या अन्याय नहीं करते। देखो, धर्मका रहस्य बड़ा सूक्ष्म तथा विचित्र है। सभी धर्मकर्मोंमें मनःशुद्धि ही मूल कारण है। मनसे भी किया गया पाप दुःखद होता है और मनसे भी चिन्तित धर्म सुखद होता है। आज तुम रातभर शुभचिन्तनमें लगे रहे हो, अतएव तुम्हें भगवद्धामकी प्राप्ति हुई। इसके विपरीत वह आजकी सारी रात अशुभ-चिन्तनमें ही रहा है, अतएव वह नरक जा रहा है। इसलिये सदा धर्मका ही चिन्तन और मन लगाकर धर्मानुष्ठान करना चाहिये।'

वस्तुतः जहाँ मन है, वहीं मनुष्य है। मन वेश्यालयमें हो तो मन्दिरमें रहकर भी मनुष्य वेश्यालयमें है और मन भगवान्में है तो वह चाहे कहीं भी हो, भगवान्में ही है।

सुवृत्तने कहा—'पर जो हो, इस भाईके बिना मेरी भगवद्धाममें जानेकी इच्छा नहीं होती। अन्यथा आपलोग कृपा करके इसे भी यमपाशसे मुक्त कर दें।'

विष्णुदूत बोले—'सुवृत्त ! यदि तुम्हें उसपर दया है तो तुम्हारे गतजन्मके मानसिक माघस्नानका संकल्पित जो पुण्य बच रहा है, उसे तुम वृत्तको दे दो तो यह भी तुम्हारे साथ ही विष्णुलोकको चल सकेगा। सुवृत्तने तत्काल वैसा ही किया और फलतः वृत्त भी हरिधामको अपने भाईके साथ ही चला गया। (वायुपुराण, माघमाहात्म्य, अध्याय २१)

चरणारविन्दोंकी महिमा

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥
त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद् वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

(श्रीमद्भा० ११।५।३३-३४)

प्रभो ! आप शरणागतरक्षक हैं। आपके चरणारविन्द सदा-सर्वदा ध्यान करनेयोग्य, माया-मोहके कारण होनेवाले सांसारिक पराजयोंका अन्त कर देनेवाले तथा भक्तोंकी समस्त अभीष्ट वस्तुओंका दान करनेवाले कामधेनुस्वरूप हैं। वे तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाले स्वयं परम तीर्थस्वरूप हैं, शिव, ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता उन्हें नमस्कार करते हैं और चाहे जो कोई उनकी शरणमें आ जाय, उसे स्वीकार कर लेते हैं। सेवकोंकी समस्त आर्ति और विपत्तिके नाशक तथा संसार-सागरसे पार जानेके लिये जहाज हैं। महापुरुष ! मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दोंकी वन्दना करता हूँ। भगवन् ! आपके चरणकमलोंकी महिमा कौन कहे ? रामावतारमें अपने पिता दशरथजीके वचनोंसे देवताओंके लिये भी वाञ्छनीय और दुस्त्यज राज्यलक्ष्मीको छोड़कर आपके चरणकमल वन-वन घूमते फिरे ! सचमुच आप धर्मनिष्ठताकी सीमा हैं। और महापुरुष ! अपनी प्रेयसी सीताजीके चाहनेपर जान-बूझकर आपके चरणकमल मायामृगके पीछे दौड़ते रहे। सचमुच आप प्रेमकी सीमा हैं। प्रभो ! मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दोंकी वन्दना करता हूँ।

भागवत

[अष्टादश महापुराणोंमें पाँचवाँ पुराण भागवत कहा गया है। इस सम्बन्धमें यह प्रश्न उठता है कि इसे 'श्रीमद्भागवत' माना जाय अथवा 'देवीभागवत'। कुछ विद्वान् श्रीमद्भागवतको महापुराणके अन्तर्गत मानते हैं तथा कुछ देवीभागवतको। दोनों ही अपने पक्षके समर्थनमें तर्क और युक्तियाँ भी प्रस्तुत करते हैं, किंतु कुछ भी निर्णय न हो सका है।

तात्त्विक दृष्टिसे जैसे वामाङ्ग एवं दक्षिणाङ्ग मिलकर एक ही महाकायकी पूर्ति करते हैं, वैसे ही प्रमेयबलके आधारपर दोनों भागवत एक ही अद्वयतत्त्वके पूरक हैं। 'भगवतः' 'भगवत्याः' वा इदं भागवतम्'—इस निरुक्तिसे भागवत नाम भगवान् या भगवतीकी भगवत्तामें चरितार्थ होता है। इस कारण श्रीवेदव्यासजीने दोनोंकी महिमामें समान स्वरूप-परिमाणसे एक-एक स्वतन्त्र महापुराणकी रचना कर दी। ये दोनों ही महापुराण हैं, दोनों ही पूज्य हैं, वन्दनीय हैं। यहाँपर दोनोंको ही विवेचित किया जा रहा है। —सम्पादक]

श्रीमद्भागवतपुराण

श्रीमद्भागवत रसमय ग्रन्थ है। यह मानव-जीवनमें अमर रस भर देता है। स्वयं भगवान् व्यासदेवको श्रीमद्भागवतसे पूर्ण संतोष मिला था। इसके पहले महर्षिने महाभारत और सत्रह पुराणोंका निर्माण कर लिया था। फिर भी उनके अन्तरमें कोई कमी खटकती रही। उस कमीकी पूर्ति श्रीमद्भागवतने ही की है। श्रीमद्भागवतकी महिमा बताना सूर्यको दीपक दिखाना है। घर-घरमें भगवत्स्वरूप इस ग्रन्थकी पूजा होती है।

श्रीमद्भागवतका हृदय दशम स्कन्ध है। इसीके पोषणके लिये प्रारम्भके नौ स्कन्ध हैं। एकादश स्कन्धमें भगवान्ने महासंत उद्धवको उपदेश दिया है।

भगवान् विष्णुने सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माजीको पहले चार श्लोकोंमें श्रीमद्भागवतका उपदेश दिया था। इन श्लोकोंमें १. परमात्मतत्त्व, २. मायातत्त्व, ३. जगत्तत्त्व और ४. आत्मतत्त्वका निरूपण हुआ है। इसके बाद भगवान् विष्णुने सम्पूर्ण भागवतकी शिक्षा ब्रह्माजीको दी और इसके महत्त्व भी बतलाये। यदि मनुष्य प्रतिदिन श्रीमद्भागवतका पाठ करता है तो एक-एक अक्षरके उच्चारणसे उसे कपिला गौके दानका फल प्राप्त होता है और संयतचित्तसे यदि कोई एक श्लोकका भी पाठ करता है तो वह अठारह पुराणोंके पाठका फल पा जाता है।

कथा-आख्यान—

महर्षि सौभरिकी जीवन-गाथा

(पद्मभूषण आचार्य श्रीबलदेवजी उपाध्याय)

वासनाका राज्य अखण्ड है। वासनाका विराम नहीं। फल मिलनेपर यदि एक वासनाको हम समाप्त करनेमें समर्थ भी होते हैं तो न जाने कहाँसे दूसरी और उससे भी प्रवलतर वासनाएँ पनप जाती हैं। प्रबल कारणोंसे कतिपय वासनाएँ कुछ कालके लिये लुप्त हो जाती हैं, परंतु किसी उत्तेजक कारणके आते ही वे जाग पड़ती हैं। भला कोई स्वप्नमें भी सोच सकता था कि महर्षि सौभरि काण्वका दृढ़ वैराग्य मीनराजके सुखद गार्हस्थ्य-जीवनको देखकर वायुके एक

हलके-से झकोरेसे जड़से उखड़कर भूतलशायी बन जायगा ?

महर्षि सौभरि कण्व-वंशके मुकुट थे,[१] उन्होंने वेद-वेदाङ्गका गुरु-मुखसे अध्ययन कर धर्मका रहस्य भलीभाँति जान लिया था। उनका शास्त्र-चिन्तन गहरा था, परंतु उससे भी अधिक गहरा था उनका जगत्‌के प्रपञ्चोंसे वैराग्य। जगत्‌के समग्र विषय-सुख क्षणिक हैं। जब चित्तको उनसे यथार्थ शान्ति नहीं मिल सकती, तब कोई विवेकी पुरुष अपने अनमोल जीवनको इन कौड़ीके तीन विषयोंकी ओर क्यों लगायेगा ? आजका विशाल सुख कल ही अतीतकी स्मृति बन जाता है। जब पलभरमें सुखकी सरिता सूखकर मरुभूमिके विशाल बालूके ढेरके रूपमें परिणत हो जाती है, तब कौन विज्ञ पुरुष इस सरिताके सहारे अपनी जीवन-वाटिकाको हरी-भरी रखनेका उद्योग करेगा ? सौभरिका चित्त इन भावनाओंकी रगड़से इतना चिकना बन गया था कि पिता-माताका विवाह करनेका प्रस्ताव चिकने घड़ेपर जल-बूँदके समान उसपर टिक न सका। उन्होंने बहुत समझाया—'अभी भरी जवानी है, अभिलाषाएँ उमड़ी हुई हैं, तुम्हारे जीवनका यह नया वसंत है, कामना-मञ्जरीके विकसित होनेका उपयुक्त समय है, रसलोलुप चित्त-भ्रमरको इधर-उधरसे हटाकर सरस माधवीके रसपानमें लगाना है। अभी वैराग्यका बाना धारण करनेका अवसर नहीं।' परंतु सौभरिने किसीके शब्दोंपर कान न दिया। उनका कान तो वैराग्यसे भरे, अध्यात्म-सुखसे सने, मंजुल गीतोंको सुननेमें न जाने कबसे लगा हुआ था।

पिता-माताका अपने पुत्रको गार्हस्थ्य-जीवनमें लानेका उद्योग सफल न हो सका। पुत्रके हृदयमें भी देरतक द्वन्द्व मचा रहा। एक बार चित्त कहता—माता-पिताके वचनोंका अनादर करना पुत्रके लिये अत्यन्त हानिकारक है, परंतु दूसरी बार एक विरोधी वृत्ति धक्का देकर सुझाती—**'आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।'** आत्म-कल्याण ही सबसे बड़ी वस्तु ठहरी। गुरुजनोंके वचनों और कल्याण-भावनामें विरोध होनेपर हमें आत्मकल्याणसे पराङ्मुख नहीं होना चाहिये। सौभरि इस अन्तर्युद्धको अपने हृदयके कोनेमें बहुत देरतक छिपा न सके और घरसे सदाके लिये नाता तोड़कर उन्होंने इस युद्धको भी विराम दिया। महर्षिके जवानीमें ही वैराग्यसे और अकस्मात् घर छोड़नेसे लोगोंके हृदय विस्मित हो उठे।

× × × ×

पवित्र नदीतट था। कल्लोलिनी कालिन्दी कल-कल करती हुई बह रही थी। किनारेपर उगे हुए तमाल-वृक्षोंकी सघन छायामें रंग-बिरंगी चिड़ियोंका चहकना कानोंमें अमृत उँड़ेल रहा था। घने जंगलके भीतर पशु स्वच्छन्द विचरण करते थे और नाना प्रकारके विघ्नोंसे अलग रहकर विशेष सुखका अनुभव करते थे। सायंकाल गोधूलिकी भव्य वेलामें गायें दूधसे भरे थनोंके भारसे झुकी हुई जब मन्द गतिसे दूरके गाँवोंकी ओर जाती थीं, तब यह दृश्य अनुपम आनन्द उत्पन्न करता था। यमुनाकी सतहपर शीतल पवनके हलके झकोरोंसे छोटी-छोटी लहरियाँ उठती थीं और भीतर मछलियोंके झुंड-के-झुंड इधर-से-उधर कूदते हुए स्वच्छन्दताके सुखका अनुभव कर रहे थे। यहाँ था शान्तिका अखण्ड राज्य। इसी एकान्त स्थानको सौभरिने अपनी तपस्याके लिये पसंद किया।

सौभरिके हृदयमें तपस्याके प्रति महान् अनुराग तो था ही, स्थानकी पवित्रता तथा एकान्तताने उनके चित्तको हठात् अपनी ओर खींच लिया। यमुनाके जलके भीतर वे तपस्या करने लगे। भादोंमें भयंकर बाढ़के कारण यमुना-जल बड़े ही वेगसे बढ़ने और बहने लगता, परंतु ऋषिके चित्तमें न तो किसी प्रकारका बढ़ाव था और न किसी प्रकारका बहाव। पूस-माघकी रातोंमें पानी इतना ठंडा हो जाता कि जल-जन्तु भी ठंडके कारण काँपते, परंतु मुनिके शरीरमें जल-शयन करनेपर भी किसी प्रकारकी जडता न आती। वर्षाके साथ-साथ ऐसी ठंडी हवा चलती कि प्राणिमात्रके शरीर सिकुड़ जाते, परंतु ऋषिके शरीरमें तनिक भी सिकुड़न न आती। ऐसी विकट तपस्याका क्रम बहुत वर्षोंतक चलता रहा। सौभरिको वह दिन याद था, जब उन्होंने तपस्याके निमित्त अपने पिताका आश्रम छोड़कर यमुनाका आश्रय लिया था।

१-इस कथाके मूलस्रोतके लिये भागवतपुराणका नवम स्कन्ध, अध्याय ६। ३८-५५ द्रष्टव्य है। महर्षि सौभरि काण्व ऋग्वेदमें भी निर्दिष्ट हैं। वे ऋग्वेदके अष्टम मण्डलके सूक्त १९ से २२—(९९ मन्त्र) के द्रष्टा हैं, इनका उल्लेख निरुक्त ४। १५, वृहद्देवता ६। ५१, कात्यायनसर्वानुक्रमणी ८। १९ तथा नीतिमञ्जरी (पृष्ठ २६०—२६४) में भी उपलब्ध होता है।

उस समय उनकी भरी जवानी थी, परंतु अब ? लम्बी दाढ़ी और मुलायम मूँछोंपर हाथ फेरते समय उन्हें प्रतीत होने लगता कि अब उनकी उम्र ढलने लगी है। जो उन्हें देखता, वही आश्चर्यसे चकित हो जाता। इतनी विकट तपस्या ! शरीरपर इतना नियन्त्रण ! सर्दी-गर्मी सह लेनेकी इतनी अधिक शक्ति ! दर्शकोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहता, परंतु महर्षिके चित्तकी विचित्र दशा थी। वे नित्य यमुनाके श्यामल जलमें मत्स्यराजकी अपनी प्रियतमाके साथ रतिक्रीडा देखते-देखते आनन्दसे विभोर हो जाते। कभी पति अपनी मानवती प्रेयसीके मानभञ्जनके लिये हजारों उपाय करते-करते थक जानेपर आत्मसमर्पणके मोहनमन्त्रके सहारे सफल होता और कभी वह मत्स्यसुन्दरी इठलाती, नाना प्रकारसे अपना प्रेम प्रदर्शन करती, अपने प्रियतमकी गोदका आश्रय लेकर अपनेको कृतकृत्य मानती। झुंड-के-झुंड बच्चे मत्स्य-दम्पतिके चारों ओर अपनी ललित लीलाएँ किया करते और उनके हृदयमें प्रमोद-सरिता बहाया करते।

ऋषिने देखा कि गार्हस्थ्य-जीवनमें बड़ा रस है। पति-पत्नीके विविध रसमय प्रेम-कल्लोल ! बाल-बच्चोंका स्वाभाविक सरल सुखद हास्य ! परंतु उनके जीवनमें 'रस कहाँ ? रस (जल) का आश्रय लेनेपर भी चित्तमें रसका नितान्त अभाव था। उनकी जीवन-लताको प्रफुल्लित करनेके लिये कभी वसन्त नहीं आया। उनके हृदयकी कलीको खिलानेके लिये मलयानिल कभी न बहा। भला, यह भी कोई जीवन है। दिन-रात शरीरको सुखानेका उद्योग, चित्तवृत्तियोंको दबानेका विफल प्रयास। उन्हें जान पड़ता मानो मछलियोंके छोटे-छोटे बच्चे उनके नीरस जीवनकी खिल्ली उड़ा रहे हैं।

संगतिने सोयी हुई वासनाको जोरोंसे झकझोर कर जगा दिया। वह अपनेको प्रकट करनेके लिये मार्ग खोजने लगी।

× × × ×

तपका उद्देश्य केवल शरीरको नाना प्रकारके साधनोंसे तप्त करना नहीं है, प्रत्युत मनको तप्त करना है। सच्चा तप मनमें जमे हुए कामके कूड़े-करकटको जलाकर राख बना देता है। आगमें तपाये हुए सोनेकी भाँति तपस्यासे तपाया गया चित्त खरा उतरता है। तप स्वयं अग्निरूप है। उसकी साधना करनेपर क्या कभी चित्तमें अज्ञानका अन्धकार अपना घर बना सकता है ? उसकी ज्वाला वासनाओंको भस्म कर देती है और उसका प्रकाश समग्र पदार्थोंको प्रकाशित कर देता है। शरीरको पीड़ा पहुँचाना तपस्याका स्वाँगमात्र है। नहीं तो, क्या इतने दिनोंकी घोर तपस्याके बाद भी सौभरिके चित्तमें प्रपञ्चसे विरति, संसारसे वैराग्य और भगवान्‌के चरणोंमें सच्ची रति न होती ?

वैराग्यसे वैराग्य ग्रहणकर तथा तपस्याको तिलाञ्जलि देकर महर्षि सौभरि प्रपञ्चकी ओर मुड़े और अपनी गृहस्थी जमानेमें जुट गये। विवाहकी चिन्ताने उन्हें कुछ बेचैन कर डाला। गृहिणी घरकी दीपिका है, धर्मकी सहचारिणी है। पत्नीकी खोजमें उन्हें दूर-दूर जाना पड़ा। रत्न खोज करनेपर ही प्राप्त होता है, घरके कोनेमें अथवा दरवाजेपर बिखरा हुआ थोड़े ही मिलता है—**'न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्।'** उस समय महाराज मान्धाताके प्रबल प्रतापके सामने संसारके समस्त नरेश नतमस्तक थे। वे सूर्यवंशके मुकुटमणि महाराज युवनाश्वके पुत्र थे। आर्योंकी सभ्यतासे सदा द्वेष रखनेवाले दस्युओंके हृदयमें इनके नाममात्रसे कम्प उत्पन्न हो जाता था। वे सरयूके तटपर बसी अयोध्या नगरीमें स्थित होकर विश्वके समस्त भू-भागपर शासन करते थे। महर्षिको यमुनातटसे सरयूके तीरपर अयोध्याकी राज्यसभामें सहसा उपस्थित देखकर उन्हें उतना आश्चर्य नहीं हुआ, जितना उनके राजकुमारीसे विवाह करनेके प्रस्तावपर। इस वृद्धावस्थामें इतनी कामुकता ! इनके तो अब दूसरे लोकमें जानेके दिन समीप आ रहे हैं, परंतु आज भी इस लोकमें गृहस्थी जमानेका यह आग्रह ! परंतु सौभरिकी इच्छाका विघात करनेसे भी उन्हें भय मालूम होता था। उनके हृदयमें एक विचित्र द्वन्द्व मच गया। एक ओर तो वे अभ्यागत तपस्वीकी कामना पूर्ण करना चाहते थे, परंतु दूसरी ओर उनका पितृत्व चित्तपर आघात देकर कह रहा था—इस वृद्ध जरद्गवके गलेमें अपनी सुमन-सुकुमार सुताको मत बाँधो। राजाने इन विरोधी वृत्तियोंको बड़ी कुशलतासे अपने चित्तके कोनेमें दबाकर सौभरिके सामने स्वयंवरका प्रस्ताव रखा। उन्होंने कहा—'क्षत्रिय-कुलकी कन्याएँ गुणवान् पतिको स्वयं वरण किया करती हैं। अतः आप मेरे अन्तःपुर-संरक्षकके साथ जाइये। जो कन्या आपको अपना पति बनाना स्वीकार करेगी,

उसका मैं आपके साथ विधिवत् विवाह कर दूँगा।' कञ्चुकी वृद्धको अपने साथ लेकर अन्तःपुरमें चला, परंतु तब उसके कौतुककी सीमा न रही, जब वे वृद्ध अनुपम सर्वाङ्ग-शोभन युवकके रूपमें महलमें दीख पड़े। रास्तेमें ही सौभरिने तपस्याके बलसे अपने रूपको बदल लिया। जो देखता, वही मुग्ध हो जाता। स्निग्ध श्यामल शरीर, ब्रह्मतेजसे चमकता हुआ चेहरा, उन्नत ललाट, अङ्गोंमें यौवनसुलभ स्फूर्ति, नेत्रोंमें विचित्र दीप्ति, जान पड़ता था मानो स्वयं अनङ्ग अङ्ग धारण कर रतिकी खोजमें सजे हुए महलोंके भीतर प्रवेश कर रहा हो। सुकुमारी राजकन्याओंकी दृष्टि इस युवक तापसपर पड़ी। चार आँखें होते ही उनका चित्त-भ्रमर मुनिके रूप-कुसुमकी माधुरी चखनेके लिये विकल हो उठा। पिताका प्रस्ताव सुनना था कि सबने मिलकर मुनिको घेर लिया और एक स्वरसे मुनिको वरण कर लिया। राजाने भी अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

सरयूके सुन्दर तटपर विवाह-मण्डप रचा गया। महाराज मान्धाताने अपनी पचास पुत्रियोंका विवाह महर्षि सौभरि काण्वके साथ एक साथ पुलकितवदन होकर कर दिया और दहेजमें विपुल सम्पत्ति दी—सत्तर-सत्तर गायोंके तीन झुंड, श्यामवर्ण वृषभ, जो इन सबके आगे-आगे चलता था, अनेक घोड़े, नाना प्रकारके रंग-बिरंगे कपड़े, अनमोल रत्न। गृहस्थ-जीवनको रसमय बनानेवाली समस्त वस्तुओंको एक साथ एक ही जगह पाकर मुनिकी कामनावल्ली लहलहा उठी। इन वस्तुओंसे सज-धजकर रथपर सवार हो मुनि जब यमुना-तटकी ओर आ रहे थे, उस समय रास्तेमें वज्रपाणि भगवान् इन्द्रका देवदुर्लभ दर्शन उन्हें प्राप्त हुआ। ऋषि आनन्दसे गद्गद स्वरमें स्तुति करने लगे—

'भगवन्! आप अनाथोंके नाथ हैं और हमलोग बन्धुहीन ब्राह्मण हैं। आप प्राणियोंकी कामनाओंकी तुरंत पूर्ति करनेवाले हैं। आप सोमपानके लिये अपने तेजके साथ हमारे यहाँ पधारिये।'

स्तुति किसे प्रसन्न नहीं करती। इस स्तुतिको सुनकर देवराज अत्यन्त प्रसन्न हुए और ऋषिसे आग्रह करने लगे कि 'वर माँगो।' सौभरिने अपने मस्तकको झुकाकर विनयभरे शब्दोंमें कहना आरम्भ किया—'प्रभो! मेरा यौवन सदा बना रहे, मुझमें इच्छानुसार नाना रूप धारण करनेकी शक्ति हो, अक्षय रति हो और इन पचास पत्नियोंके साथ एक ही समय रमण करनेकी सामर्थ्य मुझमें हो जाय। विश्वकर्मा मेरे लिये सोनेके ऐसे महल बना दें, जिनके चारों ओर कल्पवृक्षसे युक्त पुष्प-वाटिकाएँ हों। मेरी पत्नियोंमें किसी प्रकारकी स्पर्धा, परस्पर कलह कभी न हो। आपकी दयासे मैं गृहस्थीका पूरा-पूरा सुख उठा सकूँ।'

इन्द्रने गम्भीर स्वरमें कहा—'तथास्तु।' देवताने भक्तकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। भक्तका हृदय आनन्दसे गद्गद हो उठा।

× × × ×

वस्तुके पानेकी आशामें जो आनन्द आता है, वह उसके मिलनेपर नहीं होता। मनुष्य उसे पानेके लिये बेचैन बना रहता है, लाखों चेष्टाएँ करता है, उसकी कल्पनासे ही उसके मुँहसे लार टपकने लगती है, परंतु वस्तुके मिलते ही उसमें विरसता आ जाती है, उसका स्वाद फीका पड़ जाता है, उसकी चमक-दमक जाती रहती है और प्रतिदिनकी गले पड़ी वस्तुओंके ढोनेके समान उसका भी ढोना दूभर हो जाता है। गृहस्थीमें दूरसे आनन्द अवश्य आता है, परंतु गले पड़नेपर उसका आनन्द उड़ जाता है, केवल तलछट शेष रह जाती है।

महर्षि सौभरिके लिये गृहस्थीकी लता हरी-भरी सिद्ध नहीं हुई। बड़ी-बड़ी कामनाओंको हृदयमें लेकर वे इस घाट उतरे थे, परंतु यहाँ विपदाके जल-जन्तुओंके कोलाहलसे

सुखपूर्वक खड़ा होना भी असम्भव हो गया। विचारशील तो वे थे ही। विषय-सुखोंको भोगते-भोगते उन्हें वैराग्य—और अब सच्चा वैराग्य उत्पन्न हो गया। वे सोचने लगे—'क्या यही सुखद जीवन है, जिसके लिये मैंने वर्षोंकी साधनाका तिरस्कार किया है? मुझे धन-धान्यकी कमी नहीं है, गो-सम्पत्ति मेरी अतुलनीय है, भूखकी ज्वालाके अनुभव करनेका अशुभ अवसर मुझे कभी नहीं आया, परंतु मेरे चित्तमें चैन नहीं। कल-कण्ठ कामिनियोंके कोकिल-विनिन्दित स्वरोंने मेरी जीवन-वाटिकामें वसन्त लानेका उद्योग किया, वसन्त आया, पर उसकी सरसता टिक न सकी। बालक-बालिकाओंकी मधुर काकलीने मेरे जीवनोद्यानमें पावसको ले आनेका प्रयत्न किया, परंतु मेरा जीवन सदाके लिये हरा-भरा न हो सका। हृदय-वल्ली कुछ कालके लिये अवश्य लहलहा उठी, परंतु पतझड़के दिन शीघ्र आ धमके, पत्ते मुरझाकर झड़ गये। क्या यही सुखमय गार्हस्थ्य-जीवन है? बाहरी प्रपञ्चमें फँसकर मैंने आत्म-कल्याणको भुला दिया। मानव-जीवनकी सफलता इसीमें है कि योगके द्वारा आत्मदर्शन किया जाय— **'यद्योगेनात्मदर्शनम्'**, परंतु भोगके पीछे मैंने योगको भुला दिया, अनात्माके चक्करमें पड़कर आत्माको बिसार दिया और प्रेयोमार्गका अवलम्बन कर 'श्रेयः'—आत्यन्तिक सुखकी उपेक्षा कर दी। भोगमय जीवन वह भयावनी भूल-भुलैया है, जिसके चक्करमें पड़ते ही हम अपनी राह छोड़ बेराह चलने लगते हैं और अनेक जन्म चक्कर काटनेमें ही बिता देते हैं। कल्याणके मार्गमें जहाँ चलते हैं, घूम-फिरकर पुनः वहीं आ जाते हैं, एक डग भी आगे नहीं बढ़ पाते।

'कच्चा वैराग्य सदा धोखा देता है। मैं समझता था कि इस कच्ची उम्रमें भी मेरी लगन सच्ची है, परंतु मिथुनचारी मत्स्यराजकी संगतिने मुझे इस मार्गमें ला घसीटा। सच्चा वैराग्य हुए बिना भगवान्‌की ओर बढ़ना प्रायः असम्भव-सा ही है। इस विरतिको लानेके लिये साधु-संगति ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। बिना आत्मदर्शनके यह जीवन भार है। अब मैं अधिक दिनोंतक इस बोझको नहीं ढो सकता।'

दूसरे दिन लोगोंने सुना—महर्षि सौभरिकी गृहस्थी उजड़ गयी। महर्षि सच्चे निर्वेदसे यह प्रपञ्च छोड़ जंगलमें चले गये और सच्ची तपस्या करते हुए भगवान्‌में लीन हो गये। जिस प्रकार अग्निके शान्त होते ही उसकी ज्वालाएँ वहीं शान्त हो जाती हैं, उसी प्रकार पतिकी आध्यात्मिक गतिको देखकर पत्नियोंने भी उनकी संगतिसे सद्‌गति प्राप्त की। संगतिका फल बिना फले नहीं रहता। मनुष्यको चाहिये कि वह सज्जनोंकी संगतिका लाभ उठाकर अपने जीवनको धन्य बनावे। दुष्टोंका सङ्ग सदा हानिकारक होता है। विषयी पुरुषके सङ्गमें विषय उत्पन्न न होगा तो क्या वैराग्य उत्पन्न होगा? मनुष्यको आत्मकल्याणके लिये सदा जागरूक रहना चाहिये। जीवनका यही लक्ष्य है। पशु-पक्षीके समान जीना, अपने स्वार्थके पीछे सदा लगे रहना मानवता नहीं है।

द्रौपदीकी क्षमाशीलता

सम्पूर्ण कक्ष एक करुण-चीत्कारसे गूँज उठा। अभी-अभी तो महाभारतयुद्ध समाप्त हुआ है और विजयकी इस वेलामें यह करुण-क्रन्दन? सभी पाण्डवपक्षके वीर पाञ्चाली-के कक्षसे आती चीत्कारकी ओर दौड़ पड़े।

अत्यन्त हृदयविदारक दृश्य! द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंके कटे सिर, चारों ओर रक्त-ही-रक्त! 'द्रौपदी!' धर्मराज इससे अधिक कुछ न बोल सके। जैसे इन तीन अक्षरोंमें ही उनकी समग्र वेदना, आश्चर्य और प्रश्न एक साथ साकार हो उठे हों।

गाण्डीवधारीकी भुजाएँ फड़क उठीं। वे क्रोधावेशमें चीख उठे—'उस दुष्ट अश्वत्थामाके अतिरिक्त इस दुष्कर्मको करने-हेतु बचा ही कौन है? अपने आँसुओंको पोंछ लो देवि! मैं प्रण करता हूँ कि अभी उस दुष्टको तुम्हारे चरणोंमें लाकर पटक दूँगा और उसपर पैर रखकर उसके रक्तसे तुम स्नान करना।'

फिर तो अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णकी सलाहसे उन्हें सारथि बनाकर कवच धारणकर, गाण्डीव धनुषको लेकर रथपर सवार हो अश्वत्थामाके पीछे दौड़ पड़े। निरपराध पाण्डव-पुत्रोंके वधसे श्रीविहीन एवं भयातुर अश्वत्थामा अधिक समयतक अर्जुनके चंगुलसे बच नहीं पाये।

'मधुसूदन! इस दुष्टके साथ,..............'

अर्जुन अभी अपना वाक्य भी पूरा नहीं कर पाये थे कि भगवान् श्रीकृष्णने कुपित होकर कहा—'इस ब्राह्मणाधमका वध ही उचित है। यही तुम्हारी प्रतिज्ञा भी है, इसमें सम्मतिकी क्या आवश्यकता ?'

अपने मृत पुत्रोंके शोकमें संतप्त द्रौपदीने गुरुपुत्र अश्वत्थामाको ज्यों ही कक्षमें रस्सियोंसे बँधे लाते देखा त्यों ही वह उठकर खड़ी हो गयी और अर्जुनके चरणोंमें गिरकर बोली —'प्राणनाथ ! इसे क्षमा-दान दीजिये।'

'बैठ द्रौपदी ! इस दुष्टके वक्षपर मैं तुझे इसके रक्तसे स्नान कराता हूँ।'—अर्जुनने कहा।

द्रौपदीने अपने रुँधे कण्ठसे विनय करना आरम्भ किया। वह अश्वत्थामाको हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए अर्जुनसे बोली—'आर्यपुत्र ! आपने जिनसे श्रेष्ठ युद्ध-कौशलकी शिक्षा प्राप्त की है, उन्हीं पूज्य गुरुदेवके ये पुत्र हैं। ब्राह्मण होनेके कारण भी ये हम क्षत्रियोंद्वारा अवध्य हैं। इनकी माता कृपी तो मात्र पुत्र-प्रेमके कारण ही अपने पतिके मार्गका अनुसरण न कर आजतक जीवित हैं। नाथ ! अश्वत्थामाकी मृत्युसे मेरे पुत्र जीवित तो नहीं होंगे ? आज जिस तरह मैं अपने पुत्रोंके वियोगमें तड़प रही हूँ, कल इनकी माता गौतमी भी पुत्र-वियोगमें न जाने क्या कर बैठें। यदि मैं किसीको सुख न दे सकूँ तो उनके दुःखका कारण तो न बनूँ।'

अर्जुनसहित सभी पाण्डव नारीके इस अद्भुत आदर्शको साश्चर्य देख रहे थे। एक ओर बाँकेविहारी अपनी नित्य शान्त मुद्रामें खड़े थे। वे आगे बढ़कर बोले—'क्या हुआ अर्जुन ! रुक क्यों गये ? उठाओ तलवार !'

अर्जुन श्रीकृष्णके चरणोंमें नत हो गये और बोले—'कन्हैया ! मुझे धर्मसंकटसे उबारिये।'

श्रीकृष्णने परीक्षा लेते हुए कहा—मैं अपनी शास्त्रसम्मत वाणीको पुनः दुहरा रहा हूँ पार्थ !—'पतित ब्राह्मणका वध न करना और आततायीको मौतके घाट उतारना यही धर्म है।'

अर्जुन-जैसे गीता-ज्ञान-ग्रहणकर्ताके लिये भगवान् श्रीकृष्णका यह संकेत पर्याप्त था। उन्होंने अश्वत्थामाके मस्तकपर लगी मणि निकाल ली और सिरके बाल मूँड़कर उसे छोड़ दिया। अपमानित ब्राह्मण मृतक ही होता है। अतः ब्राह्मणका बिना वध किये अश्वत्थामाको मृत्युके समान दण्ड देकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा।
एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः॥

(श्रीमद्भा० १।७।५७)

(स्वा० ओं० आ०)

पिबत भागवतं रसम् (आलयम्)

एक दिन भगवान् व्यासदेव प्रातःकृत्य सम्पन्न कर सरस्वतीके तटपर बैठे हुए थे। आज उनके हृदयमें और दिनोंकी तरह प्रफुल्लता न थी। कोई कमी हृदयको कुरेद रही थी। वे सोचने लगे कि जनहितके लिये मैंने वेदोंको शाखाओंमें बाँट दिया है और अबतक सत्रह पुराणों और महाभारतकी रचना कर दी है। फिर भी मेरा मन असंतुष्ट क्यों है ? वह कौन-सी कमी रह गयी है, जिसकी पूर्तिके लिये अन्तःकरण अकुला रहा है ?

उन्हें भान हुआ कि मैंने परमहंसोंके प्रिय धर्मोंका प्रायः निरूपण नहीं किया, इसीसे यह बेचैनी है। ब्रह्म रसरूप है, अतः रसरूपमें उसका वर्णन भी अपेक्षित है। ठीक इसी अवसरपर महाभागवत श्रीनारदजी वहाँ आ पधारे। व्यासजी तुरंत उठ खड़े हुए। उन्होंने देवर्षिकी विधिवत् पूजा की। देवर्षिने पूछा—'आप अकृतार्थ पुरुषकी भाँति खिन्न क्यों हैं ?' व्यासजीने कहा—'देवर्षे ! सचमुच मेरा मन संतुष्ट नहीं है। मुझमें जो कमी रह गयी है, कृपया उसे आप बतायें।'

नारदजीने कहा—'आपने धर्म आदि पुरुषार्थोंका जैसा निरूपण किया है, वैसा निरूपण रसरूप ब्रह्मका नहीं किया है। रसके उल्लासके लिये ब्रह्म रसमय लीला करता है। आप उसका रसमय ही निरूपण करें। इससे आपके हृदयको संतोष हो जायगा।'

इसके बाद भगवान् व्यासदेवने जिस ग्रन्थकी रचना की, उसीका नाम है—श्रीमद्भागवत। पुष्पिकामें भगवान् व्यास-देवने इसे 'पारमहंसी संहिता' कहा है। श्रीमद्भागवत भगवान्का स्वरूप ही है। भगवान् रस हैं, भागवत भी रस है।

(ला० वि० मि०)

भगवान्का अवतार महान् ज्ञानीमें रसोल्लासके लिये

(महाभागवत श्रीशुकदेवकी कथा)

महाभागवत श्रीशुकदेवजीने भगवान् शंकरकी अमर कथा सुनी थी। इसीलिये माताके गर्भमें ही ये पूर्ण ज्ञानसे सम्पन्न हो गये थे। इनका यह ज्ञान जन्मके समय तथा इसके बाद भी अखण्ड बना रहा, क्योंकि इसके लिये इन्होंने अपने पिता श्रीव्यासदेवसे वरदान और भगवान् श्रीकृष्णसे समर्थन प्राप्त कर लिया था। गर्भमें और जन्मसे ही पूर्ण ज्ञान-सम्पन्न होनेका उदाहरण इतिहासमें कम मिलता है। यही कारण है कि वायुपुराणमें इन्हें महातपा, महायोगी और योगशास्त्रका प्रणेता कहा है।

श्रीशुकदेवजी जब माताके गर्भसे पृथ्वीपर आये, तब वरदानके फलस्वरूप पूर्ण अद्वैत ज्ञाननिष्ठ थे। न तो उन्हें माता-पिताका ज्ञान था और न अपने-परायेका ही। पैरोंका काम चलना है। उत्पन्न होते ही इन्हें लेकर वे कहीं चल पड़े। पुत्रको इस प्रकार घरसे बाहर निकलते देख पिता उनके पीछे लग गये। उन्होंने पुत्रका हाथ पकड़कर अपनी ओर खींचा और कानमें पुत्र-पुत्रकी जोरसे आवाजें भी लगायीं। किंतु अद्वैतनिष्ठके लिये यह सब व्यर्थ था। पुत्रके पैर आगे बढ़ते गये और पिता पीछे-पीछे चलते गये। थोड़ी दूरपर कुछ स्त्रियाँ स्नान कर रही थीं। उन्होंने श्रीशुकदेवको नंगे देखकर अपने वस्त्र नहीं पहने, किंतु वस्त्र धारण किये हुए व्यासको देखकर झट कपड़े पहन लिये। इस विपरीत व्यवहारको देखकर व्यासजीने उन स्त्रियोंसे इसका कारण पूछा। स्त्रियोंने उत्तरमें कहा—'आपमें तो स्त्री-पुरुषका भेद विद्यमान है, इसलिये हम आपसे लज्जा करती हैं; किंतु आपके पुत्रमें संसारका कोई ज्ञान नहीं है। फिर स्त्री-पुरुषका ही ज्ञान कैसे होगा ? आपके पुत्रकी अनुपस्थितिमें जैसा हमारा भाव न लजानेका था वैसा इनकी उपस्थितिमें भी है।'

आगे चलकर पैरोंने श्रीशुकदेवजीको बैठा दिया। वे ठूँठकी तरह निश्चेष्ट बैठ गये। ये केवल आनन्दकी अमन्द धाराओंमें मग्न हो रहे थे। पिताने पुत्रको बहुत झकझोरा, तरह-तरहसे सम्बोधित किया, किंतु इनमें कोई चेष्टा न हुई। पिताका पुत्रपर मोह था, वे चाह रहे थे कि उनका पुत्र उन्हें वात्सल्य प्रदान करे, किंतु यह सम्भव नहीं हो रहा था।

पिता भी तो भगवान्की ज्ञानशक्तिके अवतार ठहरे। उन्होंने विचार किया कि ऐसे अद्वैतनिष्ठोंके ब्रह्मानन्दमें उल्लास लानेके लिये ही तो भगवान्का अवतार होता है। परमहंसीको श्रीपरमहंस बनानेके लिये ही तो भगवान् अवतार लेते हैं। यह विचार आते ही भगवान् व्यास घर लौट आये। उन्होंने अपने कोमल कण्ठवाले शिष्योंको आदेश दिया कि वे उनके पुत्रके पास जाकर 'बर्हापीडं०[1]' (श्रीमद्भा० १०।२१।५) श्लोकको सस्वर—लयके साथ गायें। शिष्योंने गुरुके आदेशका शीघ्र ही पालन किया। वे उनके पास जाकर इस श्लोकको स्वरके साथ गाने लगे। श्लोकका भाव यह है—'गोपाल कृष्ण वृन्दावनमें प्रवेश कर रहे हैं। उनके सिरपर मोरकी पाँख है। कानोंपर कनेरके पीले-पीले फूल, शरीरपर पीताम्बर और गलेमें सुगन्धित पाँच प्रकारके फूलोंकी बनी हुई वैजयन्तीमाला है। इस तरह उनका सुन्दर वेश अभिनयके लिये सजे हुए अभिनेताकी भाँति मालूम पड़ रहा है। सुन्दरताकी कोई सीमा नहीं है। वे चलते हैं तो मालूम पड़ता है कि मानो सुन्दरता ही बिखरती हुई चल रही है। उनके लाल-लाल ओठ अमृतसे लबालब भरे हुए हैं। वे इस अधरामृतसे मुरलीके छिद्रोंको भर रहे हैं। उनके पीछे-पीछे ग्वाल-बाल मस्तीमें भरे हुए भगवान्की लीलाओंको कह-सुन रहे हैं।'

इस श्लोकसे गोपाल कृष्णके असीम सौन्दर्यका मनोरम चित्रण हुआ है। यह श्लोक सुनते ही श्रीशुकदेवजीके शुद्ध हृदयमें गोपाल कृष्णकी सरस छवि मूर्त हो गयी। उसके बाद तो प्रेमानन्दकी इतनी हिलोरें उठने लगीं कि वे नाचने लगे। उन्होंने बच्चोंसे पूछा—'इतना सुन्दर श्लोक तुमने कहाँ सीखा है ? यह श्लोक सुनाकर तुमने मेरा बड़ा कल्याण किया

---

१. बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैर्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥

है। मेरे अन्तरके कण-कणमें आनन्दका उल्लास-ही-उल्लास भर दिया है।' शिष्योंने कहा—'तुम एक ही श्लोकमें इतने गद्गद हो गये। हमारे गुरुजीके पास ऐसे-ऐसे अठारह हजार श्लोक हैं। चलकर सुनो।' शुकदेवजी इस रसोल्लाससे इतने आकृष्ट हुए कि उन्होंने समूचे श्रीमद्भागवतको पितासे पढ़कर कण्ठ कर लिया।

यदि भगवान्‌का अवतार न होता तो श्रीशुकदेव-जैसे 'परमहंस'को 'श्रीपरमहंस' कौन बनाता?

श्रीमद्भागवतमें सापेक्षवादका उदाहरण

मनुके वंशमें रेवत नामके एक प्रतापी राजा हो गये हैं। उन्होंने समुद्रके भीतर एक नगरी बसायी थी, जिसका नाम कुशस्थली था। उनके बड़े पुत्रका नाम ककुद्मी था। ककुद्मीकी एक कन्या थी, जो रूप, सौन्दर्य और तेजमें अद्वितीय थी। वह अलौकिक देवाङ्गना-सी प्रतीत होती थी। उससे प्रभावित होकर राजा ककुद्मीने अपने प्रतापी पिताके नामपर कन्याका नाम रेवती रखा था। जब कन्या विवाहके योग्य हुई तो राजा ककुद्मीको ढूँढ़नेपर भी कन्याके अनुरूप कोई वर नहीं मिला। विवश होकर वे अपनी कन्याके साथ ब्रह्माजीके पास गये। उस समय ब्रह्माजीके यहाँ संगीतका कार्यक्रम चल रहा था। राजा अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे। उत्सवके अन्तमें उन्होंने ब्रह्माजीको नमस्कार कर अपना अभिप्राय निवेदन किया।

राजा ककुद्मीकी बात सुनकर ब्रह्माको हँसी आ गयी, बोले—'तुमने रेवतीके वरके लिये जिन लोगोंको चुन रखा था, वे सब-के-सब आज कालके गालमें समा गये हैं। उनके पुत्रों-पौत्रोंकी तो बात ही क्या है। अब उनके गोत्रोंके भी नाम नहीं सुनायी पड़ते। क्योंकि इसके बीच पृथ्वीपर (सत्ताईस) चतुर्युगीका समय बीत चुका है। अब ऐसा करो कि भगवान् बलरामके रूपमें पृथ्वीपर अवतीर्ण हैं, उनसे रेवतीका विवाह कर दो। वे इसके योग्य पति हैं।' राजा ककुद्मी ब्रह्माजीकी आज्ञाको शिरोधार्य कर पृथ्वीपर लौट आये। बलरामजीको कन्या सौंपकर ये कृतार्थ हो गये।

यदि आजका विश्व, विज्ञानके सापेक्षवादसे परिचित नहीं होता तो यह कथा इसकी बुद्धिमें नहीं उतरती। आईस्टीनने लिखा है कि ५ वर्षका कोई बालक यदि किरणकी गतिवाले विमानपर सवार हो जाय और वह विमान पाँच सौ वर्षतक आकाशमें क्रियाशील रहे और बादमें पृथ्वीपर उतरे तो इस बच्चेकी आयु पाँच वर्षकी ही रहेगी। क्योंकि उस स्थितिमें काल उसपर प्रभाव नहीं-सा डाल पाता है। शांकर-वेदान्तमें बतलाया गया है कि 'ब्रह्म निरपेक्ष है, इसके अतिरिक्त विश्वकी सारी वस्तुएँ सापेक्ष हैं।'

इस जन्ममें किसी तरहकी आसक्ति न हो जाय। परिवारका बन्धन कठिन बन्धन होता है। परिवारका कोई सदस्य इनसे स्नेह न करे, इसके लिये कभी-कभी वे पागलपनका भी अभिनय करते थे। कभी-कभी अनुचित कार्य भी कर बैठते थे। खेलते हुए बच्चोंको सरयूमें फेंक देते थे। यह कितना अशोभन कार्य था ? परिवारवाले उन्हें त्याग दें, इसके लिये ऐसा कर्म भी असमंजसको करना पड़ा था। इसका परिणाम यह हुआ कि सारी प्रजा और सारा परिवार असमंजससे अप्रसन्न हो गया। पिताको भी पुत्र-स्नेहकी तिलाञ्जलि देनी पड़ी। सबने मिलकर उन्हें घरसे निकाल बाहर कर दिया।

राजकुमार असमंजस यही चाहते थे। वे प्रसन्नतासे धूनी रमाने चल दिये। योगी किसीकी हत्या नहीं करता। असमंजसने वन जानेके पहले सभी बच्चोंको जीवित कर अपने पिताके चरणोंमें डाल दिया। बच्चे प्रसन्न थे। वे राजाका आशीर्वाद लेकर अपने-अपने परिवारमें मिल गये। इस अद्भुत घटनाको देखकर चारों ओर विस्मयकी लहर फैल गयी। असमंजसपर लोगोंका जो आक्रोश था, वह श्रद्धामें बदल गया। पिताके पश्चात्तापकी कोई सीमा न थी, सब लोग असमंजसकी खोजमें जुट गये। लेकिन योगीको कौन पा सकता है? असमंजस भगवान्में युक्त हो गये थे। मानव-जीवनकी यही तो सार्थकता है ?

(ला० बि० मि०)

दुःख-दर्दकी माँग

(महामानव रन्तिदेवकी कथा)

महाराज रन्तिदेव मनुके वंशमें उत्पन्न हुए थे, इनके पिताका नाम सुकृति था। महाराज रन्तिदेवमें मानवता कूट-कूट कर भरी हुई थी। ये प्राणिमात्रमें भगवान्को देखा करते थे। सभीके लिये इनके हृदयमें करुणाका सागर सदा लहराता रहता था। दैवयोगसे इनका परिवार भी इन्हींकी तरह उदार बन गया था। परिवारका प्रत्येक सदस्य स्वयं न खा-पीकर दूसरेके खिलानेका ही अभ्यस्त हो गया था। अपने दुःख-दर्दका उन्हें कभी ध्यान न होता था। दूसरेके दुःख-दर्द मिटानेसे ही उन्हें संतोष होता था।

एक बार पूरे परिवारको अड़तालीस दिनतक फाँके लगाने पड़े। किसीको जलतक नहीं मिला था। भूख और प्याससे परिवार काँप रहा था। उनचासवें दिन प्रातःकाल ही खीर-हलवा मिला। ज्यों ही उन लोगोंने भोजन करना चाहा, त्यों ही अतिथिके रूपमें एक ब्राह्मण आ गया। अतिथिको आया देख लोग संतुष्ट हो गये। मानो उनकी भूख-प्यास ही मिट गयी। बड़ी श्रद्धा और आदरसे भोजन कराया गया। ब्राह्मण देवताके चले जानेके बाद बचे हुए अन्नको रन्तिदेवने आपसमें बाँट लिया। ज्यों ही उन्होंने भोजन करना चाहा, त्यों ही एक शूद्र अतिथि आ गया। रन्तिदेवने इस अतिथिको भी पूर्ण संतुष्ट किया, उन्हें मालूम पड़ा कि भगवान्ने ही उनका भोजन कर लिया है। वे भगवान्के स्निग्ध स्मरणमें विभोर हो गये। शूद्र अतिथिके जाते ही वहाँ एक अतिथि और आ गया। उसके पास बहुत कुत्ते थे। उसने कहा—'मैं बहुत भूखा हूँ, मेरे कुत्ते भी बहुत भूखे हैं। कुछ खानेको दीजिये।' रन्तिदेवने जो कुछ बचा था, सब-का-सब उस भूखे अतिथिको दे दिया और भगवन्मय कुत्तों और अतिथिको प्रेमसे प्रणाम किया। अब केवल जल बच रहा था, वह भी केवल एक ही व्यक्तिके पीने भरके लिये था। वे आपसमें बाँट कर पीना ही चाह रहे थे कि एक चाण्डाल आ पहुँचा और कहा 'मैं प्यासा हूँ, मुझे जल दे दीजिये।' चाण्डालकी वाणी करुणासे भरी हुई थी। मारे प्यासके उसके मुखसे बोली नहीं निकल रही थी। उसकी दशा देखकर रन्तिदेवका हृदय दयासे आर्द्र हो गया। उन्होंने भगवान्से प्रार्थना की कि 'भगवन्! मुझे सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित कर दो, जिससे उनका सब दुःख-दर्द मैं ही झेल लूँ और वे सुखी बने रहें।'

जल पीनेसे बेचारेके जीवनकी रक्षा हो गयी। महाराजके भूख-प्यासकी पीड़ा, शिथिलता, दीनता, मोह आदि सब जाते रहे।

मानवताके इतिहासमें यह अनूठी घटना है। इस गाथाको लोक और परलोकमें आज भी लोग आदरसे गाते हैं। महाराज रन्तिदेवने मानवताके मस्तकको ऊँचा किया है। भारतको इससे गर्व है।

(ला० वि० मि०)

भगवन्नाम समस्त पापोंको भस्म कर देता है

(यमदूतोंका नया अनुभव)

कन्नौजके आचारच्युत एवं जातिच्युत ब्राह्मण अजामिलने कुलटा दासीको पत्नी बना लिया था। न्याय-अन्यायसे जैसे भी धन मिले, वैसे प्राप्त करना और उस दासीको संतुष्ट करना ही उसका काम हो गया था। माता-पिताकी सेवा और अपनी विवाहिता साध्वी पत्नीका पालन भी कर्तव्य है, यह बात उसे सर्वथा भूल चुकी थी। उनकी तो उसने खोज-खबर ही नहीं ली। न रहा आचार, न रहा संयम, न रहा धर्म। खाद्य-अखाद्यका विचार गया और करणीय-अकरणीयका ध्यान भी जाता रहा। अजामिल ब्राह्मण नहीं रहा, म्लेच्छप्राय हो गया। पापरत पामर जीवन हो गया उसका और महीने-दो-महीने नहीं पूरा जीवन ही उसका ऐसे ही पापोंमें बीता।

उस कुलटा दासीसे अजामिलके कई संतानें हुईं। पहलेका किया पुण्य सहायक हुआ, किसी सत्पुरुषका उपदेश काम कर गया। अपने सबसे छोटे पुत्रका नाम अजामिलने 'नारायण' रखा। बुढ़ापेकी अन्तिम संतानपर पिताका अपार मोह होता है। अजामिलके प्राण जैसे उस छोटे बालकमें ही बसते थे। वह उसीके प्यार-दुलारमें लगा रहता था। बालक कुछ देरको भी दूर हो जाय तो अजामिल व्याकुल होने लगता था। इसी मोहग्रस्त-दशामें जीवनकाल समाप्त हो गया। मृत्युकी घड़ी आ गयी। यमराजके भयंकर दूत हाथोंमें पाश लिये आ धमके और अजामिलके सूक्ष्म शरीरको उन्होंने बाँध लिया। उन विकराल दूतोंको देखते ही भयसे व्याकुल अजामिलने पास खेलते अपने पुत्रको कातर स्वरमें पुकारा—'नारायण! नारायण!'

'नारायण!' एक मरणासन्न प्राणीकी कातर पुकार सुनी सदा सर्वत्र अप्रमत्त, अपने स्वामीके जनोंकी रक्षामें तत्पर रहनेवाले भगवत्पार्षदोंने और वे दौड़ पड़े। यमदूतोंका पाश उन्होंने छिन्न-भिन्न कर दिया। बलपूर्वक दूर हटा दिया यमदूतोंको अजामिलके पाससे।

बेचारे यमदूत हक्के-बक्के देखते रह गये। उनका ऐसा अपमान कहीं नहीं हुआ था। उन्होंने इतने तेजस्वी देवता भी नहीं देखे थे। सब-के-सब इन्दीवर-सुन्दर, कमललोचन, रत्नाभरणभूषित, चतुर्भुज, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म लिये, अमित-तेजस्वी इन अद्भुत देवताओंसे यमदूतोंका कुछ वश भी नहीं चल सकता था। साहस करके वे भगवत्पार्षदोंसे बोले—'आपलोग कौन हैं? हम तो धर्मराजके सेवक हैं। उनकी आज्ञासे पापीको उनके समक्ष ले जाते हैं। जीवके पाप-पुण्यके फलका निर्णय तो हमारे स्वामी संयमनी-नाथ ही करते हैं। आप हमें अपने कर्तव्यपालनसे क्यों रोकते हैं?'

भगवत्पार्षदोंने तनिक फटकार दिया—'तुम धर्मराजके सेवक सही हो, किंतु तुम्हें धर्मका ज्ञान ही नहीं है। जानकर या अनजानमें ही जिसने 'भगवान् नारायण' का नाम ले लिया, वह पापी रहा कहाँ? संकेतसे, हँसीमें, छलसे, गिरनेपर या और किसी भी बहाने लिया गया भगवन्नाम जीवके जन्म-जन्मान्तरके पापोंको वैसे ही भस्म कर देता है, जैसे अग्निकी छोटी चिनगारी सूखी लकड़ियोंकी महान् ढेरीको भस्म कर देती है। इस पुरुषने पुत्रके बहाने सही, नाम तो नारायण प्रभुका लिया है, फिर इसके पाप रहे कहाँ? तुम एक निष्पापको कष्ट देनेकी धृष्टता मत करो।'

यमदूत क्या करते, वे अजामिलको छोड़कर यमलोक आ गये और अपने स्वामीके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उन्होंने उन धर्मराजसे ही पूछा—'स्वामिन्! क्या विश्वका आपके अतिरिक्त भी कोई शासक है? हम एक पापीको लेने गये थे। उसने अपने पुत्र नारायणको पुकारा, किंतु उसके 'नारायण' कहते ही वहाँ कई तेजोमय सिद्ध पुरुष आ धमके। उन सिद्धोंने आपके पाश तोड़ डाले और हमारी बड़ी दुर्गति की। वे अन्ततः हैं कौन, जो निर्भय आपकी भी अवज्ञा करते हैं?'

दूतोंकी बात सुनकर यमराजने हाथ जोड़कर किसी अलक्ष्यको मस्तक झुकाया। वे बोले—'दयामय भगवान् नारायण मेरा अपराध क्षमा करें। मेरे अज्ञानी दूतोंने उनके जनकी अवहेलना की है।' इसके पश्चात् वे दूतोंसे बोले—'सेवको! समस्त जगत्के जो आदिकारण हैं, सृष्टि-स्थिति-संहार जिनके भ्रूभङ्गमात्रसे होता है, वे भगवान् नारायण हैं

सर्वेश्वर हैं। मैं तो उनका क्षुद्रतम सेवकमात्र हूँ। उन नारायण भगवान्‌के नित्य सावधान पार्षद सदा-सर्वत्र उनके जनोंकी रक्षाके लिये घूमते रहते हैं। मुझसे और दूसरे समस्त संकटोंसे वे प्रभुके जनोंकी रक्षा करते हैं।'
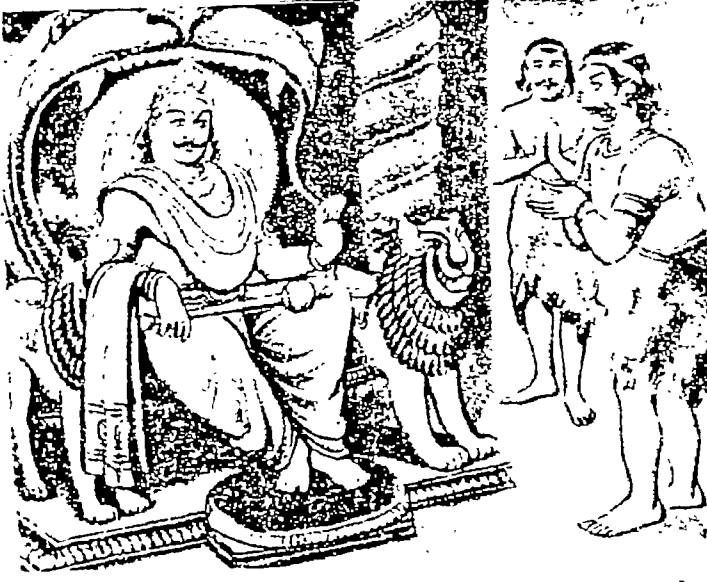
यमराजने बताया—'तुमलोग केवल उसी पापी जीवको लेने जाया करो, जिसकी जीभसे कभी किसी प्रकार भगवन्नाम न निकला हो, जिसने कभी भगवत्कथा न सुनी हो, जिसके पैर कभी भगवान्‌के पावन लीलास्थलोंमें न गये हों अथवा जिसके हाथोंने कभी भगवान्‌के श्रीविग्रहकी पूजा न की हो।' यमदूतोंने अपने स्वामीकी यह आज्ञा उसी दिन भलीभाँति रटकर स्मरण कर ली, क्योंकि इसमें प्रमाद होनेका परिणाम वे भोग चुके थे।

यमदूतोंके अदृश्य होते ही अजामिलकी चेतना सजग हुई, किंतु वह कुछ पूछे या बोले, इससे पूर्व ही भगवत्पार्षद भी अदृश्य हो गये। भले भगवत्पार्षद अदृश्य हो जायँ, किंतु अजामिल उनका दर्शन कर चुका था। यदि एक क्षणके कुसङ्गने उसे पापके गड्ढेमें ढकेल दिया था तो एक क्षणके सत्सङ्गने उसे उठाकर ऊपर खड़ा कर दिया। उसका हृदय बदल चुका था। आसक्ति नष्ट हो चुकी थी। अपने अपकर्मोंके लिये घोर पश्चात्ताप उसके हृदयमें जाग्रत् हो गया।

तनिक सावधान होते ही अजामिल उठा। अब जैसे इस परिवार और इस संसारसे उसका कोई सम्बन्ध ही न था। बिना किसीसे कुछ कहे वह घरसे निकला और चल पड़ा। धीरे-धीरे वह हरिद्वार पहुँच गया। वहाँ भगवती पतितपावनी भागीरथीमें नित्य स्नान और उनके तटपर ही आसन लगाकर भगवान्‌का सतत भजन—यही उसका जीवन बन गया।

आयुको तो समाप्त होना ही ठहरा, किंतु जब अजामिलकी आयु समाप्त हुई, वह मरा नहीं। वह तो देह त्यागकर मृत्युके चंगुलसे सदाको छूट गया। भगवान्‌के वे ही पार्षद विमान लेकर पधारे और उस विमानमें बैठकर अजामिल भगवद्धाम चला गया।

कथा-श्रवणसे भगवत्प्राप्ति

य एवमेतां हरिमेधसो हरेः कथां सुभद्रां कथनीयमायिनः।
शृण्वीत भक्त्या श्रवयेत वोशतीं जनार्दनोऽस्याशु हृदि प्रसीदति॥
तस्मिन् प्रसन्ने सकलाशिषां प्रभो किं दुर्लभं ताभिरलं लवात्मभिः।
अनन्यदृष्ट्या भजतां गुहाशयः स्वयं विधत्ते स्वगतिं परः पराम्॥
को नाम लोके पुरुषार्थसारवित् पुराकथानां भगवत्कथासुधाम्।
आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहामहो विरज्येत विना नरेतरम्॥

(मैत्रेयजी कहते हैं)—'विदुरजी! भगवान्‌के लीलामय चरित्र अत्यन्त कीर्तनीय हैं और उनमें लगी हुई बुद्धि सब प्रकारके पाप-तापोंको दूर कर देती है। जो पुरुष उनकी इस मङ्गलमयी मञ्जुल कथाको भक्तिभावसे सुनता या सुनाता है, उसके प्रति भक्तवत्सल भगवान् अन्तस्तलसे बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान् तो सभी कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ हैं, उनके प्रसन्न होनेपर संसारमें क्या दुर्लभ है। किंतु उन तुच्छ कामनाओंकी आवश्यकता ही क्या है? जो लोग अनन्यभावसे भजन करते हैं, उन्हें तो वे अन्तर्यामी परमात्मा स्वयं अपना परम पद ही दे देते हैं। अरे! संसारमें पशुओंको छोड़कर अपने पुरुषार्थका सार जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष होगा, जो आवागमनसे छुड़ा देनेवाली भगवान्‌की प्राचीन (पौराणिक) कथाओंमेंसे किसी भी अमृतमयी कथाका अपने कर्णपुटोंसे एक बार पान करके फिर उनकी ओरसे मन हटा लेगा।'

देवीभागवतपुराण

पुराणोंके गणना-क्रममें पाँचवाँ महापुराण श्रीमद्भागवत कहा गया है। विकल्पसे कुछ पुराण इसी संख्यापर देवीभागवतको भी ग्रहण करते हैं। इसकी प्रतिपाद्या देवी महामाया हैं। भगवान् वेदव्यासकृत इस महापुराणमें 'सारस्वत' कल्पका पौराणिक प्रसङ्ग संगृहीत है। 'देवीभागवत' पुराणवाङ्मयका शिरोमणि-रत्न है। श्रीमद्भागवतके समान यह पुराण भी १८,००० श्लोकोंसे युक्त और द्वादश स्कन्धोंमें निबद्ध है। मोक्ष और भोग प्रदान करनेवाले इस महापुराणको महर्षि वेदव्यासने स्वयं परीक्षित्-पुत्र महाराज जनमेजयको सुनाया था। प्रधानतया यह पुराण भगवती पराशक्तिकी महिमापर आधृत है। इसमें अन्य रोचक एवं महत्त्वपूर्ण प्रसङ्गोंका समावेश भी यथावसर आया है। इस पुराणमें देवी भगवतीका जो वर्णन है, उसे हृदयङ्गम करनेके लिये अन्य किसी दर्शनकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। भगवती देवी स्वयं परम तत्त्व हैं। (दे० भा० १।२।१९।२०)

शक्तिकी आराधना स्वतः सिद्ध है। जगत्में साधना ही आराधनाके रूपमें अभिव्यक्त होती है। ज्ञान, क्रिया आदि इसके विविध रूप हैं। विभिन्न निदर्शनोंके द्वारा ये सारे साधनके रूपमें देवीभागवतमें वर्णित हैं। तत्त्वतः देवी भगवती सच्चिदानन्दमयी हैं। देवी भगवतीके माध्यम़से इस तत्त्वकी निष्ठाको ग्रहण करनेपर लक्ष्यकी पूर्ति होती है। देवीभागवतपुराणमें स्थान-स्थानपर देवीके विविध रूपों एवं उनकी आराधनाका विवरण उपलब्ध होता है। मूल प्रकृतिसे आरम्भ होकर यह वर्णन मणिद्वीपकी देवी भुवनेश्वरीतक पहुँचता है। नवम स्कन्धके प्रथम श्लोकमें देवीके विविध रूपोंमेंसे दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री—इन पाँच रूपोंको प्रधानता दी गयी है। इस पुराणके अन्तिम चार स्कन्धोंमें इनकी विस्तृत कथा है।

गङ्गा, तुलसी, षष्ठी, मङ्गलचण्डिका, काली, स्वाहा, स्वधा, पुष्टि, तुष्टि, सम्पत्ति आदि देवीके ही रूप हैं। इस प्रकार देवीभागवतपुराणके अनुसार जगत्में परिदृश्यमान शक्तियोंके रूपमें देवी भगवतीका ही विस्तार है। अतएव इसी दृष्टिसे इसमें शक्तिके इन विविध रूपोंकी उपासनाका प्रतिपादन किया गया है। इसके अतिरिक्त इस महापुराणमें अन्य बहुत-से रोचक प्रसंग एवं आख्यान संकलित हैं। देवीभागवतपुराणके श्रवणमें मास या दिवस आदिका कोई विशेष नियम नहीं है। मनुष्य सर्वदा इसका श्रवण कर सकते हैं। आश्विन, चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठके महीनों तथा नवरात्रोंमें सुननेसे यह पुराण विशेष फलदायक माना गया है। नवरात्रमें इसका अनुष्ठान क़रनेपर मनुष्य सभी पुण्य-कर्मोंका फल प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये इसे 'नवाह-यज्ञ' भी कहा गया है। महान् तप, व्रत, तीर्थ, दान, हवन और यज्ञ आदि करनेपर भी मनुष्योंको जो फल दुर्लभ है, वह भी इससे सुलभ हो जाता है। महामारी, हैजा आदि भयंकर बीमारियाँ तथा अनेकों उत्पात भी देवीभागवतपुराणके श्रवणमात्रसे ही शान्त हो जाते हैं। इस पुराणका भक्तिपूर्वक श्रवण-मनन करनेसे मनुष्यको अपने लक्ष्यकी प्राप्ति हो जाती है तथा यज्ञ-पूर्ति होनेपर मानव जीवन्मुक्त हो जाता है।

कथा-आख्यान—

सत्यव्रत भक्त उतथ्य

प्राचीन कालमें कोसलदेशमें उतथ्यका जन्म एक विद्वान् ब्राह्मणके घर हुआ था। उसके पिताका नाम देवदत्त एवं माताका नाम रोहिणी था। उतथ्यके आठवें वर्षमें प्रवेश करते ही पिता देवदत्तने शुभ दिन एवं शुभ योग देखकर उसका यज्ञोपवीत-संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न करवाया। समयपर वेदाध्ययनके लिये उतथ्यको गुरुदेवके यहाँ भेजा गया, परंतु वह ऐसा मूर्ख था कि एक शब्द भी उच्चारण नहीं कर सकता था। देवदत्तने अपने बालकको कई प्रकारसे पढ़ानेका प्रयत्न किया, परंतु सभी व्यर्थ सिद्ध हुए। उतथ्यकी बुद्धि किसी भी रीतिसे रास्तेपर नहीं आयी।

× × ×

देवदत्तको पूर्वजन्मकी बात स्मरण हो आयी। उस जन्मों

वे सभी प्रकारसे सम्पन्न थे, परंतु उनके कोई संतान न थी। इस कारण दम्पतिके मनमें बड़ा दुःख था। पुत्र-प्राप्तिके लिये देवदत्तने विधिपूर्वक पुत्रेष्टि-यागका आयोजन किया। सामवेदके गायक मुनिवर गोभिल यज्ञके उद्‌गाता थे। वे यज्ञमें स्वरित स्वरसे मन्त्रगान कर रहे थे। बार-बार साँस लेनेसे उनके मन्त्रोच्चारणमें कुछ स्वर-भङ्ग हो गया। स्वर-भङ्ग होते देखकर देवदत्तके मनमें आशङ्का हो गयी कि कहीं मेरी संतान-प्राप्तिकी मनोऽभिलाषामें बाधा न उत्पन्न हो जाय। इस आशङ्काने उनके विवेकको नष्ट कर दिया और वे मुनिवरपर कुपित होकर बोल उठे—'मुनिवर ! आप महान् मूर्ख हैं, मेरे इस सकाम यज्ञमें आपने स्वरहीन मन्त्र क्यों उच्चारण किया ?' यह सुनकर गोभिल मुनि क्रोधाविष्ट हो गये और बोले—'देवदत्त ! तुम्हें शब्दशून्य नितान्त मूर्ख पुत्र प्राप्त होगा। तुमने मुझे अकारण कटु शब्द कहा है। श्वास-प्रश्वास लेते एवं छोड़ते समय यदि स्वरभङ्ग हो जाय तो इसमें मेरा क्या दोष है ?' महात्माकी उपर्युक्त बातें सुनकर देवदत्तको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने सोचा कि वेदहीन मूर्ख पुत्रको लेकर मैं क्या करूँगा। वेदहीन ब्राह्मण शूद्रके समान होता है।

देवदत्त यह भी जानते थे कि वेदज्ञ ब्राह्मण जिसका अन्न खाकर वेदपाठ करते हैं, उसके पूर्वज स्वर्गमें रहकर अत्यन्त आनन्दके साथ क्रीडा करते हैं। मूर्ख ब्राह्मण सभी कर्मकाण्डोंके सम्पादनमें अनधिकारी होता है। यह सब सोच-सोचकर देवदत्त गोभिलजीके चरणोंमें पड़कर क्षमा-याचना करने लगे। देवदत्त बोले—'मुनिवर ! मुझे क्षमा करें, मुझपर प्रसन्न हों, मैं मूर्ख पुत्रको लेकर क्या करूँगा।'

महात्माओंका क्रोध क्षणभरमें शान्त हो जाता है। जलका स्वाभाविक गुण है शीतल रहना। जल आगके संयोगसे भले ही गरम हो जाय, परंतु आगका संयोग हटते ही वह तुरंत शीतल हो जाता है। उसी तरह गोभिल मुनि तुरंत शान्त हो गये एवं प्रसन्न होकर बोले—'देवदत्त ! तुम्हारा पुत्र एक बार मूर्ख भले ही हो, परंतु बादमें वह बहुत बड़ा विद्वान् होगा।'

× × ×

देवदत्तके अथक प्रयासके बाद भी उतथ्यकी मूर्खतामें कोई अन्तर नहीं आया। यहाँतक कि देवदत्त बारह वर्षोंतक उसे पढ़ानेका प्रयास करते रहे, उसके उपरान्त भी उसे संध्या-वन्दन करनेकी विधितक मालूम न हो सकी। धीरे-धीरे सभी लोगोंमें इस बातका प्रचार हो गया कि उतथ्य मूर्ख है। जहाँ कहीं भी वह जाता, लोग उसका उपहास करते। बन्धु-बान्धव, सारी जनता उसकी निन्दा करने लगी। अन्तमें निराश होकर उसके माता-पिता भी उसे कोसते हुए कहने लगे—'यदि उतथ्य अन्धा या पङ्गु रहता तो ठीक था, परंतु मूर्ख पुत्र तो बिलकुल व्यर्थ है।' बन्धु-बान्धवों एवं माता-पिता आदिकी इन सब कटूक्तियोंसे ऊबकर एक दिन उतथ्य वनमें चला गया। जाह्नवीके पावन तटपर एक पवित्र स्थानपर उसने एक कुटिया बना ली और वहीं रहने लगा। वह वनके फल-मूल खाकर अपना जीवन व्यतीत करता था। उसने अपने मन एवं इन्द्रियोंको वशमें करके 'कभी भी झूठ न बोलनेका' उत्तम नियम ले रखा था। इस प्रकार वह उस सुरम्य आश्रममें ब्रह्मचर्यपूर्वक अपना समय व्यतीत करने लगा।

उतथ्य न वेदाध्ययन जानता था, न किसी प्रकारका जप-तप ही। देवताओंके ध्यान एवं आराधनका भी उसे ज्ञान न था। आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और भूत-शुद्धि करनेकी विधिसे भी वह बिलकुल अनभिज्ञ था तथा कीलक मन्त्र एवं गायत्री-जप करना भी नहीं सीख पाया था। भोजनके समय प्राणाग्निहोत्र, बलिवैश्वदेव एवं अतिथिबलि और हवन आदिके नियमोंका भी उसे ज्ञान न था। वह प्रातःकाल उठता, दातौन करता और उसके पश्चात् बिना किसी मन्त्रके बोले ही गङ्गाकी पवित्र धारामें स्नान करता था। मध्याह्नकालमें वह जंगलसे फल एकत्र करके ले आता और इच्छानुसार उदरकी पूर्ति कर लेता। अच्छे-बुरे फलोंका भी उसे ज्ञान नहीं था। वह कभी किसीका अहित नहीं करता था और न अनुचित कर्ममें ही उसकी प्रवृत्ति थी। उसमें एक अनुपम दिव्य गुण था कि वह कभी भी असत्य-भाषण नहीं करता था, एक भी मिथ्या शब्द उसके मुखसे नहीं निकलता था—यह उसका अटूट व्रत था, जिसका वह सावधानीसे पालन करता था।

सत्यमें महान् तेज होता है। सदैव सत्य बोलनेसे वाक्-सिद्धि स्वतः ही प्राप्त हो जाती है।

सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद्विद्यते परम्।

'सत्य बोलना श्रेष्ठ है, सत्यसे उत्तम और कुछ भी नहीं है।'

देवीभागवतपुराण

पुराणोंके गणना-क्रममें पाँचवाँ महापुराण श्रीमद्भागवत कहा गया है। विकल्पसे कुछ पुराण इसी संख्यापर देवीभागवतको भी ग्रहण करते हैं। इसकी प्रतिपाद्या देवी महामाया हैं। भगवान् वेदव्यासकृत इस महापुराणमें 'सारस्वत' कल्पका पौराणिक प्रसङ्ग संगृहीत है। 'देवीभागवत' पुराणवाङ्मयका शिरोमणि-रत्न है। श्रीमद्भागवतके समान यह पुराण भी १८,००० श्लोकोंसे युक्त और द्वादश स्कन्धोंमें निबद्ध है। मोक्ष और भोग प्रदान करनेवाले इस महापुराणको महर्षि वेदव्यासने स्वयं परीक्षित्-पुत्र महाराज जनमेजयको सुनाया था। प्रधानतया यह पुराण भगवती पराशक्तिकी महिमापर आधृत है। इसमें अन्य रोचक एवं महत्त्वपूर्ण प्रसङ्गोंका समावेश भी यथावसर आया है। इस पुराणमें देवी भगवतीका जो वर्णन है, उसे हृदयङ्गम करनेके लिये अन्य किसी दर्शनकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। भगवती देवी स्वयं परम तत्त्व हैं। (दे० भा० १।२।१९।२०)

शक्तिकी आराधना स्वतः सिद्ध है। जगत्में साधना ही आराधनाके रूपमें अभिव्यक्त होती है। ज्ञान, क्रिया आदि इसके विविध रूप हैं। विभिन्न निदर्शनोंके द्वारा ये सारे साधनके रूपमें देवीभागवतमें वर्णित हैं। तत्त्वतः देवी भगवती सच्चिदानन्दमयी हैं। देवी भगवतीके माध्यमसे इस तत्त्वकी निष्ठाको ग्रहण करनेपर लक्ष्यकी पूर्ति होती है। देवीभागवतपुराणमें स्थान-स्थानपर देवीके विविध रूपों एवं उनकी आराधनाका विवरण उपलब्ध होता है। मूल प्रकृतिसे आरम्भ होकर यह वर्णन मणिद्वीपकी देवी भुवनेश्वरीतक पहुँचता है। नवम स्कन्धके प्रथम श्लोकमें देवीके विविध रूपोंमेंसे दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री—इन पाँच रूपोंको प्रधानता दी गयी है। इस पुराणके अन्तिम चार स्कन्धोंमें इनकी विस्तृत कथा है।

गङ्गा, तुलसी, षष्ठी, मङ्गलचण्डिका, काली, स्वाहा, स्वधा, पुष्टि, तुष्टि, सम्पत्ति आदि देवीके ही रूप हैं। इस प्रकार देवीभागवतपुराणके अनुसार जगत्में परिदृश्यमान शक्तियोंके रूपमें देवी भगवतीका ही विस्तार है। अतएव इसी दृष्टिसे इसमें शक्तिके इन विविध रूपोंकी उपासनाका प्रतिपादन किया गया है। इसके अतिरिक्त इस महापुराणमें अन्य बहुत-से रोचक प्रसंग एवं आख्यान संकलित हैं। देवीभागवतपुराणके श्रवणमें मास या दिवस आदिका कोई विशेष नियम नहीं है। मनुष्य सर्वदा इसका श्रवण कर सकते हैं। आश्विन, चैत्र, वैशाख और ज्येष्ठके महीनों तथा नवरात्रोंमें सुननेसे यह पुराण विशेष फलदायक माना गया है। नवरात्रमें इसका अनुष्ठान करनेपर मनुष्य सभी पुण्य-कर्मोंका फल प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये इसे 'नवाह-यज्ञ' भी कहा गया है। महान् तप, व्रत, तीर्थ, दान, हवन और यज्ञ आदि करनेपर भी मनुष्योंको जो फल दुर्लभ है, वह भी इससे सुलभ हो जाता है। महामारी, हैजा आदि भयंकर बीमारियाँ तथा अनेकों उत्पात भी देवीभागवतपुराणके श्रवणमात्रसे ही शान्त हो जाते हैं। इस पुराणका भक्तिपूर्वक श्रवण-मनन करनेसे मनुष्यको अपने लक्ष्यकी प्राप्ति हो जाती है तथा यज्ञ-पूर्ति होनेपर मानव जीवन्मुक्त हो जाता है।

कथा-आख्यान—

सत्यव्रत भक्त उतथ्य

प्राचीन कालमें कोसलदेशमें उतथ्यका जन्म एक विद्वान् ब्राह्मणके घर हुआ था। उसके पिताका नाम देवदत्त एवं माताका नाम रोहिणी था। उतथ्यके आठवें वर्षमें प्रवेश करते ही पिता देवदत्तने शुभ दिन एवं शुभ योग देखकर उसका यज्ञोपवीत-संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न करवाया। समयपर वेदाध्ययनके लिये उतथ्यको गुरुदेवके यहाँ भेजा गया, परंतु वह ऐसा मूर्ख था कि एक शब्द भी उच्चारण नहीं कर सकता था। देवदत्तने अपने बालकको कई प्रकारसे पढ़ानेका प्रयत्न किया, परंतु सभी व्यर्थ सिद्ध हुए। उतथ्यकी बुद्धि किसी भी रीतिसे रास्तेपर नहीं आयी।

× × ×

देवदत्तको पूर्वजन्मकी बात स्मरण हो आयी। उस जन्ममें

जो वाणी बोलती है, उसने देखा नहीं, फिर अपना कार्य साधनेकी धुनमें लगे हुए तुम क्यों बार-बार पूछ रहे हो ?'

मुनिवर उतथ्यके यों कहनेपर उस पशुघाती व्याधको निराश होकर खाली हाथ लौटना पड़ा।

तदनन्तर उतथ्यने सारस्वत बीजमन्त्र 'ऐं' का विधिवत् जाप किया। उनका यशोगान एवं उनकी विद्याकी प्रभा चारों ओर फैल गयी। जिन पिताने उन्हें त्याग दिया था, वे ही उन्हें बड़े आदरके साथ घर ले गये। वाल्मीकिजीकी तरह ही उतथ्य मुनि एक महान् कवि बन गये। यह सब सत्यकी महिमा एवं भगवती सरस्वती देवीकी कृपाका फल था। (ह० कृ० दु०)

सुदर्शनपर जगदम्बाकी कृपा

अयोध्यामें भगवान् रामसे १५वीं पीढ़ी बाद ध्रुवसंधि नामके राजा हुए। उनके दो स्त्रियाँ थीं। पट्टमहिषी थी कलिङ्गराज वीरसेनकी पुत्री मनोरमा और छोटी रानी थी उज्जयिनीनरेश युधाजित्की पुत्री लीलावती। मनोरमाके पुत्र हुए सुदर्शन और लीलावतीके शत्रुजित्। महाराजकी दोनोंपर ही समान दृष्टि थी। दोनों राजपुत्रोंका समान रूपसे लालन-पालन होने लगा।

इधर महाराजको आखेटका व्यसन कुछ अधिक था। एक दिन वे शिकारमें एक सिंहके साथ भिड़ गये, जिसमें सिंहके साथ स्वयं भी स्वर्गगामी हो गये। मन्त्रियोंने उनकी पारलौकिक क्रिया करके सुदर्शनको राजा बनाना चाहा। इधर शत्रुजित्के नाना युधाजित्को इस बातकी खबर लगी तो वे एक बड़ी सेना लेकर इसका विरोध करनेके लिये अयोध्यामें आ डटे। उधर कलिङ्गनरेश वीरसेन भी सुदर्शनके पक्षमें आ गये। दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। कलिङ्गाधिपति मारे गये। अब रानी मनोरमा डर गयी। वह सुदर्शनको लेकर एक धाय तथा महामन्त्री विदल्लके साथ भागकर महर्षि भरद्वाजके आश्रममें प्रयाग पहुँच गयी। युधाजित्ने अयोध्याके सिंहासनपर शत्रुजित्को अभिषिक्त किया और सुदर्शनको मारनेके लिये वे भरद्वाजके आश्रमपर पहुँचे; पर मुनिके भयसे वहाँसे उन्हें भागना पड़ा।

एक दिन भरद्वाजके शिष्यगण महामन्त्रीके सम्बन्धमें कुछ बातें कर रहे थे। कुछने कहा कि विदल्ल क्लीब (नपुंसक) है। दूसरोंने भी कहा—'यह सर्वथा क्लीब है।' सुदर्शन अभी बालक ही था। उसने बार-बार जो उनके मुँहसे क्लीब-क्लीब सुना तो स्वयं भी 'क्ली-क्ली' करने लगा। पूर्वपुण्यके कारण वह कालीबीजके रूपमें अभ्यासमें परिणत हो गया। अब वह सोते, जागते, खाते, पीते, 'क्ली-क्ली' रटने लगा। इधर महर्षिने उसके क्षत्रियोचित संस्कारादि भी कर दिये और थोड़े ही दिनोंमें वह भगवती तथा ऋषिकी कृपासे शस्त्र-शास्त्रादि सभी विद्याओंमें अत्यन्त निपुण हो गया। एक दिन वनमें खेलनेके समय उसे देवीकी दयासे अक्षय तूणीर तथा दिव्य धनुष भी पड़ा मिल गया। अब सुदर्शन भगवतीकी कृपासे पूर्ण शक्ति-सम्पन्न हो गया।

इधर काशीमें उस समय राजा सुबाहु राज्य करते थे। उनकी कन्या शशिकला बड़ी विदुषी तथा देवीभक्ता थी। भगवतीने उसे स्वप्नमें आज्ञा दी कि 'तू सुदर्शनको अपने पतिरूपमें वरण कर ले। वह तेरी समस्त कामनाओंको पूर्ण करेगा।' शशिकलाने मनमें उसी समय सुदर्शनको पतिके रूपमें स्वीकार कर लिया। प्रातःकाल उसने अपना निश्चय माता-पिताको सुनाया। पिताने लड़कीको जोरोंसे डाँटा और एक असहाय वनवासीके साथ सम्बन्ध जोड़नेमें अपना अपमान समझा। उन्होंने अपनी कन्याके स्वयंवरकी तैयारी आरम्भ की। उन्होंने उस स्वयंवरमें सुदर्शनको आमन्त्रित भी नहीं किया; पर शशिकला भी अपने मार्गपर दृढ़ थी। उसने सुदर्शनको एक ब्राह्मणद्वारा देवीका संदेश भेज दिया। सभी राजाओंके साथ वह भी काशी आ गया।

इधर शत्रुजित्को साथ लेकर उसके नाना अवन्तिनरेश युधाजित् भी आ धमके थे। प्रयत्न करते रहनेपर भी शशिकलाद्वारा सुदर्शनके मन-ही-मन वरण किये जानेकी बात सर्वत्र फैल गयी थी। इसे भला, युधाजित् कैसे सहन कर सकते थे। उन्होंने सुबाहुको बुलाकर धमकाया। सुबाहुने इसमें अपनेको दोषरहित बतलाया। तथापि युधाजित्ने कहा—'मैं सुबाहुसहित सुदर्शनको मारकर बलात् कन्याका अपहरण करूँगा।' राजाओंको बालक

अविकारितमं सत्यं सर्ववर्णेषु भारत।
सत्यं सत्सु सदा धर्मः सत्यं धर्मः सनातनः॥
सत्यमेव नमस्येत सत्यं हि परमा गतिः।
सत्यं धर्मस्तपो योगः सत्यं ब्रह्म सनातनम्॥
सत्यं यज्ञः परः प्रोक्तः सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।

'सत्य सभी वर्णोंमें सदा विकाररहित है। सत्पुरुषोंमें सदा सत्य रहता है। सत्य ही सनातन धर्म है। सत्य (रूप ईश्वर ही सबकी) परमगति है, अतएव सत्यको नमस्कार करना चाहिये। धर्म, तप, योग और सनातन ब्रह्म सत्य ही है। सत्य ही श्रेष्ठ यज्ञ कहा गया है। एकमात्र सत्यमें ही सब प्रतिष्ठित है।'

उतथ्यके सत्य बोलनेकी बात चारों ओर फैल गयी। इससे वहाँकी जनताने उसका नाम 'सत्यव्रत' रख दिया। सारी जनतामें उसकी कीर्ति फैल गयी कि यह सत्यव्रत है, कभी भी इसके मुखसे मिथ्या वाणी नहीं निकलती।

उतथ्यके हृदयमें अपने सत्यव्रतका तनिक भी अहंकार नहीं था, प्रत्युत उसके हृदयमें दैन्यताके भाव भरे थे। वह कई बार सोचता—'मुझे तपस्या करनेकी विधि तो मालूम ही नहीं है, फिर मैं कौन-सा श्रेष्ठ साधन करूँ? पूर्वजन्ममें मैंने निश्चय ही कोई अच्छा कार्य नहीं किया, तभी दैवने मुझे मूर्ख बना दिया है।'

एक दिन उतथ्य अपनी कुटियाके बाहर बैठा था। उस समय एक सूकर अत्यन्त भयभीत होकर बड़ी शीघ्रतासे भागता हुआ उसके पास पहुँचा। वह बाणसे बिंधा हुआ था। उसकी देह रुधिरसे लथपथ थी। वह भयसे थर-थर काँप रहा था, अतः दयाका महान् पात्र था। उस दीन हीन पशुपर उतथ्यकी दृष्टि पड़ी। दयाके उद्रेकसे वह काँप उठा। उसके मुखसे 'ऐ' का उच्चारण हो गया।

उतथ्यको यह ज्ञान नहीं था कि 'ऐ' सरस्वती देवीका बीज-मन्त्र है। किसी अदृष्टकी प्रेरणासे शोकमें पड़ जानेसे ही उसके मुखसे यह उच्चारण हुआ था, परंतु उसे सत्यके बलसे वाक्-सिद्धि प्राप्त हो गयी थी। यद्यपि भगवती देवी सरस्वतीके वाग्बीज मन्त्रका शुद्ध उच्चारण 'ऐं' है, परंतु कृपामयी भगवती उतथ्यके 'ऐ' शब्दमात्रके उच्चारणसे ही उसपर प्रसन्न हो गयीं और भगवतीकी कृपासे उसे सम्पूर्ण विद्याएँ स्फुरित हो गयीं।

वह सूकर भागकर एक झाड़ीमें छिप गया। थोड़ी ही देरमें उसके पीछे-पीछे एक मूर्ख जंगली व्याध दौड़ता हुआ उतथ्य मुनिके पास पहुँचा। उसकी सूरत बड़ी डरावनी थी, जिससे प्रतीत होता था कि वह हिंसा-वृत्तिमें बड़ा निपुण है। वह कानतक बाण खींचे हुए हाथमें धनुष लिये था। उस व्याधने उतथ्य मुनिसे पूछा—'द्विजवर! आप प्रसिद्ध सत्यव्रती हैं। कृपापूर्वक बतायें कि मेरे बाणसे बिंधा हुआ वह सूकर कहाँ गया? मेरा सारा परिवार भूखसे छटपटा रहा है। कुटुम्बका भरण-पोषण करनेका मेरे पास कोई दूसरा साधन नहीं है। यही मेरी वृत्ति है। आप शीघ्र उसे बता दें, अन्यथा भूखसे व्याकुल मेरे बच्चे प्राण त्याग देंगे।'

उतथ्य बड़े धर्म-संकटमें पड़ गये। वे जानते थे कि वह सत्य सत्य नहीं है, जिसमें हिंसा भरी हो। यदि दयायुक्त हो तो अनृत भी सत्य ही कहा जाता है। क्या निर्णय करें, वे कुछ समझ नहीं सके।

सत्यं न सत्यं खलु यत्र हिंसा
दयान्वितं चानृतमेव सत्यम्।
हितं नराणां भवतीह येन
तदेव सत्यं न तथान्यथैव॥

उतथ्यका हृदय दयासे ओतप्रोत था। भगवती सरस्वती देवीकी उनपर कृपा हो चुकी थी, तुरंत उनके मनमें स्फुरणा हुई और वे बोले—

या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति।
अहो व्याध स्वकार्यार्थी किं पृच्छसि पुनः पुनः॥

'व्याध! जो आँख देखनेवाली है, वह बोलती नहीं और

जो वाणी बोलती है, उसने देखा नहीं, फिर अपना कार्य साधनेकी धुनमें लगे हुए तुम क्यों बार-बार पूछ रहे हो ?'

मुनिवर उतथ्यके यों कहनेपर उस पशुघाती व्याधको निराश होकर खाली हाथ लौटना पड़ा।

तदनन्तर उतथ्यने सारस्वत बीजमन्त्र 'ऐं' का विधिवत् जाप किया। उनका यशोगान एवं उनकी विद्याकी प्रभा चारों ओर फैल गयी। जिन पिताने उन्हें त्याग दिया था, वे ही उन्हें बड़े आदरके साथ घर ले गये। वाल्मीकिजीकी तरह ही उतथ्य मुनि एक महान् कवि बन गये। यह सब सत्यकी महिमा एवं भगवती सरस्वती देवीकी कृपाका फल था। (ह० कृ० दु०)

सुदर्शनपर जगदम्बाकी कृपा

अयोध्यामें भगवान् रामसे १५वीं पीढ़ी बाद ध्रुवसंधि नामके राजा हुए। उनके दो स्त्रियाँ थीं। पट्टमहिषी थी कलिङ्गराज वीरसेनकी पुत्री मनोरमा और छोटी रानी थी उज्जयिनीनरेश युधाजित्की पुत्री लीलावती। मनोरमाके पुत्र हुए सुदर्शन और लीलावतीके शत्रुजित्। महाराजकी दोनोंपर ही समान दृष्टि थी। दोनों राजपुत्रोंका समान रूपसे लालन-पालन होने लगा।

इधर महाराजको आखेटका व्यसन कुछ अधिक था। एक दिन वे शिकारमें एक सिंहके साथ भिड़ गये, जिसमें सिंहके साथ स्वयं भी स्वर्गगामी हो गये। मन्त्रियोंने उनकी पारलौकिक क्रिया करके सुदर्शनको राजा बनाना चाहा। इधर शत्रुजित्के नाना युधाजित्को इस बातकी खबर लगी तो वे एक बड़ी सेना लेकर इसका विरोध करनेके लिये अयोध्यामें आ डटे। उधर कलिङ्गनरेश वीरसेन भी सुदर्शनके पक्षमें आ गये। दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। कलिङ्गाधिपति मारे गये। अब रानी मनोरमा डर गयी। वह सुदर्शनको लेकर एक धाय तथा महामन्त्री विदल्लके साथ भागकर महर्षि भरद्वाजके आश्रममें प्रयाग पहुँच गयी। युधाजित्ने अयोध्याके सिंहासनपर शत्रुजित्को अभिषिक्त किया और सुदर्शनको मारनेके लिये वे भरद्वाजके आश्रमपर पहुँचे; पर मुनिके भयसे वहाँसे उन्हें भागना पड़ा।

एक दिन भरद्वाजके शिष्यगण महामन्त्रीके सम्बन्धमें कुछ बातें कर रहे थे। कुछने कहा कि विदल्ल क्लीब (नपुंसक) है। दूसरोंने भी कहा—'यह सर्वथा क्लीब है।' सुदर्शन अभी बालक ही था। उसने बार-बार जो उनके मुँहसे क्लीब-क्लीब सुना तो स्वयं भी 'क्ली-क्ली' करने लगा। पूर्वपुण्यके कारण वह कालीबीजके रूपमें अभ्यासमें परिणत हो गया। अब वह सोते, जागते, खाते, पीते, 'क्ली-क्ली' रटने लगा। इधर महर्षिने उसके क्षत्रियोचित संस्कारादि भी कर दिये और थोड़े ही दिनोंमें वह भगवती तथा ऋषिकी कृपासे शस्त्र-शास्त्रादि सभी विद्याओंमें अत्यन्त निपुण हो गया। एक दिन वनमें खेलनेके समय उसे देवीकी दयासे अक्षय तूणीर तथा दिव्य धनुष भी पड़ा मिल गया। अब सुदर्शन भगवतीकी कृपासे पूर्ण शक्ति-सम्पन्न हो गया।

इधर काशीमें उस समय राजा सुबाहु राज्य करते थे। उनकी कन्या शशिकला बड़ी विदुषी तथा देवीभक्ता थी। भगवतीने उसे स्वप्नमें आज्ञा दी कि 'तू सुदर्शनको अपने पतिरूपमें वरण कर ले। वह तेरी समस्त कामनाओंको पूर्ण करेगा।' शशिकलाने मनमें उसी समय सुदर्शनको पतिके रूपमें स्वीकार कर लिया। प्रातःकाल उसने अपना निश्चय माता-पिताको सुनाया। पिताने लड़कीको जोरोंसे डाँटा और एक असहाय वनवासीके साथ सम्बन्ध जोड़नेमें अपना अपमान समझा। उन्होंने अपनी कन्याके स्वयंवरकी तैयारी आरम्भ की। उन्होंने उस स्वयंवरमें सुदर्शनको आमन्त्रित भी नहीं किया; पर शशिकला भी अपने मार्गपर दृढ़ थी। उसने सुदर्शनको एक ब्राह्मणद्वारा देवीका संदेश भेज दिया। सभी राजाओंके साथ वह भी काशी आ गया।

इधर शत्रुजित्को साथ लेकर उसके नाना अवन्तिनरेश युधाजित् भी आ धमके थे। प्रयत्न करते रहनेपर भी शशिकलाद्वारा सुदर्शनके मन-ही-मन वरण किये जानेकी बात सर्वत्र फैल गयी थी। इसे भला, युधाजित् कैसे सहन कर सकते थे। उन्होंने सुबाहुको बुलाकर धमकाया। सुबाहुने इसमें अपनेको दोषरहित बतलाया। तथापि युधाजित्ने कहा—'मैं सुबाहुसहित सुदर्शनको मारकर बलात् कन्याका अपहरण करूँगा।' राजाओंको बालक

सुदर्शनपर कुछ दया आ गयी। उन्होंने सुदर्शनको बुलाकर सारी स्थिति समझायी और भाग जानेकी सलाह दी।

सुदर्शनने कहा—'यद्यपि न मेरा कोई सहायक है और न मेरे कोई सेना ही है, तथापि मैं भगवतीके स्वप्नगत आदेशानुसार ही यहाँ स्वयंवर देखने आया हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है, वे मेरी रक्षा करेंगी। मेरी न तो किसीसे शत्रुता है और न मैं किसीका अकल्याण ही चाहता हूँ।'

अब प्रातःकाल स्वयंवर-प्राङ्गणमें राजा लोग सज-धजकर आ बैठे तो सुबाहुने शशिकलासे स्वयंवरमें जानेके लिये कहा, पर उसने राजाओंके सामने होना सर्वथा अस्वीकार कर दिया। सुबाहुने राजाओंके अपमान तथा उनके द्वारा उपस्थित होनेवाले भयकी बात कही। शशिकला बोली—'यदि तुम सर्वथा कायर ही हो तो मुझे सुदर्शनके हवाले करके नगरसे बाहर छोड़ आओ।' कोई दूसरा रास्ता भी नहीं था, इसलिये सुबाहुने राजाओंसे तो कह दिया कि 'आपलोग कल स्वयंवरमें आयेंगे, आज शशिकला नहीं आयेगी।' इधर रातमें ही उसने संक्षिप्त विधिसे गुप्तरीत्या सुदर्शनसे शशिकलाका विवाह कर दिया और सबेरा होते ही उन्हें पहुँचाने लगा।

युधाजित्को भी बात किसी प्रकार मालूम हो गयी। वह रास्तेमें अपनी सेना लेकर सुदर्शनको मार डालनेके विचारसे स्थित था। सुदर्शन भी भगवतीका स्मरण करता हुआ वहाँ पहुँचा। दोनोंमें युद्ध छिड़नेवाला ही था कि

भगवती साक्षात् प्रकट हो गयीं। युधाजित्की सेना भाग चली। युधाजित् अपने नाती शत्रुजित्के साथ खेत रहा पराम्बा जगज्जननीने सुदर्शनको वर माँगनेके लिये प्रेरित किया। सुदर्शनने केवल देवीके चरणोंमें अविरल, निश्चल अनुरागकी याचना की। साथ ही काशीपुरीकी रक्षाकी भी प्रार्थना की।

सुदर्शनके वरदानस्वरूप ही दुर्गाकुण्डमें स्थित हुई पराम्बा दुर्गा वाराणसीपुरीकी अद्यावधि रक्षा कर रही हैं।

तुलसी

पद्म, शिव, स्कन्द आदि पुराणों एवं श्रीमद्देवीभागवतके अनुसार तुलसीका जन्म दक्षसावर्णि मनुके वंशज धर्मध्वजके यहाँ शुभ दिन, योग, करण, लग्न और ग्रहमें कार्तिक पूर्णिमाको हुआ था। वह अपूर्व सुन्दरी थी। अल्पावस्थामें ही तुलसी बदरीवनमें जाकर भगवान् नारायणको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये तपस्या करने लगी। दीर्घकालीन तपस्याके उपरान्त ब्रह्माजीने उसे दर्शन दिया तथा मनोऽभिलषित वर माँगनेको कहा। तुलसीने निवेदन किया कि 'पितामह! यद्यपि आप सर्वज्ञ हैं तथापि मैं अपने मनकी अभिलाषा आपसे कहती हूँ। पूर्वजन्ममें मैं गोपी थी, मुझे भगवान् श्रीकृष्णकी अनुचरी होनेका सौभाग्य प्राप्त था, किंतु एक दिन भगवती राधाने रासमण्डलमें क्रुद्ध हो मुझे मानव-योनिमें उत्पन्न होनेका शाप दे दिया, जिस कारण अब मैं इस भूमण्डलपर उत्पन्न हुई हूँ। सुन्दर विग्रहवाले भगवान् नारायण उस समय मेरे पति थे, उन्हींको मैं अब भी पतिरूपमें प्राप्त करना चाहती हूँ।'

ब्रह्माजीने बताया कि 'सुदामा नामक गोप नारायणका पार्षद श्रीराधिकाजीके शापसे भूमण्डलमें उत्पन्न हुआ है और शंखचूड़ नामसे प्रसिद्ध है। वह भगवान् श्रीकृष्णका ही अंश है, जो तुम्हारा प्रथम पति होगा। तत्पश्चात् भगवान् नारायण तुम्हें पत्नी-रूपमें अङ्गीकार करेंगे।'

तदनुसार वही सुदामा शापवश दनुकुलमें शंखचूड़ नामसे उत्पन्न हुआ। वह महान् योगी था। एक बार वह बदरीवनमें आया। उसे जैगीषव्य मुनिकी कृपासे भगवान् श्रीकृष्णका मनोहर मन्त्र प्राप्त था। ब्रह्माजीने भी उसे

अभिलषित वर देकर यहाँ आनेकी आज्ञा दी थी। संयोगवश तुलसीकी दृष्टि उसपर पड़ गयी। दोनों परस्पर वार्तालापमें

संलग्न हुए ही थे कि ब्रह्माजीने प्रकट होकर दोनोंको दाम्पत्य-सूत्रमें बँधनेका आदेश दिया। शंखचूड़ तुलसीसे गान्धर्व-विवाह कर उसे अपने भवनमें ले गया तथा आनन्दपूर्वक रहने लगा।

शंखचूड़ने अपनी धर्मपत्नी परम सुन्दरी तुलसीके साथ दीर्घकालतक राज्य किया। उसका शासन देवता, दानवादि सभी मानते थे, किंतु देवतागण अपना अधिकार छिन जानेसे भिक्षुककी-सी स्थितिमें थे। वे ब्रह्मा तथा शंकरको अग्रणीकर श्रीहरिके पावन धाम वैकुण्ठ गये तथा उनकी स्तुति कर, विनयशील होकर भगवान् श्रीहरिसे सारी परिस्थिति बतायी। सर्वज्ञ भगवान् श्रीहरिने देवताओंको शंखचूड़के जन्मका अद्भुत रहस्य बताया और कहा कि महान् तेजस्वी शंखचूड़ पूर्वजन्ममें मेरा ही अंश एक गोप था, जिसे राधिकाजीके शापके कारण यह योनि मिली है, परंतु अपने समयपर शंखचूड़ पुनः गोलोक चला जायगा।

उन्होंने भगवान् शंकरको शंखचूड़का संहार करनेके लिये एक त्रिशूल प्रदान किया और कहा कि 'शंखचूड़ मेरा मङ्गलमय कवच सदा धारण किये रहता है, जिससे कोई उसे मार नहीं सकता, अतः मैं स्वयं ही ब्राह्मणवेशमें उससे कवचके लिये याचना करूँगा। तब आपके द्वारा इस त्रिशूलके प्रहारसे उसी समय उसकी मृत्यु हो जायगी और तुलसी भी यह शरीर त्यागकर पुनः मेरी पत्नी बन जायगी।'

तदनन्तर देवताओंका अभ्युदय करनेके विचारसे भगवान् महादेवने चन्द्रभागातटपर एक मनोहर वट-वृक्षके नीचे अपना आसन जमाया और गन्धर्वराज चित्ररथको अपना दूत बनाकर शंखचूड़के पास यह संदेश भेजा कि 'या तो दानवराज देवताओंका राज्य और उनके अधिकारको लौटा दें अथवा युद्ध करनेके लिये प्रस्तुत हों।'

यह संदेश सुनकर शंखचूड़ने दूतसे हँसते हुए कहा— 'तुम जाओ, मैं कल प्रातःकाल भगवान् शंकरके पास स्वयं आऊँगा।' इधर भगवान् शंकरकी प्रेरणासे उनके पुत्र कार्तिकेय और भद्रकाली आदि देवियाँ अस्त्र-शस्त्र लिये रणाङ्गणमें पहुँच गयीं। उधर दूतके चले जानेपर शंखचूड़ने अन्तःपुरमें जाकर तुलसीसे युद्ध-सम्बन्धी बातें बतायीं, जिन्हें सुनते ही उसके होठ और तालू सूख गये। शंखचूड़ने उसे समझाया और कहा कि 'कर्मभोगका सारा निबन्ध कालसूत्रमें बँधा है, शुभ, हर्ष, सुख-दुःख, भय, शोक और मङ्गल सभी कालके अधीन हैं। तुम उन्हीं भगवान् श्रीहरिकी शरणमें जाओ, अब तुम्हें वे पति-रूपमें प्राप्त होंगे, जिन्हें पानेके लिये बदरी-आश्रममें तुमने तपस्या की है। मैं भी इस दानव-शरीरका परित्याग कर उसी दिव्यलोकमें चलूँगा। अतः शोक करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।'

तुलसी कुछ आश्वस्त हुई और शंखचूड़, ब्राह्ममुहूर्तमें शय्याको त्यागकर तथा नित्यकर्मको सम्पादित कर एक महारथीको सेनापति-पदपर नियुक्त कर मन-ही-मन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए उत्तम रत्नोंसे बने विमानपर सवार होकर चला और पुष्पभद्रा-नदीके तटपर सुन्दर अक्षयवटके नीचे उसने भगवान् शंकरको देखा। वे योगासन-मुद्रा लगाकर हाथमें त्रिशूल और पट्टिश धारण किये बैठे थे। दानवराज उन्हें देखकर विमानसे उतर पड़ा तथा सबके साथ भगवान् शंकरको उसने सिर झुकाकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। शंकरजीके वाम-भागमें भद्रकाली विराजित थीं और सामने स्वामी कार्तिकेय थे। तीनोंने शंखचूड़को आशीर्वाद दिया।

तब शंखचूड़ने भगवान् शंकरसे कहा कि 'आपको देवताओंका पक्ष लेना उचित नहीं है, आपके लिये हम दोनों समान हैं। हमारा-आपका युद्ध भी आपके लिये लज्जाकी बात होगी। हम विजयी होंगे तो हमारी कीर्ति अधिक फैल जायगी और पराजित होनेपर हमारी कीर्तिमें बहुत थोड़ा ही धब्बा लगेगा।'

शंखचूड़की बात सुनकर भगवान् त्रिलोचन हँसने लगे और उससे बोले कि 'या तो तुम देवताओंका राज्य लौटा दो अथवा मेरे साथ लड़नेको तैयार हो जाओ। इसमें लज्जाकी कोई बात नहीं है।' इसपर शंखचूड़ने भगवान् शंकरको प्रणाम किया और अपनी सेनाको युद्धके लिये आज्ञा दे दी। युद्ध प्रारम्भ हो गया। युद्धमें दानवोंने शंकरदलके बहुतसे वीरोंको परास्त कर दिया। देवता डरकर भाग चले। उसी समय स्वामि-कार्तिकेयने गणोंको ललकारा और वे स्वयं भी दानवोंके साथ लड़ने लगे। दानव-सेना घबरा गयी। तभी शंखचूड़ने विमान-पर चढ़कर भीषण बाण-वर्षा प्रारम्भ कर दी। फिर तो बड़ा भीषण युद्ध हुआ। दानवराजने मायाका आश्रय लेकर बाणोंका जाल फैला दिया। इससे स्वामिकार्तिकेय ढक-से गये। तब अन्तमें भगवान् शंकर स्वयं अपने गणोंके साथ संग्राममें पहुँच गये, जिन्हें देखकर शंखचूड़ने विमानसे उतरकर परम भक्तिके साथ पृथ्वीपर मस्तक टेककर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। तदुपरान्त वह तुरंत रथपर सवार हो गया और भगवान् शंकरसे युद्ध करने लगा। लम्बी अवधितक दोनोंका युद्ध चला, पर कोई किसीसे न जीतता था न हारता था। तभी भगवान् श्रीहरि एक अत्यन्त आतुर बूढ़े ब्राह्मणका वेश धारणकर युद्धभूमिमें आये। उन्होंने शंखचूड़से उसके 'कृष्णकवच' के लिये याचना की, जिसे शंखचूड़ने परम प्रसन्नतापूर्वक उन्हें दे दिया। इसी बीच वे शंखचूड़का रूप धारणकर तुलसीसे भी मिल आये थे। इधर शंकरजीने भगवान् श्रीहरिका दिया हुआ त्रिशूल उठाकर हाथपर आजमाया और उसे शंखचूड़पर चला दिया। शंखचूड़ने भी सारा रहस्य जानकर अपना धनुष धरतीपर फेंक दिया और बुद्धिपूर्वक योगासन लगाकर भक्तिके साथ अनन्यचित्तसे भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलका ध्यान करने लगा। त्रिशूल कुछ समयतक तो चक्कर काटता रहा। तदनन्तर वह शंखचूड़के ऊपर जा गिरा। उसके गिरते ही तुरंत वह दानवेश्वर तथा उसका रथ सभी जलकर भस्म हो गये।

दानव-शरीरके भस्म होते ही उसने एक दिव्य गोपका शरीर धारण कर लिया। इतनेमें अकस्मात् सर्वोत्तम दिव्य मणियोंद्वारा निर्मित एक दिव्य विमान गोलोकसे उतर आया तथा शंखचूड़ उसीपर सवार होकर गोलोकके लिये प्रस्थित हो गया।

शंखचूड़की हड्डियोंसे शङ्खकी उत्पत्ति हुई। वही शङ्ख अनेक प्रकारके रूपोंमें देवताओंकी पूजामें निरन्तर पवित्र माना जाता है, उसके जलको श्रेष्ठ मानते हैं। जो शंखके जलसे स्नान कर लेता है, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नानका फल प्राप्त होता है। शंख साक्षात् भगवान् श्रीहरिका अधिष्ठान है। जहाँ शंख रहता है अथवा शंखध्वनि होती है, वहाँ भगवान् श्रीहरि भगवती लक्ष्मीसहित सदा निवास करते हैं और अमङ्गल दूरसे ही भाग जाता है।

भगवान् विष्णुने वैष्णवी माया फैलाकर शंखचूड़से कवच ले लिया। फिर शंखचूड़का ही रूप धारण कर वे साध्वी तुलसीके घर पहुँचे। तुलसीने जब जान लिया कि यह शंखचूड़-रूपमें कोई अन्य है, तब तुलसीने पूछा कि 'मायेश ! बताओ तो तुम कौन हो ? तुमने कपटपूर्वक मेरा सतीत्व नष्ट कर दिया, अतः मैं तुम्हें शाप दूँगी।'

तुलसीके वचन सुनकर शापके भयसे भगवान् श्रीहरिने लीलापूर्वक अपना सुन्दर मनोहर स्वरूप प्रकट कर दिया। देवी तुलसीने अपने सामने उन सनातन प्रभु देवेश्वर श्रीहरिको विराजमान देखा। भगवान् श्रीहरिने कहा—'भद्रे ! तुम मेरे लिये बदरीवनमें रहकर बहुत तपस्या कर चुकी हो, अब तुम इस शरीरका त्याग कर दिव्य देह धारण कर मेरे साथ आनन्द करो। लक्ष्मीके समान तुम्हें सदा मेरे साथ रहना चाहिये। तुम्हारा यह शरीर गण्डकी नदीके रूपमें प्रसिद्ध होगा, जो मनुष्योंको उत्तम पुण्य देनेवाली बनेगी। तुम्हारा केशकलाप पवित्र वृक्ष होगा। तुलसीके नामसे ही उसकी प्रसिद्धि होगी। देव-पूजामें आनेवाले त्रिलोकीके जितने पत्र और पुष्प हैं, उन सबमें वह प्रधान मानी जायगी। तुलसी-वृक्षके नीचेके स्थान परम पवित्र होंगे। तुलसीके गिरे पत्ते प्राप्त करनेके लिये समस्त देवताओंके साथ मैं भी रहूँगा।' तुलसी-पत्रके जलसे जिसका अभिषेक हो गया, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नात तथा समस्त यज्ञोंमें दीक्षित समझना चाहिये। हजारों घड़े अमृतसे भगवान् श्रीहरिको जो तृप्ति होती है उतनी ही तृप्ति वे तुलसीके एक पत्तेके चढ़ानेसे प्राप्त करते हैं। दस हजार गोदानसे जो पुण्य होता है,वही फल कार्तिकमासमें तुलसी-पत्र-दानसे सुलभ है। मृत्युके अवसरपर जिसके मुखमें तुलसी-पत्र-जल प्राप्त हो जाता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो भगवान् श्रीविष्णुके लोकका अधिकारी बन जाता है। तुलसीकाष्ठकी मालाको गलेमें धारण करनेवाला

पद-पदपर अश्वमेध-यज्ञके फलका भागी होता है।

'तुलसी ! तुम्हारे शापको सत्य करनेके लिये मैं 'पाषाण'—शालग्राम बनूँगा। गण्डकी नदीके तटपर मेरा वास होगा।' इस प्रकार देवी तुलसीसे कहकर भगवान् श्रीहरि मौन हो गये। देवी तुलसी अपने शरीरको त्यागकर दिव्य रूपसे सम्पन्न हो भगवान् श्रीहरिके वक्षःस्थलपर लक्ष्मीकी भाँति शोभा पाने लगी। कमलापति भगवान् श्रीहरि उसे साथ लेकर वैकुण्ठ पधार गये। लक्ष्मी, गङ्गा, सरस्वती और तुलसी—ये चार देवियाँ भगवान् श्रीहरिकी पत्नियाँ हुईं। तुलसीकी देहसे गण्डकी नदीकी उत्पत्ति हुई और भगवान् श्रीहरि भी उसीके तटपर मनुष्योंके लिये पुण्यप्रद शालग्राम-पर्वत बन गये। (का० ना० मे०)

मुनिवर गौतमद्वारा कृतघ्न ब्राह्मणोंको शाप

एक बार इन्द्रने लगातार पंद्रह वर्षोंतक पृथ्वीपर वर्षा नहीं की। इस अनावृष्टिके कारण घोर दुर्भिक्ष पड़ गया। सभी मानव क्षुधा-तृषासे पीड़ित हो एक-दूसरेको खानेके लिये उद्यत थे। ऐसी बुरी स्थितिमें कुछ ब्राह्मणोंने एकत्र होकर यह विचार किया कि 'गौतमजी तपस्याके बड़े धनी हैं। इस अवसरपर वे ही हम सबके दुःखोंको दूर करनेमें समर्थ हैं। वे मुनिवर इस समय अपने आश्रमपर गायत्रीकी उपासना कर रहे हैं। अतः हम सभीको उनके पास चलना चाहिये।'

ऐसा विचार कर वे सभी ब्राह्मण अपने अग्निहोत्रके सामान, कुटुम्ब, गोधन तथा दास-दासियोंको साथ लेकर गौतमजीके आश्रमपर गये। इसी विचारसे अनेक दिशाओंसे बहुतसे अन्य ब्राह्मण भी वहाँ पहुँच गये। ब्राह्मणोंके इस बड़े समाजको उपस्थित देखकर गौतमजीने उन्हें प्रणाम किया और आसन आदि उपचारोंसे उनकी पूजा की। कुशल-प्रश्नके अनन्तर उन्होंने उस सम्पूर्ण ब्राह्मणसमाजसे आगमनका कारण पूछा। तब सम्पूर्ण ब्राह्मणोंने अपना-अपना दुःख उनके सामने निवेदित किया। सारे समाचारको जानकर मुनिने उन सब लोगोंको अभय प्रदान करते हुए कहा—'विप्रो ! यह आश्रम आपलोगोंका ही है। मैं सर्वथा आपलोगोंका दास हूँ। मुझ दासके रहते आपलोगोंको चिन्ता नहीं करनी चाहिये। संध्या और जपमें परायण रहनेवाले आप सभी द्विजगण सुखपूर्वक मेरे यहाँ रहनेकी कृपा करें।' इस प्रकार ब्राह्मण-समाजको आश्वासन देकर मुनिवर गौतमजी भक्ति-विनम्र हो वेदमाता गायत्रीकी स्तुति करने लगे। गौतमजीके स्तुति करनेपर भगवती गायत्री। उनके सामने प्रकट हो गयीं।

ऋषि गौतमपर प्रसन्न होकर भगवती गायत्रीने उन्हें एक ऐसा पूर्णपात्र दिया, जिससे सबके भरण-पोषणकी व्यवस्था हो सकती थी। साथ ही मुनिसे कहा—'मुने ! तुम्हें जिस-जिस वस्तुकी इच्छा होगी, मेरा दिया हुआ यह पात्र उसे पूर्ण कर देगा।' यों कहकर श्रेष्ठ कला धारण करनेवाली भगवती गायत्री अन्तर्धान हो गयीं। महात्मा गौतम जिस वस्तुकी इच्छा करते थे, वह देवी गायत्रीद्वारा दिये हुए पूर्णपात्रसे उन्हें प्राप्त हो जाती थी। उस समय मुनिवर गौतमजीने सम्पूर्ण मुनिसमाजको बुलाकर उन्हें प्रसन्नतापूर्वक धन-धान्य, वस्त्राभूषण आदि समर्पित किया। उनके द्वारा गवादि पशु तथा स्रुक्-स्रुवा आदि यज्ञकी सामग्रियाँ, जो सब-की-सब भगवती गायत्रीके पूर्णपात्रसे निकली थीं, आये हुए ब्राह्मणोंको प्राप्त हुईं। तत्पश्चात् सभी लोग एकत्र होकर गौतमजीकी आज्ञासे यज्ञ करने लगे। इस प्रकार भयंकर दुर्भिक्षके समयमें भी गौतमजीके आश्रमपर नित्य उत्सव मनाया जाता था। न किसीको रोगका किंचिन्मात्र भय था न असुरोंके उत्पातादिका ही। गौतमजीका वह आश्रम चारों ओरसे सौ-सौ योजनके विस्तारमें था। धीरे-धीरे अन्य बहुतसे लोग भी वहाँ आये और आत्मज्ञानी मुनिवर गौतमजीने सभीको अभय प्रदान करके उनके भरण-पोषणकी व्यवस्था कर दी। उन ऋषिश्रेष्ठके द्वारा अनेक यज्ञोंके सम्पादित किये जानेपर यज्ञ-भाग पाकर संतुष्ट हुए देवताओंने भी गौतमजीके यशकी पर्याप्त प्रशंसा की।

इस प्रकार मुनिवर गौतमजी बारह वर्षोंतक श्रेष्ठ मुनियोंके भरण-पोषणकी व्यवस्था करते रहे तथापि उनके मनमें कभी लेशमात्र भी अभिमान नहीं हुआ। उन्होंने अपने आश्रममें ही गायत्रीकी आराधनाके लिये एक श्रेष्ठ स्थानका निर्माण करवा दिया था, जहाँ सभी लोग जाकर भगवती जगदम्बा गायत्रीकी उपासना करते थे।

एक बार गौतमजीके आश्रममें देवर्षि नारदजी पधारे। वे वीणा बजाकर भगवतीके उत्तम गुणोंका गान कर रहे थे। वहाँ आकर वे पुण्यात्मा मुनियोंकी सभामें बैठ गये। गौतम आदि श्रेष्ठ मुनियोंने उनका विधिवत् स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् नारदजीने कहा—'मुने ! मैं देवसभामें गया था। वहाँ देवराज इन्द्रने आपकी प्रशंसा करते हुए कहा है कि मुनिने सबका भरण-पोषण करके विशाल निर्मल यश प्राप्त किया है। भगवती गायत्रीके कृपा-प्रसादसे तुम धन्यवादके पात्र बन गये हो।' ऐसा कहकर देवीकी स्तुति करके नारदजी वहाँसे चले गये।

उस समय वहाँ जितने भी ब्राह्मण थे, मुनिके द्वारा ही उन सबके भरणपोषणकी व्यवस्था होती थी, परंतु उनमेंसे कुछ कृतघ्न ब्राह्मण गौतमजीके इस उत्कर्षको सुनकर ईर्ष्यासे जल उठे। तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद धरापर वृष्टि भी होने लगी और धीरे-धीरे सम्पूर्ण देशमें सुभिक्ष हो गया। तब अपनी जीविकाके प्रति आश्वस्तमना उन द्वेषी ब्राह्मणोंने गौतमजीकी निन्दा एवं उन्हें शाप देनेके विचारसे एक मायाकी गौ बनायी, जो बहुत ही कृशकाय एवं मरणासन्न थी। जिस समय मुनिवर गौतमजी यज्ञशालामें हवन कर रहे थे, उसी क्षण वह गौ वहाँ पहुँची। मुनिने 'हुँ हुँ'—शब्दोंसे उसे वारण किया। इतनेमें ही उस गौके प्राण निकल गये। फिर तो उन दुष्ट ब्राह्मणोंने यह हल्ला मचा दिया कि गौतमने गौकी हत्या कर दी।

मुनिवर गौतमजी भी हवन समाप्त करनेके पश्चात् इस घटित घटनापर अत्यन्त आश्चर्य करने लगे। वे आँखें मूँदकर समाधिमें स्थित हो इसके कारणपर विचार करने लगे। उन्हें तत्काल पता लग गया कि यह सब उन द्वेषी ब्राह्मणोंका ही कुचक्र है। उस समय क्रोधसे भरे हुए प्रलयकालीन रुद्रके समान अत्यन्त तेजस्वी ऋषिवर गौतमने उन द्वेषी ब्राह्मणोंको शाप देते हुए कहा—'अरे अधम ब्राह्मणो ! आजसे तुम सदाके लिय अधम बन जाओ। तुम्हारा वेदमाता गायत्रीके ध्यान और मन्त्र-जपमें कोई अधिकार न हो। गौ आदि दान और पितरोंके श्राद्धसे तुम विमुख हो जाओ। कृच्छ्र, चान्द्रायण तथा प्रायश्चित्तव्रतमें तुम्हारा सदाके लिये अनधिकार हो जाय। तुमलोग पिता, माता, पुत्र, भाई, कन्या एवं भार्याका विक्रय करनेवाले व्यक्तिके समान नीचताको प्राप्त करो। अधम ब्राह्मणो ! वेदका विक्रय करनेवाले तथा तीर्थ एवं धर्म बेचनेमें लगे हुए नीच व्यक्तियोंको जो गति मिलती है, वही तुम्हें प्राप्त हो। तुम्हारे वंशमें उत्पन्न स्त्री एवं पुरुष मेरे दिये हुए शापसे दग्ध होकर तुम्हारे ही समान होंगे। गायत्री-नामसे प्रसिद्ध मूलप्रकृति भगवती जगदम्बाका अवश्य ही तुमपर महान् कोप है। अतएव तुम अन्धकूपादि नरकोंमें अनन्त कालतक निवास करो।'

इस प्रकार द्वेषी ब्राह्मणोंको वाणीद्वारा दण्ड देनेके पश्चात् गौतमजीने जलसे आचमन किया। तदनन्तर शापसे दग्ध होनेके कारण उन ब्राह्मणोंने जितना वेदाध्ययन किया था, वह सब-का-सब विस्मृत हो गया। गायत्री-महामन्त्र भी उनके लिये अनभ्यस्त हो गया। तब इस भयानक स्थितिको प्राप्त करके वे सब अत्यन्त पश्चात्ताप करने लगे। फिर उन लोगोंने मुनिके सामने दण्डकी भाँति पृथ्वीपर लेटकर उन्हें प्रणाम किया। लज्जाके कारण उनके सिर झुके हुए थे। वे बार-बार यही कह रहे थे—'मुनिवर ! प्रसन्न होइये।' जब मुनि गौतमको चारों ओरसे घेरकर वे प्रार्थना करने लगे, तब दयालु मुनिका हृदय करुणासे भर गया। उन्होंने उन नीच ब्राह्मणोंसे कहा—'ब्राह्मणो ! जबतक भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार नहीं होगा, तबतक तो तुम्हें कुम्भीपाक नरकमें अवश्य रहना पड़ेगा, क्योंकि मेरा वचन मिथ्या नहीं हो सकता। इसके बाद तुमलोगोंका भूमण्डलपर कलियुगमें जन्म होगा। हाँ, यदि तुम्हें शाप-मुक्त होनेकी इच्छा है तो तुम सबके लिये यह परम आवश्यक है कि भगवती गायत्रीके चरण-कमलकी सतत उपासना करो, उसीसे कल्याण होगा।

धनकी प्राप्ति या आगम, नित्य नीरोग रहना, स्त्रीका अनुकूल तथा प्रियवादिनी होना, पुत्रका आज्ञाके वशवर्ती होना तथा धन पैदा करनेवाली विद्याका ज्ञान—ये छः बातें इस मनुष्यलोकमें सुखदायिनी हैं।

नीरोग रहना, ऋणी न होना, परदेशमें न रहना, अच्छे लोगोंके साथ मेल होना, अपनी वृत्तिसे जीविका चलाना और निडर होकर रहना—ये छः मनुष्यलोकके सुख हैं।

भगवान् विष्णुकी भक्तिके माहात्म्यको प्रतिपादित करनेवाले इस पुराणका अठारह महापुराणोंमें एक विशिष्ट स्थान है। वैष्णवोंका यह अतिमान्य ग्रन्थ है। साथ ही इसमें विविध विषय प्रतिपादित हैं, अतः यह अग्निपुराण तथा गरुडपुराणकी तरह विश्वकोष कहलाता है। पुराणोंके पाँचों प्रमुख विषयोंका इसमें सम्यक् रूपसे पालन हुआ है। इस पुराणका ऐतिहासिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्व है, क्योंकि इसमें अठारह महापुराणोंके विषयोंकी विस्तृत अनुक्रमणी अठारह अध्यायोंमें (९२ से १०९ अध्यायतक) विस्तारसे दी गयी है, जो सभी पुराणोंके विवेच्य विषयोंको जाननेके लिये अत्यन्त आवश्यक है। इन सूचियोंसे वर्तमानमें उपलब्ध पुराणोंके मूल रूपोंको सरलतासे समझा जा सकता है।

इस पुराणको अन्य पुराणोंकी भाँति नैमिषारण्यमें शौनकादि ऋषियोंके उत्तरमें सूतजीने नहीं कहा है, किंतु नैमिषारण्यमें स्थित शौनकादि ऋषि धर्म आदिके सम्बन्धमें उत्पन्न संदेहकी निवृत्तिके लिये सिद्धाश्रममें अग्निष्टोमयज्ञद्वारा विष्णुका यजन करते हुए सूतजीके पास गये और अपनी शङ्काएँ पूछीं, तब उनकी निवृत्तिके लिये सनत्कुमारादिकोंने देवर्षि नारदसे जिस पुराणका कथन किया था, उसीको सूतजीने कहा। अर्थात् इस पुराणका नाम अन्य पुराणोंके समान वक्ताके नामपर प्रचलित न होकर श्रोताके नामपर प्रचलित है (नार० पू० १।८—३६)।

इस पुराणका नाम नारदपुराण है **'तस्मादिदं नारदनामधेयं पुण्यं पुराणम्'** (नार० पू० १।६४)। यह पुराण पूर्व तथा उत्तर—दो भागोंमें विभक्त है। पूर्वभागमें चार पाद हैं। प्रथम पादमें ४१ अध्याय, द्वितीयमें २१, तृतीयमें २९ तथा चतुर्थ पादमें ३४—इस प्रकार कुल १२५ अध्याय हैं। उत्तरभागका नाम पञ्चम पाद है, जिसमें ८२ अध्याय हैं। दोनों मिलाकर इस पुराणमें २०७ अध्याय हैं। इसकी कुल श्लोक-संख्या पचीस हजार है, किंतु उपलब्ध नारदीय पुराणमें लगभग १८,००० श्लोक हैं, अतः इसका कुछ भाग लुप्त है। पुराणोंके गणनाक्रममें इसका छठा स्थान है, परंतु देवीभागवत (१।३।२) इसे तेरहवाँ पुराण मानता है। मत्स्यपुराण (५३।२३) के अनुसार देवर्षि नारदने बृहत्कल्पकथा-प्रसंगमें जिन धर्मकथाओंका उपदेश किया था, वह नारदीय पुराणका विषय है। स्वयं नारदीय पुराण (९७।१) में जो इस पुराणका लक्षण दिया गया है, उसमें कहा गया है कि बृहत्कल्पमें भगवान् वेदव्यासद्वारा जिस पुराणका उपदेश हुआ, वह नारदीय पुराण कहलाया। उपर्युक्त विवरणोंमें देवर्षि नारदजी कहीं वक्ता कहे गये हैं, कहीं श्रोता। इसमें विरोध प्रतीत होता है, किंतु कल्पभेदकी व्यवस्थासे इसका विरोध-परिहार समझना चाहिये।

वर्तमानमें जो नारदीय पुराण उपलब्ध है, उसमें देवर्षि नारदजी श्रोताके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। सनक, सनन्दन, सनत्कुमार तथा सनातन—ब्रह्माजीके ब्रह्मज्ञानी इन चार मानस पुत्रोंने प्रवृत्ति एवं निवृत्ति-मार्गका जो धर्मोपदेश दिया, वह नारदीय पुराण है। उत्तरभागके श्रोता मान्धाता हैं तथा वक्ता महर्षि वसिष्ठ हैं (नार० पू० ९७।११)। इस पुराण (९७।१—१८) में स्वयंके वर्ण्य-विषयोंकी जो अनुक्रमणी दी गयी है, वह इस प्रकार है—

पूर्वभागमें मुख्यरूपसे सदाचार-महिमा, वर्णाश्रमधर्म, भगवान्‌की मृकण्डुपुत्ररूपता, गङ्गाकी उत्पत्ति और माहात्म्य, इष्टापूर्तधर्म, शुक्लद्वादशीव्रत, लक्ष्मीनारायणव्रत, हरिपञ्चरात्रव्रत तथा एकादशी आदि व्रत, श्राद्धकृत्य, प्रायश्चित्त, पञ्चमहापातक, उपपातक, भक्ति तथा भक्तके लक्षण, भगवद्भक्ति और उपासनाके माहात्म्यमें यज्ञमालि, सुमालि, गुलिक, लुब्धक और जयध्वज आदिके आख्यान, व्याकरण, निरुक्त तथा छन्दःशास्त्रका विवेचन, ज्योतिषशास्त्रका विस्तृत वर्णन, शुकदेवजीकी उत्पत्ति, शुकदेवजीका राजा जनकके पास जाकर ज्ञान प्राप्त करना, वेदाङ्गोंका कथन, निवृत्तिधर्म, पाशुपतदर्शन, विविध मन्त्र तथा

दीक्षा-विधि, गायत्रीमन्त्र-जपविधि, संध्या-विधि, षोडशोपचार-देवपूजन, गणेश-मन्त्र, नवग्रहोंके मन्त्र तथा जप-विधि, नृसिंहमन्त्र तथा उपासना-पद्धति, हयग्रीवमन्त्र-पूजा-उपासना, श्रीराममन्त्र-जप-विधि, हनुमन्मन्त्र तथा दीपदान, कार्तवीर्यमन्त्र, दीपदान तथा कवच, हनुमत्कवच तथा हनुमच्चरित्र, कृष्ण-मन्त्र, आराधना, राधाकृष्णसहस्रनाम-स्तोत्र तथा राधा-माहात्म्य, दुर्गादेवी, यक्षिणी, बगलामुखी आदिके मन्त्र तथा कवच, ललितासहस्रनाम-स्तोत्र, कवच, पटल तथा माहात्म्यका विशद विवेचन, महेश्वरमन्त्र तथा मन्त्रोद्धार, गणेश, विष्णु, दुर्गा, शिव, सूर्य, राम, हनुमान् आदि देवोंके मन्त्र, मन्त्रोद्धार, दीक्षाविधि, पूजन-विधि, प्रयोग-विधि, कवच, स्तोत्र, पटल, हृदय तथा सहस्रनाम आदि पञ्चाङ्गोंका विस्तृत वर्णन, अठारह महापुराणोंकी अनुक्रमणिका, दानका माहात्म्य, विविध दानोंका वर्णन, चैत्रादि बारह महीनोंके प्रतिपदासे लेकर पौर्णमासीतकके तिथि-व्रतोंका पृथक्-पृथक् निरूपण तथा पुराणका माहात्म्य प्रतिपादित है।

उत्तरभागमें वैष्णवधर्म, अनुष्ठानपद्धति तथा साम्प्रदायिक दीक्षा-विधानका वर्णन, पाञ्चरात्रोपासना-पद्धति, राजा रुक्माङ्गदका चारु चरित्र और उनकी वैष्णवताका वर्णन है। उसने तो अपने राज्यमें यह घोषणा करवा दी थी कि ८ वर्षसे ८० वर्षतककी अवस्थावालेके लिये एकादशीव्रतका अनुष्ठान तथा वैष्णवाचारका पालन परम आवश्यक है और जो मेरी इस आज्ञाका पालन नहीं करेगा वह दण्डनीय होगा, वध्य होगा तथा राज्यसे निष्कासित कर दिया जायगा—

यो न कुर्याद्वचो मेऽद्य धर्म्यं विष्णुगतिप्रदम्।
स मे दण्ड्यश्च वध्यश्च निर्वास्यो विषयाद्ध्रुवम्॥ (नार० उ० २३।४१)

गङ्गाकी कथा, गया, काशी, पुरुषोत्तमक्षेत्र, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, हरिद्वार, कामोदा, बदरिकाश्रम, कामाख्या, प्रभास, पुष्कर, गौतम, गोकर्ण, रामेश्वर, अवन्ती, मथुरा तथा वृन्दावन आदि तीर्थोंकी माहात्म्यकथा तथा तीर्थ-यात्रा-विधानकी विस्तृत चर्चा और मोहिनीचरित, इति-कर्तव्यता तथा फलश्रुति विवेचित हैं। पुनः भक्तिके माहात्म्यको बताते हुए बतलाया गया है कि भक्ति भगवान्के स्वरूपको प्राप्त करानेवाली है, अतः पुरुषको नित्य भगवान्का भजन करना चाहिये। सत्सङ्गति तथा भगवन्नाम-चर्चासे ही इस संसारसे मुक्ति हो सकती है—

भक्तिर्भगवतः पुंसां भगवद्रूपकारिणी।
तां लब्ध्वा चापरं लाभं को वाञ्छति विना पशुम्॥
भगवद्विमुखा ये तु नराः संसारिणो द्विजाः।
तेषां मुक्तिर्भवाटव्या नास्ति सत्संगमन्तरा॥ (नार० उ० ८२।५८-५९)

इस पुराणमें विष्णु-भक्तिकी प्रधानता होते हुए भी सभी देवोंको समान महत्त्व एवं स्थान देते हुए सभीकी पूजा-उपासनाका निर्देश किया गया है। सभीकी श्रेष्ठता स्वीकार करते हुए सम्प्रदायवादसे सर्वथा दूर रहनेका उपदेश किया गया है। अतः इसे साम्प्रदायिक ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता। शैव, शाक्त, वैष्णव—सभी एक ही परम तत्त्वके उपासक हैं, यही तात्पर्यार्थ सर्वत्र घोषित है।

अतिथिके माहात्म्यको बतलाते हुए कहा गया है कि जिस घरसे अतिथि भग्न-आशावाला होकर लौट जाता है, वह अतिथि उस गृहस्वामीको अपना पाप दे देता है और उसका पुण्य हर लेता है—

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति॥ (नार०पू० २७।७२)

इस पुराणने वेदादि शास्त्रों तथा स्मृति आदि धर्मशास्त्रोंसे भी अधिक महत्त्व पुराणोंको दिया है और कहा है कि वेद तथा स्मृति आदिके सभी विषय तो पुराणोंमें प्रतिपादित हैं ही, साथ ही उनमें वह सब भी कहा गया है जो वेदोंमें, स्मृति-ग्रन्थोंमें भी नहीं है।

कथा-आख्यान—

देवर्षि नारद

महायोगी नारदजी ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। ये नित्य-निरन्तर, प्रत्येक युगमें भगवान्‌की भक्ति और उनके माहात्म्यका विस्तार करते हुए लोक-कल्याणके लिये सदा-सर्वदा-सर्वत्र विचरण किया करते हैं। भक्ति तथा संकीर्तनके ये आद्य-आचार्य हैं। इनकी वीणा 'भगवज्जपमहती' के नामसे विख्यात है, उससे 'नारायण'की ध्वनि निकलती रहती है। इनकी गति अव्याहत है। ये ब्राह्ममुहूर्तमें सभी जीवोंकी गति देखते हैं और आज भी अजर-अमर हैं। भगवद्भक्तिकी स्थापना तथा प्रचारके लिये ही इनका आविर्भाव हुआ है। अब भी भक्तिका प्रसार करते हुए ये अप्रत्यक्षरूपसे भक्तोंका सहयोग करते रहते हैं और अधिकारी पुरुषोंको साक्षात् दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं। संसारपर इनका अमित प्रभाव है। ये भगवान्‌के विशेष कृपापात्र और लीला-सहचर हैं। जब-जब भगवान्‌का आविर्भाव होता है, ये उनकी लीलाके लिये भूमिका तैयार करते हैं, लीलोपयोगी उपकरणोंका संग्रह करते हैं और अन्य प्रकारकी सहायता करते हैं। इनका मङ्गलमय जीवन मङ्गलके लिये ही है। ये स्वयं वैष्णव हैं और वैष्णवोंके परमाचार्य तथा मार्गदर्शक हैं।

ये व्यास, वाल्मीकि तथा महाज्ञानी शुकदेवादिके गुरु रहे हैं। श्रीमद्भागवत, जो भक्ति, ज्ञान एवं वैराग्यका परमोपदेशक ग्रन्थ-रत्न है तथा रामायण, जो मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके पावन, आदर्शमय चरित्रसे अनुस्यूत है—ये दोनों ग्रन्थ देवर्षि नारदजीकी कृपासे ही हमें प्राप्त हो सके हैं। इन्होंने ही प्रह्लाद, ध्रुव, राजा अम्बरीष आदि महान् भक्तोंको भक्तिमार्गमें प्रवृत्त किया। आपने कितनोंका उपकार किया, उसकी कोई गणना नहीं है। आप भागवत-धर्मके परम गूढ़ रहस्यको जाननेवाले—ब्रह्मा, शंकर, सनत्कुमार, महर्षि कपिल, स्वायम्भुव मनु आदि बारह आचार्योंमें अन्यतम हैं। (श्रीमद्भा० ६। ३। २०-२१)। उनकी अवतार-चर्चाके विषयमें श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

तृतीयमृषिसर्गं च देवर्षित्वमुपेत्य सः।
तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः॥
(१। ३। ८)

'ऋषियोंकी सृष्टिमें भगवान् नारायणने देवर्षि नारदके रूपमें तीसरा अवतार ग्रहण किया और सात्वत-तन्त्रका (जिसे नारद-पञ्चरात्र कहते हैं) उपदेश किया, उसमें कर्मोंके द्वारा किस प्रकार कर्मबन्धनसे मुक्ति मिलती है, इसका वर्णन है।'

देवर्षि नारदजी ब्रह्माजीके कण्ठसे उत्पन्न माने गये हैं। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने इन्हें मैथुनी सृष्टिके लिये आज्ञा दी, परंतु योगी नारदने विषय-भोगको ईश्वर-भजनमें सर्वाधिक बाधक बताते हुए कहा—

भगवान् पुरुषोत्तम ही सबके आदिकारण तथा निस्तारके बीज हैं। वे ही सब कुछ देनेवाले, भक्ति प्रदान करनेवाले, दास्य-सुख देनेवाले, सत्य तथा कृपामय हैं। वे ही भक्तोंको एकमात्र शरण देनेवाले, भक्तवत्सल और स्वच्छ हैं। भक्तोंके प्रिय, रक्षक और उनपर अनुग्रह करनेवाले भी वे ही हैं। भक्तोंके आराध्य तथा प्राप्य उन परमेश्वर श्रीकृष्णको छोड़कर कौन मूढ़ विनाशकारी विषयमें मन लगायेगा? अमृतसे भी अधिक प्रिय श्रीकृष्ण-सेवा छोड़कर कौन मूर्ख विषय नामक विषका भक्षण (आस्वादन) करेगा? विषय तो स्वप्नके समान नश्वर, तुच्छ, मिथ्या तथा विनाशकारी हैं। (ब्रह्मवैवर्त० ब्र० खण्ड ८। ३३—३६)

पुत्रको सृष्टि-कार्यसे विरत जानकर ब्रह्माजीने अति रोषपूर्वक उन्हें शाप दे दिया—'नारद! तुमने मेरी अवहेलना की है, अतः मेरे शापसे तुम्हारा ज्ञान नष्ट हो जायगा और तुम गन्धर्वयोनिको प्राप्तकर शृङ्गार-विलासरत कामिनियोंके वशीभूत हो जाओगे।' तब नारदजीने दुःखी होकर कहा—'तात! आप जगद्गुरु हैं। ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं, किंतु आपका यह क्रोध अकारण ही हुआ है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह कुमार्गगामी पुत्रको शाप दे अथवा उसका त्याग कर दे। आप पण्डित होकर अपने तपस्वी पुत्रको शाप देना कैसे उचित मानते हैं? फिर भी इतनी कृपा कीजिये कि जिन-जिन योनियोंमें मेरा जन्म हो, वहाँ-वहाँ भगवान्‌की भक्ति मुझे कदापि न छोड़े और मुझे अपने पूर्वजन्मोंकी भगवद्भक्तिका स्मरण बना रहे; क्योंकि भजनरूपी कर्मसे गोलोकधामकी प्राप्ति होती है। तात! आपने विना किसी

अपराधके मुझे शाप दे दिया है, अतः मैं भी आपको यह शाप देता हूँ कि तीन कल्पोंतक लोकमें आपकी पूजा नहीं होगी और आपके मन्त्र, स्तोत्र, कवच, आदिका लोप हो जायगा।'

पिताके इसी शापसे नारदजी गन्धर्वराज 'उपबर्हण' हुए। ये कामदेवके समान अद्वितीय सुन्दर थे। इन्हें अपने रूप-सौन्दर्यका अत्यधिक गर्व था। एक बार ब्रह्माजीके यहाँ सभी गन्धर्व-किन्नर आदि भगवान्का गुण-कीर्तन करते हुए एकत्र हुए। अपनी स्त्रियोंसे घिरे हुए उपबर्हण भी वहाँ गये, जहाँ भगवान्में चित्त लगाकर उन मङ्गलमयके गुणगानसे अपनेको और दूसरोंको पवित्र करना चाहिये, वहाँ कोई स्त्रियोंके साथ शृङ्गारका प्रसङ्ग उत्पन्न कर हाव-भाव-विलासकी चेष्टा करे—यह बहुत बड़ा अपराध है। ब्रह्माजीने उपबर्हणके इस प्रमादको देखकर उन्हें शूद्र-योनिमें जन्म लेनेका शाप दे दिया। उस शापके फलस्वरूप वे सदाचारी, संयमी, वेदवादी ब्राह्मणोंकी सेवा करनेवाली शूद्रा दासीके पुत्र हुए।

श्रीमद्भागवतमें महर्षि वेदव्यासजीको अपने पूर्वजन्मका वृत्तान्त बतलाते हुए नारदजीने कहा—मुने! मेरी माता ब्रह्मज्ञानी महात्माओंकी सेवा करती थी। एक बार वर्षा ऋतुमें चातुर्मास्यके अवसरपर वे महात्मा भगवत्-कथा-वार्तामें आनन्दित थे। मेरी अवस्था तब बहुत कम थी। मैं भी माताके साथ नित्य उनकी सेवामें जाने लगा। बालक होते हुए भी मुझमें चञ्चलता बिलकुल नहीं थी। मैं शान्तभावसे मुनिजनोंकी आज्ञाका पालन करता था। मेरे इस शील-स्वभावको देखकर उनका कृपा-कटाक्ष मुझपर होने लगा। उनकी अनुमति प्राप्त करके बरतनोंमें लगा हुआ जूठन मैं एक बार खा लिया करता था। इससे मेरे सारे पाप धुल गये। उन लोगोंकी सेवा करते-करते मेरा हृदय शुद्ध होने लगा और उन लोगोंकी देखादेखी मैं भजन-पूजन भी करने लगा तथा उसमें मेरी रुचि हो गयी। मुझे नित्य उन महात्माओंसे भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंका श्रवण-लाभ मिलने लगा। कथा-श्रवणके प्रभावसे प्रभुमें मेरी निश्चल भक्ति हो गयी। उस बुद्धिसे मैं इस सम्पूर्ण सत् और असत्-रूप जगत्को अपने परब्रह्मस्वरूप आत्मामें मायासे कल्पित देखने लगा। मेरे हृदयमें भक्तिका प्रादुर्भाव हो गया। चातुर्मास्य-व्रतकी पूर्णताके बाद उन महात्माओंने मुझपर कृपाकर श्रीकृष्णभक्तिका परमोपदेश दिया और वे अन्यत्र चले गये।

मेरी माता मेरे साथ उसी ब्राह्मण-नगरीमें रहने लगी। माताके स्नेह-बन्धनके कारण मैं भी वहींपर रहने लगा। उस समय मेरी अवस्था केवल पाँच वर्षकी थी। मुझे देश-कालके सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञान नहीं था। एक दिनकी बात है कि मेरी माँ गो-दोहनके लिये अँधेरी रात्रिमें घरसे बाहर निकलीं। दुर्दैवसे एक साँपने उन्हें डँस लिया और तत्काल ही उनकी मृत्यु हो गयी। मैंने उसे ईश्वरका विधान ही माना। तब मैं गृहको त्यागकर उत्तर दिशाकी ओर चला गया। चलते-चलते मेरा शरीर और मेरी इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं। मुझे बड़े जोरकी प्यास लगी, भूखा तो था ही। वहाँ एक नदी मिली। मैंने उसमें स्नान, जलपान और आचमन किया। इससे मेरी थकावट मिट गयी। उस भयावह विजन वनमें एक पीपलके वृक्षके नीचे मैं एकाग्रचित्त हो आसन लगाकर बैठ गया। उन महात्माओंसे जैसा मैंने सुना था, हृदयमें रहनेवाले परमात्माके उसी स्वरूपका मैं मन-ही-मन ध्यान करने लगा। ध्यान करते-करते मेरे हृदयमें भगवान् प्रकट हो गये। भक्तिके उद्रेकसे मेरा सारा शरीर पुलकित हो उठा। उनके स्वरूपके दर्शनसे मैं भाव-विभोर हो गया, किंतु कुछ ही क्षणों बाद सहसा वह स्वरूप हृदय-पटलसे विलीन हो गया। मैंने हड़बड़ाकर आँखें खोलीं तो देखा कहीं कुछ भी न था, फिर कई बार उनके दर्शनोंकी चेष्टा की, परंतु असफल रहा। मैं अति व्याकुल हो उठा, अधीर हो अत्यन्त दुःखित हो गया। उसी समय मुझे धीर-गम्भीर मधुर वाणी सुनायी पड़ी।

'खेद है कि इस जन्ममें तुम मेरा दर्शन नहीं कर सकोगे। जिनकी वासनाएँ पूर्णतया शान्त नहीं हो गयी हैं, उन अधकचरे योगियोंको मेरा दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। निष्पाप बालक! तुम्हारे हृदयमें मुझे प्राप्त करनेकी लालसा जाग्रत् करनेके लिये ही मैंने एक बार तुम्हें अपने रूपकी झलक दिखायी है। मुझे प्राप्त करनेकी आकाङ्क्षासे युक्त साधक धीरे-धीरे हृदयकी सम्पूर्ण वासनाओंका भलीभाँति त्याग कर देता है। अल्प-कालीन संतसेवासे ही तुम्हारी चित्तवृत्ति मुझमें स्थिर हो गयी है। अब तुम इस मलिन शरीरको छोड़कर मेरे पार्षद हो जाओगे। मुझे प्राप्त करनेका तुम्हारा यह दृढ़ निश्चय कभी

किसी प्रकार नहीं टूटेगा। समस्त सृष्टिका प्रलय हो जानेपर भी मेरी कृपासे तुम्हें मेरी स्मृति बनी रहेगी।' (श्रीमद्भागवत १।६।२२-२५)

कल्पान्तमें प्रभु-कृपासे इस पाञ्चभौतिक शरीरको छोड़कर ब्रह्माजीके श्वासके साथ मैं उनके हृदयमें प्रवेश कर गया। पुनः पितामह ब्रह्माजीने जब सृष्टिकी इच्छा की, तब उनकी इन्द्रियोंसे मरीचि आदि ऋषियोंके साथ मैं भी प्रकट हो गया। किसी-किसी पुराणमें देवर्षि नारदजीको उनके पूर्वजन्ममें सारस्वत नामक एक ब्राह्मण बताया गया है, जिन्होंने नारायण-मन्त्र (ॐ नमो नारायणाय) के जपसे भगवान् नारायणका साक्षात्कार किया और कल्पान्तमें पुनः ब्रह्माजीके दस मानस पुत्रोंके रूपमें जन्म लिया (वराहपुराण अ० ३)। भगवान्की कृपासे तभीसे मैं वैकुण्ठादिमें तथा तीनों लोकोंमें बाहर-भीतर बिना रोक-टोक विचरण किया करता हूँ। मेरे जीवनका उद्देश्य अखण्डरूपसे भगवद्भजन करते हुए लोकमें भक्तिभावको जगाकर भक्तको प्रभुधामकी प्राप्ति करानी है। भगवान्की दी हुई इस 'वीणा'से मैं उनकी लीलाओंका गान करता हुआ संसारमें विचरण करता रहता हूँ। इतना कहकर नारद चुप हो गये और व्यासजी भी उनके जन्म-रहस्यका वृत्तान्त जानकर तथा आत्मकल्याणका उपाय समझकर अन्यत्र चले गये।

देवर्षि नारद परम तपस्वी तथा ब्रह्मतेजसे सम्पन्न हैं। उन्हें धर्म-बलसे परात्पर परमात्माका ज्ञान था। वे शुद्धात्मा, शान्त, मृदु तथा सरल स्वभावके हैं। वे देवता, दानव और मनुष्य सबको धर्मतः प्राप्त होते हैं। उनका शुक्ल वर्ण है। उनके सिरपर सुन्दर शिखा शोभित है। उनके शरीरसे एक दिव्य कान्ति, उज्ज्वल ज्योति निकलती रहती है। वे देवराज इन्द्रद्वारा प्राप्त श्वेत महीन तथा दिव्य दो वस्त्रोंको धारण किये रहते हैं। उनकी वीणा सदा उनके पास रहती है। मुक्तिकी इच्छा रखनेवाले सब लोगोंके हितके लिये नारदजी स्वयं ही प्रयत्नशील रहते हैं। कब किसका क्या कर्तव्य है, इसका उन्हें पूर्ण ज्ञान है (आदिपर्व अ० २०७)। सम्पूर्ण शास्त्रोंके ज्ञाता देवर्षि नारदजी जीवके कल्याणके लिये सतत चेष्टा किया करते हैं। उन्हें भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन होते रहते हैं, उन्हें भगवान्का मन कहा गया है, वे परम हितैषी हैं, उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है, केवल परार्थ ही है। परोपकार ही है। प्रभुकी प्रेरणासे ही वे कार्य किया करते हैं। उनका स्वयंका कहना है—'जब मैं भगवान्की लीलाओंका गान करने लगता हूँ, तब वे प्रभु, जिनके चरणकमल समस्त तीर्थोंके उद्गमस्थान हैं और जिनका यशोगान मुझे बहुत ही प्रिय लगता है, बुलाये हुएकी भाँति तत्काल मेरे हृदयमें आकर दर्शन दे देते हैं।'

उनके द्वारा प्रह्लादको लक्ष्य करके उनकी माता दैत्येश्वरी कयाधूको दिया हुआ भक्ति और ज्ञानका उपदेश, पिताके तिरस्कारसे क्षुब्ध ध्रुवकुमारके वनगमनके समय दिया गया वासुदेव-मन्त्र और दिव्योपदेश तथा महाज्ञानी शुकदेवजी एवं वेदव्यासजीको दिया गया भक्तिका उपदेश अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है।

दक्षप्रजापतिके हर्यश्व तथा शबलाश्व नामक सहस्रों पुत्रोंको नारदजीने अध्यात्मतत्त्वका पाठ पढ़ाया। उन्हें सृष्टिकर्ममें च्युत देखकर दक्ष प्रजापतिजीने नारदजीको शाप दे दिया कि 'तुम निरन्तर लोक-लोकान्तरोंमें विचरण करते रहोगे और एक स्थानपर अधिक देर नहीं टिक सकोगे।' संत-शिरोमणि देवर्षि नारदजीने 'बहुत अच्छा' कहकर दक्षका शाप स्वीकार कर लिया। संसारमें बस, साधुता इसीका नाम है कि बदला लेनेकी शक्ति रहनेपर भी दूसरेका अपकार सह लिया जाय (श्रीमद्भा० ६।५।४४)।

इस प्रकार सभीके लिये देवर्षि नारदजीने भगवद्भक्तिका द्वार खोल रखा था। उनका सदा यही लक्ष्य रहा है कि इस संसारमें प्राणी माया-मोहके बन्धनमें पड़कर अति कष्ट पा रहा है, अतः उसे कैसे इस भवबन्धनसे छुटकारा दिलाया जाय। ज्ञानमार्ग और उपासनामार्गकी अपेक्षा उन्होंने भक्तिमार्गकी श्रेष्ठता प्रदर्शित करते हुए इसी मार्गको सर्वसुलभ तथा सभी वर्णोंके लिये प्रशस्त मार्ग बतलाया है। भगवन्नाम-कीर्तनकी प्रेरणा देते हुए वे जीवमात्रके कल्याणके लिये सतत चेष्टित रहते हैं। यद्यपि इन्हें कलह-प्रिय तथा कलि-प्रिय भी कहा गया है, किंतु इनका उद्देश्य सर्वथा पवित्र और निःस्वार्थपरक रहा है। नारदमहापुराण, बृहन्नारदीय उपपुराण, नारदीय संहिता (स्मृति), नारदपरिव्राजकोपनिषद्, नारदीय भक्तिसूत्र, नारदीय शिक्षाके साथ ही अनेक स्तोत्र भी इनके द्वारा विरचित हैं। इनके सभी उपदेशोंका निचोड़ है—

सर्वदा सर्वभावेन निश्चिन्तैर्भगवानेव भजनीयः ।

(नारदभक्तिसूत्र ७९)

अर्थात् सर्वदा सर्वभावसे निश्चिन्त होकर केवल भगवान्‌का ही भजन करना चाहिये। इसीलिये कहा गया है—

अहो देवर्षिर्धन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः ।
गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत् ॥

(श्रीमद्भा० १ । ६ । ३९)

'अहो ! ये देवर्षि नारद धन्य हैं, क्योंकि ये शार्ङ्गपाणि भगवान्‌की कीर्तिको अपनी वीणापर गा-गाकर स्वयं तो आनन्दमग्न होते ही हैं, साथ-साथ इस त्रिताप-तप्त जगत्‌को भी आनन्दित करते रहते हैं।'

भगवान् विष्णुकी आराधना एवं एकादशी-व्रतकी महिमा

प्राचीन कालमें रुक्माङ्गद नामक एक प्रसिद्ध सार्वभौम नरेश थे। भगवान् विष्णुकी आराधना ही उनका जीवन था। वे चराचर-जगत्‌में अपने आराध्य भगवान् हृषीकेशके दर्शन करते तथा पद्मनाभ भगवान्‌की सेवाकी भावनासे ही अपने राज्यका संचालन करते थे। वे सभी प्राणियोंमें क्षमाभाव रखते थे। भगवान् विष्णु सदैव भक्तिसे ही वशमें होते हैं। केवल पूजा करनेपर भी वे प्रसन्न हो जाते हैं।

राजा रुक्माङ्गदने अपने जीवनमें अपनी समस्त प्रजा एवं परिवारसहित एकादशी-व्रतके अनुष्ठानका नियम धारण कर रखा था। एकादशीके दिन राज्यकी ओरसे घोषणा होती थी कि 'आज एकादशीके दिन आठ वर्षसे अधिक और पचासी वर्षसे कम आयुवाला जो भी मनुष्य अन्न खायेगा, वह राजाकी ओरसे दण्डनीय होगा।' एकादशीके दिन सभी लोग गङ्गास्नान एवं दान-पुण्य करते थे। राजाके धर्मकी ध्वजा सर्वत्र फहराने लगी। धर्मके प्रभावसे प्रजा सर्वथा सुखी एवं समृद्ध थी।

राजा रुक्माङ्गदका गृहस्थ-जीवन पूर्णरूपसे सुखमय था। वे पीताम्बरधारी भगवान् श्रीहरिकी आराधना करते हुए मनुष्यलोकके उत्तम भोग भोग रहे थे। उनकी पतिव्रता पत्नी संध्यावली साक्षात् भगवती लक्ष्मीका दूसरा रूप थी। वह सभी दृष्टिसे पतिका सुख-सम्पादन करनेमें अद्वितीय थी। पतिका सुख ही रानी संध्यावलीका जीवन था। पतिकी सेवा वह अपने हाथोंसे करती रहती।

उनका पुत्र धर्माङ्गद गुणोंमें अपने पिताके अनुरूप ही था। उसकी भी बुद्धि भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें लग गयी थी। वह अपने माता-पिताका आज्ञाकारी था। उसमें राज्य-संचालनकी पूर्ण योग्यता थी तथा मदिरा एवं जुआ आदिका कोई दुर्व्यसन न था। वह भी प्रजापालन एवं प्रजाकी रक्षामें सदा तत्पर रहता था। राजा रुक्माङ्गदने अपने पुत्र धर्माङ्गदके गुणोंसे प्रसन्न होकर राज्य-संचालनका भार उसके कंधोंपर देना आरम्भ कर दिया।

धर्माङ्गद अपने सेवकोंसे हाथीके मस्तकपर नगाड़े बजाते हुए घोषित कराता कि 'समस्त प्रजा एकादशीका व्रत पालन करनेमें तत्पर रहे तथा ममतारहित होकर देवेश्वर भगवान् विष्णुका चिन्तन करे।'

भगवान् श्रीहरिके आराधन एवं एकादशी-व्रतके प्रभावसे राज्यमें समस्त प्रजा सुखी थी। मृत्युके पश्चात् सभी वैकुण्ठधाममें जाने लगे। नरकके द्वारतक कोई जाता ही नहीं था। सम्पूर्ण नरक सूना हो गया। सूर्यपुत्र यमराज एवं चित्रगुप्त—दोनोंके लिये कोई कार्य रहा ही नहीं। जब सभी प्रजाजन वैकुण्ठ जाने लगे, तब यमराज किन्हें दण्ड दें और चित्रगुप्त किनके कर्मोंका हिसाब रखें। अन्तमें वे ब्रह्माजीकी सभामें पहुँचे। उन्होंने ब्रह्माजीसे राजा रुक्माङ्गदके प्रभावका वर्णन करते हुए कहा—'पितामह ! भगवान् विष्णुके आराधन एवं एकादशी-व्रतके प्रभावसे समस्त प्राणी वैकुण्ठ-धामको प्राप्त हो रहे हैं। नरकमें कोई प्राणी नहीं आ रहा है। लम्बे समयसे हमलोग व्यर्थ बैठे हैं। यह सुनकर ब्रह्माजीको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वे मन-ही-मन भक्तराज रुक्माङ्गदको नमन करने लगे। ब्रह्माजी रुक्माङ्गदकी ऐसी अद्भुत महिमाको और बढ़ाना चाहते थे। उन्होंने अपने मनके संकल्पसे एक अत्यन्त सुन्दर एवं लावण्यवती नारीको प्रकट किया। उस नारीका नाम मोहिनी था। वह संसारकी समस्त सुन्दरियोंमें श्रेष्ठ एवं रूपके वैभवसे सम्पन्न थी।

एक दिन राजा रुक्माङ्गद वन-भ्रमणके लिये निकले हुए थे। उसी वनमें वह मोहिनी अत्यन्त मधुर वीणा बजा रही थी। उस रूपराशिको देखकर राजा रुक्माङ्गद मोहित हो गये। राजाने मोहिनीसे प्रणयकी याचना की। मोहिनीने मुसकराते हुए एक शर्त रखी कि 'समयपर मैं जो कहूँ आपको उसका पालन करना होगा।' राजाने मोहके वशीभूत वह शर्त स्वीकार कर ली और वे मोहिनीके साथ अपनी राजधानीको लौट आये। यहाँ वे मोहिनीके साथ सुखसे समय व्यतीत करने लगे।

युवराज धर्माङ्गदने शासनकी पूर्ण योग्यता प्राप्त कर ली थी। उसने भूमण्डलके सभी मण्डलोंको जीतकर उनपर अपना शासन जमा लिया तथा अनेक बहुमूल्य रत्न-मणियाँ लाकर अपने पिताको अर्पित किया। धर्माङ्गदके सुराज्यसे प्रसन्न होकर रुक्माङ्गदने अपनी सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था उसे सौंप दी। योग्य कन्यासे धर्माङ्गदका विधिपूर्वक विवाह हुआ।

ब्रह्माजीने मोहिनीको राजा रुक्माङ्गदकी परीक्षाके लिये ही भेजा था। सुखपूर्वक बहुत समय व्यतीत होनेपर एक दिन वह अवसर आ उपस्थित हुआ। रुक्माङ्गदका एकादशी-व्रत निर्विघ्न चल रहा था। वे एकादशीके दिन कभी अन्न ग्रहण नहीं करते थे। सदैवकी भाँति वे घोषणा करा देते—'मनुष्यो! तुम सब अपने वैभवके अनुसार एकादशीके दिन चक्र-सुदर्शनधारी भगवान् विष्णुकी पूजा करो। वस्त्र, उत्तम चन्दन, रोली, पुष्प, धूप, दीप तथा हृदयको अत्यन्त प्रिय लगनेवाले सुन्दर फल एवं उत्तम गन्धके द्वारा भगवान् श्रीहरिके चरणारविन्दोंकी अर्चना करो। जो भगवान् विष्णुका लोक प्रदान करनेवाले मेरे इस धर्मसम्मत वचनका पालन नहीं करेगा, निश्चय ही उसे कठोर दण्ड दिया जायगा।'

एक दिन मोहिनी अपने पति रुक्माङ्गदसे एकादशीके दिन अन्न खानेके लिये आग्रह करने लगी। उसने हठपूर्वक कहा कि 'गृहस्थ राजाको जो सदैव परिश्रम करता है, कभी भी अन्न नहीं छोड़ना चाहिये।' राजाने मोहिनीको बहुत समझाया। उन्होंने शास्त्रोंका प्रमाण देकर बताया कि एकादशीके दिन जो अन्न खाता है, वह पापका भागी और नरकगामी होता है, किंतु मोहिनी अपने हठपर अटल रही। राजाने उसे अनेक प्रलोभन भी दिये, परंतु मोहिनीपर उन बातोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मोहिनीने राजाको विवाहके समय की हुई अपनी शर्तकी स्मृति करायी कि 'जो मैं कहूँगी उसे आपको पालन करना होगा अन्यथा आप असत्यवादी हो जायँगे एवं सत्यका त्याग करनेसे आपको पापका भागी होना पड़ेगा।' मोहिनीने अन्तमें यह भी घोषणा की कि 'यदि आप एकादशीके दिन अन्न ग्रहण नहीं करेंगे तो मैं आपको त्यागकर चली जाऊँगी।'

रुक्माङ्गदने मोहिनीको पुनः समझाते हुए पुराणोंका प्रमाण दिया और कहा कि पुराणोंमें स्थान-स्थानपर यह घोषणा की गयी है कि 'एकादशी प्राप्त होनेपर भोजन नहीं करना चाहिये, नहीं करना चाहिये।' परंतु मोहिनी अपने निश्चयपर अटल रही। वह अपने पतिको असत्यवादी घोषित करती हुई उसे छोड़कर जानेको तत्पर थी। इधर राजा रुक्माङ्गद मोहिनीपर आसक्त होते हुए भी एकादशीके दिन अन्न न ग्रहण करनेके निश्चयपर दृढ़ थे।

पितृभक्त धर्माङ्गद एवं पतिव्रता रानी संध्यावलीने मोहिनीको राजाको छोड़कर न जानेके लिये बहुत समझाया। रानी संध्यावलीने अत्यन्त मधुर वाणीमें मोहिनीसे कहा—'जो नारी सदा अपने पतिकी आज्ञाका पालन करती है, उसे सावित्रीके समान अक्षय तथा निर्मल लोक प्राप्त होते हैं। देवि! तुम अपना यह आग्रह छोड़ दो। महाराजने कभी बचपनमें भी एकादशीके दिन अन्न ग्रहण नहीं किया है। अतः तुम इसके लिये उन्हें बाध्य मत करो। तुम उनसे कोई अन्य वर माँग लो।'

'देवि! जो वचनसे और शपथ-दोषसे पतिको विवश करके उनसे न करनेयोग्य कार्य करा लेती है, वह पापपरायणा नारी नरकमें निवास करती है। वह भयंकर नरकसे निकलनेके पश्चात् बारह जन्मोंतक शूकरीकी योनिमें जन्म लेती है। तत्पश्चात् चाण्डाली होती है। सुन्दरि! इस प्रकार पापका परिणाम जानकर मैंने तुम्हें सखी-भावसे मना किया है। धर्मकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको उचित है कि वह शत्रुको भी अच्छी बुद्धि, उचित परामर्श दे।

'सुन्दरि! जिस पत्नीके पति उसके व्यवहारसे दुःखी होते हैं, वह समृद्धिशालिनी हो तो भी उस पापिनीकी अधोगति ही कही गयी है। वह सत्तर युगोंतक 'पूय' नामक नरकमें पड़ी रहती है। तत्पश्चात् सात जन्मोंतक छछूंदर होती है। तदनन्तर काकयोनिमें जन्म लेती है, फिर क्रमशः शृगाली, गोधा और

गाय होकर शुद्ध होती है। स्त्रियोंके लिये एकमात्र पतिके सिवा संसारमें दूसरा कौन देवता है ?'

इतनी अच्छी बातें सुननेपर भी मोहिनीकी बुद्धि शुद्ध नहीं हुई। उसकी भावी उसके सिरपर नाच रही थी। जगत्को अच्छी शिक्षा मिलनेवाली थी। मोहिनीकी दुर्दशा होनी ही थी। रानी संध्यावलीकी बातें सुनकर दुष्टहृदया मोहिनीने अपनी एक नयी शर्त रखी—'राजा रुक्माङ्गद अपने हाथों अपने पुत्र धर्माङ्गदका सिर काटकर भेंट करें अथवा एकादशीके दिन अन्न ग्रहण करें तभी उनके सत्यकी रक्षा हो सकती है।'

परम गुणवान् आज्ञाकारी पुत्र धर्माङ्गदने अपने पिताके सत्यकी रक्षाके लिये अपना सिर देना सहर्ष स्वीकार कर लिया। पतिपरायणा रानी संध्यावलीने अपने हृदयको कठोर करके अपने पतिके सत्यकी रक्षाके लिये अपने लाड़ले होनहार पुत्रका बलिदान होना स्वीकार किया।

राजा रुक्माङ्गद मोहिनीकी नयी शर्त सुनकर अर्धमूर्छित-से होने लगे। मूर्ख मोहिनीको अपनी भावी दुर्दशाका किंचिन्मात्र भी विचार नहीं था। वह अपने पतिके बहुत समझाने एवं अनुनय-विनय करनेपर भी कुछ ध्यान न देकर अपने हठपर अड़ी रही। अन्तमें धर्माङ्गद एवं रानी संध्यावलीने महाराज रुक्माङ्गदसे प्रार्थना करके उन्हें सत्यकी रक्षाके लिये राजी किया। सत्यकी महिमा विलक्षण है। राजा रुक्माङ्गद हाथमें नंगी तलवार लेकर धर्माङ्गदका सिर काटनेके लिये उद्यत हुए। धर्माङ्गदने भक्तिपूर्वक माता-पिताके चरणोंमें सिर टेककर प्रणाम किया और भगवान् विष्णुके ध्यानमें मग्न हो तलवारकी धारके सामने अपना सिर धरणीपर रख दिया।

कृपालु भगवान् विष्णु राजा रुक्माङ्गद, रानी संध्यावली एवं धर्माङ्गदका धैर्य देख रहे थे। चमचमाती तलवार ज्यों ही धर्माङ्गदके सिरको छूनेवाली ही थी, त्यों ही भगवान् श्रीहरिने प्रकट होकर राजाका हाथ पकड़ लिया। उस अद्भुत दृश्यको देवगण भी देख रहे थे। उनके देखते-देखते ही महात्मा नरेश अपनी रानी संध्यावली एवं पुत्र धर्माङ्गदके साथ भगवान् विष्णुमें सशरीर विलीन हो गये।

क्रूर-हृदया मोहिनी भी यह दृश्य देख रही थी। राजाके पुरोहित वसुसे यह सब देखा नहीं गया। उनके संकल्पसे दुष्टा मोहिनी वहीं भस्म होकर राखकी ढेर हो गयी।

(ह० कृ० दु०)

सत्संग एवं भगवान्‌के चरणोदककी महिमा

प्राचीन कालमें गुलिक नामका एक व्याध था। वह बड़ा क्रूर था। वह पराये धनको हड़पनेमें सदा तत्पर रहता था। धनके लिये प्राणियोंकी, मनुष्योंकी हत्या करनेमें भी उसके मनमें हिचक न थी। वह सदा इसी अवसरकी प्रतीक्षामें रहता था कि परायी स्त्रियोंका अपहरण कर लूँ, कपटपूर्वक धन हरण कर लूँ, पशु-प्राणियोंकी हत्या कर दूँ। धनके लिये ब्राह्मणोंको मारनेमें भी वह नहीं चूकता था। देवसम्पत्तिको हड़पनेमें भी उसे सुखका अनुभव होता था। किसी भी प्रकारके पाप-कर्म करनेमें उसे ग्लानि नहीं होती थी। इसी पापपूर्ण धनसे वह अपने परिवारका पालन-पोषण करता था।

एक दिन गुलिक व्याध धनकी खोजमें अपने आवास-स्थानसे बहुत दूर निकल गया। मार्गमें एक उपवनमें उसने एक भव्य विष्णु-मन्दिर देखा। वह मन्दिर कई स्वर्ण-कलशोंसे सुसज्जित था। भारी-भारी स्वर्ण-कलशोंको देखकर गुलिकका पापपूर्ण मन नाच उठा। वह उन्हें लूटनेकी योजना अपने मनमें बनाने लगा। इसी उद्देश्यसे उसने मन्दिरमें प्रवेश किया। वहाँ

उसे एक ब्राह्मण देवताके दर्शन हुए। तपस्याके तेजसे ब्राह्मणका मुखमण्डल प्रकाशयुक्त था, उसपर ज्ञान एवं प्रकाशकी आभा छिटक रही थी। भगवान् विष्णुकी सेवा ही उनके जीवनकी निधि थी। वे सदा सेवामें तत्पर थे। उनका हृदय दयासे भरा था। सेवा-कार्यसे निवृत्त होनेपर वे भगवान्‌के ध्यानमें तल्लीन रहते थे। उनका नाम उत्तङ्क था।

गुलिकने चोरीके दृढ़ निश्चयसे ही मन्दिरमें प्रवेश किया था। उसने सोचा कि ये उत्तङ्क ऋषि ही मेरे मार्गके बाधक हैं, अतः उन्हें मारनेके लिये उसने तत्काल अपनी तलवार निकाल ली और उनपर आक्रमण कर दिया। उसने उनकी जटा पकड़कर धरतीपर पटक दिया। उनकी छातीपर पैर रखकर वह उन्हें मारना चाहता था कि मुनिकी विनम्र निष्कपट वाणी उसके कानोंमें पड़ी—

यावदर्जयति द्रव्यं बान्धवास्तावदेव हि।
धर्माधर्मौ सहैवास्तामिहामुत्र न चापरः॥

(नारदपु०, पूर्वभाग ३७।४२)

'मनुष्य जबतक धन कमाता है, तभीतक भाई-बन्धु उससे सम्बन्ध रखते हैं, परंतु इहलोक और परलोकमें केवल धर्म और अधर्म ही सदा उसके साथ रहते हैं। वहाँ दूसरा कोई साथी नहीं है।'

मुनिकी विनम्र गूढ वाणी सुनकर गुलिक ठिठक गया, उसके हाथ रुक गये। सत्संगकी बड़ी महिमा है। भगवान्‌की महती कृपासे ही संतोंके दर्शन एवं उनका सत्संग प्राप्त होता है। दुष्टजनोंको सुधारनेका सत्संग ही महारसायन है। दुष्ट सत्संग पाकर सुधर जाते हैं। पारस लोहेको स्वर्ण बना देता है और सत्संग दुष्टको निर्मल कर देता है।

मुनि उत्तङ्कने निर्भयतासे गुलिकसे कहा—'भैया! मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है? मैं तो सर्वथा निरपराध हूँ और भगवान् विष्णुकी शरण हूँ। भगवान् तो सबके हितकारी हैं और सदा ही अत्यन्त प्रिय हैं। फिर क्यों न तुम सर्वभयहारी प्रभुकी शरणमें जाते हो? वे दीनवत्सल सदाके लिये तुम्हें अभय कर देंगे।'

'भैया गुलिक! शक्तिशाली पुरुष तो अपराधियोंको, पापियोंको भी नहीं मारते, फिर तुम मुझे व्यर्थ क्यों मार रहे हो? सज्जन पुरुष तो सताये जानेपर भी उसे मारते नहीं, क्षमा कर देते हैं। जिनकी बुद्धि सदा दूसरोंके हितमें लगी रहती है, वे पुरुष कभी किसीसे भी द्वेष नहीं करते—ऐसे पुरुष भगवान्‌को बड़े प्रिय होते हैं।'

'व्याध! तुम दूसरोंका धन लूटकर अपने परिवारका पालन-पोषण करते हो, परंतु मृत्युके समय तुम्हें अकेले ही परलोक-यात्रा करनी होगी। तुम्हारी पत्नी, तुम्हारे माता-पिता, तुम्हारी पुत्र-पुत्रियाँ, तुम्हारी ममताकी समस्त वस्तुएँ यहीं—इस पृथ्वीपर ही रह जायँगी। तुम्हारे साथ केवल तुम्हारे पाप-कर्म जायँगे। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् दैवके अधीन है, अतः दैव ही जन्म और मृत्युको जानता है, दूसरा नहीं। ममतासे व्याकुल चित्तवाले मनुष्य महान् दुःख सहते हैं। वे बड़े-बड़े पाप करके धन इकट्ठा करते हैं। उस धनको उसके बन्धु-बान्धव भोगते हैं, परंतु वह मनुष्य अपने पाप-कर्मोंके फलस्वरूप अकेला नरक-यन्त्रणा भोगता है। उस पाप-कर्ममें उसका कोई हिस्सा नहीं बँटा सकता। अतः तुम पाप-कर्म करना छोड़ दो।'

ऐसे वचन सुनते ही गुलिकने महर्षि उत्तङ्कको छोड़ दिया। सत्संग, भगवद्विग्रह एवं संत-दर्शनका उसकी बुद्धिपर प्रभाव पड़ा। उसका हृदय अपने कुकृत्योंका स्मरण करके जलने लगा। तब गुलिक महर्षिके चरणोंमें गिर पड़ा और अपराधोंके लिये क्षमा माँगने लगा। उसने कहा—'विप्रवर! मैंने

बड़े-बड़े भयंकर पाप किये हैं। अब मेरा उद्धार कैसे होगा ? मेरी अब क्या गति होगी ? मेरी आयु व्यर्थ चली गयी।'

आत्मग्लानि पीड़ित गुलिक व्याध अपने आन्तरिक संतापकी अग्निसे झुलसने लगा और उसने उत्तङ्क मुनिके चरणोंमें ही अपने प्राण त्याग दिये। मुनिका हृदय दयासे द्रवित हो गया। उन्होंने भगवान् विष्णुके चरणोदकसे व्याधका सम्पूर्ण शरीर सींच दिया। चरणोदकके प्रभावसे एवं संतके स्पर्शसे व्याधके समस्त पाप नष्ट हो गये। वह भगवान् विष्णुके चरणोंका अधिकारी हो गया। तब वह व्याध अपने दिव्य शरीरसे मुनि उत्तङ्कपर पुष्पकी वर्षा करते हुए, उनका गुण-कीर्तन करते हुए विष्णु-धाममें चला गया।

सङ्गात् स्नेहाद् भयाल्लोभादज्ञानाद्वापि यो नरः।
विष्णोरुपासनं कुर्यात् सोऽक्षय्यं सुखमश्नुते॥
अकालमृत्युशमनं सर्वव्याधिविनाशनम्।
सर्वदुःखोपशमनं हरिपादोदकं स्मृतम्॥

(नारदपुराण, पूर्वभाग ३७।१४,१६)

'जो मनुष्य किसीके सङ्गसे, स्नेहसे, भयसे, लोभसे अथवा अज्ञानसे भी भगवान् विष्णुकी उपासना करता है, वह अक्षय सुखका भागी होता है। भगवान् विष्णुका चरणोदक अकालमृत्युका निवारक, समस्त रोगोंका नाशक और सम्पूर्ण दुःखोंकी शान्ति करनेवाला माना गया है।'

(ह० कृ० दु०)

कुसङ्गका दुष्परिणाम एवं एकादशी-व्रतकी महिमा

सच है, कोई पुरुष अत्यन्त धैर्यवान्, दयालु, सद्गुणी, सदाचारी, नीतिज्ञ, कर्तव्यनिष्ठ और गुरुका भक्त अथवा विद्या-विवेक-सम्पन्न भी क्यों न हो, यदि वह निरन्तर अत्यन्त पापबुद्धि दुष्ट पुरुषोंका सङ्ग करेगा तो अवश्य ही क्रमशः उन्हींकी बुद्धिसे प्रभावित होकर उन्हींके समान हो जायगा। इसलिये सदा ही दुष्ट पुरुषोंका सङ्ग छोड़ देना चाहिये।

उपर्युक्त नीतियुक्त वचनका पालन न करनेसे राजा धर्मकीर्तिका भी पतन हो गया था। प्राचीनकालमें चन्द्रवंशमें धर्मकीर्ति नामक एक राजा हुए थे। वे बड़े ही बुद्धिमान् और पुण्यकर्मा थे। उनके प्रजापालनमें कोई त्रुटि नहीं थी। वैदिक मार्गका अनुसरण करना उनका सहज स्वभाव था। वे समय-समयपर यज्ञोंका आयोजन भी करते रहते थे। ऐसे गुणवान् राजाका ऐश्वर्य-सम्पन्न होना स्वाभाविक ही था। राजा धर्मकीर्तिके कोशमें धनकी कोई कमी न थी।

दुराचारी पाखंडियोंकी दृष्टि तो सदैव धनपर ही रहती है। उन्होंने राजा धर्मकीर्तिपर भी अपना चक्र चलाया। पाखंडी लोग बार-बार राजाको यह समझाते कि यज्ञ आदि सत्कर्म करनेसे क्या लाभ ? केवल मौजसे रहो, उस कुचक्रसे बचना तो केवल उनके सङ्ग-त्यागसे ही सम्भव था, परंतु राजा धर्मकीर्ति मोहवश उन पाखंडियोंका सङ्ग त्याग न कर सके और उनके कुचक्रके शिकार हो गये। कुसङ्गके कारण राजाको धर्मपथसे च्युत होते देर न लगी। उन्होंने धीरे-धीरे यज्ञ आदि सत्कर्म बंद कर दिये। पाखंडियोंके दुःसङ्गसे राजाकी पाप-कर्मोंके प्रति घृणा नष्ट हो गयी और अन्तमें वे पापकर्मोंमें रत रहने लगे। राजाकी देखादेखी प्रजामें भी अधर्मकी वृत्ति बढ़ने लगी। राजा धर्मकीर्ति कई प्रकारके दुर्व्यसनोंके शिकार हो गये, जिनमें एक मृगयाका दुर्व्यसन भी था। एक दिन आखेटके समय धर्मकीर्ति अपनी सेनासे बिछुड़कर अकेले ही जंगलमें भटक गये। भटकते-भटकते वे नर्मदाके तटपर पहुँचे और नदीके निर्मल जलमें प्रवेशकर उन्होंने अपनी थकान दूर की। संध्या हो गयी थी और अँधेरा होने लगा था, अतः राजा भयसे आगे नहीं बढ़े और वहीं नर्मदाके तटपर विश्राम करने लगे। संयोगवश उस दिन एकादशी तिथि थी। नर्मदा-तटवासी जन एकादशी-व्रती थे। वे लोग वहीं नर्मदाके किनारे रात्रि-जागरणके लिये एकत्र हुए। दिनभरके निराहारी राजाके नेत्रोंमें नींद कहाँ थी। वे भी तटवासियोंके साथ रात्रि-जागरणमें सम्मिलित हो गये और रात्रिभर भजन-कीर्तनमें लगे रहे।

राजा धर्मकीर्ति भूखकी व्यथा सहन न कर सके, जिससे प्रातःकाल होते-होते उनके प्राण प्रयाण कर गये। उनके प्रारब्धमें यही लिखा था। प्राणोंके प्रयाण करते ही धर्मकीर्तिको यमदूतोंने आ घेरा और वे उन्हें यमराजके पास ले गये। विधानकी लेखा रखनेवाले चित्रगुप्तने बताया—'देव ! यद्यपि राजा धर्मकीर्तिने बहुत-से पाप-कर्म किये हैं, परंतु अन्तिम दिन इन्होंने एकादशीके उत्तम व्रतका पालन करके रात्रिभर जागरण

करके भजन-कीर्तन करते हुए प्राणोंका त्याग किया है। अतः इनके सभी पापोंका क्षय हो गया है। पापोंके क्षयवाले व्यक्तिका यमलोकमें क्या काम ? वह तो उत्तम लोकका भागी होता है।' यमराजने धर्मकीर्तिको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और अपने दूतोंको सावधान करते हुए उन्हें आदेश दिया—

'जो भगवत्पूजामें तत्पर, धर्मपरायण, गुरुजनसेवक, वर्णाश्रमोचित आचारनिष्ठ, दीनरक्षक, एकादशी-व्रती, मृत्युकालमें भजन-कीर्तनमें तल्लीन, भगवत्कथामृतके सेवी, सम्पूर्ण कर्मोंको भगवान्‌को अर्पण करनेवाले, ब्राह्मणभक्त, सत्सङ्गी और अतिथिसत्कारके प्रेमी हों, ऐसे व्यक्ति सदैव उत्तम लोकके अधिकारी होते हैं, अतः इन्हें स्वर्गलोक भेज देना चाहिये।' इस निर्णयके अनुसार राजा धर्मकीर्ति स्वर्ग-लोकको भेज दिये गये। वहाँ बहुत कालतक स्वर्गके भोग भोगकर पुण्य क्षीण होनेपर उन्होंने पुनः इस पृथ्वीपर सत्यपरायण, धर्मात्मा मुनि गालवके यहाँ जन्म लिया। उनका नाम हुआ भद्रशील।

बालक भद्रशीलमें बड़े अद्भुत गुण थे। भगवान् विष्णुका ध्यान-भजन-चिन्तन यही उस बालकका स्वभाव था। बालकपनमें ही उसने अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें कर लिया था। खेल-ही-खेलमें वह मिट्टीसे भगवान् विष्णुकी प्रतिमा बनाकर उनका पूजन किया करता था। भद्रशीलने अपने साथी बालकोंको भी भगवान् विष्णुका पूजन-आराधन करना सिखा दिया था। साथी बालक भी खेलमें भगवान् विष्णुकी प्रतिमाएँ बनाया करते और उनका पूजन करते। भद्रशील स्वयं एकादशी-व्रतका पालन करता था, अतः उसकी देखादेखी उसके साथी बालक भी एकादशी-व्रत-पालन करना सीख गये थे।

भद्रशील शास्त्रनिषिद्ध कर्मोंसे सदैव दूर रहता था। उसकी किसीमें ममता-आसक्ति थी नहीं, अतः वह सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे रहित था। भद्रशील अपने आचरणसे कभी किसीको भी दुःख नहीं देता था। वह सर्वदा दूसरोंके हित-सम्पादनका ही ध्यान रखता था। उसमें विलक्षण गुण थे। उसकी प्रार्थना ही ऐसी होती थी—'प्रभो ! आप विश्वके सभी प्राणियोंका कल्याण करें।' जैसा भद्रशीलका नाम था, वैसे ही उसमें गुण भी थे और उसकी भगवद्भजन-ध्यानकी तत्परता प्रेरणाप्रद थी।

भद्रशीलके शैशवकालके मङ्गलमय चरित्रने सभीको विस्मयमें डाल रखा था। यहाँतक कि उसके पिता मुनि गालव भी अपने बालकके चरित्रसे विस्मित थे। ऐसा पावन चरित्र महापुरुषोंकी सेवासे तो सुलभ हो सकता है, परंतु मुनि गालवने कभी भी भद्रशीलको महापुरुषकी सेवा करते नहीं देखा था। मुनि गालव अपने इस पहेलीको सुलझा नहीं सके और अन्तमें उन्होंने बालकसे ही बड़े प्यारसे पूछा—'वत्स ! तुम्हें यह योगि-दुर्लभ बुद्धि कहाँसे और कैसे प्राप्त हुई ?'

बालक भद्रशील अपने आदरणीय पितासे यह रहस्य छिपा नहीं सके। वे जातिस्मर तो थे ही। उन्होंने अपने पूर्वजन्मके राजा धर्मकीर्ति होनेका पूरा विवरण अपने पिताजीसे कह सुनाया कि किस तरह वे दुःसङ्गमें पड़कर भ्रष्ट हुए और पुनः एकादशी-व्रत एवं मृत्युके समय भजन-कीर्तन करनेसे पापोंसे मुक्त होकर इस योनिको प्राप्त हुए।

बालक भद्रशीलने अपने पितासे शास्त्रोचित पूजनके विधि-विधानका अध्ययन किया। मुनि गालव ऐसे योग्य बालकको पाकर अपने जीवनको सार्थक मानते थे। भगवद्भक्त भद्रशीलने अपने सम्पूर्ण कुलको पवित्र कर दिया।

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥

पुण्यसलिला भगवती गङ्गा

भगवती भागीरथी गङ्गाका इस पृथ्वीपर प्रादुर्भाव पापियोंकी सद्गति एवं पृथ्वीको पवित्र करनेके लिये हुआ है।

सूर्यवंशके राजा सगर बड़े बलवान्, धर्मात्मा, कृतज्ञ, गुणवान् तथा परम बुद्धिमान् थे। वे बड़े विनयी एवं सद्गुणोंके भण्डार थे। उन्होंने अपने बलसे अपने पिताके शत्रु सभी राजाओंको परास्त कर सम्पूर्ण पृथ्वीपर अपना राज्य स्थापित किया। दुर्भाग्यवश राजा सगरके साठ हजार एक पुत्र थे। वे सभी बुरे आचरणवाले एवं दुष्ट प्रकृतिके थे तथा

अपने-अपने शारीरिक सुख-सुविधा और ऐश-आराममें संलग्न रहते थे। वे धार्मिक अनुष्ठान करनेवाले लोगोंके कार्योंमें सदा विघ्न डाला करते थे। उन्होंने साधु पुरुषोंकी जीविका छीन ली और सदाचारका नाश कर डाला। पृथ्वीके लोग ही नहीं, देवता भी उनके दुराचारोंसे त्रस्त हो गये थे। एक बार धर्मात्मा राजा सगरने महर्षियोंके सहयोगसे अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ किया। सगरपुत्रोंसे त्रस्त देवताओंको उनके पुत्रोंके विनाशका उपाय हाथ लग गया। इन्द्रने अश्व-मेधयज्ञमें नियुक्त घोड़ेको चुराकर पातालमें तपस्यामें संलग्न महान् वीतराग महात्मा कपिलजीकी कुटियाके पास बाँध दिया। घोड़ेकी खोजमें सगरके पुत्रोंने समस्त पृथ्वी छान डाली, परंतु उन्हें कहीं भी यज्ञका घोड़ा न मिला। अन्तमें उन पुत्रोंने पातालमें जानेके लिये पृथ्वी खोदनी आरम्भ की और वे पातालमें पहुँच गये। पातालमें खोजते-खोजते वे लोग भगवान् कपिलदेवकी गुफापर पहुँचे। वहाँ उन्हें करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावशाली महात्मा कपिलजीका दर्शन हुआ। वे ध्यानमें निमग्न थे। वहाँ एक परम सात्त्विक प्रकाशकी छटा थी। सगरके सभी पुत्रोंका हृदय अत्यन्त मलिन था। वे सभी वहाँ घोड़ा बँधा देखकर क्रोधमें भर गये।

सगरपुत्र परस्पर चिल्लाने लगे—'इसे पकड़ लो, इसे मार डालो। इसीने घोड़ा चुराया है। यह साधु नहीं है, बगुला भगत है।' महात्मा कपिलजी पूर्ववत् ध्यानस्थ थे। उन लोगोंके चिल्लानेका उनके ऊपर कोई प्रभाव नहीं था। उनकी वृत्ति पूर्णरूपसे ब्रह्मके ध्यानमें लीन थी। उन्हें बाह्य जगत्का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं था। जब उन्होंने नेत्र नहीं खोले, तब सगरपुत्र उनकी बाहें पकड़कर उन्हें लातोंसे मारने लगे। बहुत देर बाद कपिल मुनिको बाह्यज्ञान हुआ। वे विस्मित-से सगरपुत्रोंको देखने लगे।

साधु पुरुषोंका केवल अपमान अथवा उन्हें कटु वचन बोलना ही पूरे वंशके विनाशका कारण हो सकता है, वह अनेक दुःखोंका सृजन करनेवाला होता है। भगवान् संतोंका अपमान सहन नहीं कर सकते। संत, सती सदैव पृथ्वीका मङ्गल करते आये हैं।

सगरपुत्रोंके पापोंकी—दुष्कर्मोंकी इति हो गयी थी। जहाँ धन होता है, जवानी होती है और साथमें अविवेकता होती है, वहाँ पतन अवश्यम्भावी है। सगरपुत्रोंमें अविवेकता भरी थी, उन्होंने बिना कारण ही, बिना विचार किये ही महात्मा कपिलदेवको सताया था। देखते-ही-देखते भगवान् कपिलके नेत्रोंसे आग प्रकट हो गयी, जिससे सभी सगरपुत्र तत्काल भस्म हो गये। साधु-संतोंका कोप दुस्सह होता है।

देवदूतोंद्वारा महाराज सगरको अपने पुत्रोंके घृणित व्यवहारका समाचार विदित हुआ। अपने पुत्रोंके विनाशसे राजा सगरको दुःख नहीं हुआ, क्योंकि उनके दुश्चरितको वे भलीभाँति जानते थे। सगरने अपने पौत्र अंशुमान्को महात्मा कपिलदेवके पास उनका कोप शान्त करनेके लिये भेजा। अंशुमान् बुद्धिमान्, विद्वान् एवं भक्त पुरुष थे। वे पातालमें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मुनिवर कपिलकी गुफापर पहुँचे। अंशुमान्ने कपिलदेवजीको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वे विनयपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना करने लगे—'प्रभो! मेरे पिताके भाइयोंने आपके साथ दुष्टता की है, उन्हें क्षमा करें। वे अज्ञानी थे, आपकी महिमाका उन्हें ज्ञान नहीं था। आपका स्वभाव तो चन्दनकी तरह है। मेरे इन पितरोंका आप उद्धार करें। आप सदैव ही क्षमावान् हैं।'

अंशुमान्की प्रार्थनासे कपिलमुनि प्रसन्न हो गये। उन्होंने उसे आशीर्वाद दिया कि 'तुम्हारा पौत्र भगवान्की आराधनासे उन्हें प्रसन्नकर पुण्यसलिला गङ्गाको यहाँ लाकर सभी सगरपुत्रोंको निष्पाप बना देगा। उन सबको परम पदकी प्राप्ति होगी।' अंशुमान् कपिलदेवसे आशीर्वाद प्राप्त कर उनसे घोड़ा लेकर अपने पितामहके पास लौट आये। सगरने यज्ञको पूर्ण किया और भगवान् विष्णुकी आराधना करके वैकुण्ठकी प्राप्ति की।

अंशुमान्के दिलीप नामका पुत्र हुआ। भगीरथ इन राजा दिलीपके ही पुत्र थे। अपने पितरोंके उद्धार-हेतु भगीरथने दीर्घकालतक हिमालयपर कठोर तपस्या करके भगवान् विष्णु, ब्रह्मा तथा भगवान् शंकरकी आराधना की। उनके तपसे वे तीनों देव प्रसन्न हो गये। उन्हें प्रसन्न कर भगीरथ देवनदी गङ्गाको इस पृथ्वीपर ले आये। जगत्को एकमात्र पावन करनेवाली गङ्गा समस्त जगत्को पवित्र करती हुई राजा भगीरथके पीछे-पीछे आकर सगर-पुत्रोंके भस्मको प्लावित करती हुई बहने लगीं। उनके भस्मका गङ्गासे स्पर्श प्राप्त

होनेसे वे सभी विष्णुधाममें पहुँच गये।

पुण्यसलिला गङ्गाजीकी अमित महिमा है। कलियुगमें विशेषरूपसे गङ्गा एक महान् तीर्थ है। महापातकी भी गङ्गाजीके जलमें स्नान करनेसे पवित्र हो जाते हैं, इस विषयमें अन्यथा-विचार नहीं करना चाहिये। गङ्गाजलका सेवन पापोंको हर लेता है। प्राणीके शरीरमें गङ्गाजीके जलका एक वर्षतक प्रभाव विद्यमान रहता है।

जो देहधारी मनुष्य कहीं अज्ञात स्थानमें मर गये और उनके लिये यदि शास्त्रीय विधिसे तर्पण नहीं किया गया, ऐसे लोगोंको गङ्गाजीके जलसे उनकी हड्डियोंका संयोग होनेपर परलोकमें उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। गङ्गाजीके दर्शनसे मनुष्यको ज्ञान, अनुपम ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, आयु, यश तथा शुभ आश्रमोंकी प्राप्ति होती है। गङ्गाजीके स्मरणमात्रसे संसार-समुद्रमें डूबा हुआ मनुष्य यदि अशुभ कर्मोंसे युक्त हो तब भी उसका उद्धार हो जाता है। गङ्गाजीके जलमें स्नान करनेसे मनुष्यको उसी क्षण अपूर्व पुण्यकी प्राप्ति होती है, उसके सारे पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। गङ्गाजलमें अनन्त गुण है, उसके गुणोंका परिमाण बतानेकी शक्ति किसीमें भी नहीं है। गङ्गाजल-सेवनसे अनेक रोगोंका नाश होता है। जो मोक्षकी कामनासे गङ्गातटपर रहता है, वह अवश्य ही मोक्षका भागी होता है। विशेषतः कलियुगमें गङ्गादेवी सब पाप हर लेती हैं। जो मनुष्य नित्य-निरन्तर गङ्गाजीमें स्नान करता है, वह यहीं जीवन्मुक्त हो जाता है और मरनेपर भगवान् विष्णुके धाममें जाता है।　(ह० कृ० दु०)

वेदमालिको भगवत्प्राप्ति

प्राचीन कालकी बात है। रैवत-मन्वन्तरमें वेदमालि नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण रहते थे, जो वेदों और वेदाङ्गोंके पारदर्शी विद्वान् थे। उनके मनमें सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रति दया भरी हुई थी। वे सदा भगवान्‌की पूजामें लगे रहते थे, किंतु आगे चलकर वे स्त्री, पुत्र और मित्रोंके लिये धनोपार्जन करनेमें संलग्न हो गये। जो वस्तु नहीं बेचनी चाहिये, उसे भी वे बेचने लगे। उन्होंने रसका भी विक्रय किया। वे चाण्डाल आदिसे भी दान ग्रहण करते थे। उन्होंने पैसे लेकर तपस्या और व्रतोंका विक्रय किया और तीर्थयात्रा भी वे दूसरोंके लिये ही करते थे। यह सब उन्होंने अपनी स्त्रीको संतुष्ट करनेके लिये ही किया। इसी तरह कुछ समय बीत जानेपर ब्राह्मणके दो जुड़वे पुत्र हुए, जिनका नाम था—यज्ञमाली और सुमाली। वे दोनों बड़े सुन्दर थे। तदनन्तर पिता उन दोनों बालकोंका बड़े स्नेह और वात्सल्यसे अनेक प्रकारके साधनोंद्वारा पालन-पोषण करने लगे। वेदमालिने अनेक उपायोंसे यत्नपूर्वक धन एकत्र किया।

एक दिन मेरे पास कितना धन है यह जाननेके लिये उन्होंने अपने धनको गिनना प्रारम्भ किया। उनका धन संख्यामें बहुत ही अधिक था। इस प्रकार धनकी स्वयं गणना करके वे हर्षसे फूल उठे। साथ ही उस अर्थकी चिन्तासे उन्हें वड़ा विस्मय भी हुआ। वे सोचने लगे—'मैंने नीच पुरुषोंसे दान लेकर, न बेचने योग्य वस्तुओंका विक्रय करके तथा तपस्या आदिको भी बेचकर यह प्रचुर धन पैदा किया है, किंतु मेरी अत्यन्त दुःसह तृष्णा अब भी शान्त नहीं हुई। अहो! मैं तो समझता हूँ, यह तृष्णा बहुत बड़ी कष्टप्रदा है, समस्त क्लेशोंका कारण भी यही है। इसके कारण मनुष्य यदि समस्त कामनाओंको प्राप्त कर ले तो भी पुनः दूसरी वस्तुओंकी अभिलाषा करने लगता है। जरावस्था (बुढ़ापे) में आनेपर मनुष्यके केश पक जाते हैं, दाँत गल जाते हैं, आँख और कान भी जीर्ण हो जाते हैं, किंतु एक तृष्णा ही तरुण-सी होती जाती है। मेरी सारी इन्द्रियाँ शिथिल हो रही हैं, बुढ़ापेने मेरे बलको भी नष्ट कर दिया, किंतु तृष्णा तरुणी होकर और भी प्रबल हो उठी है। जिसके मनमें कष्टदायिनी तृष्णा मौजूद है, वह विद्वान् होनेपर भी मूर्ख, परम शान्त होनेपर भी अत्यन्त क्रोधी और बुद्धिमान् होनेपर भी अत्यन्त मूढ़बुद्धि हो जाता है। आशा मनुष्योंके लिये अजेय शत्रुकी भाँति भयंकर है, अतः विद्वान् पुरुष यदि शाश्वत सुख चाहे तो आशाको त्याग दे। बल हो, तेज हो, विद्या हो, यश हो, सम्मान हो, नित्य वृद्धि हो रही हो और उत्तम कुलमें जन्म हुआ हो तो भी यदि मनमें आशा एवं तृष्णा बनी हुई है तो वह बड़े वेगसे इन सबपर पानी फेर देती है। मैंने वड़े क्लेशसे यह धन कमाया है। अव मेरा शरीर भी गल गया। अतः अब मैं उत्साहपूर्वक परलोक सुधारनेका यत्न करूँगा।' ऐसा निश्चय करके वेदमालि धर्मके मार्गपर चलने

लगे। उन्होंने उसी क्षण सारे धनको चार भागोंमें बाँटा। अपने द्वारा पैदा किये उस धनमेंसे दो भाग तो ब्राह्मणने स्वयं रख लिये और शेष दो भाग दोनों पुत्रोंको दे दिये। तदनन्तर अपने किये हुए पापोंका नाश करनेकी इच्छासे उन्होंने जगह-जगह पौंसले, पोखरे, बगीचे और बहुत-से देवमन्दिर बनवाये तथा गङ्गाजीके तटपर अन्न आदिका दान भी किया।

इस प्रकार सम्पूर्ण धनका दान करके भगवान् विष्णुके प्रति भक्तिभावसे युक्त हो वे तपस्याके लिये नर-नारायणके आश्रम बदरीवनमें गये। वहाँ उन्होंने एक अत्यन्त रमणीय आश्रम देखा, जहाँ बहुत-से ऋषि-मुनि रहते थे। फल और फूलोंसे भरे हुए वृक्षसमूह उस आश्रमकी शोभा बढ़ा रहे थे। शास्त्र-चिन्तनमें तत्पर, भगवत्सेवापरायण तथा परब्रह्म परमेश्वरकी स्तुतिमें संलग्न अनेक वृद्ध महर्षि उस आश्रमकी श्रीवृद्धि कर रहे थे। वेदमालिने वहाँ जाकर जानन्ति नामवाले एक मुनिका दर्शन किया, जो शिष्योंसे घिरे बैठे थे और उन्हें परब्रह्म-तत्त्वका उपदेश कर रहे थे। वे मुनि महान् तेजके पुञ्ज-से जान पड़ते थे। उनमें शम, दम आदि सभी गुण विराजमान थे और राग आदि दोषोंका सर्वथा अभाव था। वे सूखे पत्ते खाकर रहा करते थे। वेदमालिने मुनिको देखकर उन्हें प्रणाम किया। जानन्तिने कन्द, मूल और फल आदि सामग्रियोंद्वारा नारायण-बुद्धिसे अतिथि वेदमालिका पूजन किया। अतिथि-सत्कार हो जानेपर वेदमालिने हाथ जोड़ विनयसे मस्तक झुकाकर वक्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षिसे कहा— 'भगवन्! मैं कृतकृत्य हो गया। आज मेरे सब पाप दूर हो गये। महाभाग! आप विद्वान् हैं, अतः ज्ञान देकर मेरा उद्धार कीजिये।'

ऐसा कहनेपर मुनिश्रेष्ठ जानन्ति बोले—'ब्रह्मन्! तुम प्रतिदिन सर्वश्रेष्ठ भगवान् विष्णुका भजन करो। सर्वशक्तिमान् श्रीनारायणका चिन्तन करते रहो। दूसरोंकी निन्दा और चुगली कभी न करो। महामते! सदा परोपकारमें लगे रहो। भगवान् विष्णुकी पूजामें मन लगाओ और मूर्खोंसे मिलना-जुलना छोड़ दो। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य छोड़कर लोकको अपने आत्माके समान देखो, इससे तुम्हें शान्ति मिलेगी। ईर्ष्या, दोषदृष्टि तथा दूसरेकी निन्दा भूलकर भी न करो। पाखण्डपूर्ण आचार, अहङ्कार और क्रूरताका सर्वथा त्याग करो। सब प्राणियोंपर दया तथा साधु पुरुषोंकी सेवा करते रहो। अपने किये हुए धर्मोंको पूछनेपर भी दूसरोंपर प्रकट न करो। दूसरोंको अत्याचार करते देखो, यदि शक्ति हो तो उन्हें रोको, असावधानी न करो। अपने कुटुम्बका विरोध न करते हुए सदा अतिथियोंका स्वागत-सत्कार करो। पत्र, पुष्प, फल, दूर्वा और पल्लवोंद्वारा निष्कामभावसे जगदीश्वर भगवान् नारायणकी पूजा करो। देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करो। विप्रवर! विधिपूर्वक अग्निकी सेवा भी करते रहो। देवमन्दिरमें प्रतिदिन झाड़ू लगाया करो और एकाग्रचित्त होकर उसकी लिपाई-पुताई भी किया करो। देवमन्दिरकी दीवारमें जहाँ-कहीं कुछ टूट-फूट गया हो, उसकी मरम्मत कराते रहो। मन्दिरमें प्रवेशका जो मार्ग हो, उसे पताका और पुष्प आदिसे सुशोभित करो तथा भगवान् विष्णुके गृहमें दीपक जलाया करो। प्रतिदिन यथाशक्ति पुराणकी कथा सुनो। उसका पाठ करो और वेदान्तका स्वाध्याय करते रहो। ऐसा करनेपर तुम्हें परम उत्तम ज्ञान प्राप्त होगा। ज्ञानसे समस्त पापोंका निश्चय ही निवारण एवं मोक्ष हो जाता है।'

जानन्ति मुनिके इस प्रकार उपदेश देनेपर परम बुद्धिमान वेदमालि उसी प्रकार ज्ञानके साधनमें लगे रहे। वे अपने-आपमें ही परमात्मा भगवान् अच्युतका दर्शन करके बहुत प्रसन्न हुए। 'मैं ही उपाधिरहित स्वयंप्रकाश निर्मल ब्रह्म हूँ'—ऐसा निश्चय करनेपर उन्हें परम शान्ति प्राप्त हुई।

मार्कण्डेयपुराण

महापुराणोंके अन्तर्गत मार्कण्डेय महापुराणका विशिष्ट स्थान है। इसमें चण्डीदेवीका माहात्म्य विस्तारपूर्वक वर्णित है। दुर्गासप्तशती मार्कण्डेयपुराणका ही एक अंश है। दुर्गासप्तशतीका भारतवर्षके वैष्णव, शाक्त, सौर, गाणपत्य सभी सम्प्रदायके लोग बड़ी श्रद्धासे पाठ करते हैं। शारदीय तथा वासन्ती पूजाके समयमें इसका विशेष प्रयोग होता है। मार्कण्डेयपुराणके ८१वें अध्यायसे ९३वें अध्यायतक दुर्गासप्तशतीका प्रंसग आता है।

इस पुराणमें द्रौपदीके पाँच पतियोंके वास्तविक स्वरूपका गूढ़ रहस्य वर्णित है। एक ही इन्द्रके तेज, बल, वीर्य, रूप और द्युति—इन पाँच अंशोंसे पाँचों पाण्डवोंकी उत्पत्तिका वर्णन है। इन्द्रके तेजने प्रथम धर्मरूप धारण कर युधिष्ठिर, बलने पवनरूपसे भीमसेन, अर्धवीर्यने अर्जुन एवं इन्द्रदेवके ही रूप और द्युतिने मिलकर अश्विनीकुमार-द्वयरूपसे माद्रीके गर्भसे नकुल और सहदेवके रूपमें जन्म लिया। एक ही इन्द्र पाँच अंशमें प्रकाशित होकर पाँच पाण्डवोंके रूपमें आये, अतः द्रौपदीके पाँच पति वस्तुतः एक ही हैं—ऐसा वर्णन मिलता है।

मार्कण्डेयपुराणमें विभिन्न उपाख्यान, माहात्म्य, कर्तव्य, लक्षण एवं धर्मका स्वरूप वर्णित है। इसमें राजा हरिश्चन्द्रका उपाख्यान, विश्वामित्रके तपोबलकी महिमा, पातिव्रत्यका माहात्म्य, मदालसाका चरित्र विशेष रूपसे उल्लिखित है। अत्रि-पत्नी अनसूयाके तीन संतानें थीं।—चन्द्र, दत्तात्रेय और दुर्वासा। इनमें दत्तात्रेय विष्णुके अवतार थे। इस पुराणमें इनकी विस्तृत कथाओंके अतिरिक्त योगसाधनाका भी उपदेश है। मदालसाद्वारा बताये गये गृहस्थ-धर्मके उपदेशोंमें पशु-पक्षी एवं श्वपच आदिको नित्य आहार-दानकी भी चर्चा है। कहा गया है कि प्रजाका अनुरञ्जन ही राजाका कर्तव्य है। देह और मन आत्मा नहीं हैं। दत्तात्रेयके उपदेशके अनुसार विषयासक्ति ही दुःखका कारण है। ममतामें आसक्त व्यक्ति योगी नहीं हो सकता। ज्ञानसे मुक्ति और अज्ञानसे बन्धन एवं दुःख होता है। ३९वें अध्यायमें योग-तत्त्व, ४२वें अध्यायमें ॐकार, ४३वें अध्यायमें अरिष्ट, ४५वें अध्यायमें सृष्टि-तत्त्व, ४६वें अध्यायमें ब्रह्माकी आयुका परिमाण आदि वर्णित है। इस पुराणमें भारत-भूभागका कर्मक्षेत्रके रूपमें वर्णन किया गया है। इसी प्रकार विभिन्न राजाओंका भी चरित्र वर्णित है तथा मन्वन्तर एवं मनुका विशद वर्णन उपलब्ध है। दार्शनिक एवं कर्मक्षेत्रका विस्तृत विवरण पठनीय है। भगवान्‌की मङ्गलमयी कथाओं और लोक-परलोककी कल्याणकारी बातोंका अनुपम भण्डार हमारे पुराण-साहित्यमें प्राप्त है। मार्कण्डेयमहापुराण उसी शृङ्खलाका अनुपम रत्न है।

कथा-आख्यान—

राजा खनित्रका सद्भाव

पूर्वकालमें प्रांशु नामक एक चक्रवर्ती सम्राट् थे। इनके ज्येष्ठ पुत्रका नाम प्रजाति था। प्रजातिके खनित्र, शौरि, उदावसु, सुनय, महारथ नामक पाँच पुत्र हुए। उनमें खनित्र ही अपने पराक्रमसे विख्यात राजा हुए थे। वे शान्त, सत्यवादी, शूर, सब प्राणियोंके हितैषी, स्वधर्मपरायण, सर्वदा वृद्ध-सेवी, विजय-सम्पन्न और सर्वलोकप्रिय थे। वे सदा यही चाहते थे कि सब प्राणी आनन्दका उपभोग करें। उन्होंने प्रीतिपूर्वक भाइयोंको विभिन्न राज्योंमें प्रतिष्ठित कर स्वयं सागरस्वरूप वस्त्रसे मण्डित पृथ्वीका पालन करने लगे। उन्होंने शौरिको पूर्वप्रान्तके, उदावसुको दक्षिणदेशके, सुनयको पश्चिमदेशके एवं महारथको उत्तरदेशके राज्यपदपर प्रतिष्ठित किया। खनित्र और उनके भाइयोंके मन्त्रिवंशके क्रममें प्राप्त विभिन्न गोत्रवाले मुनिगण पौरोहित्य-कर्मके लिये नियुक्त थे।

अत्रिकुलमें उत्पन्न सुहोत्र नामक द्विज शौरिके, गौतम-वंशमें उत्पन्न कुशावर्त उदावसुके, कश्यप-गोत्रमें उत्पन्न प्रमति राजा सुनयके तथा वसिष्ठ-गोत्रमें उत्पन्न वसिष्ठ

राजा महारथके पुरोहित थे। ये चारों राजा अपने राज्योंका उपभोग करते थे और खनित्र उन सभी महीपतियोंके अधीश्वर थे।

किसी समय शौरिके मन्त्री विश्ववेदीने अपने स्वामीसे कहा—'इस समय एकान्त है, इसलिये मैं कुछ कहना चाहता हूँ। यह समस्त पृथ्वी जिसके अधीन है, वह राजा और उसके पुत्र-पौत्रादि वंशधर ही सदा राजा होंगे। दूसरे भ्राताओंके अधिकारमें छोटे-छोटे राज्य हैं, जो पुत्रोंमें बँटकर छोटे होते जायँगे और अन्तमें उनके वंशधरोंको कृषिसे जीविका निर्वाह करनी पड़ेगी। राजन्! भाई कभी भाईका उद्धार करना नहीं चाहता, फिर भाईके पुत्रोंपर स्नेह कहाँसे हो सकता है, अतः मेरी तो यही मन्त्रणा है कि आप ही पितृ-पितामहादिके राज्यका शासन कीजिये। मैं इसीके लिये प्रयत्नशील हूँ।'

यह सुनकर राजाने कहा—'मन्त्रिवर! वर्तमान महीपाल (खनित्र) हमारे बड़े भाई हैं और हम उनके अनुज हैं। इसीसे वे समस्त पृथ्वीका शासन करते हैं और हम छोटे-छोटे राज्योंका उपभोग करते हैं। महामते! हम पाँच भाई हैं और पृथ्वी तो एक ही है! फिर समग्र पृथ्वीके ऐश्वर्यका स्वतन्त्ररूपसे उपभोग करनेमें हम सभी कैसे समर्थ हो सकते हैं?'

मन्त्रीने कहा—'मेरा अभिप्राय यह है कि उस पृथ्वीको आप ही स्वीकार करें और सबके प्रधान बनकर पृथ्वीका शासन करें।'

अन्तमें राजा शौरिके प्रतिज्ञा कर लेनेपर मन्त्री विश्ववेदीने उनके अन्यान्य भाइयोंको वशीभूत कर लिया और उनके पुरोहितोंको अपने यहाँ शान्तिकर्ममें नियुक्त कर खनित्रके अनिष्टके लिये अत्यन्त उग्र आभिचारिक (मन्त्र-तन्त्रादि) कर्मका अनुष्ठान प्रारम्भ करा दिया। उसने खनित्रके अन्तरङ्ग विश्वासपात्र सेवकोंको अपनी ओर मिला लिया और ऐसी चालें चलीं, जिनसे शौरिका राजदण्ड अप्रबाधित हो जाय। चारों पुरोहितोंके आभिचारिक प्रयोगसे चार भयानक कृत्याएँ उत्पन्न हुईं, जिन्हें देखकर ही छाती दहल जाती थी। वे हाथमें बड़े-बड़े शूल लिये हुए थीं। वे शीघ्रतापूर्वक खनित्रके पास गयीं, किंतु निष्पाप राजाके पुण्य-बलसे शीघ्र ही हतप्रभ हो गयीं। तब वे लौटकर उन चारों राजपुरोहितों और विश्ववेदीके निकट आयीं। उन्होंने शौरिको दुष्ट मन्त्रणा देनेवाले मन्त्री विश्ववेदी और उन पुरोहितोंको जलाकर भस्म कर दिया।'

उस समय सभी लोगोंको इस बातसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि भिन्न-भिन्न नगरोंमें निवास करनेवाले सब-के-सब एक साथ कैसे नष्ट हो गये। महाराज खनित्रने जब अपने भाइयोंके पुरोहितों और एक भाईके मन्त्री विश्ववेदीके एकाएक भस्म हो जानेका समाचार सुना, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने घरपर आये हुए महर्षि वसिष्ठसे भाइयोंके पुरोहितों और मन्त्रीके विनाशका कारण पूछा। तब महामुनि वसिष्ठने अन्तर्दृष्टिसे ज्ञात कर शौरि और उनके मन्त्रीमें जो बातचीत हुई थी तथा पुरोहितोंने जो कुछ किया था, वह सब वृत्तान्त कह सुनाया।

राजाने कहा—'मुने! मैं हतभागी और बड़ा अयोग्य हूँ। दैव मेरे प्रतिकूल है और मैं सब लोकोंमें निन्दित तथा पापी हूँ। मुझ अपुण्यात्माको धिक्कार है, क्योंकि मेरे कारण ही चार ब्राह्मणोंका विनाश हुआ है। अतः मुझसे बढ़कर भूमण्डलमें दूसरा पापी कौन हो सकता है?'

इस प्रकार पृथ्वीपति खनित्रने उद्विग्न होकर वनमें चले जानेकी इच्छासे अपने क्षुप नामक पुत्रका राज्याभिषेक कर दिया और पत्नियोंको साथ लेकर तपस्याके लिये वनमें गमन किया। उन नृपश्रेष्ठने वनमें जाकर वानप्रस्थ-विधानके अनुसार

साढ़े तीन सौ वर्षोंतक तपस्या की। अन्तमें उन वनवासी राजाने तपस्याद्वारा अपने शरीरको क्षीण कर सब इन्द्रियोंका निरोध करते हुए प्राणोंका विसर्जन कर दिया। अन्यान्य नृपति सैकड़ों अश्वमेध-यज्ञ करके भी जिस लोकको प्राप्त नहीं कर सकते, खनित्रने मृत्युके पश्चात् उस सर्वाभीष्टप्रद पुण्य लोकको प्राप्त कर लिया। (म० प्र० गो०)

राजा राज्यवर्धनको भास्करदेवका वरदान

पूर्वकालमें दम नामक एक राजा थे, उनके पुत्रका नाम राज्यवर्धन था। वे भलीभाँति पृथ्वीका पालन करते थे। उनके राष्ट्रमें धन-जन प्रतिदिन बढ़ रहा था। उनसे अन्य राजा और सम्पूर्ण राष्ट्र अत्यन्त प्रसन्न और संतुष्ट थे। उनका विवाह राजा विदूरथकी मानिनी नामकी कन्याके साथ हुआ था। किसी समय मानिनी राजसेवकोंके समक्ष ही राजाके सिरपर तेल लगा रही थी, उसी समय उसकी आँखोंसे आँसू गिर पड़े। वे अश्रुकण जब राजाके शरीरपर गिरे, तब उन्होंने मानिनीकी ओर देखा और पूछा—'मानिनि ! क्यों रो रही हो?' पर उसने कुछ भी उत्तर न दिया। राज्यवर्धनने पुनः मानिनीसे जिज्ञासा की—'तुम क्यों रो रही हो?'

तब उस सुमध्यमाने कहा—'राजन्! मुझ मन्दभागिनी-के शोकका कारण आपके केशोंके मध्य एक श्वेत केश है।' यह सुनकर राजा सभी उपस्थित राजगण और पौरजनोंके सम्मुख हँसते-हँसते पत्नीसे कहने लगे—'तुम रोओ मत! सभी प्राणियोंमें जन्म, वृद्धि और परिणाम आदि विकार लक्षित होते हैं, इसके लिये रोना व्यर्थ है।'

'हमने सभी वेदोंका अध्ययन, हजारों यज्ञोंका अनुष्ठान, पुत्रका उत्पादन, अतिशय दुर्लभ विषयोंका तुम्हारे साथ रहकर उपभोग, भलीभाँति पृथ्वीका पालन तथा बाल्यावस्था और युवावस्थाके योग्य सभी कार्योंका सम्पादन किया है। अब वृद्धावस्थामें हमारा वनमें निवास करना कर्तव्य है।' तब समीपस्थ राजा और पुरवासियोंने राजाको प्रणाम कर विनयपूर्वक कहा—'राजन्! आपकी पत्नीका रोना तो निरर्थक है, किंतु हमलोगों अथवा सभी प्राणियोंके लिये यह रोनेका समय उपस्थित हो गया है। यदि आप वन जायँगे तो हमलोग भी साथमें ही प्रस्थान करेंगे। इसके फलस्वरूप पृथ्वीपर रहनेवालोंकी निश्चय ही श्रौत-स्मार्त सभी क्रियाएँ समाप्त हो जायँगी।' पर राजाने वनमें जानेका दृढ़ निश्चय कर दैवज्ञोंसे पुत्रके राज्याभिषेकके लिये शुभ मुहूर्तके विषयमें पूछा।

वे बोले—'राजन्! आप प्रसन्न हों और कृपा करके पहले जैसे हमलोगोंका रक्षण करते थे, वैसे ही रक्षण करें। भूप! आपके वन जानेसे सभी लोग दुःखी हो जायँगे। इसलिये राजन्! आप वैसा ही कार्य करें जिससे सभी प्राणी कष्टका अनुभव न करें। हमलोग आपसे शून्य इस सिंहासनको देखना नहीं चाहते।' इस प्रकार उन लोगों तथा अन्यान्य ब्राह्मणों, पुरवासियों, राजाओं, मन्त्रियों, भृत्योंके द्वारा पुनः-पुनः निवेदन करनेपर भी राजाने वनवासकी इच्छाका परित्याग न कर—'यमराज कभी भी क्षमा न करेगा' यही उत्तर दिया। जब राजाने अपने वनवासके विचारका परित्याग नहीं किया तब ब्राह्मण, वृद्ध, पुरवासीगण, मन्त्री, सेवकवर्ग सब मिलकर विचार करने लगे कि अब क्या किया जाय। धार्मिकप्रवर राजाके प्रति प्रेमके कारण उन लोगोंने विचार कर यह निश्चय किया कि हमलोग भलीभाँति ध्यानरत होकर तपस्याके द्वारा भास्करकी आराधना करें और उनसे राजाके चिरजीवी होनेकी प्रार्थना करें। भास्करकी आराधनामें इन्हें इस प्रकार अतिशय प्रयत्नशील देखकर सुदाम नामक एक गन्धर्वने आकर कहा—'कामरूप नामक विशाल पर्वतपर सिद्धोंके द्वारा प्रतिष्ठित एक 'गुरु-विशाल' नामक वनमें शीघ्र जाकर वहाँ संयतचित्तसे सूर्यदेवकी आराधना करनेसे सभी कामनाओंकी प्राप्ति होगी।' गन्धर्वके इस वाक्यको सुनकर वे सभी अरण्यमें गये। वहाँ अतिशय भक्तिपूर्वक तीन मासतक उनके स्तव-पाठपूर्वक पूजा करनेपर भगवान् भास्कर संतुष्ट हुए। इसके बाद भास्कर स्वयं दुर्निरीक्ष्य होनेपर भी अपने दिव्यमण्डलसे निकलकर और उदयकालीन मण्डलसे समन्वित होकर उन आराधकोंको दर्शन दिया तथा वर माँगनेके लिये कहा। तब प्रजाओंने

कहा—'भास्करदेव ! यदि आप हमारी भक्तिसे प्रसन्न हैं, तो हमलोगोंके राजा राज्यवर्धन नीरोग, विजितशत्रु, पूर्णकोष और स्थिर-यौवन होकर दस सहस्र वर्षतक जीवित रहें।' 'तथास्तु' कहकर भगवान् भास्कर वहीं अन्तर्हित हो गये और प्रजाजन भी वर-लाभसे संतुष्ट होकर राजाके पास चले आये।

सहस्रांशुकी आराधना और उनसे वर-लाभकी जो ऽ घटना हुई थी, प्रजाओंने राजासे कह सुनायी। उसे ıकर नरेन्द्र-पत्नी मानिनी बहुत ही प्रसन्न हुईं, परंतु ाने इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहा और वे बहुत तक विचार करते रहे। फिर मानिनीने हृष्ट अन्तःकरणसे ासे कहा—'महीपाल ! आप बढ़ी हुई आयुसे अब ı प्रकारकी वृद्धि प्राप्त करें। आप नीरोग और स्थिरयौवन कर आजसे दस सहस्र वर्ष जीयेंगे, फिर भी आप न्न नहीं हो रहे हैं?'

यह सुनकर राजाने कहा—'मैं अकेला दस सहस्र वर्षतक जीऊँगा, किंतु तुम नहीं जीओगी। तब क्या तुम्हारे वियोगसे मुझे दुःख नहीं होगा? पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और अन्यान्य प्रिय बान्धवोंकी मृत्युको देखकर क्या मुझे कम दुःख होगा? जिन्होंने मेरे लिये अपनी शिराओंको जलाकर तपस्या की, वे मर जायँगे और मैं जीवित रहकर सुख-भोग करूँगा, क्या यह मेरे लिये धिक्कारकी बात नहीं है? मानिनि ! मुझे जो दस सहस्र वर्षोंकी आयु मिली है, यह मेरे लिये आपत्ति है। इससे कुछ भी अभ्युदय नहीं हुआ है। मैं आजसे उसी पर्वतपर जाकर संयत-चित्तसे निराहार रहकर भानुदेवको प्रसन्न करनेके लिये तपस्या करूँगा। वरानने ! जिस प्रकार मैं उनके प्रसादसे स्थिर-यौवन और निरामय होकर दस सहस्र वर्ष जीऊँगा, उसी प्रकार मेरी समस्त प्रजा, भृत्य, तुम, कन्या, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, सुहृद् आदि जीवित रहें। भगवान् भास्कर जबतक ऐसा अनुग्रह न करेंगे और जबतक मेरे प्राण निकल नहीं जायँगे, तबतक मैं उसी पर्वतपर निराहार रहकर तपश्चरण करूँगा।'

इसके बाद सपत्नीक नरपतिने पूर्वोक्त पर्वत-स्थित मन्दिरमें जाकर भास्करदेवकी आराधना करना प्रारम्भ कर दिया। निराहार रहनेसे दिन-दिन जिस प्रकार राजा कृश होने लगे, वैसे ही मानिनी भी कृश होने लगी। दोनोंको शीत, वायु और धूपके सहनेका अभ्यास हो गया तथा दोनों उग्र तपस्यामें निरत हो गये। इस प्रकार सूर्यदेवकी आराधना और तपस्या करते हुए एक वर्षसे भी अधिक काल व्यतीत हो गया। अन्तमें सूर्यदेव प्रसन्न हुए और दोनोंकी अभिलाषाके अनुसार समस्त भृत्य, पुत्र, पौत्र आदिके लिये दस सहस्र वर्षोंकी आयुका वर प्रदान किया। तदनन्तर राजा रानीके साथ राजधानीमें लौट आये और प्रसन्न-चित्तसे धर्मानुकूल प्रजापालन करते हुए दस हजार वर्षोंतक राज्य-शासन करते रहे। (म० प्र० गो०)

विपुलस्वान् मुनि और उनके पुत्रोंकी कथा

द्वापर युगकी बात है, मन्दपाल नामका एक पक्षी था। ıके चार पुत्र थे, जो बड़े बुद्धिमान् थे। उनमें द्रोण सबसे टा था। वह बड़ा धर्मात्मा और वेद-वेदाङ्गमें पारङ्गत था। उसने कन्धरकी अनुमतिसे उसकी पुत्री तार्क्षीसे विवाह किया। कुछ समय बाद तार्क्षी गर्भवती हुई और साढ़े तीन मासके पश्चात् वह कुरुक्षेत्र चली गयी। वहाँ वह

भवितव्यतावश कौरवों और पाण्डवोंके भयंकर युद्धके बीच घुस गयी। तब अर्जुनके बाणसे उसकी खाल उधड़ गयी, जिससे उसका पेट फट गया और उसके चार अंडे अपनी आयु शेष रहनेके कारण पृथ्वीपर ऐसे गिरे मानो रुईकी ढेरपर गिरे हों। उनके गिरते ही राजा भगदत्तके सुप्रतीक नामक गजराजका विशाल घंटा, जिसकी जंजीर अर्जुनके ही बाणसे कटी थी, नीचे गिर पड़ा। उसने भूतलको विदीर्ण कर दिया और मांसकी ढेरपर पड़े तार्क्षीके उन अंडोंको चारों ओरसे ढक दिया।

इसी समय शमीक ऋषि उस स्थानपर आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने उन पक्षि-शावकोंकी चीं-चींकी ध्वनि सुनी। तब उन्होंने शिष्योंके साथ उस घंटेको ऊपर उठाया और उन अनाथ एवं अजातपक्ष पक्षि-शावकोंको देखा। फिर तो ...हेंने शिष्योंसे कहा—'इन पक्षि-शावकोंको आश्रममें ले ...लो और इन्हें ऐसे स्थानपर रखो, जहाँ बिलाव आदिका ...य न हो।'

मुनिकुमार पक्षि-शावकोंको लेकर आश्रममें आये।

...हाँ मुनिवर शमीकने प्रतिदिन भोजन, जल और संरक्षणके ...द्वारा उनका पालन-पोषण किया। एक मासमें ही वे सूर्यदेवके रथमार्गपर उड़ने लगे, जिन्हें कौतुकवश आँखें फाड़कर मुनिकुमार देखा करते थे।

जब उन पक्षि-शावकोंने नगरोंसे भरी, समुद्रसे घिरी, नदियोंवाली और रथके पहियेके समान गोल पृथ्वीका परिभ्रमण कर लिया, तब वे आश्रममें लौट आये। उस समय ऋषि शमीक शिष्योंपर अनुकम्पा करके प्रवचनद्वारा धर्म-कर्मका निर्णय कर रहे थे। उन पक्षि-शावकोंने उनकी प्रदक्षिणा करके उनके चरणोंकी वन्दना की और कहा—'मुनिवर! आपने हमें भयंकर मृत्युसे मुक्त किया है, अतः आप हमारे पिता हैं और गुरु भी। जब हमलोग माँके पेटमें थे, तभी हमारी माँ मर गयी और पिताने भी हमारा पालन-पोषण नहीं किया। आपने हमें जीवनदान दिया है, जिससे हम बालक बचे हुए हैं। इस पृथ्वीपर आपका तेज अप्रतिहत है। आपने ही हाथीका घंटा उठाकर कीड़ोंकी भाँति सूखते हुए हमलोगोंके कष्टोंका निवारण किया है।'

उन पक्षि-शावकोंकी ऐसी स्पष्ट शुद्ध वाणी सुनकर शमीक मुनिने उनसे पूछा—'ठीक-ठीक बताओ, तुम्हें यह मानव-वाणी कैसे मिली? साथ ही यह भी बताओ कि किसके शापसे तुममें रूप और वाणीका ऐसा परिवर्तन हो गया?'

पक्षियोंने कहा—विपुलस्वान् नामके एक प्रसिद्ध महामुनि थे। उनके दो पुत्र हुए—सुकृष और तुम्बुरु। हम चारों यतिराज सुकृषके ही पुत्र हैं और सदा विनम्रतापूर्वक व्यवहार और भक्तिभावसे उन्हींकी सेवा-शुश्रूषामें लगे रहे हैं। तपश्चरणमें लीन अपने पिता सुकृष मुनिकी इच्छाके अनुसार हमने समिधा, पुष्प और भोज्य पदार्थ सब कुछ उन्हें समर्पित किया है। इस प्रकार जब हम वहाँ रहते रहे, तब एक बार हमारे आश्रममें विशाल देहधारी टूटे पंखवाले वृद्धावस्थाग्रस्त ताम्रवर्णके नेत्रोंसे युक्त, शिथिल-शरीर पक्षीके रूपमें देवराज इन्द्र पधारे। वे सुकृष ऋषिकी परीक्षा लेने आये थे। उनका आगमन ही हमलोगोंपर शापका कारण बन गया।

पक्षी-रूपी इन्द्रने कहा—'पूज्य विप्रवर! मैं बुभुक्षित हूँ, आप मेरी प्राण-रक्षा करें। मैं भोजनकी याचना करता

हूँ। आप ही हमारे एकमात्र उद्धारक हैं। मैं विन्ध्याचलके शिखरपर रहनेवाला हूँ, जहाँसे उड़ान भरनेवाले पक्षियोंके पंखोंकी वेगयुक्त वायुसे मैं नीचे गिर पड़ा। गिरनेके कारण मैं सप्ताहभर बेसुध पृथ्वीपर पड़ा रहा। आठवें दिन मेरी चेतना लौटी। तब क्षुधासे पीड़ित मैं आपकी शरणमें आया हूँ। मैं बड़ा दुःखी हूँ, मेरा मन बड़ा खिन्न है और मेरी प्रसन्नता नष्ट हो चुकी है। बस, मुझे भोजनकी अभिलाषा है। विप्रवर ! आप मुझे कुछ खानेको दें, जिससे मेरे प्राण बच जायँ।'

ऐसा कहे जानेपर सुकृष ऋषिने पक्षिरूपधारी इन्द्रसे कहा—'प्राणरक्षाके लिये तुम जो भी भोजन चाहो, मैं दूँगा।' ऐसा कहकर ऋषिने फिर उस पक्षीसे पूछा—'तुम्हारे लिये मैं किस प्रकारके भोजनकी व्यवस्था करूँ ?' यह सुनकर उसने कहा—'नर-मांस मिलनेपर मैं पूर्णरूपसे संतृप्त हो जाऊँगा।'

ऋषिने पक्षीसे कहा—तुम्हारी कुमारावस्था एवं युवावस्था समाप्त हो चुकी है, अब तुम बुढ़ापेकी अवस्थामें हो। इस अवस्थामें मनुष्यकी सभी इच्छाएँ दूर हो जाती हैं। फिर भी ऐसा क्यों है कि तुम इतने क्रूर-हृदय हो ? कहाँ तो मनुष्यका मांस और कहाँ तुम्हारी अन्तिम अवस्था, इससे तो यही सिद्ध होता है कि दुष्टात्मा लोगोंमें कभी भी प्रशमभावना नहीं हो पाती। अथवा मेरा यह सब कहना निष्प्रयोजन है, क्योंकि जब मैंने वचन दे दिया तब तो तुम्हें भोजन देना ही है।

उससे ऐसा कहकर और नर-मांस देनेका निश्चय करके विप्रवर सुकृषने अविलम्ब हमलोगोंको पुकारा और हमारे गुणोंकी प्रशंसा की। तत्पश्चात् उन्होंने हमलोगोंसे, जो विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़े बैठे थे, बड़ा कठोर वचन कहा—'अरे पुत्रो ! तुम सब आत्मज्ञानी होकर पूर्णमनोरथ हो चुके हो, किंतु जैसे मुझपर अतिथि-ऋण है, वैसे ही तुमपर भी है, क्योंकि तुम्हीं मेरे पुत्र हो। यदि तुम अपने गुरुको जो तुम्हारा एकमात्र पिता है, पूज्य मानते हो तो निष्कलुष हृदयसे मैं जैसा कहता हूँ, वैसा करो।' उनके ऐसा कहनेपर गुरुके प्रति श्रद्धालु हमलोगोंके मुँहसे निकल पड़ा कि 'आपका जो भी आदेश होगा, उसके विषयमें आप यही सोचें कि उसका पालन हो गया।'

ऋषिने कहा—'भूखे और प्याससे व्याकुल हुआ यह पक्षी मेरी शरणमें आया है। तुमलोगोंके मांससे इसकी क्षणभरके लिये तृप्ति हो जाती तो अच्छा होता। तुमलोगोंके रक्तसे इसकी प्यास बुझ जाय, इसके लिये तुमलोग अविलम्ब तैयार हो जाओ।' यह सुनकर हमलोग बड़े दुःखी हुए और हमारा शरीर काँप उठा, जिससे हमारे भीतरका भय बाहर निकल पड़ा और हम कह उठे—'ओह ! यह काम हमसे नहीं हो सकता।'

हमलोगोंकी इस प्रकारकी बात सुनकर सुकृष मुनि क्रोधसे जल-भुन उठे और बोले—'तुमलोगोंने मुझे वचन देकर भी उसके अनुसार कार्य नहीं किया, इसलिये मेरी शापाग्निमें जलकर पक्षियोनिमें जन्म लोगे।'

हमलोगोंसे ऐसा कहकर उन्होंने उस पक्षीसे कहा—'पक्षिराज ! मुझे अपना अन्त्येष्टि-संस्कार और शास्त्रीय विधिसे श्राद्धादि कर लेने दो, इसके बाद तुम निश्चिन्त होकर यहीं मुझे खा लेना। मैंने अपना ही शरीर तुम्हारे लिये भक्ष्य बना दिया है।' 'आप अपने योगबलसे अपना यह शरीर छोड़ दें, क्योंकि मैं जीवित जन्तुको नहीं खाता।' पक्षीके इस वचनको सुनकर मुनि सुकृष योगयुक्त हो गये। उनके शरीर-त्यागके निश्चयको जानकर इन्द्रने अपना वास्तविक शरीर धारण कर लिया और कहा—'विप्रवर ! आप अपनी बुद्धिसे ज्ञातव्य वस्तुको जान लीजिये। आप महाबुद्धिमान् और परम पवित्र हैं। आपकी परीक्षा लेनेके लिये ही मैंने यह अपराध किया है। आजसे आपमें ऐन्द्र अथवा परमैश्वर्ययुक्त ज्ञान प्रादुर्भूत होगा और आपके तपश्चरण तथा धर्म-कर्ममें कोई भी विघ्न उपस्थित न होगा।'

ऐसा कहकर जब इन्द्र चले गये, तब हमलोगोंने अपने क्रुद्ध पिता महामुनि सुकृषसे सिर झुकाकर निवेदन किया—'पिताजी ! हम मृत्युसे भयभीत हो गये थे, हमें जीवनसे मोह हो गया था, आप हम दोनोंको क्षमा-दान दें।' तब उन्होंने कहा—'मेरे बच्चो ! मेरे मुँहसे जो बात निकल चुकी है, वह कभी मिथ्या न होगी। आजतक मेरी वाणीसे असत्य कभी भी नहीं निकला है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि दैव ही समर्थ है और पौरुष व्यर्थ है। भाग्यसे प्रेरित होनेसे ही मुझसे ऐसा अचिन्तित अकार्य हो गया है। अब तुमलोगोंने मेरे सामने नतमस्तक होकर मुझे प्रसन्न किया है, इसलिये पक्षीकी योनिमें पहुँच जानेपर भी तुमलोग परमज्ञानको प्राप्त कर लोगे।

भगवन्! इस प्रकार पहले दुर्दैववश पिता सुकृष ऋषिने हमें शाप दिया था, जिससे बहुत समयके बाद हमलोगोंने (मानव-योनि छोड़कर) दूसरी योनिमें जन्म लिया है।

उनकी ऐसी बात सुनकर परमैश्वर्यवान् शमीक मुनिने समस्त समीपवर्ती द्विजगणको सम्बोधित करके कहा—'मैंने आपलोगोंके समक्ष पहले ही कहा था कि ये पक्षी साधारण पक्षी नहीं हैं, ये परमज्ञानी हैं, जो अमानुषिक युद्धमें भी मरनेसे बच गये।' इसके बाद प्रसन्नहृदय महात्मा शमीक मुनिकी आज्ञा पाकर वे पक्षी पर्वतोंमें श्रेष्ठ, वृक्षों और लताओंसे भरे विन्ध्याचल पर्वतपर चले गये।

वे धर्मपक्षी आजतक उसी विन्ध्यपर्वतपर निवास कर रहे हैं और तपश्चरण तथा स्वाध्यायमें लगे हैं एवं समाधि-सिद्धिके लिये दृढ़ निश्चय कर चुके हैं।

(म० प्र० गो०)

राजा विदूरथकी कथा

विख्यातकीर्ति राजा विदूरथके सुनीति और सुमति नामक दो पुत्र थे। एक समय विदूरथ शिकारके लिये वनमें गये, वहाँ ऊपर निकले हुए पृथ्वीके मुखके समान एक विशाल गड्ढेको देखकर वे सोचने लगे कि यह भीषण गर्त क्या है? यह भूमि-विवर तो नहीं हो सकता? वे इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि उस निर्जन वनमें उन्होंने सुव्रत नामक एक तपस्वी ब्राह्मणको समीप आते हुए देखा। आश्चर्यचकित राजाने उस तपस्वीको भूमिके उस भयंकर गड्ढेको दिखाकर पूछा कि 'यह क्या है?'

ऋषिने कहा—'महीपाल! क्या आप इसे नहीं जानते? रसातलमें अतिशय बलशाली उग्र नामका दानव निवास करता है। वह पृथ्वीको विदीर्ण करता है, अतः उसे कुजृम्भ कहा जाता है। पूर्वकालमें विश्वकर्माने सुनन्द नामक जिस मूसलका निर्माण किया था, उसे इस दुष्टने चुरा लिया है। यह उसी मूसलसे रणमें शत्रुओंको मारता है। पातालमें निवास करता हुआ वह असुर उस मूसलसे पृथ्वीको विदीर्ण कर अन्य सभी असुरोंके लिये द्वारोंका निर्माण करता है। उसने ही उस सुन्दर मूसलरूपी शस्त्रसे पृथ्वीको इस स्थानपर विदीर्ण किया है। उसपर विजय पाये बिना आप कैसे पृथ्वीका भोग करेंगे? मूसलरूपी आयुधधारी महाबली उग्र यज्ञोंका विध्वंस, देवोंको पीड़ित और दैत्योंको संतुष्ट करता है। यदि आप पातालमें रहनेवाले उस शत्रुको मारेंगे तभी सम्राट् बन सकेंगे। उस मूसलको लोग सौनन्द कहते हैं। मनीषिगण उस मूसलके बल और अबलके प्रसंगमें कहते हैं कि उस मूसलको जिस दिन नारी छू लेती है, उसी क्षण वह शक्तिहीन हो जाता है और दूसरे दिन शक्तिशाली हो जाता है। आपके नगरके समीपमें ही उसने पृथ्वीमें छिद्र कर दिया है, फिर आप कैसे निश्चिन्त रहते हैं?' ऐसा कहकर ऋषिके प्रस्थान करनेपर राजा अपने नगरमें लौटकर उस विषयपर मन्त्रियोंके साथ विचार करने लगे। मूसलके प्रभाव एवं उसकी शक्तिहीनता आदिके विषयमें उन्होंने जो कुछ सुना था, वह सब मन्त्रियोंके सम्मुख व्यक्त किया। मन्त्रियोंसे परामर्श करते समय राजाके समीपमें बैठी हुई उनकी पुत्री मुदावतीने भी सभी बातें सुनीं।

इस घटनाके कुछ दिनोंके बाद अपनी सखियोंसे घिरी हुई मुदावती जब उपवनमें थी, तब कुजृम्भ दैत्यने उस वयस्क कन्याका अपहरण कर लिया। यह सुनकर राजाके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उन्होंने अपने दोनों कुमारोंसे कहा कि 'तुमलोग शीघ्र जाओ और निर्विन्ध्या नदीके तट-प्रान्तमें जो गड्ढा है, उससे रसातलमें जाकर मुदावतीका अपहरण करनेवालेका विनाश करो।'

इसके बाद परम क्रुद्ध दोनों राजकुमारोंने उस गड्ढेको प्राप्त कर पैरके चिह्नोंका अनुसरण करते हुए सेनाओंके साथ वहाँ पहुँचकर कुजृम्भके साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। मायाके बलसे बलशाली दैत्योंने सारी सेनाको मारकर उन दोनों राजकुमारोंको भी बंदी बना लिया। पुत्रोंके बंदी होनेका समाचार सुनकर राजाको अतिशय दुःख हुआ। उन्होंने सैनिकोंको बुलाकर कहा—'जो उस दैत्यको मारकर मेरी कन्या और पुत्रोंको मुक्त करायेगा, उसीको मैं अपनी विशालनयना कन्या मुदावतीको दे दूँगा।'

राजाने पुत्रों और कन्याके बन्धन-युक्त होनेसे निराश होकर अपने नगरमें भी उपर्युक्त घोषणा करा दी। उस घोषणाको शस्त्रविद्यामें निपुण भलन्दनके पुत्र बलवान्

वत्सप्रीने भी सुना। उसने अपने पिताके श्रेष्ठ मित्र महाराजसे विनयावनत हो प्रणाम कर कहा—'आप मुझे आज्ञा दें, मैं आपके प्रतापसे उस दैत्यको मारकर आपके दोनों पुत्रों और कन्याको छुड़ा लाऊँगा।'

अपने प्रिय मित्रके पुत्रको आनन्दपूर्वक आलिङ्गन कर राजाने कहा—'कार्यकी सिद्धिके लिये तुम शीघ्र प्रस्थान करो।' वत्सप्री तलवार, धनुष, गोधा, अङ्गुलित्र आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो उस गर्तके द्वारा शीघ्र ही पातालमें चला गया। उस राजपुत्रने अपने धनुषकी डोरीका भयंकर शब्द किया, जिससे निखिल पाताल-विवर गूँज उठा। प्रत्यञ्चाके शब्दको सुनकर अतिशय क्रोधाविष्ट दानवपति कुजृम्भ अपनी सेनाके साथ आया। फिर तो दोनों सेनाओंमें युद्ध छिड़ गया। वह दानव तीन दिनोंतक उसके साथ युद्ध करनेके बाद कोपसे आविष्ट हो मूसल लानेके लिये दौड़ा। प्रजापतिके द्वारा निर्मित गन्ध, माल्य तथा धूपसे पूजित वह मूसल अन्तःपुरमें रखा रहता था। उधर मूसलके प्रभावसे अवगत मुदावतीने श्रद्धावनत होकर उस मूसलका पुनः-पुनः स्पर्श किया।

इसके बाद असुरपतिने रणभूमिमें उपस्थित होकर उस मूसलसे युद्ध आरम्भ किया, किंतु शत्रुओंके बीच उसका पात व्यर्थ होने लगा। परमास्त्र सौनन्द मूसलके निर्वीर्य होनेपर वह अन्य अस्त्र-शस्त्रके द्वारा ही संग्राममें शत्रुके साथ युद्ध करने लगा। राजकुमारने उसे रथहीन कर दिया और कालाग्निके समान आग्नेयास्त्रसे उसे कालके गालमें भेज दिया। तत्क्षण पातालमें स्थित सर्पोंने महान् आनन्द मनाया। राजपुत्रपर पुष्पवृष्टि होने लगी। गन्धर्वोंने संगीत आरम्भ किया और देववाद्य बजने लगे। उस राजपुत्रने दैत्यका विनाश कर सुनीति और सुमति नामक दोनों राजपुत्रों एवं कृशाङ्गी मुदावतीको मुक्त किया।

कुजृम्भके मारे जानेपर शेष नामक नागराजने उस मूसलको ले लिया। तपोधन नागराज सानन्द उस मुदावतीके अभिप्रायको समझकर उससे संतुष्ट हुआ। 'स्त्रियोंके करतलके स्पर्शसे मूसल गत-शक्ति हो जाता है।' यह बात मुदावतीको ज्ञात थी, इसीसे उस दिन उसने मूसलको बार-बार स्पर्श किया था। नागराजने अतिशय आनन्दके साथ सौनन्द मूसलका गुण जाननेवाली मुदावतीका नाम सौनन्दा रखा। राजपुत्र वत्सप्री भी दोनों राजकुमारों और राजकन्याको शीघ्र ही राजाके पास ले आया और प्रणाम कर निवेदन किया— 'तात! आपकी आज्ञाके अनुसार

आपके दोनों कुमारों और मुदावतीको छुड़ा लाया हूँ, अब मेरा क्या कर्तव्य है, आज्ञा प्रदान करें।' राजाने कहा—'आज मैं तीन कारणोंसे देवोंके द्वारा भी प्रशंसित हुआ हूँ—प्रथम तुमको जामाताके रूपमें प्राप्त किया, द्वितीय शत्रु विनष्ट हुआ, तृतीय मेरे दोनों पुत्र और कन्या वहाँसे अक्षत-शरीर पुनः लौट आये। राजपुत्र! आज शुभ दिनमें मेरी आज्ञाके अनुसार तुम मेरी पुत्री सुन्दरी मुदावतीका प्रीतिपूर्वक पाणिग्रहण करो और मुझे सत्यवादी बनाओ।'

वत्सप्रीने कहा—'तातकी आज्ञाका पालन मुझे अवश्य करना चाहिये, अतः आप जो कहेंगे मैं उसका पालन करूँगा, आप जानते ही हैं कि पूज्यजनोंकी आज्ञाके पालनसे मैं कभी भी पराङ्मुख नहीं होता।'

इसके बाद राजेन्द्र विदूरथने कन्या मुदावती और भलन्दनपुत्र वत्सप्रीका विवाह सम्पन्न किया। विवाह हो जानेपर दम्पति रमणीय स्थानों और महलके शिखरोंपर विहार करने लगे। कालक्रमसे वत्सप्रीके पिता भलन्दन वृद्ध होकर वनमें चले गये और वत्सप्री राजा होकर यज्ञोंका अनुष्ठान एवं धर्मानुसार प्रजाका पालन करने लगे। प्रजा भी उन महात्मासे पुत्रके समान प्रतिपालित होकर उत्तरोत्तर समृद्धिशाली होने लगी। (म० प्र० गो०)

श्रीदुर्गासप्तशतीकी संक्षिप्त कथा

श्रीव्यास-रचित मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत दुर्गासप्तशती विविध पुरुषार्थ-साधिका, कर्मभक्तिज्ञानोत्तमसिद्धान्त-प्रतिपादिका, वेदवेदान्ततत्त्वप्रकाशिका, सकलभक्ताभीष्टवरप्रदा, अभयदा एवं अशरणशरणदा है। इसमें भगवती दुर्गाके तीन चरित्रोंका वर्णन है, जिनका संक्षिप्त विवरण क्रमशः नीचे दिया जा रहा है—

प्रथम चरित्र

दूसरे मनुके राज्याधिकारमें 'सुरथ' नामक चैत्रवंशोद्भव राजा क्षितिमण्डलका अधिपति हुआ। शत्रुओं तथा दुष्ट मन्त्रियोंके कारण उसका राज्य, कोषादि उसके हाथसे निकल गया। फिर वह मेधा नामक ऋषिके आश्रममें पहुँचा और वहाँ भी मोहवश प्रजा, पुर, शूरहस्ती, धन, कोष और दासोंकी अर्थात् नाशवान् पदार्थोंकी चिन्तामें लगकर दुःखी हुआ। केवल आत्मज्ञ पुरुष ही स्वराट् होता है। सुरथकी वही दशा हुई जो भगवद्भक्तिविहीन पुरुषोंकी होती है। इसी आश्रममें 'समाधि' नामके वैश्यसे राजा सुरथकी भेंट हुई। यद्यपि यह वैश्य अपने धन-लोलुप स्त्री-पुत्रोंद्वारा घरसे बहिष्कृत कर दिया गया था, तब भी उनके दुर्व्यवहारको विस्मृत कर उनके वियोगमें दुःखी था। इस प्रकार ये दोनों दुःखी होकर 'मेधा' ऋषिके समीप पहुँचे। वहाँ दोनों शास्त्रानुसार सम्भाषण करके बैठ गये। राजाने ऋषिसे कहा—भगवन्! जिस विषयमें हम दोनोंको दोष दीखता है, उसकी ओर भी ममतावश हमारा मन जाता है। मुनिवर! यह क्या बात है कि ज्ञानी (बुद्धिमान्) पुरुषोंको भी मोह होता है?'

महर्षि मेधा उन्हें मोहका कारण बतलाते हुए कहने लगे—'इसमें कुछ आश्चर्य नहीं करना चाहिये कि ज्ञानियोंको भी मोह होता है; क्योंकि महामाया भगवती अर्थात् भगवान् विष्णुकी योगनिद्रा (तमोगुणप्रधान शक्ति) ज्ञानी (बुद्धिमान्) पुरुषोंके चित्तको भी बलपूर्वक खींचकर मोहयुक्त कर देती है,

'नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।'

अर्थात् वे जगन्मूर्ति नित्या हैं और उन्हींसे यह सब व्याप्त है। तब भी उनकी उत्पत्ति देवताओंकी कार्यसिद्धिके अर्थ कही जाती है।

जब प्रलयके पश्चात् भगवान् विष्णु शेषशय्यापर योगनिद्रामें निमग्न हुए, तब उनके कर्ण-मलसे मधु और कैटभ नामक दो असुर उत्पन्न होकर हरि-नाभि-कमल-स्थित ब्रह्माजीको ग्रसने चले। तब ब्रह्माजी भगवान्‌की योग-निद्राकी षट्तुरीया शक्तिके रूपमें सुन्दर सरस स्तुति परम प्रेमपूर्वक करने लगे और उसमें उन्होंने ये तीन प्रार्थनाएँ कीं— (१) भगवान् विष्णुको जगा दीजिये, (२) उन्हें असुरद्वयके संहारार्थ उद्यत कीजिये और (३) असुरोंको विमोहित करके भगवान्‌द्वारा उनका नाश करवाइये। श्रीभगवतीने स्तुतिसे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीको दर्शन दिया। उससे (योगनिद्रासे) मुक्त होकर भगवान् उठे और असुरोंसे युद्ध करने लगे। तदुपरान्त असुरयुगल योगनिद्राके द्वारा मोहित हुए और उन्होंने भगवान्‌से वरदान माँगनेको कहा। अन्तमें उसी वरदानके अनुसार वे भगवान्‌के हाथों मारे गये।

इस कथासे तीन बातोंका निष्कर्ष निकलता है— (१) ब्रह्माको गुणत्रयसे परे परमभाव—परमा-शक्तिका ज्ञान। (२) प्रकृतिके गुणत्रयका कार्य, उसके कर्तृत्वका भान और (ब्रह्माका) अपने सृष्टिकर्तृत्वमें निरहंकारत्व तथा (३) मधु-कैटभ अर्थात् सुकृत-दुष्कृतमें निर्ममत्व एवं उसके

वत्सप्रीने भी सुना। उसने अपने पिताके श्रेष्ठ मित्र महाराजसे विनयावनत हो प्रणाम कर कहा—'आप मुझे आज्ञा दें, मैं आपके प्रतापसे उस दैत्यको मारकर आपके दोनों पुत्रों और कन्याको छुड़ा लाऊँगा।'

अपने प्रिय मित्रके पुत्रको आनन्दपूर्वक आलिङ्गन कर राजाने कहा—'कार्यकी सिद्धिके लिये तुम शीघ्र प्रस्थान करो।' वत्सप्री तलवार, धनुष, गोधा, अङ्गुलित्र आदि अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो उस गर्तके द्वारा शीघ्र ही पातालमें चला गया। उस राजपुत्रने अपने धनुषकी डोरीका भयंकर शब्द किया, जिससे निखिल पाताल-विवर गूँज उठा। प्रत्यञ्चाके शब्दको सुनकर अतिशय क्रोधाविष्ट दानवपति कुजृम्भ अपनी सेनाके साथ आया। फिर तो दोनों सेनाओंमें युद्ध छिड़ गया। वह दानव तीन दिनोंतक उसके साथ युद्ध करनेके बाद कोपसे आविष्ट हो मूसल लानेके लिये दौड़ा। प्रजापतिके द्वारा निर्मित गन्ध, माल्य तथा धूपसे पूजित वह मूसल अन्तःपुरमें रखा रहता था। उधर मूसलके प्रभावसे अवगत मुदावतीने श्रद्धावनत होकर उस मूसलका पुनः-पुनः स्पर्श किया।

इसके बाद असुरपतिने रणभूमिमें उपस्थित होकर उस मूसलसे युद्ध आरम्भ किया, किंतु शत्रुओंके बीच उसका पात व्यर्थ होने लगा। परमास्त्र सौनन्द मूसलके निर्वीर्य होनेपर वह दैत्य अस्त्र-शस्त्रके द्वारा ही संग्राममें शत्रुके साथ युद्ध करने लगा। राजकुमारने उसे रथहीन कर दिया और कालाग्निके समान आग्नेयास्त्रसे उसे कालके गालमें भेज दिया। तत्क्षण पातालमें स्थित सर्पोंने महान् आनन्द मनाया। राजपुत्रपर पुष्पवृष्टि होने लगी। गन्धर्वोंने संगीत आरम्भ किया और देववाद्य बजने लगे। उस राजपुत्रने दैत्यका विनाश कर सुनीति और सुमति नामक दोनों राजपुत्रों एवं कृशाङ्गी मुदावतीको मुक्त किया।

कुजृम्भके मारे जानेपर शेष नामक नागराजने उस मूसलको ले लिया। तपोधन नागराज सानन्द उस मुदावतीके अभिप्रायको समझकर उससे संतुष्ट हुआ। 'स्त्रियोंके करतलके स्पर्शसे मूसल विगत-शक्ति हो जाता है।' यह बात मुदावतीको ज्ञात थी, इसीसे उस दिन उसने मूसलको बार-बार स्पर्श किया था। नागराजने अतिशय आनन्दके साथ सौनन्द मूसलका गुण जाननेवाली मुदावतीका नाम सौनन्दा रखा। राजपुत्र वत्सप्री भी दोनों राजकुमारों और राजकन्याको शीघ्र ही राजाके पास ले आया और प्रणाम कर निवेदन किया— 'तात! आपकी आज्ञाके अनुसार

आपके दोनों कुमारों और मुदावतीको छुड़ा लाया हूँ, अब मेरा क्या कर्तव्य है, आज्ञा प्रदान करें।' राजाने कहा—'आज मैं तीन कारणोंसे देवोंके द्वारा भी प्रशंसित हुआ हूँ—प्रथम तुमको जामाताके रूपमें प्राप्त किया, द्वितीय शत्रु विनष्ट हुआ, तृतीय मेरे दोनों पुत्र और कन्या वहाँसे अक्षत-शरीर पुनः लौट आये। राजपुत्र! आज शुभ दिनमें मेरी आज्ञाके अनुसार तुम मेरी पुत्री सुन्दरी मुदावतीका प्रीतिपूर्वक पाणिग्रहण करो और मुझे सत्यवादी बनाओ।'

वत्सप्रीने कहा—'तातकी आज्ञाका पालन मुझे अवश्य करना चाहिये, अतः आप जो कहेंगे मैं उसका पालन करूँगा, आप जानते ही हैं कि पूज्यजनोंकी आज्ञाके पालनसे मैं कभी भी पराङ्मुख नहीं होता।'

इसके बाद राजेन्द्र विदूरथने कन्या मुदावती और भलन्दनपुत्र वत्सप्रीका विवाह सम्पन्न किया। विवाह हो जानेपर दम्पति रमणीय स्थानों और महलके शिखरोंपर विहार करने लगे। कालक्रमसे वत्सप्रीके पिता भलन्दन वृद्ध होकर वनमें चले गये और वत्सप्री राजा होकर यज्ञोंका अनुष्ठान एवं धर्मानुसार प्रजाका पालन करने लगे। प्रजा भी उन महात्मासे पुत्रके समान प्रतिपालित होकर उत्तरोत्तर समृद्धिशाली होने लगी। (म० प्र० गो०)

श्रीदुर्गासप्तशतीकी संक्षिप्त कथा

श्रीव्यास-रचित मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत दुर्गासप्तशती विविध पुरुषार्थ-साधिका, कर्मभक्तिज्ञानोत्तमसिद्धान्त-प्रतिपादिका, वेदवेदान्ततत्त्वप्रकाशिका, सकलभक्ताभीष्टवरप्रदा, अभयदा एवं अशरणशरणदा है। इसमें भगवती दुर्गाके तीन चरित्रोंका वर्णन है, जिनका संक्षिप्त विवरण क्रमशः नीचे दिया जा रहा है—

प्रथम चरित्र

दूसरे मनुके राज्याधिकारमें 'सुरथ' नामक चैत्रवंशोद्भव राजा क्षितिमण्डलका अधिपति हुआ। शत्रुओं तथा दुष्ट मन्त्रियोंके कारण उसका राज्य, कोषादि उसके हाथसे निकल गया। फिर वह मेधा नामक ऋषिके आश्रममें पहुँचा और वहाँ भी मोहवश प्रजा, पुर, शूरहस्ती, धन, कोष और दासोंकी अर्थात् नाशवान् पदार्थोंकी चिन्तामें लगकर दुःखी हुआ। केवल आत्मज्ञ पुरुष ही स्वराट् होता है। सुरथकी वही दशा हुई जो भगवद्भक्तिविहीन पुरुषोंकी होती है। इसी आश्रममें 'समाधि' नामके वैश्यसे राजा सुरथकी भेंट हुई। यद्यपि यह वैश्य अपने धन-लोलुप स्त्री-पुत्रोंद्वारा घरसे बहिष्कृत कर दिया गया था, तब भी उनके दुर्व्यवहारको विस्मृत कर उनके वियोगमें दुःखी था। इस प्रकार ये दोनों दुःखी होकर 'मेधा' ऋषिके समीप पहुँचे। वहाँ दोनों शास्त्रानुसार सम्भाषण करके बैठ गये। राजाने ऋषिसे कहा—भगवन्! जिस विषयमें हम दोनोंको दोष दीखता है, उसकी ओर भी ममतावश हमारा मन जाता है। मुनिवर! यह क्या बात है कि ज्ञानी (बुद्धिमान्) पुरुषोंको भी मोह होता है?'

महर्षि मेधा उन्हें मोहका कारण बतलाते हुए कहने लगे—'इसमें कुछ आश्चर्य नहीं करना चाहिये कि ज्ञानियोंको भी मोह होता है; क्योंकि महामाया भगवती अर्थात् भगवान् विष्णुकी योगनिद्रा (तमोगुणप्रधान शक्ति) ज्ञानी (बुद्धिमान्) पुरुषोंके चित्तको भी बलपूर्वक खींचकर मोहयुक्त कर देती है, वे ही भक्तोंको वर प्रदान करती हैं और वे ही 'परमा' अर्थात् ब्रह्मज्ञानरूपा हैं।'

राजाने भगवतीकी ऐसी महिमा सुनकर ऋषिसे—'हे द्विज! हे ब्रह्मविदां वर! (ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ)' के सम्बोधनसे तीन प्रश्न किये—

(१) वे महामाया देवी कौन हैं? (२) वे कैसे उत्पन्न हुई? और (३) उनका कर्म तथा प्रभाव क्या है?

मुनिने उत्तर दिया—

'नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्।'

अर्थात् वे जगन्मूर्ति नित्या हैं और उन्हींसे यह सब व्याप्त है। तब भी उनकी उत्पत्ति देवताओंकी कार्यसिद्धिके अर्थ कही जाती है।

जब प्रलयके पश्चात् भगवान् विष्णु शेषशय्यापर योगनिद्रामें निमग्न हुए, तब उनके कर्ण-मलसे मधु और कैटभ नामक दो असुर उत्पन्न होकर हरि-नाभि-कमल-स्थित ब्रह्माजीको ग्रसने चले। तब ब्रह्माजी भगवान्‌की योग-निद्राकी षट्तुरीया शक्तिके रूपमें सुन्दर सरस स्तुति परम प्रेमपूर्वक करने लगे और उसमें उन्होंने ये तीन प्रार्थनाएँ कीं— (१) भगवान् विष्णुको जगा दीजिये, (२) उन्हें असुरद्वयके संहारार्थ उद्यत कीजिये और (३) असुरोंको विमोहित करके भगवान्द्वारा उनका नाश करवाइये। श्रीभगवतीने स्तुतिसे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीको दर्शन दिया। उससे (योगनिद्रासे) मुक्त होकर भगवान् उठे और असुरोंसे युद्ध करने लगे। तदुपरान्त असुरयुगल योगनिद्राके द्वारा मोहित हुए और उन्होंने भगवान्‌से वरदान माँगनेको कहा। अन्तमें उसी वरदानके अनुसार वे भगवान्‌के हाथों मारे गये।

इस कथासे तीन बातोंका निष्कर्ष निकलता है—(१) ब्रह्माको गुणत्रयसे परे परमभाव—परमा-शक्तिका ज्ञान। (२) प्रकृतिके गुणत्रयका कार्य, उसके कर्तृत्वका भान और (ब्रह्माका) अपने सृष्टिकर्तृत्वमें निरहंकारत्व तथा (३) मधु-कैटभ अर्थात् सुकृत-दुष्कृतमें निर्ममत्व एवं उसके निर्मूलनका प्रयत्न।

इस कथासे श्रीब्रह्माजीने यह उपदेश दिया कि 'जो भगवतीकी आराधना करते हैं एवं कर्तृत्वके अभिमान तथा सुकृत-दुष्कृतरूपी कर्मफलको त्यागकर अपने विहित कर्ममें प्रवृत्त रहते हैं, उनका जीवन शान्तिपूर्वक निर्विघ्नरूपसे व्यतीत होता है।' यही ब्राह्मी स्थिति है, जिसे पाकर मनुष्य मोहग्रस्त नहीं होता। महर्षि मेधा सुरथ तथा समाधि दोनों जिज्ञासुओंके मोहके निराकरणार्थ कर्मके उच्चतम सिद्धान्तका निरूपण करके

उपासना तथा ज्ञानयोगके तत्त्वको भगवतीके अन्यान्य प्रभावों-द्वारा वर्णन करने लगे।

मध्यम चरित्र

इस कथामें ऋषिने सुरथ तथा समाधिके प्रति मोहजनित सकामोपासनाद्वारा अर्जित फलोपभोगके निराकरणके लिये निष्कामोपासनाका उपदेश किया है।

प्राचीन कालमें महिष नामक एक अति बलवान् असुरने जन्म लिया। वह अपनी शक्तिसे इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, यम, वरुण, अग्नि, वायु तथा अन्य सुरोंको हराकर स्वयं इन्द्र बन गया और उसने समस्त देवताओंको स्वर्गसे निकाल दिया। अपने स्वर्ग-सुख—भोगैश्वर्यसे वञ्चित होकर दुःखी देवगण साधारण मनुष्योंकी भाँति मर्त्यलोकमें भटकने लगे। अन्तमें व्याकुल होकर वे लोग ब्रह्माजीके साथ भगवान् विष्णु और शिवजीके निकट गये तथा उनके शरणागत होकर उन्होंने अपनी कष्ट-कथा कह सुनायी।

देव-वर्गकी करुण-कहानी सुन लेनेपर हरि-हरके मुखसे महत्तेज प्रकट हुआ। इसके पश्चात् ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, यमादि देवताओंके शरीरसे भी तेज निकला। वह सब एक होकर तीनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाली एक दिव्य देवीके रूपमें परिणत हो गया। तब विधि-हरि-हर—त्रिदेवों तथा अन्य प्रमुख सुरोंने अपने-अपने अस्त्र-शस्त्रोंमेंसे दिव्य प्रकाशमयी उन तेजोमूर्तिको अमोघ अस्त्र-शस्त्र दिये। तब श्रीभगवती अट्टहास करने लगीं। उनके उस शब्दसे समस्त लोक कम्पायमान हो गये।

तब असुरराज महिष 'आः !' यह क्या है ?' ऐसा कहता हुआ सम्पूर्ण असुरोंको साथ लेकर उस शब्दकी ओर दौड़ा। वहाँ पहुँचकर उसने उन महाशक्ति देवीको देखा, जिनकी कान्ति त्रैलोक्यमें फैली है और जो अपनी सहस्र भुजाओंसे दिशाओंके चारों ओर फैलकर स्थित हैं। इसके बाद असुर देवीसे युद्ध करने लगे। श्रीभगवती और उनके वाहन सिंहने कई कोटि असुर-सैन्यका विनाश किया। तत्पश्चात् श्रीभगवतीके द्वारा चिक्षुर, चामर, उदग्र, कराल, वाष्कल, ताम्र, अन्धक, असिलोमा, उग्रास्य, उग्रवीर्य, महाहनु, बिडाल, महासुर दुर्धर और दुर्मुख—ये चौदह असुर-सेनानी मारे गये। अन्तमें महिषासुर महिष, हस्ती, मनुष्यादिके रूप धारण करके श्रीभगवतीसे युद्ध करने लगा और मारा गया।

अपने समग्र शत्रुओंके मारे जानेपर देवगणने आह्लादित होकर आद्या-शक्तिकी स्तुति की और वर माँगा—'जब-जब हमलोग विपद्ग्रस्त हों, तब-तब आप हमें आपदाओंसे विमुक्त करें और जो मनुष्य आपके इस पवित्र चरित्रको प्रेमपूर्वक पढ़ें या सुनें वे सम्पूर्ण सुख और ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हों।'

श्रीभगवती देवताओंको ईप्सित वरदान देकर अन्तर्धान हो गयीं। इस चरित्रमें मेधा ऋषिने इन्द्रादि देवगणके राज्याधिकारका अपहरण, आत्मशक्ति-द्वारा उनके दुःखोंका निराकरण तथा पुनः स्वराज्य-प्राप्तिका वर्णन करके सुरथ राजाके शोक-मोहके निवारणके लिये उन्हीं आत्मशक्तिकी भक्तिका उपदेश किया है।

देवताओंकी प्रार्थनापर भगवतीने उन्हें वर दिया कि जब-जब विपद्ग्रस्त होकर वे उनका स्मरण करेंगे, तब-तब वे उनका संकट दूर करेंगी।

उत्तर चरित्र

मध्यम चरित्रमें मोहका कारण कर्मफलासक्त देवोंद्वारा दिखाया जाकर उत्तर चरित्रमें परानिष्ठा-ज्ञानके बाधक आत्ममोहन-अहंकारादिके निराकरणका वर्णन किया गया है।

पूर्वकालमें शुम्भ और निशुम्भ दो महापराक्रमी असुर हुए। उन्होंने इन्द्रके त्रैलोक्यका राज्य और यज्ञोंका भाग छीन लिया। वे दोनों ही सूर्य,चन्द्र, कुबेर, यम, वरुण, पवन और अग्निके अधिकारोंके अधिपति बन बैठे तथा उन्होंने सुरसमाजको स्वर्गसे निकाल दिया। तब सशोक अमर्त्य मर्त्य-लोकमें आये। बारम्बार दुःसह दुःखसे दयनीय दशाधिगत त्रिदशोंको दर्पादि-दुर्दान्त दानवोंके नितान्त दमनका कार्य अनिवार्य प्रतीत हुआ और वे हिमाद्रिपर जाकर दयार्द्रहृदया श्रीदुर्गादेवीके पादपद्मद्वयकी दिव्य ज्ञानमयी वन्दना करने लगे। श्रीभगवती पार्वती अपने वचनानुसार हिमालय-पर्वतपर गङ्गाजीके किनारे प्रकट हुईं और उन्होंने सुरोंसे पूछा—'तुम किसकी स्तुति कर रहे हो ?' उनके इतना कहते ही उनके शरीरसे शिवा निकलकर कहने लगीं—'ये शुम्भ-निशुम्भसे रणपरास्त निरस्तशासन पाकशासनादि मेरी स्तुति कर रहे हैं।'

पार्वतीके शरीरसे अम्बिका उत्पन्न हुई, एतदर्थ वे कौशिकी नामसे प्रसिद्ध हैं और भगवती पार्वतीके शरीरसे

शिवाके निकल जानेपर उनका वर्ण कृष्ण हो गया, अतएव ये कालिकाके नामसे विख्यात होकर हिमालयपर रहने लगीं। तत्पश्चात् परम सुन्दरी अम्बिकाको शुम्भ-निशुम्भके भृत्य चण्ड-मुण्डने देखा और उन दोनोंने शुम्भसे जाकर उनके अतुल सौन्दर्यकी प्रशंसा की। उसने अपने भृत्योंकी बात सुनकर सुग्रीव नामक असुरको अम्बिकाको ले आनेके लिये भेजा।

सुग्रीवने भगवतीके पास पहुँचकर शुम्भ-निशुम्भके बलैश्वर्यकी बड़ी प्रशंसा की और उनसे परिग्रहकी बात कही। भगवतीने उत्तर दिया—'जो मुझे संग्राममें पराभूत करके मेरे बल-दर्पको नष्ट करेगा, उसीको मैं पतिरूपमें स्वीकार करूँगी—यही मेरी अटल प्रतिज्ञा है।'

सुग्रीवने शुम्भ-निशुम्भके निकट जाकर भगवती अम्बिकाकी प्रतिज्ञा विस्तारपूर्वक कह सुनायी। असुरेन्द्रोंने कुपित होकर धूम्रलोचन नामक असुरको भेजा। भगवतीने धूम्रलोचनको हुंकारमात्रसे ही भस्म कर दिया और उन्होंने तथा उनके वाहन सिंहने असुर-सेनाका विनाश किया। तदुपरान्त असुरराज शुम्भने चण्ड-मुण्ड दोनोंको बहुत बड़ी सेनाके साथ भगवती कौशिकीको पकड़ लाने अथवा मार डालनेके लिये भेजा। वे सब हिमालयपर जाकर भगवतीको पकड़नेका प्रयत्न करने लगे। तब अम्बिकाने शत्रुओंपर अत्यन्त कोप किया और उनके ललाटसे एक भयानक कालीदेवी प्रकट हुईं। उन्होंने असुर-सेनाका विनाश किया और चण्ड-मुण्डका सिर काटकर वे अम्बिकाके पास ले गयीं, इसी कारण उनका नाम चामुण्डा पड़ा।

चण्ड-मुण्डके वधका समाचार सुनकर असुरेशोंने एक बड़ी सेना, जिसमें सात सेनानायकोंका विभाग था, भगवतीसे युद्ध करनेके लिये भेजी। उस समय ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, महावराह, नृसिंह और स्वामिकार्तिकेय—इन सात प्रमुख देवोंकी शक्तियाँ असुर-सेनासे युद्ध करनेके लिये आयीं। फिर अम्बिकाके शरीरसे अत्यन्त भयङ्कर शक्ति निकली और भगवतीने शुम्भ-निशुम्भके पास शिवजीको दूतरूपमें भेजकर उनसे कहलाया—'यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो देवताओंको उनके छीने हुए लोक एवं यज्ञाधिकार लौटा दो और पातालमें जाकर रहो।'

बलसे उन्मत्त शुम्भ-निशुम्भने देवीकी बात नहीं मानी और वे युद्धस्थलमें सेनासहित उपस्थित हुए। भगवतीने देव-शक्तियोंकी सहायतासे असुरसैन्यका संहार करना प्रारम्भ किया, तब असुर-युगलका रक्तबीज नामक एक सेनाध्यक्ष भगवती और देवशक्तियोंसे युद्ध करने लगा। उसके शरीरसे शोणितके जितने बिन्दु पृथ्वीपर गिरते थे, उतने ही रक्तबीज उत्पन्न हो जाते थे। अन्तमें देवीने चामुण्डाको आज्ञा दी कि वह अपने मुखका विस्तार करके रक्तबीजके शरीरके रक्तको अपने मुखमें ले और उससे उत्पन्न असुरोंको भक्षण करे। चामुण्डाने ऐसा ही किया और भगवतीने उस असुरका सिर काट डाला। तत्पश्चात् निशुम्भ भगवतीसे युद्ध करने लगा और मारा गया। तब शुम्भने क्रोधित होकर अम्बिकासे कहा—'तू दूसरोंके बलका सहारा लेकर अभिमान करती है?'

श्रीभगवतीने उत्तर दिया—'संसारमें मैं एक ही हूँ, ये समस्त विभूतियाँ मेरी रूपान्तरमात्र हैं। ये मुझसे ही प्रकट हुई हैं और मुझमें ही विलुप्त हो जायँगी।' इसके बाद सातों शक्तियाँ, जो देवीके शरीरसे निकली थीं, उन्हींमें प्रविष्ट हो गयीं और शुम्भ भी देवीके युद्ध-कौशलसे मारा गया। देवगणने हर्षित होकर अम्बिकाकी स्तुति की। अन्तमें देवी प्रसन्न होकर बोलीं—'संसारका उपकार करनेवाला वर माँगो।'

देवताओंने कहा—'जब-जब हमारे शत्रु उत्पन्न हों, तब-तब उनका नाश हो।' भगवती आद्याशक्तिने 'एवमस्तु' कहा और भविष्यमें सात बार भक्त-रक्षणार्थ अवतार लेनेकी कथा, दुर्गाचरित्रके पाठका माहात्म्य वर्णन करके वे अन्तर्धान हो गयीं।

यह चरित्र ज्ञानकाण्डका है और इसमें तीन विषय हैं—(१) देवताओंका सात्त्विक ज्ञानसे स्तुति करना, (२) ज्ञानके विरोधी अहंकारादिका नाश और (३) भगवतीका अद्वैत-भाव।

१- देवताओंको भगवतीकी उपासनाका ज्ञान था। इसी हेतु उन्हें अब श्रीब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन तत्त्वज्ञ ईश्वरकोटिके देवताओंके निकट जानेकी आवश्यकता न थी और वे जगज्जननी भगवतीकी स्तुति ज्ञान-दृष्टिसे करनेके लिये प्रवृत्त हुए। सात्त्विक ज्ञानका लक्षण श्रीमद्भगवद्गीतामें इस प्रकार कहा है—'जिस ज्ञानद्वारा मनुष्य समस्त पृथक्-पृथक्

भूतोंमें एक ही अभिन्न अविनाशी परमात्माके दर्शन करता है, वह सात्त्विक ज्ञान है।' अतएव देवगण **'या देवी सर्वभूतेषु'** इत्यादि स्तुतिसे सब भूतोंमें उन्हीं आद्याशक्तिका एक अव्यय, अविनाशी भाव जानकर तेईस मातृगणोंद्वारा उनकी वन्दना करने लगे।

२-परमार्थ-पथ-तत्पर प्रपन्न पुरन्दरादि देवोंने शुम्भ-निशुम्भादि विपक्षियोंके क्षयकी काङ्क्षा प्रकट करते हुए प्राञ्जलि हो पुष्कल पुनीत प्रार्थनाएँ करके परमा पार्वतीका प्रत्यक्ष दर्शन किया और श्रीभगवतीने शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज, धूम्रलोचन, चण्ड, मुण्ड तथा सुग्रीव—इन प्रमुख सात असुरोंको पराजित करके देवताओंकी रक्षा की।

३-श्रीजगदम्बिकाने शुम्भके प्रति कहा है—मैं इस संसारमें एक ही हूँ और मुझसे अतिरिक्त दूसरा कौन है? मैं अपनी विभूतिद्वारा बहुत-से रूपोंसे यहाँ स्थित थी, अब उन सबको अपनेमें लय करके पुनः अकेली ही स्थित हूँ।

उपसंहार

भगवती चण्डिका अपनी स्तुतिका माहात्म्य और उसका फल तथा पूजाविधि कहकर अन्तर्धान हो गयीं और मेधा ऋषिने उन्हीं महाशक्तिको धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-फलप्रदा कहकर यह उपदेश किया—'महाराज! आप उन्हीं परमेश्वरीकी शरणमें जाइये। वे अपनी आराधनासे प्रसन्न होकर मनुष्योंको भोग, स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करती हैं।'

राजा और वैश्य श्रीभगवतीके चरित्र तथा महर्षि मेधाके उपदेशको सुनकर उन महादेवी भगवतीको प्रसन्न करनेके लिये नदी-तटपर महती तपश्चर्या एवं उपासना करने लगे। जगद्धात्री चण्डिकाने प्रसन्न होकर उन दोनोंको दर्शन दिया और कहा—'मैं तुम दोनोंसे प्रसन्न हूँ, तुम जो कुछ माँगोगे वही मैं तुम्हें दूँगी।' आद्या देवीकी बात सुन राजाने यह विचार किया—'मेरे लिये अपना क्षात्रकर्म करना ही उचित है। अपने आश्रितजनोंको कष्टमें छोड़कर अकेले वनमें चले जाना क्षात्र-धर्मके विरुद्ध है। यदि मैं ब्रह्माजीके समान अपने कर्तृत्वके अहंकारको भुलाकर उन्हीं महामायाकी आराधना करता तो वे महाशक्ति, जैसे मधु-कैटभसे ब्रह्माकी रक्षा की थी, वैसे हमारी भी करतीं। राजधर्मका आदर्श कर्मयोगके उत्तम सिद्धान्तपर स्थित है, अतएव मुझे चाहिये कि जिस प्रकार इन्द्रादि देवताओंने अधिकारसे निकला हुआ स्वराज्य भगवतीकी कृपासे प्राप्त किया था, उसी प्रकार अपने गये हुए राज्यको पुनः प्राप्त करूँ और न्यायनीतिसे अपनी समस्त प्रजाको सुखी बनाऊँ।' इस विचारके पश्चात् राजाने आगामी जन्ममें अखण्ड राज्य और इस जन्ममें निजबलसे शत्रु-शक्तिका नाश करके अपना गया हुआ राज्य प्राप्त करनेका वर माँगा।

महादेवी भगवतीने उसे कुछ ही दिनोंमें शत्रुओंपर विजयी होकर स्वराज्य प्राप्त करने तथा दूसरे जन्ममें भूमण्डलपर सूर्य-सुत सावर्णि नामक मनु होनेका वर प्रदान किया। जब भगवतीने वैश्यवर्यसे वर माँगनेको कहा तो उसने विचार किया कि यह संसार दुःखमय है। देवताओंका कई बार अधिकार-च्युत होना और सुरथ राजाका राज्यभ्रष्ट होना प्रमाणित करता है कि सांसारिक भोगैश्वर्य अनित्य है। जिस तुच्छ सांसारिक सुखमें मेरा मोह था, वह वास्तवमें दुःखरूप ही था। जब त्रैलोक्यपर्यन्तका सुख अनित्य है, तब मुझे इससे विरक्त होकर इन परमेश्वरीकी अनुकम्पासे ऐसा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये, जिससे नित्य अक्षय सुखस्वरूपमें प्रविष्ट हो सकूँ। निवृत्ति-मार्ग-पथिक ज्ञाननिष्ठ समाधि वैश्यने अपने नाम और जातिको सार्थक करनेवाले उपर्युक्त विचारके अनन्तर श्रीदेवीसे मोहविनाशक ज्ञान माँगा। उसे मनोवाञ्छित वरकी संसिद्धिके लिये ज्ञान देकर श्रीदुर्गा शीघ्र अन्तर्धान हो गयीं।

सदाचारकी रक्षा यत्नपूर्वक करनी चाहिये, धन तो आता और जाता रहता है। धन क्षीण हो जानेपर भी सदाचारी मनुष्य क्षीण नहीं माना जाता, किंतु जो सदाचारसे भ्रष्ट हो गया, उसे तो नष्ट ही समझना चाहिये।

यज्ञमूर्ति भगवान् अग्निदेव

अग्निपुराण

विषयगत विविधता एवं लोकोपयोगिताकी दृष्टिसे अठारह पुराणोंमें आठवाँ यह अग्निपुराण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। अनेकानेक विद्याओंका समावेश होनेके कारण पुराणकारका स्वयंका कथन है—**'आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वा विद्याः प्रदर्शिताः'** (अग्नि० ३८३। ५१)। अर्थात् इस आग्नेय (अग्नि) पुराणमें सभी विद्याओंका वर्णन है। भगवान् अग्निदेवने महर्षि वसिष्ठको यह पुराण सुनाया था। इसीलिये अग्निदेवके नामसे यह अग्नि या आग्नेय पुराण कहलाता है। मत्स्यपुराणके अनुसार—जिसमें ईशानकल्पके वृत्तान्तका आश्रय लेकर अग्निने महर्षि वसिष्ठके प्रति उपदेश किया है, उसे अग्निपुराण कहते हैं। इसमें सोलह हजार श्लोक हैं। नारदपुराणमें इस पुराणकी जो विषय-सूची दी गयी है, उसमें भी इस पुराणको ईशानकल्पका बताया गया है तथा भगवान् अग्निद्वारा वसिष्ठको उपदिष्ट किया हुआ बतलाया गया है। जिसकी श्लोकसंख्या पंद्रह हजार है।

मत्स्यपुराण (५३। २८-२९)में इसकी श्लोक-संख्या सोलह हजार, नारदपुराण (१। ४ ।२५। १-२)में पंद्रह हजार और श्रीमद्भागवत (१२। १३। ५)में पंद्रह हजार चार सौ बतलायी गयी है, किंतु वर्तमान उपलब्ध अग्निपुराणकी श्लोक-संख्या बारह हजार है। इससे प्रतीत होता है कि इस पुराणका कुछ भाग लुप्त है। पद्मपुराणमें पुराणोंको भगवान् विष्णुका ही विग्रह अथवा मूर्तरूप बतलाया गया है और उनके विभिन्न अङ्ग ही विभिन्न पुराण कहे गये हैं। इस दृष्टिसे अग्निपुराणको भगवान् श्रीहरिका बायाँ चरण कहा गया है—

'अङ्घ्रिर्वामो ह्याग्नेयमुच्यते' (स्वर्गखण्ड ६२। ४)।

अग्निपुराणमें ३८३ अध्याय हैं, जिनमें परा-अपरा विद्याओंका वर्णन, मत्स्य, कूर्म आदि अवतारोंकी कथाएँ, रामायणके सातों काण्डोंकी संक्षिप्त कथा, हरिवंशनामसे भगवान् श्रीकृष्णके वंशका वर्णन, महाभारतके सभी पर्वोंकी संक्षिप्त कथा, सृष्टि-वर्णन, स्नान-संध्या-पूजा-होम-विधि, मुद्राओंके लक्षण, दीक्षा-विधि, अभिषेक-विधि, विविध मण्डलोंकी रचना-विधि, निर्वाण-दीक्षाके ४८ संस्कार, पवित्रारोपण, अधिवास-विधि, देवालय-निर्माण-फल, भूपरिग्रह-विधान, शिलान्यास-विधान, प्रासाद-लक्षण, प्रासाद-देवता-स्थापन-विधि, विविध देव-प्रतिमाओंके लक्षण, पिण्डिका-लक्षण, लिंगका लक्षण तथा मान, प्राण-प्रतिष्ठाकी विधि, देव-पूजाविधि, कलाशोधन, विद्याशोधन, शान्तिशोधन, तत्त्व-दीक्षा, देवोंके विविध मन्त्र, वास्तु-पूजा-विधि और खगोलका वर्णन है। इसी प्रकार इनमें तीर्थ-माहात्म्य, गया-यात्रा-विधि और श्राद्धकल्प, ज्योतिःशास्त्र, त्रैलोक्य-विजय-विद्या, संग्राम-विजय-विद्या, महामारी-विद्या, वशीकरण आदि षट्कर्म, संवत्सरोंके नाम, मन्त्र, ओषधि, कुब्जिकापूजा, लक्षकोटि होम-विधि, मन्वन्तरोंका परिगणन, वर्णाश्रमधर्म, विविध पातक एवं उनके प्रायश्चित्त-विधान, प्रतिपदासे पूर्णिमातकके तिथि-व्रत, वार-व्रत, दिवस-व्रत, मास-व्रत, दीपदान-व्रत, भीष्म-पञ्चक-व्रत, षोडश महादान, नीराजन-विधि, वेदशाखा-वर्णन, दान-माहात्म्य, राजधर्म, विविध स्वप्न, शकुनापशकुन, पुरुष-स्त्रीके शुभाशुभ लक्षण, रत्न-परीक्षा, धनुर्वेद, व्यवहार, दायभाग, सीमाविवाद-निर्णय, उत्पात-शान्ति-विधि, बलिवैश्वदेव तथा भोजनकी विधि, दिक्पालादि-स्नान एवं विनायक-स्नानकी विधि, विष्णुपञ्जर-स्तोत्र, सूर्य एवं चन्द्रवंशका विस्तार, सिद्धौषधि एवं रसादिका वर्णन, वृक्षायुर्वेद, गजचिकित्सा, अश्वचिकित्सा, गजशान्ति, अश्वशान्ति, नागोंके लक्षण और सर्पदंशकी चिकित्सा, बालतन्त्र, ग्रहयन्त्र, नारसिंहमन्त्र, त्रैलोक्यमोहन-मन्त्र, लक्ष्मी एवं त्वरिता-पूजा तथा मन्त्र, वागीश्वरी-पूजा एवं सिद्धि आदिका प्रतिपादन किया

गया है। साथ ही इनमें अघोरास्त्र-मन्त्रोद्धार, पाशुपत-शान्ति, रुद्र-शान्ति, छन्दःशास्त्र, काव्य-लक्षण, नाट्यशास्त्र, शृंगारादि रस, अलंकार, व्याकरणशास्त्र, शब्दकोश, प्रलय-वर्णन, नरक-वर्णन, कर्मविपाक, योगाङ्ग, ब्रह्मज्ञान, भगवद्गीताका भावार्थ, यमगीता तथा अन्तमें पुराणके पठन-पाठन, श्रवण और दानका माहात्म्य बतलाया गया है।

सारांश यह है कि इस पुराणमें लौकिक ज्ञान तथा ब्रह्मज्ञान आदि सभी विषयोंका समावेश हुआ है। धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, सामुद्रिक शास्त्र, राजनीति, अश्वायुर्वेद, गजशिक्षा, आयुर्वेद, शिल्पशास्त्र, वास्तुविद्या, कर्मकाण्ड, तन्त्रविद्या, अभिचारकर्म, मन्त्रशास्त्र, दर्शनशास्त्र, शस्त्रविद्या, धनुर्वेद, गान्धर्वशास्त्र, काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, छन्दःशास्त्र, अलंकारशास्त्र, इतिहास, पुराणशास्त्र, वेदविद्या आदिके विषयोंको सूक्ष्म, किंतु सरल एवं बोधगम्य शैलीमें समझाया गया है। इस पुराणकी अत्यधिक उपादेयता है। यह अपनेमें अध्येताओं तथा गवेषकोंके लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामग्री सँजोये हुए है।

कथा-आख्यान—

जडभरत और सौवीर-नरेशका संवाद

प्राचीन कालकी बात है, राजा भरत शालग्रामक्षेत्रमें रहकर भगवान् वासुदेवकी पूजा आदि करते हुए तपस्या कर रहे थे। उनकी एक मृगके प्रति आसक्ति हो गयी थी, इसलिये अन्तकालमें उसीका स्मरण करते हुए प्राण त्यागनेके कारण उन्हें मृग होना पड़ा। मृगयोनिमें भी वे 'जातिस्मर' हुए—उन्हें पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण रहा। अतः उस मृगशरीरका परित्याग करके वे स्वयं ही योगबलसे एक ब्राह्मणके रूपमें प्रकट हुए। उन्हें अद्वैत ब्रह्मका पूर्ण बोध था। वे साक्षात् ब्रह्मस्वरूप थे, तो भी लोकमें जडवत् (ज्ञानशून्य मूककी भाँति) व्यवहार करते थे। उन्हें हृष्ट-पुष्ट देखकर सौवीर-नरेशके सेवकने बेगारमें लगानेके योग्य समझा (और राजाकी पालकी ढोनेमें नियुक्त कर दिया)। सेवकके कहनेसे वे सौवीर-राजकी पालकी ढोने लगे। यद्यपि वे ज्ञानी थे, तथापि बेगारमें पकड़े जानेपर अपने प्रारब्धभोगका क्षय करनेके लिये राजाका भार वहन करने लगे, परंतु उनकी गति मन्द थी। वे पालकीमें पीछेकी ओर लगे थे तथा उनके सिवा दूसरे जितने कहार थे, वे सब-के-सब तेज चल रहे थे। राजाने देखा कि अन्य कहार शीघ्रगामी हैं तथा तीव्रगतिसे चल रहे हैं, किंतु यह जो नया आया है, इसकी गति बहुत मन्द है। तब वे बोले—'अरे! क्या तू थक गया? अभी तो तूने थोड़ी ही दूरतक मेरी पालकी ढोयी है। क्या परिश्रम नहीं सहा जाता? क्या तू मोटा-ताजा नहीं है? देखनेमें तो अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट जान पड़ता है।'

ब्राह्मणने कहा—'राजन्! न मैं मोटा हूँ, न मैंने तुम्हारी पालकी ढोयी है, न मुझे थकावट आयी है, न परिश्रम करना पड़ा है और न मुझपर तुम्हारा कुछ भार ही है। पृथ्वीपर दोनों पैर हैं, पैरोंपर जङ्घाएँ हैं, जङ्घाओंके ऊपर ऊरु और ऊरुओंके ऊपर उदर (पेट) है। उदरके ऊपर वक्षःस्थल, भुजाएँ और

कंधे हैं तथा कंधोंके ऊपर यह पालकी रखी गयी है। फिर मेरे ऊपर यहाँ कौन-सा भार है? इस पालकीपर तुम्हारा कहा जानेवाला यह शरीर रखा हुआ है। वास्तवमें तुम वहाँ (पालकीमें) हो और मैं यहाँ (पृथ्वी) पर हूँ—ऐसा जो कहा जाता है, वह सब मिथ्या है। सौवीरनरेश! मैं, तुम तथा अन्य जितने भी जीव हैं, सबका भार पञ्चभूतोंके द्वारा ही ढोया जा रहा है। ये पञ्चभूत भी गुणोंके प्रवाहमें पड़कर चल रहे हैं।

पृथ्वीनाथ ! सत्त्व आदि गुण कर्मोंके अधीन हैं तथा कर्म अविद्याके द्वारा संचित हैं, जो सम्पूर्ण जीवोंमें वर्तमान हैं। आत्मा तो शुद्ध, अक्षर (अविनाशी), शान्त, निर्गुण और प्रकृतिसे परे है। सम्पूर्ण प्राणियोंमें एक ही आत्मा है। उसकी न तो कभी वृद्धि होती है और न ह्रास ही होता है। राजन्! जब उसकी वृद्धि नहीं होती और ह्रास भी नहीं होता, तब तुमने किस युक्तिसे व्यङ्ग्यपूर्वक यह प्रश्न किया है कि 'क्या तू मोटा-ताजा नहीं है ?' यदि पृथ्वी, पैर, जङ्घा, ऊरु, कटि और उदर आदि आधारों एवं कंधोंपर रखी हुई यह पालकी मेरे लिये भारस्वरूप हो सकती है तो यह आपत्ति तुम्हारे लिये भी समान ही है, अर्थात् तुम्हारे लिये भी यह भाररूप कही जा सकती है तथा इस युक्तिसे अन्य सभी जन्तुओंने भी केवल पालकी ही नहीं उठा रखी है, पर्वत, पेड़, घर और पृथ्वी आदिका भार भी अपने ऊपर ले रखा है। नरेश ! सोचो तो सही, जब प्रकृतिजन्य साधनोंसे पुरुष सर्वथा भिन्न है तो कौन-सा महान् भार मुझे सहन करना पड़ता है ? जिस द्रव्यसे यह पालकी बनी है, उसीसे मेरे, तुम्हारे तथा इन सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीरोंका निर्माण हुआ है, इन सबकी समान द्रव्योंसे पुष्टि हुई है।'

यह सुनकर राजा पालकीसे उतर पड़े और ब्राह्मणके चरण पकड़कर क्षमा माँगते हुए बोले—'भगवन्! अब पालकी छोड़कर मुझपर कृपा कीजिये। मैं आपके मुखसे कुछ सुनना चाहता हूँ, मुझे उपदेश दीजिये। साथ ही यह भी बताइये कि आप कौन हैं ? और किस निमित्त अथवा किस कारणसे यहाँ आपका आगमन हुआ है ?'

ब्राह्मणने कहा—'राजन्! सुनो—'मैं अमुक हूँ'—यह बात नहीं कही जा सकती। तथा तुमने जो आनेका कारण पूछा है, उसके सम्बन्धमें मुझे इतना ही कहना है कि कहीं भी आने-जानेकी क्रिया कर्मफलका उपभोग करनेके लिये ही होती है। सुख-दुःखके उपभोग ही भिन्न-भिन्न देश (अथवा शरीर) आदिकी प्राप्ति करानेवाले हैं तथा धर्माधर्मजनित सुख-दुःखोंको भोगनेके लिये ही जीव नाना प्रकारके देश (अथवा शरीर) आदिको प्राप्त होता है।'

राजाने पूछा—'ब्रह्मन्! 'जो है' (अर्थात् जो आत्मा सत्स्वरूपसे विराजमान है तथा कर्ता-भोक्तारूपमें प्रतीत हो रहा है) उसे 'मैं हूँ'—यों कहकर क्यों नहीं बताया जा सकता ? द्विजवर ! आत्माके लिये 'अहम्' शब्दका प्रयोग तो दोषावह नहीं जान पड़ता।'

ब्राह्मणने कहा—'राजन्! आत्माके लिये 'अहम्' शब्दका प्रयोग दोषावह नहीं है, तुम्हारा यह कथन बिलकुल ठीक है, परंतु अनात्मामें आत्मत्वका बोध करानेवाला 'अहम्' शब्द तो दोषावह है ही। अथवा जहाँ कोई भी शब्द भ्रमपूर्ण अर्थको लक्षित कराता हो, वहाँ उसका प्रयोग दोषयुक्त ही है। जब सम्पूर्ण शरीरमें एक ही आत्माकी स्थिति है, तो 'कौन तुम और कौन मैं हूँ'—ये सब बातें व्यर्थ हैं। राजन्!'तुम राजा हो, यह पालकी है, हमलोग इसे ढोनेवाले कहार हैं, ये आगे चलनेवाले सिपाही हैं तथा यह लोक तुम्हारे अधिकारमें है'—यह जो कहा जाता है, यह सत्य नहीं है। वृक्षसे लकड़ी होती है और लकड़ीसे यह पालकी बनी है, जिसके ऊपर तुम बैठे हुए हो। सौवीरनरेश! बोलो तो, इसका 'वृक्ष' और 'लकड़ी' नाम क्या हो गया ? कोई भी चेतन मनुष्य यह नहीं कहता कि 'महाराज वृक्ष अथवा लकड़ीपर चढ़े हुए हैं।' सब तुम्हें पालकीपर ही सवार बतलाते हैं। (किंतु पालकी क्या है ?) नृपश्रेष्ठ ! रचनाकलाके द्वारा एक विशेष आकारमें परिणत हुई लकड़ियोंका समूह ही तो पालकी है। यदि तुम इसे कोई भिन्न वस्तु मानते हो तो इसमेंसे लकड़ियोंको अलग करके 'पालकी' नामकी कोई वस्तु ढूँढ़ो तो सही। 'यह पुरुष, यह स्त्री, यह गौ, यह घोड़ा, यह हाथी, यह पक्षी और यह वृक्ष है'—इस प्रकार कर्मजनित भिन्न-भिन्न शरीरोंमें लोगोंने नाना प्रकारके नामोंका आरोप कर लिया है। इन संज्ञाओंको लोककल्पित ही समझना चाहिये। जिह्वा 'अहम्' (मैं) का उच्चारण करती है, दाँत, होठ, तालु और कण्ठ आदि भी उसका उच्चारण करते हैं, किंतु ये 'अहम्' (मैं) पदके वाच्यार्थ नहीं हैं; क्योंकि ये सब-के-सब शब्दोच्चारणके साधनमात्र हैं। किन कारणों या उक्तियोंसे जिह्वा कहती है कि 'वाणी ही 'अहम्' (मैं) हूँ।' यद्यपि जिह्वा यह कहती है, तथापि 'यदि मैं वाणी नहीं हूँ' ऐसा कहा जाय तो यह कदापि मिथ्या नहीं है। राजन्! मस्तक और गुदा आदिके रूपमें जो शरीर है, वह पुरुष (आत्मा) से सर्वथा भिन्न है, ऐसी दशामें मैं किस अवयवके लिये 'अहम्' संज्ञाका प्रयोग करूँ ?

भूपालशिरोमणे ! यदि मुझ (आत्मा) से भिन्न कोई भी अपनी पृथक् सत्ता रखता हो तो 'यह मैं हूँ', 'यह दूसरा है'—ऐसी बात भी कही जा सकती है। वास्तवमें पर्वत, पशु तथा वृक्ष आदिका भेद सत्य नहीं है। शरीरदृष्टिसे ये जितने भी भेद प्रतीत हो रहे हैं, सब-के-सब कर्मजन्य हैं। संसारमें जिसे 'राजा' या 'राजसेवक' कहते हैं, वह तथा और भी इस तरहकी जितनी संज्ञाएँ हैं, वे कोई भी निर्विकार सत्य नहीं हैं। भूपाल ! तुम सम्पूर्ण लोकके राजा हो, अपने पिताके पुत्र हो, शत्रुके लिये शत्रु, धर्मपत्नीके पति और पुत्रके पिता—इतने नामोंके होते हुए मैं तुम्हें क्या कहकर पुकारूँ ? पृथ्वीनाथ ! क्या यह मस्तक तुम हो ? किंतु जैसे मस्तक तुम्हारा है, वैसे ही उदर भी तो है ? (फिर उदर क्यों नहीं हो ?) तो क्या इन पैर आदि अङ्गोंमेंसे तुम कोई हो ? नहीं, तो ये सब तुम्हारे क्या हैं ? महाराज ! इन समस्त अवयवोंसे तुम पृथक् हो, अतः इनसे अलग होकर ही अच्छी तरह विचार करो कि 'वास्तवमें मैं कौन हूँ ?'

यह सुनकर राजाने उन भगवत्स्वरूप अवधूत ब्राह्मणसे कहा—'ब्रह्मन् ! मैं आत्मकल्याणके लिये उद्यत होकर महर्षि कपिलके पास कुछ पूछनेके लिये जा रहा था। आप भी मेरे लिये इस पृथ्वीपर महर्षि कपिलके ही अंश हैं, अतः आप ही मुझे ज्ञान दें। जिससे ज्ञानरूपी महासागरकी प्राप्ति होकर परम कल्याणकी सिद्धि हो, वह उपाय मुझे बताइये।'

ब्राह्मणने कहा—'राजन् ! तुम फिर कल्याणका ही उपाय पूछने लगे। 'परमार्थ क्या है ?' यह नहीं पूछते। 'परमार्थ' ही सब प्रकारके कल्याणोंका स्वरूप है। मनुष्य देवताओंकी आराधना करके धन-सम्पत्तिकी इच्छा करता है, पुत्र और राज्य पाना चाहता है, किंतु सौवीरनरेश ! तुम्हीं बताओ, क्या यही उसका श्रेय है ? (इसीसे उसका कल्याण होगा ?) विवेकी पुरुषकी दृष्टिमें तो परमात्माकी प्राप्ति ही श्रेय है, यज्ञादिकी क्रिया तथा द्रव्यकी सिद्धिको वह श्रेय नहीं मानता। परमात्मा और आत्माका संयोग—उनके एकत्वका बोध ही 'परमार्थ' माना गया है। परमात्मा एक अर्थात् अद्वितीय है। वह सर्वत्र समान रूपसे व्यापक, शुद्ध, निर्गुण, प्रकृतिसे परे, जन्म-वृद्धि आदिसे रहित, सर्वगत, अविनाशी, उत्कृष्ट, ज्ञानस्वरूप, गुण-जाति आदिके संसर्गसे रहित एवं विभु है। अब मैं तुम्हें निदाघ और ऋतु (ऋभु) का संवाद सुनाता हूँ, ध्यान देकर सुनो—

'ऋतु ब्रह्माजीके पुत्र और ज्ञानी थे। पुलस्त्यनन्दन निदाघने उनकी शिष्यता ग्रहण की। ऋतुसे विद्या पढ़ लेनेके पश्चात् निदाघ देविका नदीके तटपर एक नगरमें जाकर रहने लगे। ऋतुने अपने शिष्यके निवासस्थानका पता लगा लिया था। हजार दिव्य वर्ष बीतनेके पश्चात् एक दिन ऋतु निदाघको देखनेके लिये गये। उस समय निदाघ बलिवैश्वदेवके अनन्तर अन्न-भोजन करके अपने शिष्यसे कह रहे थे—'भोजनके बाद मुझे तृप्ति हुई है; क्योंकि भोजन ही अक्षय तृप्ति प्रदान करनेवाला है।' यह कहकर वे तत्काल आये हुए अतिथिसे भी तृप्तिके विषयमें पूछने लगे।

तब ऋतुने कहा—'ब्राह्मण ! जिसे भूख लगी होती है, उसे ही भोजनके पश्चात् तृप्ति होती है। मुझे तो कभी भूख ही नहीं लगी, फिर मेरी तृप्तिके विषयमें क्यों पूछते हो ? भूख और प्यास देहके धर्म हैं। मुझ आत्माका ये कभी स्पर्श नहीं करते। तुमने पूछा है, इसलिये कहता हूँ। मुझे सदा ही तृप्ति बनी रहती है। पुरुष (आत्मा) आकाशकी भाँति सर्वत्र व्याप्त है और मैं वह प्रत्यगात्मा ही हूँ, अतः तुमने जो मुझसे यह पूछा कि 'आप कहाँसे आते हैं ?' यह प्रश्न कैसे सार्थक हो सकता है ? मैं न कहीं जाता हूँ, न आता हूँ और न किसी एक स्थानमें रहता हूँ। न तुम मुझसे भिन्न हो, न मैं तुमसे अलग हूँ। जैसे मिट्टीका घर मिट्टीसे लीपनेपर सुदृढ़ होता है, उसी प्रकार यह पार्थिव देह ही पार्थिव अन्नके परमाणुओंसे पुष्ट होती है। ब्रह्मन् ! मैं तुम्हारा आचार्य ऋतु हूँ और तुम्हें ज्ञान देनेके लिये यहाँ आया हूँ, अब जाऊँगा। तुम्हें परमार्थतत्त्वका उपदेश कर दिया। इस प्रकार तुम इस सम्पूर्ण जगत्को एकमात्र वासुदेव-संज्ञक परमात्माका ही स्वरूप समझो, इसमें भेदका सर्वथा अभाव है।'

तत्पश्चात् एक हजार वर्ष व्यतीत होनेपर ऋतु पुनः उस नगरमें गये। वहाँ जाकर उन्होंने देखा— निदाघ नगरके पास एकान्त-स्थानमें खड़े हैं। तब वे उनसे बोले—'भैया ! इस एकान्त-स्थानमें क्यों खड़े हो ?' निदाघने कहा—'ब्रह्मन् ! मार्गमें मनुष्योंकी बहुत बड़ी भीड़ खड़ी है; क्योंकि ये नरेश इस समय इस रमणीय नगरमें प्रवेश करना चाहते हैं, इसीलिये मैं

यहाँ ठहर गया हूँ।' ऋतुने पूछा—'द्विजश्रेष्ठ ! तुम यहाँकी सब बातें जानते हो, अतः बताओ कि इनमें कौन नरेश हैं और कौन दूसरे लोग हैं ?' निदाघने कहा—'ब्रह्मन् ! जो इस पर्वत-शिखरके समान खड़े हुए मतवाले गजराजपर चढ़े हैं, वे ही ये नरेश हैं तथा जो उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़े हैं, वे ही दूसरे लोग हैं। यह नीचेवाला जीव हाथी है और ऊपर बैठे हुए सज्जन महाराज हैं।'

ऋतुने कहा—'मुझे समझाकर बताओ, इनमें कौन राजा है और कौन हाथी ?' निदाघ बोले—'अच्छा बतलाता हूँ।' यह कहकर निदाघ ऋतुके ऊपर चढ़ गये और बोले—'अब दृष्टान्त देखकर तुम वाहनको समझ लो। मैं तुम्हारे ऊपर राजाके समान बैठा हूँ और तुम मेरे नीचे हाथीके समान खड़े हो।' तब ऋतुने निदाघसे कहा—'मैं कौन हूँ और तुम्हें क्या कहूँ ?' इतना सुनते ही निदाघ उतरकर उनके चरणोंमें पड़ गये और बोले—'निश्चय ही आप मेरे गुरुजी महाराज हैं; क्योंकि दूसरे किसीका हृदय ऐसा नहीं है, जो निरन्तर अद्वैत-संस्कारसे सुसंस्कृत रहता हो।' ऋतुने निदाघसे कहा—'मैं तुम्हें ब्रह्मका बोध करानेके लिये आया था और परमार्थ-सारभूत अद्वैत-तत्त्वका दर्शन तुम्हें करा दिया।'

ब्राह्मण (जडभरत) कहते हैं—'राजन् ! निदाघ उस उपदेशके प्रभावसे अद्वैतपरायण हो गये। अब वे सम्पूर्ण प्राणियोंको अपनेसे अभिन्न देखने लगे। उन्होंने ज्ञानसे मोक्ष प्राप्त किया था, उसी प्रकार तुम भी प्राप्त करोगे। तुम, मैं तथा यह सम्पूर्ण जगत्—सब एकमात्र व्यापक विष्णुका ही स्वरूप है। जैसे एक ही आकाश नीले-पीले आदि भेदोंसे अनेक-सा दिखायी देता है, उसी प्रकार भ्रान्तदृष्टिवाले पुरुषोंको एक ही आत्मा भिन्न-भिन्न रूपोंमें दिखायी देता है।' इस सारभूत ज्ञानके प्रभावसे सौवीरनरेश भव-बन्धनसे मुक्त हो गये। ज्ञानस्वरूप ब्रह्म ही इस अज्ञानमय संसारवृक्षका शत्रु है, इसका निरन्तर चिन्तन करते रहना चाहिये।

भगवान् विष्णुका स्वरूप और उनकी प्राप्तिके उपाय

यत्तद्ब्रह्म यतः सर्वं यत्सर्वं तस्य संस्थितम् ॥
अग्राह्यकमनिर्देश्यं सुप्रतिष्ठं च यत्परम्। परापरस्वरूपेण विष्णुः सर्वहृदिस्थितः ॥
यज्ञेशं यज्ञपुरुषं केचिदिच्छन्ति तत्परम्। केचिद्विष्णुं हरं केचित् केचिद्ब्रह्माणमीश्वरम् ॥
इन्द्रादिनामभिः केचित्सूर्यं सोमं च कालकम्। ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं जगद्विष्णुं वदन्ति च ॥
स विष्णुः परमं ब्रह्म यतो नावर्तते पुनः। सुवर्णादिमहादानपुण्यतीर्थावगाहनैः ॥
ध्यानैर्व्रतैः पूजया च धर्मश्रुत्या तदाप्नुयात्।

(अग्निपुराण ३८२)

वह जो सर्वत्र व्यापक ब्रह्म है, जिससे सबकी उत्पत्ति हुई है, जो सर्वस्वरूप है तथा यह सब कुछ जिसका संस्थान (आकार-विशेष) है, जो इन्द्रियोंसे ग्राह्य नहीं है, जिसका किसी नाम आदिके द्वारा निर्देश नहीं किया जा सकता, जो सुप्रतिष्ठित एवं सबके परे है, उस परापर ब्रह्मके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु ही सबके हृदयमें विराजमान हैं। वे यज्ञके स्वामी तथा यज्ञस्वरूप हैं। उन्हें कोई तो परब्रह्मरूपसे प्राप्त करना चाहते हैं, कोई विष्णुरूपसे, कोई शिवरूपसे, कोई ब्रह्मारूपसे और कोई ईश्वररूपसे, कोई इन्द्रादि नामोंसे तथा कोई सूर्य, चन्द्रमा और कालरूपसे उन्हें पाना चाहते हैं। मनीषीलोग ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त समस्त जगत्को विष्णुका ही स्वरूप कहते हैं। वे भगवान् विष्णु परब्रह्म परमात्मा हैं, जिनके पास पहुँच जानेपर (जिन्हें जान लेने या पा लेनेपर) फिर वहाँसे इस संसारमें लौटना नहीं पड़ता। सुवर्ण-दान आदि बड़े-बड़े दान तथा पुण्य-तीर्थोंमें स्नान करनेसे, ध्यान लगानेसे, व्रत करनेसे, पूजासे और धर्मकी बातें सुनने (एवं उनका पालन करने) से उनकी प्राप्ति होती है।

भविष्यपुराण

सम्प्रति जो भविष्यपुराण उपलब्ध है, वह ब्राह्म, मध्यम, प्रतिसर्ग तथा उत्तर—इन चार मुख्यपर्वोंमें विभक्त है। पुनः मध्यमपर्व तीन तथा प्रतिसर्गपर्व चार—इन अवान्तरखण्डोंमें विभक्त है। पर्वोंके अन्तर्गत अध्याय हैं, जिनकी कुल संख्या ५८५ है और श्लोकसंख्या लगभग २८ हजार है। विषय-वस्तु, वर्णनशैली तथा काव्य-रचनाकी दृष्टिसे यह पुराण अत्यन्त भव्य, आकर्षक तथा उच्चकोटिका ग्रन्थरत्न है। इसमें धर्म, सदाचार, नीति, उपदेश, आख्यान-साहित्य, व्रत, तीर्थ, दान तथा ज्योतिष एवं आयुर्वेदादि शास्त्रोंके विषयोंका अद्‌भुत संग्रह हुआ है। इसकी कथाएँ इतनी रोचक एवं प्रभावोत्पादक हैं कि एक बार प्रारम्भ करनेपर उन्हें पूरा पढ़े बिना बीचमें छोड़ना कठिन लगता है। उदाहरणार्थ प्रतिसर्गपर्वके द्वितीय खण्डके २३ अध्यायोंमें वेतालविक्रम-संवादके रूपमें जो कथा-प्रबन्ध संगृहीत है, वह अत्यन्त रमणीय तथा मोहक है। अत्यन्त रोचकताके कारण ही यह कथाप्रबन्ध गुणाढ्यकी बृहत्कथा, क्षेमेन्द्रकी बृहत्कथामञ्जरी, सोमदेवके कथासरित्सागर आदिमें 'वेतालपञ्चविंशति'के रूपमें संगृहीत हुआ है। भविष्यपुराणकी इन्हीं २५ कथाओंका नाम वेतालपञ्चविंशति या वेतालपञ्चविंशतिका है। हिंदी-अंग्रेजी आदि अनेक देशी तथा विदेशी भाषाओंमें इसके कई अनुवाद हैं। इसी प्रकार प्रतिसर्गपर्वके ही द्वितीय खण्डके २४से २९ तकके : अध्यायों (२४० श्लोकों) में उपनिबद्ध, 'श्रीसत्यनारायणव्रतकथा' सर्वोत्तम कथा-साहित्य है। उत्तरपर्वमें वर्णित व्रतोत्सव तथा दान-माहात्म्यसे सम्बद्ध कथाएँ भी एक-से-एक बढ़कर हैं। साथ ही ब्राह्मपर्व तथा मध्यमपर्वकी सूर्यसम्बन्धी कथाएँ भी कम रोचक नहीं हैं, जो श्रीकृष्णपुत्र साम्बके चरित्रसे सम्बद्ध हैं और साम्बनामक पुराणमें भी अनुलोम-विलोम-क्रमसे प्राप्त हो जाती हैं। आल्हा-ऊदलके इतिहासका प्रसिद्ध आख्यान भी इसी पुराणके आधारपर प्रचलित है।

भविष्यपुराणकी दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि यह पुराण भारतवर्षके वर्तमान समस्त आधुनिक इतिहासके ग्रन्थोंका आधार है। इसके प्रतिसर्गपर्वके तृतीय तथा चतुर्थखण्डमें इतिहासकी महत्त्वपूर्ण सामग्री विद्यमान है। इतिहासलेखकोंने प्रायः इसीका आधार लिया है। इसमें मध्यकालीन हर्षवर्धन आदि हिंदू राजाओं और अलाउद्दीन, मुहम्मदतुगलक, तैमूरलंग, बाबर, अकबर आदि पठान, तुगलक, खिलजी तथा मुगल राजवंशोंका विस्तृत प्रामाणिक इतिहास निरूपित है।

इस पुराणकी तृतीय विशेषता है कि इसमें विशेषरूपसे मध्यमपर्वमें समस्त कर्मकाण्डका श्रेष्ठ संग्रह हुआ है। यदि इसका ठीकसे सम्पादन हो तो यह किसी भी प्रामाणिक कर्मकाण्ड-ग्रन्थसे न्यून सिद्ध न होकर विशेष उपयोगी प्रतीत होगा। इसमें इष्टापूर्त और सभी प्रकारके यज्ञों तथा संस्कारों आदिके सम्यक् विधान निरूपित हैं।

इसकी अन्य विशेषता यह है कि इसमें वर्णित व्रत तथा दानसे सम्बद्ध विषय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। ब्राह्मपर्वके १६वें अध्यायसे लेकर १११वें अध्यायतक प्रायः प्रतिपत्कल्पसे लेकर सप्तमीकल्पतक विभिन्न प्रकारके तिथि-वार व्रतोंका वर्णन है। सप्तमीकल्पमें सोलह प्रकारके सप्तमीव्रतोंका तथा दानोंका सम्यक् प्रतिपादन हुआ है। इतने विस्तारसे व्रतोंका वर्णन न किसी पुराण, धर्मशास्त्रमें है और न किसी स्वतन्त्र व्रत-संग्रहके ग्रन्थमें। हेमाद्रि, व्रतकल्पद्रुम, व्रतरत्नाकर, व्रतराज आदि परवर्ती व्रत-साहित्यमें मुख्यरूपसे भविष्यपुराणका ही आश्रय लिया गया है।

यहाँतक तो समस्त पुराणका संक्षिप्त विहंगावलोकन हुआ। अब पर्वक्रमकी दृष्टिसे उनके प्रमुख विषयोंका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार विवेचित है—

(१) **ब्राह्मपर्व**—इसमें २१५ अध्याय हैं। इस पर्वमें मुख्यरूपसे नित्यकर्म, संस्कार, सामुद्रिक लक्षण, सृष्टि-प्रक्रिया, वर्णाश्रमधर्म, सर्पोंका सम्पूर्ण विवरण, सूर्य-वृत्तान्त, साम्बोपाख्यान, देवमन्दिर, प्रतिमा-प्रतिष्ठा, पूजा-उपासना-विधान, शान्तिक-पौष्टिक मन्त्र तथा आराधना और व्रतोंका वर्णन है।

(२) **मध्यमपर्व**—इसमें ६२ अध्याय हैं, जिनमें वेद-वेदाङ्ग, इतिहास-पुराणका साहित्य, इष्टापूर्तकर्म, साङ्गोपाङ्ग कुण्ड-मण्डप-पात्र-निर्माण-सहित यज्ञ, गोत्र-प्रवर-विवरण, श्राद्धविधि तथा विस्तारसे वृक्षारोपण-माहात्म्य निरूपित है।

(३) **प्रतिसर्गपर्व**—इस पर्वमें १०० अध्याय हैं, जिनमें चारों युगोंका इतिहास, दशविध ब्राह्मण, दशनामधारी संन्यासी, क्षत्रिय; वैश्यादिके सभी शाखाओंका वर्णन, सभी प्रकीर्ण जातियोंका इतिहास, विभिन्न धर्म-सम्प्रदायोंका वर्णन, भोज, जयचन्द, पृथ्वीराज, आल्हा-ऊदल, शिवाजी, पठान, मुगल तथा अंग्रेज-शासकोंके इतिहास और शंकर, मध्व, चैतन्य आदि आचार्योंका जीवनवृत्त वर्णित है। साथ ही विभिन्न भाषाओंका परिचय तथा नगरोंकी स्थापनाका महत्त्वपूर्ण इतिहास भी वर्णित है।

(४) **उत्तरपर्व**—इसमें २०८ अध्यायोंमें मुख्य रूपसे व्रत-विधान, होली-दीपावली आदि उत्सव, देवपूजा, विविध प्रकारकी शान्तिविधि तथा दानोंका निरूपण है। अन्तमें सदाचारका वर्णन है।

कथा-आख्यान—

पुराण सुनने-सुनानेका फल

पुराणके सुनने और सुनानेवालेको महान् फल प्राप्त होता है—यह तथ्य निम्नलिखित कथाके द्वारा प्रकट किया गया है—

'एक बार कुमार कार्तिकेय भगवान् सूर्यके दर्शनके लिये गये। उन्होंने बड़ी श्रद्धासे उनकी पूजा की। इसके बाद भगवान् सूर्यकी आज्ञासे वे वहीं बैठ गये। थोड़ी देर बाद उन्होंने वहाँ दो ऐसे दृश्य देखे जिनसे उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने देखा कि एक दिव्य विमानसे कोई पुरुष आया। उसे देखते ही भगवान् भास्कर उठकर खड़े हो गये। फिर उसके अङ्गको स्पर्श करके और उसका सिर सूँघकर उन्होंने अपनी भक्त-वत्सलता प्रकट की और मीठी-मीठी बातें कर उसे अपने पास ही बैठा लिया। ठीक इसी अवसरपर दूसरा विमान आया। उससे उतरकर जो व्यक्ति भगवान् सूर्यके पास आया, उसका भी उन्होंने वैसा ही सम्मान किया और उसे भी अपने पास ही बैठा लिया।

जिनकी वन्दना ब्रह्मा, विष्णु, महेश किया करते हैं, उन भगवान् सूर्यने दो साधारण व्यक्तियोंका इतना सत्कार कैसे किया—यही कुमारके आश्चर्यका विषय था। कुमारने अपना आश्चर्य भगवान् सूर्यके सामने रखते हुए पूछा—'भगवन्! इन दोनों सज्जनोंने ऐसे कौन-से कर्म किये हैं जो आपके इतने स्नेह-भाजन बन गये हैं?'

भगवान् सूर्यने कहा—'ये सज्जन, जो पहले आये हैं, अयोध्यामें इतिहास-पुराणकी कथा कहा करते थे। कथा सुनानेवाले मुझे बहुत प्रिय लगते हैं। यम, यमी, शनि, मनु, तपती भी मुझे इतने प्रिय नहीं लगते जितने कि कथावाचक। मुझे धूप-दीप आदि उपचारोंसे भी उतनी प्रसन्नता नहीं होती, जितनी कथाके सुनानेसे होती है। इन सज्जनके कथावाचनसे ही मैं इनपर इतना प्रसन्न हुआ हूँ।

भगवान् सूर्यने आगे कहा—'ये सज्जन, जो बादमें मेरे पास आये हैं, बहुत ही श्रद्धासे इतिहास-पुराणको सुना करते थे। एक दिन कथा समाप्त होनेपर इन्होंने कथावाचककी प्रदक्षिणा की और उन्हें सोना प्रदान किया। इनके द्वारा कथावाचकका जो सम्मान किया गया, उससे मेरी प्रीति इनपर और बढ़ गयी।'

इस तरह इतिहास-पुराणका सुनना, इन ग्रन्थों तथा वाचककी पूजा और इतिहास-पुराणका सुनाना भगवान्को सबसे अधिक प्रिय है।

भगवान् सूर्यका परिवार

भगवान् सूर्य उत्पत्तिके समय एक प्रकाशमय विशाल गोलाकार वृत्तके रूपमें थे, उनका एक नाम मार्तण्ड है। देवशिल्पी विश्वकर्माने अपनी पुत्री संज्ञाका विवाह उनके साथ कर दिया था। संज्ञाके सुरेणु, राज्ञी, द्यौ, त्वाष्ट्री एवं प्रभा आदि अनेक नाम हैं। सूर्यका प्रचण्ड तेज संज्ञाके लिये सर्वथा दुःसह था। तेजसे उसकी आँखें मुँद जाती थीं, फिर भी वह सभी

प्रकारसे अपने पतिको संतुष्ट रखती थी। उसी स्थितिमें संज्ञासे वैवस्वत मनु, यम और यमुना नामकी तीन संतानें उत्पन्न हुईं।

संज्ञाके मनमें अपने पतिके सुन्दर रूपको स्पष्ट न देखनेका दुःख बना रहता था। उसने सोचा कि 'तपस्या करनेसे मुझमें वह शक्ति आ सकती है, जिससे मैं उनके सुन्दर रूपको अच्छी तरह देख सकूँ और उनके अङ्गस्पर्शको सह सकूँगी।' ऐसा विचार कर उसने अपने शरीरसे एक छाया प्रकट की और उसे उसने पतिकी सेवामें नियुक्त कर स्वयं कुछ दिन पिताके घर रहकर, बादमें उत्तरकुरुमें तपस्या करने चली गयी। अपने सतीत्वकी रक्षाके लिये उसने अपना स्वरूप अश्विनीका बना लिया था।

छायाका दूसरा नाम विक्षुभा है। उसके प्रत्येक अङ्ग, आकृति, बोल-चाल आदि संज्ञाके सदृश ही थे, इसलिये भगवान् सूर्यने इस रहस्यकी ओर ध्यान नहीं दिया। वे छायाको संज्ञा ही मानते रहे। उससे सावर्ण्य मनु, शनि और तपती तथा विष्टि (भद्रा) नामकी चार संतानें हुईं। छाया अपनी संतानोंको बहुत प्यार करती थी और वैवस्वत यम तथा यमुनासे द्वेष करती थी। यह विषमता अन्तमें इतनी बढ़ी कि उसने विवादका रूप धारण कर लिया।

छायाद्वारा निरन्तर उत्पीड़ित होनेपर यमको एक दिन क्रोध हो आया। माताको धमकानेके लिये उन्होंने अपना पैर उठा लिया। यह देखकर छाया कुपित हो उठी, उसने शाप दे दिया कि पितृ-भार्यापर उठाया यह पैर पृथ्वीपर गिर पड़ेगा।

इसी कलहके बीच भगवान् सूर्य आ गये। बालक यमने पितासे कहा—'पिताजी! माता प्रतिदिन हम तीन भाई-बहनोंको तो तंग किया करती हैं और शनि, तपती आदि-की तरह नहीं मानतीं और पृथ्वीपर पैर गिरनेका शाप भी दे डाला है।' यह सुनकर भगवान् सूर्यने छायासे पूछा—'तुम्हारे लिये सभी संतानें बराबर हैं, फिर यह विषमता क्यों करती हो।' भगवान् सूर्यने छायाके शापका परिहार करते हुए कहा कि 'यमका पैर नहीं गिरेगा। तपती संवरणकी पत्नी होगी। विन्ध्याचलके दक्षिण 'तपती' और उत्तरकी ओर 'यमुना' बहेंगी। ये दोनों नदियाँ जनताके पाप-तापका नाश करती रहेंगी।' पुनः उन्होंने पुत्रको वरदान दिया कि 'तुम लोकपाल बन जाओ।'

इसके बाद भगवान् सूर्य अपने ससुर त्वष्टाके पास गये। वे जानना चाहते थे कि मेरी प्रियतमा उन्हें छोड़कर तप क्यों कर रही है? त्वष्टाने ध्यान लगाकर सब बातें जान लीं। उन्होंने बताया कि संज्ञाको आपका तेज असह्य था। आपमें इतना अधिक प्रकाश है कि आपका रूप उससे ढक जाता है। यदि आप चाहें तो प्रकाशको तराशकर कम कर दिया जाय। भगवान् सूर्य अपनी पत्नीकी प्रसन्नताके लिये कष्ट सहनेको तैयार हो गये, तब त्वष्टा (विश्वकर्मा) ने भ्रमि (खराद) पर चढ़ाकर उनके तेजको छाँट दिया।

भगवान् सूर्यको अपनी पत्नीके अनुरूप रूप पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अपनी पत्नीके पास उत्तरकुरु चले गये। वहाँ उन्होंने अपने सतीत्वकी रक्षाके लिये अश्विनी-रूपमें स्थित अपनी पत्नीको पहचान लिया और स्वयं अश्वका रूप धारणकर उससे मिले। बेचारी अश्विनी घबरा गयी। वह डर गयी कि किसी दूसरे पुरुषने मेरा स्पर्श न कर लिया हो। तब उसने दोनों नाकोंसे सूर्यके तेजको फेंक दिया। उसीसे अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति हुई। तेजके अन्तिम अंशसे रेवन्तकी उत्पत्ति हुई। बड़े होनेपर दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके वैद्य हुए और रेवन्तको गुह्यकों एवं अश्वोंका आधिपत्य प्राप्त हुआ।

इस तरह भगवान् सूर्यकी संज्ञासे वैवस्वत मनु, यम यमुना, अश्विनीकुमार और रेवन्त तथा छायासे शनि, तपती, विष्टि और सावर्णिमनु ये दस संताने हुईं। विषमता अच्छी नहीं होती। भगवान् छोटे-बड़े सबमें समानरूपसे विद्यमान हैं। अतः सदा सम व्यवहार ही करना चाहिये। यही साम्ययोग है। इस कथासे व्यक्त होता है कि विषमताके व्यवहारसे कोई लाभ नहीं है।

भगवान् भास्करकी आराधनाका अद्भुत फल

महाराज सत्राजित्का भगवान् भास्करमें स्वाभाविक अनुराग था। कमल तो केवल दिनमें भगवान् सूर्यपर टकटकी लगाये रहते हैं, किंतु सत्राजित्की मनरूपी आँखें उन्हें दिन-रात निहारा करती थीं। भगवान् सूर्यने भी

महाराजको निहाल कर रखा था। उन्होंने ऐसा राज्य दिया था, जिसे वे अपनी प्यारभरी आँखोंसे दिन-रात निहारा करते थे। इतना वैभव दे दिया था, जिसे देखकर सबको विस्मय होता था, स्वयं महाराज भी विस्मित रहते थे।

इसी विस्मयने उनमें यह जिज्ञासा जगा दी थी कि 'वह कौन-सा पुण्य है, जिसके कारण यह वैभव उन्हें मिला है। यदि उस पुण्यकर्मका पता लग जाय तो उसका फिरसे अनुष्ठान कर अगले जन्ममें इस वैभवको स्थिर बना लिया जाय।'

उन्होंने ऋषि-मुनियोंकी एक सभा एकत्र की। महारानी विमलवतीने भी इस अवसरसे लाभ उठाना चाहा। उन्होंने महाराजसे कहा—'नाथ! मैं भी जानना चाहती हूँ कि मैंने ऐसा कौन-सा शुभ कर्म किया है जिससे मैं आपकी पत्नी बन सकी हूँ।'

महाराजने सभाको सम्बोधित करते हुए कहा—'पूज्य महर्षियो! मैं और मेरी पत्नी—दोनों यह जानना चाहते हैं कि पूर्वजन्ममें हम दोनों कौन थे? और किस कर्मके अनुष्ठानसे यह वैभव प्राप्त हुआ है? यह रूप और यह कान्ति भी कैसे प्राप्त हुई है?'

महर्षि परावर्तनने ध्यानसे देखकर कहा—'राजन्! पहले जन्ममें आप शूद्र थे। उस समय आपका स्वभाव और कर्म दोनों आजसे विपरीत थे। प्रत्येकको पीड़ित करना आपका काम था। किसी प्राणीसे आप स्नेह नहीं कर पाते थे। उत्कट पापसे आपको कोढ़ भी हो गया था। आपके अङ्ग कट-कटकर गिरने लगे थे। उस समय आपकी पत्नी मलयवतीने आपकी बहुत सेवा की। आपके प्रेममें मग्न रहनेके कारण वह भूखी-प्यासी रहकर भी आपकी सेवा किया करती थी। आपके बन्धु-बान्धवोंने आपको पहलेसे ही छोड़ रखा था; क्योंकि आपका स्वभाव बहुत ही क्रूर था। आपने क्रूरतावश अपनी पत्नीका भी परित्याग कर दिया था, किंतु उस साध्वीने आपका त्याग कभी नहीं किया। वह छायाकी तरह आपके साथ लगी रही। अन्तमें इसी पत्नीके साथ आपने सूर्यमन्दिरकी सफाई आदिका कार्य आरम्भ कर दिया। धीरे-धीरे आप दोनोंने अपनेको सूर्य भगवान्को अर्पित कर दिया।

आप दोनोंके सेवा-कार्य उत्तरोत्तर बढ़ते गये। झाड़ू-बुहारू, लीपना-पोतना आदि कार्य करके शेष समय दोनों इतिहास-पुराणके श्रवणमें बिताने लगे। एक दिन आपकी पत्नीने अपने पिताकी दी हुई अँगूठी वस्त्रके साथ कथा-वाचकको दे दी। इस तरह सूर्यकी सेवासे आप दोनोंके पाप जल गये। सेवामें दोनोंको रस मिलने लगा था, अतः दिन-रातका भान नहीं होता था।

एक दिन महाराज कुवलाश्व उस मन्दिरमें आये। उनके साथ बहुत बड़ी सेना भी थी। राजाके उस ऐश्वर्यको देखकर आपमें राजा बननेकी इच्छा जाग उठी। यह जानकर भगवान् सूर्यने उससे भी बड़ा वैभव देकर आपकी इच्छाकी पूर्ति कर दी है। यह तो आपके वैभव प्राप्त करनेका कारण हुआ। अब आपमें जो इतना तेज है और आपकी पत्नीमें जो इतनी कान्ति आ गयी है, इनका रहस्य सुनो। एक बार सूर्य-मन्दिरका दीपक तैल न रहनेसे बुझ गया। तब आपने अपने भोजनके लिये रखे हुए तैलमेंसे दीपकमें तैल डाला और आपकी पत्नीने अपनी चादर फाड़कर बत्ती लगा दी थी। इसीसे आपमें इतना तेज और आपकी पत्नीमें इतनी कान्ति आ गयी है।

आपने उस जन्ममें जीवनकी संध्यावेलामें तन्मयताके साथ सूर्यकी आराधना की थी। उसका फल जब इतना महान् है तब जो मनुष्य दिन-रात भक्ति-भावसे दत्तचित्त होकर जीवनपर्यन्त सूर्यकी उपासना करता है, उसके विशाल फलको कौन आँक सकता है?

महाराज सत्राजित्ने पूछा—'भगवान् सूर्यको क्या-क्या प्रिय है? मैं चाहता हूँ कि उनके प्रिय फूलों और पदार्थोंका उपयोग करूँ।' परावसुने कहा—'भगवान्को घृतका दीप बहुत पसंद है। इतिहास-पुराणोंके वाचककी जो पूजा की जाती है, उसे भगवान् सूर्यकी ही पूजा समझो। वेद और वीणाकी ध्वनि भगवान्को उतना पसंद नहीं है, जितनी 'कथा'। फूलोंमें करवीर (कनेर) का फूल और चन्दनोंमें रक्त चन्दन भगवान् सूर्यको बहुत प्रिय है।'
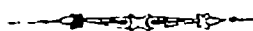
कर्तव्यपरायणताका अद्भुत आदर्श

प्राचीन कालमें सर्वसमृद्धिपूर्ण वर्धमान नगरमें रूपसेन नामका एक धर्मात्मा राजा था। एक दिन उसके दरबारमें वीरवर नामका एक गुणी व्यक्ति अपनी पत्नी, कन्या एवं पुत्रके साथ वृत्तिके लिये उपस्थित हुआ। राजाने उसकी विनयपूर्ण बातोंको सुनकर प्रतिदिन एक सहस्र स्वर्णमुद्राका वेतन नियत कर सिंहद्वारके रक्षकके रूपमें उसकी नियुक्ति कर ली। दूसरे दिन राजाने अपने गुप्तचरोंसे जब पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि वह अपना अधिकांश द्रव्य यज्ञ, तीर्थ, शिव, विष्णुके मन्दिरोंमें आराधनादि-कार्यों तथा साधु, ब्राह्मण एवं अनाथोंमें वितरित कर अत्यल्प शेषसे अपने परिजनोंका पालन करता है। इससे राजाने प्रसन्न होकर उसकी नियुक्तिको पूर्णरूपसे स्थायी कर दिया।

एक दिन आधी रातमें जब धारासार वृष्टि, बादलोंकी गरज, विद्युत् एवं झंझावातसे रात्रिकी विभीषिका सीमा स्पर्श कर रही थी, श्मशानसे किसी नारीकी करुण-क्रन्दन-ध्वनि राजाके कानोंमें पड़ी। राजाने सिंहद्वारपर उपस्थित वीरवरसे इस रुदन-ध्वनिका पता लगानेके लिये कहा। जब वीरवर तलवार लेकर चला, तब राजा भी उसके भयकी आशङ्का तथा सहयोगार्थ एक तलवार लेकर गुप्तरूपसे उसके पीछे लग गया। वीरवरने श्मशान पहुँचकर एक स्त्रीको वहाँ रोते देखा और उससे जब इसका कारण पूछा, तब उसने कहा कि 'मुझे इस राज्यकी लक्ष्मी अथवा राष्ट्रलक्ष्मी समझो। इसी मासके अन्तमें राजा रूपसेनकी मृत्यु हो जानेपर मैं अनाथ होकर कहाँ जाऊँगी, इसीलिये रो रही हूँ।' वीरवरने राजाके दीर्घायुके लिये जब उससे उपाय पूछा, तब उसने वीरवरके पुत्रकी चण्डिकाके सामने बलि देनेसे राजाके शतायु होनेकी बात कही। फिर क्या था? वीरवर उलटे पाँव घर लौटकर पत्नी, पुत्र आदिको जगाकर, उनकी सम्मति लेकर उनके साथ चण्डिका-मन्दिरमें पहुँचा। राजा भी गुप्तरूपसे पीछे-पीछे सर्वत्र जाता रहा। वीरवरने देवीकी प्रार्थना कर राजाकी आयु बढ़ानेके लिये अपने पुत्रकी बलि चढ़ा दी। इसे देखते ही उसकी बहनका दुःखसे हृदयस्फोट हो गया। फिर उसकी माता भी चल बसी। वीरवर इन तीनोंका दाहकर स्वयं भी राजाकी आयुकी वृद्धिके लिये बलि चढ़ गया।

राजा छिपकर यह सब देख रहा था। उसने देवीकी प्रार्थना कर अपने जीवनको व्यर्थ बताते हुए सिर काटनेके लिये ज्यों-ही तलवार खींची त्यों-ही देवीने प्रकट होकर उसका हाथ पकड़ लिया और वर माँगनेको कहा। राजाने परिजनोंसहित वीरवरको जिलानेकी बात कही। फलतः देवीने सबको जिला दिया और राजा चुपकेसे वहाँसे चलकर अपनी अट्टालिकामें जाकर लेट गया। इधर वीरवर भी अपने कुछ चकित, कुछ देवीकी कृपा मानता हुआ अपने पुनर्जीवित परिवारको घरपर छोड़कर राजप्रासादके सिंहद्वारपर खड़ा हो गया। जब राजाने उसके वहाँ उपस्थितिके लक्षणोंसे परिचित होकर उसे बुलाकर अज्ञात नारीके रुदनका कारण पूछा, तब वीरवरने कहा 'राजन्! वह कोई चुड़ैल थी और मुझे देखते ही वह अदृश्य हो गयी, चिन्ताकी कोई बात नहीं।'

इसपर राजाने मन-ही-मन उसकी धीरता तथा स्वामिभक्तिकी प्रशंसा की और प्रातःकाल सारी बातको अपने सभासदोंसे बतलाकर वीरवरको पुत्रसहित कर्नाट एवं लाटदेश (महाराष्ट्र-गुजरात) का अधिपति बना दिया और उन्हें सर्वथा अपने तुल्य ही समृद्धिशाली बनाकर अपनी मैत्रीकी दृढ़ताका निश्चय किया। यह कथा परोपकार, कर्तव्यपरायणता, दीन एवं अनाथकी सेवा, स्वामिभक्ति एवं परस्पर प्राणरक्षार्थ आत्मोत्सर्गकी भावनाकी तीव्र प्रेरणा प्रदान करती है। भविष्यपुराण ऐसी कथाओंसे ओतप्रोत है।

जिनका सदाचार शिथिल नहीं होता, जो अपने दोषोंसे माता-पिताको कष्ट नहीं पहुँचाते, प्रसन्न-चित्तसे धर्मका आचरण करते हैं तथा असत्यका परित्याग कर अपने कुलकी विशेष कीर्ति चाहते हैं, वे ही महान् कुल हैं।

ब्रह्मवैवर्तपुराण

अष्टादश महापुराणोंके क्रम-वर्णनमें ब्रह्मवैवर्तपुराण दसवें स्थानपर परिगणित है। यह वैष्णव पुराण है। सम्पूर्ण ब्रह्मवैवर्तपुराण (१) ब्रह्मखण्ड, (२) प्रकृतिखण्ड, (३) गणपतिखण्ड तथा (४) श्रीकृष्णजन्मखण्ड—इन चार खण्डोंमें विभक्त है। अन्तिम खण्डमें दो खण्ड हैं—पूर्वखण्ड तथा उत्तरखण्ड। इसकी श्लोक-संख्या अठारह हजार है तथा अध्याय-संख्या २६६ है[१]।

इस पुराणके प्रमुख प्रतिपाद्य देवता विष्णुस्वरूप श्रीकृष्ण तथा उनकी प्राणाधिका शक्ति श्रीराधा हैं। सम्पूर्ण पुराणके दो तिहाई भागमें श्रीकृष्ण तथा श्रीराधाका वर्णन है तथा शेष तिहाई भागमें अन्य विषयोंका विवेचन है। इसमें श्रीकृष्णके रूपमें एकमात्र परम सत्यतत्त्व भगवान्‌का तथा श्रीराधाके रूपमें एकमात्र परम सत्यतत्त्वमयी भगवतीका प्रतिपादन किया गया है। शक्ति और शक्तिमान् वस्तुतः एक ही हैं। इनमें तात्त्विक दृष्टिसे सर्वथा अभेद है।

प्रकृतिके भिन्न-भिन्न परिणामोंका जिसमें प्रतिपादन हो वह पुराण ब्रह्मवैवर्त है। एक दूसरी व्याख्याके अनुसार इस पुराणमें श्रीकृष्णने अपनी पूर्ण ब्रह्मरूपताको विवृत (प्रकट) कर दिया है, इसीलिये पुराणवेत्ता इसे ब्रह्मवैवर्त कहते हैं—

विवृतं ब्रह्मकार्त्स्न्यं च कृष्णेन यत्र शौनक॥ ब्रह्मवैवर्तकं तेन प्रवदन्ति पुराविदः।

(ब्र० खण्ड १।५८-५९)

यह सारा जगत् ब्रह्म (परमात्मा श्रीकृष्ण) का विवर्त है अर्थात् श्रीकृष्णमें ही भ्रमसे इसका आरोप हुआ है। इस बातको बतानेवाला पुराण ब्रह्मवैवर्त है।

परब्रह्म परमात्मा नामसे श्रीकृष्णका ही इस पुराणमें प्रतिपादन हुआ है। **'वन्दे कृष्णं गुणातीतं परं ब्रह्माच्युतं यतः'** (ब्र० खण्ड १।४)। प्रकृति, ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवोंका आविर्भाव श्रीकृष्णसे ही हुआ है—**'आविर्बभूवुः प्रकृतिब्रह्मविष्णुशिवादयः॥'** (ब्रह्मखण्ड १।४)।

ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् एक ही अद्वय परमसत्ताके लीलानुरूप तीन नाम हैं। ये ही परमात्मा अथवा ब्रह्म ही ब्रह्मवैवर्तपुराणमें श्रीकृष्ण बतलाये गये हैं। वे ही श्रीकृष्ण—महाविष्णु, विष्णु, नारायण, शिव तथा गणेश आदि रूपोंमें प्रकट हैं और प्रेम तथा प्राणोंकी अधिदेवी श्रीराधा ही दुर्गा, महालक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, काली आदि रूपोंमें प्रकट हैं। कभी श्रीकृष्ण महादेवका स्तवन करते हैं, उन्हें परमतत्त्व तथा अपनेसे अभिन्न बताते हैं तो कहीं महादेव श्रीकृष्णका स्तवन करते हुए उन्हें परम आदितत्त्व और अपनेसे अभिन्न बताते हैं। कहीं श्रीराधाजी दुर्गा एवं पार्वतीका स्तवन करती हैं और उन्हें सर्वदेवीस्वरूपा बतलाती हैं तो कहीं श्रीदुर्गा श्रीराधाजीको सर्वदेवीस्वरूपा तथा सबको आदेश देनेवाली आदिस्वरूपा महादेवी बतलाती हैं। तात्पर्य यह है कि एक ही परमतत्त्व तथा उनकी शक्ति अनेक रूपोंमें आविर्भूत है।

सृष्टिके अवसरपर परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं दो रूपोंमें प्रकट होते हैं—प्रकृति तथा पुरुष। उनका दाहिना अङ्ग पुरुष और बायाँ अङ्ग प्रकृति है। वही मूलप्रकृति राधा हैं। ये ब्रह्मस्वरूपा नित्या और सनातनी हैं, फिर इनके पाँच रूप हो गये—(१) शिवस्वरूपा नारायणी और पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी भगवती दुर्गा। (२) शुद्धसत्त्वस्वरूपा, परमप्रभु श्रीहरिकी शक्ति, समस्त सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवी श्रीमहालक्ष्मी। (३) वाणी, विद्या, बुद्धि और ज्ञानकी अधिष्ठात्री देवी श्रीसरस्वती।

१-नारदीयपुराणमें ब्रह्मवैवर्तपुराणकी जो श्लोक-संख्या तथा विवेच्य विषय दिये गये हैं, वे वर्तमान उपलब्ध ब्रह्मवैवर्तपुराणमें न्यूनाधिकरूपमें ही प्राप्त होते हैं।

(४) ब्रह्मतेजसम्पन्ना शुद्ध सत्त्वमयी ब्रह्माजीकी परम प्रियशक्ति श्रीसावित्री। (५) प्रेम तथा प्राणोंकी अधिदेवी, परमात्मा श्रीकृष्णकी प्राणाधिका प्रिया, अनुपमेय-अतुलनीय सौन्दर्य-माधुर्य-सद्गुण-समूह एवं गौरवसे सम्पन्ना श्रीराधा। ये नित्य-निकुञ्जेश्वरी, रासेश्वरी, सुरसिका नामसे प्रसिद्ध हैं, निर्लिप्ता हैं और आत्मस्वरूपिणी हैं। ये ही मूलप्रकृति हैं। इन्हींके अंश-कला-कलांशसे गङ्गा, तुलसी, मनसा, काली, पृथ्वीदेवी आदिका आविर्भाव हुआ है। समस्त 'स्त्रीतत्त्व' इन्हीं श्रीराधाजीका भेद-भेदांश अथवा प्रभेदांश है। ये प्राणशक्ति राधा और प्राणेश्वर श्रीकृष्ण परस्पर अनुस्यूत हैं। यही मुख्यतः अथवा तात्पर्यार्थसे ब्रह्मवैवर्तपुराणका प्रतिपाद्य विषय है।

खण्डचतुष्टयात्मक इस पुराणके प्रथम ब्रह्मखण्डमें विष्णु— श्रीकृष्णको ही परब्रह्म बतलाया गया है और सबके बीज-स्वरूप परब्रह्म परमात्मा (श्रीकृष्ण)के तत्त्वका निरूपण है—'**ब्रह्मखण्डं सर्वबीजं परब्रह्मनिरूपणम्।**' (ब्र० ख० १।४५), द्वितीय प्रकृतिखण्डमें मूलप्रकृति श्रीराधादेवीके शुभ चरित्रोंका वर्णन है—'**ततः प्रकृतिखण्डे च देवीनां चरितं शुभम्॥**' (ब्र० ख० १।४८)। श्रीमद्देवीभागवतके नवम स्कन्ध तथा इस प्रकृतिखण्डके विषयोंमें अद्भुत साम्य है। यहाँतक कि अध्यायोंके अध्याय ज्यों-के-त्यों मिलते हैं। तृतीय गणपतिखण्डमें गणेशजीके जन्मादिका वृत्तान्त है—'**ततो गणेशखण्डे च तज्जन्म परिकीर्तितम्**' (ब्र० ख० १।५२)। चतुर्थ श्रीकृष्णजन्मखण्डमें जो तीनों खण्डोंसे बहुत बड़ा है, श्रीकृष्णके अवतार तथा उनकी लीलाओंका मनोहारी वर्णन है। श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें वर्णित श्रीकृष्णचरित और ब्रह्मवैवर्तके श्रीकृष्णजन्मखण्डकी लीलाकथाएँ प्रायः समान ही हैं।

इस पुराणमें भगवद्भक्ति, योग, सदाचार, वैष्णव तथा भक्तमहिमा, मनुष्यके धर्म, नारीधर्म, पतिव्रता तथा अतिथिसेवा, गुरुमहिमा, माता-पिताकी महिमा, रोग-विज्ञान, सुन्दर स्वास्थ्यके लिये आवश्यक बातें, लाभदायक ओषधि, बुढ़ापा न आनेके साधन, आयुर्वेदके सोलह आचार्य तथा उनके ग्रन्थोंका अध्ययन, भक्ष्याभक्ष्यका विचार, शकुन-अपशकुन तथा पाप-पुण्यका सुन्दर प्रतिपादन है। श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड अ० ७७ से ७९ तक तीन अध्यायोंमें सु-स्वप्नफल तथा दुःस्वप्नफलका चामत्कारिक वर्णन है। ये अध्याय स्वप्नाध्याय कहलाते हैं। इसमें त्याग, तपस्या, वैराग्य, धर्म और सदाचारके उपदेशोंको अनेक सुन्दर आख्यानोंके माध्यमसे समझाया गया है। इनके सिवा इसमें बहुतसे चमत्कारपूर्ण सिद्धमन्त्रों, उनके अनुष्ठानोंका, भगवान् तथा भगवतीके मनोहर एवं दिव्य ध्यान-स्वरूपोंका, उनके सिद्ध स्तोत्रों और कवचोंका वर्णन है, जो अन्य पुराणोंमें आये स्तोत्र-कवचादिसे अपना वैशिष्ट्य रखते हैं। वे अद्भुत लाभकारी हैं, उनका जप-पाठ करनेसे अभीष्टकी सिद्धि तथा परम पुरुषार्थकी उपलब्धि होती है।

ब्रह्माण्डकवच (ब्र० ख० अ० ३८)के प्रयोगसे रोग-भय-नाश तथा सर्वार्थसिद्धि होती है। विद्या-बुद्धि, यश तथा विश्व-विजयप्राप्तिके लिये बीज-मन्त्र '**ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र तथा सरस्वती-कवच (प्र० ख० ४) निर्दिष्ट है। स्थिर लक्ष्मी-प्राप्तिके लिये '**ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र तथा महालक्ष्मी-स्तोत्र (प्र० ख० अ० ३९) का पाठ फलदायक बतलाया गया है। इसी प्रकार जगन्मङ्गलकवच (प्र० ख० अ० ५६), त्रैलोक्य-विजयकवच (गण० ख० अ० ३१), काली-कवच (ग० ख० अ० ३७), महालक्ष्मी-कवच (ग० ख० अ० ३८), ब्रह्माण्ड-विजय-कवच (ग० ख० अ० ३९), श्रीकृष्ण-कवच (श्रीकृष्णजन्मखण्ड अ० १२) तथा श्रीकृष्ण-स्तोत्र (कृ० ख० अ० १९) आदि अनेक उपादेय स्तोत्र-कवच-मन्त्रादि इस पुराणमें वर्णित हैं। गणेशखण्ड तथा प्रकृतिखण्डमें तान्त्रिक उपासनाके भी अनेक प्रकरण उपलब्ध हैं। ब्रह्मादि देवताओंद्वारा श्रीकृष्णजन्मखण्डके पूर्वखण्ड (६।२१-२३)में जो श्रीराधा-माधवका स्तवन किया गया है, वह अत्यन्त मनोरम, लालित्यपूर्ण तथा अत्यन्त सुन्दर है—

तव चरणसरोजे मन्मनश्चञ्चरीको भ्रमतु सततमीश प्रेमभक्त्या सरोजे।
जननमरणरोगात् पाहि शान्त्यौषधेन सुदृढपरिपक्वां देहि भक्तिं च दास्यम्॥

(ब्रह्माजी बोले—) 'परमेश्वर! मेरा चित्तरूपी चञ्चरीक (भ्रमर) आपके चरणारविन्दोंमें निरन्तर प्रेमभक्तिपूर्वक भ्रमण

करता रहे। शान्तिरूपी औषध देकर मेरी जन्म-मरणके रोगसे रक्षा कीजिये तथा मुझे सुदृढ़ एवं अत्यन्त परिपक्व भक्ति और दास्यभाव दीजिये।'

भवजलनिधिमग्नश्चित्तमीनो मदीयो भ्रमति सततमस्मिन् घोरसंसारकूपे।
विषयमतिविनिन्द्यं सृष्टिसंहाररूपमपनय तव भक्तिं देहि पादारविन्दे॥

(भगवान् शंकरने कहा—प्रभो!) 'भवसागरमें डूबा हुआ मेरा चित्तरूपी मत्स्य सदा ही इस घोर संसाररूपी कूपमें चक्कर लगाता रहता है। सृष्टि और संहार—यही इसका अत्यन्त निन्दनीय विषय है। आप इस विषयको दूर कीजिये और अपने चरणारविन्दोंकी भक्ति दीजिये।'

तव निजजनसार्धं संगमो मे सदैव भवतु विषयबन्धच्छेदने तीक्ष्णखड्गः।
तव चरणसरोजे स्थानदानैकहेतुर्जनुषि जनुषि भक्तिं देहि पादारविन्दे॥

(धर्म बोले—मेरे ईश्वर!) 'आपके आत्मीय जनों (भक्तों) के साथ मेरा सदा समागम होता रहे, जो विषयरूपी बन्धनको काटनेके लिये तीखी तलवारका काम देता है तथा आपके चरणारविन्दोंमें स्थान दिलानेका एकमात्र हेतु है। आप जन्म-जन्ममें मुझे अपने चरणारविन्दोंकी भक्ति प्रदान कीजिये।'

इस वैष्णवपुराणके वक्ता सूतपुत्र सौति (उग्रश्रवा) और श्रोता महामुनि शौनकजी हैं। पुण्य-पवित्र तीर्थ नैमिषारण्यमें आदिगङ्गा गोमतीके पावन तटपर ऋषियोंके द्वादशवर्षीय सत्रमें महामुनि शौनकजीने सौतिजीसे कहा—'कृपानिधान! जिसके श्रवण और पठनसे भगवान् श्रीकृष्णमें अविचल भक्ति प्राप्त हो तथा जो तत्त्वज्ञानको बढ़ानेवाला हो, उस पुराणकी कथा कहिये', क्योंकि हरिभक्ति तो मोक्षसे भी बढ़कर है। वह कर्मका मूलोच्छेद करनेवाली, संसाररूपी कारागारमें बँधे हुए जीवोंकी बेड़ी काटनेवाली, जगत्‌रूपी दावानलसे दग्ध हुए जीवोंपर अमृतरसकी वर्षा करनेवाली और जीवधारियोंके हृदयमें नित्य-निरन्तर परम सुख एवं परमानन्द प्रदान करनेवाली है (ब्र० ख० १।१२-१४)।

सम्पूर्ण पुराण सुनानेके बाद अन्तमें इसके श्रवण-माहात्म्यको बतलाते हुए तत्त्वज्ञानी सौतिजी कहते हैं—यह पुराण शुभद, पुण्यप्रद, विघ्नविनाशक, ब्रह्मकी प्राप्ति करानेवाला, शोक-संतापका नाशक तथा श्रीहरिके श्रीचरणोंमें भक्ति और प्रेम बढ़ानेवाला है।

कथा-आख्यान—

श्रीनारदजीका अभिमान-भङ्ग

एक बार श्रीनारदजीके मनमें यह दर्प हुआ कि मेरे समान इस त्रिलोकीमें कोई संगीतज्ञ नहीं है। इसी बीच एक दिन उन्होंने रास्तेमें कुछ दिव्य स्त्री-पुरुषोंको देखा, जो घायल पड़े थे और उनके विविध अङ्ग कटे हुए थे। नारदजीके द्वारा इस स्थितिका कारण पूछनेपर उन दिव्य देव-देवियोंने आर्त स्वरमें निवेदन किया—'हम सभी राग-रागिनियाँ हैं। पहले हम अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे पूर्ण थे, पर आजकल नारद नामका एक संगीतानभिज्ञ व्यक्ति दिन-रात राग-रागिनियोंका अलाप करता चलता है, जिससे हमलोगोंके अङ्ग-भङ्ग हो गये हैं। आप यदि विष्णुलोक जा रहे हों तो कृपया हमारी दुरवस्थाका भगवान् विष्णुसे निवेदन करेंगे और उनसे प्रार्थना करेंगे कि वे हम-लोगोंको इस कष्टसे शीघ्र मुक्त कर दें।'

नारदजीने जब अपनी संगीतानभिज्ञताकी बात सुनी, तब वे बड़े दुःखी हुए। जब वे भगवद्धाममें पहुँचे, तब प्रभुने उनका उदास मुखमण्डल देखकर उनकी खिन्नता और उदासी-का कारण पूछा। नारदजीने सारी बातें बता दीं। भगवान् बोले—'मैं भी इस कलाका मर्मज्ञ कहाँ हूँ? यह तो भगवान् शंकरके वशकी बात है। अतएव उनके कष्ट दूर करनेके लिये शंकरजीसे प्रार्थना करनी चाहिये।'

जब नारदजीने महादेवजीसे सारी बातें कहीं, तब भगवान् भोलेनाथने उत्तर दिया—'मैं ठीक ढंगसे राग-रागिनियोंका अलाप करूँ तो निस्संदेह वे सभी अङ्गोंसे पूर्ण हो जायँगी, पर मेरे संगीतका श्रोता कोई उत्तम अधिकारी मिलना चाहिये।' अब नारदजीको और भी क्लेश हुआ कि 'मैं संगीत सुननेका अधिकारी भी नहीं हूँ।' जो हो, उन्होंने भगवान् शंकरसे ही उत्तम संगीत-श्रोता चुननेकी प्रार्थना की। उन्होंने भगवान् नारायणका नाम-निर्देश किया। प्रभुने भी यह प्रस्ताव मान लिया। संगीत-समारोह आरम्भ हुआ। सभी देव, गन्धर्व तथा राग-रागिनियाँ वहाँ उपस्थित हुईं। महादेवजीके राग अलापते ही उनके अङ्ग पूरे हो गये। नारदजी साधु-हृदय, परम महात्मा तो हैं ही। अहंकार दूर हो ही चुका था, अब राग-रागिनियोंको पूर्णाङ्ग देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए।

गरुड, सुदर्शनचक्र और श्रीकृष्णकी रानियोंका गर्व-भङ्ग

एक बार भगवान् श्रीकृष्णने गरुडको यक्षराज कुबेरके सरोवरसे सौगन्धिक कमल लानेका आदेश दिया। गरुडको यह अहंकार तो था ही कि मेरे समान बलवान् तथा तीव्रगामी प्राणी इस त्रिलोकीमें दूसरा नहीं है। वे अपने पंखोंसे हवाको चीरते तथा दिशाओंको प्रतिध्वनित करते हुए गन्धमादन पहुँचे और पुष्पचयन करने लगे। महावीर हनुमान्‌जीका वहीं आवास था। वे गरुडके इस अनाचारको देखकर उनसे बोले—'तुम किसके लिये यह फूल ले जा रहे हो और कुबेरकी आज्ञाके बिना ही इन पुष्पोंका क्यों विध्वंस कर रहे हो?'

गरुडने उत्तर दिया—'हम भगवान् श्रीकृष्णके लिये इन पुष्पोंको ले जा रहे हैं। भगवान्‌के लिये हमें किसीकी अनुमति आवश्यक नहीं दीखती।' गरुडकी इस बातसे हनुमान्‌जी कुछ क्रुद्ध हो गये और उन्हें पकड़कर अपनी काँखमें दबाकर आकाशमार्गसे द्वारकाकी ओर उड़ चले। उनकी भीषण ध्वनिसे सारे द्वारकावासी संत्रस्त हो गये। सुदर्शनचक्र हनुमान्‌जीकी गतिको रोकनेके लिये उनके सामने जा पहुँचा। हनुमान्‌जीने झट उसे दूसरी काँखमें दाब लिया। भगवान् श्रीकृष्णने तो यह सब लीला रची ही थी। उन्होंने अपने पार्श्वमें स्थित रानियोंसे कहा—'देखो, हनुमान् क्रुद्ध होकर आ रहे हैं। यहाँ यदि उन्हें इस समय सीता-रामके दर्शन न हुए तो वे द्वारकाको समुद्रमें डुबो देंगे। अतएव तुममेंसे तुरंत कोई सीताका रूप बना लो, मैं तो देखो यह राम बना।' इतना कहकर वे श्रीरामके स्वरूपमें परिणत होकर बैठ गये। अब जानकीजीका रूप बननेको हुआ, तब कोई भी न बना सकीं। अन्तमें उन्होंने श्रीराधाजीका स्मरण किया। वे आयीं और झट श्रीजानकीजीका स्वरूप बन गयीं।

इसी बीच हनुमान्‌जी वहाँ उपस्थित हुए। वहाँ वे अपने इष्टदेव श्रीसीतारामजीको देखकर उनके चरणोंपर गिर गये। इस समय भी वे गरुड और सुदर्शनचक्रको बड़ी सावधानीसे

अपने दोनों बगलोंमें दबाये हुए थे। भगवान् श्रीकृष्णने

(राम-वेशमें) उन्हें आशीर्वाद दिया और कहा—'वत्स ! तुम्हारी काँखोंमें यह क्या दिखलायी पड़ रहा है ?' हनुमान्‌जीने उत्तर दिया—'कुछ नहीं सरकार ! यह तो एक दुबला-सा क्षुद्र पक्षी निर्जन स्थानमें मेरे श्रीरामभजनमें बाधा डाल रहा था, इसी कारण मैंने इसे पकड़ लिया। दूसरा यह चक्र-सा एक खिलौना है, यह मेरे साथ टकरा रहा था, अतएव इसे भी दाब लिया है। आपको यदि पुष्पोंकी ही आवश्यकता थी तो मुझे क्यों नहीं स्मरण किया गया ? यह बेचारा पखेरू महाबली शिवभक्त यक्षोंके सरोवरसे बलपूर्वक पुष्प लानेमें कैसे समर्थ हो सकता है ?'

भगवान्‌ने कहा—'अस्तु ! इन बेचारोंको छोड़ दो। मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, अब तुम जाओ, अपने स्थानपर स्वच्छन्दतापूर्वक भजन करो।'

भगवान्‌की आज्ञा पाते ही हनुमान्‌जीने सुदर्शनचक्र और गरुडको छोड़ दिया तथा उन्हें पुनः प्रणाम करके 'जय राम' कहते हुए गन्धमादनकी ओर चल दिये। गरुडको गतिका, सुदर्शनको शक्तिका और पट्टमहिषियोंको सौन्दर्यका जो बड़ा गर्व था, वह एकदम चूर्ण हो गया।

इन्द्रका गर्व-भङ्ग

शचीपति देवराज इन्द्र कोई साधारण व्यक्ति नहीं, एक मन्वन्तरपर्यन्त रहनेवाले स्वर्गके अधिपति हैं। घड़ी-घंटोंके लिये जो किसी देशका प्रधान मन्त्री बन जाता है, उसके नामसे लोग घबराते हैं, फिर जिसे एकहत्तर दिव्य युगोंतक अप्रतिहत दिव्य भोगोंका साम्राज्य प्राप्त है, उसे गर्व होना तो स्वाभाविक है ही। इसीलिये इनके गर्वभङ्गकी कथाएँ भी बहुत हैं। दुर्वासाने इन्हें शाप देकर स्वर्गको श्रीविहीन किया । वृत्रासुर, विश्वरूप, नमुचि आदि दैत्योंके मारनेपर इन्हें बार-बार ब्रह्महत्या लगी। बृहस्पतिके अपमानपर पश्चात्ताप, बलिद्वारा राज्यापहरणपर दुर्दशा तथा गोवर्धनधारण एवं पारिजातहरण आदिमें भी कई बार इनका मानभङ्ग हुआ ही है। मेघनाद, रावण, हिरण्यकशिपु आदिने भी इन्हें बहुत नीचा दिखलाया और बार-बार इन्हें दुष्यन्त, खट्वाङ्ग, अर्जुनादिसे सहायता लेनी पड़ी। इस प्रकार इनके गर्वभञ्जनकी अनेकानेक कथाएँ हैं, तथापि ब्रह्मवैवर्त-पुराणमें इनके गर्वापहरणकी एक विचित्र कथा है, जो इस प्रकार है—

एक बार इन्द्रने एक बड़ा विशाल प्रासाद बनवाना आरम्भ किया। इसमें पूरे सौ वर्षतक इन्होंने विश्वकर्माको छुट्टी नहीं दी। विश्वकर्मा बहुत घबराये। वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीने भगवान्‌से प्रार्थना की। भगवान् एक ब्राह्मण-बालकका रूप धारणकर इन्द्रके पास पहुँचे और पूछने लगे—'देवेन्द्र ! मैं आपके अद्‌भुत भवननिर्माणकी बात सुनकर यहाँ आया हूँ। मैं जानना चाहता हूँ कि इस भवनको कितने विश्वकर्मा मिलकर बना रहे हैं और यह कबतक तैयार हो जायगा ?'

इन्द्र बोले—'बड़े आश्चर्यकी बात है ! क्या विश्वकर्मा भी अनेक होते हैं, जो तुम ऐसी बातें कर रहे हो ?' बहुरूपी प्रभु बोले—'देवेन्द्र ! तुम बस इतनेमें ही घबरा गये ? सृष्टि कितने ढंगकी है, ब्रह्माण्ड कितने हैं, ब्रह्मा-विष्णु-शिव कितने हैं, उन-उन ब्रह्माण्डोंमें कितने इन्द्र और विश्वकर्मा पड़े हैं—यह कौन जान सकता है ? यदि कदाचित् कोई पृथ्वीके धूलिकणोंको गिन भी सके, तो भी विश्वकर्मा अथवा इन्द्रोंकी संख्या तो नहीं ही गिनी जा सकती। जिस तरह जलमें नौकाएँ दीखती हैं, उसी प्रकार महाविष्णुके लोमकूपरूपी सुनिर्मल जलमें असंख्य ब्रह्माण्ड तैरते दीख पड़ते हैं।'

इस तरह इन्द्र और वटुमें संवाद चल ही रहा था कि वहाँ दो सौ गज लम्बा-चौड़ा एक चींटोंका विशाल समुदाय दीख पड़ा। उन्हें देखते ही वटुको सहसा हँसी आ गयी। इन्द्रने उनकी हँसीका कारण पूछा। वटुने कहा—'हँसता इसलिये हूँ कि यहाँ जो ये चींटे दिखलायी पड़ रहे हैं, वे सब कभी पहले इन्द्र हो चुके हैं, किंतु कर्मानुसार इन्हें अब चींटेकी योनि प्राप्त हुई है। इसमें तनिक भी आश्चर्य नहीं करना चाहिये; क्योंकि कर्मोंकी गति ही ऐसी गहन है। जो आज देवलोकमें है, वह दूसरे ही क्षण कभी कीट, वृक्ष या अन्य स्थावर योनियोंको प्राप्त हो सकता है।' भगवान् ऐसा कह ही रहे थे कि उसी समय कृष्णाजिनधारी, उज्ज्वल तिलक लगाये, चटाई ओढ़े एक ज्ञानवृद्ध तथा वयोवृद्ध महात्मा वहाँ पहुँच गये। इन्द्रने उनकी यथालब्ध उपचारोंसे पूजा की। अब वटुने महात्मासे पूछा—'महात्मन् ! आपका नाम क्या है, आप कहाँसे आ रहे

हैं, आपका निवासस्थल कहाँ है और आप कहाँ जा रहे हैं? आपके मस्तकपर यह चटाई क्यों है तथा आपके वक्षःस्थलपर यह लोमचक्र कैसा है?'

आगन्तुक मुनिने कहा— थोड़ी-सी आयु होनेके कारण मैंने कहीं घर नहीं बनाया, न विवाह ही किया और न कोई जीविका ही खोजी। वक्षःस्थलके लोमचक्रोंके कारण लोग मुझे लोमश कहा करते हैं और वर्षा तथा गर्मीसे रक्षाके लिये मैंने अपने सिरपर यह चटाई रख छोड़ी है। मेरे वक्षःस्थलके लोम मेरी आयु-संख्याके प्रमाण हैं। एक इन्द्रका पतन होनेपर मेरा एक रोम गिर पड़ता है। यही मेरे उखड़े हुए कुछ रोमोंका रहस्य भी है। ब्रह्माके द्विपरार्धावसानपर मेरी मृत्यु कही जाती है। असंख्य ब्रह्मा मर गये और मरेंगे। ऐसी दशामें मैं पुत्र, कलत्र या गृह लेकर ही क्या करूँगा? भगवान्‌की भक्ति ही सर्वोपरि, सर्वसुखद तथा दुर्लभ है। वह मोक्षसे भी बढ़कर है। ऐश्वर्य तो भक्तिके व्यवधानस्वरूप तथा स्वप्नवत् मिथ्या है। जानकार लोग तो उस भक्तिको छोड़कर सालोक्यादि मुक्ति-चतुष्टयको भी नहीं ग्रहण करते।

दुर्लभं श्रीहरेर्दास्यं भक्तिर्मुक्तेर्गरीयसी।
स्वप्नवत् सर्वमैश्वर्यं सद्भक्तिव्यवधायकम्॥

—यों कहकर लोमशजी अन्यत्र चले गये। बालक भी वहीं अन्तर्धान हो गया। बेचारे इन्द्रका तो अब होश ही ठंढा हो गया। उन्होंने देखा कि जिसकी इतनी दीर्घ आयु है, वह तो एक घासकी झोपड़ी भी नहीं बनाता, केवल चटाईसे ही काम चला लेता है, फिर मुझे कितने दिन रहना है, जो इस घरके चक्करमें पड़ा हूँ। बस, झट उन्होंने विश्वकर्माको एक लम्बी रकमके साथ छुट्टी दे दी और आप अत्यन्त विरक्त होकर किसी वनस्थलीकी ओर चल पड़े। पीछे बृहस्पतिजीने उन्हें समझा-बुझाकार पुनः राज्यकार्यमें नियुक्त किया।

ब्रह्माजीका दर्पभङ्ग

ब्रह्माजीके मोह तथा गर्वभञ्जनकी बहुत-सी कथाएँ भागवत, ब्रह्मवैवर्त, शिव, स्कन्द आदि पुराणोंमें आती हैं। अकेले ब्रह्मवैवर्तपुराणमें कृष्णजन्मखण्डके १४८वें अध्यायमें उनके गर्वभञ्जनकी कई कथाएँ हैं। उनमेंसे एक तो अत्यन्त विचित्र है। वह यह है कि एक बार स्वर्गकी अप्सरा मोहिनी ब्रह्माजीपर अत्यन्त आसक्त हो गयी। वह एकान्तमें उनके पास गयी और उनके आसनपर ही बैठकर उनसे प्रेमदानकी प्रार्थना करने लगी। ब्रह्माजीको उस समय भगवान्‌की स्मृति हुई। भगवत्कृपासे उनका मन निर्विकार रहा। वे मोहिनीको ज्ञानकी बातें समझाने लगे; पर वह उसे न सुनकर अवाञ्छनीय चेष्टा करने लगी। ब्रह्माजी भगवान्‌का स्मरण करने लगे। तबतक सप्तर्षिगण सनकादिके साथ वहाँ पहुँच गये। पर दुर्दैववश अब ब्रह्माजीको अपनी क्रिया, भक्ति तथा शक्तिका गर्व हो गया। ऋषियोंने जब मोहिनीके साथ एकासनपर बैठनेका कारण पूछा, तब ब्रह्माजीने गर्वपूर्वक हँसकर कहा—'यह नाचते-नाचते थककर पुत्रीके भावसे मेरे पास बैठ गयी है।' ऋषिलोग समझ गये और थोड़ी देर बाद हँसते हुए चले गये। अब मोहिनीका क्रोध जाग्रत् हुआ। उसने शाप दिया—'तुम्हें अपनी निष्कामताका गर्व है और मुझ शरणागतका तुमने उपहास किया है, इसलिये संसारमें न तो तुम्हारी कहीं पूजा होगी और न तुम्हारा यह गर्व ही रहेगा।' वह तुरंत वहाँसे चलती बनी।

अब ब्रह्माजीको अपनी भूलका पता चला। वे दौड़े हुए भगवान् जनार्दनकी शरणमें वैकुण्ठ पहुँचे। वे अभी अपनी गाथा तथा शापादिकी बात सुना ही रहे थे, तबतक द्वारपालने प्रभुसे निवेदन किया—'प्रभो! बाहर दरवाजेपर अमुक ब्रह्माण्डके स्वामी अष्टमुख ब्रह्मा आये हैं और श्रीचरणोंका दर्शन करना चाहते हैं।' प्रभुकी अनुमति हुई। अष्टमुख ब्रह्माने आकर बड़ी श्रद्धासे अत्यन्त दिव्य स्तुति सुनायी। ब्रह्माजीको इन ब्रह्माके सामने अपनी विद्या, बुद्धि, शक्ति, भक्ति—सब नगण्य दीख पड़ी। तदनन्तर ये अष्टमुख ब्रह्मा चले गये। इनके जाते ही दूसरे ही क्षण द्वारपालने कहा—'प्रभो! अमुक दरवाजेपर अमुक ब्रह्माण्डके अधिनायक षोडशमुख ब्रह्मा उपस्थित हैं तथा श्रीचरणोंका दर्शन करना चाहते हैं।' भगवदाज्ञासे वे भी आये और उन्होंने पूर्वोक्त ब्रह्मासे भी उच्च श्रेणीकी स्तुति सुनायी। इसी प्रकार एक-एक करके षोडशमुखसे लेकर सहस्रमुख ब्रह्मातक आते गये और उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर शब्दावलियोंमें अपना स्तोत्र सुनाते गये। उनकी योग्यता और निरभिमानता देखकर अपनेको प्रभुके

तुल्य ही माननेवाले ब्रह्माजीका गर्व गलकर पानी हो गया। फिर भगवान्‌ने गङ्गास्नान कराकर उनके गर्वजनित पापकी शान्ति करायी। (ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृष्णजन्मखण्ड ऐसी ही एक कथा जैमिनीयाश्वमेध ६०-६१ में भी है।)

गणेशजीपर शनिकी दृष्टि

एक बार कैलास पर्वतपर, महायोगी सूर्यपुत्र शनैश्चर शंकरनन्दन गणेशको देखनेके लिये आये। उनका मुख अत्यन्त नम्र था, आँखें कुछ मुँदी हुई थीं और मन एकमात्र श्रीकृष्णमें लगा हुआ था, अतः वे बाहर-भीतर श्रीकृष्णका स्मरण कर रहे थे। वे तपःफलको खानेवाले, तेजस्वी, धधकती हुई अग्निकी शिखाके समान प्रकाशमान, अत्यन्त सुन्दर, श्यामवर्ण और पीताम्बर धारण किये हुए थे। उन्होंने वहाँ पहले विष्णु, ब्रह्मा, शिव, धर्म, सूर्य, देवगणों और मुनिवरोंको प्रणाम किया। फिर उनकी आज्ञासे वे उस बालकको देखनेके लिये गये। भीतर जाकर शनैश्चरने सिर झुकाकर पार्वतीदेवीको नमस्कार किया। उस समय वे पुत्रको छातीसे चिपटाये रत्नसिंहासनपर विराजमान हो आनन्दपूर्वक मुस्करा रही थीं। पाँच सखियाँ निरन्तर उनपर श्वेत चँवर डुलाती जाती थीं। वे सखीद्वारा दिये गये सुवासित ताम्बूलको चबा रही थीं। उनके शरीरपर वह्नि-शुद्ध स्वर्णिम साड़ी शोभायमान थी। रत्नोंके आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। सहसा सूर्यनन्दन शनैश्चरको सिर झुकाये देखकर दुर्गाने उन्हें शीघ्र ही शुभाशीर्वाद दिया और उनका कुशल-मङ्गल पूछा—ग्रहेश्वर! इस समय तुम्हारा मुख नीचेकी ओर क्यों झुका हुआ है तथा तुम मुझे अथवा इस बालककी ओर देख क्यों नहीं रहे हो?

शनैश्चरने कहा—शंकरवल्लभे! मैं एक परम गोपनीय इतिहास, यद्यपि वह लज्जाजनक तथा माताके समक्ष कहने योग्य नहीं है, कहता हूँ, सुनिये। मैं बचपनसे ही श्रीकृष्णका भक्त था। मेरा मन सदा एकमात्र श्रीकृष्णके ध्यानमें ही लगा रहता था। मैं विषयोंसे विरक्त होकर निरन्तर तपस्यामें रत रहता था। पिताजीने चित्ररथकी कन्यासे मेरा विवाह कर दिया। वह सती-साध्वी नारी अत्यन्त तेजस्विनी तथा सतत तपस्यामें रत रहनेवाली थी। एक दिन ऋतुस्नान करके वह मेरे पास आयी। उस समय मैं भगवच्चरणोंका ध्यान कर रहा था। मुझे बाह्य-ज्ञान बिलकुल नहीं था। अतः मैंने उसकी ओर देखा भी नहीं। पत्नीने अपना ऋतुकाल निष्फल जानकर मुझे शाप दे दिया कि 'तुम अब जिसकी ओर दृष्टि करोगे, वही नष्ट हो जायगा।' तदनन्तर जब मैं ध्यानसे विरत हुआ, तब मैंने उस सतीको संतुष्ट किया, परंतु अब तो वह शापसे मुक्त करानेमें असमर्थ थी, अतः पश्चात्ताप करने लगी। माता! इसी कारण मैं किसी वस्तुको अपने नेत्रोंसे नहीं देखता और तभीसे मैं जीवहिंसाके भयसे स्वाभाविक ही अपने मुखको नीचे किये रहता हूँ। शनैश्चरकी बात सुनकर पार्वती हँसने लगीं और नर्तकियों तथा किंनरियोंका सारा समुदाय ठहाका मारकर हँस पड़ा।

शनैश्चरका वचन सुनकर दुर्गाने परमेश्वर श्रीहरिका स्मरण किया और इस प्रकार कहा—'सारा जगत् ईश्वरकी इच्छाके वशीभूत ही है।' फिर दैववशीभूता पार्वतीदेवीने कौतूहलवश शनैश्चरसे कहा—'तुम मेरी तथा मेरे बालककी ओर देखो। भला, इस निषेक (कर्मफलभोग) को कौन हटा सकता है?' तब पार्वतीका वचन सुनकर शनैश्चर स्वयं मन-ही-मन यों विचार करने लगे—'अहो! क्या मैं इस पार्वतीनन्दनपर दृष्टिपात करूँ अथवा न करूँ? क्योंकि यदि मैं बालकको देख लूँगा तो निश्चय ही उसका अनिष्ट हो जायगा।' इस प्रकार

कहकर धर्मात्मा शनैश्चरने धर्मको साक्षी बनाकर बालकको तो देखनेका विचार किया, परंतु बालककी माताको नहीं।

शनैश्चरका मन तो पहलेसे ही खिन्न था। उनके कण्ठ, ओष्ठ और तालु भी सूख गये थे, फिर भी उन्होंने अपने बायें नेत्रके कोनेसे शिशुके मुखकी ओर निहारा। शनिकी दृष्टि पड़ते ही शिशुका मस्तक धड़से अलग हो गया। तब शनैश्चरने अपनी आँख फेर ली और फिर वे नीचे मुख करके खड़े हो गये। इसके पश्चात् उस बालकका खूनसे लथपथ हुआ सारा शरीर तो पार्वतीकी गोदमें पड़ा रह गया। परंतु मस्तक अपने अभीष्ट गोलोकमें जाकर श्रीकृष्णमें प्रविष्ट हो गया। यह देखकर पार्वतीदेवी बालकको छातीसे चिपटाकर फूट-फूटकर विलाप करने लगीं और उन्मत्तकी भाँति भूमिपर गिरकर मूर्छित हो गयीं। तब वहाँ उपस्थित सभी देवता, देवियाँ, पर्वत, गन्धर्व, शिव तथा कैलासवासी जन यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उस समय उनकी दशा चित्रलिखित पुत्तलिकाके समान जड हो गयी।

इस प्रकार उन सबको मूर्छित देखकर श्रीहरि गरुडपर सवार हुए और उत्तरदिशामें स्थित पुष्पभद्राके निकट गये। वहाँ पुष्पभद्रा नदीके तटपर वनमें स्थित एक गजेन्द्रको देखा, जो निद्राके वशीभूत हो बच्चोंसे घिरकर हथिनीके साथ सो रहा था। उसका सिर उत्तर दिशाकी ओर था, मन परमानन्दसे पूर्ण था और वह सुरतके परिश्रमसे थका हुआ था। फिर तो श्रीहरिने शीघ्र ही सुदर्शनचक्रसे उसका सिर काट लिया और रक्तसे भीगे हुए उस मनोहर मस्तकको बड़े हर्षके साथ गरुडपर रख लिया। गजके कटे हुए अङ्गके गिरनेसे हथिनीकी नींद टूट गयी। तब अमङ्गल शब्द करती हुई उसने अपने शावकोंको भी जगाया। फिर वह शोकसे विह्वल हो शावकोंके साथ विलख-विलखकर चीत्कार करने लगी। तत्पश्चात् उसने भगवान् विष्णुका स्तवन किया। उसकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान्ने उसे वर दिया और दूसरे गजका मस्तक काटकर इसके धड़से जोड़ दिया। फिर उन ब्रह्मवेत्ताने ब्रह्मज्ञानसे उसे जीवित कर दिया और उस गजेन्द्रके सर्वाङ्गमें अपने चरणकमलका स्पर्श कराते हुए कहा—'गज! तू अपने कुटुम्बके साथ एक कल्पपर्यन्त जीवित रह।' इस प्रकार कहकर मनके समान वेगशाली भगवान् कैलासपर जा पहुँचे। वहाँ पार्वतीके वासस्थानपर आकर उन्होंने उस बालकको अपनी छातीसे चिपटा लिया और उस हाथीके मस्तकको सुन्दर बनाकर बालकके धड़से जोड़ दिया। फिर ब्रह्मस्वरूप भगवान्ने ब्रह्मज्ञानसे हुंकारोच्चारण किया और खेल-खेलमें ही उसे जीवित कर दिया। पुनः श्रीकृष्णने पार्वतीको सचेत करके उस शिशुको उनकी गोदमें रख दिया और आध्यात्मिक ज्ञानद्वारा पार्वतीको समझाना आरम्भ किया। श्रीविष्णुका कथन सुनकर पार्वतीका मन संतुष्ट हो गया। तब वे उन गदाधर भगवान्को प्रणाम करके शिशुको दूध पिलाने लगीं। तदनन्तर प्रसन्न हुई पार्वतीने शंकरजीकी प्रेरणासे अञ्जलि बाँधकर भक्तिपूर्वक उन कमलापति भगवान् विष्णुकी स्तुति की। (गणपतिखण्ड, अध्याय १२)

पृथ्वी किनके भारसे पीड़ित रहती है?

पृथ्वीदेवी ब्रह्माजीसे कहती हैं—जो श्रीकृष्णभक्तिसे हीन हैं और जो श्रीकृष्णभक्तकी निन्दा करते हैं, उन महापातकी मनुष्योंका भार वहन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। जो अपने धर्म तथा आचारसे रहित हैं तथा नित्यकर्मसे हीन हैं, जिनकी वेदोंमें श्रद्धा नहीं है; उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ। जो माता, पिता, गुरु, पत्नी, पुत्र तथा आश्रितवर्गका पालन-पोषण नहीं करते हैं, उनका भार वहन करनेमें मैं असमर्थ हूँ। पिताजी! जो झूठ बोलते हैं, जिनमें दया तथा सत्य-आचरणका अभाव है तथा जो गुरुजनों और देवताओंकी निन्दा करते हैं, उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ। जो मित्रद्रोही, कृतघ्न, झूठी गवाही देनेवाले, विश्वासघाती और धरोहर हड़प लेनेवाले हैं, उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ। जो कल्याणमय सूक्तों, साम-मन्त्रों तथा एकमात्र मङ्गलकारी हरि-नामोंको बेचते हैं, उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ। जो जीवोंकी हिंसा करनेवाले, गुरुद्रोही, ग्रामयाजी, लोभी, मुर्दा फूँकनेवाले तथा शूद्रान्नभोजी हैं, उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ। जो मूढ़ मनुष्य पूजा, यज्ञ, उपवास-व्रत तथा नियमोंका भंग करनेवाले हैं, उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ। जो पापीलोग सदा गौ, ब्राह्मण, देवता, वैष्णव, श्रीहरि, श्रीहरिकथा और श्रीहरिकी भक्तिसे द्वेष करते हैं, उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ।

(ब्रह्मवै० कृष्ण० ८। [illegible])
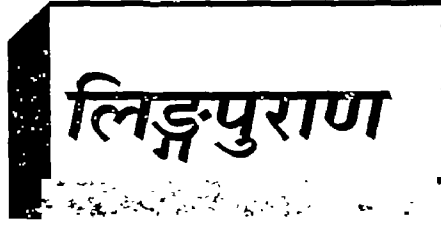
लिङ्गपुराण

पुराणोंमें लिङ्गपुराणका स्थान ग्यारहवाँ है[1]। श्रीविष्णुके पुराणमय विग्रहमें लिङ्गपुराण गुल्फ माना जाता है[2]। लिङ्गपुराण दो भागोंमें विभक्त है। पहले भागमें एक सौ आठ अध्याय और दूसरे भागमें पचपन अध्याय हैं। पहले भागमें शिव-माहात्म्यके प्रसङ्गमें लिङ्गोद्भव, शिवकी पूजाकी पद्धति, शिवपूजाका माहात्म्य, शैव सिद्धान्त, शिवके अवतार, शिवके पीठ, शिवसहस्रनाम और शिवाद्वैतके स्वरूप आदिका वर्णन है। दूसरे भागमें पाशुपतव्रत, शिवतत्त्व, दानविधि, योग, ज्ञान आदि विषय हैं। इस प्रकार दोनों भागोंमें शैव दर्शनका प्रतिपादन हुआ है।

इस पुराणका यह नाम इसलिये दिया गया है कि इसमें परमात्माको लिङ्गी—निर्गुण-निराकार अलिङ्ग कहा गया है, यह परमात्मा अव्यक्त प्रकृतिका मूल है। इस पुराणमें शिवका विस्तारसे वर्णन है, अतः इसे शैव होनेसे लिङ्ग या लैङ्ग पुराण भी कहा जाता है।

अलिंगो लिंगमूलं तु अव्यक्तं लिंगमुच्यते। अलिंगः शिव इत्युक्तो लिंगं शैवमिति स्मृतम्॥

(लिंगपु० १।३।१)

अर्थात् परमात्मा अलिङ्ग है (परमात्मामें कोई प्राकृतिक गुण नहीं है)। वह परमात्मा लिङ्ग अर्थात् प्रकृतिका मूल है। लिङ्गका अर्थ होता है अव्यक्त अर्थात् प्रकृति।

लिङ्ग शब्दका व्युत्पत्ति-लभ्य अर्थ है—सबको अपनेमें लीन करनेवाला या विश्वके सभी प्राणी-पदार्थोंका उद्भावक, परिचायक चिह्न अथवा सम्पूर्ण विश्वमय परमात्मा—'**लयनाल्लिङ्गमित्युक्तं तत्रैव निखिलं सुराः**' (१।१९।१६)। इस प्रकार प्रकृति-पुरुषात्मक समग्र विश्वरूपी वेदी या वेर तो महादेवी पार्वती हैं और लिङ्ग साक्षात् भगवान् शिवका स्वरूप है—'**लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्गं साक्षान्महेश्वरः।**' ज्योतिर्मय लिङ्गके दाहिने ब्रह्मा, बायें विष्णु और अन्तरालमें सभी देवता स्थित हैं। लिङ्गपुराण अध्याय १७-१८में लिङ्गोद्भवके स्वरूप, माहात्म्य आदिके साथ सम्यक् व्युत्पत्ति प्रदिष्ट है। पाणिनीय धातुपाठ १।१५२ एवं १०।२०४ के अनुसार यह धातु गत्यर्थक एवं चित्रीकरणार्थक है। तदनुसार जो चित्र-विचित्र ब्रह्माण्डका निर्माण कर स्वयं उसे चेतित—चैतन्य एवं गतिशील करता हुआ सर्वत्र व्याप्त एवं अनुस्यूत है, वह परब्रह्म-स्वरूप परमात्मा ही शुद्धरूपसे लिङ्ग-पदवाच्य है।

ब्रह्माण्डमें प्रारम्भमें ग्रह, नक्षत्र आदि छिपे रहते हैं। उन छिपे पदार्थोंको ब्रह्माण्ड समयानुकूल प्रकट करता है। अतः ब्रह्माण्ड भी लिंग है। प्रत्येक बीजको भी हम लिंग कह सकते हैं। जैसे वट-बीज हमारे सामने है। इस बीजको फोड़कर देखनेपर इसके तने, पत्ते, फल-फूल, रंग आदि दिखायी नहीं देते, किंतु वे सब इस बीजमें अव्यक्त-रूपसे विद्यमान हैं। बीज इन छिपे पदार्थोंको प्रकट करता है, इसलिये बीज भी लिंग है।

जैसे हम ग्रह, नक्षत्र आदि विशाल पदार्थोंमें गणितको देखते हैं, वैसे सूक्ष्म परमाणुओंमें भी गणित पाते हैं। यह हिसाब किसी चेतनका ही कार्य हो सकता है। वह चेतन है ब्रह्माण्ड। इस तरह ब्रह्माण्ड छिपे हुए ब्रह्मतत्त्वका भी वोध करा देता है। लिंगसे इस लिंगीका ख्यापन ही लिंगपुराणका विषय है। अनुमान-प्रमाणसे सामान्य लिंगीका ही ज्ञान होता है, किंतु यह पुराण शब्दप्रमाण होनेके कारण लिंगी—शिवके विशेष अवस्थाओंका वोध कराता है।

१-लिंगमेकादशं प्रोक्तम्। (लिङ्ग० १।२।३)

२-लैंगं तु गुल्फकम्। (पद्मपु०. स्वर्गखण्ड ६२।५)

कथा-आख्यान—

भक्तिके वश भगवान्

भगवती अन्नपूर्णा काशीपुरीमें आ चुकी थीं। यहींपर उन्होंने भगवान् शंकरसे पूछा—'भगवन्! आप अपने भक्तोंको किस उपायसे दर्शन देते हैं और उनके वशमें हो जाते हैं?' भगवान्ने बताया कि 'इसके लिये भक्तिसे बढ़कर और कोई उपाय नहीं है। ब्रह्मा मेरे अनुपम भक्त हैं। उनकी भक्तिके कारण मैं उन्हें प्रत्येक कल्पमें दर्शन देकर उनकी समस्याका समाधान किया करता हूँ।'

श्वेतलोहित नामका कल्प था। ब्रह्मा जागकर सृष्टि-रचनाके ज्ञानके लिये ध्यान कर रहे थे। तब भगवान् शंकरने 'सद्योजात-रूप' में उन्हें दर्शन दिया। सद्योजात भगवान्ने ब्रह्माको 'सद्योजात' आदि मन्त्र देकर उन्हें सृष्टि-रचनाके योग्य बनाया।

तीसवें कल्पमें ब्रह्माके जीव-सुलभ अज्ञानको हटानेके लिये भगवान् शंकर 'वामदेव'के रूपमें आये। इस बार विरजा, विबाहु, विशोक और विश्वभावन—ये चार कुमार थे। सभी कुमारोंके वस्त्र, चन्दन, भस्म और माला रक्तवर्णके थे। वे लोग संसारके ऊपर अनुग्रह करते रहते थे।

एकतीसवें कल्पका नाम पीतवासा है। इसमें ब्रह्मा पीले वस्त्र, पीला चन्दन और पीली माला धारण किये थे। इस बार भी ब्रह्मा सृष्टि-रचनाके लिये जब व्यग्र होने लगे, तब भक्तवत्सल भगवान्ने 'तत्पुरुष' के रूपमें दर्शन दिया औ **'तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रु प्रचोदयात्'**—इस गायत्री-मन्त्रका उपदेश किया। इ मन्त्रके अद्भुत अर्थसे ब्रह्मा सृष्टिकी रचनामें समर्थ हुए। तत्पुरुषदेवके पार्श्वभागसे जो चार कुमार प्रकट हुए थे, वे पीले वस्त्र, पीले चन्दन और पीली माला पहने हुए थे। उनके मुख और केश भी पीले थे।

बत्तीसवें कल्पमें, जिसका नाम असित था, ब्रह्मा सृष्टिके लिये जब चिन्तित हुए, तब भगवान्ने उन्हें 'अघोर'रूपमें दर्शन दिया। उनके वस्त्र, यज्ञोपवीत और माला काले (नील वर्णके) थे। भगवान् अघोरके पार्श्वभागसे चार कुमार—कृष्ण, कृष्णशिख, कृष्णास्य और कृष्णवस्त्रधृत् प्रकट हुए। ये भी काले थे और काले ही वस्त्र आदि धारण किये थे। भगवान्ने अघोर-मन्त्र देकर सृष्टिकी प्रक्रियाका उद्घाटन किया।

विश्वरूप नामक कल्पमें भगवान्ने 'ईशान'रूपमें दर्शन देकर ब्रह्माको कृतार्थ किया। इस बार शक्तिके दर्शन प्राप्त हुए। इस तरह भगवान् श्रद्धा और भक्तिके वशमें होकर भक्तकी सहायता किया करते हैं।

(ला० बि० मि०)

ज्योतिर्लिङ्गका प्राकट्य

प्रलयके समुद्रमें भगवान् विष्णु सो रहे थे, उन्हें देखकर ब्रह्माने कहा—'तुम कौन हो, जो इस तरह निश्चिन्त होकर सो रहे हो?' ब्रह्मा मायासे मोहित थे। जब भगवान् नहीं उठे, तब ब्रह्माने हाथका धक्का देकर उन्हें जगाया। भगवान् हँसते हुए मीठे शब्दोंमें ब्रह्मासे बोले—'वत्स! बैठो।' यह सम्बोधन सुनकर ब्रह्माको अमर्ष हो आया। उन्होंने कहा—'तुम हो कौन, जो मुझे 'वत्स-वत्स' कह रहे हो? तुम नहीं जानते कि मैं सृष्टिका कर्ता ब्रह्मा हूँ।'

भगवान् विष्णु बोले—'जगत्का कर्ता, भर्ता, हर्ता मैं हूँ। तुम तो मेरे अंशसे उत्पन्न हो, तुम मुझे ही भूल गये? परंतु इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है। यह तो मेरी मायाका खेल है।' ब्रह्माको ये बातें अच्छी नहीं लगीं। दोनोंमें विवाद होने लगा।

दयालु परमात्मा इस विवादकी शान्ति और उन दोनोंके बोधके लिये ज्योतिर्लिङ्गके रूपमें प्रकट हुए। इस लिङ्गका न ओर दीखता था न छोर। वह लिङ्ग ज्वालामय प्रतीत हो रहा था। उस लिङ्गको देखकर विष्णु और ब्रह्मा मोहित हो गये। वे सोचने लगे कि हम दोनोंके बीचमें यह कौन-सी वस्तु आ गयी है? दोनों उस वस्तुको जाननेके लिये उतावले हो रहे थे। विष्णु भगवान् सूकरका रूप धारण कर नीचेकी ओर उतरे और ब्रह्मा हंसका रूप धारण कर ऊपरकी ओर उड़े। दोनों ही थक गये, किंतु दोनोंको ही उस ज्योतिर्लिङ्गके ओर-छोरका पता नहीं लगा। दोनों ही थककर अपने-अपने स्थानपर आ गये। अन्तमें दोनोंने उस ज्योतिर्लिङ्गको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। इसके बाद ही दोनोंने उच्च स्वरमें 'ॐ'की ध्वनि सुनी। आश्चर्यचकित होकर दोनोंने देखा कि ज्योतिर्लिङ्गकी दाहिनी ओर अकार,

बायीं ओर उकार और बीचमें मकार है। अकार सूर्यमण्डलकी तरह, उकार अग्निकी तरह और मकार चन्द्रमाकी तरह चमक रहे थे। उन तीनों वर्णोंके ऊपर उन्होंने शुद्ध स्फटिककी तरह भगवान् शंकरको देखा। इस भव्य दर्शनको पाकर विष्णु भगवान्ने लम्बी स्तुति की। ब्रह्मा भी उस स्तुतिमें सम्मिलित थे। स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने कहा—'तुम दोनोंको मैंने ही उत्पन्न किया है। तुम दोनोंपर मैं प्रसन्न हूँ। वर माँगो।' ऐसा कहकर परमेश्वरने दोनों हाथोंसे उन्हें स्पर्श किया। उन दोनोंने वरदानमें माँगा कि हमें आपकी अचल भक्ति प्राप्त हो। भगवान् शंकरने उन्हें अभिलषित वरदान देकर कहा—ये ब्रह्मा पाद्मकल्पमें तुम्हारे पुत्र होंगे। तुम दोनों दिव्य ज्योतिर्लिङ्गकी उपासना कर सृष्टिका कार्य बढ़ाओ।'

भक्तिसे सर्वातिशायी सामर्थ्य

भगवान् शंकरकी भक्तिसे मनुष्यमें इतनी सामर्थ्य आ जाती है कि वह देवोंको भी अभिभूत कर सकता है। विप्र दधीच भगवान् शंकरके उत्तम भक्त थे। वे भस्म धारण करते थे और सदा भगवान् शंकरका स्मरण किया करते थे। राजा क्षुप इनके मित्र थे। ये क्षुप कोई साधारण राजा नहीं थे। असुरोंके युद्धमें इनसे इन्द्र सहायता लेते रहते थे। क्षुपने असुरोंपर इतना पराक्रम दिखलाया कि इन्द्रने प्रसन्न होकर इन्हें वज्र दे दिया था। इस पुरस्कारको पाकर राजा क्षुपका अहंकार बढ़ गया। वे अपने मित्र दधीचसे बार-बार कहा करते थे कि मैं आठ लोकपालोंके अंशोंसे बना हूँ, अतः मैं ईश्वर हूँ। आप भी मेरी पूजा किया करें।

दधीचको यह बात अच्छी न लगी। धीरे-धीरे दोनों मित्रोंमें मनोमालिन्य बढ़ने लगा। एक दिन दधीचने जब क्षुपके मस्तकपर मुष्टिक प्रहार किया, तब मदोन्मत्त क्षुपने उनपर वज्र चला दिया।

वज्रसे आहत होनेपर दधीचने महर्षि शुक्रका स्मरण किया। महर्षि शुक्र संजीवनी विद्याके विशेषज्ञ थे। योगबलसे वहाँ पहुँचकर उन्होंने दधीचके क्षत-विक्षत शरीरको जोड़कर पूर्ववत् बना दिया। फिर उन्होंने दधीचको परामर्श दिया कि 'तुम भगवान् शिवकी आराधना कर अवध्य बन जाओ। वे परब्रह्म हैं, आशुतोष हैं। उन्हींकी शरण लो। मैंने उन्हींसे मृतसंजीवनी विद्या प्राप्त की है।'

तत्पश्चात् दधीचने आराधना कर भगवान् शंकरसे अवध्यता प्राप्त कर ली। भगवान् शंकरने दधीचकी हड्डीको वज्र बना दिया और उन्हें कभी दीन-हीन न होनेका वरदान दे दिया। दधीच समर्थ होकर राजा क्षुपके पास पुनः पहुँच गये। दोनोंमें अहंकारकी मात्रा बढ़ी हुई थी। राजा क्षुपने उनपर पुनः वज्रका प्रहार किया, किंतु इस बार दधीचका बाल भी बाँका न हुआ। उनमें दीन-भाव भी न आया।

इस पराभवसे राजा क्षुपने विष्णुदेवकी आराधना की। विष्णुदेवने प्रसन्न होकर राजाको समझाया कि 'शिवके भक्तको किसीसे भय नहीं होता। दधीचकी तो बात ही निराली है।' किंतु राजा क्षुपका आग्रह देख विष्णुदेव ब्राह्मणका रूप धारण कर दधीचके पास पहुँचे। शिव-भक्तिके प्रभावसे दधीचने विष्णुदेवको पहचान लिया और कहा कि 'मैं आपकी भक्त-वत्सलताको जानता हूँ, किंतु भगवान् शंकरके प्रभावसे मुझे किसीका भय नहीं हैं।' श्रीविष्णुने कहा—'दधीच! भगवान् शंकरकी कृपासे तुम्हें सचमुच भय नहीं है और तुम सर्वज्ञ हो गये हो, किंतु झगड़ा मिटानेके लिये एक बार तुम कह दो कि मैं डरता हूँ।' दधीच इसके लिये तैयार नहीं हुए, तब विवश होकर श्रीविष्णुको चक्र उठाना पड़ा। राजा क्षुप वहीं विद्यमान थे। चक्रको निस्तेज देखकर श्रीविष्णुदेवने अपना सब अस्त्र-शस्त्र छोड़कर दधीचको अपना विश्वरूप दिखलाया। तब दधीचने भी भगवान् शंकरकी कृपासे अपने शरीरमें हजारों ब्रह्मा, विष्णु, महेश दिखलाये।

राजा क्षुप दधीचका यह अद्भुत सामर्थ्य देखकर चकित हो गये। तब उन्होंने भगवान् शंकरकी भक्तिके महत्त्वको समझकर दधीचकी पूजा की। इस तरह दधीचने सिद्ध कर दिया कि भक्ति सबसे बढ़कर है—भक्ति नियन्तासे भी श्रेष्ठ है।

(ला० वि० मि०)

रुद्रावतार नन्दीश्वर

शिलाद नामके एक महामनस्वी ब्राह्मण थे। उन्होंने सत्पुत्रकी प्राप्तिके लिये इन्द्रकी उपासना की। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर इन्द्रने शिलादसे वर माँगनेको कहा। शिलादने वरदानमें माँगा—'देव ! मैं ऐसा पुत्र चाहता हूँ, जो अयोनिज (गर्भसे न पैदा हुआ) हो और मृत्युसे रहित हो।' इन्द्रने कहा—'मैं ऐसा पुत्र दे सकता हूँ जो योनिज हो और मृत्युसे युक्त हो; क्योंकि मृत्युसे हीन कोई नहीं है। स्वयं ब्रह्मा भी मृत्युसे रहित नहीं हैं।' जब शिलादने अपनी उसी इच्छाको दोहराया, तब इन्द्रने कहा— 'यदि परमात्मस्वरूप शंकर प्रसन्न हो जायँ तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो सकती है। वे ही तुम्हें अयोनिज और मृत्युहीन पुत्र दे सकते हैं। मुझमें या अन्य देवोंमें भी यह सामर्थ्य नहीं है।'

इन्द्रसे उपदेश पाकर शिलाद शंकरकी तपस्यामें लग गये। हजार दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये, किंतु अध्यवसायी शिलाद मुनिके लिये यह क्षण-सा प्रतीत हुआ। इस बीचमें शिलादके शरीरमें हड्डीमात्र ही शेष रह गयी थी। अन्तमें भगवान् शंकर पार्वतीके साथ प्रकट हो गये। भगवान्‌के स्पर्शसे उनका शरीर भला-चंगा हो गया। उन्होंने शिलादकी इच्छाके अनुरूप इन्हें अयोनिज और मृत्युरहित पुत्र होनेका वरदान दिया।

शिलाद वरदान पाकर अपने आश्रममें आ गये। जब वे यज्ञमण्डपमें पहुँचे तो उन्होंने एक दिव्य शिशुको प्रकट होते देखा। उस अवसरपर सारी दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं और आकाशसे फूलों-की वृष्टि होने लगी, गन्धर्व गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं, ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि और मुनि वेदोंका पाठ करने लगे। शिलाद मुनि पुत्ररूपमें परमात्माको पाकर गद्‌गद होकर बोले—'पुत्र ! तुमने मुझे आनन्दमग्न कर दिया है, इसलिये तुम्हारा नाम 'नन्दी' होगा। तुम्हें पा लेनेसे मेरे पितरोंका उद्धार हो गया।'

पुत्रको लेकर शिलाद अपनी कुटियामें आ गये। वहाँ पहुँचकर नन्दी अपने दैवी स्वरूपको छिपाकर मनुष्यरूपमें आ गये। शिलाद मुनिने नन्दीके जातकर्म आदि संस्कार किये।

एक दिन शिलाद मुनिके आश्रमपर तप एवं योगबलसे समन्वित मित्र और वरुण नामके दो देवता आये। उन्होंने बच्चेको देखकर शिलाद मुनिसे कहा—'मुने ! यह बच्चा तो सब शास्त्रोंका जानकार होगा, किंतु इसकी आयु केवल एक वर्ष और शेष है।' यह सुनकर शिलाद मुनिके शोकका कोई आर-पार न रहा। वे बच्चेको गलेसे लगाकर जोर-जोरसे रोने लगे। रोना-पीटना सुनकर शिलादके पिता शालंकायन भी वहाँ आ गये। वे भी रोने लगे। इस तरह अपने पिता और पितामहको दुःखी देखकर बालकने उन्हें सान्त्वना दी कि 'मैं मृत्युको जीतनेके लिये भगवान् शंकरकी आराधना करने जा रहा हूँ। आपलोग निश्चिन्त हो जायँ।' इतना कहकर नन्दी एकान्त स्थान-पर जाकर भगवान् शंकरकी आराधना करने लगे।

आशुतोष भगवान् शंकर शीघ्र ही प्रकट हो गये और बोले—'वत्स ! तुम्हारा देह देखनेके लिये मनुष्यका है, वस्तुतः यह तो सत्, चित्, आनन्दरूप है। मृत्यु तुम्हारे पास कैसे आयेगी ?' ऐसा कहकर भगवान् शंकरने नन्दीका स्पर्श किया। उस स्पर्शसे नन्दी आनन्दके समुद्रमें मग्न हो गये। भगवान् शंकरने आगे कहा—'तुम मेरे अत्यन्त प्रिय, मेरे पास रहनेवाले और मेरे ही तुल्य पराक्रमी होओगे।' इतना कहकर भगवान्‌ने नन्दीको कमलकी माला पहनायी। वरदानरूपमें भगवान् शंकरने अपनी जटासे जल निकालकर उसे नदीका रूप दे दिया, जो जटोदका नामसे विख्यात हुई। इसके बाद भगवान् शंकरने नन्दीको शिलादकी गोदमें डाल दिया। फिर प्रेमसे विभोर होकर भगवान्‌ने तीन धाराओंसे नन्दीका अभिषेक किया। वे तीन धाराएँ तीन नदियोंमें बदल गयीं। यह देखकर भगवान्‌के वृषभने निनाद किया। उस नादसे एक दूसरी नदी प्रकट हुई, जिसका नाम 'वृषभध्वनि' हुआ। इसके बाद भगवान् शंकरने नन्दीके सिरपर मुकुट और कानोंमें कुण्डल पहनाये। नन्दीको पूजित देखकर मेघोंने भी अभिषेक किया। इससे भी एक नदी प्रकट हो गयी, जिसे जाम्बुनदी कहते हैं। ये पाँचों पवित्र नदियाँ जप्येश्वर महादेवके पास हैं। इसके बाद भगवान् शंकरने नन्दीको सब गणोंके आधिपत्यपदपर अभिषिक्त किया। उस अवसरपर सभी देवताओंने वहाँ उपस्थित होकर नन्दीको भिन्न-भिन्न उपहार दिये।

(ला० त्रि० मि०)

महर्षि वसिष्ठकी क्षमाशीलता

राजा त्रिशङ्कुके यज्ञमें आमन्त्रणके अवसरपर वसिष्ठ-पुत्र शक्ति और विश्वामित्रमें विवाद हो गया। विश्वामित्रने शक्तिको शाप दे दिया और उनकी प्रेरणासे 'रुधिर' नामक राक्षसने शक्ति ऋषिको खा लिया। महर्षि वसिष्ठके दूसरे निन्यानबे पुत्रोंको भी उसने खा डाला। महर्षि वसिष्ठका एक पुत्र भी नहीं बचा।

महर्षि वसिष्ठ क्षमाकी मूर्ति थे। उनका सिद्धान्त था कि अपने किये हुए कर्मका ही फल भोगना पड़ता है। कोई किसीको मार नहीं सकता। यदि कोई मारता है तो वह अपने किये हुए किसी कुकर्मका परिणाम है—

हन्यते तात कः केन यतः स्वकृतभुक् पुमान् ।

(लिङ्गपु० ६४। ११०)

इसलिये महर्षि वसिष्ठने विश्वामित्र आदिसे बदला न लिया, क्षमा कर दिया, किंतु धर्मप्राण लोग वंशके क्षयको नहीं सह पाते; क्योंकि इससे पितरोंका कल्याण नहीं होता। इसलिये महर्षि वसिष्ठ बहुत उद्विग्न हो गये। माता अरुन्धतीके शोककी सीमा न थी। पुत्रवधू अदृश्यन्तीके दुःखका तो कोई आर-पार ही न था। उसका तो सर्वस्व ही लुट गया था। इस घोर कष्टमें भी कष्ट पहुँचानेवालेके प्रति क्षमाका भाव रखना बहुत बड़ी मानवता है।

महर्षि वसिष्ठ और अरुन्धतीने तो प्राणोंको ही त्याग देना चाहा। उनके विचारमें आया कि वंशक्षयके बाद उनका जीना उचित नहीं है। उनकी इस स्थितिको देखकर पुत्रवधू अपना दुःख भूल गयी और अपने सास-ससुरकी सँभालमें लग गयी। उस स्थितिको देखकर पृथ्वी माता भी रो पड़ी थीं। अदृश्यन्तीने चरण पकड़कर सास-ससुरको मनाते हुए कहा—'आपके वंशका अभी क्षय नहीं हुआ है; क्योंकि आपका पौत्र मेरे गर्भमें सुरक्षित है। महर्षि वसिष्ठ और माता अरुन्धती आश्वस्त हो गये; किंतु शोक और भयसे व्यथित पुत्रवधूके कष्टसे वे दोनों फिर रो पड़े।

इसी बीचमें महर्षि वसिष्ठके कानोंमें वेदकी ऋचाओंकी ध्वनि आने लगी। वह स्वर बहुत स्पष्ट और मधुर था। तब वे सोचेने लगे कि वेदोंकी इन ऋचाओंका शक्तिकी तरह कौन उच्चारण कर रहा है? इसी बीच भगवान् विष्णु प्रकट हो गये। उन्होंने महर्षि वसिष्ठको आश्वासन देते हुए कहा—'वत्स! तुम्हारे पौत्रके मुखसे ये मधुर ऋचाएँ निकल रही हैं। तुम्हारा वंश डूबा नहीं है। शोक छोड़ो। तुम्हारा यह पौत्र सदा शिवका भक्त होगा और समस्त कुलको तार देगा।' इतना कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये।

महर्षि वसिष्ठके इसी पौत्रका नाम पराशर रखा गया। बालक पराशरने गर्भमें ही अपने पिता शक्तिद्वारा शिक्षा पायी थी। पृथ्वीपर आनेके बाद बच्चेके दृष्टिसे अपनी माताकी हीनता छिपी न रही। उसने पूछा—'माँ! तुमने सौभाग्यसूचक आभूषण अपने शरीरसे क्यों हटा रखे हैं?' माता अपना दुःख सुनाकर पुत्रके कोमल हृदयको दुखाना नहीं चाहती थी। वह चुप रह गयी। तब बच्चेने फिर पूछा—'माँ! मेरे पिताजी कहाँ हैं?' इतना सुनते ही अदृश्यन्तीके धीरजका बाँध टूट गया। वह फूट-फूटकर रोने लगी। 'तुम्हारे पिताको राक्षस खा गया।'—इतना कहकर वह मूर्छित हो गयी। इस दुःस्थितिसे महर्षि वसिष्ठ भी बेहोश होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। यह करुण दृश्य तेजस्वी बच्चेसे सहा न गया। जिस कारणसे उसके बूढ़े दादा एवं दादी तथा माता मूर्छित हो जायँ, उस कारणपर बच्चेका क्रोधित होना स्वाभाविक था। वह आश्रमवासियोंसे सब समाचार सुनकर सारे विश्वको ही जला देनेके लिये उद्यत हो गया।

पराशरने भगवान् शंकरकी अर्चना कर शक्ति प्राप्त कर ली और जब पराशर विश्व-संहारकी योजना बनाने लगे तब महर्षि वसिष्ठने समझाया—'वत्स! तुम्हारा यह क्रोध अयुक्त नहीं है, किंतु विश्वके विनाशकी योजना सही नहीं है। इसे छोड़ दो।' यह बात बालककी समझमें आ गयी, किंतु राक्षसोंसे उसका क्रोध नहीं हटा। उसने 'राक्षस-सत्र' प्रारम्भ कर दिया। मन्त्रकी शक्तिसे राक्षस अग्निमें गिर-गिरकर भस्म होने लगे। तब महर्षि वसिष्ठने पराशरको पुनः समझाया—'बेटा! अधिक क्रोध मत करो, इसे छोड़ दो। कोई किसीको हानि नहीं पहुँचा सकता। अपने कियेके अनुसार ही हानि प्राप्त होती है। अतः किसीपर क्रोध करना अच्छा नहीं है। निर्दोष

राक्षसोंका जलाना बंद करो। आजसे यह अपना सत्र ही समाप्त कर दो। सज्जनोंका काम क्षमा करना होता है।'

पराशरने अपने पितामहका आदर कर उस सत्रको समाप्त कर दिया। इस घटनासे राक्षसोंके आदि कुलपुरुष महर्षि पुलस्त्य बहुत प्रभावित हुए और उस स्थलपर प्रकट हुए। उन्होंने पराशरसे कहा—'बेटा! क्षमा ग्रहण कर तुमने वैरको जो भुला दिया है, यह तुम्हारे कुलके अनुरूप ही है। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ तुम समस्त शास्त्रोंको जान जाओगे और वरदान देता हूँ पुराण-संहिताके कर्ता होगे। मेरी प्रसन्नतासे तुम्हारी ब प्रवृत्ति और निवृत्तिमें निर्मल बनी रहेगी।' महर्षि वसिष्ठने पुलस्त्यके इन वचनोंका अनुमोदन करते हुए बालकको साधु दिया।

आँख खोलनेवाली गाथा

राजा नहुषकी छः संतानोंमेंसे महाराज ययाति दूसरी संतान थे। इनके बड़े भाईका नाम यति था। वे बचपनसे निवृत्तिमार्गमें अग्रसर होकर 'ब्रह्म'-स्वरूप हो गये, अतः कोसलदेशका शासन ययातिके हाथोंमें आया। ये बहुत शूर-वीर थे। अपने पराक्रमसे आगे चलकर ये सम्राट् हो गये थे। ये युद्धमें देवताओं, दानवों और मनुष्योंके लिये दुर्धर्ष थे। ये परमात्माके भक्त, पुण्यात्मा और धर्मनिष्ठ थे। ये अपने पास क्रोधको फटकने नहीं देते थे। सभी प्राणियोंपर इनकी अनुकम्पा बरसती रहती थी। इन्होंने अगणित यज्ञ-याग किये थे।

महर्षि शुक्राचार्यकी कन्या देवयानी इनकी पत्नी थी। दैत्यराज वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा अपनी दासियोंके साथ देवयानीकी दासी बनकर साथ आयी थी। आगे चलकर राजा ययातिने चुपकेसे शर्मिष्ठाको भी अपनी पत्नी बना लिया था। देवयानीको इस रहस्यका तब पता चला, जब इसने शर्मिष्ठाके तीनों लड़कोंको देखा। इससे क्रुद्ध होकर देवयानी अपने पिता महर्षि शुक्राचार्यके पास चली गयी। पीछे-पीछे ययाति भी वहाँ जा पहुँचे। अपनी लाडिली पुत्रीको दुःखी देखकर शुक्राचार्यको क्रोध हो आया। उन्होंने ययातिको बूढ़ा होनेका शाप दे दिया। शाप देते ही महाराज ययाति बूढ़े हो गये। उन्होंने महर्षिकी बहुत अनुनय-विनय की। तब शुक्राचार्यने परिहार बतलाया—'यदि तुम्हारे पुत्रोंमेंसे कोई तुम्हारा बुढ़ापा लेकर अपनी जवानी दे दे, तब तुम फिर जवान हो सकते हो।'

महाराज ययाति घर लौट आये। सबसे पहले ये देवयानीके पुत्रोंके पास पहुँचे। देवयानीसे इनके दो पुत्र थे—यदु और तुर्वसु। महाराजने उनसे अलग-अलग जवानीकी माँग की, परंतु दोनोंने इसे अस्वीकार कर दिया। तब महाराज शर्मिष्ठाके ज्येष्ठ पुत्र अनुके पास गये। अनुने भी महाराजकी म अस्वीकार कर दी। शर्मिष्ठाके दूसरे पुत्र द्रुह्युने भी यह माँग ठु दी। अन्तमें महाराज शर्मिष्ठाके तीसरे पुत्र पुरुके पास गये। पु अपनी जवानी देकर पिताका बुढ़ापा अपने ऊपर ले लि पिताने प्रसन्न होकर पुत्रको आशीर्वाद दिया—'मेरे साम्राज्य तुम्हारा और तुम्हारे वंशजोंका ही आधिपत्य होगा।'

युवावस्था प्राप्तकर महाराज ययाति विषय-भोगमें लिप्त गये। काम चार पुरुषार्थोंमें एक है। यह त्याज्य नहीं है, कि इसका अतियोग अनुचित है। फलतः महाराज वासनाओं गहराईमें उतरते चले गये। बहुत दिनोंके बाद उन्हें अ भूलका भान हुआ। भगवान्की कृपासे उनकी आँखें ख गयीं। अब विषय-वासनाएँ विष प्रतीत होने लगीं। उन संसारको अपनी जो अनुभूति दी है, वह इस प्रकार है—'काम तृष्णा उपभोगसे कभी कम नहीं होती, प्रत्युत और बढ़ती चली जाती है। अग्निमें जैसे-जैसे घी डाला जाता है, वैसे-वै उसकी लपटें बढ़ती जाती हैं, ठीक यही दशा विषय-भोग है। पृथ्वीमें जितने धन-धान्य, पशु-पक्षी और स्त्रियाँ हैं, सब एक पुरुषके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं। इसलिये मनुष्य भोगकी ओर न बढ़कर इन्द्रियोंका नियन्त्रण करना चाहिये मनको परमात्मामें लगाना चाहिये। विषय-भोग मन परमात्माकी ओरसे हटा देता है। सच्चा सुख ब्रह्मकी प्राप्ति ही सम्भव है। तृष्णा ऐसा भयानक रोग है, जो उत्तरोत्तर बढ़ ही चला जाता है। केश, दाँत, नख—ये सब जीर्ण हो जा हैं, किंतु मरते दमतक तृष्णा जीर्ण नहीं होती। इस तृष्णा त्यागसे इतना सुख प्राप्त होता है कि इसके एक अंशकी बराबरी कामसुख या स्वर्गसुख नहीं कर सकता।'

संगीतसे भगवत्प्राप्ति

त्रेतायुगमें कौशिक नामके एक ब्राह्मण थे। भगवान्‌में उनका अत्यधिक अनुराग था। खाते-पीते, सोते-जागते प्रतिक्षण उनका मन भगवान्‌में लगा रहता था। उनकी साधनाका मार्ग था संगीत। वे भगवान्‌के गुणों और चरित्रोंको निरन्तर गाया करते थे। ये सभी गान प्रेमार्द्र-हृदयसे उपजे होते थे। वे भिक्षा माँगकर जीवन-निर्वाह कर लेते थे और शेष समय भगवान्‌में ही लगाते थे। उनके बहुतसे शिष्य हो गये थे, जिनमें सात शिष्य प्रमुख थे। प्रेमी शिष्योंका योग मिलनेसे कौशिकका गान और हृदयाकर्षक हो गया था। भक्त पद्माक्षने उनके और उनके शिष्योंके भोजनका भार अपने ऊपर ले लिया था।

कौशिकके शिष्योंमें एक दम्पति भी थे। उनमें पतिका नाम था मालव और पत्नीका मालवी। मालव भगवान्‌को दीपकोंकी मालासे सजाता रहता था और उसकी पत्नी मालवी मन्दिरको झाड़-पोंछकर सदा चमकाये रहती थी। दोनों पति-पत्नी कौशिकके गानको सुनते और आनन्दमें निरन्तर विभोर रहते थे।

कौशिकके दिव्यगानकी चर्चा चारों ओर हो रही थी। कुशस्थलीसे आकर पचास ब्राह्मण इनकी संगीत-साधनामें सम्मिलित हो गये थे। राजा कलिङ्गने भी यह चर्चा सुनी तो वह भी कौशिकके पास पहुँचा। वह अहंकारी था। उसने कौशिकसे कहा—'तुम बहुत अच्छा गाते हो। आज मेरी कीर्तिका गान करो, जिससे ये कुशस्थलीके वासी उसे मनोयोगसे सुनें।' कौशिकने विनम्रतासे कहा—'महाराज! मेरी जीभ और वाणी केवल भगवान्‌के ही गुणोंको गाती हैं, अन्य प्राकृतिक वस्तुओंको नहीं। अतः आप मुझे क्षमा करें।' इसी बातको उनके गायक शिष्योंने भी दुहराया। श्रोताओंने भी नम्रतासे कहा कि 'हमारा भी यही नियम है। हम अपने कानोंसे केवल भगवान्‌के गुणों और यशको सुनें। अतः आप हमें भी क्षमा करें।' यह सुनते ही राजा क्रोधसे जल उठा। उसने लोहेकी कीलसे उनकी जीभ और कानोंको छेदना चाहा। राजाकी यह चेष्टा जानकर सबने अपने-अपने जीभों और कानोंमें स्वयं कीलें धँसा लीं। राजाका क्रोध और बढ़ गया। उसने कौशिक और उनके साथियोंको अपमानितकर अपने राज्यसे बाहर करवा दिया। उनकी सारी सम्पत्ति छिनवा ली। संत कौशिक अपने दल-बलके साथ उत्तराखण्डकी ओर चले गये।

बहुत दिनोंके बाद जब कौशिक आदिकी मृत्यु हुई, तब ब्रह्माने बड़े आदरके साथ लोकपालोंके द्वारा उन्हें और उनके साथियोंको अपने लोकमें बुला लिया। वे आधे मुहूर्तमें ब्रह्माके सम्मुख पहुँच गये। ब्रह्माने उनका अत्यधिक सम्मान किया। इस लोकके निवासियोंने इतना अधिक सम्मान पाते किसी औरको नहीं देखा था। इसलिये वहाँ हलचल मच गयी।

इसी बीच विष्णुके दूत वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने सम्मानके साथ कौशिक और इनके साथियोंको विष्णुलोक पहुँचाया। कौशिकके सम्मानमें ब्रह्मा और वहाँके निवासी भी उनके साथ गये। इस तरह विष्णुलोकमें बहुत बड़ी भीड़ एकत्र हो गयी। भगवान् विष्णुने कौशिक और उनके साथियोंको स्नेह-सिक्त नेत्रोंसे देखा। उस समय जयघोषसे सारा वातावरण गूँज उठा। भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीको आदेश दिया कि वे कौशिक और उनके शिष्योंको मेरे समीपमें ही स्थान दें। फिर भगवान्‌ने कौशिककी ओर उन्मुख होकर प्रेमार्द्र-वचनोंसे कहा—'वत्स! तुम अपने शिष्योंके साथ मेरे समीप ही रहो। मैंने तुम्हें अपने गणोंका आधिपत्य भी प्रदान किया है।' इसके बाद भगवान्‌ने मालव और मालवीको कृतार्थ करते हुए कहा—'तुम दोनों मेरे लोकमें आनन्दसे रहो और सुन्दर गान सुनकर आह्लाद प्राप्त करते रहो।' इसके बाद भगवान् पद्माक्षसे बोले—'वत्स! तुम कुबेर हो जाओ। धनोंका स्वामी बनकर सुखसे इस लोकमें विहार करो।' तत्पश्चात् भगवान्‌ने प्रेमसिक्त सम्मान देते हुए सबको अपने समीप स्थान दिया। सभीको अपने हस्तकमलोंसे प्रेमपूर्वक स्पर्श भी किया।

इतना सम्मान देनेके बाद भी भगवान्‌को संतोष नहीं हो रहा था। उन्होंने उनके स्वागतमें संगीतका विशाल आयोजन किया। विश्वके सर्वश्रेष्ठ गायक तुम्बुरु गन्धर्व बुलाये गये। भगवान् दिव्य सिंहासनपर विराजमान थे। संगीत गाती हुई माता लक्ष्मी भी आ विराजीं। साथ ही वीणाके गुणके तत्त्वको जाननेवाली करोड़ों अप्सराएँ वाद्यविशारदोंके साथ वहाँ आ पहुँचीं। पहलेसे ही वह स्थल ब्रह्मलोकवासियोंसे पूरी तरह

उन्होंने कहा—'देवि ! तुम्हारा अपराध अक्षम्य है; क्योंकि एक तो कामासक्त होनेके कारण तुम्हारा चित्त मलिन था, दूसरे वह असमय था, तीसरे तुमने मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किया और चौथे रुद्र आदि देवताओंका तिरस्कार किया है, इस कारण तुम्हारे गर्भसे दो अत्यन्त पराक्रमी और क्रूरकर्मा पुत्र उत्पन्न होंगे। उनका वध करनेके लिये स्वयं नारायण पृथक्-पृथक् अवतार ग्रहण करेंगे।'

दिति यद्यपि अत्यन्त दुःखी हुई, परंतु 'भगवान्के हाथों उनका उद्धार होगा'—यह जानकर उसने अपनेको धन्य ही माना। उसने पति-तेजको सौ वर्षोंतक धारण किया। उस गर्भस्थ तेजसे सूर्यादिका तेज क्षीण होने लगा। इन्द्रादि लोकपाल भी निस्तेज हो गये। वे सभी ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजीने बताया कि 'दितिके गर्भमें भगवान्के दो पार्षद जय-विजयका तेज दैत्य-तेजमें परिवर्तित हो गया है और भगवान् शीघ्र ही इस कष्टसे छुटकारा दिलायेंगे, अतः आप सभी समयकी प्रतीक्षा करें।' इन्द्रादि देव भगवान्का स्मरण करते हुए चले गये।

सौ वर्ष पूरा होनेपर दितिके दो यमल पुत्र उत्पन्न हुए। उनके पृथिवीपर पाँव रखते ही पृथिवी, आकाश और स्वर्गमें अनेक उपद्रव होने लगे। सर्वत्र अमङ्गलसूचक दृश्य दिखायी देने लगे। जन्म लेते ही दोनों दैत्य पर्वताकार-रूपमें हो गये। गर्भमें जो दैत्य-बालक पहले स्थापित हुआ, वह हिरण्यकशिपु तथा गर्भसे जो प्रथम बाहर आया, वह हिरण्याक्षके नामसे विख्यात हुआ। दोनों परम पराक्रमी एवं उद्धत थे। उन्होंने सर्वत्र उपद्रव मचाना प्रारम्भ कर दिया। आसुरी-राज्यकी स्थापनाके लिये वे कृतसंकल्प थे। हिरण्याक्षने इन्द्रलोकपर आक्रमण कर देवोंको भयभीत कर दिया। फिर उसके मनमें विचार आया कि 'ये देवगण पृथ्वीपर होनेवाले यज्ञके भागोंका भोग करते हैं, इसीलिये त्रिलोकीमें इनका एकच्छत्र राज्य है और हव्यके भोगसे ही ये इतने शक्ति-सम्पन्न हुए हैं, अतः मैं इस पृथ्वीको ही पातालमें पहुँचा देता हूँ'—यह निश्चय कर वह विशालकाय दैत्य पृथ्वीको लेकर रसातलमें चला गया, वहाँ वरुण आदि देवोंको महान् कष्ट देने लगा। वरुणसे भगवान्के अतुल पराक्रमको सुनकर वह उनसे युद्ध करनेके लिये उन्हें सर्वत्र ढूँढ़ने लगा।

हिरण्याक्षके कुकृत्योंसे सभी देवता, ऋषि-महर्षिगण अत्यन्त दुःखी थे। चतुर्दिक् हाहाकार मचा था। प्रजापति ब्रह्माके मनमें सृष्टिका संकल्प था। अतः उनके शरीरसे स्त्री-पुरुषका एक जोड़ा उत्पन्न हुआ, जो मनु-शतरूपाके नामसे विख्यात हुआ। ब्रह्माजीने उन्हें मैथुनी-सृष्टिकी आज्ञा प्रदान की और पृथ्वीका पालन करनेके लिये कहा। उन्होंने कहा—'प्रभो ! आप मेरी भावी मानवी प्रजाके रहनेयोग्य स्थान बतलाइये; क्योंकि पृथ्वी तो जलमें डूबी हुई है। उसके उद्धारका उपाय कीजिये।' पृथ्वीके उद्धार तथा दैत्य हिरण्याक्षके वधके लिये ब्रह्मादि देवगणों तथा ऋषि-महर्षियोंने भगवान्का चिन्तन किया। प्रभुकी स्मृति होते ही अकस्मात् ब्रह्माजीकी नासिकासे अँगूठेके बराबर एक श्वेत वराह-शिशु प्रकट हुआ। प्रकट होते ही वह विशाल आकारवाला हो गया। उसे देखकर ब्रह्मादिको पहले तो आश्चर्य हुआ, किंतु वराहरूपमें हरिका अवतार जानकर सभी उनकी वन्दना करने लगे। उनका स्वरूप अत्यन्त मनोरम तथा दिव्य था।

इस प्रकारके यज्ञवराह-विग्रहवाले भगवान् समुद्रमें कूद पड़े और जलको चीरते हुए रसातलमें जा पहुँचे, वहाँ दैत्य हिरण्याक्षने पृथ्वीदेवीको छिपा रखा था। भगवान्को उद्धारके लिये आया जान पृथ्वीदेवीने उनकी अनेक प्रकारसे स्तुति की (विष्णुपुराण१।४।१२—२४)। धरित्रीदेवीकी प्रार्थना सुनकर वराह भगवान्ने घर्घर शब्दद्वारा बड़ी भयंकर गर्जना की और अपने दाढ़ोंपर पृथ्वीको रखकर वे ज्यों ही समुद्रसे बाहर निकलने लगे, त्यों ही गर्जना सुनकर दैत्य हिरण्याक्ष उनसे युद्ध करनेके लिये आ धमका। इतनेमें प्रभुने पृथ्वीको जलसे ऊपर लाकर स्थापित कर दिया। उस समय आकाशसे पुष्प-वृष्टि होने लगी। तदनन्तर श्रीहरि और हिरण्याक्षका घमासान युद्ध हुआ। अन्तमें वह भगवान्के हाथों मारा गया।

श्रीभगवान् पृथ्वीको लेकर समुद्रसे बाहर जहाँ प्रकट हुए वह स्थान वराहक्षेत्र—सूकरक्षेत्र (कोकामुख-तीर्थ)के नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसी कोकामुख-तीर्थमें उन्होंने वराहरूपका परित्याग किया था (वराहपु०,अ० १३७—१४०)। भगवान्का यह चरित्र अत्यन्त पुण्यप्रद, परम पवित्र, धन और यशकी

प्राप्ति करानेवाला, आयुवर्धक और कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला तथा युद्धमें प्राण और इन्द्रियोंकी शक्ति बढ़ानेवाला है। इस दिव्य लीलाके श्रवणसे श्रीभगवान्‌का आश्रय प्राप्त होता है (श्रीमद्भा० ३ । १९ । ३८)।

भगवान् नारायणकी सर्वव्यापकता

प्राचीन कालमें अश्वशिरा नामक एक परम धार्मिक राजा थे। उन्होंने अश्वमेध-यज्ञके द्वारा भगवान् नारायणका यजन किया था, जिसमें बहुत बड़ी दक्षिणा बाँटी थी। यज्ञकी समाप्तिपर राजाने अवभृथ-स्नान किया। इसके पश्चात् वे ब्राह्मणोंसे घिरे हुए बैठे थे, उसी समय भगवान् कपिलदेव वहाँ पधारे। उनके साथ योगिराज जैगीषव्य भी थे। उन्हें देखकर महाराज अश्वशिरा बड़ी शीघ्रतासे उठे, अत्यन्त हर्षके साथ उनका सत्कार किया और तत्काल दोनों मुनियोंके विधिवत् स्वागतकी व्यवस्था की। जब दोनों मुनिश्रेष्ठ भलीभाँति पूजित होकर आसनपर विराजमान हो गये, तब महापराक्रमी राजा अश्वशिराने उनकी ओर देखकर पूछा—'आप दोनों अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धिवाले और योगके आचार्य हैं। आपने कृपापूर्वक स्वयं अपनी इच्छासे यहाँ आकर मुझे दर्शन दिया है। आप मनुष्योंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणदेवता हैं। आप दोनों मेरे इस संशयका समाधान करें कि मैं भगवान् नारायणकी आराधना कैसे करूँ ?'

दोनों ऋषियोंने कहा—'राजन्! तुम नारायण किसे कहते हो ? महाराज ! हम दो नारायण तो तुम्हारे सामने प्रत्यक्षरूपसे उपस्थित हैं।'

राजा अश्वशिरा बोले—'आप दोनों महानुभाव ब्राह्मण हैं। आपको सिद्धि सुलभ हो चुकी है। तपस्यासे आपके पाप भी नष्ट हो गये हैं—यह मैं मानता हूँ, किंतु 'हम दोनों नारायण हैं', ऐसा आपलोग कैसे कह रहे हैं ? भगवान् नारायण तो देवताओंके भी देवता हैं। उनकी भुजाएँ शङ्ख, चक्र और गदासे अलङ्कृत रहती हैं। वे पीताम्बर धारण करते हैं। गरुड उनका वाहन है। भला, संसारमें उनकी समानता कौन कर सकता है ?'

कपिल और जैगीषव्य—ये दोनों ऋषि कठोर व्रतका पालन करनेवाले थे। वे राजा अश्वशिराकी बात सुनकर हँस पड़े और बोले—'राजन्! तुम विष्णुका दर्शन करो।' इस प्रकार कहकर कपिलजी उसी क्षण स्वयं विष्णु बन गये और जैगीषव्यने गरुड़का रूप धारण कर लिया। अब तो राजाओंके समूहमें हाहाकार मच गया। गरुडवाहन सनातन भगवान् नारायणको देखकर महान् यशस्वी राजा अश्वशिरा हाथ जोड़कर कहने लगे—'विप्रवरो! आप दोनों शान्त हों। भगवान् विष्णु ऐसे नहीं हैं। जिनकी नाभिसे उत्पन्न कमलपर प्रकट होकर ब्रह्मा अपने रूपसे विराजते हैं, वह रूप परम प्रभु भगवान् विष्णुका है।'

कपिल एवं जैगीषव्य—ये दोनों मुनियोंमें श्रेष्ठ थे। राजा अश्वशिराकी उक्त बात सुनकर उन्होंने योगमायाका विस्तार कर दिया। फिर तो कपिलदेव पद्मनाभ विष्णुके तथा जैगीषव्य प्रजापति ब्रह्माके रूपमें परिणत हो गये। कमलके ऊपर ब्रह्माजी सुशोभित होने लगे और उनके श्रीविग्रहसे कालाग्निके तुल्य लाल नेत्रोंवाले परम तेजस्वी रुद्रका प्राकट्य हो गया। राजाने सोचा—'हो-न-हो, यह इन योगीश्वरोंकी ही माया है; क्योंकि जगदीश्वर इस प्रकार सहज ही दृष्टिगोचर नहीं हो सकते। वे सर्वशक्तिसम्पन्न श्रीहरि तो सदा सर्वत्र विराजते हैं।' राजा अश्वशिरा अपनी सभामें इस प्रकार कह ही रहे थे कि उनकी बात समाप्त होते-न-होते खटमल, मच्छर, जूँ, भौंरे, पक्षी, सर्प, घोड़े, गाय, हाथी, बाघ, सिंह, शृगाल, हरिण एवं इनके अतिरिक्त अन्य भी करोड़ों ग्राम्य एवं वन्य पशु राजभवनमें चारों ओर दिखायी पड़ने लगे। उस समय झुंड-के-झुंड प्राणिसमूहको देखकर राजाके आश्चर्यकी सीमा न रही। वे यह विचार करने लगे कि अब मुझे क्या करना चाहिये। इतनेमें ही सारी बात उनकी समझमें आ गयी। अहो ! यह तो परम बुद्धिमान् कपिल और जैगीषव्य मुनिका ही माहात्म्य है। फिर तो राजा अश्वशिराने हाथ जोड़कर उन ऋषियोंसे भक्तिपूर्वक पूछा—'विप्रवरो ! यह क्या प्रपञ्च है ?'

कपिल और जैगीषव्यने कहा—'राजन्! हम दोनोंसे तुम्हारा प्रश्न था कि भगवान् श्रीहरिकी आराधना एवं उन्हें प्राप्त करनेका क्या विधान है ?' महाराज ! इसीलिये हमलोगोंने तुम्हें यह दृश्य दिखलाया है। राजन् ! सर्वज्ञ भगवान् श्रीहरिकी यह

त्रिगुणात्मिका सृष्टि है, जो तुम्हें दृष्टिगोचर हुई है। भगवान् नारायण एक ही हैं। वे अपनी इच्छाके अनुसार अनेक रूप धारण करते रहते हैं। किसी कालमें जब वे अपनी अनन्त तेजोराशिको आत्मसात् करके सौम्यरूपमें सुशोभित होते हैं, तभी मनुष्योंको उनकी झाँकी प्राप्त होती है। अतएव उन नारायणकी अव्यक्त रूपमें आराधना सद्यः फलवती नहीं हो पाती * । वे जगत्प्रभु परमात्मा ही सबके शरीरमें विराजमान हैं। भक्तिका उदय होनेपर अपने शरीरमें ही परमात्माका साक्षात्कार हो सकता है। परमात्मा किसी स्थानविशेषमें ही रहते हों, ऐसी बात नहीं है, वे तो सर्वव्यापक हैं। महाराज ! इसी निमित्त हम दोनोंके प्रभावसे तुम्हारे सामने यह दृश्य उपस्थित हुआ है। इसका प्रयोजन यह है कि 'भगवान्‌की सर्वव्यापकतापर तुम्हारी आस्था दृढ़ हो जाय। राजन् ! इसी प्रकार तुम्हारे इन मन्त्रियों एवं सेवकोंके—सभीके शरीरमें भगवान् श्रीहरि विराजमान हैं। राजन् ! हमने जो देवता एवं कीट-पशुओंके समूह तुम्हें अभी दिखलाये हैं, वे सब-के-सब विष्णुके ही रूप हैं। केवल अपनी भावनाको दृढ़ करनेकी आवश्यकता है; क्योंकि भगवान् श्रीहरि तो सबमें व्याप्त हैं ही। उनके समान दूसरा कोई भी नहीं है, ऐसी भावनासे उन श्रीहरिकी सेवा करनी चाहिये। राजन् ! इस प्रकार मैंने सच्चे ज्ञानका तुम्हारे सामने वर्णन कर दिया। अब तुम अपनी परिपूर्ण भावनासे भगवान् नारायणका, जो सबके परम गुरु हैं, स्मरण करो। धूप-दीप आदि पूजाकी सामग्रियोंसे ब्राह्मणोंको तथा तर्पणद्वारा पितरोंको तृप्त करो। इस प्रकार ध्यानमें चित्तको समाहित करनेसे भगवान् नारायण शीघ्र ही सुलभ हो जाते हैं।' (अध्याय ४)

नारायण-मन्त्रकी महिमा

पूर्वकल्पमें आरुणि नामसे विख्यात एक महान् तपस्वी ब्राह्मण थे। वे किसी उद्देश्यसे तप करनेके लिये वनमें गये और वहाँ उपवासपूर्वक तपस्या करने लगे। उन्होंने देविका नदीके सुन्दर तटपर अपना आश्रम बनाया था। एक दिन वे स्नान-पूजा करनेके विचारसे नदीके तटपर गये। वहाँ स्नान करके जब जप कर रहे थे, उसी समय उन्होंने सामनेसे आते हुए एक भयंकर व्याधको देखा, जो हाथमें बड़ा-सा धनुष लिये हुए था। उसकी आँखें बड़ी क्रूर थीं। वह उन ब्राह्मणके वल्कल-वस्त्र छीनने और उन्हें मारनेके विचारसे आया था। उस ब्रह्मघातीको देखकर आरुणिके मनमें घबराहट उत्पन्न हो गयी और वे भयसे थरथर काँपने लगे, किंतु ब्राह्मणके अन्तः शरीरमें भगवान् नारायणको देखकर वह व्याध डर-सा गया। उसने उसी क्षण धनुष और बाण हाथसे गिरा दिये और कहा—'ब्रह्मन् ! मैं आपको मारनेके विचारसे ही यहाँ आया था, किंतु आपको देखते ही पता नहीं मेरी वह क्रूर-बुद्धि अब कहाँ चली गयी। विप्रवर ! मेरा जीवन सदा पाप करनेमें ही बीता है। अबतक मेरे द्वारा हजारों ब्राह्मण मृत्युके मुखमें प्रविष्ट हो चुके हैं। प्रायः दस हजार साध्वी स्त्रियोंका भी मैंने अन्त कर डाला है। अहो ! ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला मैं पापी पता नहीं किस गतिको प्राप्त होऊँगा ? महाभाग ! अब आपके पास रहकर मैं भी तप करना चाहता हूँ। आप कृपया उपदेश देकर मेरा उद्धार करें।'

व्याधके इस प्रकार कहनेपर उसे ब्रह्मघाती एवं महान् पापी समझकर द्विजश्रेष्ठ आरुणिने उसे कोई उत्तर नहीं दिया, परंतु हृदयमें धर्मकी अभिलाषा जग जानेके कारण ब्राह्मणके कुछ न कहनेपर भी वह व्याध वहीं ठहर गया। आरुणि भी नदीमें स्नानकर वृक्षके नीचे बैठे हुए तप करते रहे। इस प्रकार अब उन दोनोंका नियमित धार्मिक कार्यक्रम चलने लगा। इसी

---

* श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने भी कहा है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥ (१२। ५)

'उन सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्ममें आसक्त चित्तवाले पुरुषोंके साधनमें क्लेश विशेष है; क्योंकि देहाभिमानियोंके द्वारा अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है।'

प्रकार कुछ दिन बीत गये। एक दिनकी बात है—आरुणि स्नान करनेके लिये नदीके जलमें घुसे थे, तबतक कोई भूखसे व्याकुल बाघ उन शान्तस्वरूप मुनिको मारनेके लिये आ पहुँचा। पर इसी बीच व्याधने बाघको मार डाला। उस बाघके शरीरसे एक पुरुष निकला। बात ऐसी थी—जिस समय आरुणि जलमें थे और बाघ उनपर झपटा, उस समय घबराहटके कारण मुनिके मुँहसे सहसा '**ॐ नमो नारायणाय**' यह मन्त्र निकल पड़ा। तबतक बाघके प्राण कण्ठगत ही थे, अतः उसने यह मन्त्र सुन लिया। प्राण निकलते समय केवल इस मन्त्रको सुन लेनेसे वह एक दिव्य पुरुषके रूपमें परिणत हो गया। तब उसने कहा—'द्विजवर! जहाँ भगवान् विष्णु विराजमान हैं, मैं वहीं जा रहा हूँ। आपकी कृपासे मेरे सारे पाप धुल गये। अब मैं शुद्ध एवं कृतार्थ हो गया।'

इस प्रकार उस पुरुषके कहनेपर विप्रवर आरुणिने उससे पूछा—'नरश्रेष्ठ! तुम कौन हो?' तब वह पूर्वजन्मकी आप-बीती बात कहने लगा—'मुने! मैं पूर्वजन्ममें 'दीर्घबाहु' नामसे प्रसिद्ध एक राजा था। समस्त वेद और सम्पूर्ण धर्मशास्त्र मुझे सम्यक् प्रकारसे अभ्यस्त थे। अन्य शास्त्र भी मुझसे अपरिचित नहीं थे। पर अन्य ब्राह्मणोंसे मेरा कोई प्रयोजन न था। मैं प्रायः ब्राह्मणोंका अपमान भी कर देता था। मेरे इस व्यवहारसे सभी ब्राह्मण क्रुद्ध हो गये और उन्होंने मुझे शाप दे दिया—'तू अत्यन्त निर्दयी बाघ होगा, क्योंकि तेरे द्वारा ब्राह्मणोंका महान् अनादर हो रहा है। तुझे किसी बातका स्मरण भी न रहेगा।'

विप्रवर! वे सभी ब्राह्मण वेदके पारगामी विद्वान् थे। उनका घोर शाप मुझे लग गया। मुने! जब ब्राह्मणोंने शाप दिया तो मैं उनके पैरोंपर गिर पड़ा तथा उनसे कृपापूर्वक क्षमा-की भीख माँगी। मुझपर उनकी कृपादृष्टि हो गयी। अतएव उन्होंने मेरे उद्धारकी भी बात बताते हुए कहा—'प्रत्येक छठे दिन मध्याह्नकालमें तुझे जो कोई मिले, उसे तू खा जाना—वह तेरा आहार होगा। जब तुझे बाण लगेगा और उसके आघातसे तेरे प्राण कण्ठमें आ जायँ, उस समय किसी ब्राह्मणके मुखसे जब '**ॐ नमो नारायणाय**' यह मन्त्र तेरे कानोंमें पड़ेगा, तब तुझे स्वर्गकी प्राप्ति हो जायगी—इसमें कोई संशय नहीं, मुने! मैंने दूसरेके मुखसे भगवान् विष्णुका यह नाम सुना है। जिसके परिणाम-स्वरूप मुझ ब्रह्मद्वेषीको भी भगवान् नारायणका दर्शन सुलभ हो गया। फिर जो अपने मुँहसे '**ॐ हरये नमः**' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए प्राणोंका त्याग करता है, वह परम पवित्र पुरुष जीते-जी ही मुक्त है। मैं भुजा उठाकर बार-बार कहता हूँ—यह सत्य है, सत्य है और निश्चय ही सत्य है। ब्राह्मण चलते-फिरते देवता हैं। भगवान् पुरुषोत्तम कूटस्थ पुरुष हैं।'

ऐसा कहकर शुद्ध अन्तःकरणवाला वह बाघ (दिव्य पुरुष) स्वर्ग चला गया और आरुणि भी बाघके पंजेसे छूटकर व्याधसे कहने लगे—'आज बाघ मुझे खानेके लिये उद्यत हो गया था। ऐसे अवसरपर तुमने मेरी रक्षा की है। अतएव उत्तम व्रतका पालन करनेवाले वत्स! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम मुझसे वर माँगो।'

व्याधने कहा—'ब्राह्मणदेव! मेरे लिये यही वर पर्याप्त है, जो आप प्रेमपूर्वक मुझसे बातें कर रहे हैं। भला, आप ही बताइये, इससे अधिक वर लेकर मुझे करना ही क्या है?'

आरुणिने कहा—'व्याध! तुम्हारी तपस्या करनेकी इच्छा थी, अतएव तुमने मुझसे प्रार्थना की थी, किंतु अनघ! उस समय तुममें अनेक प्रकारके पाप थे। तुम्हारा रूप बड़ा भयंकर था, परंतु अब तुम्हारा अन्तःकरण परम पवित्र हो गया है, क्योंकि देविका नदीमें स्नान करने, मेरा दर्शन करने तथा चिरकालतक भगवान् विष्णुका नाम सुननेसे तुम्हारे पाप नष्ट हो गये हैं, इसमें कोई संशय नहीं। साधो! अब मेरा यह एक वर स्वीकार कर लो कि तुम अब यहीं रहकर तपस्या करो, क्योंकि तुम इसके लिये बहुत पहलेसे इच्छुक भी थे।'

इस प्रकार नारायण-मन्त्रके प्रभावसे पापरहित हुआ व्याध आरुणि मुनिकी आज्ञासे वहीं रहकर तप करने लगा।

जिनमें तप, इन्द्रियसंयम, वेदोंका स्वाध्याय, यज्ञ, पवित्र विवाह, सदा अन्नदान और सदाचार—ये सात गुण वर्तमान हैं, उन्हें महान् (उत्तम) कुल कहते हैं।

कर्म-रहस्य

[संयमन-निष्ठुरक-संवाद]

अत्रि-वंशमें उत्पन्न एक मुनि थे, जो संयमन नामसे विख्यात थे। उनकी वेदाभ्यासमें बड़ी रुचि थी। वे प्रातः मध्याह्न तथा सायं—त्रिकाल स्नान-संध्या करते हुए तपस्या करते थे। एक दिन धर्मारण्यक्षेत्रमें परम पुण्यमयी गङ्गानदीके तटपर स्नान करनेके उद्देश्यसे गये। वहाँ मुनिने निष्ठुरक नामक व्याधको देखकर उसे मना करते हुए कहा—'भद्र! तुम निन्द्य कर्म मत करो।' तब मुनिकी ओर देखकर वह व्याध मुस्कराते हुए बोला—'द्विजवर! सभी जीवधारियोंमें आत्मारूपसे स्थित होकर स्वयं भगवान् ही इन जीवोंके वेशमें क्रीडा कर रहे हैं। जैसे माया जाननेवाला व्यक्ति मन्त्रोंका प्रयोग करके माया फैला देता है, ठीक वैसे ही यह प्रभुकी माया है, इसमें कोई संदेह नहीं करना चाहिये। विप्रवर! मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंको चाहिये कि वे कभी भी अपने मनमें अहंभावको न टिकने दें। यह सारा संसार अपनी जीवनयात्राके प्रयत्नमें संलग्न रहता है। हाँ, इस कार्यके विषयमें 'अहम्' अर्थात् 'मैं कर्ता हूँ'—इस भावका होना उचित नहीं है।' निष्ठुरक व्याधकी बात सुनकर विप्रवर संयमनने अत्यन्त आश्चर्ययुक्त होकर उससे इस प्रकार कहा—'भद्र! तुम ऐसी युक्तिसंगत बात कैसे कह रहे हो?'

ब्राह्मणकी बात सुनकर धर्म-मर्मज्ञ व्याधने पुनः अपनी बात प्रारम्भ की। उसने सर्वप्रथम लोहेका एक जाल बनाया। उसे फैलाकर उसके नीचे सूखी लकड़ियाँ डाल दीं। तदनन्तर ब्राह्मणके हाथमें अग्नि देकर उसने कहा—'आर्य! इस लकड़ीके ढेरमें आग लगा दीजिये।'

तत्पश्चात् ब्राह्मणने मुखसे फूँककर अग्नि प्रज्वलित कर दी और वे शान्त होकर बैठ गये। जब आग धधकने लगी, तब वह लोहेका जाल भी गरम हो उठा। साथ ही उसमें जो गायकी आँखके समान छिद्र थे, उनमेंसे निकलती हुई ज्वाला इस प्रकार शोभा पाने लगी, मानो हंसके बच्चे श्रेणीबद्ध होकर निकल रहे हों। उस जलती हुई अग्निसे हजारों ज्वालाएँ अलग-अलग फूट पड़ीं। आगके एक जगह रहनेपर भी उस लौहमय जालके छिद्रोंसे ऐसा दृश्य प्रतीत होने लगा। तब व्याधने उन ब्राह्मणसे कहा—'मुनिवर! आप इनमेंसे कोई भी एक ज्वाला उठा लें, जिससे मैं शेष ज्वालाओंको बुझाकर शान्त कर दूँ।'

इस प्रकार कहकर उस व्याधने जलती हुई आगपर जलसे भरा एक घड़ा तुरंत फेंका। फिर तो वह आग सहसा शान्त हो गयी। सारा दृश्य पूर्ववत् हो गया। अब व्याधने तपस्वी संयमनसे कहा—'भगवन्! आपने जो जलती आग ले रखी है, वह उसी अग्निपुञ्जसे प्राप्त हुई है। उसे मुझे दे दें, जिसके सहारे मैं अपनी जीवनयात्रा सम्पन्न कर सकूँ।' व्याधके इस प्रकार कहनेपर जब ब्राह्मणने लोहेके जालकी ओर दृष्टि डाली तो वहाँ अग्नि थी ही नहीं। वह तो पुञ्जीभूत अग्निके समाप्त होते ही शान्त हो गयी थी। तब कठोर व्रतका पालन करनेवाले संयमनकी आँखें मुँद गयीं और वे मौन होकर बैठ गये। ऐसी स्थितिमें व्याधने उनसे कहा—'विप्रवर! अभी थोड़ी देर पहले आग धधक रही थी, ज्वालाओंका ओर-छोर नहीं था, किंतु मूलके शान्त होते ही सब-की-सब ज्वालाएँ शान्त हो गयीं। ठीक यही बात इस संसारकी भी है।

'परमात्मा ही प्रकृतिका संयोग प्राप्त करके समस्त भूत-प्राणियोंके आश्रयरूपमें विराजमान होते हैं। यह जगत् तो प्रकृतिमें विक्षोभ—विकार उत्पन्न होनेसे प्रादुर्भूत होता है, अतएव संसारकी यही स्थिति है।'

'यदि जीवात्मा शरीर धारण करनेपर अपने स्वाभाविक धर्मका अनुष्ठान करता हुआ हृदयमें सदा परमात्मासे संयुक्त रहता है तो वह किसी प्रकारका कर्म करता हुआ भी विषादको प्राप्त नहीं होता।'

इस प्रकार निष्ठुरक व्याध और संयमन ब्राह्मणकी उपर्युक्त बातके समाप्त होते ही उस व्याधके ऊपर आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। साथ ही द्विजश्रेष्ठ संयमनने देखा कि कामचारी अनेक दिव्य विमान वहाँ पहुँच गये हैं। वे सभी विमान बड़े विशाल एवं भाँति-भाँतिके रत्नोंसे सुसज्जित थे, जो निष्ठुरकको लेने आये थे। तत्पश्चात् विप्रवर संयमनने उन सभी

विमानोंमें निष्ठुरक व्याधको मनोऽनुकूल उत्तम रूप धारण-करके बैठे हुए देखा; क्योंकि निष्ठुरक व्याध अद्वैत ब्रह्मका उपासक था, उसे योगकी सिद्धि सुलभ थी, अतएव उसने अपने अनेक शरीर बना लिये। यह दृश्य देखकर संयमनके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई और वे अपने स्थानको चले गये। इससे सिद्ध होता है कि अपने वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार कर्म करनेवाला कोई भी व्यक्ति निश्चय ही ज्ञान प्राप्त करके मुक्तिका अधिकारी हो सकता है।

दशावतारोंकी उद्भव-तिथियाँ

परात्पर परब्रह्म भगवान् विश्व-व्यवस्थाकी लोक-मङ्गल-भावनासे समय-समयपर इस भूमण्डलपर स्वयं अवतरित होते हैं। उन निखिलनियन्ताके अवतरणकी सभी तिथियाँ हमारे लिये पावन पर्व हैं। हम उन तिथियोंपर व्रत-उपवास करते और महोत्सव मनाते हैं। चैत्रशुक्ला नवमीको 'श्रीरामनवमी' और भाद्रपदकी कृष्णाष्टमीको 'श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी'के रूपमें हम भगवान् राम-कृष्णकी जयन्तियाँ सोत्साह प्रतिवर्ष विशेषरूपसे मनाते हैं। इसी प्रकार और भी जयन्तियाँ हैं, जो यथास्थान मनायी जाती हैं। भगवान्‌की ये जयन्तियाँ अनेक हैं। उनमेंसे भगवान्‌के दशावतारकी दस जयन्तियाँ प्रमुख हैं, जिनसे परिचित होना और उन्हें आत्म-कल्याणार्थ यथाशक्य पूजन-यजन, व्रत-उपवास, भगवदाराधन आदिद्वारा मनाना सबका आवश्यक कर्तव्य है। जयन्ती-तिथियाँ ये हैं—

नाम	तिथि	समय	अवतरण-स्थल
१-श्रीमत्स्यजयन्ती	चैत्रशुक्ला तृतीया	मध्याह्नोत्तर	कृतमालातट
२-श्रीकूर्मजयन्ती	वैशाखशुक्ला पूर्णिमा (मतान्तरसे वैशाख-अमावास्या)	सायंकाल	समुद्र
३-श्रीवराहजयन्ती[1]	भाद्रपदशुक्ला पञ्चमी	मध्याह्नोत्तर	हरिद्वार या वराहक्षेत्र
४-श्रीनृसिंहजयन्ती	वैशाखशुक्ला चतुर्दशी	सायंकाल	मूलस्थान या मुल्तान
५-श्रीवामनजयन्ती	भाद्रपदशुक्ला द्वादशी	मध्याह्न	प्रयाग
६-श्रीपरशुरामजयन्ती	वैशाखशुक्ला तृतीया	मध्याह्न (मतान्तरसे सायंकाल)	जमनियाँ गाँव
७-श्रीरामजयन्ती	चैत्रशुक्ला नवमी	मध्याह्न	अयोध्या
८-श्रीकृष्णजयन्ती	भाद्रपदकृष्णा अष्टमी	मध्यरात्रि	मथुरा
९-श्रीबुद्धजयन्ती	पौषशुक्ला सप्तमी	सायंकाल	गया
१०-श्रीकल्किजयन्ती	भाद्रपदशुक्ला तृतीया	सायंकाल	सम्भलगाँव

१-निर्णयसिन्धुप्रोक्त वराहपुराणानुसार—'नभस्यशुक्लपञ्चम्यां वराहस्य जयन्तिका' यही वराहजयन्ती है। धर्मसिन्धु और निर्णयसिन्धुके अनुसार [क्रम]शः भाद्रपदशुक्ला तृतीया (अपराह्ण) एवं श्रावणशुक्ला षष्ठी तथा चैत्रकृष्णा नवमी भी वराहजयन्ती मान्य है।

गणेशजीकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग और चतुर्थी-तिथिका माहात्म्य

पूर्व समयकी बात है, सम्पूर्ण देवता और तपोधन ऋषिगण जब कार्य आरम्भ करते तो उसमें उन्हें निश्चय ही सिद्धि प्राप्त हो जाती थी। कालान्तरमें ऐसी स्थिति आ गयी कि अच्छे मार्गपर चलनेवाले लोग विघ्नका सामना करते हुए किसी प्रकार कार्यमें सफलता पाने लगे और निकृष्ट कार्यशील व्यक्तिकी कार्य-सिद्धिमें कोई विघ्न नहीं आता था। तब पितरोंसहित सम्पूर्ण देवताओंके मनमें यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि 'विघ्न तो असत्-कार्योंमें होना चाहिये, सत्कार्योंमें नहीं, ऐसा क्यों हो रहा है'—इस विषयपर वे परस्पर विचार करने लगे। इस प्रकार मन्त्रणा करते-करते उन देवताओंके मनमें भगवान् शंकरके पास जाकर इस समस्याको सुलझानेकी इच्छा हुई। तब वे कैलास पहुँचे और परम गुरु शंकरको प्रणामकर विनयपूर्वक इस प्रकार प्रार्थना करने लगे—'देवाधिदेव महादेव! असुरोंके कार्योंमें ही विघ्न उपस्थित करना आपके लिये उचित है, हमारे कार्योंमें नहीं।'

देवताओंके इस प्रकार कहनेपर भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और निर्निमेष दृष्टिसे भगवती उमाको देखने लगे। देवता भी वहीं थे। पार्वतीकी ओर देखते हुए वे मन-ही-मन सोचने लगे—'अरे! इस आकाशका कोई स्वरूप क्यों नहीं दीखता? पृथ्वी, जल, तेज और वायुकी मूर्ति तो चक्षुगोचर होती है, किंतु आकाशकी मूर्ति क्यों नहीं दीखती।' ऐसा सोचकर ज्ञानशक्तिके भण्डार परमपुरुष भगवान् रुद्र हँस पड़े। अभी हँसी बंद भी नहीं हुई थी कि उनके मुखसे एक परम तेजस्वी कुमार प्रकट हो गया, वही गणेशके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसका मुख प्रचण्ड तेजसे चमक रहा था। उस तेजसे दिशाएँ चमकने लगीं। भगवान् शिवके सभी गुण उसमें संनिहित थे। ऐसा जान पड़ता था, मानो साक्षात् दूसरे रुद्र ही हों। वह महात्मा कुमार प्रकट होकर अपनी सस्मित दृष्टि, अद्भुत कान्ति, दीप्त मूर्ति तथा रूपके कारण देवताओंके मनको मोहित कर रहा था। उसका रूप बड़ा ही आकर्षक था। भगवती उमा उसे निर्निमेष दृष्टिसे देखने लगीं। उन्हें उसकी ओर टकटकी लगाये देखकर भगवान् रुद्रके मनमें क्रोधका आविर्भाव हो गया। अतः उन परम प्रभुने उस कुमारको शाप देते हुए कहा—'कुमार! तुम्हारा मुख हाथीके मुख-जैसा और पेट लम्बा होगा। सर्प ही तुम्हारे यज्ञोपवीतका काम देंगे—यह नितान्त सत्य है।'

इस प्रकार कुमारको शाप देनेपर भी भगवान् शंकरका रोष शान्त नहीं हुआ। उनका शरीर क्रोधसे काँप रहा था। वे उठकर खड़े हो गये। त्रिशूलधारी रुद्रका शरीर जैसे-जैसे हिलता था, वैसे-वैसे उनके श्रीविग्रहके रोमकूपोंसे तेजोमय जल निकलकर बाहर गिरने लगा। उससे दूसरे अनेक विनायक उत्पन्न हो गये। उन सभीके मुख हाथीके मुख-जैसे थे तथा उनके शरीरकी आभा काले खैर-वृक्ष या अञ्जनके समान थी। वे हाथोंमें अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र लिये हुए थे।

उस समय उन विनायकोंको देखकर देवताओंकी चिन्ता अत्यधिक बढ़ गयी। पृथ्वीमें क्षोभ उत्पन्न हो गया। तब चतुर्मुख ब्रह्माजी हंसपर विराजमान होकर आकाशमें आये और यों कहा—'देवताओ! तुमलोग धन्य हो। तुम सभी त्रिलोचन एवं अद्भुत रूपधारी भगवान् रुद्रके कृपापात्र हो। साथ ही तुमने असुरोंके कार्यमें विघ्न उत्पन्न करनेवाले गणेशको प्रणाम करनेका सौभाग्य प्राप्त किया है।' उनसे इस प्रकार कहनेके पश्चात् ब्रह्माजीने भगवान् रुद्रसे कहा—'विभो! अपने मुखसे प्रकट हुए इस बालकको ही आप इन विनायकोंका स्वामी बना दें। ये विनायक इनके अनुगामी—अनुचर बनकर रहें। प्रभो! साथ ही मेरी प्रार्थना है कि आपके वर-प्रभावसे आकाशको भी शरीरधारी बनकर पृथ्वी आदि चारों महाभूतोंमें रहनेका सुअवसर मिल जाय। इससे एक ही आकाश अनेक प्रकारसे व्यवस्थित हो सकता है।'

इस प्रकार भगवान् रुद्र और ब्रह्माजी बातें कर ही रहे थे कि विनायक वहाँसे चले गये। फिर पितामहने शम्भुसे कहा—'देव! आपके हाथमें अनेक समुचित अस्त्र हैं। अब आप ये अस्त्र तथा वर इस बालकको प्रदान करें, यह मेरी प्रार्थना है।' ऐसा कहकर ब्रह्माजी वहाँसे चले गये। तब भगवान् शंकरने अपने सुपुत्र गणेशसे कहा—'पुत्र! विनायक, विघ्नहर, गजास्य और भवपुत्र—इन नामोंसे तुम प्रसिद्ध होगे। क्रूर-दृष्टिवाले ये विनायक बड़े उग्र स्वभावके

हैं। पर ये सब तुम्हारी सेवा करेंगे। प्रकृष्ट यज्ञ, दान आदि शुभ कर्मके प्रभावसे शक्तिशाली बनकर ये कार्योंमें सिद्धि प्रदान करेंगे। तुम्हें देवताओं, यज्ञों तथा अन्य कार्योंमें भी सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त होगा। सर्वप्रथम पूजा पानेका अधिकार तुम्हारा होगा। यदि ऐसा न हुआ तो तुम्हारे द्वारा उस कार्यकी सफलता बाधित होगी।'

जब ये बातें समाप्त हो गयीं, तब भगवान् शंकरने देवताओंके साथ विभिन्न तीर्थोंके जलसे पूर्ण सुवर्णकलशोंके जलद्वारा गणेशका अभिषेक किया। इस प्रकार जलसे अभिषिक्त होकर विनायकोंके स्वामी भगवान् गणेशकी अद्भुत शोभा होने लगी। उन्हें अभिषिक्त देखकर सभी देवता भगवान् शंकरके सामने ही उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—

'गजानन ! आपको नमस्कार है। गणनायक ! आपको प्रणाम है। विनायक ! आपको नमस्कार है। चण्डविक्रम ! आपको अभिवादन है। आप विघ्नोंका विनाश करनेवाले हैं, आपको प्रणाम है। सर्पकी करधनीसे सुशोभित भगवन् ! आपको अभिवादन है। आप रुद्रके मुखसे उत्पन्न हुए हैं तथा लम्बे उदरसे सुशोभित हैं, आपको नमस्कार है। हम सभी देवता आपको प्रणाम करते हैं, अतः आप सर्वदा विघ्नोंको शान्त करें[1]।'

जब इस प्रकार भगवान् रुद्रने महापुरुष श्रीगणेशजीका अभिषेक कर दिया और देवताओंद्वारा उनकी स्तुति सम्पन्न हो गयी, तब वे भगवती पार्वतीके पुत्र-रूपमें शोभा पाने लगे। गणाध्यक्ष गणेशजीकी (जन्म एवं अभिषेक आदि) सारी क्रियाएँ चतुर्थी तिथिके दिन ही सम्पन्न हुई थीं। अतएव तभीसे यह तिथि समस्त तिथियोंमें परम श्रेष्ठ स्थानको प्राप्त हुई। जो भाग्यशाली मानव इस तिथिको तिलोंका आहार कर भक्तिपूर्वक गणपतिकी आराधना करता है, उसपर वे अत्यन्त शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं—इसमें कोई संशय नहीं है। जो व्यक्ति इस कथाका पठन-पाठन अथवा श्रवण करता है, उसके पास विघ्न कभी नहीं फटकते और न उसके पास लेशमात्र पाप ही शेष रह जाता है। (वराहपुराण अ० २३)

कीर्तन-फल

कार्तिक मासके शुक्लपक्षकी द्वादशीका चन्द्र अपनी ज्योत्स्नासे धरतीको शीतलता प्रदान कर रहा था। वह वीणा लेकर भक्तिगीत गाते हुए एकान्त अरण्यमें स्थित मन्दिरकी ओर चल पड़ा। चाण्डाल होते हुए भी उसका नित्य नियम था, मन्दिरमें बैठकर रात्रिके स्तब्ध प्रहरमें भगवान्को भक्ति-संगीत सुनाना। यह नियम अनेक वर्षोंसे अबाधगतिसे चल रहा था, उसीकी पूर्तिमें तल्लीन होकर वह चला जा रहा था।

अचानक वह चौंक उठा, पर भयभीत नहीं हुआ। उसे किन्हीं बलिष्ठ भुजाओंने जकड़ लिया था। उसने देखा—एक भयंकर ब्रह्मराक्षस उसे जकड़े हुए है। 'अरे, तुम मुझ निर्बलको पकड़कर अपना कौन-सा अभीष्ट पूरा करना चाहते हो ?' उसने प्रश्न किया।

वीभत्स अट्टहाससे वन-क्षेत्रको प्रकम्पित करते हुए उस राक्षसने कहा—'पूरी दस रातें बीत गयी हैं भोजन बिना। आज क्षुधा-तृप्ति करने-हेतु ब्रह्माने तुम्हें भेज दिया है।'

चाण्डाल तो भगवान्के गुणानुवादके लिये लालायित था। उसने ब्रह्मराक्षससे विनयके स्वरमें कहा—'मैं जगदीश्वरके पद्यगानके लिये समुत्सुक हूँ। अपने आराध्यको संगीत सुनाकर लौट आऊँ, तब तुम अपनी आकाङ्क्षाकी पूर्ति कर लेना। मैंने जो व्रत ले रखा है, उसे पूर्ण हो जाने दो।'

क्षुधातुर राक्षसने कठोर शब्दोंमें कहा—'अरे मूर्ख ! क्या मृत्युके मुखसे भी कोई बचकर गया है ?'

कीर्तनप्रेमी चाण्डालने कहा—'अपने निन्दित कर्मोंके कारण निःसंदेह मैं चाण्डाल-योनिमें उत्पन्न हूँ, परंतु अपने

---

[1] नमस्ते गजवक्त्राय नमस्ते गणनायक। विनायक नमस्तेऽस्तु नमस्ते चण्डविक्रम॥
नमोऽस्तु ते विघ्नहर्त्रे नमस्ते सर्पमेखल। नमस्ते रुद्रवक्त्रोत्थ प्रलम्बजठराश्रित।
सर्वदेवनमस्कारादविघ्नं कुरु सर्वदा॥
(वराहपुराण २३। ३३-३४)

जागरण-व्रतको पूर्ण करने-हेतु मैं तुम्हारे सामने सत्य-प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं अवश्य लौटकर आऊँगा। मैं सत्यकी दुहाई देता हूँ कि यदि अपने वचनका पालन न करूँ तो मुझे अधोगति प्राप्त हो।'

ब्रह्मराक्षसने कुछ सोचकर उसे मुक्त कर दिया। चाण्डाल रात्रिपर्यन्त भक्तिभावमें निमग्न अपने आराध्यके समक्ष नृत्य-गानमें तल्लीन रहा और प्रातः अपने प्रतिज्ञानुसार ब्रह्मराक्षसके पास जाने-हेतु चल पड़ा।

मार्गमें एक पुरुषने उसे रोककर परामर्श भी दिया कि 'तुम्हें उस राक्षसके पास कदापि नहीं जाना चाहिये। वह तो शवतकको खा जानेवाला अत्यन्त क्रूर और निर्दयी है।'

चाण्डालने कहा—'मैं सत्यका परित्याग नहीं कर सकता। मेरा निश्चय अटल है। मैं उसे वचन दे चुका हूँ।'

इस प्रकार कहकर वह चाण्डाल राक्षसके समक्ष उपस्थित होकर निर्भीकतापूर्वक बोला—'महाभाग! मैं आ गया हूँ। अब आप मुझे भक्षण करनेमें किंचित् भी विलम्ब न करें। आपके अनुग्रहके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।'

ब्रह्मराक्षस आश्चर्यचकित हो उस दृढ़व्रतीको देखता रहा और मधुर स्वरमें बोला—'साधु वत्स! साधु! मैं तुम्हारी सत्य-प्रतिज्ञाके समक्ष नत हूँ। भद्र! यदि जीनेकी आकाङ्क्षा है तो मैं तुम्हें अभयदान देता हूँ, परंतु तुमने जो रात्रिमें विष्णु-मन्दिरमें जाकर गायन किया है उसका फल मुझे दे दो।'

चाण्डालने आश्चर्यचकित होकर पूछा—'मैं कुछ समझ नहीं पाया, तुम्हारे वाक्यका क्या अभिप्राय है? पहले तो तुम मुझे खानेको लालायित थे और अब भगवद्गुणानुवादका पुण्य क्यों चाहते हो?'

ब्रह्मराक्षसने अनुनय-विनय कर गिड़गिड़ाते हुए कहा—'श्रेष्ठ पुरुष! बस, तुम मुझे एक प्रहरके गीतका ही पुण्य दे दो। यदि इतना न दे सको तो एक गीतका ही फल दे दो।'

'पर ब्रह्मराक्षस! यह तो बताओ, यह सब तुम किसलिये चाहते हो?' चाण्डालने पूछा।

ब्रह्मराक्षसने अपना परिचय देते हुए कहा—'मैं पूर्वजन्ममें चरक गोत्रिय सोमशर्मा यायावर ब्राह्मण था। वेदसूत्र और मन्त्रोंसे पूर्णतः अनभिज्ञ होते हुए भी मैं लोभ-मोहसे आकृष्ट मूर्खोंका पौरोहित्य करने लगा। एक दिन मैं 'पाञ्चरात्र'-संज्ञक यज्ञ करवा रहा था। इतनेमें ही मुझे उदरशूल उत्पन्न हुआ। मन्त्रहीन, स्वरहीन, अविधिपूर्वक कराये गये यज्ञकी पूर्णाहुतिके पूर्व ही मेरा प्राणान्त हो गया, जिस कारण मुझे इस दशामें उत्पन्न होना पड़ा। आपके गीतका पुण्य मुझे इस अधम शरीरसे मुक्त कर सकता है।'

चाण्डाल तो उत्तम व्रती था ही, उसने कहा—'राक्षस! यदि मेरे गीतसे तुम शुद्धमना और क्लेशमुक्त हो सकते हो तो मैं सहर्ष अपने सर्वोत्कृष्ट गायनका फल तुम्हें प्रदान करता हूँ।'

इतना कहते ही वह ब्रह्मराक्षस तत्काल एक दिव्य पुरुषके रूपमें परिवर्तित हो गया। (स्वा० ओं० आ०)

मङ्गल-कामना एवं शान्तिपाठ

शरणं त्वां गतो नाथ संसारार्णवतारक।
दिशः पश्य अधः पश्य व्याधिभ्यो रक्ष नित्यशः। प्रसीद स्वस्य राष्ट्रस्य राज्ञः सर्वबलस्य च॥
अन्नं कुरु सुवृष्टिं च सुभिक्षमभयं तथा। राष्ट्रं प्रवर्द्धतु विभो शान्तिर्भवतु नित्यशः॥
देवानां ब्राह्मणानां च भक्तानां कन्यकासु च। पशूनां सर्वभूतानां शान्तिर्भवतु नित्यशः॥ (व० पु०)

संसार-सागरसे उद्धार करनेवाले प्रभो! हम आपकी शरण आये हैं, (आप सर्वथा प्रसन्न हों)। आपकी दिव्य रक्षा-दृष्टि चतुर्दिक् बनी रहे, आधि-व्याधियोंसे हमारी सदैव रक्षा करते हैं। हमारे राष्ट्र, शासन और सब प्रकारके (त्रिविध) सैन्य-बलोंपर आपकी विजयिनी वरद-दृष्टि सतत बनी रहे। हमारे देशके धन-धान्य (सम्पदा) की श्रीवृद्धि करते रहें। आप सर्वत्र सुवृष्टि (समयोपयोगी वर्षा) करें। पर्याप्त अन्न तथा और सुभिक्ष प्रदान करें। हमारे अन्नके भण्डार भरते रहें। सर्वतः अभय-दान दें। हे विभो! आप हमारे राष्ट्रका संवर्द्धन करें एवं सर्वत्र ही (विश्वभरमें) शुभ-शान्ति, व्याप्त रहे, पुनः—देव, ब्राह्मण, भक्त, संत-महात्मा, कन्याओं, पशु-पक्षियों अर्थात् समस्त जीव-जगत्पर सदैव शान्ति बरसती रहे। (सभी सर्वत्र सुख-चैनसे रहें!)।
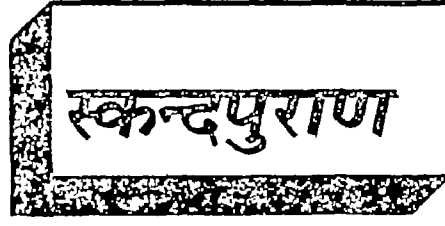
पुराणोंमें स्कन्दपुराण सबसे बड़ा है। भगवान् स्कन्दद्वारा कथित होनेसे इसका नाम स्कन्दपुराण है। यह खण्डात्मक एवं संहितात्मक दो स्वरूपोंमें उपलब्ध होता है और दोनोंमें ८१-८१ हजार श्लोक हैं। खण्डात्मक स्कन्दपुराणमें क्रमशः माहेश्वर, वैष्णव, ब्राह्म, काशी, अवन्ती (ताप्ती और रेवाखण्ड), नागर तथा प्रभास—ये सात खण्ड हैं[1]। संहितात्मक स्कन्दपुराणमें सनत्कुमार, शंकर, ब्राह्म, सौर, वैष्णव और सूत—ये छः संहिताएँ हैं[2]। यहाँ संक्षिप्त रूपमें खण्डात्मक स्कन्दपुराणका परिचय दिया जा रहा है।

यह पुराण परिमाणमें अत्यन्त विशाल होनेपर भी अत्यन्त रमणीय कथानकोंसे युक्त तथा चमत्कृत विद्वत्तापूर्ण शैलीमें उपनिबद्ध होनेके कारण अत्यन्त भव्य एवं आकर्षक है। इसकी शैली अत्यन्त परिमार्जित और कथाएँ बड़ी उच्च भावनायुक्त वैदुष्यपूर्ण प्रसङ्गोंसे परिपूर्ण हैं। उदाहरणके लिये माहेश्वर-खण्डके अन्तर्गत स्तम्भतीर्थकी महिमामें कलाप-ग्राम-निवासी बालक सुतनु तथा नारदजीके प्रश्नोत्तरोंका आख्यान (जो इसी संग्रहमें दिया गया है,) अत्यन्त महत्त्वका है। इस पुराणके काशी, प्रभास, अवन्ती तथा नागर आदि खण्डोंमें तत्तत् क्षेत्रोंके अनेकों तीर्थोंका माहात्म्य बड़े प्रौढ़ तर्क, युक्ति एवं हेतुओंसे प्रतिपादित किया गया है और इसी आधारपर इन खण्डोंका नाम भी पड़ा है। मुख्यरूपसे स्कन्दपुराणमें बदरिकाश्रम, अयोध्या, जगन्नाथपुरी, रामेश्वर, कन्याकुमारी, महीसागर-संगम, स्तम्भतीर्थ, प्रभास, द्वारका, कुरुक्षेत्र, उज्जैन, काशी, कांची, मथुरा और हाटकेश्वर आदि तीर्थोंकी महिमा तथा गङ्गा, नर्मदा आदि पुण्यसलिला नदियोंका वर्णन अत्यन्त मोहक पदावलीमें उपनिबद्ध है। इसी प्रकार रामायण, भागवत आदि ग्रन्थोंके माहात्म्य, वैशाखादि मासोंके माहात्म्य, शिवरात्रि, सत्यनारायण आदि व्रतोंके माहात्म्य, पीपल, वट, धात्री आदि वृक्षों एवं गो, द्विज, देव-प्रतिमा- भक्ति तथा भक्तादिकी महिमा भी रोचक कथाओंके माध्यमसे वर्णित है। भौगोलिक ज्ञान, राष्ट्रियता, देशभक्ति तथा अखण्ड भारतके एकसूत्रताकी महिमाका गान भी इसमें यत्र-तत्र प्रतिपादित है। बीच-बीचमें नीति, धर्म, सदाचार, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, यज्ञ, दान, तप, पूजा-उपासना आदिके सुन्दर सदुपदेश तथा अमृतमयी सुभाषित सूक्तियाँ भी भरी हैं। इसका उपदेश-भाग अत्यन्त उपादेय है। इस पुराणकी यह एक विशेष बात है कि इसमें कथाओंके माध्यमसे भारतके भौगोलिक ज्ञानके साथ-साथ प्राचीनतम सम्पूर्ण इतिहासको भी सुरक्षित रखा गया है। महाभारतके सम्बन्धमें प्रसिद्ध है—**'यत्र भारते तत्र भारते'** अर्थात् विश्वकी कोई भी कथा या ज्ञानकी वस्तु ऐसी नहीं है, जो महाभारतमें न हो। यह पंक्ति महाभारतसे भी अधिक प्रस्तुत पुराणमें चरितार्थ है। इसके एक लाख सत्तर हजार श्लोकोंमें कहीं भी शिथिलता नहीं दीखती और पद-पदपर नवीनता, रमणीयता और ज्ञान-वैशद्यका प्रकाश ही दिखायी पड़ता है। जैसे स्वच्छ दर्पणके समक्ष वर्तमान पदार्थका प्रतिबिम्ब स्पष्ट प्रतिभासित होता है, वैसे ही इस पुराणके अवलोकनसे समस्त ज्ञान-विज्ञान एवं परमात्म-तत्त्वकी उपलब्धिके साथ-साथ समस्त पुरुषार्थ भी रहस्य-ज्ञानसहित प्राप्त हो जाते हैं।
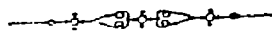
१- इसके अतिरिक्त 'मानसखण्ड', जिसमें कूर्माचल (कुमाऊँ) के तीर्थोंका माहात्म्य तथा मानसरोवर आदिका वर्णन भी है, वह अब प्रकाशित रूपमें उपलब्ध हो रहा है।

२- इनमेंसे केवल सूतसंहिता प्रकाशित है, जिसमें वेदान्त-प्रक्रियाको सरल और सुन्दर कथाओंके द्वारा हृदयङ्गम कराया गया है और शैव क्षेत्रोंकी विशेष महिमा है। शेष संहिताओंमें तत्तत्सम्प्रदायोंके देवोंकी महिमा तथा आराधनाकी विधि वर्णित है।

कथा-आख्यान—

दीर्घायुष्य एवं मोक्षके हेतुभूत भगवान् शङ्करकी आराधना

प्राचीनकालमें एक राजा थे, जिनका नाम था इन्द्रद्युम्न। वे बड़े दानी, धर्मज्ञ और सामर्थ्यशाली थे। धनार्थियोंको वे सहस्र स्वर्णमुद्राओंसे कम दान नहीं देते थे। उनके राज्यमें सभी एकादशीके दिन उपवास करते थे। गङ्गाकी बालुका, वर्षाकी धारा और आकाशके तारे कदाचित् गिने जा सकते हैं, पर इन्द्रद्युम्नके पुण्योंकी गणना नहीं हो सकती। इन पुण्योंके प्रतापसे वे सशरीर ब्रह्मलोक चले गये। सौ कल्प बीत जानेपर ब्रह्माजीने उनसे कहा—'राजन्! स्वर्गसाधनमें केवल पुण्य ही कारण नहीं है, अपितु त्रैलोक्यविस्तृत निष्कलङ्क यश भी अपेक्षित होता है। इधर चिरकालसे तुम्हारा यश क्षीण हो रहा है, उसे पुनः उज्ज्वल करनेके लिये तुम वसुधातलपर जाओ।' ब्रह्माजीके ये शब्द समाप्त भी न हो पाये थे कि राजा इन्द्रद्युम्नने अपनेको पृथ्वीपर पाया। वे अपने निवासस्थान काम्पिल्य नगरमें गये और वहाँके निवासियोंसे अपने सम्बन्धमें पूछ-ताछ करने लगे। उन्होंने कहा—'हमलोग तो उनके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते। आप किसी वृद्ध चिरायुसे पूछ सकते हैं। सुनते हैं नैमिषारण्यमें सप्तकल्पान्तजीवी मार्कण्डेयमुनि रहते हैं, कृपया आप उन्हींसे इस प्राचीन बातका पता लगाइये।'

जब राजाने मार्कण्डेयजीसे प्रणाम करके पूछा कि 'मुने! क्या आप राजा इन्द्रद्युम्नको जानते हैं?' तब उन्होंने कहा—'नहीं, मैं तो नहीं जानता, पर मेरा मित्र नाड़ीजङ्घबक शायद इसे जानता हो, इसलिये चलो, उससे पूछा जाय।' नाड़ीजङ्घने अपनी बड़ी विस्तृत कथा सुनायी और साथ ही अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए अपनेसे भी अति दीर्घायु प्राकारकर्म उलूकके पास चलनेकी सम्मति दी। पर इसी प्रकार सभी अपनेको असमर्थ बतलाते हुए चिरायु गृध्रराज और मानसरोवरमें रहनेवाले कच्छप मन्थरके पास पहुँचे। मन्थरने इन्द्रद्युम्नको देखते ही पहचान लिया और कहा कि 'आपलोगोंमें जो यह पाँचवाँ राजा इन्द्रद्युम्न है, इसे देखकर मुझे बड़ा भय लगता है; क्योंकि इसीके यज्ञमें मेरी पीठ पृथ्वीकी उष्णतासे जल गयी थी।' अब राजाकी कीर्ति तो प्रतिष्ठित हो गयी, पर उसने क्षयिष्णु स्वर्गमें जाना ठीक न समझा और मोक्ष-साधनकी जिज्ञासा की। एतदर्थ मन्थरने लोमशजीके पास चलना श्रेयस्कर बतलाया। लोमशजीके पास पहुँचकर यथाविधि प्रणामादि करनेके पश्चात् मन्थरने निवेदन किया कि इन्द्रद्युम्न कुछ प्रश्न करना चाहते हैं।

महर्षि लोमशकी आज्ञा लेनेके पश्चात् इन्द्रद्युम्नने कहा—'महाराज! मेरा प्रथम प्रश्न तो यह है कि आप कभी कुटिया न बनाकर शीत, आतप तथा वृष्टिसे बचनेके लिये केवल एक मुट्ठी तृण ही क्यों लिये रहते हैं?' मुनिने कहा— 'राजन्! एक दिन मरना अवश्य है, फिर शरीरका निश्चित नाश जानते हुए भी हम घर किसके लिये बनायें? यौवन, धन तथा जीवन—ये सभी चले जानेवाले हैं। ऐसी दशामें 'दान' ही सर्वोत्तम भवन है।'

इन्द्रद्युम्नने पूछा—'मुने! यह आयु आपको दानके परिणाममें मिली है अथवा तपस्याके प्रभावसे? मैं यह जानना चाहता हूँ।' लोमशजीने कहा—'राजन्! मैं पूर्वकालमें एक दरिद्र शूद्र था। एक दिन दोपहरके समय जलके भीतर मैंने एक बहुत बड़ा शिवलिङ्ग देखा। भूखसे मेरे प्राण सूखे जा रहे थे। उस जलाशयमें स्नान करके मैंने कमलके सुन्दर फूलोंसे उस शिवलिङ्गका पूजन किया और पुनः मैं आगे चल दिया।

ातुर होनेके कारण मार्गमें ही मेरी मृत्यु हो गयी। दूसरे में मैं ब्राह्मणके घरमें उत्पन्न हुआ। शिव-पूजाके स्वरूप मुझे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण रहने लगा। मैंने -बूझकर मूकता धारण कर ली। पितादिकी मृत्यु हो पर सम्बन्धियोंने मुझे निरा गूँगा जानकर सर्वथा त्याग दिया। अब मैं रात-दिन भगवान् शङ्करकी आराधना करने लगा। इस प्रकार सौ वर्ष बीत गये। प्रभु चन्द्रशेखरने मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और मुझे इतनी दीर्घ आयु दी।'

यह जानकर इन्द्रद्युम्न, बक, कच्छप, गीध और उलूकने भी लोमशजीसे शिवदीक्षा ली और तप करके मोक्ष प्राप्त किया।

शबर-दम्पतिकी दृढ़ निष्ठा

प्राचीन कालकी बात है। सिंहकेतु नामक एक ालदेशीय राजकुमार एक दिन अपने सेवकोंको साथ लेकर में शिकार खेलने गया। उसके सेवकोंमेंसे एक शबरको कारकी खोजमें इधर-उधर घूमते समय एक टूटा-फूटा ालय दीख पड़ा। उसके चबूतरेपर एक शिवलिङ्ग पड़ा जो टूटकर जलहरीसे सर्वथा अलग हो गया था। शबरने मूर्तिमान् सौभाग्यकी तरह उठा लिया। वह राजकुमारके पहुँचा और उसे शिवलिङ्ग दिखलाकर विनयपूर्वक कहने ा—'प्रभो! देखिये, यह कैसा सुन्दर शिवलिङ्ग है। आप कृपापूर्वक मुझे पूजाकी विधि बता दें तो मैं नित्य इसकी ा किया करूँ।'

निषादके इस प्रकार पूछनेपर राजकुमारने प्रेमपूर्वक ाकी विधि बतला दी। षोडशोपचार-पूजनके अतिरिक्त नें चिताभस्म चढ़ानेकी बात भी बतलायी। अब वह शबर ादिन स्नान कराकर चन्दन, अक्षत, वनके नये-नये पत्र, , फल, धूप, दीप, नृत्य, वाद्यके द्वारा भगवान् महेश्वरका ान करने लगा। वह प्रतिदिन चिताभस्म भी अवश्य भेंट ता। तत्पश्चात् वह स्वयं प्रसाद ग्रहण करता। इस प्रकार वह द्रालु शबर पत्नीके साथ भक्तिपूर्वक भगवान् शंकरकी राधनामें तल्लीन हो गया।

एक दिन वह पूजाके लिये बैठा तो देखता है कि पात्रमें ताभस्म तनिक भी शेष नहीं है। उसने बड़े प्रयत्नसे र-उधर ढूँढ़ा, पर उसे कहीं भी चिताभस्म नहीं मिला। न्तमें उसने यह स्थिति पत्नीसे व्यक्त की। साथ ही उसने यह कहा कि 'यदि चिताभस्म नहीं मिलता तो पूजाके बिना मैं ब क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता।'

स्त्रीने उसे चिन्तित देखकर कहा—'नाथ! डरिये मत, एक उपाय है। यह घर तो पुराना हो ही गया है। मैं इसमें आग लगाकर उसीमें प्रवेश कर जाती हूँ। इससे आपकी पूजाके निमित्त पर्याप्त चिताभस्म तैयार हो जायगी।' बहुत वाद-विवादके बाद शबर भी उसके प्रस्तावसे सहमत हो गया। शबरीने स्वामीकी आज्ञा पाकर स्नान किया और उस घरमें आग लगाकर अग्निकी तीन बार परिक्रमा की, पतिको नमस्कार किया, फिर सदाशिव भगवान्का हृदयमें ध्यान करती हुई वह अग्निमें घुस गयी। वह क्षणभरमें जलकर भस्म हो गयी, फिर शबरने उस भस्मसे भगवान् भूतनाथकी पूजा की।

शबरको कोई विषाद तो था नहीं। स्वभाववश पूजाके पश्चात् वह प्रसाद देनेके लिये अपनी स्त्रीको पुकारने लगा। स्मरण करते ही वह स्त्री तुरंत आकर खड़ी हो गयी। अब शबरको उसके जलनेकी बात याद आयी। उसने आश्चर्य-चकित होकर पूछा कि 'तुम और यह मकान तो सब जल गये थे, फिर यह सब कैसे हुआ?'

शबरीने कहा—'जब मैं आगमें घुसी तो मुझे लगा कि जैसे मैं जलमें घुसी हूँ। आधे क्षणतक तो प्रगाढ़ निद्रा-सी विदित हुई और अब जगी हूँ। जागनेपर देखती हूँ तो यह घर भी पूर्ववत् खड़ा है। अब प्रसादके लिये यहाँ आयी हूँ।'

निषाद-दम्पति इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि उनके सामने एक दिव्य विमान आ गया। उसपर भगवान्के चार गण थे। उन्होंने ज्यों ही उन्हें स्पर्श किया और विमानपर बैठाया त्यों ही उनके शरीर दिव्य हो गये। वास्तवमें श्रद्धायुक्त भगवदाराधनाका ऐसा ही माहात्म्य है।

जो पितरोंका श्राद्ध और देवताओंका पूजन नहीं करता तथा जिसे सुहृद् मित्र नहीं मिलता, उसे मूढ़ चित्तवाला कहते हैं।

सदाचारसे कल्याण

ार्ण देशमें एक राजा रहता था वज्रबाहु। वज्रबाहुकी ति अपने नवजात शिशुके साथ किसी असाध्य रोगसे गयी। यह देख दुष्ट-बुद्धि राजाने उसे वनमें त्याग अनेक प्रकारके कष्ट भोगती हुई वह आगे बढ़ी। बहुत पर उसे एक नगर मिला। उस नगरका रक्षक पद्माकर एक महाजन था। उसकी दासीने रानीपर दया की और पने स्वामीके यहाँ आश्रय दिलाया। पद्माकर रानीको समान आदरकी दृष्टिसे देखता था। उसने उन दोनों की चिकित्साके लिये बड़े-बड़े वैद्य नियुक्त किये, रानीका पुत्र नहीं बच सका, मर ही गया। पुत्रके रानी मूर्छित हो गयी और बेहोश होकर पृथ्वीपर गिर इसी समय ऋषभ नामके प्रसिद्ध शिवयोगी वहाँ आ उन्होंने उसे विलाप करते देखकर कहा—'बेटी ! तुम यों रो रही हो ? फेनके समान इस शरीरकी मृत्यु होनेपर पुरुष शोक नहीं करते। कल्पान्तजीवी देवताओंकी भी उलट-फेर होता है। कोई कालको इस शरीरकी कारण बताते हैं, कोई कर्मको और कोई गुणोंको। काल, कर्म और गुण—इन तीनोंसे ही शरीरका हुआ है। जीव अव्यक्तसे उत्पन्न होता है और में ही लीन होता है। केवल मध्यमें बुलबुलेकी भाँति सा प्रतीत होता है। पूर्वकर्मानुसार ही जीवको शरीरकी होती है। कर्मोंके अनुरूप ही उसे सुख-दुःखकी भी होती है। कर्मोंका उल्लङ्घन करना असम्भव है। ा भी अतिक्रमण करना किसीके लिये सम्भव नहीं। समस्त पदार्थ मायामय तथा अनित्य हैं। इसलिये तुम्हें नहीं करना चाहिये। जैसे स्वप्नके पदार्थ, इन्द्रजाल, -नगर, शरद् ऋतुके बादल अत्यन्त क्षणिक होते हैं, कार यह मनुष्यशरीर भी है। अबतक तुम्हारे अरबों ीत चुके हैं। अब तुम्हीं बताओ, तुम किसकी-किसकी केसकी-किसकी माता और किसकी-किसकी पत्नी हो ? सर्वथा अनिवार्य है। कोई भी व्यक्ति अपनी तपस्या, बुद्धि, मन्त्र, ओषधि तथा रसायनसे इसका उल्लङ्घन कर सकता। आज एक जीवकी मृत्यु होती है तो कल दूसरेकी। इस जन्म-मरणके चक्करसे बचनेके लिये उमापति भगवान् महादेव ही एकमात्र शरण हैं। जब मन सब प्रकारकी आसक्तियोंसे अलग होकर भगवान् शंकरके ध्यानमें मग्न हो जाता है, तब फिर इस संसारमें जन्म नहीं होता। भद्रे ! यह मन शिवके ध्यानके लिये है, इसे शोक-मोहमें मत डुबाओ।'

शिवयोगीके तत्त्वभरे करुणापूर्ण उपदेशोंको सुनकर रानीने कहा—'भगवन् ! जिसका एकमात्र पुत्र मर गया हो, जिसे प्रिय बन्धुओंने त्याग दिया हो और जो महान् रोगसे अत्यन्त पीड़ित हो, ऐसी मुझ अभागिनके लिये मृत्युके अतिरिक्त और कौन गति है ? इसलिये मैं इस शिशुके साथ ही प्राण त्याग देना चाहती हूँ। मृत्युके समय जो आपका दर्शन हो गया, मैं इतनेसे ही कृतार्थ हो गयी।'

रानीकी बात सुनकर दयानिधान शिवयोगी शिवमन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्म लेकर बालकके पास गये और उसे उन्होंने उसके मुँहमें डाल दिया। विभूतिके पड़ते ही वह मरा हुआ बालक उठ बैठा। उन्होंने भस्मके प्रभावसे माँ-बेटेके घावोंको भी दूर कर दिया। अब उन दोनोंके शरीर दिव्य हो गये। ऋषभने रानीसे कहा—'बेटी ! जबतक तुम इस संसारमें जीवित रहोगी, वृद्धावस्था तुम्हारा स्पर्श नहीं करेगी। तुम दोनों

दीर्घकालतक जीवित रहो। तुम्हारा यह पुत्र भद्रायु नामसे विख्यात होगा और अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लेगा।'

यों कहकर ऋषभ चले गये। भद्रायु उसी वैश्यराजके घरमें बढ़ने लगा। वैश्यका भी एक पुत्र 'सुनय' था। दोनों कुमारोंमें बड़ा स्नेह हो गया। जब राजकुमारका सोलहवाँ वर्ष पूरा हुआ, तब वे ऋषभ योगी पुनः वहाँ आये। तबतक राजकुमार पर्याप्त पढ़-लिख चुका था। माताके साथ वह योगीके चरणोंपर गिर पड़ा। माताने अपने पुत्रके लिये कुछ उचित शिक्षाकी प्रार्थना की। इसपर ऋषभ बोले—'वेद, स्मृति और पुराणोंमें जिसका उपदेश किया गया है, वही 'सनातनधर्म' है। सभीको चाहिये कि अपने-अपने वर्ण तथा आश्रमके शास्त्रोक्त धर्मोंका पालन करें। तुम भी उत्तम आचारका ही पालन करो। देवताओंकी आज्ञाका कभी उल्लङ्घन न करो। गौ-ब्राह्मण-देवता-गुरुके प्रति सदा भक्तिभाव रखो। स्नान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण, गोपूजा, देवपूजा और अतिथिपूजामें कभी भी आलस्यको समीप न आने दो। क्रोध, द्वेष, भय, शठता, चुगली, कुटिलता आदिका यत्नपूर्वक त्याग करो। अधिक भोजन, अधिक बातचीत, अधिक खेलकूद तथा क्रीडाविलासको सदाके लिये छोड़ दो। अधिक विद्या, अधिक श्रद्धा, अधिक पुण्य, अधिक स्मरण, अधिक उत्साह, अधिक प्रसिद्धि और अधिक धैर्य जैसे भी प्राप्त हो, इसके लिये सदा प्रयत्न करो। साधुओंमें अनुराग करो। धूर्त, क्रोधी, क्रूर, छली, पतित, नास्तिक और कुटिल मनुष्यको दूरसे ही त्याग दो। अपनी प्रशंसा न करो। पापरहित मनुष्योंपर संदेह न करो। माता, पिता और गुरुके कोपसे बचो। आयु, यश, बल, पुण्य, शान्ति जिस उपायसे मिले, उसीका अनुष्ठान करो। देश, काल, शक्ति, कर्तव्य, अकर्तव्य आदिका भलीभाँति विचार करके यत्नपूर्वक कर्म करो। स्नान, जप, पूजा, हवन, श्राद्धादिमें उतावली न करो। वेदवेत्ता ब्राह्मण, शान्त संन्यासी, पुण्य वृक्ष, नदी, तीर्थ, सरोवर, धेनु, वृषभ, पतिव्रता स्त्री और अपने घरके देवताओंके पास जाते ही नमस्कार करो।'

यों कहकर शिवयोगीने भद्रायुको शिवकवच, एक शङ्ख और खड्ग दिया। फिर भस्मको अभिमन्त्रित कर उसके शरीरमें लगाया, जिससे भद्रायुमें बारह हजार हाथियोंका बल हो गया। तदनन्तर योगीने कहा—'ये खड्ग और शङ्ख—दोनों ही दिव्य हैं, इन्हें देख-सुनकर ही तुम्हारे शत्रु नष्ट हो जायँगे।'

इधर वज्रबाहुको शत्रुओंने परास्त करके बाँध लिया, उसकी रानियोंका अपहरण कर लिया और दशार्ण देशका राज्य नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इसे सुनते ही भद्रायु सिंहकी भाँति गर्जना करने लगा। उसने जाकर शत्रुओंपर आक्रमण किया और उन्हें नष्टकर अपने पिताको मुक्त कर लिया। निषधराजकी कन्या कीर्तिमालिनीसे उसका विवाह हुआ। वज्रबाहुको अपनी योग्य पत्नीसे मिलकर बड़ी लज्जा हुई। उन्होंने राज्य अपने पुत्रको सौंप दिया। तदनन्तर भद्रायु समस्त पृथ्वीके सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट् हो गये।

कीड़ेसे महर्षि मैत्रेय

भगवान् व्यास सभी जीवोंकी गति तथा भाषाको समझते थे। एक बार जब वे कहीं जा रहे थे, तब रास्तेमें उन्होंने एक कीड़ेको बड़े वेगसे भागते हुए देखा। उन्होंने कृपा करके कीड़ेकी बोलीमें ही उससे इस प्रकार भागनेका कारण पूछा। कीड़ेने कहा—'विश्ववन्द्य मुनीश्वर! कोई बहुत बड़ी बैलगाड़ी इधर ही आ रही है। कहीं यह आकर मुझे कुचल न डाले, इसलिये मैं तेजीसे भागा जा रहा हूँ।' इसपर व्यासदेवने कहा—'तुम तो तिर्यग्-योनिमें पड़े हुए हो, अतः तुम्हारे लिये तो मर जाना ही सौभाग्य है। मनुष्य यदि मृत्युसे डरे तो उचित है, पर तुम कीटको इस शरीरके छूटनेका इतना भय क्यों है?' इसपर कीड़ेने कहा—'महर्षे! मुझे मृत्युसे किसी प्रकारका भय नहीं है। भय इस बातका है कि इस कुत्सित कीटयोनिसे भी अधम दूसरी लाखों योनियाँ हैं, मैं कहीं मरकर उन योनियोंमें न चला जाऊँ। उनमें गर्भ आदि धारण करनेके क्लेशसे मुझे डर लगता है, दूसरे किसी कारणसे मैं भयभीत नहीं हूँ।'

व्यासजीने कहा—'कीट! तुम भय मत करो। मैं जबतक तुम्हें ब्राह्मण-शरीरमें न पहुँचा दूँगा, तबतक सभी योनियोंसे शीघ्र ही छुटकारा दिलाता रहूँगा।' व्यासजीके

यों कहनेपर वह कीड़ा पुनः मार्गमें लौट आया और रथके पहियेसे दबकर उसने प्राण त्याग दिये। तत्पश्चात् वह कौए और सियार आदि योनियोंमें जब-जब उत्पन्न हुआ, तब-तब व्यासजीने जाकर उसके पूर्वजन्मका स्मरण करा दिया। इस तरह वह क्रमशः साही, गोधा, मृग, पक्षी, चाण्डाल, शूद्र और वैश्यकी योनियोंमें जन्म लेता हुआ क्षत्रिय-जातिमें उत्पन्न हुआ। उसमें भी भगवान् व्यासने उसे दर्शन दिया। वहाँ वह प्रजापालनरूप धर्मका आचरण करते हुए थोड़े ही दिनोंमें रणभूमिमें शरीर त्यागकर ब्राह्मणयोनिमें उत्पन्न हुआ। जब वह पाँच वर्षका हुआ, तभी व्यासदेवने ज़ाकर उसके कानमें सारस्वत-मन्त्रका उपदेश कर दिया। उसके प्रभावसे बिना पढ़े ही उसे सम्पूर्ण वेद, शास्त्र और धर्मका स्मरण हो आया। पुनः भगवान् व्यासदेवने उसे आज्ञा दी कि वह कार्तिकेयके क्षेत्रमें जाकर नन्दभद्रको आश्वासन दे। नन्दभद्रको यह शङ्का थी कि पापी मनुष्य भी सुखी क्यों देखे जाते हैं। इसी क्लेशसे घबराकर वे बहूदक तीर्थमें तप कर रहे थे। नन्दभद्रकी शङ्काका समाधान करते हुए इस सिद्ध सारस्वत बालकने कहा था—'पापी मनुष्य सुखी क्यों रहते हैं, यह तो बड़ा स्पष्ट है। जिन्होंने पूर्वजन्ममें तामस-भावसे दान किया है, उन्होंने इस जन्ममें उसी दानका फल प्राप्त किया है, परंतु तामस-भावसे जो धर्म किया जाता है, उसके फलस्वरूप लोगोंका धर्ममें अनुराग नहीं होता और फलतः वे ही पापी सुखी देखे जाते हैं। ऐसे मनुष्य पुण्य-फलको भोगकर अपने तामसिक भावके कारण नरकमें ही जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है। इस विषयमें मार्कण्डेयजीकी कही ये बातें सर्वदा ध्यानमें रखी जानी चाहिये—एक मनुष्य ऐसा है, जिसके लिये इस लोकमें तो सुखका भोग सुलभ है, परंतु परलोकमें नहीं। दूसरा ऐसा है, जिसके लिये परलोकमें सुखका भोग सुलभ है, किंतु इस लोकमें नहीं। तीसरा ऐसा है, जो इस लोक और परलोकमें दोनों ही जगह सुख प्राप्त करता है और चौथा ऐसा है, जिसे न यहीं सुख है और न परलोकमें ही। जिसका पूर्वजन्मका किया हुआ पुण्य शेष है, उसे भोगते हुए परम सुखमें भूला हुआ जो व्यक्ति नूतन पुण्यका उपार्जन नहीं करता, उस मन्दबुद्धि एवं भाग्यहीन मानवको प्राप्त हुआ वह सुख केवल इसी लोकतक रहेगा। जिसका पूर्वजन्मोपार्जित पुण्य तो नहीं है, किंतु वह तपस्या करके नूतन पुण्यका उपार्जन कर रहा है, उस बुद्धिमान्को परलोकमें अवश्य ही विशाल सुखका भोग उपस्थित होगा—इसमें रंचमात्र भी संदेह नहीं। जिसका पहलेका किया हुआ पुण्य वर्तमानमें सुखद हो रहा है और जो तपद्वारा नूतन पुण्यका उपार्जन कर रहा है, ऐसा बुद्धिमान् तो कोई-कोई ही होता है, जिसे इहलोक-परलोक दोनोंमें सुख मिलता है। जिसका पहलेका भी पुण्य नहीं है और जो यहाँ भी पुण्यका उपार्जन नहीं करता, ऐसे मनुष्यको न इस लोकमें सुख मिलता है और न परलोकमें ही। ऐसे नराधमको धिक्कार है।'*

इस प्रकार नन्दभद्रको समाहित कर बालकने अपना वृत्तान्त भी बतलाया। तत्पश्चात् वह सात दिनोंतक निराहार रहकर सूर्यमन्त्रका जप करता रहा और वहीं बहूदक तीर्थमें उसने उस शरीरको भी छोड़ दिया। नन्दभद्रने विधिपूर्वक उसके शवका दाह-संस्कार कराया। उसकी अस्थियाँ वहीं सागरमें डाल दी गयीं और दूसरे जन्ममें वही मैत्रेय नामक श्रेष्ठ मुनि हुआ। इनके पिताका नाम कुषारु तथा माताका नाम मित्रा था (भागवत, स्कन्ध ३)। इन्होंने व्यासजीके पिता पराशरजीसे 'विष्णुपुराण' तथा 'बृहत्-पाराशर होरा-शास्त्र' नामक विशाल ज्योतिष-ग्रन्थका अध्ययन किया था।

*अस्मिंश्च संशये प्रोक्तं मार्कण्डेयेन श्रूयते॥
इहैवैकस्य नामुत्र अमुत्रैकस्य नो इह। इह चामुत्र चैकस्य नामुत्रैकस्य नो इह॥
पूर्वोपात्तं भवेत् पुण्यं भुक्तिर्नैवार्जयत्यपि। इह भोगः स वै प्रोक्तो दुर्भगस्याल्पमेधसः॥
पूर्वोपात्तं यस्य नास्ति तपोभिश्चार्जयत्यपि। परलोके तस्य भोगो धीमतः स क्रियात् स्फुटम्॥
पूर्वोपात्तं यस्य नास्ति पुण्यं चेहापि नार्जयेत्। ततश्चेहामुत्र वापि भो धिक् तं च नराधमम्॥
(स्क० पु०, माहे० कौमारिका० ४६। ९६-१००)

नन्दभद्र

प्राचीन कालकी बात है, बहूदक नामक तीर्थमें नन्दभद्र नामके एक वैश्य रहते थे। वे वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेवाले सदाचारी पुरुष थे। उनकी धर्मपत्नीका नाम कनका था। वह भी पातिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली साध्वी स्त्री थी। उसमें अन्य अनेक सद्गुण भी विद्यमान थे, जिससे उनकी गृहस्थी बड़े आनन्द एवं धर्मपूर्वक व्यतीत हो रही थी।

वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार नन्दभद्र वाणिज्यको ही अपना श्रेष्ठ धर्म मानते थे और उसे ही अपनाये हुए थे। नन्दभद्रके हृदयमें परोपकार तो मानो साक्षात् मूर्तिमान् होकर विराजमान था। वे भगवान्‌की पूजाकी भावनासे अपना समस्त व्यवसाय करते और दूसरोंकी आवश्यकताका ध्यान रखते हुए थोड़ा लाभ लेकर वस्तुओंकी बिक्री करते थे। ग्राहकोंके साथ किसी प्रकारका भेद-भाव न रखते हुए वस्तुओंके क्रय-विक्रयमें वे पूर्णरूपसे समताका बर्ताव करते थे। उनके यहाँ ग्राहकोंको अच्छा माल दिखाकर कभी भी घटिया माल नहीं दिया जाता था। वे घृणित—वर्जित वस्तु—मदिरा आदिका व्यापार कभी नहीं करते थे।

सौम्य-स्वभाववाले नन्दभद्रका रहन-सहन भी बहुत सीधा-सादा था। वे लकड़ी एवं घास-फूससे निर्मित एक छोटे-से मकानमें निवास करते थे। उनका खान-पान बहुत साधारण—कम खर्चीला था।

जिसे भगवान्‌से प्रेम हो जाता है, उसे संसारके कार्य फीके-से लगने लगते हैं। यही दशा नन्दभद्रकी थी। वे चन्द्रमौलि भगवान् शंकरके अनन्य-भक्त थे। बहूदकमें एक बहुत सुन्दर शिवलिङ्ग स्थापित था, जो कपिलेश्वर महादेवके नामसे प्रसिद्ध था। नन्दभद्र तीनों समय बड़े प्रेमसे कपिलेश्वर शिवलिङ्गकी पूजा किया करते थे। वे सभीके हित-साधनमें सदैव संलग्न रहते एवं मन, वाणी और क्रियाद्वारा परोपकार-धर्मका पालन करते थे। किसीके साथ न उनका द्वेष था न राग, वे न किसीसे अनुरोध करते थे न विरोध। वे निन्दा-स्तुतिमें सदा ही सम तथा जो कुछ मिल जाता, उसीमें संतुष्ट रहते थे।

जो विषयोंको बाहरसे त्यागकर मनके द्वारा उसे रहता है, वह इहलोक और परलोक—दोनों ओरसे फटे हुए बादलकी भाँति नष्ट हो जाता है। संन्यास तत्त्व है—विषयोंका त्याग, सभीको उसका प चाहिये। गृहस्थमें रहकर यथाशक्ति देवता, पित ब्राह्मण, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि समस्त सदा अन्न देना चाहिये। इनसे बचा हुआ अन्न ही करना चाहिये।

नन्दभद्रका सदाचार सम्पन्न सुखमय जीवन स्पृहणीय था। सज्जन लोग सदैव संतोंके जीवनसे हैं, उन्हें देख-देखकर प्रसन्न होते तथा उनका अ अपने जीवनको सदाचारमय बनाते हैं। दूसरी किसी संतको देखकर जलते हैं। ऐसा ही नन्दभद्रके पड़ोसमें रहता था, उसका नाम था सत तो उसका सत्यव्रत था, परंतु था वह बड़ा ही न दुराचारी। धर्मपरायण नन्दभद्रको सुखी देखकर करता था। बारम्बार नन्दभद्रपर मिथ्या दोषारोपण सदा उनके दोष ही ढूँढ़ते रहना मानो उसका काम था। उसके जीवनकी सबसे बड़ी चाह यही थी प्रकार कोई नन्दभद्रका दोष दिख जाय तो उसे धर्मसे

प्रारब्धके भोगसे कौन छूट पाता है? देवता कोई भी क्यों न हो, प्रारब्धका विधान तो सभीव करना पड़ता है। अचानक नन्दभद्रका इकलौता बसा। महामति नन्दभद्रने विधिका विधान मानकर किया। थोड़े ही दिनोंके पश्चात् सहसा उनकी पति कनका भी चल बसी।

लम्बे अवसरकी प्रतीक्षाके पश्चात् नन्दभद्रप आयी देखकर उनके पड़ोसी सत्यव्रतको बड़ी प्रस उसने सोचा कि अब तो मैं नन्दभद्रको धर्मभ्रष्ट कर वह दौड़कर उनके पास पहुँचा और बनावटी दुःख प्र हुए बोला—'हा नन्दभद्र! बहुत बुरा हुआ। तु धर्मात्माको भी कैसा दुःख उठाना पड़ रहा है। इ

दिनमें तीन बार पूजा करना, स्तुति-प्रार्थना करना—सब व्यर्थ है, परंतु संकोचवश मैं चुप रहा। आज कहे बिना नहीं रहा गया, अतः कह रहा हूँ।'

उसने पुनः कहा—'भैया नन्दभद्र! धर्मके नामपर क्यों इतना कष्ट उठाते हो? मिथ्यावाद अच्छा नहीं होता। जबसे तुम इस पत्थर-पूजनमें लगे हो, तबसे तुम्हें कोई अच्छा फल मिला हो, ऐसा मैंने नहीं देखा। तुम्हारा इकलौता पुत्र और साध्वी पत्नी दोनों संसारसे चल बसे। यदि भगवान् होते तो क्या तुम्हें ऐसा फल देते? भैया! भगवान् तो स्वार्थी लोगोंकी कल्पनामात्र है। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, मेघ आदि सब स्वभावसे ही विचरण करते हैं, स्वभावसे ही समस्त जीव-जन्तु, पेड़-पौधे एवं मनुष्य पैदा होते हैं। मनुष्ययोनि ही सबसे दुःखद योनि है, अन्य सभी योनियाँ सुखद हैं, क्योंकि उनमें सभी स्वच्छन्द विचरण किया करते हैं। पुण्य और पाप सब कुछ कल्पना है। नन्दभद्र! मैं तुम्हें सही सलाह देता हूँ कि मिथ्या धर्मका परित्याग करके आनन्दपूर्वक खाओ, पीओ और भोगो, क्योंकि यही सत्य है।'

सत्यव्रतकी मूर्खतापूर्ण बातें नन्दभद्रपर कोई प्रभाव न डाल सकीं। उनके विचार तो पर्वतकी भाँति अचल एवं समुद्रकी भाँति गम्भीर थे। वे तनिक भी विचलित न हुए और पुत्र, स्त्री आदिकी मृत्यु नहीं होती? जब किसी सज्जन पुरु दुःख आता है, तब सभी लोग सहानुभूति प्रकट करते हैं, प विपत्तिकालमें दुराचारीके प्रति सहानुभूति प्रकट करनेवा कोई नहीं होता। अतः धर्मपालन करनेवाला ही श्रेष्ठ है।

सत्यव्रत तो अपने हठपर था, उसे ये बातें कैसे अ लगतीं। नन्दभद्रने पुनः कहा—'महाशय! अन्धा व्य सूर्यके स्वरूपको नहीं जानता, परंतु उसके न जाननेसे सूर्यका अस्तित्व समाप्त हो जाता है? जिस प्रकार राज बिना प्रजा नहीं रह सकती, उसी प्रकार ईश्वरके बिना संसार संचालन नहीं हो सकता, यह आप सत्य समझ लें। शिवलिङ्गको आप पत्थर कहते हैं, स्वयं भगवान् श्रीरा समुद्रतटपर उसकी स्थापना की थी।'

सत्यव्रतका पुनः वही प्रश्न था—'देवता हैं तो दिख क्यों नहीं देते?' नन्दभद्रने कहा—'क्या देवतालोग आ पास आकर याचना करें कि हमें आप मानिये।' नन्द सत्यव्रतसे अधिक विवाद नहीं करना चाहते थे, अतः वे स्थानको छोड़कर चले गये।

एक बार नन्दभद्रके मनमें विचार आया कि भगव सदाशिवका साक्षात् दर्शन करके उनसे पूछूँ—'प्रभो! आ तो निर्दोष, निर्वैर और समदर्शी हैं, फिर आपका बनाया संसार दोषरहित क्यों नहीं है? इसमें इतने सुख-दुः जन्म-मरण आदि क्लेश और वैमनस्य क्यों भरे हुए हैं?' सोचकर वे शिव-मन्दिरमें आये। कपिलेश्वर लिङ्गकी पूजा क फिर प्रणाम करके भगवान् चन्द्रमौलिके आगमनकी प्रतीक्ष खड़े हो गये। उन्होंने मनमें यह निश्चय किया कि जबत भोलेनाथ दर्शन नहीं देंगे, तबतक मैं ऐसे ही खड़ा रहूँग लगातार तीन दिन और तीन राततक नन्दभद्र वैसे ही खड़े र चौथे दिन एक सात वर्षका बालक उस शिवमन्दिरमें आय गलितकुष्ठका रोगी होनेके कारण वह पीड़ासे कराह रहा थ उसने बड़े विस्मयके साथ नन्दभद्रसे पूछा—'आप इतने सु एवं स्वस्थ दिखायी दे रहे हैं, फिर भी आपके चेहरेपर क्लेश चिह्न क्यों हैं?' नन्दभद्रने अपने मनका संकल्प उस बालक कह सुनाया।

का वृत्तान्त बताकर खम्भार्क-क्षेत्रमें जानेकी आज्ञा ली। वहाँ पहुँचकर उसने अपने पूर्व-जन्मके सिरको लताओंमेंसे ढूँढ़ निकाला और उसका खम्भार्कतीर्थमें दाहकर हड्डियोंको पवित्र जलमें डाल दिया। फिर तो उसका मुख चन्द्रमाकी कान्तिके

समान दीप्तिमान् हो उठा। इस बातका तीनों लोकोंमें प्रचार हो गया। ऐसा सुनकर देवता, गन्धर्व और राजालोग विवाहके लिये उसके पितासे याचना करनेके हेतु आने लगे, किंतु उस कुमारीने किसीको अपना पति बनाना स्वीकार नहीं किया और वह दुष्कर तपस्यामें लग गयी। जब तपस्या करते हुए एक वर्ष पूरा हो गया, तब आशुतोष भगवान् शंकरने प्रकट होकर उसे अभीष्ट वर देनेको कहा। राजकुमारी उनका पूजन करके बोली कि 'यदि आप प्रसन्न हैं तो इस तीर्थमें सदा विराजें।' भगवान् शंकर 'एवमस्तु' कहकर उसकी प्रार्थनाको स्वीकार करके चले गये। वहाँके शिव 'बर्करेश्वर' नामसे प्रसिद्ध हुए। जब यह समाचार चारों ओर फैल गया, तब पाताललोकके नागोंका राजा स्वस्तिक उस कुमारीको देखनेके लिये स्तम्भतीर्थमें आया। वह जिस मार्गसे पृथ्वीको विदीर्णकर बाहर निकला था, वहाँ स्वस्तिक नामक कूप प्रसिद्ध हो गया। वह कूप भगवान् शंकरके ईशानकोणपर स्थित है। उसमें गङ्गाजीका जल भरा रहता है।

इधर वह कुमारी भगवान् शंकरसे वर प्राप्तकर अपने माता-पिताके पास सिंघलद्वीपमें लौट आयी। राजा शतशृंग अपनी कन्याकी बातोंको सुनकर बहुत विस्मित हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने देशको नौ भागोंमें विभक्त करके आठ भागको क्रमशः आठों पुत्रोंमें बाँट दिया। नवाँ भाग उस लड़कीको दिया। उन नवों खण्डोंके नाम हैं—इन्द्रद्वीपखण्ड, कसेरुखण्ड, ताम्रद्वीपखण्ड, गभस्तिमान्खण्ड, नागखण्ड, सौम्यखण्ड, गन्धर्वखण्ड, वरुणखण्ड और कुमारिकाखण्ड। उनमें सात कुलपर्वत भी हैं, उनके नाम हैं—महेन्द्र, मलय सह्य, शुक्तिमान्, ऋच्छ, विन्ध्य और पारियात्र। पारियात्रका दक्षिण भाग कुमारिकाखण्डके नामसे जाना जाता है, जिसकी स्वामिनी वह कुमारी थी। कुमारीका स्वभाव अत्यन्त उदार था। वह अपनी सारी आयको दानमें लगाती हुई तपस्या करने लगी। कुछ समयके बाद कुमारीके आठों भाइयोंके नौ-नौ पुत्र हुए, जो सभी बल, पराक्रम एवं उत्साहसे सम्पन्न थे। एक दिन वे सभी मिलकर उसके पास आये और बोले कि 'तुम हमारी कुलदेवी हो। इस समय हमलोग ७२ (बहत्तर) भाई हो गये हैं। पर हमारे पास कुल आठ ही खण्ड हैं, अतः तुम कृपा करके आठों खण्डोंको ७२ भागोंमें बाँट दो।' तब कुमारीने उनके बहत्तर भाग किये। इन सभी देशोंके गाँवोंकी संख्या ९६ करोड़, ७२ लाख, ३६ हजार है। इस प्रकार उस कुमारीने समुद्रतकके सभी देशका विभाग करके उन सभी गाँवोंको अपने भतीजोंको दे दिया तथा अपने भागको भी उन्हीं लोगोंको सौंप दिया। यह कुमारिकाखण्ड चारों पुरुषार्थोंको प्रदान करनेवाला है।

बादमें कुमारी गुप्तक्षेत्रमें कुमारेश्वरका पूजन करती हुई भारी तपस्या करने लगी। उसने वहाँ कुमारेश्वरके एक विशाल स्वर्णमय मन्दिरका निर्माण कराया। वहाँ भगवान् शंकर प्रकट हुए। उनकी आज्ञासे उसने महाकालको अपने पतिरूपमें वरण किया और उनके साथ वह रुद्रलोकमें चली गयी। वहाँ पार्वतीजीने उसे हृदयसे लगाया और चित्रलेखा नामसे अपनी सखी बना लिया। उसीने उषाको चित्रद्वारा अनिरुद्धका परिचय दिया था। कहते हैं कि रुद्रका विवाह उसीने कराया था। इस प्रकार यहाँपर मरे हुए मनुष्योंका दाह करना और हड्डियोंको संगमके जलमें डालना प्रयागसे भी अधिक उत्तम बताया गया है।

(जा० ना० श०)

दिया, जो रसोईका अन्न चुराकर ले जानेके लिये तैयार खड़ा था, भूखके मारे उसका सारा शरीर दुर्बल हो गया था। मुखपर दीनता छा रही थी। शरीरमें अस्थि और चर्मके सिवा और कुछ शेष नहीं बचा था। उसे देखकर श्रेष्ठ ब्राह्मण विष्णुदासका

हृदय करुणासे भर आया। उन्होंने भोजन चुरानेवाले चाण्डालकी ओर देखकर कहा—'भैया ! जरा ठहरो, ठहरो, क्यों रूखा-सूखा खाते हो, यह घी तो ले लो।' यों कहते हुए विप्रवर विष्णुदासको आते देख वह चाण्डाल भयके मारे बड़े वेगसे भागा और कुछ ही दूरपर मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। चाण्डालको भयभीत एवं मूर्च्छित देखकर विष्णुदास बड़े वेगसे उसके पास आये तथा दयावश अपने वस्त्रके छोरसे उसे हवा करने लगे। तदनन्तर जब वह उठकर खड़ा हुआ, तब विष्णुदासने देखा कि वहाँ चाण्डाल नहीं है। साक्षात् भगवान् नारायण ही शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये सामने उपस्थित हैं। विष्णुदास अपने प्रभुको उपस्थित देखकर सात्त्विक भावोंके वशीभूत हो गये। वे स्तुति और नमस्कार करनेमें भी समर्थ न हो सके। तब भगवान् विष्णुने सात्त्विक व्रतका पालन करनेवाले अपने भक्त विष्णुदासको छातीसे लगा लिया और उन्हें अपने-ही-जैसा रूप देकर वैकुण्ठधामको ले चले। उस समय यज्ञमें दीक्षित हुए राजा चोलने देखा— विष्णुदास एक श्रेष्ठ विमानपर बैठकर भगवान् विष्णुके समीप जा रहे हैं।

विष्णुदासको वैकुण्ठधाममें जाते देख राजाने शीघ्र ही अपने गुरु महर्षि मुद्गलको बुलाया और इस प्रकार कहा—'जिसके साथ स्पर्धा करके मैंने इस यज्ञ, दान आदि कर्मका अनुष्ठान किया है, वह ब्राह्मण आज भगवान् विष्णुका रूप धारण करके मुझसे पहले वैकुण्ठ धामको जा रहा है। मैंने इस वैष्णवयागमें भलीभाँति दीक्षित होकर अग्निमें हवन किया और दान आदिके द्वारा ब्राह्मणोंका मनोरथ पूर्ण किया तथापि अभीतक भगवान् विष्णु मुझपर प्रसन्न नहीं हुए और विष्णुदासको केवल भक्तिके ही कारण श्रीहरिने प्रत्यक्ष दर्शन दिया है। अतः जान पड़ता है कि भगवान् विष्णु केवल दान एवं यज्ञोंसे ही प्रसन्न नहीं होते। उन प्रभुका दर्शन करानेमें भक्ति ही प्रधान कारण है।' यों कहकर राजा अपने भानजेको राज्य दे यज्ञशालामें गये और यज्ञकुण्डके सामने खड़े होकर भगवान् विष्णुको सम्बोधित करते हुए तीन बार उच्चस्वरसे बोले—'भगवन्! आप मुझे मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा होनेवाली अविचल भक्ति प्रदान कीजिये।' इस प्रकार कहकर वे सबके देखते-देखते अग्निकुण्डमें कूद पड़े। बस, उसी समय भक्तवत्सल भगवान् विष्णु उस अग्निकुण्डसे प्रकट हो गये। उन्होंने राजाको छातीसे लगाकर एक श्रेष्ठ विमानपर बैठाकर उन्हें साथ ले वैकुण्ठधामको प्रस्थान किया।

इन दोनोंकी भक्तिपर ही भगवान् परम प्रसन्न हुए थे। भगवत्कृपासे ब्राह्मण विष्णुदास पुण्यशील और राजा चोल सुशील नामसे भगवान्‌के प्रसिद्ध पार्षद हुए। इन दोनोंको अपने ही समान रूप देकर भगवान् लक्ष्मीपतिने अपना द्वारपाल बना लिया।

(ब० दा० वि०)

पापाचारी दुष्टोंका त्याग न करके उनके साथ मिले रहनेसे निरपराध सज्जनोंको भी उनके समान ही दण्ड प्राप्त होता है, जैसे सूखी लकड़ीमें मिल जानेसे गीली भी जल जाती है, इसलिये दुष्ट पुरुषोंके साथ कभी मेल न करे।

मनुष्य दुष्ट पुरुषोंके बलसे, निरन्तरके उद्योगसे, बुद्धिसे तथा पुरुषार्थसे धन भले ही प्राप्त कर ले, परंतु इससे उत्तम कुलीन पुरुषोंके सम्मान और सदाचारको वह पूर्णरूपसे कदापि नहीं प्राप्त कर सकता।

भगवान् वामनके **'नमो नमः कारणवामनाय'**—इस एकादशाक्षर मन्त्रको मोक्ष प्रदान करनेवाला बतलाया गया है। यद्यपि यह पुराण अन्य पुराणोंसे छोटा है तथापि इसके उपदेश अत्यन्त उपादेय हैं।

कथा-आख्यान—

श्रीवामनावतार-कथा

प्राचीन कालकी बात है, दैत्यमाता दितिके गर्भसे हिरण्यकशिपु आदि पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए। अपने अधर्माचरणसे वे भगवान् विष्णुद्वारा मारे गये। हिरण्यकशिपुका पुत्र प्रह्लाद हुआ, जिसकी गणना परमभागवतोंमें होती है। प्रह्लादका पुत्र विरोचन और विरोचनका पुत्र दैत्यराज बलि हुआ। दैत्योंका देवताओंके साथ जन्मजात द्वेष है। स्वर्ग तथा ऐश्वर्यकी कामनासे दैत्य बार-बार देवताओंसे युद्ध करते रहते थे। कभी दैत्य विजित होते तो कभी देवता।

दैत्योंके गुरु थे शुक्राचार्य। उनके द्वारा कराये गये यज्ञानुष्ठानसे बली होकर मदोन्मत्त दैत्यराज बलिने अपनी विशाल दैत्यसेनाको लेकर इन्द्रकी नगरी अमरावतीको चारों ओरसे घेर लिया। तब भयभीत इन्द्र देवगणोंके साथ अपने गुरु बृहस्पतिजीके पास गये और उनसे अपने भयका कारण निवेदन किये। बृहस्पतिजीने कहा—'देवराज! ब्रह्मवादी भृगुवंशी ब्राह्मणोंने अपने तेजसे बलिको अजेय बना दिया है। इस समय युद्धसे उसे जीतना कथमपि सम्भव नहीं है, अतः नीतिसे काम लेना चाहिये। तुम सभी स्वर्ग छोड़कर कहीं छिप जाओ। जब बलि अपने गुरुकी आज्ञाका उल्लङ्घन करेगा, तब वह स्वतः अपने परिवारके साथ पाताल चला जायगा, अतः उस समयकी प्रतीक्षा करो।' गुरु बृहस्पतिजीके सत्परामर्शसे देवगण स्वर्ग छोड़कर अन्यत्र चले गये। स्वर्गपर बलिका अधिकार हो गया। वे त्रैलोक्यविजयी हो गये।

देवगण निराश तथा दुःखी हो अपनी माता अदितिकी शरणमें आये। अदिति दक्ष प्रजापतिकी पुत्री तथा महर्षि कश्यपकी धर्मपत्नी थीं। उन्होंने पुत्रोंसे कहा—'तुमलोग भय न करो, मैं कुछ उपाय करूँगी।' उन्हें आश्वस्त कर वे महर्षि कश्यपका स्मरण करने लगीं। महर्षि कश्यप सृष्टि-कार्यसे विरक्त हो चुके थे। वे प्रतिपल नारायणके ध्यानमें समाधिस्थ रहते थे। एक दिन उनकी समाधि टूटी तो उन्हें अदितिका ध्यान आया। फिर तो वे अदितिके आश्रमकी ओर चल पड़े। पतिको देखकर अदितिके हृदयमें हर्षका संचार हुआ। जिस किसी तरह उन्होंने पतिदेवका आतिथ्य किया और उनके पूछनेपर बताया—'दैत्योंने स्वर्गलोकका समस्त ऐश्वर्य छीनकर हमें असहाय बना दिया है। अमरावतीमें ही नहीं, अपितु त्रिलोकीमें उनका राज्य हो गया है। उनके अत्याचारोंसे सर्वत्र भय छाया हुआ है। देवगण भयभीत हो स्वर्ग छोड़कर अन्यत्र भटक रहे हैं। देव! आप कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे दैत्य पराजित हों और मेरे पुत्र पुनः स्वर्गपर अभिषिक्त हो जायँ।'

कुछ देर विचार करनेके पश्चात् कश्यपजीने कहा—'देवि! तुम नारायणकी उपासना करो। वे बड़े दयालु हैं। उनकी भक्ति कभी व्यर्थ नहीं होती। इस विपत्तिको नारायणके अतिरिक्त और कोई दूर नहीं कर सकता। वे सत्यसंकल्प प्रभु तुम्हारे मनोरथको पूर्ण करेंगे। तुम 'पयोव्रत' (सर्वव्रत, सर्वयज्ञ) के अनुष्ठानसे श्रीहरिको प्रसन्न करो।' तब प्रसन्न होकर देवमाता अदितिने भक्तिपूर्वक पयोव्रतका संकल्प लिया।

इन्द्रादि देवगण भी अपने कष्ट-निवारणके लिये उपाय सोचने लगे। पिता कश्यपजीसे निर्दिष्ट होकर वे पितामह ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजीके द्वारा बताये गये उपायके अनुसार वे क्षीरसागरके उत्तरी तटपर तपस्यासे श्रीनारायणको प्रसन्न करने लगे। तदनन्तर महर्षि कश्यप स्वयं भी भगवान्का ध्यान करने लगे। उन्होंने 'परम-स्तव' नामक स्तोत्रद्वारा उनका स्तवन किया।

इस प्रकार देवमाता अदिति, महर्षि कश्यप तथा इन्द्रादि देवगणोंद्वारा उपासित भगवान् नारायण प्रसन्न हुए और उन्होंने दर्शन दिया। स्तुति-प्रणाम निवेदन करनेके अनन्तर कश्यपजीने कहा—'देवाधिदेव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं आपसे याचना करता हूँ कि आप स्वयं अदितिके गर्भसे इन्द्रके छोटे भाईके रूपमें प्रकट हों।' पुत्राभिलाषिणी अदितिने भी भगवान्की स्तुति की।

तब भगवान्ने प्रसन्न होकर कहा—'देवि! तुमने अपनी भक्तिसे मुझे प्रसन्न किया है। मैं तुम्हारे अभीष्टको पूर्ण करूँगा। मैं अंशरूपसे कश्यपके वीर्यस्वरूप तुम्हारे गर्भमें

प्रविष्ट होऊँगा और तुम्हारे गर्भसे प्रकट होकर देवताओंके शत्रु असुरोंका विनाश करूँगा। नन्दिनि! तुम आश्वस्त होओ।'

देवगणोंसे भगवान्ने कहा—'देवगण! आपलोगोंके जितने भी शत्रु होंगे, वे सभी मिलकर मेरे सामने क्षणमात्र भी नहीं ठहर सकते। मैं यज्ञ-भागके अग्रभोजी सारे असुरोंका संहार करके सभी देवताओंको 'हव्याशी' तथा पितृगणोंको 'कव्याशी' बनाऊँगा। सुरश्रेष्ठगण! आपलोग जिस मार्गसे आये हैं, उसीसे लौट जायँ।(वामन० २७।७-९)।'

इतना कहकर भगवान् नारायण अन्तर्हित हो गये। प्रसन्न तथा आश्वस्त हुए देवगण अपने-अपने स्थानोंकी ओर लौट गये। महर्षि कश्यप एवं माता अदिति अपने आश्रममें आकर नारायणकी आराधना करने लगे। अदितिका पयोव्रत पूर्ण हो चुका था। वे भक्तिपूर्वक महर्षि कश्यपकी सेवामें तत्पर थीं। कश्यपजीमें श्रीहरिकी इच्छासे उनका तेज प्रकट हुआ, वही नारायण तेज माता अदितिमें प्रविष्ट हुआ। ज्यों ही भगवान्ने अदितिके गर्भमें प्रवेश किया, त्यों ही दैत्य श्रीहीन होने लगे, महान् उपद्रव होने लगा और अनेक अपशकुन दिखायी देने लगे; क्योंकि भगवान्की संहार-लीलाका उपक्रम प्रारम्भ हो चुका था।

रहे थे। वे गलेमें वनमाला धारण किये थे, जिसके चारों ओर झुंड-के-झुंड भौंरे गुंजार कर रहे थे। उनके कण्ठमें कौस्तुभमणि सुशोभित थी। उनके अङ्गोंसे अद्भुत कान्ति उद्दीप्त हो रही थी। उनकी चितवनसे प्रेमकी वर्षा हो रही थी। वे मधुर-मधुर मन्दस्मित हाससे सबको आनन्दित कर रहे थे।

उन्हें देखकर माता अदिति हाथ जोड़े हुए मन-ही-मन उन्हें प्रणाम कर परम आनन्दके सागरमें डूब रही थीं। उसी समय एक अलौकिक घटना घटी, वही चतुर्भुज श्रीप्रभु वामन-रूपधारी हो गये। यह देख माता अदितिके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उसी समय देवलोकसे ब्रह्मादि देवता, ऋषि-महर्षि तथा मुनिगण अदितिके आश्रममें आये। प्रजापति कश्यपजीने बालकका जातकर्म-संस्कार किया। महर्षियोंने उपनयन-संस्कार सम्पन्न कराया। भगवान् वामन ब्रह्मचारी बटु बने। तत्पश्चात् ब्रह्मचारीके वेशमें छत्र-दण्ड-कमण्डलु लिये भगवान् महर्षियोंके साथ दैत्यराज बलिके यज्ञ-स्थलकी ओर प्रस्थित हुए। उस समय उनकी शोभा अत्यन्त ही मनोहर थी।

दैत्यगुरु शुक्राचार्य सभी भृगुवंशीय ब्राह्मणोंके साथ यज्ञ-कार्यमें संलग्न थे। दैत्यराज बलि यज्ञमें दीक्षित हो चुके

लिये तो यह बड़े ही सौभाग्यकी बात है। जिनका दर्शन बड़े-बड़े योगियोंको नहीं मिल पाता, वे ही चलकर मेरे यहाँ आ रहे हैं, आज मैं कृतार्थ हो जाऊँगा। अब मुझे यज्ञकी पूर्णता अथवा अपूर्णताकी कोई चिन्ता नहीं है, किंतु गुरुदेव ! अब आप मेरा मार्ग-दर्शन कीजिये कि उनके यहाँ पधारनेपर मुझे क्या करना होगा।'

उन्होंने कहा—'दैत्यराज ! तुमने देवताओंको स्वर्ग-लोकसे खदेड़कर वहाँ अपना अधिकार जमा लिया है। उन्हें यज्ञके भागसे च्युत करके दैत्योंको ही यज्ञभागी बनाकर वेदादि शास्त्रोंकी मर्यादाको नष्ट किया है, जिससे देवगण, ऋषि, महर्षि आदि अत्यन्त कष्टमें हैं। देवकार्यकी सिद्धिके लिये ही नारायणने वामन-रूप धारण किया है। वे यहाँ आकर तुमसे कुछ याचना करेंगे। यदि तुम अपना पराभव नहीं चाहते हो तो दान देनेसे मुकर जाना। इसीमें तुम्हारी भलाई है।'

यह सुनकर बलिने कहा—'आचार्यप्रवर ! मैंने आजतक कभी किसीसे 'नहीं दूँगा'—ऐसा नहीं कहा, चाहे वह याचक निम्नकोटिका ही क्यों न रहा हो, फिर आज सर्वात्मा, लोकपति साक्षात् जनार्दन ही ब्रह्मचारी-याचकरूपमें यहाँ पधार रहे हैं तो मैं 'नहीं' कैसे कह सकता हूँ। मेरे लिये इससे बढ़कर श्रेयस्कर और क्या हो सकता है? गुरो ! आपका मुझे इस प्रकारके पुण्यकार्य—श्रेष्ठ कर्मसे विरत करना सर्वथा अनुचित है।' शुक्राचार्यने समझ लिया कि प्रभुकी लीलासे यह सब होनेवाला है, अतः वे शान्त हो गये। यज्ञानुष्ठान पुनः प्रारम्भ हो गया।

उसी समय भगवान् वहाँ आ पहुँचे और यज्ञ-मण्डपकी ओर आते हुए दिखायी दिये। उनके दर्शनसे बलिको अति आनन्द हुआ। बलि तथा भृगुवंशीय सभी ब्राह्मण, ऋत्विज् आदि भगवान्‌के आतिथ्यके लिये उठ खड़े हुए। प्रसन्न होकर बलिने वामन भगवान्‌को एक श्रेष्ठ आसन प्रदान किया और स्वागतवाणीसे प्रभुका अभिनन्दन किया। उन्होंने उनके पाँव पखारे और पवित्र धोवनको मस्तकपर रखा तथा अर्घ्यादिसे उनकी पूजा की।

फिर हाथ जोड़े हुए राजा बलिने कहा—'ब्राह्मणश्रेष्ठ ! आज मैं कृतार्थ हो गया। आज मेरा वंश-कुल-पितर आदि सभी पवित्र हो गये। मैं धन्य हूँ जो आप मेरे घर पधारे। मेरा यज्ञ पूर्ण हो गया। देवाधिदेव ! आप मेरा प्रणाम स्वीकार करें। भगवन् ! मुझ दासको आज्ञा प्रदान करें कि मुझे क्या करना है। गोविन्द ! मेरा सम्पूर्ण राज्य, सुवर्ण, हाथी, घोड़े, वस्त्र, अलङ्कार, रत्नादि सभी आपके हैं। आप यज्ञके अवसरपर मुझे उपकृत करने यहाँ पधारे हैं। यज्ञमें ब्राह्मणको दान दिया जाता है, तभी यज्ञकी पूर्णता होती है। प्रभो ! मुझे अनुगृहीत करें।'

दैत्यश्रेष्ठ बलिकी उस प्रीतियुक्त वाणीसे प्रसन्न हो वामन भगवान्‌ने कहा—'राजन् ! सुवर्ण, ग्राम, रत्न आदि पदार्थ उनकी याचना करनेवालोंको दीजिये। मुझे तो अग्निहोत्रके लिये केवल तीन पग भूमि प्रदान कीजिये।'

उनकी बात सुनकर बलि हँसने लगे। उन्होंने कहा—'त्रैलोक्यविजयी बलिसे आप तीन पग धरती माँग रहे हैं। मेरे पास जो भी याचक बनकर आया, मैंने सदा उसे मुँहमाँगा दुर्लभ पदार्थ भी दानमें दिया है। आपको भूमि ही माँगनी हो तो जितनी चाहिये, मैं द्वीप-के-द्वीप दे सकता हूँ, आप माँगकर तो देखिये।'

वामन भगवान्‌ने मन-ही-मन मुसकराते हुए कहा—'दैत्यप्रवर ! मुझे तो केवल तीन पग ही भूमि चाहिये। यदि आपको देना हो तो 'हाँ' कहें अन्यथा मैं अन्यत्र जाऊँ। शीघ्रता करें, विलम्ब न करें।'

बलिने हँसते हुए कहा—'अच्छी बात है, जितनी आपकी इच्छा हो उतनी ले लें, मैं आपको निराश नहीं करूँगा।' यह कहकर दैत्यराज बलि भूमि-दानके लिये उद्यत हुए। गुरु शुक्राचार्य भगवान्‌की लीला समझ रहे थे, उन्होंने बलिको पुनः सावधान किया और कहा—'अरे मूर्ख ! तुम क्या करने जा रहे हो। ये साक्षात् नारायण हैं। वामनके रूपमें तुम्हें छलने आये हैं। ये दोनों पगोंसे पृथ्वी तथा आकाशको नाप लेंगे और तीसरे पगसे तुम्हें पातालमें भेज देंगे। कुछ तो विचार करो, क्यों दैत्य-जातिके सर्वनाशके लिये उद्यत हो? मेरी बात मानो। अभी भी समय है, बुद्धिका आश्रय लो।' बलिने कहा—'गुरुदेव ! आपकी बात सत्य है, परंतु मैं भक्तप्रवर प्रह्लादजीका पौत्र हूँ। मैंने एक बार देनेकी प्रतिज्ञा कर ली है, अब चाहे मेरा सर्वस्व नष्ट हो जाय, स्वयं मेरा शरीर भी न रहे, परंतु अब मैं अपनी प्रतिज्ञा वापस नहीं ले सकता। असत्यसे बढ़कर अन्य कोई अधर्म नहीं है।' शुक्राचार्यने

भक्ति बड़ी है या शक्ति ?

'मुनिप्रवर ! आप तो पृथ्वीपर निवास करनेवाले श्रेष्ठ ऋषि प्रतीत होते हैं। रसातलमें आपके पधारनेका क्या कोई विशेष प्रयोजन है ?'—महातेजस्वी प्रह्लादने अमिततेजा च्यवन ऋषिका यथायोग्य पूजनकर विनम्रता-पूर्वक प्रश्न किया।

तब नर्मदा-तटपर 'नकुलीश्वर-तीर्थ'में स्नानार्थ आये ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ महातपस्वी च्यवनने एक भूरे रंगके विषधरद्वारा उन्हें पकड़कर यहाँ लानेतकका सम्पूर्ण वृत्तान्त उन्हें सुना दिया।

'महामुने ! कष्टके लिये मैं क्षमा-प्रार्थी हूँ, पर इस रूपमें मेरा कल्याण ही हुआ कि मुझे आपके दर्शन और आतिथ्यका सुअवसर अनायास प्राप्त हो गया। भगवन् ! बहुत दिनोंसे पृथ्वीके किसी महान् तीर्थपर भ्रमणकी आकाङ्क्षा मेरे मनमें उठ रही है। इस विषयमें आप मेरा मार्गदर्शन करें।'

ऋषि च्यवनसे नैमिषारण्यका वर्णन सुनकर दैत्यराज प्रह्लाद महाबलवान् दिति-पुत्रों एवं दानवोंसहित यहाँ आये। तीर्थ-स्नानके पश्चात् प्रह्लादने वनमें घूमते हुए एक अद्भुत दृश्य देखा—कृष्ण-मृगचर्म धारण किये दो जटाजूटधारी मुनि तपस्यामें निरत हैं। पर यह कैसी तपस्या ? जिस विशाल शालवृक्षके नीचे बैठे वे तपस्या कर रहे हैं, वह तो बाणोंसे पूर्णतया आच्छादित है। यही नहीं, इन मुनियोंके पार्श्वमें दिव्य 'शार्ङ्ग' तथा 'आजगव' नामक दो दिव्य धनुष और अक्षय तूणीर भी रखे हैं। दैत्यराज इस विरोधाभासको देखकर मुनियोंको दम्भी मान बैठे और उनके निकट जाकर बोले—'आप दोनों यह दम्भपूर्ण धर्मविनाशक कार्य क्यों कर रहे हैं ? एक ओर जटाजूटका भार तो दूसरी ओर श्रेष्ठ अस्त्र भी ?'

'दैत्येश्वर ! तुम इससे चिन्तित क्यों हो गये ? सामर्थ्यवान् जो भी कार्य करता है, उसे वही शोभा देनेवाला बन जाता है।' तपस्वियोंने समझाया।

'नहीं, धर्मसेतुके स्थापित करनेवाले मुझ दैत्येन्द्रके रहते आपका यह अहंभाव मात्र प्रवञ्चना है।'—प्रह्लादने आवेशमें कहा।

नर-नारायण नामक दोनों मुनियोंने प्रह्लादको समझाया, पर अहंभाववश प्रह्लादने क्रुद्ध होकर प्रतिज्ञा कर ली कि 'मैं युद्धमें आप दोनोंको परास्त करूँगा।'

ब्रह्मास्त्र एवं माहेश्वरास्त्र-जैसे अस्त्रोंका परस्पर प्रयोग भी हुआ, पर प्रह्लाद निरन्तर पीछे हटते चले गये। उन्होंने मुद्गर, प्रास, परिघ, शक्ति आदि अनेक अस्त्रोंका प्रयोग किया, पर फिर भी वे उनमेंसे पुरातन ऋषि महापराक्रमी लोकपति नारायणको पराजित न कर सके।

निराश प्रह्लादजीने वैकुण्ठ-धाममें जाकर भगवान् विष्णुकी शरण ली और उनसे अपनी पराजयका कारण जानना चाहा।

'प्रह्लाद ! महाबाहु धर्मपुत्र नारायण तुम्हारे द्वारा अजेय हैं। वे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ परमज्ञानी ऋषि हैं। वे सभी देवता एवं असुरोंसे भी अजेय हैं।'

'पर भगवन् ! मैंने तो उनके वेषको देखकर आवेशमें जो प्रतिज्ञा कर ली है, उसका क्या होगा ?' प्रह्लादने विनयपूर्वक पूछा।

'दानवश्रेष्ठ ! जहाँ शक्ति पराजित हो जाती है, वहाँ भक्ति विजयी होती है। नारायणपर विजय चाहते हो तो भक्तिसे उनकी आराधना करो। इसीसे वे सुसाध्य हैं। नारायण-रूपमें मैं ही तो वहाँ विश्व-मङ्गलकी कामनासे तपस्या-रत हूँ'—

सोऽहं दानवशार्दूल लोकानां हितकाम्यया।
धर्मं प्रवर्तापयितुं तपश्चर्यां समास्थितः॥
तस्माद्यदीच्छसि जयं तमाराधय दानव।
तं पराजेष्यसे भक्त्या तस्माच्छुश्रूष धर्मजम्॥

(वामन० ८।४१-४२)

भगवान् विष्णुके कथनानुसार प्रह्लादजीने बदरिकाश्रममें जाकर भगवान् नर-नारायणको अपनी श्रद्धा-भक्तिसे वशमें

सम्बन्धित कथा है। इन्द्र तथा भगवान् वामन वाष्कलिके यहाँ जाते हैं। इन्द्रके कहनेपर वाष्कलि तीन पग भूमि दान करता है और अन्तमें भगवान्ने उसे भक्ति प्रदान कर रसातल भेज दिया और कहा कि वराह-अवतार धारण कर मैं पातालमें प्रवेश करूँगा तब तुम्हारा उद्धार करूँगा। शेष कथा पूर्ववत् ही है।

किया और उनसे वरदानके रूपमें यह माँगा—'अधोक्षज ! मैं महापराक्रमीके रूपमें नहीं, अपितु आपके भक्तके रूपमें संसारमें चर्चित होऊँ।'—

'त्वत्पादपङ्कजाभ्यां हि ख्यातिरस्तु सदा मम।'

वामनपुराणमें वाराणसी

एक बार प्रजापतियोंमें श्रेष्ठ दक्ष प्रजापतिने एक विशाल यज्ञका आयोजन किया। उस यज्ञमें उन्होंने इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओंको तो निमन्त्रित किया ही था, साथ ही ऋषियों और ऋषिपत्नियोंके साथ धर्मको भी उनकी पत्नी अहिंसाके साथ निमन्त्रित किया था। इस यज्ञमें उन्होंने शिवसहित सतीको छोड़कर अपने सभी सम्बन्धियोंको भी आवाहित किया था।

नारदजीने पुलस्त्य ऋषिसे जो वामनपुराणकी कथा कह रहे थे, पूछा—'दक्ष प्रजापतिने महेश्वरको ही आमन्त्रित क्यों नहीं किया ?' तब पुलस्त्यजीने बताया कि 'शंकर कपाली हैं, इसलिये उन्हें यज्ञमें आमन्त्रित नहीं किया गया था।' नारदजीने फिर पूछा कि 'कृपया यह बतायें कि भगवान् शिव किस कारण 'कपाली' हो गये ?' महर्षि पुलस्त्यने कहा कि इसके सम्बन्धमें एक बहुत पुरानी कथा है, जो आदिपुराणमें ब्रह्माजीके द्वारा कही गयी है, आप ध्यान देकर सुनें, मैं उसे कहता हूँ—

महर्षि पुलस्त्यने कहा कि प्रलयकालमें जब यह सम्पूर्ण संसार जलमें निमग्न था, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, वायु और अग्नि किसीका भी अस्तित्व नहीं था तथा सम्पूर्ण जगत् भाव एवं अभाव—दोनोंसे रहित था और तब अवस्थाका भी ज्ञान नहीं था, ऐसे समयमें भगवान् विष्णुका राजस-रूप पञ्चमुख-स्वरूपमें—वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञाताके रूपमें प्रकट हुआ। उसी समय एक अन्य स्वरूप उत्पन्न हुआ, जो त्रिलोचन, शूलपाणि

अपने तीसरे नेत्रसे ब्रह्माके उस पाँचवें मुखको देखने लगे, जिससे कि वह भस्म हो जाय, किंतु वह भस्म नहीं हुआ और उपहास करता हुआ बोला—'जलमें आघात करनेसे बुद्बुद तो उत्पन्न होते हैं, पर क्या उन बुलबुलोंमें कोई शक्ति होती है ?' यह सुनते ही भगवान् शंकरने ब्रह्माके उस मुखको अपने नखके अग्रभागसे काट डाला।

शिवजीके इस कृत्यसे ब्रह्माका पाँचवाँ मुख कट तो गया, किंतु उनपर दो विपत्तियाँ एक ही साथ टूट पड़ीं। एक तो वह कटा हुआ सिर उनकी हथेलीमें इस प्रकार चिपक गया कि उसे छुड़ाना सम्भव नहीं हो रहा था और दूसरे उसी समय एक भयानक काली स्त्री ब्रह्महत्या भी प्रकट होकर शिवजीके शरीरमें समा गयी, जिससे महेश्वर व्यग्र हो उठे। अपनी इसी व्यग्रतामें वे अपने त्राणके लिये भटक रहे थे कि कुरुक्षेत्रमें उन्हें गरुडध्वजके दर्शन हुए। भगवान् गरुडध्वजने उनसे कहा कि 'यहाँसे पूर्व प्रयागमें मेरे अंशसे उत्पन्न 'योगशायी' नामसे विख्यात देवता नित्य निवास करते हैं। वहाँसे दक्षिण वरुणा नामकी एक नदी है, उसीके वामपादमें 'असि' नामसे प्रसिद्ध एक दूसरी नदी भी है। उन दोनोंके मध्यका प्रदेश 'योगशायी-क्षेत्र' है। वह तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ तथा सभी पापोंसे छुड़ा देनेवाला तीर्थ है। वहीं वाराणसी नगरी भी है। सुरेश ! वाराणसीके महान् आश्रममें सभी पापोंको दूर करनेवाले लोल नामक सूर्य निवास करते हैं। वहीं दशाश्वमेध नामका स्थान भी

उसी स्थानका नाम 'कपालमोचन' पड़ा और उसी घटनाके कारण भगवान् शिव 'कपाली' नामसे विख्यात हुए।

महर्षि पुलस्त्यने दक्षयज्ञके प्रसंगको आगे बढ़ाते हुए बताया कि जयाने, जो सतीकी माताकी बहन थी, सतीको जब इसकी सूचना दी तो सतीको आन्तरिक दुःख हुआ और उससे उत्पन्न ज्वालामें वे जलकर मर गयीं। तब शिवजीके क्रोधसे वीरभद्र आदि रुद्रगणोंकी उत्पत्ति हुई, जिन्होंने प्रथमतः धर्मराज—यमको भी हराकर फिर दक्षके यज्ञको भी विध्वंस कर दिया, किंतु भगवान् विष्णुसे उन्हें भी मुँहकी खानी पड़ी।

इस कथानकमें पुराणकर्ताने सृष्टिके आदिमें तीनों देवताओंको प्रतीकात्मक रूपमें चित्रित करके बताया है कि सात्त्विक, राजस और तामस शक्तियोंके माध्यमसे सृष्टिका जो उद्भव हुआ, उसमें 'अहंतत्त्व' एक प्रधान तत्त्व बना, जो सृष्टिके आदिसे उसके अन्ततक प्रेरणाका आधार हुआ, किंतु यह अहंतत्त्व अन्ततः शुद्ध चेतनाके सात्त्विक प्रतीक महाविष्णुसे पराभूत होकर ही मुक्तिलाभ पाता है। साधक अपने साधनाक्रममें तामस शक्तिको राजसमें और राजसको सात्त्विकमें परिवर्तित करता चलता है, तब वह अन्ततः अपने छोटे-से अहंतत्त्वको विराट् स्रष्टा विष्णुके अहंतत्त्वमें समर्पित करके मोक्ष-पद प्राप्त करता है। साधना-जगत्‌में मूलाधारचक्र युक्तत्रिवेणी तथा आज्ञाचक्र मुक्तत्रिवेणीके नामसे जाना जाता है। साधनाका प्रारम्भ—मुक्ति और मोक्षके प्रयासका प्रारम्भ होता है युक्तत्रिवेणी प्रयागसे और उसका समापन होता है मुक्तत्रिवेणी काशीमें। शिवजीका ब्रह्महत्यासे मुक्त होनेका तात्त्विक संकेत साधनाके उसी सूत्रमें पिरोया हुआ है।

(आ० प्र०)

सुदर्शनचक्रकी कथा

सुदर्शनचक्र, जो भगवान् विष्णुका अमोघ अस्त्र है और जिसने देवताओंकी रक्षा तथा राक्षसोंके संहारमें अतुलनीय भूमिकाका निर्वाह किया है और करता है, क्या है और कैसे भगवान् विष्णुको प्राप्त हुआ—इसकी कथा वामनपुराणमें सुन्दर और प्रतीकात्मक ढंगसे दी गयी है।

प्राचीन कालमें वेद-वेदाङ्गमें पारङ्गत एक गृहस्थ ब्राह्मण थे, जिनका नाम था 'वीतमन्यु'। उनकी पतिव्रता एवं गुण-शील-सदाचार-युक्ता पत्नी थीं आत्रेयी, जो धर्मशीलाके नामसे प्रसिद्ध थीं। उन दम्पतिके पुत्रका नाम था उपमन्यु। यह ब्राह्मण-परिवार दरिद्रतासे इस प्रकार जर्जरित था कि धर्मशीला अपने पुत्रको दूध भी नहीं दे सकती थीं। वह बालक दूधके स्वादसे पूर्णतया अनभिज्ञ था। धर्मशीला उसे चावलका धोवन ही दूध कहकर पिलाया करती थीं। एक दिन ऋषि वीतमन्यु अपने पुत्रके साथ कहीं प्रीतिभोजमें गये। वहाँ उस तपस्वी बालक उपमन्युने दूधसे बनी हुई खीरका भोजन किया, तब उसे दूधके स्वादका पता लग गया। घर आकर उसने चावलके धोवनको पीनेसे इनकार कर दिया। दूध पानेके लिये हठपर अड़े बालकसे उसकी माँ धर्मशीलाने आँसुओंसे भरी आँखोंसे उसे देखते हुए कहा—'पुत्र! यदि तुम दूधको क्या, उससे भी अधिक पुष्टिकारक तथा स्वादयुक्त पेय पीना चाहते हो तो विरूपाक्ष महादेवकी सेवा करो। उनकी कृपासे दूधको कौन कहे, अमृत भी प्राप्त हो सकता है।' उपमन्युने अपनी माँसे पूछा—'माता! आप जिन विरूपाक्ष भगवान्‌की सेवा-पूजा करनेको कह रही हैं, वे कौन हैं?' धर्मशीलाने विरूपाक्ष भगवान्‌की कथा कहते हुए अपने पुत्रको बताया कि 'प्राचीन कालमें श्रीदामा नामसे विख्यात एक महान् असुरराज था। उसने सारे संसारको अपने अधीन करके लक्ष्मीको भी अपने वशमें कर लिया। उसके यश और प्रतापसे तीनों लोक श्रीहीन हो गये। उसका मन इतना बढ़ गया कि वह भगवान् विष्णुके श्रीवत्सको ही छीन लेनेकी योजना बनाने लगा। उस महाबलशाली असुरकी इस दूषित मनोभावनाको जानकर उसे मारनेकी इच्छासे भगवान् विष्णु महेश्वरके पास गये। उस समय योगमूर्ति महेश्वर हिमालयकी ऊँची चोटीपर योगमग्न थे। तब भगवान् विष्णुने जगन्नाथके पास जाकर एक हजार वर्षतक पैरके अँगूठेपर खड़े रहकर परमब्रह्मकी उपासना करते रहे।

भगवान् विष्णुकी इस कठोर साधनासे प्रसन्न होकर भगवान् शिवने उन्हें सुदर्शनचक्र प्रदान किया। उन्होंने सुदर्शनचक्रको देते हुए भगवान् विष्णुसे कहा—'देवेश!

यह सुदर्शन नामका श्रेष्ठ आयुध बारह अरों, छः नाभियों एवं दो युगोंसे युक्त, तीव्र गतिशील और समस्त आयुधोंका नाश करनेवाला है। सज्जनोंकी रक्षा करनेके लिये इसके अरोंमें देवता, राशियाँ, ऋतुएँ, अग्नि, सोम, मित्र, वरुण, शचीपति इन्द्र, विश्वेदेव, प्रजापति, हनुमान्, धन्वन्तरि, तप—ये तथा चैत्रसे लेकर फाल्गुनतकके बारह महीने प्रतिष्ठित हैं। विभो! आप इसे लेकर निर्भीक होकर शत्रुओंका संहार करें।'

शिवजीकी यह बात सुनकर भगवान् विष्णुने कहा—'शम्भो! मुझे यह कैसे मालूम होगा कि यह अस्त्र अमोघ है? विभो! यदि यह अस्त्र आपको प्रभावित कर सके तभी मैं इसे अमोघ और निरन्तर गतिशील मानूँगा। यदि आप आज्ञा दें तो इसकी परीक्षा करनेके लिये मैं इसका प्रयोग आपपर ही करूँ।'

शिवजीने कहा—'यदि आप ऐसा सोचते हैं तो आप निश्चिन्त होकर इसे मेरे ऊपर चलाइये और इसकी परीक्षा कर लीजिये।'

भगवान् विष्णुने जब सुदर्शनचक्रका प्रयोग शिवजीपर किया तो अजर-अमर शिवजी भी तीन खण्डोंमें कट गये। इन तीन खण्डोंके नाम पड़े—विश्वेश, यज्ञेश तथा यज्ञयाजक। शिवजीको तीन खण्डोंमें कटा देखकर भगवान् विष्णु लज्जित हो गये और वे बार-बार सदाशिवको प्रण— करने लगे। भगवान् विष्णुकी यह दशा देखकर सदाशि बोले—'महाबाहो! चक्रकी नेमिद्वारा मेरा यह प्राकृत वि ही काटा गया है। मैं और मेरा स्वभाव तो क्षत नहीं हुअ यह तो सर्वथा अच्छेद्य तथा अदाह्य है ही। केशव! आज मेरा एक अंश हिरण्याक्ष, दूसरा सुवर्णाक्ष और तीस विरूपाक्षके नामसे जाना जायगा। ये मेरे तीनों अं आराधनासे महान् पुण्य प्रदान करनेवाले होंगे। विभो! अ उठें और उस असुरका वध कर डालें।' तब भगवान् विष् उस सुदर्शनचक्रसे असुर श्रीदामाको युद्धमें परास्त क मार डाला।'

यह सुनकर वीतमन्युके बलवान् और तेजस्वी ! उपमन्युने भी भगवान् शिवके एक रूप विरूपाक्षकी उपास करके अपना अभीष्ट प्राप्त किया।

कालातीत सत्तासे उत्पन्न और प्राप्त सुदर्शन महाकाल एक प्रसाद—एक प्रतीक है, जो अत्यन्त गतिशील अं अमोघ है। देवता, दानव और मनुष्य, चर और अचर सभी अधिक शक्तिमान् वह चक्र आपातदृष्टिसे देखनेपर सुन है और वही भगवान् हरिका परम आयुध है। (आ० प्र०)

बलिद्वारा भगवान् वामनका संस्तवन

राजा बलिने भगवान्से प्रार्थना की—प्रभो! मेरे पितामह प्रह्लादजीकी कीर्ति सारे जगत्में प्रसिद्ध है वे आपके भक्तोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं। उनके पिता हिरण्यकशिपुने आपसे वैर-विरोध रखनेके कारण उ अनेकों प्रकारके दुःख दिये। परंतु वे आपके ही परायण रहे, उन्होंने अपना जीवन आपपर ही निछाव कर दिया। उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि शरीरको लेकर क्या करना है, जब यह एक-न-एक दि साथ छोड़ ही देता है। जो धन-सम्पत्ति लेनेके लिये स्वजन बने हुए हैं, उन डाकुओंसे अपना स्वार्थ ि क्या है? पत्नीसे भी क्या लाभ है, जब वह जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्रमें डालनेवाली ही है। जब म ही जाना है, तब घरसे मोह करनेमें भी क्या स्वार्थ है? इन सब वस्तुओंमें उलझ जाना तो केवल अपन आयु खो देना है। ऐसा निश्चय करके मेरे पितामह प्रह्लादजीने, यह जानते हुए भी कि आप लौकिक दृष्टिसे उनके भाई-बन्धुओंके नाश करनेवाले शत्रु हैं, आपके ही भयरहित एवं अविनाशी चरणकमलोंक शरण ग्रहण की थी। क्यों न हो—वे संसारसे परम विरक्त, अगाध बोधसम्पन्न, उदारहृदय एवं संतशिरोमणि जो हैं।

(श्रीमद्भा० ८।२२।८-१०)
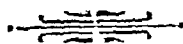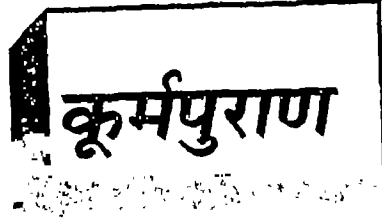
भगवान् विष्णुने कूर्म-अवतार धारणकर परम विष्णुभक्त राजा इन्द्रद्युम्नको जो भक्ति,ज्ञान एवं मोक्षका उपदेश किया था,उसी उपदेशको पुनः भगवान् कूर्मने समुद्रमन्थनके समय इन्द्रादि देवताओं तथा नारदादि ऋषिगणोंसे कहा, वही कथा कूर्म-पुराणके नामसे विख्यात है। उसी उपदेश-कथाको नैमिषारण्यके द्वादशवर्षीय महासत्रमें रोमहर्षण सूतजीने शौनकादि अट्ठासी हजार ऋषियोंसे कहा था। विष्णुपुराण (३।६।२१-२४)में प्राप्त महापुराणोंकी सूचीमें इसे पंद्रहवाँ पुराण कहा गया है। स्वयं कूर्मपुराणने भी अपनेको पंद्रहवाँ पुराण कहा है (१।१।२१)।

नारदीयपुराणके पूर्वभाग अध्याय १०६में कूर्मपुराणका जो वर्णन मिलता है उसके अनुसार—(क) कूर्मपुराणके पूर्व तथा उपरि—ये दो विभाग हैं तथा (ख) मूल कूर्मपुराण—(१) ब्राह्मी, (२) भागवती, (३) सौरी और (४) वैष्णवी—इन चार संहिताओंमें विभक्त था। इसी बातको कूर्मपुराणने स्वयं कहा है—

ब्राह्मी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीर्तिताः। चतस्रः संहिताः पुण्या धर्मकामार्थमोक्षदाः॥
इयं तु संहिता ब्राह्मी चतुर्वेदैश्च सम्मता। भवन्ति षट् सहस्राणि श्लोकानामत्र संख्यया॥

(१।१।२२-२३)

उपर्युक्त चार संहिताओंमेंसे वर्तमानमें केवल ब्राह्मीसंहिता ही उपलब्ध है, इसमें परब्रह्मका स्वरूप यथार्थरूपसे बतलाया गया है, इसी कारण यह ब्राह्मीसंहिता कहलाती है[1]। यही कूर्मपुराण (ब्राह्मीसंहिता) पूर्व तथा उपरि—दो भागोंमें विभक्त है। पूर्वभागमें ५३ और उपरिभागमें ४६ कुल ९९ अध्याय हैं। इसकी श्लोक-संख्या छः हजार है। शेष तीन संहिताएँ अप्राप्य हैं। मत्स्यपुराण (५३।४७)के अनुसार मूल कूर्मपुराणमें १८,००० श्लोक थे—'**अष्टादशसहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुगं शिवम्।**' मूल ग्रन्थका केवल तृतीयांश ही उपलब्ध है।

ऐसा प्रतीत होता है कि जिस समय रोमहर्षण सूतजीने नैमिषारण्यमें ऋषियोंसे कूर्मपुराणका कथन किया, उस समय चार संहिताओंमेंसे कूर्मपुराण केवल ब्राह्मीसंहितामात्र ही था, क्योंकि वहाँ कहा गया है—

एतद्वः कथितं विप्रा भोगमोक्षप्रदायकम्। कौर्मं पुराणमखिलं यज्जगाद गदाधरः॥(कूर्म० २।४४।६७)

वर्ण्य विषय

नारदीयमहापुराण (१।१०६)में कूर्मपुराणके चारों संहिताओंके विषयोंको क्रमशः बतलाया गया है, किंतु वर्तमानमें जो कूर्मपुराण उपलब्ध है, उसमें नारदीयपुराणमें वर्णित ब्राह्मीसंहिताके ही विषय मिलते हैं। शेष तीन संहिताओंका प्रतिपाद्य विषय वर्तमान कूर्मपुराणमें नहीं मिलता है।

इस पुराणका आरम्भ रोमहर्षण सूतजी तथा शौनकादि ऋषियोंके संवादसे होता है। सूतजीने पुराण-लक्षण, अठारह महापुराण तथा अठारह उपपुराणोंके नामोंका परिगणन करते हुए कूर्मावतारकी संक्षिप्त कथा बतलायी। तदनन्तर कूर्मावतारके प्रसंगमें लक्ष्मीकी उत्पत्ति तथा उनका माहात्म्य वर्णित है। फिर भगवान् कूर्म तथा ऋषियोंके संवादमें लक्ष्मी तथा इन्द्रद्युम्नका वृत्तान्त है। फिर इन्द्रद्युम्नद्वारा भगवान् विष्णुकी स्तुति, वर्णों एवं आश्रमोंका एवं उनके कर्तव्योंका वर्णन, परब्रह्मके रूपमें शिवतत्त्व तथा महेश्वरका माहात्म्य वर्णित है। कूर्मरूप विष्णुने शिवको ही परम तत्त्व तथा मुख्य देव कहा है। उसके बाद सृष्टि-वर्णन, कल्प, मन्वन्तर तथा युगोंकी कालगणना, पृथ्वीके उद्धार-प्रसंगमें वराहावतारकी कथा और जगत्‌की उत्पत्तिका संक्षेपमें वर्णन है। फिर शंकर-पार्वती-

१ - ब्राह्मी पौराणिकी चेयं संहिता पापनाशिनी। अत्र तत् परमं ब्रह्म कीर्त्यते हि यथार्थतः॥ (कूर्म० २।४४।१३२)

चरित, पार्वतीके सहस्रनाम, योगशास्त्र, भृगुवंश, स्वायम्भुव मनु-वंश, पृथुवंश, देव, असुर, नाग, गन्धर्व, किन्नर, विश्वेदेव, वसु तथा मरुद्‌गणोंकी उत्पत्तिके आख्यान, सतीदेह-त्याग, दक्षयज्ञ-विध्वंस, दक्षकी कन्याओंका वंश, वामनावतारकी कथा, कश्यप और अदितिसे उत्पन्न सूर्य तथा चन्द्रवंश और अनसूयाकी संततिका वर्णन है। २४वें अध्यायमें यदुवंशके वर्णनमें भगवान् श्रीकृष्णका मङ्गलमय चरित्र वर्णित है। श्रीकृष्णद्वारा शिवकी तपस्या तथा शिवस्तुति और श्रीकृष्णको शिवस्वरूपके दर्शन तथा उनकी कृपासे श्रीकृष्णको जाम्बवतीसे शाम्बनामक पुत्रकी प्राप्ति तथा महर्षि मार्कण्डेयसे लिङ्गमाहात्म्यका आख्यान कहा गया है और फिर श्रीकृष्णका स्वधामगमन वर्णित है (अ० २५—२७)। अ० २८—३०में वेदव्यासजीद्वारा अर्जुनको चारों युगोंके स्वभाव तथा युगधर्मोंके विषयमें बतलाया गया है। अनन्तर वेदव्यास तथा उनके शिष्य जैमिनि, पैल तथा सुमन्तु आदिके संवादमें मोक्ष-प्राप्तिके साधनोंके वर्णन-प्रसंगमें लगभग चार अध्यायोंमें वाराणसी-तीर्थ तथा गङ्गा एवं शिवलिङ्गोंका माहात्म्य विस्तारसे वर्णित है। महर्षि मार्कण्डेयद्वारा युधिष्ठिरके प्रति प्रयागका माहात्म्य-वर्णन तथा भुवनकोषमें सप्त द्वीपों, सप्त महासागरों, वर्षों, जम्बूद्वीप, पर्वतों, नदियों, चौदह लोकों, देवादिकोंकी विविध पुरियों आदिके वर्णनके साथ ज्योतिःसंनिवेश अर्थात् सूर्य तथा अन्य आकाशीय पिण्डोंकी स्थिति तथा संचार एवं ध्रुवसे उनका सम्बन्ध विस्तारसे प्रतिपादित है। मन्वन्तर-कीर्तनमें विष्णुमाहात्म्य तथा वैवस्वत मन्वन्तरके २८ द्वापरयुगोंके २८ व्यासोंका उल्लेख है, जिन्होंने अपने-अपने द्वापरोंमें वेदोंका शाखा-विभाग किया। २८वें या अन्तिम द्वापरमें कृष्ण-द्वैपायन व्यास हुए, जिन्होंने वेदको चार संहिताओंमें विभक्त किया और प्रत्येक संहिताको एक-एक शिष्यको पढ़ाया। ऋग्वेद पैलको, यजुर्वेद वैशम्पायनको, सामवेद जैमिनिको और अथर्ववेद सुमन्तुको पढ़ाया। अन्तमें वैवस्वत-मन्वन्तरमें शिवके अनेक अवतारोंके वर्णनके साथ सात भावी मन्वन्तरोंका नाम परिगणित है। यहाँ कूर्मपुराणका पूर्वभाग पूर्ण हो जाता है।

उत्तरभागमें मुख्य रूपसे ईश्वरगीता, व्यासगीता, तीर्थमाहात्म्य, प्रायश्चित्त-वर्णन, चतुर्विध प्रलय, पुराणकी अनुक्रमणिका तथा फलश्रुति वर्णित है।

पुराणवाङ्मयमें इस कूर्मपुराणका महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इसमें (१) महापुराणोंके सर्ग-प्रतिसर्ग इत्यादि पाँच मुख्य विषयोंका पूर्ण विवेचन है। (२) हिन्दू-धर्मके तीन मुख्य सम्प्रदायों—वैष्णव-शैव-शाक्तका अद्‌भुत समन्वय किया गया है। यह त्रिदेवोंकी एकताका प्रतिपादन करता है। शक्ति-शक्तिमान्‌में अभेद मानता है तथा शिव एवं विष्णुका परमैक्य स्वीकार करता है।

कथा-आख्यान—

श्रीकूर्मावतार-कथा

भगवान् विष्णुके कूर्मावतारके विषयमें कूर्मपुराणके अतिरिक्त विष्णु, श्रीमद्‌भागवत, ब्रह्म, पद्म, वराहपुराण और महाभारत आदिमें कथाएँ प्राप्त होती हैं[1]। भगवान्‌के प्रसिद्ध दस अवतारोंमें यह द्वितीय अवतार है।

एक समयकी बात है कि महर्षि दुर्वासा देवराज इन्द्रसे मिलनेके लिये स्वर्गलोकमें गये। उस समय देवताओंसे पूजित इन्द्र ऐरावत हाथीपर आरूढ़ हो कहीं जानेके लिये उद्यत थे। उन्हें देख महर्षि दुर्वासाका मन प्रसन्न हो गया। उन्होंने विनीतभावसे देवराजको एक पारिजात-पुष्पोंकी माला भेंट की। यह माला उन्हें एक परमसुन्दरी विद्याधरीसे प्राप्त हुई थी। देवराजने माला ग्रहण तो कर ली, किंतु उसे स्वयं न पहनकर उपेक्षितभावसे ऐरावतके मस्तकपर डाल दी और स्वयं चलनेको उद्यत हुए। हाथी मदसे उन्मत्त हो रहा था। उसने सुगन्धित तथा कभी म्लान न होनेवाली उस मालाको सूँड़से मस्तकपरसे खींचकर मसलते हुए जमीनपर फेंक दिया। यह देखकर ऋषि दुर्वासा अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और उन्होंने शाप देते हुए कहा—'रे मूढ़! तुमने मेरी दी हुई मालाका कुछ भी आदर नहीं किया। तुम त्रिभुवनकी राजलक्ष्मीसे सम्पन्न होनेके कारण मेरा अपमान करते हो, इसलिये जाओ आजसे तीनों लोकोंकी लक्ष्मी नष्ट हो जायगी और यह तुम्हारा त्रिभुवन भी श्रीहीन हो जायगा। इसमें कोई संदेह नहीं है।' इतना कहकर दुर्वासा शीघ्र ही वहाँसे चल दिये।

१- शतपथब्रा० ७।५।१।५; तैत्तिरीय आर० १।२३।३; अग्नि० अ० ४ तथा गरुड० १।१४२ में भी कूर्मावतारका वर्णन है।

शापके प्रभावसे इन्द्रादि सभी देवगण एवं तीनों लोक श्रीहीन हो गये। यह दशा देखकर इन्द्रादि देवता अत्यन्त दुःखी हुए। महर्षिका शाप अमोघ था। उन्हें प्रसन्न करनेकी सभी प्रार्थनाएँ भी विफल हो गयीं। तब असहाय, निरुपाय तथा दुःखी देवगण, ऋषि-मुनि आदि सभी प्रजापति ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजी उन्हें साथ लेकर वैकुण्ठमें श्रीनारायणके पास पहुँचे और सभीने अनेक प्रकारसे नारायणकी स्तुति की और बताया कि 'प्रभो! एक तो हम दैत्योंके द्वारा अत्यन्त कष्टमें हैं और इधर महर्षिके शापसे श्रीहीन भी हो गये हैं। आप शरणागतोंके रक्षक हैं, अतः इस महान् कष्टसे हमारी रक्षा कीजिये।' स्तुतिसे प्रसन्न होकर श्रीहरिने गम्भीर वाणीमें कहा—'तुमलोग समुद्रका मन्थन करो, जिससे लक्ष्मी तथा अमृतकी प्राप्ति होगी, उसे पीकर तुम अमर हो जाओगे। तब दैत्य तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट न कर सकेंगे, किंतु यह अत्यन्त दुष्कर कार्य है, इसके लिये तुम असुरोंको अमृतका प्रलोभन देकर उनके साथ संधि कर लो और दोनों पक्ष मिलकर समुद्रका मन्थन करो'—यह कहकर प्रभु अन्तर्हित हो गये। प्रसन्नचित्त इन्द्रादि देवोंने असुरराज बलि तथा उनके प्रधान नायकोंको अमृतका प्रलोभन देकर सहमत कर लिया।

श्रीहरिके निर्देशपर ब्रह्मा आदि सभीने पृथ्वीपरकी समस्त ओषधियों तथा वनस्पतियोंको समुद्रमें डाला। मथानीके लिये मन्दराचलका सहारा लिया और वासुकिनागकी रस्सी बनाकर सिरकी ओर दैत्योंने तथा पूँछकी ओर देवताओंने पकड़कर समुद्रका मन्थन आरम्भ कर दिया, किंतु अथाह सागरमें मन्दरगिरि डूबता हुआ पातालमें चला गया। यह देखकर अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न लीलावतारी भगवान् श्रीहरि कूर्मरूप धारणकर उसे नीचेसे ऊपर उठाकर और थोड़ा अंश समुद्रसे ऊपर रखकर स्वयं भी देवता और असुरोंके साथ रस्सी बने वासुकिनागको पकड़कर मथने लगे। श्रीभगवान्‌के इस लीलामय रूपको देखकर ब्रह्मादि देवगण पुष्पवृष्टि करते हुए स्तुति करने लगे। भगवान्‌का यह कच्छप-रूप विग्रह एक लाख योजन फैला हुआ जम्बूद्वीपके समान विस्तृत था (श्रीमद्भा० ८।७, कूर्म० १।१।२७-२८)।

समुद्र-मन्थनके परिणामस्वरूप कूर्मरूपी नारायणके अनुग्रहसे पारिजात, हरिचन्दन, मन्दार आदि पञ्च कल्पवृक्ष, विष्णुका कौस्तुभमणि, धन्वन्तरि वैद्यके साथ अमृतपूर्ण कलश, चन्द्रमा, कामधेनु, इन्द्रका वाहन ऐरावत हाथी, सूर्यका वाहन सप्तानन उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा, विष्णुका शार्ङ्गधनुष, लक्ष्मी, रम्भादि अप्सराएँ, शङ्ख, वारुणी तथा कालकूट—ये सभी निकले थे।

नारदादि ऋषियों तथा इन्द्रद्युम्न आदिको भगवान् कूर्मने समस्त 'कूर्मपुराण' सुनाया। जिसकी आज तीन संहिताएँ अप्राप्त हैं। मात्र ब्राह्मीसंहिता उपलब्ध है। इसमें सभी वेद और धर्मशास्त्रोंका सार वर्णित है।

कूर्म भगवान्‌का लक्षण वाराहीसंहिताके ६४वें अध्यायमें इस प्रकार वर्णित है—'जिसका स्फटिक तथा चाँदीके तुल्य शुक्ल वर्ण हो, नीलमकी नीलिम रेखोओंसे चित्रित आकार कलशके समान हो तथा वंश (पीठकी हड्डी) सुन्दर और लाल रंगका हो और सरसोंके समान पीले विन्दुओंसे चित्रित हो, ऐसे कूर्मरूप भगवान् यदि घरमें स्थित हों तो राजा-सदृश सम्मान प्राप्त होता है।'

देव-मन्दिरकी प्रतिष्ठा, सरोवर-प्रतिष्ठा, भूमिपूजन तथा प्रासाद-प्रतिष्ठा आदिमें कूर्म-मूर्तिकी स्थापना की जाती है। मार्कण्डेयपुराण तथा वाराहीसंहिता (अ० १४) आदिमें कूर्म-विभाग तथा कूर्म-चक्रका वर्णन है, जिसमें सम्पूर्ण विश्वके देशोंको कूर्मके अङ्गोंमें व्याप्त दिखाकर ग्रहचारके अनुसार फल-निर्देश किया गया है।

मानव-जीवनकी चरितार्थता मोक्ष-प्राप्तिमें

विप्रवर इन्द्रद्युम्न पूर्व-जन्ममें राजा थे। उन्हें भगवान्‌का कूर्मरूप वहुत अच्छा लगता था। वे दिन-रात इस रूपके ध्यानमें निमग्न रहते थे। उन्होंने कूर्म भगवान्‌की ही शरण ग्रहण की। भगवान् तो शरणागतवत्सल हैं ही। जो एक वार भी भगवान्‌की शरणमें आता है, उसे वे सदाके लिये अपना लेते हैं। भगवान्‌ने राजाको गुह्य ज्ञान प्रदान किया, जिससे मरनेके बाद राजा श्वेतद्वीपमें उन दुर्लभ भोगोंको भोगते रहे, जो योगियोंके लिये दुर्लभ हैं। इसके पश्चात् भगवान्‌की आज्ञासे

राजमहलमें पहुँचे तब उसे प्रतीक्षा करती हुई अपनी धर्मभार्या मिली। राजा उसे देखते ही अपराधीकी तरह भयसे काँप उठे। लज्जासे आँखें झुक गयी थीं। पत्नी तो पतिप्राणा थी। पतिके इस झेंपको सहन नहीं कर सकी। बोली—'स्वामिन्! आप तो किसीसे नहीं डरते थे। आज भयसे काँप क्यों रहे हैं? अपनी यह दुर्बलता और किसीके सामने व्यक्त न कीजियेगा।' किंतु दुर्जयके मुखपर ताला लग गया था; वे कुछ बोल न सके। पतिव्रताने अपनी आध्यात्मिक शक्तिसे उर्वशीवाली घटना जान ली। बोली—'स्वामिन्! मैं सब कुछ जान चुकी हूँ। मेरा सुख आपके सुखमें ही निहित है। मैं आपसे अप्रसन्न नहीं हूँ, किंतु आपसे पाप तो हो ही गया है। उसका प्रायश्चित्त होना आवश्यक है, नहीं तो पाप अगले दुःखका कारण बन सकता है।'

अपनी पत्नीका उदात्त आश्वासन पाकर राजा दुर्जयका मन हलका हो गया। वे महर्षि कण्वके आश्रममें गये। उन्होंने महर्षि कण्वसे अपने इस पापका प्रायश्चित्त पूछा। महर्षिने प्रायश्चित्तके विधान बता दिये। प्रायश्चित्त जानकर वे हिमालयपर पहुँचे। वहाँ उनकी दृष्टि एक गन्धर्वपर पड़ी, जिसने एक दिव्य माला पहन रखी थी। उस मालासे उसका सारा शरीर शोभासे जगमगा रहा था। राजाके मनमें आया कि यह माला उर्वशीके अनुरूप है। इस मालासे वह खिल उठेगी। यह विचार आते ही वे माला लेनेके लिये उतावले हो गये। राजा मनके दास तो थे ही। बस लुटेरेकी तरह गन्धर्वपर टूट पड़े। उसे मार-पीटकर माला ले लिये। अब न तो धर्मभार्याकी बातें याद थीं और न प्रायश्चित्तकी ही।

दुर्जय माला लेकर यमुना-तटपर पहुँच गये। किंतु वहाँ उर्वशी नहीं थी। उन्होंने विह्वल होकर पृथ्वीका चप्पा-चप्पा छान डाला, किंतु उर्वशीका कहीं पता न था। विह्वलताने इनकी दशा दयनीय बना दी थी। फिर वे हेमकूटपर पहुँचे, वहाँ भी उर्वशीका पता नहीं था। तब वे देवलोक पहुँचे। वहाँ मेरु पर्वतके मान-सरोवरके दिव्य तटपर उर्वशीको देखा। राजाको बहुत शान्ति मिली। उन्होंने मालासे अपने प्रेयसीका शृङ्गार किया और अपनेको कृतार्थ माना।

यह राजा दुर्जयके पतनकी पराकाष्ठा थी। कहाँ तो अपनी पत्नीके निर्देशसे सत्पथकी ओर अग्रसर हुए थे और कहाँ फिर आ गिरे। उन्हें न तो अपनी पत्नीका ध्यान था, न कण्व ऋषिसे पाप-निवारण-हेतु प्रायश्चित्त पूछनेका ही।

उर्वशीका जीवन वासनामय तो अवश्य था, किंतु वह आगे-पीछे सोच सकती थी। उसने आँक लिया कि उसकी पतिव्रता स्त्री एक-न-एक दिन मुझे अवश्य शाप देगी; क्योंकि मैं उस पतिव्रताकी लगातार अवहेलना कर रही हूँ। यह सोचकर उर्वशीने अपना रूप उत्कट बना लिया। उसका प्रत्येक अङ्ग रोषसे भर गया। आँखें पीली-पीली हो गयीं। दुर्जयका मन उर्वशीकी ओरसे फिर गया। वासनाका भूत उनके सिरसे उतर चुका था। अब वे आत्म-निरीक्षण कर सकते थे। उन्होंने अपनेको बहुत धिक्कारा और कण्व ऋषिके बताये पथपर आ गये। घोर तपस्या कर फिर महर्षि कण्वके आश्रमपर पहुँचे और विनम्रतासे अपनी पतन-कहानी कह सुनायी। महर्षि कण्वने राजाको काशी जानेका आदेश दिया, कहा—'गङ्गामें स्नान और तर्पण कर बाबा विश्वनाथका दर्शन करो।' राजा दुर्जयने काशीमें गङ्गा-स्नान तथा तर्पण कर विधि-विधानसे बाबा विश्वनाथका दर्शन किया तथा पापोंसे मुक्ति पा ली।

(ला० बि० मि०)

जयध्वजकी विष्णुभक्ति

माहिष्मतीके राजा कार्तवीर्यके सौ पुत्र थे। उनमें शूर, शूरसेन, कृष्ण, धृष्ण और जयध्वज नामके पाँच पुत्र महारथी और मनस्वी थे। इनमें प्रथम चार रुद्रके भक्त एवं पाँचवाँ जयध्वज नारायणका भक्त था। इसके अन्य भाइयोंने अपनी कुल-परम्पराके अनुसार शंकरकी ही आराधनाके लिये इनसे अनुरोध किया। जयध्वजने कहा—'नहीं, विष्णुकी ही उपासना मेरा परमधर्म है। पृथ्वीके राजा विष्णुके अंशसे उत्पन्न होते हैं तथा विष्णु ही जगत्पालक हैं और स्वयं उन्हींकी शक्तियाँ ब्रह्मादि-भेदसे सृष्टि, स्थिति और संहार करनेवाली हैं। अतः राजाओंको विष्णुकी ही आराधना करनी चाहिये।' इसपर अन्य भाइयोंने कहा—'मोक्षार्थीको रुद्रकी उपासना करनी

चाहिये।' तब जयध्वजने कहा कि प्राणी सत्त्वगुणद्वारा ही मुक्त होता है और श्रीहरि ही सत्त्वस्वरूप हैं। इस प्रकार विवादका अन्त न होनेपर वे निर्णय करानेके लिये सप्तर्षियोंके पास पहुँचे। वसिष्ठादि मुनियोंने कहा—'जिसे जो देवता अभिमत होता है, वही उसका इष्टदेव है। प्रयोजन-विशेषके लिये पूजित होनेपर विभिन्न देवता मनुष्योंको अभीष्ट प्रदान करते हैं। राजाओंके देवता विष्णु, शिव तथा इन्द्र हैं। ब्राह्मणोंके अग्नि, सूर्य, ब्रह्मा और शंकर हैं। देवताओंके देवता विष्णु तथा दानवोंके शंकर, गन्धर्वों और यक्षोंके सोम, विद्याधरोंकी सरस्वती, साध्योंके सूर्य, किन्नरोंकी पार्वती, ऋषियोंके ब्रह्मा और शंकर, मनुओंके विष्णु, सूर्य और उमा, ब्रह्मचारियोंके ब्रह्म, वानप्रस्थियोंके सूर्य, यतियोंके महेश्वर, भूतोंके रुद्र तथा कूष्माण्डोंके देवता विनायक हैं और गृहस्थोंके लिये सभी देवता उपास्य हैं। यह ब्रह्माजीने स्वयं कहा है। अतः जयध्वजकी विष्णु-आराधना वैध है।' तत्पश्चात् सभी राजकुमार ऋषियोंको प्रणामकर अपनी पुरीमें चले गये।

एक बार विदेह नामक एक भयंकर दानव माहिष्मती पुरीमें आया और शूल लेकर गर्जना करने लगा। जिसके श्रवणमात्रसे कुछने तो प्राण त्याग दिये, कुछ भयभीत होकर भागने लगे। यह देख शूरसेनादि सभी भाई उसपर रौद्रास्त्र, वारुणास्त्र, प्राजापत्यास्त्र, वायव्यास्त्र एवं अन्यान्य अस्त्रोंसे प्रहार करने लगे, पर वह विचलित न हुआ। अन्तमें बुद्धिमान् जयध्वजने सभीको त्रस्त देख भगवान् विष्णुका स्मरण कर वासुदेवप्रेषित हजारों सूर्यके समान प्रकाशमान सुदर्शनचक्रके द्वारा दानवका सिर काट डाला। उस देवशत्रुके मारे जानेपर सभीने जयध्वजकी पूजा की तथा उसका पराक्रम सुनकर महामुनि विश्वामित्र उसे देखनेके लिये आये। महर्षिको आते देख जयध्वजने उन्हें सुन्दर आसनपर बिठाकर उनकी पूजा की और कहा कि आपके अनुग्रहसे ही मैंने इस दानवको मारा है। इसके लिये मैं भगवान् विष्णुकी शरणमें गया और उनकी कृपासे यह दानव-वधकी सफलता मिली। अब मैं भगवान् विष्णुका पूजन करना चाहता हूँ, अतः प्रार्थना है कि इस कार्यमें आप मेरे उपदेष्टा बनें और मेरा यज्ञकार्य सम्पन्न करायें। विश्वामित्रजीने जयध्वजसे विष्णुकी महिमाकी महत्ता बताकर यज्ञ सम्पन्न करवाया। उसके यज्ञमें साक्षात् भगवान् हरिने प्रकट होकर सबको कृतार्थ किया। (म० प्र० गो०)

शङ्कुकर्णसे शङ्कुकर्णेश्वर

प्राचीन कालमें वाराणसीके पिशाचमोचन-क्षेत्रमें शङ्कुकर्ण नामक एक तपस्वी भगवान् रुद्रका ध्यान करते हुए प्रणवका जप किया करते थे। एक समय वहाँ एक अस्थिमात्र शरीरवाला प्रेत आया। उसे देखकर शङ्कुकर्णने पूछा—'तुम कौन हो और कहाँसे आये हो ?' भूखसे पीड़ित उस पिशाचने कहा—'मैं पूर्वजन्ममें धन-धान्यसम्पन्न ब्राह्मण था। परंतु मैंने देवों, अतिथियों तथा गौओंका कभी पूजन नहीं किया, न ही कोई पुण्य किया। एक बार विश्वनाथका दर्शन कर स्पर्शपूर्वक उन्हें नमस्कार किया और तत्क्षण ही मैं मृत्युको प्राप्त हो गया। इस कारणसे मुझे यमलोक नहीं जाना पड़ा, किंतु पुण्यके अभावमें पिशाचयोनि प्राप्त हो गयी। अब मैं बहुत दुःखी हूँ। यदि कोई उपाय हो तो मुझ शरणागतका आप उद्धार करें।' शङ्कुकर्णने पिशाचसे कहा कि भगवान् विश्वनाथका पूजन कर तुम कृतार्थ हो चुके हो, तभी इस स्थानपर आ सके हो, अब एकाग्रचित्त होकर इस पिशाच-मोचन-कुण्डमें स्नान करो, तुम्हारी पिशाचयोनि छूट जायगी। तदनन्तर उसने उस कुण्डमें स्नान किया और स्नान करते ही वह सुन्दर दिव्य शरीर धारण कर विमानपर आरूढ़ हो देवताओंसे पूजित होता हुआ रुद्र लोक चला गया। पिशाचको मुक्त हुआ देखकर मुनि शङ्कुकर्ण प्रसन्न होकर भगवान् महेश्वरका ध्यान करते हुए स्तुति करने लगे। तदनन्तर प्रणवका उच्चारण कर भूमिपर दण्डवत् प्राणिपात किये। उसी समय वहाँ प्रलयकालीन अग्निके समान श्रेष्ठ लिङ्ग प्रकट हुआ और मुनि उसी लिङ्गमें विलीन हो गये—शङ्कुकर्णेश्वर बन गये। स्वल्पान्तरसे कुछ विस्तारपूर्वक यह कथा काशी-खण्डके उत्तरार्ध अध्याय ५४में भी प्राप्त होती है। (म० प्र० गो०)

मत्स्यपुराण अठारह पुराणोंमें एक है। भगवान् विष्णुके मत्स्य-अवतारसे सम्बद्ध होनेके कारण यह मत्स्यपुराण कहलाता है। मत्स्यावतारी महामत्स्यके द्वारा राजा वैवस्वत मनु तथा सप्तर्षियोंको जो अत्यन्त दिव्य एवं लोक-कल्याणकारी उपदेश दिये गये हैं, वे ही मत्स्यपुराणमें संगृहीत हैं। सृष्टिके प्रारम्भमें जब हयग्रीव नामक असुर वेदादि समस्त शास्त्रोंको चुराकर पातालमें चला गया, तब भगवान्ने मत्स्यावतार धारण कर वेदोंका उद्धार किया और एक विशाल नौकाको अपने सींगसे खींचते हुए महाराज मनुको मत्स्यपुराणकी कथा सुनायी थी। दस अवतारोंमें भगवान्का मत्स्य-अवतार सर्वप्रथम कहा गया है।

वैष्णव, शैव, शाक्त, सौर, स्कान्द तथा गाणपत्यादि सभी सम्प्रदायोंके लिये यह मत्स्यपुराण समानरूपसे मान्य, पूज्य एवं आदरणीय है। इस पुराणकी श्लोक-संख्या चौदह हजार है, जो २९१ अध्यायोंमें उपनिबद्ध है। इसके प्रथम अध्यायमें मत्स्यावतारकी कथा है। इसके बाद मनु महाराजका मत्स्य भगवान्के साथ संवाद है। तदनन्तर सृष्टि, तत्त्व-मीमांसा, मन्वन्तर तथा पितृवंशका विस्तृत वर्णन किया गया है। १३वें अध्यायमें वैराज-पितृवंश, १४वेंमें अग्निष्वात्त-पितृवंश तथा १५वेंमें बर्हिषद्-पितृवंशोंका वर्णन है। फिर सात अध्यायोंमें विविध श्राद्धोंका साङ्गोपाङ्ग विवेचन है। तदनन्तर २२ अध्यायोंमें चन्द्रवंशी राजाओंका चरित्र विस्तारसे प्रतिपादित किया गया है। ययाति-चरित्रका वर्णन अत्यन्त रोचक एवं शिक्षाप्रद है, जो प्रवृत्ति एवं भोगमार्गको सर्वथा अनुचित बताकर निवृत्ति एवं त्यागमार्गका आश्रय लेनेके लिये प्रेरित करता है। राजा ययाति अपने पुत्र पुरुको उसकी युवावस्था लौटाते हुए कहते हैं—'वत्स ! मैंने तुम्हारे यौवनके द्वारा अपनी रुचि, उत्साह और समयके अनुसार विविध विषयोंका सेवन किया। विषयोंकी कामना उन विषयोंके उपभोगसे कभी शान्त नहीं होती, अपितु घीकी आहुति पड़नेसे अग्निकी भाँति अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है। इस पृथ्वीपर जितने भी धान्य, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक मनुष्यके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं—ऐसा मानकर शान्त रहना चाहिये' (मत्स्यपु० ३४। १०-११)।

विविध व्रतोंका वर्णन इस पुराणकी महती विशेषता है। ५५वें अध्यायसे १०२ अध्यायतक (४८ अध्यायोंमें) अनेक व्रतानुष्ठानोंकी विधि, विविध दानोंकी महिमा, शान्तिक एवं पौष्टिक कर्म, नवग्रहोंका स्वरूप-वर्णन, विविध स्नान तथा तर्पण-विधिका प्रतिपादन सुन्दर कथाओंके माध्यमसे किया गया है। तदनन्तर प्रयाग-महिमा (१०३—११२ अध्याय), भूगोल-खगोल, ज्योतिश्चक्र, त्रिपुरासुरसंग्राम (१२९ से १४० अध्याय), तारकासुर-आख्यान, नृसिंह-चरित्र, काशी (१८०—१८५ अध्याय) तथा नर्मदामाहात्म्य (१८७—१९४ अध्याय) आदि विस्तारसे वर्णित हैं।

फिर ऋषियोंके नाम-गोत्र तथा वंशका वर्णन है। उसके बाद विविध दानोंका माहात्म्य तथा दानविधि प्रतिपादित है। सात अध्यायोंमें सती सावित्रीकी कथा है और १३ अध्यायोंमें राजधर्मोंका सुन्दर चित्रण है।

इस पुराणके कुछ महत्त्वपूर्ण विषय हैं—पुराणोंकी विषयानुक्रमणिका (अ० ५३), भृगु, अङ्गिरा, अत्रि, विश्वामित्र, वसिष्ठादि गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषियोंके वंश-वर्णन (अ० १९५—२०२), राजधर्मवर्णन (अ० २१५—२४३), विविध शान्ति, यात्राकाल, स्वप्नशास्त्र, शकुनशास्त्र, अङ्ग-स्फुरण, ज्योतिषशास्त्र तथा रत्नविज्ञान आदिका वर्णन (अ० २२८—२३८), विभिन्न देवताओंकी प्रतिमाओंका स्वरूप-लक्षण, प्रतिमा-मान तथा निर्माणविधि, प्रतिमाशास्त्र, देव-प्रतिष्ठा-पीठ-निर्माण-विधि, प्रासाद-गृह-निर्माण-सम्बन्धी वास्तुविद्या तथा शिलाशास्त्र आदि (अ० २५७—२७०)।

सदाचार, दान-धर्म, तीर्थ-व्रत, पूजा-प्रतिष्ठाके विषयमें मत्स्यपुराणमें दुर्लभ विषयोंका संग्रह हुआ है। परवर्ती साहित्यकारों—कालिदासादिका यह प्रतिपाद्य विषय एवं काव्य-शैलीकी दृष्टिसे उपजीव्य तथा आदर्शभूत रहा है। इसमें सूर्यसिद्धान्त तथा

सिद्धान्तशिरोमणिसे भी अधिक सूक्ष्मरूपसे ज्योतिषविषयोंका प्रतिपादन किया गया है। इसके दान-प्रकरण तथा व्रत-प्रकरण परवर्ती ग्रन्थों—दानसागर, अपरार्क, हेमाद्रि, दानकल्पतरु तथा दान-चन्द्रिका एवं व्रत-निबन्ध-ग्रन्थों—व्रतराज, व्रतरत्न, कल्पद्रुम आदिमें यथावत् निर्दिष्ट हैं। प्रयागादि मुख्य तीर्थों तथा उनके माहात्म्यके आख्यान—तीर्थ-प्रकाश, तीर्थ-कल्पतरु आदिमें, गोत्रप्रवराध्यायी—गोत्रप्रवर-निबन्ध-कदम्बमें तथा राजनीतिप्रकरण—राजनीतिरत्नाकर तथा राजनीतिप्रकाश आदिमें संगृहीत हैं। इसी प्रकार इसके नीति-सदाचार-सम्बन्धी श्लोक पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, नीतिवाक्यामृत, शार्ङ्गधरपद्धति आदिमें लिये गये हैं। कच, देवयानी, ययाति-आख्यान, सावित्री-आख्यान, त्रिपुरवध, पार्वती-परिणय, पुरूरवावृत्त तथा विभूति-द्वादशी-व्रत आदिकी कथाएँ अत्यन्त सुन्दर एवं उपयोगी हैं। इस पुराणके श्रवण-पठन तथा माहात्म्यके विषयमें स्वयं मत्स्य भगवान्‌ने कहा है—'यह पु : परम पवित्र, आयुकी वृद्धि करनेवाला, कीर्तिवर्धक, महापापोंका नाशक तथा शुभकारक है। इस पुराणके एक श्लोकके एक पादको भी जो कोई पढ़ता है, वह भी पापोंसे विमुक्त होकर श्रीमन्नारायणके पदको प्राप्त कर लेता है तथा दिव्य सुखोंका भोग करता है।' (मत्स्यपु० २९०। २९-३०)

कथा-आख्यान—

श्रीमत्स्यावतारकी कथा

कृतयुगके आदिमें सत्यव्रत नामसे विख्यात एक राजर्षि थे। ये ही वर्तमान महाकल्पमें श्राद्धदेव नामसे प्रसिद्ध विवस्वान्‌के पुत्र हुए, जिन्हें भगवान्‌ने वैवस्वत मनु बना दिया था। सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलपर उनका शासन था। वे प्रजापर पुत्रवत् स्नेह करते हुए धर्मपूर्वक राज्य करते थे। इस प्रकार जब बहुत समय बीत गया, तब राजा अपने पुत्र इक्ष्वाकुको राज्यका भार सौंपकर स्वयं तपस्याके लिये वनमें चले गये और मलयपर्वतके एक शिखरपर उत्तम योगका आश्रय लेकर घोर तपमें संलग्न हो गये। दस हजार वर्ष बीतनेके पश्चात् भगवान् ब्रह्मा राजाके समक्ष प्रकट हुए और बोले—'**वरं वृणीष्व**'—वर माँगो। तब राजाने पितामहके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'देव ! मैं आपसे केवल एक ही उत्तम वर प्राप्त करना चाहता हूँ, वह यह है कि प्रलयकाल उपस्थित होनेपर मैं चराचर समस्त भूतसमुदायकी रक्षा करनेमें समर्थ हो सकूँ।' यह सुनकर विश्वात्मा ब्रह्मा 'एवमस्तु'—कहकर वहीं अन्तर्हित हो गये और देवताओंने राजापर महान् पुष्पवृष्टि की।

एक दिनकी बात है, राजा सत्यव्रत नित्यकी भाँति कृतमाला नदीमें स्नान-संध्या-तर्पण आदि नित्यक्रियाओंको सम्पन्न कर रहे थे। स्नानके अनन्तर जब वे सूर्यार्घ्य दे रहे थे, तब एक छोटी-सी मछली उनके हाथमें आकर गिरी *। राजाने उसे ज्यों ही जलमें छोड़ना चाहा, त्यों ही वह मानवीय भाषामें करुणाके साथ बोली—'राजन् ! आप बड़े दयालु हैं। मैं आपकी शरणमें हूँ, मुझे आप जलमें न छोड़ें; क्योंकि वहाँ बड़े-बड़े जल-जन्तु रहते हैं, वे मुझे खा जायँगे, अतः मेरी रक्षा करें।' मछलीकी ऐसी कातरवाणी सुनकर राजाने उसे अपने जलभरे कमण्डलुमें रख लिया और आश्रमपर चले आये। एक ही रातमें वह मछली इतनी बढ़ गयी कि कमण्डलुमें रहनेके लिये स्थान ही नहीं रह गया। तब वह राजासे कहने लगी—'राजन् ! इसमें मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है, अतः मुझे किसी बड़े स्थानपर रखिये।' उसकी प्रार्थना सुनकर राजाने उसे एक बावली (तालाब) में छोड़ दिया। उसमें भी रातभरमें बढ़ते-बढ़ते वह दो योजनकी हो गयी। तब राजाने उसे किसी प्रकार गङ्गाजीमें छोड़ा। अन्तमें गङ्गाजीसे वह अगाध समुद्रमें चली गयी। समुद्रमें भी वह निरन्तर बढ़ती चली गयी और पुनः रक्षाके निमित्त प्रार्थना करने लगी।

उन मत्स्यरूपी भगवान्‌की मधुर वाणी सुनकर और इस प्रकारकी विचित्र लीला देखकर राजा सत्यव्रतकी बुद्धि मोहाच्छन्न हो गयी। तब उन्होंने पूछा—'हमें मत्स्यरूपसे मोहित करनेवाले आप कौन हैं? आपने एक ही दिनमें सौ योजन विस्तृत तालाबको आच्छादित कर लिया। ऐसा

* शतपथब्राह्मणके आरम्भमें राजा सत्यव्रतके हाथमें कृतमाला नदीके जलसे उछलकर एक मछलीके आनेकी कथा है। मत्स्य, भागवत, ब्रह्म, कूर्म, वराह तथा पद्मादि प्रायः सभी पुराणोंमें इसी मत्स्यावतारकी कथाका विस्तारसे वर्णन हुआ है।

पराक्रमशाली जल-जन्तु तो हमने न कभी देखा था और न सुना ही था। अवश्य ही आप सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, अविनाशी साक्षात् श्रीहरि हैं। जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही आपने जलचरका रूप धारण किया है। आपको बारम्बार प्रणाम है। अब यह बतानेकी कृपा करें कि आपने यह मत्स्यरूप किस उद्देश्यसे धारण किया है।'

राजाके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर उन्होंने कहा—'राजन्! शीघ्र ही यह चराचर पार्थिव जगत् जलमें मग्न होनेवाला है, तब सम्पूर्ण विश्वका प्रलय हो जायगा। आप सचेत होकर एक विशाल सुदृढ़ नौका बनवाकर उसमें एक अत्यन्त सुदृढ़ रस्सी बाँधकर सवार हो जाइये और उसपर सप्तर्षियोंके साथ बीजभूत ओषधियों एवं जीवोंके सूक्ष्म प्राणतत्त्वोंको लेकर मेरी प्रतीक्षा कीजिये। मैं मत्स्यरूपमें अपने मस्तकपर एक बृहत् शृङ्ग धारण किये हुए आऊँगा, तब आप मुझे पहचान लेंगे। उस समय मेरी सहायतासे ही आप जीवित रह सकेंगे।' राजासे इस प्रकार कहकर वे वहीं अन्तर्हित हो गये।

राजर्षि सत्यव्रत मत्स्य भगवान्‌के बताये हुए उस कालकी प्रतीक्षा करने लगे। उन्होंने एक विशाल नौका तैयार कराकर उसमें सभी बीजों तथा ओषधियोंके प्राणतत्त्वको स्थापित कर सप्तर्षियोंकी सहायतासे उसे महासागरमें ले गये। सृष्टिका विलय प्रारम्भ हो चुका था। धीरे-धीरे सर्वत्र केवल जल-ही-जल हो गया। राजा भगवान्‌के मत्स्यरूपका चिन्तन करने लगे। कुछ समय पश्चात् श्रीहरि मत्स्यरूप धारण करके प्रकट हुए। उनका शरीर स्वर्ण-सा देदीप्यमान तथा अत्यन्त विस्तृत था। वे मस्तकपर सींग धारण किये हुए थे। राजाने उस सींगमें रस्सीके द्वारा नावको बाँध दिया। फिर तो महासमुद्रके मध्य विक्षुब्ध उत्ताल तरंगोंके बीच वह नौका विचित्ररूपसे झूलने लगी। उस समय कहीं भी पृथ्वी और दिशाओंका पता नहीं था।

मत्स्यरूपधारी भगवान् श्रीहरि प्रलय-पयोधिमें विहार करते हुए राजा सत्यव्रत तथा सप्तर्षिगणोंको स्वेच्छानुसार जो धर्मकथा सुनाते थे, वही 'मत्स्यपुराण'के नामसे संगृहीत हुआ।

प्रलयान्तमें भगवान्‌ने हयग्रीव असुरको मारकर उससे वेद छीन लिये और ब्रह्माजीको दे दिये। शनैः-शनैः जल घटने लगा। पृथ्वी प्रकट हुई। भगवान्‌ने ब्रह्माको नयी सृष्टिकी रचना करनेकी आज्ञा दी। राजा सत्यव्रतद्वारा संगृहीत उन ओषधियोंके बीज तथा पशु-पक्षियोंके सहारे पुनः सारा संसार भर गया। यही राजा सत्यव्रत इस प्रकार सातवें वैवस्वत मनु हुए, जिनका समय आज भी चल रहा है।

जयसिंह-कल्पद्रुमके अनुसार चैत्रशुक्ला तृतीया तथा मतान्तरसे पञ्चमीको श्रीमत्स्य-जयन्ती मानी गयी है। भगवान् नारायणने उसी दिन मत्स्यावतार ग्रहण कर प्रलयकालीन जलमें हयग्रीव दैत्यद्वारा अपहृत सम्पूर्ण धर्म-कर्मोंके विधायक वेदोंका उद्धार किया था, धर्मका तथा ज्ञानका उपदेश दिया था और अपनी भक्तवत्सलता प्रकट की थी। मार्गशीर्षशुक्ल-पक्षकी द्वादशी तिथि 'मत्स्य-द्वादशी'के नामसे प्रसिद्ध है। इस दिन मत्स्य भगवान्‌की विशेषरूपसे पूजा करनेका विधान वराहपुराण (अ० ३६) में वर्णित है।

श्राद्धकर्मकी महिमा

प्राचीन कालकी बात है। कुरुक्षेत्रमें कौशिक नामक एक धर्मात्मा ऋषि रहते थे। उनके सात पुत्र थे, जिनके नाम थे—स्वसृप, क्रोधन, हिंस्र, विश्रुत, कवि, वाग्दुष्ट और पितृवर्ती। पिताकी मृत्युके पश्चात् वे महर्षि गर्गके शिष्य हो गये। दैववशात् निरन्तर अनावृष्टिके कारण भीषण अकालका समय उपस्थित हुआ। अकालके कारण जब सातों भाई क्षुधा-शान्तिकी कोई व्यवस्था नहीं कर पाये, तब उनमेंसे एक पितृवर्तीने श्राद्धकर्म करनेकी सम्मति प्रकट की। भाइयोंकी सहमति पाकर उसने समाहित-चित्तसे श्राद्धका उपक्रम किया। उसने छोटे-बड़ेके क्रमसे दो भाइयोंको देवकार्यमें, तीनको पितृकार्यमें, एकको अतिथिकार्यमें नियुक्त किया तथा स्वयं श्राद्धकर्ता बना। कालक्रमानुसार मृत्युके उपरान्त श्राद्धवैगुण्यरूप कर्मदोषसे वे सभी दाशपुर (मन्दसौर) नामक नगरमें बहेलिया होकर उत्पन्न हुए, किंतु श्राद्ध-कृत्यके प्रभावसे उन्हें पूर्वजन्मके वृत्तान्तोंका स्मरण बना रहा तथा उनके बहेलिया होनेपर भी उनकी वृत्तियाँ उत्तम

रहीं। पूर्वजन्मके पुण्यफलसे उनके भीतर वैराग्य उद्दीप्त हुआ और उन्होंने अनशन करके अपने अधम शरीरोंको त्याग दिया। अगले जन्ममें वे कालञ्जर पर्वतपर भगवान् नील-कण्ठके सम्मुख मृगयोनिमें उत्पन्न हुए। इस योनिमें भी उनके भीतर पूर्वकृत श्राद्धकर्म-पुण्यसे पूर्वजन्मकी स्मृति बनी रही। उस योनिमें भी ज्ञान और वैराग्यके प्रबल अनुरोधसे उन लोगोंने तीर्थस्थानमें अनशन करते हुए धर्मपूर्वक प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया। तत्पश्चात् उक्त सातों वेदाभ्यासी जनोंने मानसरोवरमें चक्रवाककी योनिमें जन्म धारण किया। सुमना, कुमुद, शुद्ध, छिद्रदर्शी, सुनेत्रक, सुनेत्र और अंशुमान् नामोंसे ये सातों योगके पारदर्शी जलचर पक्षी हुए। इनमेंसे अल्पबुद्धिवाले तीन तो योगसे भ्रष्ट होकर इधर-उधर भ्रमण ने लगे और शेष चार उसी मानसरोवरमें शान्तभावसे ास करते रहे। उसी समय इन पक्षियोंने एक महान् वशाली पाञ्चालनरेशको अपने क्रीडोद्यानमें स्त्रियोंके ्र विहार करते हुए देखा। उस शोभाशाली राजाको ाकर उन जलपक्षियोंमेंसे एकको, जो पितृभक्त, श्राद्धकर्ता वर्ती नामक ब्राह्मण था, राज्य-प्राप्तिकी आकाङ्क्षा न्न हो गयी। दूसरे दो योगभ्रष्ट पक्षियोंको राजाके दो वसम्पन्न मन्त्रियोंको देखकर मृत्युलोकमें मन्त्रिपद पानेकी श हो गयी। शेष चारों भाई निष्काम थे, अतः वे सभी ो चलकर श्रेष्ठ ब्राह्मण-कुलमें पैदा हुए, किंतु प्रथम तीन भ्रष्ट पक्षियोंमेंसे एक राजा विभ्राजके पुत्ररूपमें ब्रह्मदत्त ासे उत्पन्न हुआ तथा अन्य दो कंडरीक और सुबालक ासे मन्त्रीके पुत्र हुए। राजा विभ्राजकी मृत्युके बाद ब्रह्मदत्त ान् गुणवान् राजा हुआ और उसका विवाह संनति नामकी ्रीसे हुआ। पाञ्चालनरेश ब्रह्मदत्त प्रबल पराक्रमी, सभी स्त्रोंमें प्रवीण, योगज्ञ और सभी जन्तुओंकी बोलीका ज्ञाता । उसकी पत्नी संनति महान् पतिपरायणा और ब्रह्मवादिनी । पवित्र और रमणीय पत्नीके साथ ब्रह्मदत्त सुखपूर्वक य करने लगा।

एक समयकी बात है, राजा ब्रह्मदत्त अपनी पत्नी तिके साथ भ्रमण करनेके लिये उद्यानमें गया। वहाँ उसने प-कलहसे व्याकुल एक कीट-दम्पति (चींटा-चींटी) को ा। वह चींटा, जिसका शरीर कामदेवके बाणोंसे संतप्त हो रहा था, चींटीसे प्रणयकातर होकर कह रहा था—'प्रिये! इस जगत्‌में तुम्हारे समान सुन्दरी स्त्री कहीं कोई भी नहीं है। तुम्हारे कटि, वक्ष, उरकी यौवन-शोभा अवर्णनीय है। तुम्हारी वाणी मधुर, मुस्कान वेधक और तुम्हारी रुचियाँ गुड़ और शक्करके प्रति अतिशय स्पृहणीय हैं। तुम्हारा पातिव्रत्य धर्म भी महिमामय है। तुम सदा मेरे भोजन कर लेनेके पश्चात् भोजन करती हो और मेरे स्नान कर लेनेके बाद ही स्नान करती हो। मेरा कुछ ही समयके लिये परदेश चला जाना तुम्हें दीन बना देता है और मेरा किंचित् क्रुद्ध होना भी तुम्हें अतिशय कातर कर देता है। कल्याणि! बतलाओ तो सही किस कारणसे तुमने मान कर रखा है? मुझसे दूर-दूर रहनेका कारण क्या है?' चींटेके इन उद्गारोंसे और अधिक आग-बबूला होती हुई चींटी कह रही थी—'रे शठ! तुम क्यों मुझसे व्यर्थ बकवाद कर रहे हो? धूर्त! अभी कल ही तुमने मेरा परित्याग करके लड्डूका चूर्ण ले जाकर दूसरी चींटीको नहीं दिया है?' चींटा कह रहा था—'श्रेष्ठ और मनको भानेवाली मेरी प्रिय भामिनि! तुम मेरे इस एक अपराधको क्षमा कर दो। मैं इसकी पुनरावृत्ति कभी नहीं करूँगा। मैंने तुम्हारे रंग-रूपके सादृश्यके कारण भूलसे दूसरी चींटीको मोदक-चूर्ण दे दिया था। मैं सत्यकी दुहाई देता हूँ। तुम्हारे चरण छूता हूँ। मुझपर प्रसन्न हो जाओ।'

राजा ब्रह्मदत्त चींटे-चींटीके संवादको सुनकर हँसने लगे। वस्तुतः ब्रह्मदत्तको विभिन्न पशु-पक्षियों एवं प्राणियोंकी बोली समझ जानेका जन्मजात गुण प्राप्त था; क्योंकि उनके पिताने पुत्र-प्राप्तिके लिये महान् तप किया था और भगवान् विष्णुने ब्रह्मदत्तके रूपमें स्वयं उनके पिताको ब्रह्मदत्त-जैसा पुत्र-प्राप्ति होनेका वरदान दिया था; जो धार्मिक, श्रेष्ठ योगी होनेके साथ-साथ सम्पूर्ण प्राणियोंकी बोलीका ज्ञाता भी हो सकता था। ब्रह्मदत्तको कीट-दम्पतिके बीचमें चलनेवाली प्रणय-लीलाको देखकर जब हँसी आ गयी तो महारानी संनतिने यह समझा कि राजा उनका परिहास कर रहे हैं और उक्त हँसीका रहस्य जाननेके लिये वे हठ करने लगीं। राजाने उन्हें इसका वास्तविक कारण तो बता दिया, पर रानीको इसका विश्वास नहीं हुआ। राजा रानीको सहमत न कर पानेकी स्थितिमें अत्यन्त दुःखी हो गये और स्वयं श्रीहरिके समक्ष

सात राततक आराधना करते हुए बैठे रह गये। भगवान् विष्णुने उन्हें स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—'राजन्! प्रातःकाल तुम्हारे नगरमें घूमता हुआ एक वृद्ध ब्राह्मण जो कुछ कहेगा, उसके वचनोंसे तुम्हें सारा रहस्य ज्ञात हो जायगा।' यों कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये।

वास्तविकता यह थी कि सात चक्रवाक जो किसी जन्ममें सात भाई थे, उनमेंसे तीन तो योगभ्रष्ट होकर अपनी इच्छाओंके अनुरूप क्रमशः राजा ब्रह्मदत्त तथा मन्त्री कंडरीक और सुबालक हुए, पर शेष चारों चक्रवाक उसी ब्रह्मदत्तके नगरमें एक वृद्ध ब्राह्मणके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए थे। वे जातिस्मर बने रहे और धृतिमान्, तत्त्वदर्शी, विद्याचण्ड एवं तपोत्सुक—इन चार नामोंसे लोकमें प्रसिद्ध हो गये थे। बचपनसे ही वैराग्य एवं तपस्याकी प्रवृत्तिके कारण इन चारों भाइयोंने अपने पिता सुदरिद्रसे एक दिन कहा—'पिताजी! हमलोग तपस्या करके परम सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं।' उनके इस कथनको सुनकर महातपस्वी सुदरिद्र दीन वाणीमें बोले—'पुत्रो! यह कैसी बात कर रहे हो? मुझ दरिद्र पिताको छोड़कर तुमलोग वनवासी होना चाहते हो? मेरा परित्याग करनेसे तुम्हें कौन-सा धर्म प्राप्त होगा और तुम्हारी क्या गति होगी? यह तो महान् अधर्म है।' ऐसा कहकर पिताने उन्हें मना कर दिया। यह सुनकर उन बच्चोंने कहा—'तात! हमलोगोंने आपके जीविकोपार्जनका प्रबन्ध कर दिया है। यदि आप प्रातःकाल राजा ब्रह्मदत्तके समक्ष जाकर इस श्लोकका पाठ कीजिये तो राजा आपको प्रचुर धन-सम्पत्ति एवं सहस्रों ग्राम प्रदान करेंगे। श्लोक यह है—

ये विप्रमुख्याः कुरुजाङ्गलेषु दाशास्तथा दाशपुरे मृगाश्च।
कालञ्जरे सप्त च चक्रवाका ये मानसे तेऽत्र वसन्ति सिद्धाः॥

'जो (पहले) कुरुक्षेत्रमें श्रेष्ठ ब्राह्मणके रूपमें, दाशपुर (मंदसौर) में व्याधके रूपमें, कालञ्जर-पर्वतपर मृग-योनिमें और मानसरोवरमें सात चक्रवाकके रूपमें उत्पन्न हुए थे, वे ही सिद्ध (होकर) यहाँ निवास कर रहे हैं।'

तदनन्तर सुदरिद्र वृद्ध ब्राह्मणने वैसा ही किया। ब्राह्मणकी वाणी सुनकर राजा ब्रह्मदत्त अपने दोनों मन्त्रियोंके साथ शोकाकुल होकर भूतलपर गिर पड़े। उन्हें जाति-स्मरत्व हो गया। तीनों भाई जो कर्म-बन्धनमें फँसकर योगसे भ्रष्ट हो गये थे, पुनः योगारूढ हो गये और उन्हें तत्क्षण वैराग्य हो गया। राजाने अपने पुत्रको राज्यका भार सौंप दिया और योगका आश्रय ग्रहण कर परमपदकी प्राप्ति कर ली। रानी संनतिका अमर्ष भी इस घटना-चक्रका भेद पाकर समाप्त हो गया और इस प्रकार योगभ्रष्ट हुए ब्रह्मदत्त और उनके मन्त्रियोंको पुनः श्रेष्ठ गति प्राप्त हो गयी। अहो! श्राद्धकर्मनिष्ठा और पितृभक्तिकी कितनी महिमा है कि कई-कई जन्मोंतक मनुष्यके योग-क्षेमका वहन करनेमें वह आत्यन्तिक रूपसे समर्थ है।

अविमुक्त-क्षेत्रमें शिवार्चन एवं तपः कर्मसे यक्षको गणेशत्व-प्राप्ति

प्राचीन कालमें हरिकेश नामसे विख्यात एक सौन्दर्यशाली यक्ष हुआ था, जो पूर्णभद्रका पुत्र था। हरिकेश महाप्रतापी, ब्राह्मणभक्त एवं धर्मात्मा था। जन्मसे ही उसकी शंकरजीमें प्रगाढ़ भक्ति थी। वह तन्मय होकर उन्हींको नमस्कार करने, उन्हींकी भक्ति करने और उन्हींके ध्यानमें तत्पर रहता था। वह बैठते, सोते, चलते, खड़े होते, घूमते तथा खाते-पीते—सब समय सदा भगवान् शंकरके ध्यानमें ही मग्न रहता था। इस प्रकार पुत्रको शिवमें लीन देखकर उसके पिता पूर्णभद्रने कहा—'पुत्र! मैं तुम्हें अपना पुत्र नहीं मानता, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अन्यथा ही उत्पन्न हुए हो; क्योंकि यक्षकुलमें उत्पन्न होनेवालोंका आचरण ऐसा नहीं होता। तुम गुह्यक हो। राक्षस स्वभावसे ही क्रूर चित्तवाले मांसभक्षी, सर्वभक्षी और हिंसापरायण होते हैं। हे पुत्र! तुम ऐसा कर्म मत करो, क्योंकि तुम्हारे लिये ऐसी वृत्ति नहीं बतलायी गयी है। गृहस्थ भी अन्य आश्रमोंका कर्म नहीं करते। अतः तुम मानव-सुलभ आचरणको त्याग करके यक्षोंके अनुकूल विविध कर्मोंको सम्पन्न करो। यदि तुम इस प्रकार विमार्गपर ही स्थित रहोगे तो मनुष्यसे उत्पन्न हुआ ही समझे जाओगे। अतः यक्ष-जातिके अनुकूल विविध कर्मोंका ठीक-ठीक आचरण करो। देखो, मैं भी निःसंदेह वैसा ही

आचरण कर रहा हूँ।' प्रतापी पूर्णभद्रने अपने पुत्रको इस प्रकार समझानेकी चेष्टा की, परंतु हरिकेशका मन शिवमय हो जानेके कारण पिताके समझानेका उसपर कोई प्रभाव न पड़ा। तब पिता पूर्णभद्र कुपित होकर बोला—'पुत्र! तुम शीघ्र ही मेरे घरसे निकल जाओ और जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहाँ चले जाओ।' पिताके शब्दोंको सुनकर उनकी आज्ञाका पालन करते हुए वह हरिकेश यक्ष अपने गृह तथा सम्बन्धियोंका त्याग कर निकल पड़ा और अविमुक्त-क्षेत्र (वाराणसी) में जाकर अत्यन्त दुष्कर तपस्यामें संलग्न हो गया।

वहाँ वह इन्द्रिय-समुदायको संयमित कर शुष्क काष्ठ और पत्थरकी भाँति निश्चल हो एकटक स्थाणुकी भाँति स्थित हो गया। इस प्रकार निरन्तर तपस्यामें लगे रहनेवाले हरिकेशके एक सहस्र दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये। उसके शरीरपर विमौट जम गया। वज्रके समान कठोर एवं तीखे मुखवाली चींटियाँ उसमें छिद्र कर उसके मांस, रुधिर और चमड़े खा डालीं, जिससे उसका अस्थिमात्र ही अवशेष रह गया। वह कुन्द, शङ्ख और चन्द्रमाके समान चमक रहा था। इतनेपर भी वह भगवान् शंकरके ध्यानमें ही लीन था। इसी समय कैलास पर्वतपर पार्वतीदेवीने भगवान् शंकरसे निवेदन किया—'प्रभो! मैं अविमुक्त-क्षेत्रका दर्शन करना चाहती हूँ; क्योंकि वाराणसी आपको परम प्रिय है।' इस प्रकार भवानीद्वारा निवेदन किये जानेपर भगवान् शंकर पार्वतीके साथ वहाँसे चल पड़े और अविमुक्त-क्षेत्रका उन्हें दर्शन कराते हुए उसकी महिमाका वर्णन करने लगे। तदनन्तर भगवान् शिव और पार्वती चलते-चलते उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ हरिकेश यक्ष घोर तपस्यामें निरत था। तब महादेवजीने गिरिराजकुमारी पार्वतीसे भक्तराज यक्षको कृपापूर्वक वर प्रदान करनेके लिये इस प्रकार कहा—'भामिनि! यह मेरा भक्त है। तपस्यासे इसके पाप नष्ट हो चुके हैं। अतः यह हमलोगोंसे वर प्राप्त करनेका अधिकारी हो गया है।' तदनन्तर भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर पार्वतीदेवी उस गुह्यककी ओर देखने लगीं, जिसका शरीर श्वेत रंगका हो गया था, चमड़ा गल गया था और मात्र अस्थिपञ्जर नसोंसे आबद्ध था। यक्षको इस रूपमें देखकर भगवती पार्वतीने महादेवजीसे कहा—'महादेव! इस घोर तपस्वीको आप वरदान दीजिये, बड़ी कठिन तपस्या कर रहा है।'

भगवान् शंकर और भगवती पार्वतीके आनेकी आहट पाकर वह यक्ष उनके चरणोंपर गिर पड़ा। इस प्रकार उस हरिकेशको भक्तिपूर्वक चरणोंमें पड़ा हुआ देखकर शिवजीने उसे दिव्य चक्षु प्रदान किया, जिससे उसने गणसहित वृषध्वज महादेवजीको सामने उपस्थित देखा। तब भगवान् शिवने प्रसन्न होकर यक्षसे कहा—'यक्ष! मैं तुम्हें पहले वह वर देता हूँ, जिससे तुम्हारे शरीरका वर्ण सुन्दर हो जाय तथा तुम त्रिलोकीमें देखने योग्य हो जाओ।' वरदान पाकर वह यक्ष अक्षत-शरीरसे युक्त होकर भगवान्‌के चरणोंपर प्रणिपात करता हुआ बोला—'भगवन्! मुझे ऐसा वरदान दीजिये कि आपमें मेरी अनन्य एवं अटल भक्ति हो जाय। मैं अक्षय अन्नका दाता तथा लोकोंके गणोंका अधीश्वर हो जाऊँ, जिससे आपके अविमुक्त स्थानका सदा दर्शन करता रहूँ। देवेश! मैं आपसे यही उत्तम वर प्राप्त करना चाहता हूँ।' भगवान् शिवने पुनः वर देते हुए कहा—'यक्ष! तुम जरा-मरणसे विमुक्त, सम्पूर्ण रोगोंसे रहित, सबके द्वारा सम्मानित, धनदाता, गणाध्यक्ष होओगे। तुम सभीके लिये अजेय योगैश्वर्यसे युक्त, लोकोंके लिये अन्नदाता, क्षेत्रपाल, महाबली, महान् पराक्रमी, ब्राह्मणभक्त, मेरे प्रिय, त्रिनेत्रधारी, दण्डपाणि तथा महायोगी होओगे।' उद्भ्रम तथा सम्भ्रम—ये दोनों गण तुम्हारे सेवक होकर तुम्हारी आज्ञासे लोकका कार्य करेंगे।

इस प्रकार उस यक्षको गणेश्वर बनाकर भगवान् शंकर उसके साथ कैलास लौट गये। अविमुक्त-क्षेत्र वाराणसीमें शिवार्चन एवं तपःकर्मकी महिमा कितनी अविस्मरणीय एवं फलप्रदायी है। (मत्स्यपुराण, अ० १८०)

केवल धर्म ही परम कल्याणकारक है, एकमात्र क्षमा ही शान्तिका सर्वश्रेष्ठ उपाय है। एक विद्या ही परम संतोष देनेवाली है और एकमात्र अहिंसा ही सुख देनेवाली है।

लवणाचल-दानकी महिमा

बृहत्कल्पमें धर्ममूर्ति नामक एक राजा हुए थे, जिनके तेजके समक्ष सूर्य एवं चन्द्रमा भी कान्तिहीन हो जाते थे। इन्द्रके परम मित्र उन नरपुङ्गवने हजारों दैत्योंका वध किया। वे अपराजेय, शत्रुहन्ता और अपने इच्छानुसार रूप धारण कर लेनेमें समर्थ थे। उनकी रानी भानुमती त्रिलोकीमें सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी। उसने अपने लक्ष्मीके समान दिव्य रूपसे देवाङ्गनाओंको भी पराजित कर दिया था। दस हजार नारियोंके मध्यमें लक्ष्मीकी भाँति सुशोभित होनेवाली राजा धर्ममूर्तिकी वह पटरानी उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी।

एक बार राजा धर्ममूर्तिने सभामण्डपमें आये हुए अपने पुरोहित महर्षि वसिष्ठसे विस्मयविमुग्ध होकर प्रश्न किया—'भगवन्! किस धर्मके प्रभावसे मुझे सर्वश्रेष्ठ लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई है? तथा किस धर्मके फलस्वरूप मेरे शरीरमें सदा प्रचुरमात्रामें उत्तम तेज विराजमान रहता है?'

वसिष्ठजीने उत्तर दिया—'राजन्! पूर्वकालमें लीलावती नामकी किसी शिवभक्ता गणिकाने चतुर्दशी तिथिके दिन विधिपूर्वक अपने गुरुको स्वर्णमय वृक्ष आदि उपकरणोंसहित लवणाचलका दान दिया था। उन दिनों लीलावतीके घर एक शूद्रजातीय शौण्ड नामक सुनार नौकर था। उसने ही उस गणिकाके लिये श्रद्धापूर्वक सुवर्णद्वारा वृक्षों और प्रधान देवताओंकी मूर्तियोंका निर्माण अत्यन्त कलात्मक एवं उत्कृष्ट-रूपमें किया था और यह धर्मका कार्य है—ऐसा जानकर किसी भी प्रकारका कुछ वेतन भी नहीं लिया था। पृथ्वीपते! उस स्वर्णकारकी पत्नीने भी उन सुवर्ण-निर्मित देवों एवं वृक्षोंकी मूर्तियोंको रगड़कर चमकीला बनाया था और लीलावतीके पर्वत-दानमें बड़ी परिचर्या की थी। उन दोनों शूद्रजातीय स्वर्णकार दम्पतिकी सहायतासे लीलावतीने दान आदि कार्योंको सम्पन्न किया था। कुछ काल बीत जानेपर जब वह गणिका कालधर्म (मृत्यु)को प्राप्त हुई, तब समस्त पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकको चली गयी। वही सुनार, जो दरिद्र होते हुए भी अत्यन्त सामर्थ्यशाली था और जिसने गणिकासे कुछ भी मूल्य नहीं लिया था, इस जन्ममें तुम हो, जो दस हजार सूर्योंके समान कान्तिमान् और सातों द्वीपोंके अधीश्वररूपसे उत्पन्न हुए हो। सुनारकी जिस पत्नीने स्वर्णनिर्मित वृक्षों एवं देवमूर्तियोंको अत्यन्त चमकीला बनाया था, वही यह तुम्हारी पटरानी भानुमती है। मूर्तियोंको उज्ज्वल करनेके कारण इसे इस जन्ममें सुन्दर गौरवर्णका शरीर और भुवनेश्वरीका पद प्राप्त हुआ है। चूँकि तुम दोनोंने ही दत्तचित्त होकर रात्रिमें लवणाचलके दान-प्रसंगमें सहायकरूपसे कर्म किया था, इसीलिये तुम्हें लोकमें अजेयता, नीरोगता और सौभाग्य-सम्पन्न लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई है।'

आश्चर्य है कि जब इस लोकमें मनुष्यद्वारा लवणाचल-दानमें यत्किंचित् सहयोगमात्र करनेसे ही इतने दुर्लभ पदकी प्राप्ति हो सकती है, मनोवाञ्छित कामना पूर्ण हो सकती है, तब जो स्वयं शुद्धान्तःकरण एवं शान्तचित्तसे विधिपूर्वक इस दानको सम्पादित करता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है?

मदनद्वादशीव्रतका अद्‌भुत प्रभाव

एक बार देवताओंद्वारा सम्पूर्ण दैत्यकुलका संहार हो जानेपर दैत्यमाता दितिको अपार कष्ट हुआ। तब वह पृथ्वी-लोकमें स्यमन्तपञ्चक क्षेत्रमें आकर सरस्वती नदीके तटपर अपने पति महर्षि कश्यपकी आराधना करते हुए भीषण तपमें निरत हो गयी। उसने ऋषियोंकी भाँति फलाहार, कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन एवं अनुष्ठान करते हुए वृद्धावस्थाके कष्टों एवं संततिहीनताके शोकको एक साथ सहन करते हुए सौ वर्षोंतक कठोर तप किया, परंतु उसे अभीष्टकी सिद्धि नहीं हो सकी। तत्पश्चात् विफलमनोरथा दितिने वसिष्ठ आदि ऋषियोंसे प्रश्न किया—'ऋषियो! आपलोग मुझे ऐसा व्रत बतलाइये, जो पुत्रशोकका विनाशक तथा इहलोक एवं परलोकमें सौभाग्यरूपी फलका प्रदाता हो।'

तब वसिष्ठ आदि ऋषियोंने दितिको मदनद्वादशी-व्रतके विधानका उपदेश किया। उसे सुनकर दितिने उसका अनुष्ठान किया। उसने नियमानुसार चैत्र शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको श्वेत चावल, श्वेत पुष्प, श्वेत चन्दन और दो श्वेत वस्त्रोंसे अलंकृत एक छिद्ररहित घटकी स्थापना की। वह घट विविध खाद्य-सामग्री एवं यथाशक्ति सुवर्ण-खण्डसे सुशोभित था।

उसके निकट विभिन्न प्रकारके ऋतुफल रखे हुए थे। दितिने घटके ऊपर गुड़से भरा हुआ ताँबेका पात्र रखा और उसके ऊपर कदली-पत्रपर काम और रतिकी रचना करके गन्ध, धूप आदि उपचारोंसे उनकी पूजा की। उसने मात्र एक फलका भोजन किया और भूतलपर शयन करते हुए रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल उसने उस घटको ब्राह्मणको दान करके ब्राह्मणोंको भोजन कराया और स्वयं भी नमकरहित भोजन किया। तदनन्तर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर इस मन्त्रका पाठ किया—

प्रीयतामत्र भगवान् कामरूपी जनार्दनः।
हृदये सर्वभूतानां य आनन्दोऽभिधीयते ॥

इसी प्रकार दितिने प्रत्येक मासमें शुक्लद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान किया। बारह मास बीत जानेके बाद तेरहवें मासमें घृत, धेनु एवं समस्त सामग्रियोंसे युक्त शय्या, रति-कामदेवकी स्वर्ण-प्रतिमा और श्वेत रंगकी दुधार गौका दान किया तथा हवि, खीर और श्वेत तिलोंसे कामदेवके नामोंका उच्चारण करते हुए हवन किया। इस तरह दितिका अनुष्ठान पूर्ण हो जानेपर उसके पति महर्षि कश्यप उसके सम्मुख उपस्थित हो गये। उन्होंने दितिको पुनः रूप-यौवनसम्पन्ना युवती बना दिया और उससे मनोवाञ्छित वर माँगनेको कहा। दितिने कहा— 'पतिदेव ! मैं एक ऐसा पुत्र चाहती हूँ जो इन्द्र एवं समस्त देवताओंका विनाशक हो।'

यह सुनकर महर्षि कश्यपने कहा—'शुभे ! मैं तुम्हें अत्यन्त ऊर्जस्वी और इन्द्रका वध करनेवाला पुत्र प्रदान करूँगा, परंतु तुम आज ही आपस्तम्ब ऋषिके द्वारा पुत्रेष्टि-यज्ञका अनुष्ठान कराओ। तत्पश्चात् मेरे द्वारा तुम्हें इन्द्रके विनाशक पुत्रकी प्राप्ति होगी।' पतिके कथनानुसार दितिने पुत्रेष्टि-यज्ञको सम्पादित किया। यज्ञकी समाप्तिके बाद महर्षि कश्यपने दितिके उदरमें गर्भाधान किया और कहा— 'वरानने ! एक सौ वर्षोंतक तुम इसी तपोवनमें रहती हुई, गर्भिणी स्त्रीके लिये उचित सम्पूर्ण नियमोंका पालन करो और गर्भस्थ शिशुकी रक्षा करो।' ऐसा कहकर महर्षि कश्यप अन्तर्धान हो गये। दिति पतिके कथनानुसार नियमोंका पालन करती हुई उसी तपोवनमें समय व्यतीत करने लगी। इस वृत्तान्तको जानकर इन्द्र देवलोकसे दितिके पास आ गये और दितिकी सेवा करनेकी इच्छा करते हुए उसके पास ही रहने लगे। बाह्यरूपसे विनम्र एवं प्रशान्त प्रतीत होनेवाले इन्द्रकी एकमात्र इच्छा थी कि किसी भी प्रकारसे सौ वर्षके पूर्ण होनेके पूर्व ही यह गर्भ नष्ट हो जाय। इसलिये वे सदैव दितिके छिद्रान्वेषणमें तत्पर रहते थे।

जब सौ वर्षकी अवधिके पूर्ण होनेमें केवल तीन दिन शेष रह गये तो दिति अपने-आपको सफलमनोरथ समझते हुए निद्राके प्रभावसे दिनमें ही पैतानेकी ओर सिरकर सो गयी। ऐसा अवसर पाकर इन्द्रने दितिके उदरमें प्रवेश किया और वज्रके प्रहारसे गर्भके सात टुकड़े कर दिये। उन सातों टुकड़ोंसे सूर्यके समान तेजस्वी सात शिशु उत्पन्न हो गये और रोने लगे। इन्द्रके मना करनेपर भी जब शिशुओंने रोना बंद नहीं किया, तब उन्होंने पुनः वज्रके प्रहारसे एक-एक शिशुके सात-सात टुकड़े कर दिये। इस प्रकार वे टुकड़े उनचास शिशुओंके रूपमें परिणत होकर जोर-जोरसे रोने लगे। इन्द्रके बार-बार '**मा रुदत**' मत रोओ कहनेपर भी उनका रुदन बंद नहीं हुआ। इन्द्रको महान् आश्चर्य हुआ कि वज्रप्रहारके बाद भी शिशुओंके जीवित रहनेका क्या कारण है? अन्ततः ध्यानके द्वारा उन्हें यह ज्ञात हुआ कि दितिके द्वारा किये गये मदनद्वादशी-व्रतके प्रभावसे ही ये बालक अमर हो चुके हैं और उदरमें रहते हुए ही उनकी संख्या उनचास हो गयी है। यह सोचकर इन्द्र दितिके उदरसे बाहर निकल आये। उन्होंने अपने कृत्यके लिये दितिसे क्षमा माँगी और दितिके गर्भमें स्थित उनचास शिशुओंको मरुद्गणकी संज्ञा देते हुए उन्हें देवताओंके समान बताया तथा यज्ञोंमें उनके लिये भागकी व्यवस्था की।

फिर ये दितिके पुत्रोंको विमानमें बैठाकर अपने साथ स्वर्ग ले गये। इस व्रतके अनुष्ठानसे कर्ताके सम्पूर्ण मनोरथ सफलीभूत हो जाते हैं और असम्भव भी सम्भव हो जाता है।

ऐश्वर्य, उन्नति एवं अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषोंको नींद, तन्द्रा (ऊँघना), डर, क्रोध, आलस्य तथा दीर्घसूत्रता (शीघ्र हो जानेवाले काममें अधिक देर लगानेकी आदत)—इन छः दुर्गुणोंका त्याग देना चाहिये।

गरुडपुराण प्रधानतया वैष्णवपुराण है और इसमें विशेषकर पूर्वखण्डमें विष्णु-भक्ति एवं उपासनासे सम्बन्धित साङ्गोपाङ्ग दसों अवयवोंका संनिवेश है। सभी पुराणोंमें इसकी श्लोक-संख्या १९,००० बतलायी गयी है, किंतु वर्तमान समयमें इसमें ७,००० श्लोक ही उपलब्ध होते हैं। गरुडपुराणके सभी संस्करणोंमें परस्पर थोड़ा ही अन्तर है, किंतु वेंकटेश्वर प्रेसकी प्रतिमें ब्रह्मखण्ड सर्वथा अधिक है। आजकल विशेषरूपसे प्रचलित 'गरुडपुराण-सारोद्धार' नामका एक ग्रन्थ उपलब्ध होता है, जो वास्तवमें मूल गरुडपुराणसे सर्वथा असम्बद्ध है और वह कुछ समय पूर्वके राजस्थानके विद्वान् पं० नवनिधिरामजी शर्माकी रचना है। उसमें शंकराचार्यके विवेकचूड़ामणि, श्रीमद्भगवद्गीता, नीतिशतक, वैराग्यशतक एवं गरुडपुराणके श्लोकोंका संग्रह है।

अस्तु! वर्तमानमें प्राप्त गरुडपुराणका विवरण इस प्रकार समझना चाहिये। तीसरे अध्यायमें **'पक्षि ॐ स्वाहा'** इस मन्त्रको तथा गरुडपुराणको मुख्य गारुडी विद्या कहा गया है। पुराणोंमें एक कथा आती है कि जब परीक्षित्को तक्षकके द्वारा डँसनेकी बातका प्रचार हुआ तो सभी बड़े-बड़े मन्त्रवेत्ता झाड़-फूँकके लिये भी चले थे। इन्हींमें एक काश्यप 'भी थे। नागराज तक्षकने रास्तेमें उन्हें देखा। वह उनके प्रभावको जानता था। उसने एक वृद्ध ब्राह्मणका वेष बनाकर उनसे पूछा कि 'आप इतनी उतावलीके साथ कहाँ जा रहे हैं?' तब काश्यपने कहा—'आज तक्षक परीक्षित्को डँसनेवाला है, अतः मैं भी उसके विषको दूरकर उन्हें जीवित करनेके लिये जल्दी-जल्दी जा रहा हूँ।' यह सुनकर ब्राह्मणवेषधारी नागराजने कहा—'तक्षक तो मैं ही हूँ, आप लौट जाइये। मेरे दंशकी चिकित्सा किसीके वशकी बात नहीं है।' तब काश्यपने कहा—'मैं तुम्हारे विषको अवश्य दूर करूँगा। यह विद्याबलसे सम्बद्ध मेरी बुद्धिका पूर्ण निश्चय है।' इसपर तक्षकने कहा—'यदि ऐसी बात है तो मैं इस वृक्षको डँसता हूँ, आपके पास जितनी मन्त्र-शक्ति हो, दिखाइये।' यह सुनकर काश्यपने कहा—'तुम अपना अहंकार प्रकट करो। मैं अभी इस वृक्षको हरा-भरा कर देता हूँ।' काश्यपके ऐसा कहनेपर तक्षकने वृक्षको काटा और वृक्ष आग-जैसा जल उठा। यह देख उसने काश्यपसे कहा—'इस वृक्षको बचा सकते हों तो बचाइये।' इसके बाद काश्यपने उस वृक्षकी भस्मराशिको एकत्र कर ज्यों ही मन्त्र पढ़कर फूँका, त्यों ही उसमेंसे अङ्कुर निकला, फिर तो पल्लव, शाखा, प्रशाखा, पुष्प आदिसे युक्त वह वृक्ष पूर्ववत् ज्यों-का-त्यों खड़ा हो गया।

यह देखकर तक्षकने कहा—'ब्रह्मन्! यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। अब आप यह बतायें कि 'परीक्षित्को जिलानेमें आपका कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा?' तब काश्यपने कहा—'मुझे राजासे अपार धन मिलेगा।' यह सुनकर तक्षकने उनकी इच्छासे दूना धन देकर काश्यपको वापस कर दिया। यह काश्यपका प्रभाव गरुडपुराणके सुननेसे हुआ था, ऐसा गरुडपुराण और महाभारत दोनोंमें दो बार उल्लेख है।

गरुडपुराणके प्रथम अध्यायमें भगवान्के चौबीस अवतारोंका ठीक वही वर्णन प्राप्त होता है, जो श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके तीसरे अध्यायमें है। इसे ब्रह्माजीने व्यासको और व्यासजीने सूत आदि ऋषियोंको बदरीनारायणमें सुनाया था। आगेके अध्यायोंमें नीतिसार, आयुर्वेद, गया-माहात्म्य, श्राद्धविधि, दशावतारचरित्र, सूर्य-सोम-वंश-वर्णन आदि बहुत विस्तारसे वर्णित हैं। बीच-बीचमें इन वंशोंमें उत्पन्न जरासन्ध आदि राजाओंका चरित्र भी निरूपित है। गया-माहात्म्यमें बताया गया है कि पहले गयासुर नामका एक बहुत बलवान् दैत्य था। उसने तपस्यासे सभी देवताओंकी शक्ति नष्ट कर दी थी और उनका सारा अधिकार अपहरण कर लिया था। देवतालोग दुःखी होकर भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। तव उन्होंने कहा—इसका शरीर किसी प्रकार पृथ्वीपर लेटे तो फिर इसका अन्त समझना चाहिये। एक वार वह शिवजीकी पूजाके लिये क्षीरसमुद्रसे कमलोंको लेकर कीकट

देशमें सो रहा था। यह विष्णुमायाका प्रभाव था। उसी समय भगवान् विष्णुने उसे गदासे मार डाला। इसीलिये गयामें विष्णुका नाम गदाधर है और पुरीका नाम गयापुरी है। वहाँ उन्होंने ब्रह्माजीको बुलाकर कहा कि 'यहाँ दैत्यदेहके दोषको दूरकर श्राद्ध आदि कार्य पितरोंके लिये तारक होंगे।' वहाँ उन्होंने रुद्रपद, कनकार्क एवं ब्रह्मा, गायत्री आदिके स्थानोंकी रचना कर फल्गु नामकी एक नदी भी प्रवाहित की। इस गयापुरीका विस्तार पाँच कोसमें है। यहाँ ब्रह्मज्ञानके समान मुक्ति मिलती है। गयाके आस-पासमें पुनपुना नदी, च्यवनाश्रम और राजगृह आदि बड़े ही पुण्यदायक माने गये हैं।

गरुडपुराणके आरम्भमें मनुसे सृष्टिकी उत्पत्ति, ध्रुव-चरित्र एवं द्वादश आदित्योंकी कथा है। बादमें सूर्य-चन्द्र आदि ग्रहोंके मन्त्र, शिव-पार्वतीके मन्त्र, इन्द्रादि दिक्पालोंके मन्त्र, सरस्वतीके मन्त्र और उनकी नौ शक्तियोंका वर्णन है। फिर विष्णु-दीक्षाकी विधि और उसके बाद नव व्यूहोंके अर्चनका विधान निरूपित है। तेरहवें अध्यायमें विष्णु-पञ्जर-स्तोत्र, पंद्रहवें अध्यायमें विष्णुसहस्रनाम-स्तोत्र और चौबीसवें अध्यायमें त्रिपुराका मन्त्र निरूपित है। इसके आगेके अध्यायोंमें 'रत्नसार' ग्रन्थ संक्षेपमें वर्णित है, उसमें कहा गया है कि देवताओंने विश्वविजेता बल नामक दैत्यकी प्रार्थना की, जिसने पहले इन्द्र आदि सभी देवताओंको जीत लिया था। देवताओंने उससे कहा कि 'आप महान् यज्ञके रूपमें अपना शरीर परिणत कीजिये।' बलने देवताओंकी प्रार्थना मानी, तब उसकी विशुद्ध शक्तिसे रत्नोंका भण्डार प्रकट हुआ, जो समुद्र, पर्वत, वन आदिकी खानोंमें प्राप्त होता है। हीरा, मोती, पद्मराग, मरकत, कर्केतन, इन्द्रनील, वैदूर्य, पुलक, पुष्पराग, रुधिरमणि, स्फटिक, विद्रुम आदि मुख्य रत्नों तथा मणियोंके लक्षण दस-बारह अध्यायोंमें यहाँ विस्तारसे बतलाये गये हैं। तदनन्तर सम्पूर्ण ज्योतिषशास्त्र, बृहस्पतिप्रोक्त नीतिशास्त्र और सामुद्रिक शास्त्रका भी वर्णन है। इसमें साँपोंके लक्षण, स्वरोदय-शास्त्र, धर्मशास्त्र, विनायकशान्ति, वर्णाश्रम-धर्म, विविध व्रत, सम्पूर्ण अष्टाङ्ग आयुर्वेद, पतिव्रता-माहात्म्य, सूर्य-चन्द्र-वंश-वर्णन और भगवान्‌की कथा सुनना, कीर्तन करना, उनकी पूजा करना आदि विष्णुभक्तिकी महत्त्वपूर्ण बातें विस्तारसे निरूपित हैं। तदनुसार यज्ञ करनेवाले तथा वेदके पारगामी विद्वान् भी उस गतिको नहीं पाते, जहाँ भक्त पहुँचते हैं। दुराचारी व्यक्ति भी भगवान्‌की भक्तिसे श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होता है। भावसहित दण्डवत् प्रणाम करनेसे चाण्डाल भी पवित्र हो जाता है। 'हरि' शब्दका उच्चारण करनेवाला मोक्षके प्रति परिकर बाँधकर चल देता है। कमलनाभ, पुण्डरीकाक्ष नाम परम पाथेय हैं। जो इन्हें पुरुष-सूक्तसे एक फूल तथा एक बार जल चढ़ा देता है, वह तीनों लोकोंकी पूजा कर लेता है। सभी शास्त्रोंका अवलोकन करनेसे एक ही बात निकलती है कि भगवान् नारायण ही ध्येय हैं। जो मुहूर्तमात्र नारायणका ध्यान करता है वह भी स्वर्गको जाता है। इसलिये प्रतिपल भगवान्‌का स्मरण करना चाहिये। भगवान्‌का ध्यान करनेसे शिशुपाल भी मुक्त हो गया आदिका भी निरूपण है।

इसके आयुर्वेद-विभागमें अर्श, अतिसार, प्रमेह, पाण्डु, शोथ, कुष्ठ, विसर्प, नाडी-व्रण तथा स्त्री-रोगोंकी चिकित्सा है। आगे द्रव्यगुण-विकास भी है। ब्राह्मी घीके सेवनसे मेधाकी वृद्धि होती है। नारायण-तेलसे गठियाकी और अजमोदाके तेलसे गण्डमालाकी शान्ति होती है। इसका आयुर्वेदीय भाग धन्वन्तरीय सुश्रुत, अग्निवेश, हारीत, आत्रेय एवं वाग्भटसम्मत है। इसके आगे कई यन्त्र, मन्त्र आदि प्रयोगों एवं व्याकरण तथा छन्दः-शास्त्रका भी वर्णन है।

इसके अन्तमें ज्ञानामृतसार है, जिसमें कहा गया है कि निर्विकल्प, निराभास, निष्प्रपञ्च विष्णुका ध्यान करनेवाला मुक्त हो जाता है। इसके २३३ वें अध्यायमें ९ श्लोकोंमें मार्कण्डेयकी वह स्तुति है, जिसे पढ़कर मार्कण्डेय मृत्युभयसे मुक्त हो गये थे। उसमें कहा गया है कि मैं शङ्ख-चक्रधारी विष्णुकी शरणमें हूँ, अतः मृत्यु हमारा क्या कर लेगी? इसके बाद उसमें चक्रधर-स्तोत्र है, इसके पढ़नेसे मुक्ति मिलती है। उसके आगे सांख्य एवं वेदान्तका सार निरूपित है। २३७ वें अध्यायमें गीतासार है, किंतु उसमें गीताके श्लोक नहीं हैं। उसमें कहा गया है कि आत्मा असङ्ग है। जैसे दीपक प्रज्वलित होकर घट और पटको प्रकाशित करता है, वैसे ही ब्रह्मज्ञान आत्माके प्रकाशित करनेमें भी सहायता करता है। इससे वह शीघ्र ही साक्षात् ब्रह्मरूप होकर पूर्ण मुक्त हो जाता है।

कथा-आख्यान—

गया-श्राद्धसे प्रेतत्व-मुक्ति

(१)

एक व्यक्ति कहीं जा रहा था, वह था वैश्यवर्णका। रास्तेमें उसकी एक प्रेतसे भेंट हो गयी। दुःख झेलते-झेलते प्रेत बहुत उद्विग्न हो गया था। उसने उससे प्रार्थना की—'महोदय! यदि आप मुझपर दया करके गयामें मेरा श्राद्ध कर दें, तो मेरा इस योनिसे छुटकारा हो जाय और आपको भी स्वर्ग मिल जाय।'

वैश्यका हृदय करुणासे भर गया। उसने बन्धुओंसे परामर्श लेकर गयामें उस प्रेतके उद्देश्यसे श्राद्ध कर दिया। उसके बाद उसने अपने पितरोंका भी श्राद्ध किया। उस श्राद्धसे वह प्रेत और उसके माता-पिता सब-के-सब मुक्त हो गये। इस श्राद्धके फलस्वरूप श्राद्धकर्ता वैश्यको भी स्वर्ग मिला।

(२)

विशालानगरीके राजकुमारका नाम भी विशाल था। विवाह हुए उसके बहुत दिन बीत चुके थे, किंतु उसे कोई संतान न हुई, इससे वह चिन्तित रहता था। एक दिन उसने ब्राह्मणों और संतोंको बुलाया और उनसे पुत्र होनेका उपाय पूछा। ब्राह्मणोंने गयामें श्राद्ध करनेको कहा।

राजाने बहुत श्रद्धा और भक्तिसे गया जाकर श्राद्ध-कर्मको सम्पन्न किया। इसके फलस्वरूप उसे संतानकी प्राप्ति हुई।

एक दिन उसने आकाशमें तीन पुरुषोंको देखा—एकका रंग श्वेत था, दूसरेका लाल और तीसरेका आबनूस काला। यह दृश्य विशालको अद्‌भुत-सा लगा। उसने उनसे उनका परिचय जानना चाहा। श्वेतरंगवाले पुरुषने कहा—'पुत्र! तुम धन्य हो! तुमने पिण्डदान कर हम तीनोंका उद्धार कर दिया है। मैं तुम्हारा पिता हूँ। मुझे इन्द्रलोक प्राप्त हुआ है। यह तो मेरा परिचय हुआ। लाल रंगके जिस व्यक्तिको देख रहे हो, ये मेरे पिताश्री हैं। इनसे बहुत-से पाप हो गये थे। ब्रह्महत्या-जैसा महापातक भी इनसे बन गया था। काले रंगके जो पुरुष हैं, ये मेरे पितामहश्री हैं। इन्होंने क्रोधमें आकर ऋषियोंकी हत्या कर दी थी। इसलिये ये दोनों अवीचिनामक नरकमें घोर यातना सह रहे थे, किंतु गयामें तुम्हारे पिण्डदानसे ये नरकसे मुक्त हो गये हैं। अब हम तीनों-के-तीनों उत्तम लोकोंमें जा रहे हैं। यह सब तुम्हारे श्राद्ध करनेसे ही सम्भव हो सका है। तुम धन्य हो! तुमने 'पुत्र' नामको सार्थक किया है।

इस तरह विशाल धर्म-कार्य कर कृतार्थ हो चुका था। फलस्वरूप वह जीवनभर सुख भोगता रहा और मरनेपर उत्तम लोक प्राप्त किया।

(ला० बि० मि०)

सोमपुत्री जाम्बवती

इस सृष्टिसे पूर्व-सृष्टिकी बात है। जाम्बवती श्रीसोमकी पुत्री थी। श्रीसोम श्रीविष्णुकी सेवामें लगे रहते थे। उनकी पुत्री जाम्बवती भी पिताका अनुसरण करती थी। वह नित्य पुराण सुनती, प्रतिक्षण भगवान्‌का स्मरण करती, उनके चरणोंकी वन्दना करती और उनकी सेवामें लगी रहती। धीरे-धीरे जाम्बवतीके अन्तःकरणमें संसारकी नश्वरता घर करती चली गयी। वह समझ गयी कि सुख-दुःख मायाके खेल हैं। इनसे ऊपर उठकर वह भगवत्प्रेममें आनन्द-विभोर रहने लगी। उसकी वाणीसे भगवान्‌के नाम और गुणका कथन होता रहता। आँखें प्रभुकी प्रतीक्षामें रत रहतीं, कान उनकी मीठी बातें सुननेके लिये उत्सुक रहते, हाथ अर्चनाके सम्भारमें लगे रहते और पैर उनकी प्रदक्षिणामें व्यस्त रहते। हृदयमें एक ही कामना रह गयी थी कि मैं भगवान्‌के चरणोंकी दासी कैसे बन जाऊँ। वह सारा कार्य भगवान्‌के लिये करती थी और सम्पन्न होनेपर उन्हें भगवान्‌को ही समर्पित कर देती थी। ब्राह्मणों और संतोंकी पूजामें उसे रस मिलता था।

एक दिन श्रीसोमने तीर्थयात्राका विचार किया। इस समाचारसे जाम्बवती फूली न समायी। वह पहलेसे ही उन स्थलोंको देखना चाहती थी, जहाँ भगवान्‌ने अपनी लीलाएँ की हैं और जहाँ वे अदृश्य-रूपसे आज भी विराजते हैं। भगवान् श्रीनिवासमें जाम्बवतीका मधुर भाव था। शेषाचलपर अब प्रियतमके दर्शन हो जायँगे, इस आशासे उसका रोम-रोम

खिल उठा। पिताका भी भगवान्‌में पूरा लगाव था। दोनोंकी उत्सुकता अनिर्वचनीय थी। यात्रा प्रारम्भ हो गयी। पिता-पुत्रीके पग बिना बढ़ाये बढ़ रहे थे। धीरे-धीरे कपिल नामक तीर्थ आ गया। सद्‌गुरु जैगीषव्यकी आज्ञासे पिताने मुण्डन कराया, स्नान किया और तीर्थ-श्राद्ध किया। फिर विविध प्रकारके दान दिये। इसके बाद सद्‌गुरुने वेंकटाद्रिका महत्त्व सुनाया। इससे उन यात्रियोंके मनमें श्रद्धाका अतिरेक हो गया। वे लोग बहुत प्रेमसे इस पवित्र पर्वतपर चढ़ने लगे।

सद्‌गुरु जैगीषव्य, नारद, प्रह्लाद, पराशर, पुण्डरीक आदि महाभागवतोंकी कथा सुनाते रहे। नामके रसका आस्वादन करते हुए लोग चल रहे थे। सच पूछा जाय तो वे चल नहीं रहे थे, अपितु आनन्द-वापीमें डूब-उतरा रहे थे और तरंगें स्वयं उन्हें आगे पहुँचाती जाती थीं। जाम्बवती तो मानो आनन्द-वारिधिमें उतराती चली जा रही थी।

चढ़ते-चढ़ते एक मनोरम तीर्थ आया। जाम्बवतीने पूछा—'गुरुदेव! यह कौन-सा तीर्थ है? वह कौन भाग्य-शाली है, जिसपर भगवान्‌ने यहाँ अनुग्रह किया है।' इस प्रश्नसे जैगीषव्य बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'बेटी! इस तीर्थका नाम नारसिंह तीर्थ है। भक्तराज प्रह्लाद प्रेमवश भगवान् श्रीनिवासके दर्शनोंके लिये यहाँ पधारे थे। उनके साथ दैत्योंके कुमार भी थे। वे यहाँ भगवान्‌के दर्शनोंके लिये उत्कण्ठित हो गये थे। उन्होंने प्रह्लादसे कहा था—'मित्र! जब नृसिंह-रूप भगवान् श्रीनिवास कण-कणमें व्याप्त हैं, तब इस जलमें क्यों नहीं दिखायी देते? कृपाकर उनके दर्शन करा दीजिये!'

भक्तराज प्रह्लादने अपने भगवत्प्रेमी मित्रोंको बहुत आदर दिया। इसके बाद उन्होंने भगवान्‌से प्रार्थना की कि 'वे सबको दर्शन दे दें।' भगवान्‌ने संतराजकी प्रार्थना स्वीकार की। दैत्यकुमार दर्शन पाकर कृतकृत्य हो गये और भगवान् 'इस जलमें स्नान करनेसे ज्ञानकी प्राप्ति होगी'—ऐसा वरदान देकर प्रह्लाद तथा दैत्यकुमारोंके साथ सदाके लिये इस तीर्थमें बस गये। उनका यह वास आज भी वैसे ही है और आगे भी वैसा ही रहेगा। मध्याह्नके बाद आज भी चारों ओर जय-जयके शब्द सुनायी पड़ते हैं।

इस इतिहासको सुनकर सबको रोमाञ्च हो आया। सभीको भगवान् श्रीनिवासने दर्शन दिया। जाम्बवतीके मधुरभावके अनुरूप भगवान्‌ने हजारों कामदेवके समान अपना कमनीय रूप दिखाया। देखते ही जाम्बवतीका प्रत्येक अङ्ग शिथिल हो गया, रोमाञ्च हो आया और आँखोंसे प्रेमके अश्रु ढलने लगे। किसी प्रकार टूटे-फूटे शब्दोंमें जाम्बवतीने कहा—'नाथ! श्रीचरणोंमें रख लो।'

अबतक भगवान्‌ने अपने सौन्दर्य-सुधाका ही पान कराया था, अब उन्होंने अपने वचन-सुधाका पान कराते हुए कहा—'जाम्बवति! मैं तुम्हें वेंकटेश मन्त्र बताता हूँ। तुम यहीं रहकर इसका जप करो।' जाम्बवतीको लगा कि उसके कानोंमें अमृत उड़ेल दिया गया हो। वह आनन्दसे बेसुध होने लगी। उसे न अपना पता था, न परायेका। जन्मकी साथिन लाज कहाँ चली गयी, इसका भी उसे पता न था। आनन्दावेशमें वह नाचने लगी। जाम्बवतीके उस नृत्यसे सारा ब्रह्माण्ड रस-विभोर हो उठा। स्वर्गसे अप्सराएँ उतर आयीं और जाम्बवतीके अगल-बगलमें नाचने लगीं। देवताओंने दुंदुभी बजायी और आकाशसे पुष्पकी वृष्टि की।

श्रीसोम महाभाग्यशाली थे। उनकी छत्र-छायामें रहकर जाम्बवतीने भगवान्‌को अपना पति बना लिया। विश्वके नाथने विधिके साथ जाम्बवतीसे विवाह किया। इस तरह जाम्बवतीने मनुष्य-जातिका सिर ऊँचा किया। (ला० त्रि० मि०)

और्ध्वदेहिक दानका महत्त्व

मृतात्माकी सद्‌गति-हेतु पिण्डदानादि श्राद्धकर्म अत्यन्त आवश्यक हैं। पुन्नामक नरकसे पिताको बचानेके कारण ही आत्मज पुत्र कहा जाता है। पुत्रका मुख देखकर पिता पैतृक ऋणसे छूट जाता है और पौत्रके स्पर्शमात्रसे यमलोक आदिका उल्लङ्घन कर जाता है। ब्राह्म-विवाहद्वारा परिणीता पत्नीमें उत्पन्न पुत्र ऊर्ध्व—स्वर्गलोकादिमें पहुँचाता है। यहाँ एक

निःसंतान व्यक्तिके मरणोपरान्त प्रेत होनेकी कथा प्रस्तुत है, जो राजाद्वारा दिये गये पिण्ड-दानको प्राप्त कर स्वर्गको प्राप्त हुआ था।

पहले त्रेतायुगमें महोदयपुर (कन्नौज)का निवासी बभ्रुवाहन नामका एक राजा था। वह यज्ञ, दान, व्रत और तीर्थपरायण था। ब्राह्मणों तथा साधुओंका भक्त वह राजा शील-सदाचारसे युक्त होकर प्रजाका तन-मन-धनसे पालन करता था। एक दिन वह अपनी सेनाके सहित शिकार खेलने गया। उसने नाना प्रकारके वृक्षोंसे युक्त एक सघन वनमें प्रवेश किया। वहाँ उसने एक सुन्दर एवं स्वस्थ मृगको देखकर अपना अमोघ बाण चलाया। बाणसे बिंधा वह मृग उस राजाके बाणको लेकर अदृश्य हो गया। राजा रुधिरसे गीली घास देखता हुआ हिरणके पीछे-पीछे चला और दूसरे निर्जन प्रदेशमें प्रवेश कर गया। भूख-प्याससे व्याकुल राजाने वहाँ एक तालाबके पास पहुँचकर अश्वसहित स्नान किया तथा पानी पीया। वहाँ स्थित वटवृक्षको देखकर छायामें वह विश्राम करने लगा। तभी उसने एक भयंकर प्रेत देखा, जिसका मैला, कुबड़ा, मांसरहित शरीर था, बाल ऊपरको उठे थे, इन्द्रियाँ व्याकुल थीं। घोर विकृत राक्षसको सामने देखकर राजा डर गया और विस्मित हो गया। प्रेत भी निर्जन वनमें राजाको देखकर विस्मित होकर उससे कहने लगा—'पुण्यात्मा राजन्! तुम्हारे शुभ दर्शनोंसे आज मैं धन्य हो गया हूँ और प्रेतभाव छोड़ रहा हूँ।' राजाने कहा—'भाई! तुमने यह भयानक अमङ्गलरूप प्रेतत्व किस कर्मके परिणाम-स्वरूप प्राप्त किया है? मुझे अपनी सब व्यथा बताओ तथा किस दान-धर्मके करनेसे तुम्हारा उद्धार होगा, उसे कहो, मैं अवश्य करूँगा।'

प्रेतने कहा—'राजन्! मैं पूर्वमें विदिशा (भेलसा) नामक नगरमें रहता था। जातिका मैं वैश्य था और मेरा नाम था—सुदेव। मैंने हव्यसे देवताओं और कव्यसे पितरोंको सदा संतुष्ट किया। विविध दान देकर ब्राह्मण-दीन-दुर्बलोंकी सेवा की। वह सब दैवयोगसे निष्फल हो गया। मेरे कोई पुत्र, मित्र अथवा बान्धव नहीं था। अतएव और्ध्वदेहिक क्रियासे वञ्चित होकर मैं प्रेत हो गया। जिनके षोडश मासिक श्राद्ध नहीं होते, वे प्रेत अवश्य बनते हैं, चाहे धर्मात्मा पुत्रवान् ही क्यों न हों? राजन्! सब वर्णोंका बन्धु राजा ही होता है। तुम मेरी और्ध्वदेहिक क्रिया करके मेरा उद्धार करो। मैं तुम्हें मणिरत्न दूँगा। यद्यपि वनमें निर्मल जल और सरस फलोंका अभाव नहीं है, तथापि मैं इनसे वञ्चित रहता हूँ। मैं प्रेतत्वसे अत्यन्त दुःखी हूँ। तुम मेरे लिये वेदमन्त्रोंसे विष्णुकी पूजा एवं नारायणबलि-कर्म करो। ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी प्रतिमा बनवाकर उनका अर्चन, अग्निमें देवताओंको तृप्त करके घी, दही और दूधसे विश्वेदेवोंका पूजन करो। क्रोध-लोभसे रहित होकर वृषोत्सर्ग करनेका विधान है। पश्चात् ब्राह्मणोंके लिये तेरह पदोंका दान, शय्यादान एवं प्रेतघटका दान करो। प्रेतत्व-निवारण-हेतु यह आवश्यक है।' प्रेतके साथ राजाका इस प्रकार वार्तालाप चल ही रहा था कि उसी समय हाथी-घोड़ोंसे युक्त राजाकी सेना पीछेसे आ गयी। सेनाके आनेपर प्रेतने राजाको महामणि देकर प्रार्थना की और वहाँसे विदाई ली। वनसे निकलकर राजाने अपने नगरमें जाते ही प्रेतद्वारा बतायी विधिसे उसका अन्त्येष्टि-कर्म किया, जिसके प्रभावसे वह प्रेतत्व छोड़कर स्वर्गमें चला गया। राजाके द्वारा किये गये श्राद्धसे प्रेतको उत्तम गति प्राप्त हुई। यदि पुत्रद्वारा किये श्राद्धसे पिताको सद्गति प्राप्त हो तो इसमें क्या आश्चर्य है?

(र० दे० मि०)
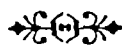
प्रेतकल्पकी कथा

दुर्गम यममार्ग

जो लोग दया एवं धर्मसे रहित होकर सर्वदा पापमें ही आसक्त, उत्तम वेद-शास्त्र तथा सत्संगतिसे विमुख होकर कुसंगतियोंमें रचे-पचे, धनके गर्वसे युक्त होकर अभिमानमें मत्त रहते हैं तथा दैवी-शक्तिरूपी सम्पत्तिसे हीन होकर राक्षसी प्रवृत्तिसे प्रभावित एवं विषयोंमें लीन रहते हैं और जिनका मन मायाजालमें फँसा हुआ है, ऐसे लोग तथा अन्य पापी जन भी यम-यातना सहते हुए दुःखपूर्वक यमलोक जाते हैं तथा भयंकर नरकोंमें गिरते हैं। इसके विपरीत जो मनुष्य दान

देनेवाले तथा परोपकारी हैं, वे मोक्षको प्राप्त करते हैं।

मनुष्य संसारमें जन्म लेकर अपने पूर्वजन्मकृत पुण्य और पापके प्रभावसे अच्छे तथा बुरे फलोंको भोगता है—

सुकृतं दुष्कृतं वापि भुक्त्वा लोके यथार्जितम्।

(गरुडपुराण, धर्म० प्रे० १५।४)

शरीरमें कोई भी व्याधि पूर्वजन्मकृत अशुभ कर्मके संयोगसे उत्पन्न होती है। विपत्ति और व्याधिसे प्रभावित प्राणी अपने जीवनसे अधीर हो जाता है। युवावस्थामें ही वृद्धावस्थाको प्राप्त होकर गृह-स्वामीद्वारा निरादरपूर्वक प्रदत्त आहारको श्वान-सदृश भोजन करता है। मन्दाग्नि एवं व्याधिके कारण उसका आहार अत्यल्प हो जाता है, उठने-बैठनेकी शक्ति क्षीण हो जाती है तथा वह चेष्टाहीन हो जाता है। जब बलवान्, विषैले तथा भयंकर सर्पके समान काल अचानक प्राणीके सिरपर आ धमकता है, तब कफसे स्वर-नलियाँ बंद हो जाती हैं, श्वास लेनेमें कष्ट होता है, उसके कण्ठमें घुर-घुराहट होती है। ऐसी स्थितिमें विस्तरपर पड़ा, स्वजनोंसे घिरा आसन्न प्राणी बुलानेपर भी नहीं बोलता। पापी प्राणीको प्राणवायु निकलते समय भयंकर क्रोधसे रक्त-नेत्रवाले, भयानक मुख, दण्ड तथा पाश लिये, नग्न-तन एवं दाँतोंको पीसते हुए टेढ़े मुखवाले, विशाल नखरूपी शस्त्रवाले, अत्यन्त काले शरीरवाले, ऊपरको उठे हुए केशोंवाले भयंकर यमदूत दृष्टिगत होते हैं। उनके डरसे उसके प्राण अपने स्थानसे चलायमान हो जाते हैं। वह मल-मूत्रका त्याग करने लगता है। उस समय मरते हुए पापीको एक पल भी कल्पके समान व्यतीत होने लगता है। सैकड़ों बिच्छुओंके डंक मारनेसे जो वेदना होती है, वैसी ही पीड़ा उसे उसके श्वासोंके निकलते समय होती है। उस प्राणीके मुखसे फेन तथा लार गिरने लगता है। पापियोंकी प्राणवायु गुदामार्गसे बहिर्भूत होती है। वह पापी हाय-हाय ! करता हुआ स्थूल शरीरको छोड़कर अङ्गुष्ठमात्रका शरीर धारण करके मोहके वशीभूत होकर अपने घरको देखता रहता है तथा उसी समय यमदूतोंद्वारा पकड़ लिया जाता है। यमदूत उस अङ्गुष्ठमात्र शरीरको यातनारूपी शरीरसे ढककर गलेमें रस्सी बाँधकर इस प्रकार ले जाते हैं, जैसे अपराधी पुरुषको राजाके सिपाही पकड़कर ले जाते हैं। इस प्रकार मार्गमें ले जाते हुए वे यमदूत उसे धमकाते हैं तथा बार-बार नरकोंके भयानक दुःखोंका वर्णन करते हुए कहते हैं—

शीघ्रं प्रचल दुष्टात्मन् गतोऽसि त्वं यमालयम्॥
कुम्भीपाकादिनरकांस्त्वां नेष्यामश्च मा चिरम्।

(गरुडपुराण, धर्म० प्रे० १५।२७-२८)

'अरे दुष्टात्मन्! तू शीघ्र चल, तुझे यमलोक जाना है और कुम्भीपाक आदि नरकोंको भोगना है। अतः तू देर न कर।' यमदूतोंकी ऐसी भयंकर वाणी एवं अपने बन्धु-बान्धवोंके विलापको सुनता हुआ पापी जीव हाय-हाय करने लगता है। यमदूत उसे प्रताड़ित करते रहते हैं। उसका हृदय उन यमदूतोंकी प्रताड़नासे विदीर्ण हो जाता है। अपने द्वारा किये गये पापकर्मोंके स्मरणमात्रसे काँपते हुए पापीको यममार्गमें कुत्तोंसे कटाया जाता है। पापी जब मार्गमें प्यास और क्षुधासे पीड़ित हो जाता है, सूर्यके तेजसे तप्त बालूमें उसे चलना पड़ता है, छायारहित मार्गमें चलनेसे वह असमर्थ हो जाता है, तब यमदूत उसे कोड़ोंसे मार-मार कर बाँधकर घसीटते ले जाते हैं। ऐसे कठिन मार्गमें चलनेसे वह थककर गिर-गिर पड़ता है, फिर उठता है और पुनः मूर्च्छित हो जाता है। इस प्रकार अनेक यातनाएँ सहता हुआ वह पापी जब अंधकारमय यमलोकमें पहुँचता है, तब यमदूत उसे घोर तथा भयंकर नरककी यातनाएँ दिखाते हैं। इसके बाद पापी यमलोकमें यमराजके दर्शन कर एवं घोर नरककी यातनाको देखकर एक मुहूर्तमें उनकी आज्ञासे फिर मनुष्य-लोकमें आता है और अपने पूर्व-शरीरमें पुनः प्रवेश करनेकी इच्छा करता है; परंतु यमदूत उसे पाशमें बाँधे रहते हैं, इस कारण वह प्रवेश नहीं कर पाता। वह भूख-प्याससे अधिक व्याकुल एवं विकल होकर दुःसह दुःख सहन करता हुआ रोता है। उस समय मृत्युकालमें दिये हुए दान तथा स्वजनोंद्वारा मृत्युके स्थानपर दिये गये पिण्डको वह खाता है, तब भी उसे तृप्ति नहीं होती है। पापी प्राणियोंको पुत्रोंद्वारा दिये हुए दान, श्राद्ध और जलाञ्जलिसे तृप्ति नहीं होती। इसीसे पिण्डदान देनेपर भी वे भूख तथा प्याससे व्याकुल रहते हैं। जिनका उचित रूपसे पिण्डदान नहीं होता, वे निर्जन वनमें प्रेतयोनिमें कल्पभर रहकर दुःखपूर्वक भ्रमण करते हैं। इसलिये दस दिनतक पुत्रद्वारा पिण्डदान किया जाना नितान्त अपेक्षित है। प्रेतका शरीर दस दिनके पिण्डदानसे निर्मित होता है, तब उसमें चलनेकी सामर्थ्य होती है। पूर्व-शरीरके दग्ध हो जानेपर भी पुत्रद्वारा दिये हुए

पिण्डोंसे उस जीवको देह मिलती है। हाथभरका शरीर प्राप्त कर वह जीव यमलोक-मार्गमें शुभाशुभ कर्मोंके फलोंको भोगता रहता है।

शरीर-निर्माण—अब जिस प्रकार दस दिनतक दिये गये पिण्डोंसे शरीर बनता है, उसका संक्षेपमें उल्लेख किया जाता है। पहले दिनके पिण्डसे सिर तथा गर्दन, दूसरेसे कंधा, तीसरेसे हृदय, चौथेसे पीठ, पाँचवेंसे नाभि, छठेसे कमर, गुदा, जननेन्द्रिय, सातवेंसे मांस एवं हड्डी, आठवें एवं नवेंसे जंघा तथा पैर दसवेंसे उस शरीरमें क्षुधा तथा तृष्णाकी उत्पत्ति होती है।

भूख और प्याससे प्रभावित होकर वह प्रेत पिण्डसे उत्पन्न शरीरका आश्रय लेकर ग्यारहवें तथा बारहवें दिनके श्राद्धका भोजन करता है तथा तेरहवें दिन यमदूतोंसे बंदरके समान बँधा हुआ यमलोक जाता है। यहाँसे यमलोककी दूरी छियासी हजार योजन है। यथा—

षडशीतिसहस्राणि योजनानां प्रमाणतः।
यमलोकस्य चोर्ध्वं वै अन्तरा मानुषस्य च॥
(गरुडपुराण, धर्म० प्रे० १५। ३)

इस जीवको यमदूतोंके साथ प्रतिदिन २४ घंटेमें क्रमशः २४७ योजन निरन्तर चलना पड़ता है। इस मार्गसे चलनेवालेको अन्तमें (सोलह) गाँव मिलते हैं। उन्हें पार करनेके बाद जीव धर्मराजके नगरमें पहुँचता है। उन गावोंके नाम हैं—(१) सौम्यपुर, (२) सौरिपुर, (३) नगेन्द्रभवन, (४) गन्धर्व, (५) शैलागम, (६) क्रौञ्च, (७) क्रूरपुर, (८) विचित्रभवन, (९) बह्वापद, (१०) दुःखद, (११) नानाक्रन्दनपुर, (१२) संतप्तभवन, (१३) रौद्रनगर, (१४) पयोवर्षण, (१५) शीताढ्य और (१६) बहुभीति। इनके आगे यमपुर है। यमदूतोंके पाशमें बँधा हुआ वह पापी जीव मार्गमें विलाप करता हुआ अपने गृहको त्यागकर यमलोक जाता है।

यमलोकका मार्ग अत्यन्त कष्टकारक है। 'वृक्षोंकी छाया उसमें बिलकुल नहीं है, जिसके नीचे जीव क्षणमात्रके लिये भी विश्राम कर सके। वहाँ अन्न आदि कुछ भी नहीं है, जिसे खाकर जीव अपने प्राणकी रक्षा कर सके।'

वृक्षच्छाया न तत्रास्ति यत्र विश्रमते नरः।
तस्मिन् मार्गे न चान्नाद्यं येन प्राणान् प्रपोषयेत्॥
(गरुडपु०, धर्म० प्रे० ३३। ६-७)

वहाँ कहीं जल भी दिखायी नहीं देता, जिससे प्याससे व्याकुल जीव अपनी प्यास बुझा सके। बारहों सूर्य उस लोकमें प्रलयकालके समान तपते रहते हैं। वहाँ जीवको वायु और शीतसे अधिक कष्ट होता है। कहीं बड़े-बड़े भयानक और विषैले साँपोंसे उसे कटाया जाता है तो कहीं काँटोंसे बिंधा जाता है। कहीं-कहीं चिग्घाड़ते सिंह, व्याघ्र एवं खूँखार कुत्तोंसे खिलाया जाता है। कहीं विषैले बिच्छुओंसे डंक दिलवाया जाता है और प्रज्वलित अग्निसे जलाया जाता है। तत्पश्चात् उस जीवको एक असिपत्र-वनमें, जो दो हजार योजन विस्तारका है, उसमें प्रवेश कराया जाता है। उस वनमें कौआ, उल्लू, गीध तथा भयानक मक्खियाँ रहती हैं एवं उस जंगलके चारों ओर प्रचण्ड दावाग्नि लगी रहती है। डंकयुक्त मक्खियोंके काटने तथा आगकी तापसे जब वह जीव वृक्षके तले जाता है, तब उसका शरीर तलवारके सदृश तेज उन वृक्षोंके पत्रोंसे छिन्न-भिन्न हो जाता है। उसे कहीं पहाड़परसे नीचे और कहीं अँधेरे कुएँमें गिराया जाता है, कहीं छुरोंकी तेज धारके समान तीक्ष्ण मार्गसे पैदल चलाया जाता है तो कहीं नुकीले कीलोंके ऊपरसे चलाया जाता है। कहीं जलमें, कहीं जोंकसे भरे हुए कीचड़में गिराकर उनसे कटाया जाता है तो कहीं अन्धकारयुक्त भयंकर गुफाओंमें गिराया जाता है। कहीं जलते हुए कीचमें गिराया जाता है। कहीं तवेके समान जलती हुई पृथ्वीपर एवं कहीं जलते हुए बालूपर चलाया जाता है, तो कहीं अंगारके समूहमें झोंका जाता है, कहीं जहरीले धुएँसे व्याप्त मार्गमें चलाया जाता है। मार्गमें कहीं-कहीं रक्त और गरम जलकी वर्षा होती है तो कहीं पत्थर और आगके टुकड़ोंकी वर्षा होती है। कहीं विष्ठासे, कहीं रक्तसे तथा कहीं पीबसे भरे हुए कुण्ड हैं, जिनमें जीवको रहना पड़ता है।

वैतरणी नदी—मध्यमार्गमें एक वैतरणी नामकी भयंकर नदी है, जिसे देखनेमात्रसे ही जीव भयभीत हो जाता है। वह नदी एक सौ योजन चौड़ी है, जिसके किनारे हड्डियोंसे बने हुए हैं और जिसमें पीब-रक्त भरा हुआ है, उसमें मांस, पीब तथा लहूके कीचड़ भरे हैं, वह बहुत ही गहरी एवं दुस्तरणीय है।

इसमें केश ही सेवार तथा घासके समान हैं तथा वह घड़ियालोंसे पूर्ण है। वज्रके समान मजबूत चोंचोंवाले कौए तथा गिद्धों एवं मांस भक्षण करनेवाले सैकड़ों तरहके पक्षियोंका उसमें निवास है। अग्निकी ज्वालासे तप्त घी जैसे कड़ाहेमें खौलता है, उसी प्रकार उस वैतरणी नदीका जल भी पापीको आते हुए देखकर खौलने लगता है। वह नदी सुईके समान मुँहवाले कीड़ोंसे भरी हुई है। सूँस, मगर, घड़ियाल, जोंक, मछली तथा अन्य मांसाहारी जल-जन्तुओंसे वह नदी भरी हुई है। उस नदीमें भयंकर रूपसे विलाप करता हुआ जीव छोड़ दिया जाता है—और जीव 'हे पुत्र! हे भाई! हे पिता!' आदि कह-कहकर बार-बार पुकारता रहता है। वह पापी जीव जब भूख-प्याससे तड़पने लगता है तब खाने-पीनेको वही मांस और खून उसे मिलता है। उसमें गिरे हुए जीवकी रक्षा करनेवाला कोई भी प्राणी वहाँ नहीं रहता। नदीके हजारों भँवरोंमें पड़कर वह पापी जीव पातालके नीचे जाता है, पलभरमें फिर वही जीव ऊपरको आता है। वह नदी पापी जीवोंके लिये ही बनायी गयी है। असह्य दुःखको देनेवाली ऐसी नदीका न आर है न पार। यममार्गमें यमदूत, इस तरह विविध प्रकारके कठिन दुःखोंको भोगते, रोते, चिल्लाते उस प्राणीको—किसीको पाशमें बाँधकर, किसीको शस्त्रोंसे भेदकर एवं किसीको अंकुशोंसे खींचकर, किसीके कान-नाकमें डोरी डालकर, किसीको कालपाशमें बाँधकर एवं किसीको कौओंके समान खींचते हुए, किसीके पैर, भुजा तथा गर्दनमें साँकल बाँधकर तथा लोहेका भारी बोझ उनपर लादकर रास्तेमें उनसे चलनेके लिये कहते हैं और यमलोक ले जाते हैं। भयानक यमदूत जब उसे मुद्गरसे मारते हैं, तब पापी जीव मुँहसे रुधिर गिराता और फिर उसे ही खाता है। वहाँ वह अपने द्वारा किये गये कर्मोंके लिये ग्लानि करता हुआ—'हा पुत्र! हा पौत्र! हा बन्धु!' ऐसा कहकर विलाप करता हुआ अत्यन्त दुःखी होता है और 'मनुष्यका जन्म प्राप्त कर मैंने कुछ भी धर्म नहीं किया' ऐसा सोचता है।

आतुर-कालका दान तथा भगवन्नाम-स्मरण

बुद्धिजीवियोंको चाहिये कि वृद्धावस्थामें जब अपनी शरीर रोगोंसे ग्रस्त हो जाय, ग्रह-स्थिति विपरीत दीखने लगे, प्राणके शब्द (कान बंद करनेपर जो शब्द सुनायी देता है वह) न सुनायी देने लगे तब जान ले कि अब इस शरीरका अन्तिम समय अवश्य है। उस स्थितिमें उन्हें निर्भय होकर ज्ञात अथवा अज्ञातमें किये हुए पापोंका प्रायश्चित्त कर डालना चाहिये। जब मृत्युका आतुर-काल आये, तो स्नान करके शालग्राम-रूपी भगवान् विष्णुका सविधि पूजन करना चाहिये। भगवान्के प्रसादका वितरण तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये। इसके पश्चात् अष्टाक्षर अथवा द्वादशाक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये एवं विष्णु तथा शिवजीके नामको जपना तथा उनके नामोंके कीर्तनका श्रवण करना चाहिये, कारण भगवन्नामके श्रवण तथा कीर्तनसे समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं।

भाई-बन्धुओंको मृत्युकालमें प्राणीके पास जाकर सोच न करके भगवान्के पवित्र नामको बार-बार स्मरण करना-कराना चाहिये। बुद्धिजीवियोंको, भगवान्के इन नामों (मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, कृष्ण, बुद्ध एवं कल्किका) स्मरण करना तथा कराना चाहिये। उन्हें ही बन्धु कहना चाहिये। जो रोगीके पास जाकर इन नामोंका उच्चारण करते-कराते हैं, जिनकी वाणीमें कृष्णका मङ्गलमय नाम रहता है, उनके करोड़ों महापाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

आतुर-काल (मरणकाल) में आठ महादान अवश्य करने चाहिये। आठ प्रकारके दान ये हैं—तिल, लौह, सुवर्ण, रूई, नमक, सप्तधान्य (धान, जौ, गेहूँ, मूँग, उड़द, काकुन, चना), गौ एवं भूमि। प्रेतकी मुक्तिके लिये सुवर्णका दान देना चाहिये। सुवर्ण-दानसे यमलोकमें न जाकर प्राणी स्वर्गलोकमें जाता है और बहुत दिनोंतक सत्यलोकमें रहकर फिर इस लोकमें राजा तथा रूपवान्, धर्मात्मा, बोलनेमें प्रवीण, लक्ष्मीवान् और बड़ा ही पराक्रमी होता है। स्वस्थचित्तसे एक गोदान देनेसे जो फल होता है, वही आतुर-समयमें सौ गौ देनेसे तथा मरते समय अचेतनावस्थामें हजार गौ देनेसे होता है। अपना कल्याण चाहनेवालेको चाहिये कि वह कुपात्रको दान न दे। भूमिपर मनुष्य जो-जो दान करता है, यमलोक-मार्गमें वह आगे-आगे प्राप्त होता है। जो पुत्र आतुर-समयमें भूमिपर पिताके हाथसे दान दिलाता है, उस धर्मात्मा पुत्रकी देवता भी पूजा करते हैं। पूर्वजन्मके किये हुए

दानसे यहाँ बहुत धन मिला है। इसलिये ऐसा विचार कर धर्मार्थ दान देना चाहिये। धर्मसे कामना पूर्ण होती है और धर्मसे ही मोक्ष मिलता है। इसलिये धर्म-कार्य करने चाहिये।

यमराज

विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञासे भगवान् सूर्यके श्राद्धदेव मनु, यमराज एवं यमुना तीन संतानें उत्पन्न हुईं। द्वादश भागवताचार्योंमें परम भागवत यमराज जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंके निर्णायक हैं। दक्षिण दिशाके इन लोकपालकी संयमनीपुरी पापियोंके लिये अत्यन्त भयंकर है। इन महिषवाहन दण्डधरकी यम, मृत्यु, धर्मराज, वैवस्वत, अन्तक, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, वृकोदर, परमेष्ठी, चित्र तथा चित्रगुप्त—इन चतुर्दश नामोंसे आराधना होती है। इनका तर्पण भी इन्हीं नामोंसे किया जाता है।

चार द्वारों, सात तोरणों तथा पुष्पोदक, वैवस्वती आदि सुरम्य नदियोंसे पूर्ण अपनी पुरीमें पूर्व, पश्चिम एवं उत्तरके द्वारोंसे प्रविष्ट होनेवाले पुण्यात्मा प्राणियोंको यमराज शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी, चतुर्भुज-नीलाभ भगवान् विष्णुके रूपमें अपने महाप्रासादमें रत्नासनपर दर्शन देते हैं। दक्षिण-द्वारसे प्रवेश करनेवाले पापियोंको वे तप्त-लौह-द्वार तथा पूय, शोणित एवं क्रूर पशुओंसे पूर्ण वैतरणी नदी पार करनेपर प्राप्त होते हैं। उन्हें द्वारके भीतर आनेपर वे अत्यन्त विस्तीर्ण सरोवरोंके सदृश नेत्रवाले, धूम्रवर्ण, प्रलयमेघके समान गर्जना करनेवाले, ज्वालामय रोमधारी, तीक्ष्ण प्रज्वलित दन्तयुक्त, सँड़सी-जैसे नखोंवाले, चर्मवस्त्रधारी, कुटिलभृकुटि, भयानक वेशमें दीखते हैं। वहाँपर मूर्तिमान् व्याधियाँ, घोरतर पशु और यमदूत उपस्थित मिलते हैं।

दीपावलीसे पहले दिन यम-दीप देकर तथा दूसरे पर्वोंपर यमराजकी आराधना करके मनुष्य उनकी कृपाका भाजन बनता है। ये निर्णेता प्राणियोंसे सदैव शुभकर्मकी आशा करते हैं। दण्डके द्वारा जीवको शुद्ध करना ही इनका प्रमुख कार्य है। (शि० दु०)

सर्वोपरि साधना—वाक्-संयम

महर्षि वेदव्यासके सारगर्भित चिन्तनको विश्व-कल्याणकी कामनासे लिपिबद्ध करनेके कार्यमें सर्वविघ्न-विनाशक श्रीविनायक तन्मयतापूर्वक लगे हुए थे। महाभारत-ग्रन्थके लेखनका कार्य आज पूर्ण हो रहा था। विघ्नेश्वरने अपनी लेखनीसे 'इति' लिखते हुए अन्तिम भूर्जपत्र रख दिया। दोनोंके मुखमण्डल इस सारस्वत-साधनाके समापनसे दीप्तिमान् हो उठे थे।

सहसा महर्षि वेदव्यासने कहा—'लम्बोदर ! प्रणम्य है आपका परिश्रम, जिसके बलपर मैं अपने चिन्तनको मूर्तरूप दे पाया, परंतु इससे भी वन्दनीय है आपका मौन। सुदीर्घकालतक हमारा आपसे सम्पर्क रहा। इस अवधिमें मैं निरन्तर बोलता भी रहा, परंतु आपके मुखसे मैंने कभी एक भी शब्द नहीं सुना और अब भी आप मौन हैं ?'

भगवान् गणेशने मधुर वाणीमें प्रत्युत्तर देते हुए कहा—'महर्षि बादरायण ! दीपककी लौका आधार तैल होता है। तैलके अनुपातसे ही दीपककी लौ प्रखर और क्षीण होती रहती है। तैलका अक्षय भण्डार किसी दीपकमें नहीं होता। देव, मानव या दानव सभी तनुधारियोंकी प्राणशक्तिका एक मापदण्ड होता है, जिसके अनुसार वह किसीमें कम और किसीमें अधिक होती है, परंतु असीमकी गणनामें कोई नहीं आता। प्राणशक्तिका उपयोग भी अपने विवेकपर आधारित है—कौन कितना व्यय करता है और कौन कितना संग्रह। जो संयमपूर्वक इस शक्तिको दुरुपयोगसे बचा लेते हैं, वे वाञ्छित सिद्धिको प्राप्त कर लेते हैं। इसका मूलाधार है वाणीका संयम। जो अपनी वाणीको वशमें नहीं कर पाते, उनकी जिह्वा अनावश्यक बोलती रहती है। अर्थहीन शब्द विग्रह और द्वेषकी जड़ें हैं, जो हमारी प्राणशक्तिके मधुर रसको सोखती रहती हैं। वाणीका संयम इस समस्त अनर्थपरम्पराको दग्ध करनेमें समर्थ है, अतः मैं मौनकी उपासनाको सर्वोपरि साधना मानता हूँ।'

(स्वा० ओं० आ०)

ब्रह्माण्डपुराण

ब्रह्माण्डपुराण अठारहवाँ महापुराण है। इसमें ब्रह्माण्डका विशद भौगोलिक वर्णन है, इसी कारण इसे ब्रह्माण्डपुराण कहा जाता है—'**ब्रह्माण्डचरितोक्तत्वाद् ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम्**' (शिव० उमासं० ४४।१३५)। यह पुराण पूर्व, मध्यम तथा उत्तर—इन तीन[1] भागोंमें विभक्त है। पूर्वभागमें प्रक्रिया तथा अनुषङ्ग नामक दो पाद हैं। मध्यमभागमें उपोद्घातपाद और उत्तरभागमें उपसंहारपाद है। इसकी अध्याय-संख्या १५६ और श्लोक-संख्या लगभग बारह हजार है।

इसके पूर्वभागमें मुख्यरूपसे नैमिषीयोपाख्यान, हिरण्यगर्भप्रादुर्भाव, देव-ऋषिकी सृष्टि, कल्प, मन्वन्तर तथा कृतयुगादिके परिमाण, रुद्रसर्ग, ऋषिसर्ग, अग्निसर्ग, दक्ष तथा शंकरका परस्पर शाप, प्रियव्रतवंश, भुवनकोश, गङ्गावतरण, खगोलवर्णनमें सूर्यादि ग्रहों, नक्षत्रों, ताराओं तथा अन्य आकाशीय पिण्डोंका विशद विवेचन (ज्योतिःसंनिवेश), समुद्र-मन्थन, विष्णुद्वारा लिङ्गोत्पत्ति-कथन, वर्णाश्रमधर्म, मन्त्रोंके विविध भेद, वेदशाखाविभाग तथा मन्वन्तरोपाख्यान विवेचित हैं।

मध्यमभागमें श्राद्धसम्बन्धी विषयोंका साङ्गोपाङ्ग विवेचन, परशुराम-चरित्रकी विस्तृत कथा, राजा सगरकी वंश-परम्परा तथा भगीरथद्वारा गङ्गानयनका विस्तृत वृत्तान्त और सूर्य तथा चन्द्रवंशी राजाओंके उत्तम चरित्रके आख्यान हैं।

उत्तरभागमें भावी मन्वन्तरोंका विवेचन, कालमान और प्रतिसर्गका वर्णन तथा राजराजेश्वरी भगवती श्रीत्रिपुरसुन्दरीका महत्त्वपूर्ण आख्यान है, जो 'ललितोपाख्यान'के नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ यह हयग्रीव (विष्णु) तथा अगस्त्यके संवादके रूपमें वर्णित है। भण्ड आदि असुरोंके विनाशके लिये तथा देवताओंको अभय प्रदान करनेके लिये देवी ललिताने सपरिकर विग्रह धारण किया—

इत्थं भण्डमहादैत्यवधाय ललिताम्बिका। प्रादुर्भूता चिदनलाद्दग्धनिःशेषदानवा॥ (ब्र० पु० उपसं० ३७।९७)

भण्डासुरवधायैषा प्रादुर्भूता चिदग्नितः॥ (ब्र० पु० उपसं० ३८।८०)

मुख्यरूपसे इस आख्यानमें श्रीविद्याकी उपासना, माहात्म्य तथा श्रीचक्रपूजन-विधिका ही वर्णन है।[2]

इस प्रकार ब्रह्माण्डपुराणमें पञ्चविध लक्षणोंके अतिरिक्त अनेक महत्त्वपूर्ण विषयोंका वर्णन हुआ है। वायुप्रोक्त होनेके कारण इस पुराणको वायवीय ब्रह्माण्ड संहिता भी कहा जाता है। वायुपुराण तथा ब्रह्माण्डपुराणमें अद्भुत साम्य है। परशुरामसर्ग-वृत्तान्त तथा ललितोपाख्यानको छोड़कर प्रायः सभी विषय मिल जाते हैं। इसके आदि उपदेष्टा प्रजापति ब्रह्मा हैं। यह पुराण पापनाशक, पुण्यप्रद तथा पवित्रकारक है, आयु एवं कीर्तिको बढ़ानेवाला है। इसमें धर्म, सदाचार, नीति, पूजा, उपासना, ज्ञान-विज्ञानकी अनेक बातें हैं। इसके उपदेश अत्यन्त उपादेय हैं।

१-अध्यात्मरामायणको नागेशभट्ट, गोपालचन्द्र चक्रवर्ती आदिकी व्याख्याओंमें इसे ब्रह्माण्डपुराणका ही एक भाग-विशेष होनेकी बात कही-सुनी जाती है, किंतु मूल पुराणमें इसके सुस्पष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं।

२-तन्त्रशास्त्रमें ललिताकी उपासना मुख्य मानी गयी है। दशमहाविद्याओंमें ये अन्यतम हैं। ललिता ही श्रीविद्या, राजराजेश्वरी, कामेश्वरी, त्रिपुरसुन्दरी बाला, पञ्चदशी तथा षोडशी आदि नामोंसे विख्यात हैं। श्रीविद्यार्णव, त्रिपुरारहस्य, वरिवस्यारहस्य, सौन्दर्यलहरी, मन्त्रमहोदधि, ब्रह्माण्डपुराणके ललितोपाख्यान, कालिकापुराण, देवीभागवत, मार्कण्डेयपुराण तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण आदिमें इसी विषयको कहा गया है। इन श्रीविद्याके मनु, चन्द्र, कुबेर, लोपामुद्रा, मन्मथ (कामदेव), अगस्ति, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, स्कन्द (कुमार कार्तिकेय), शिव और क्रोधभट्टारक (दुर्वासा मुनि)—ये बारह उपासक अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। ललितादेवीका एक प्रमुख श्रीविग्रह नैमिषारण्यमें है। वहाँ ये लिङ्गधारिणी ललिताके नामसे कही गयी हैं—'नैमिषे लिङ्गधारिणी' (मत्स्य० १३।२६, देवीभा० ७।३०।५५)।

कथा-आख्यान—

चोरीकी चोरी

कांचीपुरीमें वज्र नामका एक चोर था। उस चोरका यह नाम विशेष सार्थक था। किसीकी सम्पत्ति चुरानेपर उसके स्वामीको जो कष्ट होता है, उसे सहृदय व्यक्ति ही आँक सकता है। चोरका हृदय वस्तुतः वज्रका बना होता है। इसीलिये वह चोरी कर पाता है। यदि चोरको परदुःखकातरता हो तो वह चोरी करना ही छोड़ दे। वज्र ऐसा ही कठोर हृदयवाला चोर था। वह प्रतिदिन थोड़ा-बहुत जो मिलता, सब कुछ चुरा लेता था। चुराये हुए धनको वह राज-रक्षकों द्वारा पकड़े जानेके भयसे आधी रातके समय जंगलमें जाकर मिट्टी खोदकर गाड़ देता था।

एक रात वीरदत्त नामक एक किरात लकड़हारेने चोरकी यह चेष्टा देख ली। चोरके चले जानेके बाद वह प्रतिदिन मिट्टी हटाकर सम्पत्तिमेंसे दसवाँ हिस्सा निकाल लेता और गड्ढेको पहलेकी तरह पत्थर-मिट्टीसे ढँक देता था। लकड़हारा चालाक चोर था। वह इस ढंगसे चुराता था कि वज्र इसकी चोरीको भाँप न सके।

एक दिन लकड़हारा अपनी पत्नीको धन देता हुआ बोला—'तुम प्रतिदिन धन माँगा करती थी, लो, आज मुझे पर्याप्त धन प्राप्त हो गया है।' पत्नीने कहा—'जो धन अपने परिश्रमसे उपार्जित किया जाता है, वही स्थायी होता है, दूसरा धन नष्ट हो जाता है। इसलिये इस धनसे जनताके भलेके लिये बावली, कुआँ आदि बनवाना चाहिये।' उसके पतिको भी यह बात जँच गयी। आस-पास अच्छे-अच्छे कुएँ और तालाब थे। इसलिये उसने दूरदेशमें एक बहुत बड़ा तालाब खुदवाया। गर्मीमें भी उसका जल नहीं सूखता था। तालाबमें अभी सीढ़ियाँ लगानी थीं और उसके सब पैसे समाप्त हो गये। वह छिपकर फिर वज्रका अनुसरण करने लगा। देखा करता था कि वज्र कहाँ-कहाँ धन गाड़ा करता है। इस प्रकार दशांश चुराकर उसने तालाबका काम पूरा कर दिया। इसके बाद उसने भगवान् विष्णु और शंकरके भव्य मन्दिर भी तैयार कराये। जंगल कटवाकर खेत तैयार कराये और उन्हें ब्राह्मणोंमें वितरण कर दिया। एक बार बहुतसे ब्राह्मणोंको बुलाकर वस्त्राभूषणोंसे उनकी अच्छी पूजा की। कुछ ब्राह्मणोंके लिये घरकी व्यवस्था भी कर दी थी। ब्राह्मणोंने प्रसन्न होकर उसका नाम द्विजवर्मा रख दिया।

कालवश जब द्विजवर्माकी मृत्यु हुई, तब उसे लेनेके लिये एक ओर यमके दूत और दूसरी ओर भगवान् शंकर और विष्णुके दूत आये। परस्परमें विवाद होने लगा। इसी बीच नारदजी वहाँ पधारे। उन्होंने सबको समझाया कि 'आपलोग कलह न करें, मेरी बात सुनें। इस किरातने चोरीके धनसे मन्दिर आदि तैयार किये हैं। अतः जबतक कुमार्गसे उपार्जित द्रव्यरूप पापका प्रायश्चित्त नहीं हो जाता, तबतक यह वायुके रूपमें अन्तरिक्षमें विचरण करता रहे।' नारदजीकी बात सुनकर सभी दूत लौट गये। वह किरात बारह वर्षतक प्रेत बनकर घूमता रहा।

देवर्षि नारदने किरातकी पत्नीसे कहा—'तुमने अपने पतिको उत्तम मार्ग दिखाया है, इसलिये तुम ब्रह्मलोक जाओ। किंतु किरातकी पत्नी अपने पतिके दुःखसे दुःखी थी। वह ब्रह्मलोकका सुख तुच्छ मानते हुए रोकर देवर्षिसे बोली—'मेरे पतिको जबतक देह नहीं मिलती, तबतक मैं यहीं रहूँगी। जो गति मेरे पतिकी होगी, वही गति मैं भी चाहती हूँ।' किरातीके धर्मयुक्त वचन सुनकर देवर्षि नारद बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे अपने प्रभावसे इस योग्य बना दिया कि वह शंकरकी अच्छी आराधना कर सके। उन्होंने बताया कि तीर्थमें स्नानकर कन्दमूल-फल खाकर अपने पतिकी सद्गतिके लिये भगवान् शंकरकी पूजा और जप करे।

किरातीने अपने पतिके लिये शिवकी आराधना लगनसे की। इस कृत्यसे उसके पतिके चोरीका सारा पाप धुल गया। फिर अपने पुण्यके बलसे दोनों पति-पत्नीको उत्तम लोक मिला। द्विजवर्मा गाणपत्य-पदपर प्रतिष्ठित हुआ। वज्र चोर तथा कांचीके सभी धनी, जिनका इस कार्यमें द्रव्य लगा था, सपरिवार स्वर्ग चले गये।

आदिशक्ति ललिताम्बा

भण्डासुरकी उत्पत्ति

जब विश्वपर घोर संकट आता है और उसके प्रतिकारका कोई उपाय नहीं रहता, तब आदिशक्तिका आविर्भाव होता है। इसी प्रकार एक बार जब भण्डासुरसे सारा विश्व त्रस्त हो गया था, तब उन्होंने ललिताके रूपमें लोकोद्धारका कार्य किया।

भगवान् शंकरने जब कामदेवको जलाया था, तब उसका भस्म वहीं पड़ा रह गया था। एक दिन गणेश्वरने कौतूहलवश उस भस्मसे पुरुषकी आकृति बनायी। थोड़ी ही देरमें वह सजीव होकर कामदेवकी तरह सुन्दर बालक बन गया। उसे देख गणेशजीने गले लगा लिया और कहा कि 'तुम भगवान् शंकरकी स्तुति करो।' उस बालकको शतरुद्रीयका भी उपदेश किया। उसका नाम आगे चलकर भण्डासुर हुआ।

भण्डासुरको वर-प्राप्ति

भण्डने श्रीगणेशजीकी आज्ञाका अक्षरशः पालन किया। घोर तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने उससे वर माँगनेको कहा। उसने यह माँगा कि 'मैं देवता आदि किसी प्राणीसे न मारा जाऊँ।' औढरदानीने उसे मुँहमाँगा वरदान दे दिया। साथ ही दिव्य अस्त्र-शस्त्र भी दिये। साठ हजार वर्षका राज्य भी दे दिया। यह सब देखकर ब्रह्माजीने ही पहले उसे 'भण्ड-भण्ड' कहा था। तभीसे उसका नाम 'भण्ड' पड़ गया। **'भडि कल्याणे'** (१०।५४), **'भडि परिहासे'** (१।२७०) धातुपाठके अनुसार इस शब्दके दो अर्थ होते हैं। एक यह कि इस व्यक्तिका कल्याण हो गया। दूसरा यह कि इसे लोग निन्दा एवं उपहासके साथ स्मरण करेंगे।

जबतक भण्डासुर भगवान् शंकरके अनुशासनमें रहा, तबतक उसका कल्याण होता रहा। जब वह मायाके मोहजालमें पड़ गया, तब उपहासास्पद बन गया।

भण्डका अनुशासित जीवन

भण्डासुरके वरदान मिलनेकी बात थोड़ी ही देरमें सम्पूर्ण भुवनोंमें फैल गयी। दैत्योंके पुरोहित शुक्राचार्य यह समाचार पाकर भण्डासुरके पास आये। उनके साथ दैत्योंका समुदाय भी था। शुक्राचार्यने मयके द्वारा शोणितपुरको फिरसे सुसज्जित कराकर वहाँ भण्डासुरका अभिषेक कर दिया।

प्रारम्भमें भण्डासुर शिवकी अर्चना करता और उनके आदेशपर चलता था। उसके अनुयायी दैत्य भी धर्मका अनुसरण करते थे। प्रत्येक घर वेदोंकी ध्वनिसे गुञ्जित रहता था। घर-घरमें यज्ञ होता था। इस तरह सौभाग्यशाली भण्डकी सुख-समृद्धिके साठ हजार वर्ष देखते-देखते बीत गये।

मायाकी चपेटमें

भण्डासुर बादमें मायाकी चपेटमें पड़ गया—अब चार पत्नियोंसे उसे संतोष न था, एक दिव्य वाराङ्गनाके मोहमें पड़ गया। देखा-देखी इसके मन्त्री आदि अनुयायी भी विलासी बनते चले गये। अब न किसीको भगवान् शंकर याद आते, न पूजा-पाठ ही। यज्ञ और वेदके उच्चारण भी अब बंद हो गये थे।

देवताओंकी साँस-में-साँस आयी

इस तरह दैत्योंके विषयासक्त हो जानेपर देवताओंकी साँस-में-साँस आयी। उनके भयका दबाव कम हो गया। अब वे पाताल, समुद्र और खोहोंसे निकल-निकलकर अपने-अपने घरोंको लौट रहे थे। अपने बिछुड़े परिवारसे मिलनेका अवसर अब उन्हें मिल गया था। इन्द्र अब सिंहासनपर बैठ पाते थे। देवतालोग उन्हें घेरकर आमोद-प्रमोद मनाने लगे।

इसी बीच देवर्षि नारद देवताओंके पास आये। उन्होंने उन्हें समझाया कि 'इस क्षणिक आमोद-प्रमोदको छोड़कर वे अपने भविष्यको सुनहला बनायें।' उन्होंने पराशक्तिकी उपासनाका परामर्श दिया। विधि भी बतला दी। देवताओंने शीघ्र ही उनके आदेशका पालन किया। सब-के-सब पराशक्तिकी उपासनामें लग गये।

इधर दैत्योंके पुरोहित शुक्राचार्य भण्डासुरके पास आये और उसे सावधान करते हुए उन्होंने कहा—'देवता अपनी विजयके लिये हिमालयमें पराशक्तिकी उपासना कर रहे हैं। यदि पराशक्तिने उनकी सुन ली तो तुम कहींके न रह जाओगे। अतः तुम शीघ्र ही देवताओंकी पूजामें विघ्न डालो।'

भण्डासुरकी निष्फल चढ़ाई

भण्डासुर दल-बलके साथ देवताओंपर चढ़ आया। पराम्बाने अपनी शरणमें आये हुए देवताओंकी रक्षाके लिये ज्योतिकी एक अलङ्घ्य दीवार खड़ी कर दी। भण्डासुर यह देखकर क्रोधसे जल उठा। उसने दानवास्त्र चलाकर उसे तोड़ डाला। परंतु तत्क्षण ही वहाँ पुनः अलङ्घ्य दीवार खड़ी हो गयी। इस बार भण्डासुरने वायव्यास्त्रसे इसे तोड़ा। किंतु तत्क्षण भण्डासुरने उसी दीवारको खड़ी देखा। तोड़नेमें समय लगता था, किंतु दीवार खड़ी होनेमें समय नहीं लगता था। हारकर भण्डासुर शोणितपुर लौट आया।

ललिताम्बाका आविर्भाव

भण्डासुर लौट तो आया था, किंतु उसके भयसे देवताओंकी दशा दयनीय हो गयी थी। वे सोचते थे कि जिस दिन दीवार नहीं रहेगी, उस दिन हमलोगोंका बच सकना कठिन हो जायगा। अब कहीं छिपकर नहीं रहा जा सकता। अन्तमें देवताओंने निर्णय लिया कि या तो पराम्बाका दर्शन करें या यहीं भण्डासुरके हाथों मारे जायँ। उन्होंने अपनी आराधना और बढ़ा दी। हृदयकी पुकार थी। पराम्बा प्रकट हो गयीं। उनके अद्भुत दर्शन पाकर देवता कृतकृत्य हो गये। गद्गद होकर देवताओंने माँ पराम्बाकी स्तुति की। ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी आ गये थे। पराम्बाका स्वरूप-शृङ्गार देवीके रूपमें था। ब्रह्माने यह देखकर सोचा कि इनका विवाह-सम्बन्ध परमात्मा शंकरसे ही सम्भव है। इतना संकल्प करते ही सौन्दर्य-सारके स्वरूपमें भगवान् शंकर कुमार बनकर वहाँ प्रकट हो गये। यह देखकर सब-के-सब आनन्दमें विभोर हो गये। ब्रह्माने उनका नाम कामेश्वर रख दिया। जब कामेश्वर पराशक्तिके सामने लाये गये, तब दोनों एक दूसरेको देखकर मुग्ध हो गये। देवताओंने उनका आपसमें विवाह करा दिया और पराम्बाको उस पुरकी अधीश्वरी बना दिया। शक्ति और शक्तिमान्के मेल हो जानेसे वहाँ अखण्ड आनन्दकी वृष्टि होने लगी। बहुत दिनोंतक उत्साहके साथ विवाहोत्सव मनाया गया।

भण्डासुरका उद्धार

भण्डासुरने सारे विश्वको त्रस्त कर रखा था। अहंकारमें आकर अपने जनक श्रीगणेशजी और शंकरजीकी भी घोर अवहेलना की थी। परिणाम-स्वरूप भण्डासुरके विरुद्ध युद्धमें गणेशजीने भी पराम्बाका सहयोग दिया। विश्वकी रक्षाके लिये ललिताम्बाने भण्डासुरके साथ युद्ध किया। युद्धमें भण्डासुरने 'पाषण्ड'का प्रयोग किया, तब पराम्बाने 'गायत्री'के द्वारा उसका निवारण किया। जब भण्डासुरने 'स्मृतिनाश'-अस्त्रका प्रयोग किया, तब माँने 'धारणा'के द्वारा उसे नष्ट किया। जब भण्डासुरने 'यक्ष्मा' आदि रोग-रूप अस्त्रोंका प्रयोग किया, तब पराम्बाने 'अच्युत, आनन्द, गोविन्द' **(अच्युतानन्दगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्)** नाम-रूप मन्त्रोंसे उसका निवारण किया। इसके बाद भण्डासुरने हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, रावण, कंस और महिषासुरको उत्पन्न किया, तब ललिताम्बाने अपनी दसों अंगुलियोंके नखसे वराह, नृसिंह, राम, कृष्ण, दुर्गा आदिको उत्पन्न किया। युद्धके अन्तिम भागमें पराम्बाने भण्डासुरका उद्धार 'कामेश्वर'-अस्त्रसे किया। माता ललिताम्बाके अस्त्र-शस्त्र इक्षुदण्ड और पुष्प थे। कामेश्वरका अस्त्र भी काम-बीज-रूप प्रेमतत्त्व ही था।

भगवान् श्रीरामको कथाएँ अति प्रिय थीं

तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्हि बिप्रन्ह पर दाया॥
भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे बिप्र जद्यपि प्रभु जाना॥

* * * *

कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥

* * * *

करि भोजनु मुनिबर बिग्यानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी॥

* * * *

बेद पुरान बसिष्ट बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥

चौबीस अवतारोंकी कथाएँ[1]

[भगवान् अनन्त हैं। वे सर्वशक्तिमान् करुणामय परमात्मा अपना कोई प्रयोजन न रहनेपर भी साधु-परित्राण, धर्म-संरक्षण एवं जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये शरीर-धारण कर लिया करते हैं। उनके अवतरण और उनके अवतारचरित्र भी अनन्त हैं। श्रीमद्भागवतमें सूतजीने कहा है—

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः । यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥ (१ । ३ । २६)

'जिस प्रकार किसी एक अक्षय जलाशयसे असंख्य छोटे-छोटे जल-प्रवाह निकलकर चारों ओर धावित होते हैं, उसी प्रकार सत्त्वनिधि परमेश्वरसे विविध अवतारोंकी उत्पत्ति होती है।' पुरुषावतार, गुणावतार, कल्पावतार, युगावतार, पूर्णावतार, अंशावतार, कलावतार, आवेशावतार आदि उनके अवान्तर भेद हैं। कल्प-भेदसे प्रभु-चरित्रोंमें भी भिन्नता आती है। श्रीमद्भागवत तथा अन्य पुराण-ग्रन्थोंमें सर्वसमर्थ, कल्याण-विग्रह प्रभुके मुख्यतया चौबीस अवतारोंका सविशेष वर्णन है, पर उनमें भी क्रम-भेद है। यहाँ हम दयाधामके उन अद्भुत एवं मङ्गलकारी चौबीस अवतारोंका चरित्र यद्यपि स्थानाभावके कारण अत्यन्त संक्षेपमें दे रहे हैं, तथापि इस संक्षिप्त कथाके भी मनोयोगपूर्वक पठन-पाठनसे हमारे पाठक लाभान्वित होंगे, हमारा ऐसा विश्वास है।—सम्पादक]

श्रीसनकादि

सृष्टिके प्रारम्भमें लोकपितामह ब्रह्माने विविध लोकोंको रचनेकी इच्छासे तपस्या की। स्रष्टाके उस अखण्ड तपसे प्रसन्न होकर विश्वाधार प्रभुने 'तप' अर्थवाले 'सन' नामसे युक्त होकर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—इन चार निवृत्ति-परायण ऊर्ध्वरेता मुनियोंके रूपमें अवतार ग्रहण किया। ये प्राकट्य-कालसे ही मोक्षमार्ग-परायण, ध्यानमें तल्लीन रहनेवाले, नित्यसिद्ध एवं नित्य-विरक्त थे। इन नित्य-ब्रह्मचारियोंसे ब्रह्माजीके सृष्टिविस्तारकी आशा पूरी नहीं हो सकी।

देवताओंके पूर्वज और लोकस्रष्टाके आद्य मानसपुत्र सनकादिके मनमें कहीं किंचित् आसक्ति नहीं थी। वे प्रायः आकाशमार्गसे विचरण किया करते थे। एक बार वे श्रीभगवान्के वैकुण्ठधाममें पहुँचे। वहाँ सभी शुद्ध-सत्त्वमय चतुर्भुज-रूपमें रहते हैं। सनकादि भगवद्दर्शनकी लालसासे वैकुण्ठकी दुर्लभ दिव्य दर्शनीय वस्तुओंकी उपेक्षा करते हुए छठी ड्योढ़ीसे आगे बढ़ ही रहे थे कि भगवान्के पार्षद जय और विजयने उन पञ्चवर्षीय-से दीखनेवाले दिगम्बर तेजस्वी कुमारोंकी हँसी उड़ाते हुए उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया। भगवद्दर्शनमें व्यवधान उत्पन्न होनेके कारण सनकादिने उन्हें दैत्यकुलमें जन्म लेनेका शाप दे दिया।

अपने प्राणप्रिय एवं अभिन्न सनकादि कुमारोंके अनादरका संवाद मिलते ही वैकुण्ठनाथ श्रीहरि तत्काल वहाँ पहुँच गये। भगवान्की अद्भुत, अलौकिक एवं दिव्य सौन्दर्यराशिके दर्शन कर सर्वथा-विरक्त सनकादि कुमार चकित हो गये। वे अपलक नेत्रोंसे प्रभुकी ओर देखने लगे। उनके हृदयमें आनन्द-सिन्धु उच्छलित हो रहा था। उन्होंने वनमालाधारी लक्ष्मीपति भगवान् श्रीविष्णुकी स्तुति करते हुए कहा—

१- भगवान्के चौबीस अवतारोंमें वराह, नारद, कपिल, दत्तात्रेय, मत्स्य, कूर्म, नरसिंह, वामन (बलि-आख्यान) तथा कल्कि-अवतारकी कथाएँ तत्तद् महापुराणों तथा उपपुराणोंके क्रममें दी गयी हैं। अतः इनका अवलोकन उन्हीं स्थानोंपर करना चाहिये।

'विपुलकीर्ति प्रभो ! आपने हमारे सामने जो यह मनोहर रूप प्रकट किया है, उससे हमारे नेत्रोंको बड़ा ही सुख मिला है, विषयासक्त अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये इसका दृष्टिगोचर होना अत्यन्त कठिन है। आप साक्षात् भगवान् हैं और इस प्रकार स्पष्टतया हमारे नेत्रोंके सामने प्रकट हुए हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं।'

'ब्राह्मणोंकी पवित्र चरण-रजको मैं अपने मुकुटपर धारण करता हूँ।' श्रीभगवान्‌ने अत्यन्त मधुर वाणीमें कहा। 'जय-विजयने मेरा अभिप्राय न समझकर आपलोगोंका अपमान किया है। इस कारण आपने इन्हें दण्ड देकर सर्वथा उचित ही किया है।'

लोकोद्धारार्थ लोक-पर्यटन करनेवाले, सरलता एवं करुणाकी मूर्ति सनकादि कुमारोंने श्रीभगवान्‌की सारगर्भित मधुर वाणीको सुनकर उनसे अत्यन्त विनीत स्वरमें कहा—

'सर्वेश्वर ! इन द्वारपालोंको आप जैसा उचित समझें, वैसा दण्ड दें अथवा पुरस्काररूपमें इनकी वृत्ति बढ़ा दें—हम निष्कपटभावसे सब प्रकार आपसे सहमत हैं। अथवा हमने आपके इन निरपराध अनुचरोंको शाप दिया है, इसके लिये हमें ही उचित दण्ड दें। हमें वह भी सहर्ष स्वीकार है।'

'यह मेरी प्रेरणासे ही हुआ है।' ऐसा कहकर श्रीभगवान्‌ने उन्हें संतुष्ट किया। इसके अनन्तर सनकादिने सर्वाङ्ग-सुन्दर भगवान् विष्णु और उनके धामका दर्शन किया और प्रभुकी परिक्रमा कर उनका गुणगान करते हुए वे चारों कुमार लौट गये। जय-विजय इनके शापसे तीन जन्मोंतक क्रमशः हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष, रावण-कुम्भकर्ण और शिशुपाल-दन्तवक्र हुए।

उस समय जब भगवान् सूर्यकी भाँति परम तेजस्वी सनकादि आकाशमार्गसे भगवान्‌के अंशावतार महाराज पृथुके समीप पहुँचे, तब उन्होंने अपना अहोभाग्य समझते हुए उनकी सविधि पूजा की, उनका पवित्र चरणोदक माथेपर छिड़का और उन्हें सुवर्णके सिंहासनपर बैठाकर बद्धाञ्जलि हो विनयपूर्वक निवेदन किया—'मङ्गलमूर्ति मुनीश्वरो ! आपके दर्शन तो योगियोंको भी दुर्लभ हैं। मुझसे ऐसा क्या पुण्य बना है, जिसके फलस्वरूप मुझे स्वतः आपका दर्शन प्राप्त हुआ। इस दृश्य-प्रपञ्चके कारण महतत्त्वादि यद्यपि सर्वगत हैं, तो भी वे सर्वसाक्षी आत्माको नहीं देख सकते, इसी प्रकार यद्यपि आप समस्त लोकोंमें विचरते रहते हैं, तो भी अनधिकारी लोग आपको नहीं देख पाते।'

फिर अपने सौभाग्यकी सराहना करते हुए उन्होंने अत्यन्त आदरपूर्वक कहा—

'आप संसारानलसे संतप्त जीवोंके परम सुहृद् हैं,' इसलिये आपपर विश्वास करके मैं यह पूछना चाहता हूँ कि 'इस संसारमें मनुष्यका किस प्रकार सुगमतासे कल्याण हो सकता है ?'

भगवान् सनकादिने आदिराज पृथुका ऐसा प्रश्न सुनकर उनकी बुद्धिकी प्रशंसा की और उन्हें विस्तारपूर्वक कल्याणका उपदेश देते हुए कहा—'धन और इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन करना मनुष्यके सभी पुरुषार्थोंका नाश करनेवाला है; क्योंकि इनकी चिन्तासे वह ज्ञान और विज्ञानसे भ्रष्ट होकर वृक्षादि स्थावर योनियोंमें जन्म पाता है। इसलिये जिसे अज्ञानान्धकारसे पार होनेकी इच्छा हो, उस पुरुषको विषयोंमें आसक्ति कभी नहीं करनी चाहिये; क्योंकि यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिमें अतीव बाधक है। जो लोग मन और इन्द्रियरूप मगरोंसे संकुल इस संसार-सागरको योगादि दुष्कर साधनोंसे पार करना चाहते हैं, उनका उस पार पहुँचना कठिन ही है; क्योंकि उन्हें कर्णधाररूप श्रीहरिका आश्रय नहीं है। अतः तुम तो भगवान्‌के आराधनीय चरण-कमलोंको नौका बनाकर अनायास ही इस दुस्तर दुःख-समुद्रको पार कर लो।' भगवान् सनकादिके इस अमृतमय उपदेशसे आप्यायित होकर आदिराज पृथुने उनकी स्तुति करते हुए पुनः उनकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सविधि पूजा की।

ऋषिगण प्रलयके कारण पहले कल्पका आत्मज्ञान भूल गये थे। श्रीभगवान्‌ने अपने इस अवतारमें उन्हें यथोचित उपदेश दिया, जिससे उन लोगोंने शीघ्र ही अपने हृदयमें उस तत्त्वका साक्षात्कार कर लिया। सनकादि अपने योगबलसे अथवा **'हरिः शरणम्'** मन्त्रके जप-प्रभावसे सदा पाँच वर्षके ही कुमार बने रहते हैं। ये प्रमुख योगवेत्ता, सांख्यज्ञान-विशारद, धर्मशास्त्रोंके आचार्य तथा मोक्षधर्मके प्रवर्तक हैं। श्रीनारदजीको इन्होंने श्रीमद्भागवतका उपदेश किया था।

भगवान् सनत्कुमारने ऋषियोंके तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी प्रश्नके उत्तरमें सुविस्तृत उपदेश देते हुए बताया था—

'विद्याके समान कोई नेत्र नहीं है। सत्यके समान कोई तप नहीं है। रागके समान कोई दुःख नहीं है और त्यागके समान कोई सुख नहीं है। पापकर्मोंसे दूर रहना, सदा पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करना, श्रेष्ठ पुरुषोंसे बर्ताव और सदाचारका पालन करना—यही सर्वोत्तम श्रेय (कल्याण) का साधन है।'

प्राणिमात्रके सच्चे शुभाकाङ्क्षी कुमार-चतुष्टयके पावन पद-पद्मोंमें अनन्त प्रणाम !

भगवान् नर-नारायण

स्वयं भगवान् वासुदेवने सृष्टिके आरम्भमें धर्मकी सहधर्मिणी मूर्तिसे दो रूपोंमें अवतार धारण किया। वे अपने मस्तकपर जटामण्डल धारण किये हुए थे। उनके हाथोंमें हंस, चरणोंमें चक्र एवं वक्षःस्थलमें श्रीवत्सके चिह्न सुशोभित थे। उनकी बड़ी-बड़ी भुजाएँ, मेघके समान गम्भीर स्वर, सुन्दर मुख, चौड़ा ललाट, बाँकी भौंहें, सुन्दर ठोढ़ी और मनोहर नासिका थी। उनका सम्पूर्ण वेष तपस्वियोंका था। वे अत्यन्त तेजस्वी, रूप-रंग और स्वभावमें एक-से थे। उन वरदाता तपस्वियोंके नाम थे—'नर और नारायण'।

अवतार ग्रहण करते ही अविनाशी नर-नारायण बदरिकाश्रममें चले गये। वहाँ वे गन्धमादन पर्वतपर एक विशाल वट-वृक्षके नीचे तपस्या करने लगे। वहाँ उन्होंने एक सहस्र वर्षतक कठोर तपस्या की। उनके प्रचण्ड तपसे देवराज इन्द्र सशङ्क हो तुरंत गन्धमादन पर्वतपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने परम पवित्र आश्रममें तपोभूमि भारतके आराध्य परम तेजस्वी भगवान् नर-नारायणको तप-निरत देखा।

'धर्मनन्दन ! तुम दोनों अवश्य ही अत्यन्त भाग्यवान् हो।' सूर्यकी भाँति प्रकाश विकीर्ण करते हुए तपोधन नर-नारायणके समीप पहुँचकर शचीपतिने कहा। 'तुम दोनोंकी तपश्चर्यासे संतुष्ट होकर मैं तुम्हें वर देनेके लिये ही यहाँ आया हूँ। तुम अपना अभीष्ट बताओ। मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा।' इस प्रकार सम्मुख खड़े होकर देवाधिप इन्द्रके बार-बार आग्रह करनेपर भी नर-नारायणने कोई उत्तर नहीं दिया। उनका चित्त सर्वथा शान्त एवं अविचलित रहा।

तब इन्द्रने उन्हें भयभीत करनेके लिये मायाका प्रयोग किया। भयानक झंझावात, प्रलयंकारी वृष्टि एवं अग्निवर्षा प्रारम्भ हो गयी। भेड़िये और सिंह गरजने लगे, किंतु नर-नारायण सर्वथा शान्त थे। उनका चित्त किसी प्रकार भी विचलित नहीं हुआ। अनेक प्रकारकी मायाका प्रयोग किये जानेपर भी जब तपस्वियोंके सिरमौर नर-नारायण तपसे विरत नहीं हुए, तब इन्द्र निराश होकर लौट गये। फिर तो उन्होंने रम्भा, तिलोत्तमा, पुष्पगन्धा, सुकेशी और काञ्चनमालिनी आदि अप्सराओं और वसन्तके साथ कामदेवको नर-नारायणको वशीभूत करनेके लिये भेजा। उस श्रेष्ठ पर्वत गन्धमादनपर वसन्तके पहुँचते ही आम, बकुल, तिलक, पलाश, साखू, ताड़, तमाल और महुआ आदि सभी वृक्ष पुष्पोंसे सुशोभित हो गये। कोयलें कूकने लगीं। सुगन्धित पवन मन्द गतिसे बहने लगा। इसके साथ ही रतिसहित पुष्पधन्वा भी वहाँ जा पहुँचे। रम्भा और तिलोत्तमा आदि संगीत-कलामें प्रवीण अप्सराओंने स्वर और तालमें गायन प्रारम्भ किया। मधुर संगीत, कोयलोंका कलरव और भ्रमरोंकी गुंजारसे नर-नारायणकी समाधि टूट गयी। उन्होंने इसे इन्द्रकी कुटिलता समझकर कहा—'कामदेव, मलय पवन और देवाङ्गनाओ ! तुमलोग आनन्दपूर्वक ठहरो। तुम सभी स्वर्गसे यहाँ आये हो, इसलिये हमारे अतिथि हो। हम तुम्हारा अद्भुत प्रकारसे आतिथ्य-सत्कार करनेके लिये तैयार हैं।'

भगवान्‌के शान्त वचन सुनकर काँपते हुए कामदेवके मनमें निर्भयता आयी। उन्होंने हाथ जोड़कर कहा—'प्रभो ! आप मायासे परे, निर्विकार हैं। बड़े-बड़े आत्माराम और धीर पुरुष सदा आपके चरण-कमलोंमें प्रणाम करते रहते हैं। भगवन् ! क्रोध आत्मनाशक है, पर बड़े-बड़े तपस्वी उसके वश हो अपनी कठिन तपस्या खो बैठते हैं, किंतु आपके चरणोंका आश्रय लेनेवाला सदा निरापद जीवन व्यतीत करता है।'

कामदेव और वसन्त आदिकी इस प्रकारकी स्तुति सुनकर सर्वसमर्थ भगवान्‌ने वस्त्रालङ्कारोंसे अलङ्कृत एवं अद्भुत रूप-लावण्यसे सम्पन्न सहस्रों स्त्रियाँ प्रकट करके दिखलायीं, जो प्रभुकी सेवा कर रही थीं। जब इन्द्रके

अनुचरोंने समुद्रतनया लक्ष्मीके समान अनुपम रूप-लावण्यकी राशि सहस्रों देवियोंको अत्यन्त श्रद्धापूर्वक प्रभुकी सेवा-पूजा करते देखा तो लज्जासे उनका सिर झुक गया। वे श्रीहत होकर उनके शरीरसे निकलनेवाली दिव्य सुगन्धसे मोहित हो गये।

'तुमलोग इनमेंसे किसी एक स्त्रीको, जो तुम्हारे अनुरूप हो, ग्रहण कर लो।' भक्तप्राण नारायणने मुस्कराते हुए कहा। 'वह तुम्हारे स्वर्गकी शोभा बढ़ायेगी।' 'जैसी आज्ञा!' कहकर उन सबने प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया और उनके द्वारा प्रकट की हुई स्त्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी उर्वशीको लेकर वे स्वर्गलोक चले गये। वहाँ उन्होंने देवराज इन्द्रको प्रणाम कर देवदेवेश नर-नारायणकी महिमाका गान किया तो सुराधिप चकित, विस्मित और भयभीत हो गये।

पुराणपुरुष नर-नारायण स्वयं सर्वसमर्थ होकर भी सृष्टिमें तपश्चर्याका आदर्श स्थापित करनेके लिये निरन्तर कठोर तप करते रहते हैं। काम, क्रोध और मोहादि शत्रु तपके महान् विघ्न हैं। अहंकार और क्रोधके दोषसे तपका क्षय होता है—यह नर-नारायण प्रभुने अपने जीवनसे सिखाया है।

× × × ×

एक बार आदिदेव नर-नारायणके दर्शनार्थ देवर्षि नारद गन्धमादन पर्वतपर पहुँचे। देवता और पितरोंका पूजन करनेके अनन्तर जब भगवान् नर-नारायणने देवर्षि नारदको देखा तो शास्त्रोक्त-विधिसे उनकी पूजा की।

शास्त्रधर्मके विस्तार और इस आश्चर्यपूर्ण व्यवहारसे अत्यन्त प्रसन्न होकर नारदजीने भगवान् नर-नारायणके चरणोंमें प्रणाम किया और पूछा—'प्रभो! सम्पूर्ण वेद,शास्त्र और पुराण आपकी ही महिमाका गान करते हैं।' नारायण-भक्त श्रीनारदजीने श्रद्धापूर्वक निवेदन किया। 'आप अजन्मा, सनातन और निखिल प्राणि-जगत्के माता-पिता हैं। आप ही जगद्गुरु हैं। सम्पूर्ण देवता तथा मनुष्य आपकी ही उपासना करते हैं। फिर आप किसकी पूजा करते हैं, समझमें नहीं आता। बतलानेकी कृपा कीजिये।'

'ब्रह्मन्! यह अत्यन्त गोपनीय विषय है।' श्रीभगवान् बोले—'यह सनातन रहस्य किसीसे कहने योग्य नहीं, किंतु तुम्हारे-जैसे अत्यन्त प्रेमी भक्तसे छिपाना भी उचित नहीं। अतएव मैं तुम्हें बता रहा हूँ। सुनो, 'वे सदसत्स्वरूप परमात्मा ही हम दोनोंकी उत्पत्तिके कारण हैं—इस बातको जान लो। हम दोनों उन्हींकी पूजा करते तथा उन्हींको देवता और पितर मानते हैं। ब्रह्मन्! उनसे बढ़कर दूसरा कोई देवता या पितर नहीं है। वे ही हम लोगोंकी आत्मा हैं, यह जानना चाहिये, अतः हम उन्हींकी पूजा करते हैं। श्रेष्ठ द्विज उन्हींके उद्देश्यसे किये जानेवाले देवता तथा पितृसम्बन्धी कार्योंको ठीक-ठीक जानकर अपनी अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त कर लेते हैं।'

'आपने कृपापूर्वक गोपनीय विषय भी मुझपर प्रकट कर दिया, इसके लिये मैं आपका चिरकृतज्ञ रहूँगा।' नारदजीने कहा—'मुझे आपकी कृपाका ही सहारा है। अब मैं श्वेतद्वीपस्थित आपके आदिविग्रहका दर्शन करना चाहता हूँ। आप आज्ञा प्रदान करें।' भगवान् नारायणने श्रीनारदजीकी पूजा की और फिर उन्हें वहाँ जानेकी आज्ञा दे दी।

कुछ दिनोंके अनन्तर ब्रह्मपुत्र नारदजी जब अत्यन्त अद्भुत श्वेतद्वीपका तथा प्रभुका दुर्लभ दर्शन कर लौटे, तब पुनः गन्धमादन पर्वतपर भगवान् नर-नारायणके समीप पहुँचे। वे भगवान् नर-नारायणके परम तेजस्वी अद्भुत रूपका दर्शन कर कृतार्थताका अनुभव करते हुए सोचने लगे—'अरे, मैंने श्वेतद्वीपमें भगवान्के, सभीके भीतर जिन सर्वभूतवन्दित सदस्योंका दर्शन किया था, वे दोनों श्रेष्ठ ऋषि भी तो वैसे ही हैं।'

भगवान् नर-नारायणने नारदजीका स्वागत कर उनका कुशल-समाचार पूछा। नारदजीने अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिसे भगवान् नर-नारायणकी परिक्रमा की और उनके सम्मुख वे एक कुशासनपर बैठे। भगवान् नर-नारायण भी पाद्यार्घ्यादिसे नारदजीका पूजन कर उनके सामने अपने-अपने आसनोंपर बैठ गये। तब नर-नारायणने अत्यन्त मधुर वाणीमें नारदजीसे पूछा—'देवर्षे! तुमने श्वेतद्वीपमें जाकर हम दोनोंके कारणरूप परब्रह्म परमेश्वरका दर्शन कर लिया?'

'भगवन्! अत्यन्त दया कर विश्वरूपधारी, अविनाशी परम पुरुषने मुझे अपना परम दुर्लभ दर्शन दिया। निखिल ब्रह्माण्ड उन अचिन्त्य, अनन्त, अपरिसीम, महामहिम परमात्मामें

ही स्थित है।' श्रीनारदजीने कहा—'श्रीभगवान्‌ने मुझे सम्पूर्ण धर्म, क्षेत्रज्ञ एवं भावी अवतारोंके सम्बन्धमें भी बताया था। प्रभो ! मैं इस समय भी आप दोनों सनातन पुरुषोंको देखकर यहाँ श्वेतद्वीप-निवासी भगवान्‌की झाँकी कर रहा हूँ। वहाँ मैंने अव्यक्तरूपधारी श्रीहरिको जिन लक्षणोंसे सम्पन्न देखा था, आप दोनों व्यक्तरूपधारी पुरुष भी उन्हीं लक्षणोंसे सुशोभित हैं।' नारदजीने आगे कहा—'इतना ही नहीं, उन परमात्माके मीप मैंने आप दोनों महापुरुषोंको भी देखा था और उन परम भुके आदेशसे ही मैं यहाँ पुनः आपके समीप आया हूँ। लोक्यमें उन महाप्रभुके सदृश आपके सिवा अन्य कोई नहीं खता।'

'तुमपर श्रीभगवान्‌का बड़ा अनुग्रह है, जो उन्होंने तुम्हें पना दर्शन दे दिया।' नर-नारायण बोले—'परमात्माके उक्त लमें हम दोनोंके अतिरिक्त तुम्हारे पिता कमलयोनि ब्रह्माके प्रवेशका अधिकार,नहीं है। उन प्रभुको भक्तके समान और ोई प्रिय नहीं। अपने मनको एकाग्र कर लेनेवाले शौच-तोष आदि नियमोंसे सम्पन्न, जितेन्द्रिय भक्त ही अनन्यभावसे नके चरण-कमलोंकी शरण ग्रहण कर उन वासुदेवमें प्रवेश रते हैं। हम दोनों यहाँ धर्मका अवतार ग्रहण कर इस दरिकाश्रममें कठोर तपश्चर्यामें लगे हैं। ब्रह्मन्! उन्हीं गवान् परमदेव परमात्माके तीनों लोकोंमें जो देवप्रिय वतार होनेवाले हैं, उनका सदा ही परम मङ्गल हो—यह मारी इस तपस्याका उद्देश्य है।' भगवान् नर-नारायणने गे कहा—'ब्रह्मन्! तुमने श्वेतद्वीपमें भगवान्‌के दर्शन और उनसे वार्तालाप किया, यह सब हमें विदित है।'

नर और नारायणकी यह बात सुनकर नारदजी उनके चरणोंमें गिर पड़े और फिर वहीं रहकर भगवान् वासुदेवकी एवं नर-नारायणकी आराधनामें लग गये। उन्होंने नारायण-सम्बन्धी अनेक मन्त्रोंका जप करते हुए भगवान् नर-नारायणके पवित्रतम आश्रममें एक हजार दिव्य वर्षोंतक निवास किया।

× × × ×

द्वापरमें भू-भार-हरण करनेके लिये अवतरित होनेवाले कमलनयन श्रीकृष्ण और उनके प्राणप्रिय सखा पाण्डुनन्दन अर्जुनके रूपमें भगवान् नर-नारायणने ही अवतार ग्रहण किया था। द्वारकामें ब्राह्मणके मृतपुत्रोंको लानेके लिये जब मधुसूदन कुन्तीपुत्र अर्जुनके साथ शेषशायी अनन्त भगवान्‌के पास पहुँचे, तब ब्राह्मणके मृतपुत्रोंको लौटाते हुए उन्होंने स्वयं उन दोनोंसे कहा था—'श्रीकृष्ण और अर्जुन ! मैंने तुम दोनोंको देखनेके लिये ही ब्राह्मणके बालक अपने पास मँगा लिये थे। तुम दोनोंने धर्मकी रक्षाके लिये मेरी कलाओंके साथ पृथ्वीपर अवतार ग्रहण किया है, पृथ्वीके भाररूप दैत्योंका संहार करके शीघ्र-से-शीघ्र तुमलोग फिर मेरे पास लौट आओ। तुम दोनों ऋषिवर नर और नारायण हो। यद्यपि तुम पूर्णकाम और सर्वश्रेष्ठ हो, फिर भी जगत्‌की स्थिति और लोक-संग्रहके लिये धर्मका आचरण करो।'

भगवान् नर-नारायणका अवतार कल्पपर्यन्त तपश्चर्याके लिये हुआ है। वे प्रभु आज भी बदरिकाश्रममें तप कर रहे हैं। अधिकारी पुरुष उनके दर्शन भी प्राप्त कर सकते हैं।

भगवान् यज्ञ

बात है स्वायम्भुव मन्वन्तरकी। स्वायम्भुव मनुकी निष्पापा त्नी शतरूपाके गर्भसे महाभागा आकूतिका जन्म हुआ। वे चि प्रजापतिकी पत्नी हुईं। इन्हीं आकूतिकी कुक्षिसे धरणीपर र्मका प्रचार करनेके लिये आदिपुरुष श्रीभगवान् अवतरित ए। उनकी 'यज्ञ' नामसे ख्याति हुई। इन्हीं परमप्रभुने यज्ञका वर्तन किया और इन्हींके नामसे यह प्रचलित हुआ। उनसे वताओंकी शक्ति बढ़ी और उस शक्तिसे सारी सृष्टि शक्तिशालिनी हुई।

परम धर्मात्मा स्वायम्भुव मनुकी धीरे-धीरे सांसारिक विषय-भोगोंसे अरुचि हो गयी। संसारसे विरक्ति हो जानेके कारण उन्होंने राज्य त्याग दिया और अपनी महिमामयी पत्नी शतरूपाके साथ तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। वे पवित्र सुनन्दा नदीके तटपर एक पैरपर खड़े होकर आगे दिये हुए मन्त्रमय उपनिषत्स्वरूप श्रुति * का निरन्तर जप करने लगे। वे

* पूरी श्रुति श्रीमद्भागवतके आठवें स्कन्धके प्रथम अध्यायमें श्लोक-संख्या ९से १६ तक देखनी चाहिये।

तपस्या करते हुए प्रतिदिन श्रीभगवान्की स्तुति करते थे—

येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम्।
यो जागर्ति शयानेऽस्मिन् नायं तं वेद वेद सः॥
यं न पश्यति पश्यन्तं चक्षुर्यस्य न रिष्यति।
तं भूतनिलयं देवं सुपर्णमुपधावत॥

(श्रीमद्भा० ८।१।९, ११)

'जिनकी चेतनाके स्पर्शमात्रसे यह विश्व चेतन हो जाता है, किंतु यह विश्व जिन्हें चेतनाका दान नहीं कर सकता, जो इसके सो जानेपर प्रलयमें भी जागते रहते हैं, जिन्हें यह विश्व नहीं जान सकता, परंतु जो इसे जानते हैं, वे ही परमात्मा हैं। भगवान् सबके साक्षी हैं। उन्हें बुद्धि-वृत्तियाँ या नेत्र आदि इन्द्रियाँ नहीं देख सकतीं, परंतु उनकी ज्ञान-शक्ति अखण्ड है। समस्त प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाले उन्हीं 'स्वयंप्रकाश' असङ्ग परमात्माकी शरण ग्रहण करो।'

इस प्रकार स्तुति एवं जप करते हुए उन्होंने सौ वर्षतक अत्यन्त कठोर तपश्चरण किया। एकाग्र-चित्तसे इस मन्त्रमय उपनिषत्स्वरूप श्रुतिका पाठ करते-करते उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि नहीं रही। उसी समय वहाँ अत्यन्त क्षुधार्त असुरों एवं राक्षसोंका समुदाय एकत्र हो गया। वे ध्यानमग्न परम तपस्वी मनु और शतरूपाको खानेके लिये दौड़े।

सर्वान्तर्यामी आकूतिनन्दन भगवान् यज्ञ अपने यामनामक पुत्रोंके साथ तुरंत वहाँ पहुँच गये। राक्षसोंसे भयानक संग्राम हुआ। अन्तः राक्षस पराजित हुए। कालके गालमें जानेसे बचे असुर और राक्षस अपने प्राण बचाकर भागे।

भगवान् यज्ञके पौरुष एवं प्रभावको देखकर देवताओंकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। उन्होंने भगवान्से देवेन्द्र-पद स्वीकार करनेकी प्रार्थना की। देव-समुदायकी तुष्टिके लिये भगवान् इन्द्रासनपर विराजित हुए। इस प्रकार श्रीभगवान्ने इन्द्र-पद-पालनका आदर्श उपस्थित किया।

भगवान् यज्ञके उनकी धर्मपत्नी दक्षिणासे अत्यन्त तेजस्वी बारह पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे ही स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें 'याम' नामक बारह देवता कहलाये।

ऋषभदेवके अवतारकी कथा

स्वायम्भुवमनुके वंशमें नाभि नामक एक राजा थे। उन्होंने भगवान् नारायणको पुत्ररूपमें प्राप्त करनेके लिये कठोर तपस्या की और अनेक यज्ञ-यागादि किये। उनकी हरिभक्ति और तपस्यासे प्रसन्न हो नारायणने प्रकट होकर उन्हें पुत्ररूपमें प्राप्त करनेका वर प्रदान किया। कालान्तरमें नाभिकी सौभाग्य-शालिनी पत्नी मेरुदेवीसे भगवान्का आविर्भाव हुआ, जो ऋषभदेवके नामसे विख्यात हुए। उन्हें युवराजपदपर अभिषिक्त कर राजा नाभि अपनी सहधर्मिणी मेरुदेवीके साथ तप करने बदरिकाश्रम चले गये। वहाँ वे नर-नारायणकी उपासना एवं उनका चिन्तन करते हुए अन्तमें उन्हींमें विलीन हो गये।

ऋषभदेव धर्मपूर्वक अपनी प्रजाका पालन करने लगे। प्रजा उन्हें भगवान् मानकर उनकी पूजा करती थी। शचीपति इन्द्रको यह उत्कर्ष सहा न हो सका, उन्होंने इनके तेज तथा योगबलकी परीक्षा करनेके लिये वर्षा बंद कर दी, किंतु उन्होंने अपने प्रभावसे सजल मेघोंकी सृष्टि कर जल-वर्षण कर लिया। समस्त भूमि पुनः सस्यश्यामला बन गयी। इन्द्रका अभिमान गल गया। उन्होंने अपनी पुत्री जयन्तीका विवाह इनसे कर दिया। योगी ऋषभदेवजीने लोक-मर्यादाकी रक्षाके लिये गृहस्थ-धर्मका पालन किया। इनके सौ पुत्रोंमें नौ पुत्र बड़े गुणवान् एवं महायोगी हुए। जिनमें राजर्षि भरत सबसे बड़े थे। वे इतने प्रतापी नरेश हुए कि उन्हींके नामपर इस अजनाभखण्डका नाम भारतवर्ष प्रख्यात हुआ।

एक बारकी बात है। महायोगी ऋषभदेव भ्रमण करते हुए गङ्गा-यमुनाके मध्यकी भूमि ब्रह्मावर्तमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने प्रख्यात महर्षियोंके साथ अपने पुत्रोंको भी बैठे हुए देखा, तब उन्हें कल्याणकारी योग-साधनाका तत्त्वोपदेश दिया। वे कभी सर्वत्र घूम-घूमकर लोक-कल्याणके लिये उपदेश करते रहते थे और कभी मौन रहते थे। उनकी योगचर्या विलक्षण थी। उनका वेष उन्मत्तोंके समान था। वे दिगम्बर होकर विचरण किया करते थे। उनका आचरण अवधूतोंके समान था। शौचाशौच, ग्राह्याग्राह्य, भेदाभेद तथा खाद्याखाद्यमें उनकी सर्वथा अभेद-बुद्धि थी। उन्हें सभी प्राणियोंमें ब्रह्मके दर्शन होते थे। उन्होंने त्याग और वैराग्यका उपदेश देते हुए स्त्रीके

प्रति आसक्तिको ही मोह (अज्ञान) का मुख्य कारण बताया। अतः इससे निवृत्त होकर परमपदको प्राप्त करना चाहिये। ज्ञान-मार्गियों तथा योगियोंके लिये तो उनकी अवधूतावस्था परम श्रेयस्कर थी, परंतु सर्वसाधारणके लिये यह मार्ग अत्यन्त दुष्कर था। वे उनकी अवधूतचर्या तथा उनके उन्मत्तवेषको न समझकर उनका परिहास करने लगे, किंतु सबमें समता तथा सर्वत्र ब्रह्ममय देखनेवाले ऋषभदेवजीको इसका कुछ भी भान नहीं रहता था। वे नदियोंमें खड़े-खड़े मुँह लगाकर पानी पी लेते थे, शौचादिकी शुद्धि नहीं करते थे, पशुओंके समान भूमिपर विचरण करते थे, मल-मूत्रादि तथा भोजनमें कोई भेद नहीं रखते थे। उनका स्त्री-पुरुषमें अथवा अन्य कूकर-शूकरादिमें समभाव था। परम ज्ञानी होनेपर भी उनका आचरण मूर्खो-जैसा था। वे किसीके प्रश्नका उत्तर न देकर मौन ही रहते थे, धूलि-धूसरित शरीरसे जिधर जीमें आता दौड़ने लगते। बच्चें उनके पीछे-पीछे तालियाँ बजाते, किंतु उन्हें कोई चिन्ता नहीं। उनकी नग्नावस्था देख कोई गाली देता, कोई डंडेसे मारता, कोई कंकड़-पत्थर फेंकता, परंतु शरीरके प्रति अनासक्ति और मैं-पनका अभाव होनेके कारण वे कुछ नहीं बोलते थे। कहीं कोई कुछ दे देता तो वे खा लेते, माँगते नहीं थे। वे लेटे-लेटे ही मल-मूत्रका त्याग कर उसे अपने शरीरमें पोत लेते। इस प्रकारकी अद्भुत योगचर्याओंका आचरण करते हुए वे निरन्तर आनन्दमग्न रहते थे। उनका यह जीवन अनुकरणीय नहीं है। यह तो एक अवस्थाविशेष है, जहाँतक पहुँचना सामान्यके लिये असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। इसी विचित्र आचरणको देखते हुए सनातनधर्मावलम्बियोंने इस अवधूतचर्याके मार्गको सर्व-साधारणके लिये अग्राह्य समझकर यथावत् रूपमें स्वीकार नहीं किया।

इनकी परमहंसावस्थामें किये गये स्वच्छन्दाचरणको जैनियोंने परमधर्म माना। जैनियोंके ये आदितीर्थङ्कर हैं। जैनाचार्योंने इन्हींके आचारको आदर्श माना। इनके बहुत-से शिष्य भी हुए, जो धर्मोपदेश करते थे। जैन-हरिवंशादिपुराणोंमें ऋषभदेवजीका विस्तृत जीवन-चरित्र वर्णित है।

आदिराज पृथुकी अवतार-कथा

स्वायम्भुव मनुके वंशमें अङ्गनामक प्रजापतिका विवाह मृत्युकी मानसिक पुत्री सुनीथाके साथ हुआ। उनके वेन नामक एक पुत्र हुआ। वह अपने मातामह (नाना) के स्वभावका हुआ। इस कारण वह अत्यन्त उग्र, अधार्मिक, परपीडक तथा अत्याचारी था। उसके अत्याचारोंसे प्रजा अत्यन्त कष्टमें थी। राजपदपर अभिषिक्त होते ही उसने घोषणा कर दी—'भगवान् यज्ञपुरुष मैं ही हूँ, मेरे अतिरिक्त यज्ञका भोक्ता कोई दूसरा नहीं हो सकता। इसलिये कभी कोई यज्ञ, दान और तप, हवन, पूजा-पाठ आदि न करे।' सर्वेश्वर हरिकी निन्दा तथा उसके अधर्माचरणसे क्रुद्ध महर्षियोंने मन्त्रपूत कुशोंद्वारा उसे मार डाला।

माता सुनीथाने अपने पुत्र वेनके शरीरको सुरक्षित रखा। राजाके अभावमें राज्यमें सर्वत्र अराजकता व्याप्त हो गयी। ऐसा देखकर ऋषियों तथा ब्राह्मणोंने वेनके शरीरका मन्थन किया, उससे एक स्त्री-पुरुषका जोड़ा प्रकट हुआ। ऋषियोंने बताया कि ये पुरुष भगवान् विष्णुकी विश्वपालिनी कलासे प्रकट हुए हैं और स्त्री उन परम पुरुषकी शक्ति लक्ष्मीजीका अवतार हैं। ये ही दोनों महाराज पृथु तथा महारानी अर्चिके नामसे विख्यात हुए। देवताओं तथा ऋषियोंद्वारा महाराज पृथुका राज्याभिषेक किया गया।

उस समय वेनद्वारा किये गये अत्याचारसे पृथ्वीका अन्न नष्ट हो गया था। सर्वत्र भीषण दुर्भिक्ष फैला हुआ था। धर्मकी मर्यादाएँ टूट चुकी थीं। प्राणप्रिय प्रजाके आर्तनादसे व्याकुल हो महाराज पृथुने सोचा कि पृथ्वीने ही अन्न एवं ओषधियोंको अपने भीतर छिपा लिया है। यह विचार मनमें आते ही वे अपना 'आजगव' नामक दिव्य धनुष और बाण लेकर अत्यन्त क्रोधपूर्वक पृथ्वीके पीछे दौड़े। उन्हें शस्त्र उठाये देखकर पृथ्वी काँप उठी और भयभीत मृगीकी भाँति गौका रूप धारणकर प्राण लेकर भागी। दिशा-विदिशा, धरती, आकाश और स्वर्गतक वह भागती गयी, किंतु सर्वत्र उसे धनुषकी प्रत्यञ्चा अपना तीक्ष्ण बाण चढ़ाये, लाल आँखें किये अत्यन्त क्रुद्ध सम्राट् पृथु दीखते ही रहे। तब अपनी प्राणरक्षाके लिये विवश

होकर पृथ्वीने कहा—'राजन्! मुझे मारनेपर आपको स्त्री-वधका पाप लगेगा।' यह सुनकर महाराज पृथु बोले—जहाँ एकके वधसे बहुतोंकी विपत्ति टल जाती हो और सब सुखी होते हों वहाँ उसका वध पाप नहीं, अपितु पुण्यप्रद ही होता है।' तब उन्होंने गोरूपधारिणी पृथ्वीको दुहकर अन्न, दूध, दही और ओषधियोंको प्राप्त किया तथा पर्वत, नदी, समुद्र आदिकी मर्यादा स्थापित की। सारे संसारका स्वामी होनेसे इन्हींके नामपर भूमिका नाम पृथ्वी पड़ा।

महाराज पृथुके राज्यमें सर्वत्र सुख-शान्ति थी। प्रजा सर्वथा निश्चिन्त रहकर अपने-अपने धर्मका पालन करती थी। उस समय किसीको बुढ़ापा, दुर्भिक्ष तथा आधि-व्याधिका कष्ट नहीं था। इतना ही नहीं, इनके शासनमें इच्छित वस्तुएँ स्वयं प्राप्त हो जाती थीं। राज्यमें सर्वत्र पुण्य-ही-पुण्य होता था। महाराज पृथुके चरणोंमें सारा जगत् देवताके समान मस्तक झुकाता था। वे सागरकी ओर जाते तो उसका जल स्थिर हो जाता। पर्वत उन्हें मार्ग दे देते थे। त्रिभुवनमें सर्वत्र उनके रथकी पताका सदा फहराती रही। चक्रवर्ती सम्राट् पृथु अत्यन्त धर्मात्मा तथा परम भगवद्भक्त थे। उन्होंने ब्रह्मावर्त-क्षेत्रमें सौ अश्वमेध यज्ञोंकी दीक्षा ली और उनके अनुष्ठानमें संलग्न हो गये। देवराज इन्द्रको यह अच्छा नहीं लगा। उन्हें अपना इन्द्रासन छिन जानेका भय था, क्योंकि सौ अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न कर लेनेवाला इन्द्रपदका अधिकारी बन जाता है। निन्यानबे अश्वमेध-यज्ञ पूर्ण हो चुके थे, सौवाँ यज्ञ चल रहा था। उसी समय इन्द्रने उनका यज्ञीय अश्व चुरा लिया। पृथुके महारथी पुत्र विजिताश्वने इन्द्रको पराजित कर घोड़ा वापस ले लिया। देवराज इन्द्रका यह कुकृत्य देखकर महाराज पृथु अत्यन्त क्रुद्ध हो गये, किंतु याजकोंने उन्हें शान्त कर दिया। ब्रह्माजीने प्रकट होकर यज्ञका अवशिष्ट भाग पूर्ण करवाया। तब इन्द्रने क्षमा माँगी और वे उनके अभिन्न मित्र बन गये। पृथुकी सहिष्णुता, निष्कामभाव और अनन्य-भक्तिको देखकर साक्षात् श्रीनारायणने उन्हें दर्शन दिया और अनेक वर प्रदान किये। पृथुने कहा—'प्रभो! मुझे कुछ नहीं चाहिये। मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप मुझे दस हजार कान दे दीजिये, जिनसे मैं आपके लीला-गुणोंको सुनता ही रहूँ।' यह सुनकर भगवान् अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्हें हरिभक्तिका उपदेश देकर अपने लीलाधामको चले गये।

आदिराज पृथुने गङ्गा-यमुनाके मध्यवर्ती क्षेत्र प्रयागको अपना निवास-स्थान बनाया। वे सर्वथा अनासक्तभावसे तत्परतापूर्वक प्रजाका पालन करते थे। इनके यज्ञ-यागादि अनुष्ठानोंमें देवगण, ऋषि, महर्षि उपस्थित रहते थे। इनके अन्तिम यज्ञमें प्रयागमें सनकादि प्रकट हुए थे। उन्होंने इन्हें भक्ति एवं ज्ञानका उपदेश दिया। महाराज पृथुने अपनी प्रजाको धर्माचरणका उपदेश किया था। सभी ऋषियोंने इनकी सराहना की। इन्होंने ऋषियोंकी पूजा की और अन्तमें ये अपना राज्य पुत्रोंको सौंपकर महारानी अर्चिके साथ तपस्याके लिये वनमें चले गये। वहाँ उन्होंने अत्यन्त कठोर तपस्या करते हुए अन्तमें श्रीनारायणमें चित्त स्थिर कर लिया और योगमार्गका आश्रय लेते हुए इस शरीरका परित्याग कर दिया। इनकी पत्नी अर्चि भी इनके साथ चितामें जलकर सती हो गयीं।

पृथ्वीपर महाराज पृथु जैसे आदि राजा थे, उसी प्रकार महारानी अर्चि भी प्रथम सती थीं। राजा पृथुके आगेके वंशधर भी उन्हींके समान पुण्यात्मा और धर्मात्मा हुए थे। इन्द्रसे घोड़ा छीन लेनेके कारण इनके बड़े पुत्रका नाम विजिताश्व पड़ा था। इनके तीन पुत्र और थे। ये चारों चारों दिशाओंके स्वामी हुए।

धन्वन्तरिके अवतारकी कथा

एक बार देवताओं और असुरोंने अमृत-प्राप्तिकी इच्छासे समुद्र-मन्थन किया। उस समय उसमेंसे दिव्य कान्तिसे सुशोभित, अनेक अलंकरणोंसे सुसज्जित, सर्वाङ्ग-सुन्दर, अद्भुत पराक्रम एवं तेजसे सम्पन्न, अपने हाथमें अमृत-पूर्ण कलश लिये, विष्णुके नामोंका जप करते हुए पीताम्बरधारी एक अलौकिक पुरुष प्रकट हुए। भगवान् विष्णुके अंशावतार वे ही धन्वन्तरिके नामसे प्रसिद्ध हुए और आयुर्वेदके प्रवर्तक कहलाये (भागवत ८।८।३१-३५)। उनका आविर्भाव कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी (धनतेरस) को हुआ था। आज भी प्रतिवर्ष इसी तिथिको आरोग्य-देवताके रूपमें उनकी जयन्ती

मनायी जाती है। उनके नामका स्मरण करनेमात्रसे समस्त रोग दूर हो जाते हैं, इसीलिये वे श्रीमद्भागवत (९। १७। ५)में **'स्मृतिमात्रार्तिनाशनः'** कहे गये हैं।

हरिवंशपुराण (अ० २८) के अनुसार उन्होंने प्रकट होनेपर जब भगवान् नारायणका साक्षात् दर्शन किया, तब वे स्तब्ध रह गये। भगवान्ने उनसे कहा—'तुम अप् अर्थात् जलसे उत्पन्न हो इसलिये तुम्हारा नाम होगा 'अब्ज'।' इसपर अब्ज (धन्वन्तरि) ने कहा—'प्रभो! मैं आपका पुत्र हूँ। आप मेरे लिये यज्ञभागकी व्यवस्था कीजिये और लोकमें कोई स्थान दीजिये।' भगवान् बोले—'वत्स! महर्षियोंने हवनीय पदार्थोंका विनियोग मात्र देवताओंके लिये ही किया है। तुम देवताओंके पश्चात् उत्पन्न हुए हो, अतः यज्ञ-भागके अधिकारी नहीं हो, किंतु दूसरे जन्ममें तुम अत्यन्त प्रसिद्धिको प्राप्त करोगे। वहाँ गर्भावस्थामें ही तुम्हें अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त हो जायँगी, इन्द्रियोंसहित तुम्हारा शरीर जरा और विकारोंसे रहित रहेगा। तुम उसी शरीरसे देवत्व प्राप्त करोगे तथा ब्राह्मणलोग चरु, मन्त्र, व्रत एवं जपनीय मन्त्रोंद्वारा तुम्हारा यजन करेंगे। द्वापरयुगमें तुम काशिराजके वंशमें उत्पन्न होकर पृथ्वीपर आयुर्वेदशास्त्रका प्रचार करोगे और इसके प्रवर्तकरूपमें समस्त आयुर्वेदशास्त्रको आठ भागोंमें विभक्त कर आठ अङ्गोंसे[1] युक्त बनाओगे।' यह कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये तदनन्तर इन्द्रके अनुरोधपर धन्वन्तरि भी देव-वैद्य होना स्वीकार कर अमरावतीमें निवास करने लगे।

द्वापरयुगकी बात है। चन्द्रवंशी राजा धन्व पुत्रके अभावमें अत्यन्त दुःखी थे। उन्होंने पुत्र-प्राप्तिके लिये अब्जपति भगवान् नारायणका ध्यान किया; उनकी आराधनासे प्रकट हुए और धन्वन्तरिके रूपमें उत्पन्न होनेका उन्हें वर प्रदान किया। वरदानके फलस्वरूप भगवान् धन्वन्तरिने काशिराजके वंशमें धन्वके पुत्र-रूपमें अवतार धारण किया। उन्होंने भरद्वाजसे आयुर्वेद तथा चिकित्सा-कर्मका ज्ञान प्राप्त कर आयुर्वेद-शास्त्रको आठ भागोंमें विभक्त किया एवं लोककल्याणार्थ इसका प्रचार किया। उनके एक पुत्र हुआ जो केतुमान् नामसे विख्यात था।

आयुर्वेदके प्रसिद्ध ग्रन्थ भावप्रकाश (१। १। ६६—८९) में धन्वन्तरिके अवतारकी यह कथा इस प्रकार उपलब्ध होती है। एक समय देवराज इन्द्रने देखा कि पृथ्वीके प्राणी रोगोंसे अत्यन्त पीड़ित हैं, तब प्राणियोंकी पीड़ा नष्ट करनेके लिये दयार्द्र होकर उन्होंने धन्वन्तरिको पृथ्वीमें काशीपुरीका राजा होनेको कहा और आयुर्वेदका प्रचार करनेके लिये उन्हें आयुर्वेदका उपदेश दिया। तत्पश्चात् धन्वन्तरिने काशीमें क्षत्रिय राजाके घर जन्म लिया और वे 'दिवोदास' नामसे भूमण्डलमें विख्यात हुए। वे बालपनसे ही परम वैरागी होकर दुष्कर तपमें प्रवृत्त हो गये थे, किंतु ब्रह्माकी आज्ञासे उन्होंने राजा बनना स्वीकार किया। काशिराज दिवोदास (धन्वन्तरि) आयुर्वेदके साथ ही सभी शास्त्रोंके ज्ञाता थे। उन्होंने जीवमात्रके कल्याण-कामनासे अपने नामसे 'धन्वन्तरिसंहिता' नामक एक ग्रन्थ-रत्नका प्रणयन किया[2]। विश्वामित्र आदि ऋषियोंने अपनी ज्ञान-दृष्टिसे जान लिया था कि काशिराज दिवोदास साक्षात् धन्वन्तरि ही हैं। विश्वामित्रने अपने पुत्र सुश्रुतको उनसे आयुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण करनेके लिये कहा। सुश्रुत एक सौ मुनिपुत्रोंके साथ उनके पास गये। काशिराज धन्वन्तरिने उन सभीको अष्टाङ्ग आयुर्वेदका उपदेश किया। उनमेंसे सुश्रुत अन्यतम शिष्य थे। उनके द्वारा रचित ग्रन्थ सुश्रुत-संहिताके नामसे प्रसिद्ध है। भगवान् धन्वन्तरिने लोककल्याणार्थ अवतार ग्रहण किया।

इस जगत्में क्षमा वशीकरणरूप है। भला क्षमासे क्या नहीं सिद्ध होता? जिसके हाथमें शान्तिरूपी तलवार है, उसका दुष्ट पुरुष क्या कर लेंगे?

---

[1] अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता। कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान्॥ (अष्टांगहृ०, सूत्र० १। ५-६)
आयुर्वेदशास्त्रके आठ अङ्ग ये हैं — १-कायचिकित्सा, २-बालचिकित्सा, ३-ग्रहचिकित्सा, ४-ऊर्ध्वाङ्गचिकित्सा, ५-शल्यचिकित्सा, ६-दंष्ट्रचिकित्सा, ७-जराचिकित्सा तथा ८-वृष-चिकित्सा।

[2] वर्तमानमें इस नामका कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता।

श्रीमोहिनी

जरा-मृत्यु-निवारिणी सुधाकी प्राप्तिके लिये देवता और दैत्योंने मिलकर क्षीरसागरका मन्थन किया। अनेक अलौकिक वस्तुओंके अनन्तर जब श्वेत वस्त्रधारी भगवान् धन्वन्तरि अमृत-कलश लिये प्रकट हुए, तब सुधापानके लिये आतुर असुर उनके हाथसे अमृत-घट छीनकर भाग खड़े हुए। प्रत्येक असुर अद्भुत शक्ति एवं अमरता प्रदान करनेवाला अमृत सर्वप्रथम पी लेना चाहता था। किसीको धैर्य नहीं था। किसीका विश्वास नहीं था।

'पूरा अमृत कहीं एक ही पी गया तो?' सभी सशङ्क थे। सभी चिन्तित थे। अमृत-घट प्राप्त करनेके लिये सब परस्पर छीना-झपटी और तू-तू, मैं-मैं करने लगे। 'इस छीना-झपटीमें कहीं अमृत-कलश उलट गया और अमृत गिर गया तब?'—यह प्रश्न सबके सम्मुख था, किंतु स्वार्थके सम्मुख वस्तुस्थितिका विचार कौन करता? दैत्योंसे न्याय और धर्मकी आशा व्यर्थ थी। दुर्बल देवता दूर उदास और निराश खड़े थे। कोई समाधान नहीं था।

सहसा कोलाहल शान्त हुआ। देवता और दानवोंकी दृष्टि एक स्थानपर टिक गयी। अनुपम रूप-लावण्य-सम्पन्न लोकोत्तर रमणी सामने खड़ी थी। नखसे शिखतक उसके अङ्ग-अङ्गपर कोटि-कोटि रतियोंका अनूप रूप न्योछावर था— सर्वथा फीका था। उन मोहिनी-रूपधारी श्रीभगवान्‌को देखकर सब-के-सब मोहित और मुग्ध हो गये।

'सुन्दरि! तुम उचित निर्णय कर दो।' असुरोंने अद्भुत छटा बिखेरती त्रैलोक्यमोहिनीसे कहा। 'हम सभी कश्यपके पुत्र हैं और अमृत-प्राप्तिके लिये हमने समानरूपसे श्रम किया है। तुम इसे हम दैत्य और देवताओंमें निष्पक्ष-भावसे वितरित कर दो, जिससे हमारा यह विवाद समाप्त हो जाय।'

'आपलोग परम पुनीत महर्षि कश्यपकी संतान हैं।'— मोहिनीने मन्द-स्मितसे जैसे सुधा-वृष्टि कर दी। 'और मेरी जाति और कुल-शीलसे आप सर्वथा अपरिचित हैं। फिर आपलोग मेरा विश्वास कर यह दायित्व मुझे क्यों सौंप रहे हैं?'

'हमें आपपर विश्वास है।' मोहिनीरूपधारी जगत्पति श्रीभगवान्‌के अलौकिक सौन्दर्यसे मोहित असुरोंने अमृत-घट उनके हाथमें दे दिया।

'मेरी वितरण-पद्धतिमें यदि आपलोगोंको तनिक भी आपत्ति न हो तो मैं यह कार्य कर सकती हूँ।' अत्यन्त मोहग्रस्त करनेवाली मोहिनीने आश्वासन चाहा। 'अन्यथा यह काम आपलोग स्वयं कर लें।'

'हमें कोई आपत्ति नहीं।' मोहिनीकी मधुर वाणी सुनकर दैत्योंने कहा। 'आप निष्पक्षभावसे सुधा-वितरण करनेमें स्वतन्त्र हैं।'

देवता और दैत्य—दोनोंने एक दिन उपवास कर स्नान किया, नूतन वस्त्र धारणकर अग्निमें आहुतियाँ दीं, ब्राह्मणोंसे स्वस्तिपाठ कराया और वे सब पूर्वाग्र कुशोंके आसनोंपर पृथक्-पृथक् पङ्क्तिमें बैठ गये। तब अमित सौन्दर्यराशि मोहिनीने अपने सुकोमल कर-कमलोंमें अमृत-कलश उठाया। स्वर्णमय नूपुर झंकृत हो उठे। देवता और असुरोंकी दृष्टि भुवनमोहिनी मोहिनीकी ओर थी। मोहिनीने मुस्कुराते हुए दैत्योंकी ओर दृष्टिपात किया। वे आनन्दोन्मत्त हो गये। तब उन्होंने दूरकी पङ्क्तिमें बैठे अमरोंको अमृत-पान कराना प्रारम्भ किया। अपने वचन एवं त्रैलोक्य-दुर्लभ मोहिनीकी रूपराशिसे मर्माहत असुरगण चुपचाप अपनी पारीकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें लावण्यमयी मोहिनीकी प्रेम-प्राप्तिकी आशा थी, विश्वास था।

धैर्य धारण न कर सकनेके कारण छाया-पुत्र राहु देवताओंके वेषमें सूर्य-चन्द्रके समीप बैठ गया। अमृत उसके कण्ठके नीचे उतर भी न पाया था कि दोनों देवताओंने इङ्गित कर दिया और दूसरे ही क्षण क्षीराब्धिशायी प्रभुके तीक्ष्णतम चक्रसे उसका मस्तक कटकर पृथ्वीपर जा गिरा। चौंककर दानवोंने देखा तो मोहिनी शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी सजल मेघश्याम श्रीविष्णु बन गयी। असुरोंका मोह-भङ्ग हुआ। उन्होंने कुपित होकर शस्त्र उठाया और भयानक देवासुर-संग्राम छिड़ गया।

सम्पूर्ण सृष्टि भगवान् मायापतिकी माया है। कामके वशीभूत सभी प्रभुके उस मायारूपपर लुब्ध हैं, आकृष्ट हैं। आसुरभावसे अमरता प्रदान करनेवाला अमृत प्राप्त होना सम्भव नहीं। वह तो करुणामय प्रभुकी चरण-शरणसे ही सम्भव है।

आश्चर्यचकित एवं क्रुद्ध हुए। शत्रुको ढूँढ़नेके लिये वे दोनों दैत्य तत्काल अत्यन्त शीघ्रतासे रसातलके ऊपर पहुँचे तो वहाँ उन्होंने देखा कि महासागरकी विशाल लहरोंपर चन्द्रमाके तुल्य गौर-वर्णके सुन्दरतम भगवान् श्रीनारायण शेषनागकी शय्यापर अनिरुद्ध-विग्रहमें शयन कर रहे हैं।

'निश्चय ही इसीने रसातलसे वेदोंको चुराया है।' दैत्योंने अट्टहास करते हुए कहा। 'पर यह है कौन ? किसका पुत्र है ? यहाँ कैसे आया ? और यहाँ सर्पशय्यापर क्यों शयन कर रहा है ?' मधु-कैटभने अत्यन्त कुपित होकर भगवान् श्रीनारायणको जगाया। त्रैलोक्यसुन्दर विष्णुने नेत्र खोलकर चारों ओर देखा तो उन्होंने समझ लिया कि ये दैत्य युद्ध करनेके लिये कटिबद्ध हैं।

भगवान् उठे और उनका मधु और कैटभ दोनों महान् दैत्योंसे भयानक संग्राम छिड़ गया। श्रीविष्णुका उन अत्यन्त पराक्रमी दैत्योंसे पाँच सहस्र वर्षोंतक केवल बाहुयुद्ध चलता रहा। वे अपनी महान् शक्तिके मदसे उन्मत्त तथा श्रीभगवान्की महामायासे मोहमें पड़े हुए थे। उनकी बुद्धि भ्रमित हो गयी। तब हँसते हुए श्रीहरिने कहा—'अबतक मैं कितने ही दैत्योंसे युद्ध कर चुका हूँ, किंतु तुम्हारी तरह शूर-वीर मुझे कोई नहीं मिला। मैं तुमलोगोंके युद्ध-कौशलसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुमलोग कोई इच्छित वर माँग लो।'

श्रीभगवान्की वाणी सुनकर अहंकारके साथ दैत्योंने कहा—'विष्णो ! हम तुमसे याचना क्या करें ? तुम हमें क्या दोगे ? हम तुम्हारी वीरतासे अत्यन्त संतुष्ट हैं। तुम हमलोगोंसे कोई वर माँग लो।' श्रीभगवान्ने कहा—'यदि तुम दोनों मुझपर प्रसन्न हो तो अब मेरे हाथसे मारे जाओ। बस, इतना-सा ही मैंने वर माँगा है। इस समय दूसरे किसी वरसे क्या लेना है ?'

'हम तो ठगे गये।' भगवान् विष्णुकी वाणी सुन चकित होकर दैत्योंने देखा, सर्वत्र जल-ही-जल है। तब उन्होंने श्रीभगवान्से कहा—'जनार्दन ! तुम देवताओंके स्वामी हो। तुम मिथ्याभाषण नहीं करते। पहले तुमने ही हमें वर देनेके लिये कहा था। इसलिये तुम भी हमारा अभिलषित वर दे दो। जहाँ पृथ्वी जलमें डूबी हुई न हो—जहाँ सूखा स्थान हो, वहीं हमारा वध करो।'

'महाभाग ! जलशून्य स्थानपर ही मैं तुम्हें मार रहा हूँ।' श्रीभगवान् विष्णुने सुदर्शनचक्रको स्मरण किया और अपनी विशाल जाँघोंको जलपर फैलाकर मधु-कैटभको जलपर ही स्थल दिखला दिया और हँसते हुए उन्होंने दैत्योंसे कहा—'इस स्थानपर जल नहीं है, तुमलोग अपना मस्तक रख दो। आजसे मैं भी सत्यवादी रहूँगा और तुम भी।'

कुछ देरतक मधु और कैटभ दोनों महादैत्य भगवान्की वाणीकी सत्यतापर विचार करते रहे। फिर उन्होंने भगवान्की दोनों सटी हुई विशाल एवं विचित्र जाँघोंपर चकित होकर अपना मस्तक रख दिया और श्रीभगवान्ने तत्काल अपने तीक्ष्ण चक्रसे उन्हें काट डाला। दैत्योंका प्राणान्त हो गया और उनके चार हजार कोसवाले विशाल शरीरके रक्तसे सागरका सारा जल लाल हो गया।

इस प्रकार वेदोंसे सम्मानित और श्रीभगवान् नारायणसे सुरक्षित होकर लोकस्रष्टा ब्रह्मा सृष्टि-कार्यमें जुट गये।

दूसरे कल्पमें

प्रख्यात दितिपुत्र हयग्रीव सुन्दर, बलवान् एवं महापराक्रमी था। उसकी भुजाएँ विशाल थीं। वह पुण्यतोया सरस्वती नदीके पावन तटपर उपवास करता हुआ करुणामयी जगदीश्वरीके मायाबीजके एकाक्षर मन्त्रका जप करने लगा। उसने इन्द्रियोंको वशमें करके सम्पूर्ण भोगोंको त्याग दिया था। वह महान् दैत्य एक हजार वर्षतक श्रीजगदम्बाकी तामसी शक्तिकी आराधना करता हुआ उग्र तप करता रहा।

'सुव्रत ! वर माँगो।' करुणामयी सिंहवाहिनीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर हयग्रीवसे कहा। 'तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो मैं उसे देनेके लिये तैयार हूँ।'

'सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी कल्याणमयी देवि !' प्रेमसे पुलकित नेत्रोंमें अश्रुभरे हयग्रीवने भगवती जगदम्बाकी स्तुति की—'आपके चरणोंमें प्रणाम है। पृथ्वीपर, आकाशमें और जहाँ-कहीं जो कुछ है, वह सब आपसे ही उत्पन्न हुआ है। आप दयामयी हैं। आपकी महिमाका पार पाना सम्भव नहीं।'

'तुम इच्छित वर माँग लो।' त्रैलोक्येश्वरी भगवतीने हयग्रीवसे पुनः कहा। 'तुमने अद्भुत तप किया है। मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूँ। तुम अभिलषित वर माँग लो।'

भगवान् नारायणने वामनका रूप ग्रहण किया और वे धुन्धुके पास पहुँचनेके लिये देविका नदीमें उतरकर बह चले। जब वे दैत्यराज धुन्धुकी नगरीके पास पहुँचे तो धुन्धु और उनके नगरके अन्य लोगोंने यह समझकर कि वे नदीमें डूब रहे हैं, उन्हें नदीसे बाहर निकाला। जब उनसे नदीमें इस प्रकार बहते आनेका कारण पूछा गया तो उन्होंने कहा कि 'मेरा एक ज्येष्ठ भाई है, जिसने मुझे वामन समझकर पिताके धन आदिसे वञ्चित करके नदीमें फेंक दिया है।' यह सुनकर धुन्धुने उनसे जीवन-निर्वाहके लिये दास-दासी, धन-दौलत आदि कुछ भी माँगनेको कहा। तब उन्होंने तीन पग भूमिकी माँग की। जब धुन्धु उनसे स्वयं भूमि नाप लेनेको कहा तो भगवान्ने अपना विराट् रूप धारण कर लिया तथा एक पगसे सम्पूर्ण पृथ्वी और दूसरेसे स्वर्गको भी नाप लिया। उसी विराट्रूपमें उन्होंने धुन्धुके शरीरको भी तीसरे पगमें नापकर उसे स्वयं अपनेमें लीन कर लिया और उसके साथ कालिन्दी-रूपमें अन्तर्हित हो गये।

वामनपुराण (अ० ५२)में वामनावतारकी यह कथा प्रतीकात्मकरूपमें योगके अमूल्य सिद्धान्तोंका वर्णन करती है। वेद कहते हैं कि वह परम तत्त्व 'अणु'से भी छोटा और किसी भी बड़ी-से-बड़ी सत्तासे बड़ा है। वामन भगवान्के रूप-ग्रहणकी यह कथा प्रथमतः इस सिद्धान्तका प्रतिपादन करती है।

अनन्त चेतन सत्ताको ही ब्रह्म नामसे वेदान्तदर्शनमें अभिव्यक्त किया गया है और इस सृष्टिको उनकी मानसिक कल्पना अथवा मानसदेह कहा गया है। इस मानसदेहमें ही भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक—इन सात लोकोंकी स्थिति है। इस कथामें यही तत्त्व बताया गया है कि भूर्लोक यह भौतिक जगत् है, जहाँ पञ्चमहाभूतोंका खेल हो रहा है। भुवर्लोकमें क्षुधा, तृष्णा, निद्रा आदिकी स्थिति रहती है। स्वर्लोकमें सुख-दुःखके प्रतीक स्वर्ग-नरककी स्थिति है। मनुष्य ही अधोगामी वृत्तियोंकी ओर प्रवृत्त होनेसे दानव और ऊर्ध्वगामी वृत्तियोंकी ओर प्रवृत्त होनेपर देवता हो जाता है और अपने संस्कारानुसार इसी स्थानपर स्वर्गका सुख अथवा नरकका दुःख भोगता है, किंतु दैवी विद्याके द्वारा ऊर्ध्वगामी होकर जब वह ब्रह्मलोक अर्थात् सत्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है, तब सभी प्रकारके बन्धनस्वरूप सुख-दुःखसे ऊपर उठ जाता है। महर्लोक और उससे ऊपरकी अवस्थामें पहुँचनेपर साधक दानवरूपी दुर्वृत्तियोंका शिकार् नहीं हो सकता, क्योंकि वहाँ नारायणका अमूर्तरूप उसकी रक्षा करता है। किसी भी संकटके आसन्न होनेपर अर्थात् दुर्वृत्तियोंके उदय होनेपर ऐसे साधकोंकी दुर्वृत्तियोंको महर्लोकमें ही भगवान् नारायण नष्ट कर देते हैं। देविका नदी और कालिन्दी—दोनों आध्यात्मिक धाराकी प्रतीक नाड़ियोंकी ओर संकेत करती हैं, जिसमेंसे होकर जीवात्मा परमात्मासे मिलता है और जिसके किनारे-किनारे ये सुन्दर लोक बसे हुए हैं। (आ० प्र०)

गजेन्द्रोद्धारक भगवान् श्रीहरि

प्राचीन कालकी बात है। द्रविड़ देशमें एक पाण्ड्यवंशी राजा राज्य करते थे। उनका नाम था—इन्द्रद्युम्न। वे भगवान्की आराधनामें ही अपना अधिक समय व्यतीत करते थे। यद्यपि उनके राज्यमें सर्वत्र सुख-शान्ति थी, प्रजा प्रत्येक रीतिसे संतुष्ट थी तथापि राजा इन्द्रद्युम्न अपना समय राजकार्यमें कम ही दे पाते थे। वे तो बस, अपने इष्ट परम प्रभुकी उपासनामें ही दत्तचित्त रहते थे।

राजा इन्द्रद्युम्नके मनमें आराध्य-आराधनाकी लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी, इस कारण वे राज्यका त्याग कर मलयपर्वतपर रहने लगे। उनका वेष तपस्वियोंका-सा था। उनके सिरके बाल बढ़कर जटाके रूपमें हो गये। उन्होंने मौन-व्रत धारण कर लिया था और वे स्नानादिसे निवृत्त होकर निरन्तर परब्रह्म परमात्माकी आराधनामें तल्लीन रहते थे। उनके मन और प्राण भी श्रीहरिके चरण-कमलोंके मधुकर बने रहते। इसके अतिरिक्त उन्हें जगत्की कोई वस्तु न सुहाती और न उन्हें राज्य, कोष, प्रजा, पत्नी आदि किसी प्राणि-पदार्थकी स्मृति ही होती।

एक बारकी बात है, राजा इन्द्रद्युम्न प्रतिदिनकी भाँति अपने नियमानुसार स्नानादिसे निवृत्त होकर सर्वसमर्थ प्रभुकी उपासनामें तल्लीन थे। उन्हें बाह्य जगत्का तनिक भी ध्यान

न था। संयोगवश उसी समय महर्षि अगस्त्य अपने शिष्य-समुदायके साथ वहाँ आ पहुँचे। न पाद्य, न अर्घ्य, न स्वागत! मौनव्रती राजा इन्द्रद्युम्न तो परम प्रभुके ध्यानमें निमग्न थे।

महर्षि अगस्त्य कुपित हो गये। उन्होंने इन्द्रद्युम्नको शाप दे दिया—'इस राजाने गुरुजनोंसे शिक्षा नहीं ग्रहण की है, अभिमानवश परोपकारसे निवृत्त होकर मनमानी कर रहा है। ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाला यह हाथीके समान जडबुद्धि है, इसलिये इसे वही घोर अज्ञानमयी हाथीकी योनि प्राप्त हो।' क्रुद्ध महर्षि अगस्त्य भगवद्भक्त इन्द्रद्युम्नको शाप देकर चले गये। नरेशने इसे श्रीभगवान्‌का मङ्गलमय विधान समझकर प्रभुके चरणोंमें सिर रख दिया।

× × × ×

क्षीराब्धिमें दस सहस्र योजन लम्बा-चौड़ा और ऊँचा एक त्रिकूट नामक पर्वत था। वह अत्यन्त सुन्दर एवं श्रेष्ठ था। उसकी तराईमें भगवान् वरुणका ऋतुमान् नामक एक क्रीडा-कानन था। उसमें चारों ओर दिव्य वृक्ष सुशोभित थे, जो सदा पुष्पों और फलोंसे लदे रहते थे। उसी काननमें एक अत्यन्त सुन्दर एवं विशाल सरोवर था, जिसमें खिले कमलोंकी अद्भुत शोभा हो रही थी। उन कमलोंपर भ्रमर गुंजार करते रहते थे। उसके तटपर चारों ओर अत्यन्त सुगन्धित पुष्पोंवाले वृक्ष शोभा दे रहे थे, जो प्रत्येक ऋतुमें हरे-भरे और पुष्पित रहते थे। देवाङ्गनाएँ वहाँ क्रीडा करने आया करती थीं। वहीं गहन वनमें हथिनियोंके साथ अत्यन्त शक्तिशाली और अमित पराक्रमी एक गजेन्द्र रहता था। वह श्रेष्ठ गजोंमें अग्रगण्य और यूथपति था। वह अपनी हथिनियों, कलभों और दूसरे हाथियोंके साथ वनमें विचरण किया करता था। उसकी महान् शक्तिसे हिंसक जंगली पशु सदा सशङ्कित रहते थे। उसके गण्डसे चूनेवाली मदधाराकी गन्धसे व्याघ्र, गैंडे, नाग और चमरी गाय आदि जंगली पशु दूर भाग जाते थे।

एक बारकी बात है, गर्मीके दिन थे। मध्याह्नकाल था और प्रचण्ड धूप थी। गजेन्द्र अपने साथियोंसहित तृषाधिक्यसे व्याकुल हो गया। वह कमलके गन्धसे सुगन्धित वायुको सूँघकर उस अत्यन्त सुन्दर और चित्ताकर्षक विशाल सरोवरके तटपर जा पहुँचा। उसने सरोवरके अत्यन्त निर्मल, शीतल और मीठे जलमें प्रवेश किया। पहले तो उसने जल पीकर अपनी तृषा बुझायी और फिर उसमें स्नानकर अपना श्रम दूर किया। तत्पश्चात् उसने जल-क्रीडा आरम्भ की। वह अपनी सूँड़में जल भरकर उसकी फुहारोंसे हथिनियोंको स्नान कराने लगा तथा कलभोंके मुँहमें सूँड़ डालकर उन्हें जल पिलाने लगा। दूसरी हथिनियाँ और गज अपनी सूँड़ोंकी फुहारसे गजेन्द्रका सत्कार करते हुए उसे स्नान करा रहे थे। अचानक गजेन्द्रने सूँड़ उठाकर चीत्कार की। पता नहीं, किधरसे एक मगरने आकर उसका पैर पकड़ लिया। उसने अपना पैर छुड़ानेके लिये पूरी शक्ति लगायी, पर उसका वश नहीं चला, पैर नहीं छूटा। अपने स्वामी गजेन्द्रको ग्राहग्रस्त देखकर हथिनियाँ, कलभ और अन्य गज अत्यन्त व्याकुल हो गये। वे सूँड़ उठाकर चिग्घाड़ने और उसे बचानेके लिये सरोवरके भीतर-बाहर दौड़ने लगे। उन्होंने पूरी चेष्टा की, पर वे सफल नहीं हुए।

महर्षि अगस्त्यके शापसे शप्त महाराज इन्द्रद्युम्न गजेन्द्र हो गये थे और गन्धर्वश्रेष्ठ हूहू महर्षि देवलके शापसे ग्राह हो गये थे। वे भी अत्यन्त पराक्रमी थे। दोनोंमें संघर्ष चल रहा था। गजेन्द्र ग्राहको बाहर खींचता और ग्राह गजेन्द्रको भीतर। सरोवरका निर्मल जल गँदला हो गया। कमलदल क्षत-विक्षत हो गये। जल-जन्तु व्याकुल हो उठे। गजेन्द्र और ग्राहका संघर्ष एक सहस्र वर्षतक चलता रहा। दोनों जीवित रहे। यह दृश्य देखकर देवगण चकित हो गये।

अन्ततः गजेन्द्रका शरीर शिथिल हो गया। उसके शरीरमें शक्ति और मनमें उत्साह नहीं रहा, परंतु जलचर होनेके कारण ग्राहकी शक्तिमें कोई कमी नहीं आयी, प्रत्युत वह और बढ़ गयी। तब वह उत्साहपूर्वक अधिक शक्ति लगाकर गजेन्द्रको खींचने लगा। सर्वथा असमर्थ गजेन्द्रके प्राण संकटमें पड़ गये। उसकी शक्ति और पराक्रमका अहंकार पूर्ण हो गया। वह पूर्णतया निराश हो गया, किंतु पूर्वजन्मकी निरन्तर भगवदाराधनाके फलस्वरूप उसे भगवत्स्मृति हो आयी। उसने मन-ही-मन निश्चय किया—'मैं कराल कालके भयसे चराचर प्राणियोंके शरण्य सर्वसमर्थ प्रभुकी शरण ग्रहण करता हूँ।'

गजेन्द्र इस निश्चयके साथ मनको एकाग्रकर पूर्वजन्ममें सीखे हुए श्रेष्ठ स्तोत्रके द्वारा परम प्रभुकी स्तुति करने

लगा—'जो जगत्‌के मूल कारण हैं और सबके हृदयमें पुरुष-रूपसे विराजमान हैं एवं समस्त जगत्‌के एकमात्र स्वामी हैं, जिनके कारण इस संसारमें चेतना जाग्रत् होती है, उन भगवान्‌के चरणोंमें मैं प्रणाम करता हूँ तथा प्रेमपूर्वक उन्हीं प्रभुका ध्यान करता हूँ। प्रलयकालमें सब कुछ नष्ट हो जानेपर भी जो महामहिम परमात्मा बने रहते हैं, वे प्रभु मेरी रक्षा करें। नटकी भाँति अनेक वेष धारण करनेवाले प्रभुका वास्तविक स्वरूप एवं रहस्य देवता भी नहीं जानते, फिर अन्य कोई उसका वर्णन कैसे कर सकता है ? वे प्रभु मेरी रक्षा करें। जिन कल्याणमय प्रभुके दर्शनके लिये संत-महात्मागण सर्वस्वका त्याग कर जितेन्द्रिय हो वनमें अखण्ड तपश्चरण करते हैं, वे परमात्मा मेरी रक्षा करें। मैं सर्वशक्तिमान्, सर्वैश्वर्यमय, सर्वसमर्थ प्रभुके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। मैं जीवित रहना नहीं चाहता। इस अज्ञानमय योनिमें रहकर करूँगा ही क्या ? मैं तो आत्मप्रकाशको आच्छादित करनेवाले अज्ञानके आवरणसे मुक्त होना चाहता हूँ, जो कालक्रमसे अपने आप नहीं छूट सकता, किंतु केवल भगवत्कृपा और तत्त्वज्ञान-द्वारा ही नष्ट होता है। अतएव मैं उन श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम करता हूँ, जिनकी कृपासे जीवन और मृत्युके कठोर पाशसे जीव सहज ही छूट जाता है। प्रभो ! आपकी मायाके वश होकर जीव अपने स्वरूपको नहीं जान पाता। आपकी महिमाका पार नहीं है। आप अनादि, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी एवं सौन्दर्य-माधुर्य-निधि हैं। मैं आपकी शरण हूँ। आप मेरी रक्षा करें।'

गजेन्द्रद्वारा की गयी स्तुतिको सुनकर सर्वात्मा सर्वदेवरूप श्रीहरि वेदमय गरुडपर आरूढ़ होकर अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक उस सरोवरके तटपर गजेन्द्रके पास आ पहुँचे। जीवनसे निराश और पीड़ासे छटपटाते गजेन्द्रने हाथमें चक्र लिये गरुडारूढ़ श्रीहरिको तीव्रतासे अपनी ओर आते देखा तो उसने कमलका एक सुन्दर पुष्प अपनी सूँड़में लेकर ऊपर उठाया और बड़े कष्टसे कहा—'नारायण ! जगद्गुरो ! भगवन् ! आपको नमस्कार है।'

गजेन्द्रको अत्यन्त पीड़ित देखकर सर्वशक्तिमान् श्रीहरि गरुडकी पीठसे कूद पड़े और गजेन्द्रके साथ ही ग्राहको भी सरोवरसे बाहर खींच लाये। तदुपरान्त उन्होंने तुरंत अपने तीक्ष्ण चक्रसे ग्राहका मुँह फाड़कर गजेन्द्रको मुक्त कर दिया। तब ब्रह्मादि देवगण श्रीहरिकी प्रशंसा करते हुए उनके ऊपर स्वर्गीय सुमनोंकी वृष्टि करने लगे। देव-दुन्दुभियाँ बज उठीं तथा गन्धर्व नृत्य और गान करने लगे। साथ ही सिद्ध, ऋषि-महर्षि परब्रह्म श्रीहरिका गुणानुवाद गाने लगे।

ग्राह दिव्यशरीरधारी हो गया। उसने श्रीभगवान्‌के चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और फिर वह भगवान्‌के गुणोंकी प्रशंसा करने लगा। भगवान् श्रीहरिके मङ्गलमय वरदहस्तके स्पर्शसे शापमुक्त होकर हूहू गन्धर्वने प्रभुकी परिक्रमा की और उनके त्रैलोक्यवन्दित चरण-कमलोंमें प्रणाम कर वह अपने लोकको चला गया।

भगवान् श्रीहरिने गजेन्द्रका उद्धार कर उसे अपना पार्षद बना लिया। गन्धर्व, सिद्ध और देवगण उनकी इस लीलाका गान करने लगे। तत्पश्चात् श्रीहरिने पार्षद-रूप गजेन्द्रको साथ लिया और गरुडारूढ़ हो वे अपने दिव्यधामके लिये प्रस्थित हो गये।

परशुरामावतारकी कथा[१]

भगवान् परशुराम ऋचीकके पौत्र और जमदग्निके पुत्र हैं। इनकी माताका नाम रेणुका था। इनके चार भाई—वसुमान्, वसुषेण, वसु तथा विश्वावसु थे। ये सबसे छोटे हैं। हविष्यके प्रभावसे ये ब्राह्मणके पुत्र होते हुए भी क्षात्रकर्मा हो गये। ये श्रीविष्णुके आवेशावतार माने गये हैं। ये शंकरके परम भक्त हैं। इन्होंने उत्पन्न होते ही भगवान्

१-अग्निपुराण ४।४९, गरुड० १।१४२, देवीभा० ४।१६, पद्मपु० ५।७३, ६।२१७, २६८, ब्रह्म० १८०, २१३, ब्रह्माण्ड० २।७३, श्रीमद्भा० १।३, २।७, ९।१५, ११।४, मत्स्य० ४७, वायु० २।३५, ३६, हरिवंश० १।४१, महाभारत १२।३३९-३४० तथा ३४८ आदिमें भगवान् परशुरामके अवतारकी कथा आयी है।

शंकरकी उपासनाके लिये कैलासकी ओर प्रस्थान कर दिया। भगवान् शंकरकी इनपर असीम कृपा थी। इन्होंने शंकरजीसे एक अमोघ अस्त्र प्राप्त किया था, जो 'परशु' नामसे विख्यात है। अत्यन्त तीक्ष्ण-धारवाले इस 'परशु'को ये सदा धारण किये रहते हैं। इनका वास्तविक नाम राम था, किंतु परशु धारण करनेसे ये 'परशुराम'के नामसे विख्यात हुए।

ये पितृभक्तके रूपमें सदा स्मरण किये जाते रहेंगे। एक बारकी बात है कि इनकी मातासे एक अपराध बन गया, जिसे जानकर महर्षि जमदग्नि अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। उन्होंने अपने पुत्रोंको आज्ञा दी कि 'इसका सिर काट डालो'। मातृ-स्नेहवश चारों पुत्र ऐसा न कर सके। उन्होंने अपने छोटे पुत्र परशुरामकी ओर देखा। ये पिताका संकेत समझ गये और इन्होंने अपने परशुसे माता तथा चारों भाइयोंका सिर काट डाला। जमदग्नि इनकी पितृभक्तिसे अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने वर माँगनेको कहा। तब इन्होंने कहा—'तात! यदि आप प्रसन्न हैं तो कृपया मुझे यह वर प्रदान करें कि मेरी माता तथा भाई पुनः जीवित हो जायँ, उन्हें मेरे द्वारा मारे जानेकी स्मृति न रहे तथा मैं निष्पाप हो जाऊँ, युद्धमें मेरा सामना कोई न कर सके और मैं दीर्घायु होऊँ।' पिताने 'तथास्तु' कह दिया। फिर तो तत्क्षण ही माता रेणुका और उनके चारों भाई जीवित हो उठे, उन्हें यह भान हुआ कि हम प्रगाढ़ निद्रासे जागे हैं।

उस समय कृतवीर्यका पुत्र सहस्रार्जुन कार्तवीर्य भगवान् दत्तात्रेयकी कृपासे हजार भुजाएँ प्राप्तकर समस्त भूमण्डलपर एकच्छत्र राज्य कर रहा था। एक दिनकी बात है, वह अपनी सेनासहित जंगलमें शिकार खेलने गया। मुनि जमदग्निने उसे सेनासहित अपने आश्रममें विश्राम करनेको कहा। इतनी विशाल सेनाका आतिथ्य ये कैसे सम्पन्न कर सकेंगे—ऐसा सोचकर राजा आश्चर्य कर रहा था, किंतु उसे क्या पता था कि आश्रममें कामधेनु गौ है। वह इच्छित फलोंको प्रदान करनेवाली थी। मुनि जमदग्निने कामधेनुके प्रभावसे राजा तथा उसकी सेनाका देवोचित सम्मान किया। कामधेनुका वह अलौकिक ऐश्वर्य-बल देखकर राजा कार्तवीर्यके मनमें लोभ उत्पन्न हो गया। उसने जमदग्निसे गायकी माँग की, किंतु इन्होंने अस्वीकार कर दिया। तब उसने शक्तिका प्रयोग कर बलपूर्वक कामधेनुको छीन लिया और अपनी राजधानी माहिष्मती चला गया। परशुरामजीको जब यह ज्ञात हुआ तब वे क्रोधसे काँप उठे। उग्रताके प्रचण्ड विग्रहरूप परशुरामजी अपना धनुष-बाण तथा परशु लेकर शीघ्रतासे दौड़ पड़े। माहिष्मतीमें दोनोंका घमासान युद्ध हुआ। इन्होंने उसकी सहस्रों भुजाएँ काट डालीं और अन्तमें उसका सिर धड़से अलग कर दिया। सहस्रार्जुनके दस हजार पुत्र सेनासहित भयभीत होकर भाग गये। कुछ ही दूरपर इन्हें कामधेनु दिखायी दी, जो कातर नेत्रोंसे इन्हें देख रही थी। ये गायके पास गये और आदरपूर्वक उसे आश्रमपर ले आये। परशुरामजीने सोचा कि पिताजी मेरा यह वीरोचित कार्य देखकर प्रसन्न होंगे, परंतु उन्होंने कहा—'वत्स! चक्रवर्ती सम्राट्का वध ब्रह्महत्याके समान महापातक है, ब्राह्मणोंका सर्वोपरि धर्म क्षमा है, तुमने धर्मनीतिका परित्याग किया है, अतः तुम्हें प्रायश्चित्त करना होगा।' पिताकी आज्ञासे वे एक वर्षतक विभिन्न तीर्थोंका सेवन करके वापस आये। तब माता-पिताने प्रसन्नतापूर्वक इन्हें आशीर्वाद दिया।

सहस्रार्जुनकी तो मृत्यु हो चुकी थी, किंतु उसके पुत्रोंके मनमें पितृ-प्रतिशोधकी आग धधक रही थी। एक दिनकी बात है, जब परशुरामजी अपने भाइयोंके साथ वनमें दूर गये हुए थे, तब अच्छा अवसर देखकर उन्होंने छद्मवेषसे आश्रममें प्रविष्ट होकर महर्षि जमदग्निका मस्तक काट डाला और शीघ्रतापूर्वक मस्तक लेकर भाग खड़े हुए।

जब परशुरामजी वापस आये तब देखा कि आश्रम श्रीहीन हो गया है। प्रवेश करते ही इन्होंने अपने पिताके निस्तेज कटे धड़को देखा। इन्हें समझते देर न लगी कि यह किसका कुकृत्य है। उसी समय इन्होंने यह प्रतिज्ञा कर ली कि 'मैं समस्त पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित कर दूँगा।' फिर तो ये क्रोधाविष्ट हो अपना अक्षय तूणीर, धनुष तथा परशु लेकर उन्मत्त-वेषमें माहिष्मती पहुँचे और इन्होंने सहस्रार्जुनके दस हजार पुत्रों तथा अन्य क्षत्रियोंका संहार कर डाला। इन्होंने समस्त पृथ्वीमें घूम-घूमकर इक्कीस बार क्षत्रियोंका संहार किया। इस प्रकार पृथ्वी क्षत्रियोंसे शून्य हो गयी। तब इन्होंने अपने पिताके मस्तकको धड़से जोड़ा और उनका अन्त्येष्टि-संस्कार सम्पन्न किया तथा कुरुक्षेत्रमें पाँच कुण्ड बनाकर अपने पितरोंका तर्पण किया। ये पाँचों सरोवर

'समन्तपञ्चक-तीर्थ'के नामसे विख्यात हुए। पितृगणोंने इन्हें क्षत्रिय-कुल-नाशके पापसे मुक्त होनेका वर प्रदान किया (महा० आदि० २। ८-९) और उन्हींकी आज्ञासे परशुरामजीने सम्पूर्ण पृथ्वी प्रजापति कश्यपको दानमें दे दी। वीतराग होकर अन्तमें ये महेन्द्राचलपर तपस्या करने चले गये (अग्नि० अ० ५)। वहाँ शिष्यत्व स्वीकार कर आये हुए द्रोणाचार्यको इन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र तथा धनुर्विद्या प्रदान की और पुनः ये शान्त भावसे तपस्या करने लगे।

सीता-स्वयंवरमें श्रीरामद्वारा शिव-धनुष-भङ्ग किये जानेपर ये महेन्द्राचलसे शीघ्रतापूर्वक जनकपुर पहुँचे, किंतु इनका तेज श्रीराममें प्रविष्ट हो गया और ये उन्हें अपना वैष्णव धनुष देकर पुनः तपस्याके लिये महेन्द्रगिरिपर चले गये। अन्तमें इन्होंने तपस्याद्वारा परमसिद्धि प्राप्त की। ये चिरजीवी हैं और यावज्जीवन ब्रह्मचारी रहे। इनकी संतति-परम्पराका कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता।

इनके द्वारा निर्मित एक कल्पसूत्र है, जो 'परशुरामकल्प-सूत्र' के नामसे विख्यात है। उसमें त्रिपुरादेवीकी महिमा और पूजाविधि प्रतिपादित है। इसी प्रकार त्रिपुरारहस्य-माहात्म्य-खण्डमें इन्होंने श्रीदत्तात्रेयजीसे देवी त्रिपुराका चरित्र तथा आराधना-विधि प्राप्त की है, जो प्रायः सौ अध्यायोंमें उपनिबद्ध है। इसी त्रिपुरा-माहात्म्यको संक्षिप्तरूपमें 'श्रीललितोपाख्यान' नामसे 'ब्रह्माण्डपुराण'में चालीस अध्यायोंमें वर्णित किया गया है, जो हयग्रीव तथा अगस्त्यके संवादके रूपमें वर्णित है। महेन्द्राचलसे लेकर सूर्पारक अर्थात् बम्बईतकका क्षेत्र परशु-क्षेत्रके नामसे पुराणोंमें प्रसिद्ध है।

इनका आविर्भाव वैशाखकी शुक्ला तृतीयाको हुआ था। यह पवित्र तिथि परशुराम-जयन्तीके नामसे तथा वैशाखकी शुक्ला द्वादशी परशुराम-द्वादशीके नामसे प्रसिद्ध है। इन दोनों तिथियोंमें भगवान् परशुरामकी प्रतिमाका पूजन करनेसे व्रतीको विशेष फलोंकी प्राप्ति होती है।

भगवान् व्यास

लोकोत्तर-शक्ति-सम्पन्न भगवान् व्यास भगवान् नारायणके कलावतार थे। वे महाज्ञानी महर्षि पराशरके पुत्ररूपमें प्रकट हुए थे। उनका जन्म कैवर्तराजकी पोष्यपुत्री महाभागा सत्यवतीके गर्भसे यमुनाजीके द्वीपमें हुआ था। इस कारण उन्हें 'पाराशर्य' और 'द्वैपायन' भी कहते हैं। उनका वर्ण घननील था, अतएव वे 'कृष्णद्वैपायन' नामसे प्रख्यात हैं। बदरीवनमें रहनेके कारण वे 'बादरायण' भी कहे जाते हैं। उन्हें अङ्गोंसहित सम्पूर्ण वेद, इतिहास और परमात्मतत्त्वका ज्ञान स्वतः प्राप्त हो गया था, जिसे दूसरे व्रतोपवासनिरतजन यज्ञ, तप और वेदाध्ययनसे भी प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होते।

धरतीपर पदार्पण करते ही अचिन्त्य-शक्तिशाली व्यासने अपनी जननीसे कहा—'आवश्यकता पड़नेपर तुम जब भी मुझे स्मरण करोगी, मैं अवश्य तुम्हारा दर्शन करूँगा।' ऐसा कहकर वे माताकी आज्ञासे तपश्चरणमें लग गये।

प्रारम्भमें वेद एक ही था। ऋषिवर अङ्गिराने उसमेंसे सरल तथा भौतिक उपयोगके छन्दोंको पीछे संगृहीत किया। वह संग्रह 'अथर्वाङ्गिरस' या 'अथर्ववेद' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। परम पुण्यमय सत्यवतीनन्दनने मनुष्योंकी आयु और शक्तिको अत्यन्त क्षीण होते देखकर वेदोंका व्यास (विस्तार) किया। इसीलिये वे 'वेदव्यास' नामसे प्रसिद्ध हुए।

फिर वेदार्थ-दर्शनकी शक्तिके साथ अनादि पुराणको लुप्त होते देखकर भगवान् कृष्णद्वैपायनने पुराणोंका प्रणयन किया। उन पुराणोंमें निष्ठाके अनुरूप आराध्यकी प्रतिष्ठा कर उन्होंने वेदार्थको चारों वर्णोंके लिये सहज-सुलभ कर दिया। अष्टादश पुराणोंके अतिरिक्त बहुत-से उपपुराण तथा अन्य ग्रन्थ भी भगवान् व्यासद्वारा निर्मित हैं।

अत्यन्त विस्तृत पुराणोंमें कल्पभेदसे चरित्रभेद पाये जाते हैं। समस्त चरित्र इस कल्पके अनुरूप हों तथा समस्त धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-सम्बन्धी सिद्धान्त भी उनमें एकत्र हो जायँ—इस निश्चयसे वेदव्यासजीने महान् ग्रन्थ महाभारतकी रचना की। महाभारतको 'पञ्चम वेद' और 'कार्ष्णवेद' भी कहते हैं।

भगवान् द्वैपायनने ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेदका अध्ययन क्रमशः अपने शिष्यों पैल, जैमिनि, वैशम्पायन और सुमन्तुको तथा महाभारतका अध्ययन रोम-हर्षण सूतको कराया।

सर्वश्रेष्ठ वरदायक, महान् पुण्यमय, यशस्वी वेदव्यासजी राजा जनमेजयके सर्पयज्ञकी दीक्षा लेनेका संवाद पाकर वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् शिष्योंके साथ उनके यज्ञ-मण्डपमें पहुँचे। यह देखकर राजा जनमेजय अत्यन्त हर्षित हुए। उन्होंने अतीव श्रद्धापूर्वक पराशरनन्दन व्यासको सुवर्णका पीठ देकर आसनकी व्यवस्था की। फिर उन्होंने पाद्यार्घ्यादिके द्वारा उनकी सविधि पूजा की।

तब राजा जनमेजयके अनुरोधसे महर्षि व्यासने अपने शिष्य वैशम्पायनको वहाँ महाभारत सुनानेकी आज्ञा दी। विप्रवर वैशम्पायनने वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, त्रिकालदर्शी, परमपवित्र गुरुदेव व्यासजीके चरणोंमें प्रणाम किया और उन्होंने राजा जनमेजय, सभासद्‌गण तथा अन्य उपस्थित नरेशोंके सम्मुख विस्तारपूर्वक व्यास-विरचित कौरव-पाण्डवोंका सुविस्तृत इतिहास 'महाभारत' सुनाया।

धृतराष्ट्रके पुत्रोंद्वारा अधर्मपूर्वक पाण्डवोंको राज्यसे बहिष्कृत कर दिये जानेपर सर्वज्ञ व्यासजी वनमें उनके पास पहुँचे। वहाँ उन्होंने कुन्तीसहित पाण्डवोंको धैर्य बँधाया और उनकी एकचक्रा नगरीके समीप एक ब्राह्मणके घरमें रहनेकी व्यवस्था कर दी। फिर उनसे एक मासतक वहीं अपनी प्रतीक्षा करनेका आदेश देकर वे लौट गये।

सत्यव्रतपरायण व्यासजी एक मासके बाद पुनः पाण्डवोंके समीप पहुँचे। उनसे उनका कुशल-संवाद पूछकर धर्मसम्बन्धी और अर्थविषयक चर्चा की। फिर उन्होंने महाराज पृषतकी पौत्री सती-साध्वी कृष्णाके पूर्वजन्मका वृतान्त सुनाकर पाण्डवोंको उसके स्वयंवरमें पाञ्चालनगर जानेकी प्रेरणा दी। व्यासजीने पाण्डवोंसे कहा कि 'सती द्रौपदी तुम्हीं लोगोंकी पत्नी नियत की गयी है।'

पाण्डव पाञ्चालनगर पहुँचे और स्वयंवरमें अर्जुनने लक्ष्यवेध कर सती द्रौपदीकी जयमाला प्राप्त की, किंतु जब माता कुन्तीके आदेशानुसार युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयोंने एक साथ द्रौपदीके साथ विवाह करना चाहा, तब महाराज द्रुपदने इसे सर्वथा अनुचित और अधर्म समझकर आपत्ति की। उसी समय निग्रहानुग्रहसमर्थ व्यासजी वहाँ पहुँच गये। वहाँ उन्होंने महाराज द्रुपदको पाण्डवों एवं द्रौपदीके इस जीवनके पूर्वका विवरण ही नहीं दिया, अपितु उन्हें दिव्य दृष्टि देकर उनके परम तेजस्वी स्वरूपका दर्शन भी करा दिया। फिर तो महाराज द्रुपदने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक द्रौपदीका विवाह युधिष्ठिर आदि पाँचों भाइयोंके साथ कर दिया।

फिर जब महाराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णके सत्परामर्शसे राजसूययज्ञकी दीक्षा ली, तब परब्रह्म और अपरब्रह्मके ज्ञाता कृष्णद्वैपायन व्यासजी परम वेदज्ञ ऋत्विजोंके साथ वहाँ पहुँचे। उस यज्ञमें स्वयं उन्होंने ब्रह्माका काम सँभाला और यज्ञ सम्पन्न होनेपर देवर्षि नारद, देवल और असित मुनिको आगे करके महाराज युधिष्ठिरका अभिषेक किया।

अपने पौत्र युधिष्ठिरसे विदा होते समय व्यासजीने अन्य बातोंके अतिरिक्त उनसे कहा—'राजन्! आजसे तेरह वर्ष बाद दुर्योधनके पातक तथा भीमसेन और अर्जुनके पराक्रमसे क्षत्रिय-कुलका महासंहार होगा और उसके निमित्त तुम बनोगे, किंतु इसके लिये तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि काल सबके लिये अजेय है।' इतनी बात कहकर ज्ञानमूर्ति व्यासजीने अपने वेदज्ञ शिष्योंसहित कैलासपर्वतके लिये प्रस्थान किया।

शुद्धात्मा व्यासजी विपत्तिग्रस्त सरल एवं निश्छल पाण्डवोंकी समय-समयपर पूरी सहायता करते रहे। जब दुरात्मा दुर्योधनने छलपूर्वक पाण्डवोंका सर्वस्वापहरण कर उन्हें बारह वर्षोंके लिये वनमें भेज दिया, तब उसे प्रसन्नता हुई, किंतु उसे इतनेसे ही संतोष नहीं हुआ, उसने कर्ण, दुश्शासन और शकुनिके परामर्शसे अरण्यवासी पाण्डवोंको मार डालनेका निश्चय कर लिया तथा शस्त्रसज्ज हो वे रथपर बैठे ही थे कि दिव्यदृष्टिसम्पन्न व्यासजी तत्काल वहाँ पहुँच गये और दुर्योधनको समझाकर उसे इस भयानक अपकर्मसे विरत किया। इसके अनन्तर वे तुरंत महाराज धृतराष्ट्रके पास पहुँचे और उनसे कहा—'वत्स! जैसे पाण्डु मेरे पुत्र हैं, वैसे ही तुम भी हो, उसी प्रकार ज्ञानसम्पन्न विदुरजी भी हैं। मैं स्नेहवश ही तुम्हारे और सम्पूर्ण कौरवोंके हितकी बात कहता हूँ। तुम्हारा दुष्ट पुत्र दुर्योधन क्रूर ही नहीं, अत्यन्त मूढ़ भी है। तनिक सोचो, छलपूर्वक राज्यलक्ष्मीसे वञ्चित पाण्डवोंके मनमें तेरह वर्षोंतक अरण्यवासकी यातना सहते-सहते तुम्हारे पुत्रोंके प्रति कितना भयानक विष भर जायगा! वे तुम्हारे दुष्ट पुत्रोंको कैसे जीवित रहने देंगे! इतनेपर भी दुर्योधन उनका नृशंसतापूर्वक वध कर डालना चाहता है। यदि दुर्योधनके इस कुप्रवृत्तिको

उपेक्षा हुई, उसे रोका नहीं गया, तो तुम्हारे सहित इस निर्मल वंशको कलङ्कित ही नहीं होना पड़ेगा, अपितु इसका सर्वनाश भी हो जायगा। उचित तो यह है कि तुम्हारा पुत्र दुर्योधन एकाकी ही पाण्डवोंके पास वनमें जाय। उनके संसर्गसे उसकी बुद्धि शुद्ध होकर उसके वैर-भावका शमन हो सकता है।

'राजन्! महर्षि मैत्रेय वनमें पाण्डवोंसे मिलकर आ रहे हैं। वे निश्चय ही सत्सम्मति प्रदान करेंगे। उनकी आज्ञा मान लेनेमें ही कौरव-कुलका हित है।' इतनी बात कहकर व्यासजी चले गये।

दुर्योधनने महर्षि मैत्रेयकी उपेक्षा की, इस कारण उन्होंने उसे अत्यन्त अनिष्टकर शाप दे दिया।

अरण्यवासके समय एक बार जब युधिष्ठिर अत्यन्त चिन्तित थे, तब त्रिकालदर्शी व्यासजी उनके पास पहुँचे और उन्होंने युधिष्ठिरको समझाया—'भरतश्रेष्ठ! अब तुम्हारे कल्याणका सर्वश्रेष्ठ अवसर उपस्थित हो गया है। तुम चिन्ता मत करो। तुम्हारे शत्रु शीघ्र ही पराजित हो जायँगे।' इस प्रकार धर्मराज युधिष्ठिरको आश्वस्त करते हुए सर्वसमर्थ व्यासजीने अर्जुनके लिये युधिष्ठिरको मूर्तिमती सिद्धितुल्य 'प्रतिस्मृति' नामक विद्या प्रदान कर दी, जिसके द्वारा उन्हें देवताओंके दर्शनकी क्षमता प्राप्त हो गयी। इतना ही नहीं, व्यासजीने पाण्डवोंके हितके लिये और भी अनेक शुभ-सम्मतियाँ प्रदान कीं।

भगवान् व्यासने संजयको भी दिव्यदृष्टि प्रदान की थी, जिससे उन्होंने महाभारत-युद्ध ही नहीं देखा, अपितु भगवान् श्रीकृष्णके मुखारविन्दसे निःसृत श्रीमद्भगवद्गीताका भी श्रवण कर लिया, जिसे महाभाग पार्थके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं सुन पाया था। इतना ही नहीं, उक्त दिव्य दृष्टिके प्रभावसे संजयने श्रीभगवान्‌के विश्वरूपका भी अत्यन्त दुर्लभ दर्शन प्राप्त कर लिया।

पराशरनन्दन व्यास कृपाकी मूर्ति ही थे। एक बार उन्होंने मार्गमें आते हुए रथके कर्कश स्वरको सुनकर प्राणभयसे भागते एक क्षुद्र कीटको देखा। कीटसे उन्होंने वार्तालाप किया तथा अपने तपोबलसे उसे अनेक योनियोंसे निकालकर शीघ्र ही मनुष्य-योनि प्राप्त करा दी। फिर क्रमशः क्षत्रिय-कुल एवं ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न होकर उस भूतपूर्व कीटने दयामय व्यासजीके अनुग्रहसे अत्यन्त दुर्लभ सनातन ब्रह्मपद प्राप्त कर लिया।

महर्षि व्यासकी शक्ति अलौकिक थी। एक बार जब वे वनमें धृतराष्ट्र और गान्धारीसे मिलने गये, तब सपरिवार युधिष्ठिर भी वहीं उपस्थित थे। धृतराष्ट्र और गान्धारी पुत्रशोकसे दुःखी थे। धृतराष्ट्रने अपने कुटुम्बियों और स्वजनोंको देखनेकी इच्छा व्यक्त की। रात्रिमें महर्षि व्यासके आदेशानुसार धृतराष्ट्र आदि गङ्गा-तटपर पहुँचे। व्यासजीने गङ्गाजलमें प्रवेश किया और दिवङ्गत योद्धाओंको पुकारा। फिर तो जलमें युद्ध-कालका-सा कोलाहल सुनायी देने लगा। साथ ही पाण्डव और कौरव—दोनों पक्षोंके योद्धा और राजकुमार भीष्म एवं द्रोणके पीछे निकल आये। सबकी वेष-भूषा, शस्त्रसज्जा, वाहन और ध्वजाएँ पूर्ववत् थीं। सभी ईर्ष्या-द्वेषशून्य दिव्य देहधारी दीख रहे थे। वे रात्रिमें अपने स्नेही सम्बन्धियोंसे मिले और सूर्योदयके पूर्व भगवती भागीरथीमें प्रवेशकर अपने-अपने लोकोंके लिये चले गये।

'जो स्त्रियाँ पतिलोक जाना चाहें, इस समय गङ्गाजीमें डुबकी लगा लें।' व्यासजीके इस वचनको सुनकर जिन वीरगतिप्राप्त योद्धाओंकी पत्नियोंने गङ्गाजीमें प्रवेश किया, वे दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर विमानमें बैठीं और सबके देखते अभीष्ट लोकके लिये प्रयाण कर गयीं।

नागयज्ञकी समाप्तिपर जब यह कथा परीक्षित्‌के पुत्र जनमेजयने महर्षि वैशम्पायनसे सुनी, तब उन्हें इस अद्भुत घटनापर सहसा विश्वास न हुआ और उन्होंने इसपर शङ्का की। वैशम्पायनने उसका बड़ा ही युक्तिपूर्ण आध्यात्मिक समाधान किया (महा०, आश्रमवासिक० २४)। पर वे इसपर भी न माने और बोले कि 'भगवान् व्यास यदि मेरे पिताजीको भी उसी वय-रूपमें ला दें तो मैं विश्वास कर सकता हूँ।' भगवान् व्यास वहीं उपस्थित थे और उन्होंने जनमेजयपर पूर्ण कृपा की। फलतः शृङ्गी, शमीक एवं मन्त्री आदिके साथ राजा परीक्षित् वहाँ उसी रूप-वयमें प्रकट हो गये। अवभृथ (यज्ञान्त)-स्नानमें वे सब सम्मिलित भी हुए और फिर वहीं अन्तर्हित हो गये। महर्षि व्यास मूर्तिमान् धर्म थे। दया-धर्म-ज्ञान एवं तपकी परमोज्ज्वल मूर्ति उन महामहिम व्यासजीके चरण-कमलोंमें बार-बार प्रणाम।

भगवान् श्रीहंस

भगवान् विष्णुके चौबीस अवतारोंमें 'हंस' एक अवतार-विशेष है। भगवान् विष्णुने 'हंस'-रूप धारण कर सनत्कुमारादि मुनियोंको ज्ञानमार्ग तथा आत्मतत्त्वका जो रहस्यमय सूक्ष्म उपदेश दिया है, वह श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्धके तेरहवें अध्यायमें सूक्ष्मरूपसे तथा विष्णुधर्मोत्तर-पुराणके तृतीय खण्डमें ११६ अध्यायों (अ० २२७ से ३४२) में विस्तृत-रूपसे वर्णित है, जो 'हंसगीता'के नामसे प्रसिद्ध है।

श्रीमद्भागवतके अनुसार पितामह ब्रह्माजीके मानसपुत्र —सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार—अध्यात्म-न्त्वके जिज्ञासुके रूपमें अपने पिता ब्रह्माजीके पास पहुँचे। ये रों कुमार सर्वदा पाँच वर्षकी अवस्थावाले थे। पिताको गाम करनेके अनन्तर इन्होंने पूछा—

गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रभो ।
कथमन्योन्यसंत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः ॥

(श्रीमद्भा० ११ । १३ । १७)

'पिताजी! चित्त गुणों अर्थात् विषयोंमें घुसा ही रहता है र गुण भी चित्तकी एक-एक वृत्तिमें प्रविष्ट रहते ही हैं। र्थात् चित्त और गुण भी आपसमें मिले-जुले ही रहते हैं। ी स्थितिमें जो पुरुष इस संसार-सागरसे पार होकर मुक्ति- ; प्राप्त करना चाहता है, वह इन दोनोंको एक-दूसरेसे लग कैसे कर सकता है?'

स्वयम्भू एवं प्राणियोंके जन्मदाता होनेपर भी ृष्टिकर्ता ह्माजी प्रश्नके गूढ़ रहस्योंको न समझ सके, तब उन्होंने मेश्वर परम प्रभु श्रीहरिका ध्यान किया। उनके ध्यान करते उन सभीके समक्ष अमित तेजस्वी, परमोज्ज्वल, तत्त्वोपदेष्टा ग्रके रूपमें भगवान् विष्णु प्रकट हुए '**तस्याहं हंसरूपेण काशमगमं तदा**'। (श्रीमद्भा० ११ । १३ । १९)।

तब उन सभीने प्रभुको सादर प्रणाम किया और पूछा— ग्राप कौन हैं?' इसपर उन्होंने कहा—'यदि परमार्थरूप वस्तु नात्वसे सर्वथा रहित है, तो आत्माके सम्बन्धमें आपलोगोंका यह प्रश्न युक्तिसंगत नहीं लगता। अथवा यदि इस पाञ्चभौतिक शरीरको आपलोग 'आप' कहकर सम्बोधित करते हैं तो शरीरकी दृष्टिसे पृथ्वी, जल, तेज आदि तथा मांस, मज्जा, रक्त आदिसे निर्मित सभी शरीरोंमें साम्य है अथवा एकत्व है। इस दृष्टिसे देवता-मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सभी शरीरके तत्त्वोंकी दृष्टिसे तथा आत्मदृष्टिसे एक ही हैं। वह सर्वत्र व्याप्त रहनेवाला आत्मतत्त्व मैं ही हूँ। आपमें तथा हममें कोई अन्तर नहीं है। मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे भी जो कुछ ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ, मुझसे भिन्न और कुछ नहीं है। यह सिद्धान्त आपलोग तत्त्वविचारके द्वारा समझ लीजिये। यह चित्त चिन्तन करते-करते विषयाकार हो जाता है और विषय चित्तमें प्रविष्ट हो जाते हैं, यह बात सत्य है, तथापि विषय और चित्त—ये दोनों ही मेरे स्वरूपभूत जीवकी देह हैं—उपाधि हैं। अर्थात् आत्माका चित्त और विषयके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

इसलिये बार-बार विषयोंका सेवन करते रहनेसे जो चित्त विषयोंमें आसक्त हो गया है और विषय भी चित्तमें प्रविष्ट हो गये हैं, इन दोनोंको अपने वास्तविकसे अभिन्न मुझ परमात्माका साक्षात्कार करके त्याग देना चाहिये। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—ये तीन अवस्थाएँ सत्त्वादि गुणोंके अनुसार होती हैं और बुद्धिकी वृत्तियाँ हैं, सच्चिदानन्दका स्वभाव नहीं। इन वृत्तियोंका साक्षी होनेके कारण जीव उनसे विलक्षण है। यह सिद्धान्त श्रुति, युक्ति और अनुभूतिसे युक्त है। ये तीनों अवस्थाएँ गुणोंके (सत्त्व-रज-तम) द्वारा मेरी मायासे मेरे अंशरूप जीवमें कल्पित की गयी हैं और नितान्त असत्य हैं, ऐसा निश्चय कर अनुमान, सत्पुरुषोंद्वारा किये गये उपनिषदोंके श्रवण और तीक्ष्ण ज्ञान-खड्गके द्वारा सकल संशयोंके आधार अहंकारका छेदन करके हृदयमें स्थित मुझ परमात्माका निरन्तर भजन करना चाहिये।'

इस प्रकार भगवान् हंसने सनकादि मुनियोंके संदेहको दूर किया। तब आनन्दित हो उन्होंने प्रभुकी स्तुति और पूजा की। तदनन्तर हंसरूपी श्रीविष्णु अन्तर्हित हो गये।

श्रीरामावतारकी कथा

स्वायम्भुव मनु एवं महारानी शतरूपाने तपोभूमि नैमिषारण्यमें गोमतीके पावन तटपर सहस्रों वर्षोंतक तप किया। भगवान् नारायणने उन्हें दर्शन दिया। उनके दिव्य एवं अलौकिक रूप-माधुर्यको देखकर वे मुग्ध हो गये, जिससे उनके मनमें तीन जन्मोंतक उन्हें पुत्ररूपमें प्राप्त करनेकी लालसा जाग उठी। भगवदनुकम्पासे मनु-शतरूपाका मनोरथ पूर्ण हुआ। यही स्वायम्भुव मनु तथा महारानी शतरूपा अपने प्रथम जन्ममें अयोध्यामें राजा दशरथ एवं कौसल्याके रूपमें प्रकट हुए। तब इनके यहाँ साक्षात् नारायणने मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके रूपमें अवतार धारण किया।

श्रीराम साक्षात् परब्रह्मपरमात्माके रूपमें जीवमात्रका कल्याण करनेके लिये अवतरित हुए थे। श्रीरामके विषयमें जितने ग्रन्थ लिखे गये हैं, उतने सम्भवतः किसी अन्य अवतारपर नहीं उपलब्ध होते। सकलगुणनिधान होनेसे सभीने इन्हें ही अपनी वाणीका विषय बनाया। विविध रामायणों, अठारह महापुराणों, रघुवंशादि काव्यों, हनुमदादि नाटकों, अनेक चम्पू-काव्यों तथा महाभारतादिमें इनके विविध रूप विस्तारसे प्रतिपादित किये गये हैं। पुराणोंमें सूर्य तथा चन्द्रवंश—इन दो मूल वंशधरोंमें श्रीराम सूर्यवंशी चक्रवर्ती सम्राट्के रूपमें सूर्यवंशका प्रतिनिधित्व करते हैं। पद्मपुराणका आधेसे अधिक भाग श्रीरामके चरित्र तथा उपासनासे सम्बद्ध है। इसी प्रकार ब्रह्मपुराणमें गोदावरीमाहात्म्य तथा उसके अन्तमें इनका अद्भुत चरित्र चित्रित है। अग्नि, गरुड, देवी-भागवत, ब्रह्माण्ड, भागवत, मत्स्य, विष्णु आदि पुराणोंमें भी भगवान् श्रीरामकी विशद चर्चा हुई है।

इनका चरित्र विश्वामित्रकी यज्ञ-रक्षासे लेकर जनकपुरमें शिव-धनुष-भङ्ग, सीता-विवाह, परशुराम-गर्व-भङ्ग आदिके रूपमें विख्यात है। यज्ञ-रक्षाके लिये जाते समय मार्गमें इन्होंने गौतम-पत्नी अहल्याका उद्धार किया और महर्षि विश्वामित्रके आश्रमपर पहुँचकर ताड़का-सुबाहु आदि दैत्योंका संहार किया। बादमें कैकेयीके वरदानस्वरूप चौदह वर्षके लिये ये वनमें गये। ये भरतके लौटानेपर भी लौटे नहीं, अपितु चित्रकूटादि अनेक स्थानोंमें इन्होंने बारह वर्षोंतक निवास किया। उस समय इन्होंने ऋषियोंके आश्रमोंमें जाकर उन्हें कृतार्थ किया और सुतीक्ष्ण, शरभंग, शबरी आदिको सद्गति प्रदान की। फिर पञ्चवटीमें शूर्पणखाकी नासिकाका छेदन कर, खर-दूषण तथा त्रिशिराका वधकर उन्होंने रावणको क्रुद्ध किया। रावणने मारीचकी सहायतासे सीताजीका अपहरण किया। सीताजीकी खोज करते समय मार्गमें इन्होंने कबन्धादि दैत्योंका उद्धार किया तथा ऋष्यमूकपर्वतपर पहुँचकर सुग्रीवसे मैत्री कर वानरराज बालीका वध किया। हनुमान्‌जीने सीताका पता लगाया। फिर समुद्रमें पुल बाँधकर वानरी सेनाकी सहायतासे इन्होंने सेनासहित रावण-कुम्भकर्णादिका वध किया और विभीषणको राज्य देकर सीताका उद्धार किया। इन्होंने लगभग ग्यारह हजार वर्षतक पृथ्वीपर राज्यकर त्रेतामें ही सत्ययुगकी स्थापना की। अपने राज्यकालमें इन्होंने कई अश्वमेध-यज्ञ किये। अन्तमें पुराणपुरुष श्रीराम सपरिकर अपने तेजोमय दिव्य स्वरूपमें प्रविष्ट हुए। भगवान्‌का चरित्र अनन्त है, उनकी कथा भी अनन्त है। उसका वर्णन करनेकी सामर्थ्य किसीमें नहीं है। भक्त अपनी भावनाके अनुसार नित्य उनका भजन करते रहते हैं।

उपासकोंने, भक्तोंने श्रीरामको ही सर्वाधिक उपास्य और जप्य माना है। साधक भक्तोंने रामपूर्वतापिनी, उत्तरतापिनी तथा रामरहस्य आदि उपनिषदोंसे भी पर्याप्त सामग्री लेकर उनके दर्शनका मार्ग ढूँढ़ा है। वे नित्य सर्वव्यापक हैं एवं अयोध्या, चित्रकूटादिमें सतत वर्तमान रहते हैं। भारतमें उनके अनेक मन्दिर हैं और श्रीरामानुजी, श्रीरामानन्दी तथा श्रीरामस्नेही आदि अनेक वैष्णवसम्प्रदाय श्रीरामकी उपासनापर ही आधारित हैं। वैसे श्रीशंकराचार्यके सम्प्रदायमें भी राम एवं हनुमान्‌की उपासनाका विधान है। अनेक यज्ञोंमें रामार्चा आदिके द्वारा श्रीरामका पूजन एवं यजन होता है। अपने आदर्श चरित्रके कारण ये मर्यादापुरुषोत्तमके रूपमें प्रत्येक घर-घरमें पूजित एवं प्रतिष्ठित हैं। 'राजा रामचन्द्रकी जय' के रूपमें सदा ही इनके राम-राज्यकी कल्पना मूर्त हुई है।

ज्योतिष और पुराणोंके अनुसार श्रीरामका समय आजसे प्रायः दो करोड़ वर्षपूर्व माना जाता है। इनका अवतार चैत्रशुक्ला नवमीको मध्याह्नमें अयोध्यामें हुआ था। इनके मुख्य व्रतोंमें

रामनवमी तथा रामद्वादशी हैं। इनके विषयमें हजारों स्तोत्र, उपासनाके पटल, पद्धति, कवच, शतनाम तथा सहस्रनाम आदि हैं। सैकड़ों पाञ्चरात्र आगम-ग्रन्थोंमें भी इनकी उपासना-विधि प्रतिपादित है। रामायणोंमें वाल्मीकिरामायण, महारामायण, आदिरामायण (भुशुण्डि), अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण आदि प्रसिद्ध हैं, जिनमें अध्यात्मरामायण ब्रह्माण्डपुराणका ही एक भाग है। अन्य भाषाओंमें रामचरितमानस, कृत्तिवास-रामायण, कम्बरामायण, भानुभक्तकोरामायण, असमिया रामायण तथा उड़िया रामायण आदि अनेक हैं, जिनमें श्रीहरिकी दिव्य कथाओंकी महिमाका गुणगान किया गया है। भक्तोंको भगवान्‌के दर्शन होते रहते हैं। उन परमेश्वर श्रीराघवेन्द्रके चरणारविन्दोंमें हम सभीका बारंबार प्रणाम।

श्रीकृष्णावतारकी कथा

जैसे श्रीराम पूर्णतम मर्यादापुरुषोत्तम कहे गये हैं, वैसे ही श्रीकृष्ण पूर्णतम लीलापुरुषोत्तम-रूपसे विख्यात हैं। पुराणोंमें श्रीमद्भागवत, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, विष्णु, पद्म, भविष्य तथा गर्गसंहिता आदिमें श्रीकृष्णके अद्भुत चरित्र तथा दिव्यतम उपदेश विस्तारसे प्रतिपादित हैं। गणना करनेवालोंने कहीं श्रीकृष्ण तथा कहीं बलरामजीकी दशावतारोंमें चर्चा की है। इनका आविर्भाव भाद्रपदमासकी कृष्णाष्टमीको अर्धरात्रिके समय मथुरामें कंसके कारागारमें हुआ था।

द्वापरयुगकी बात है। पूर्वकालमें देवासुर-संग्राममें जो-जो कालनेमि आदि दैत्य-दानव राक्षस मारे गये थे, वे पुनः कंस, अरिष्ट, धेनुक, केशी, प्रलम्ब, नरक, सुन्द तथा वाणासुर आदिके रूपमें उत्पन्न होकर पृथ्वीपर महान् अत्याचार करने लगे। सर्वत्र पापाचार बढ़ गया। उनके अत्याचारोंके भारको जब पृथ्वी सहन करनेमें असमर्थ हो गयी, तब उसने गौका रूप धारणकर अपना दुःख ब्रह्मादि देवोंसे निवेदन किया। तदनन्तर ब्रह्मादि देवता क्षीरशायी श्रीविष्णुके पास गये। वहाँ उन्होंने उनकी स्तुति की और उन दुष्टोंसे छुटकारा दिलानेकी प्रार्थना की। दयालु प्रभुने अपने श्याम और श्वेत दो केश उखाड़े और कहा—'मेरे ये दोनों केश पृथ्वीपर अवतार लेकर दुष्टोंका संहारकर धर्मकी स्थापना करेंगे। (विष्णुपु० ५। १। ५९-६०), आप सभी आश्वस्त होकर अपने-अपने स्थानोंपर लौट जायँ। श्रीहरिकी गौर और कृष्ण वर्णकी यही दो शक्तियाँ श्रीबलराम एवं श्रीकृष्णके रूपमें अवतरित हुईं (श्रीमद्भा० २। ७। २६)।

देवर्षि नारदने मथुरा आकर कंसको बताया कि देवकीके गर्भसे उत्पन्न आठवाँ पुत्र तुम्हारे विनाशका कारण होगा। फिर क्या था, आततायी कंसने देवकी-वसुदेव—दोनोंको कारागारमें बंद कर दिया। वे अत्यन्त भयभीत तथा सावधान होकर रहने लगे। देवकीके प्रथम छः पुत्रों[1] को जन्म लेते ही कंसने मार डाला। भगवान्‌की प्रेरणासे सप्तम गर्भ अनन्तके अंशरूपसे देवकीके गर्भमें प्रविष्ट हुआ। श्रीहरिने उसे योगमायाके द्वारा देवकीके गर्भसे खींचकर रोहिणीके उदरमें स्थापित करा दिया। गर्भके खींचनेसे वह संकर्षण कहलाया। देवकीके आठवें गर्भमें प्रभु स्वयं पधारे और उनकी योगमाया यशोदाके गर्भमें प्रविष्ट हुई।

भाद्रपदमासकी कृष्णाष्टमीकी अर्धरात्रिका समय था। ऐसी पवित्र वेलामें जगत्पति, जगदाधार चतुर्भुज श्रीविष्णुने कंसके कारागारमें अवतरित होकर श्रीदेवकी और वसुदेवजी-को दर्शन दिया। उन्होंने प्रभुकी स्तुति करनेके उपरान्त प्रार्थना की कि 'भगवन्! आप अपने इस रूपको समेट लीजिये, नहीं तो यदि कंसको ज्ञात हो जायगा तो वह आपको मार डालेगा।' प्रभुकी योगमायाका प्रभाव था कि उस समय सभी द्वारपाल प्रगाढ़ निद्रामें सो गये और वसुदेव-देवकीकी बेड़ियाँ खुल गयीं। कारागारका फाटक खुल गया। वसुदेवजी बालरूपको प्राप्त श्रीकृष्णको सूपमें रखकर श्रीप्रभुके प्रभावसे यमुनाको पारकर यशोदाके पास छोड़ आये तथा यशोदाके घर आविर्भूत कन्याको लेकर मथुरा चले आये और बंदीगृहमें बेड़ी धारणकर पूर्ववत् बंदी हो गये। नवजात कन्या रुदन करने

१-ये बालक पूर्वजन्ममें हिरण्यकशिपुके भाई कालनेमिके पुत्र थे। इन राक्षस कुमारोंने हिरण्यकशिपुका अनादर कर भगवान्‌की भक्ति की थी, अतः उसने कुपित होकर इन्हें शाप दिया था कि 'तुमलोग अपने पिताके हाथसे ही मारे जाओगे।' कंस कालनेमिका अवतार था, अतः पूर्वशापवश कंसके हाथों इन पुत्रोंकी मृत्यु हुई। यह प्रसंग हरिवंशपुराणमें आया है।

लगी। रुदन सुनकर द्वाररक्षक दौड़कर कंसके पास पहुँचे। घबराहटमें दौड़ता हुआ कंस देवकीके पास पहुँचा और उसने उस कन्याको देवकीके हाथसे छीन लिया[२]। वह ज्यों ही उसे शिलापर पटकनेको उद्यत हुआ, त्यों ही वह उसके हाथसे छूटकर आकाशमें स्थित होकर कहने लगी—'अरे दुष्ट कंस ! तुम समझ रहे हो कि देवर्षि नारदकी बात मिथ्या हो गयी ? आठवाँ गर्भ पुत्रके रूपमें उत्पन्न होना चाहिये था, पुत्री कैसे हुई ? किंतु सावधान हो जाओ, तुम्हारा काल मुझसे पहले प्रकट हो चुका है।' ऐसा कहकर वह देवी अन्तर्हित हो गयी। यही देवी अष्टभुजा—दुर्गा शक्तिके रूपमें पृथ्वीपर प्रकट हुई।

देवीके मुँहसे ऐसी वाणी सुनकर कंसको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। वह अपने मनमें ग्लानि तथा पश्चात्ताप करने लगा कि मैंने व्यर्थ ही अपनी बहन देवकीके छः निर्दोष पुत्रोंको मार डाला। फिर तो वह देवकी और वसुदेवको बन्धनमुक्त करके अपने महलमें चला आया। दूसरे दिन कंसने अपने मन्त्रियोंको पूर्ण वृत्तान्तसे अवगत कराया। दुष्ट मन्त्रियोंने कहा—'राजन् ! उस देवीकी बात मिथ्या नहीं हो सकती, कहीं-न-कहीं इस मथुरा, गोकुल तथा वृन्दावन-मण्डलमें आपका शत्रु उत्पन्न हो चुका होगा, उसे ढूँढ़ना चाहिये।' मन्त्रियोंकी सलाहसे कंसने राजाज्ञा दी कि 'जो भी नवजात शिशु मिलें, उन्हें तुरंत ही मार दिया जाय।' कंसके भेजे दैत्य मथुरा, गोकुल आदिमें शिशुओंका संहार करने लगे।

उधर व्रज-गोकुलमें नन्दबाबाके यहाँ महान् उत्सव हो रहा था। सर्वत्र उल्लास एवं आनन्द-ही-आनन्द बरस रहा था। गोप-गोपी सभी मुग्ध हो रहे थे। स्वयं श्रीहरि बालकरूपमें विचित्र लीलाएँ करने लगे।

इनकी बाललीलामें बालघातिनी पूतना, शकटासुर और तृणावर्तका उद्धार, माखनचोरी, गो-चारण, यशोदाको विराट्-रूपका दर्शन, यमलार्जुन-उद्धार, वत्सासुर, बकासुर, अघासुरका वध, ब्रह्माजीका मोह-भंग, कालियमर्दन, प्रलम्बासुरवध, दावानल-पान, इन्द्रका मान-भंग, नन्दबाबाको वरुणके पाससे वापस लाना, महारास-क्रीडा,[३] केशी-वध, यमुनाजलमें अक्रूरको दर्शन देना, मथुरा जाकर नगरभ्रमण, रजक-उद्धार, सुदामा मालीपर कृपा, कुब्जाको रूप-दान, रंगशालामें धनुष-भंग, रंगशालाके द्वारपर स्थित कुबलयापीड गजराजका वध, रंगशालामें चाणूर, मुष्टिक, शल और तोशलका वध, रंगमंचपर स्थित कंसका वध, कंसके भाइयोंका संहार, माता-पिताकी बन्धन-मुक्ति, उग्रसेनका मथुराके सिंहासनपर अभिषेक, नन्दबाबा आदि ग्वालोंको व्रज लौटाना, गर्गाचार्यद्वारा यज्ञोपवीत-संस्कार तथा महर्षि सांदीपनिके यहाँ विद्याध्ययन भी सम्मिलित हैं।

तत्पश्चात् तेईस अक्षौहिणी सेनाके साथ मथुरापर चढ़ाई करनेवाले जरासंधको सत्रह बार पराजित करना, कालयवनके भयसे समुद्रमें द्वारकापुरीका निर्माण और वहाँ यदुवंशियोंको सुरक्षित पहुँचाना, मुचुकुन्दकी दृष्टिसे कालयवनको भस्म कराना, मुचुकुन्द-उद्धार, प्रवर्षणपर्वतपर जरासंधद्वारा लगायी गयी आगसे बचकर द्वारका लौटना, रुक्मिणी-हरण, स्यमन्तक-मणिकी चोरीका कलंक, जाम्बवान्के साथ युद्ध और जाम्बवतीकी प्राप्ति, स्यमन्तक-मणिसहित सत्यभामाकी प्राप्ति, शतधन्वाका वध, कालिन्दी-विवाह, मित्रविन्दा-हरण, सात बैलोंको नाथकर सत्याका पाणि-ग्रहण, भद्रा-विवाह, लक्ष्मणा-हरण, भौमासुरका वध, भगदत्तको अभय-दान, सोलह हजार कन्याओंका उद्धार, स्वर्गलोकमें माता अदितिको कुण्डल-दान, पारिजात-हरण, चित्रलेखाद्वारा अनिरुद्धका हरण, वाणासुरकी भुजाओंका छेदन, उषा-अनिरुद्ध-विवाह, पौण्ड्रक तथा काशिराजका वध, युधिष्ठिरके राजसूय-यज्ञमें अग्रपूजन, भीमसेनद्वारा जरासंधका वध कराना, शिशुपाल-वध, शाल्व, दन्तवक्र और विदूरथका संहार, सुदामापर कृपा, युधिष्ठिरके कहनेसे दूतका काम करना, कौरव-सभामें विराट्-रूप-प्रदर्शन, विदुरके घर भोजन, द्रौपदीकी लज्जा-रक्षा, महाभारत-युद्धमें अर्जुनका सारथ्य करना, संग्रामारम्भमें

२-ब्रह्मवैवर्तपुराण (कृ० ज० ७) के अनुसार वसुदेव-देवकीके माँगने पर कंस उस कन्या को उन्हें दे देता है। वे दोनों अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक उसका पालन करने लगे। पार्वतीके अंशसे उत्पन्न 'एकानंशा' नामकी वह कन्या श्रीकृष्णकी बड़ी बहन हुई।द्वारकामें रुक्मिणीके विवाहके अवसरपर वसुदेवजीने उस कन्या को शंकरके अंशावतार महर्षि दुर्वासाको समर्पित किया।

३-इसके बाद कंसने नारदजीके द्वारा कृष्णको देवकीका आठवाँ पुत्र बतलाने पर वसुदेव-देवकीको पुनः बन्धनमें डाल दिया।

गीतोपदेश, यदुवंशका संहार और अन्तमें व्याधके बाणाघातसे सशरीर स्वधाम-गमन—ये प्रमुख लीलाएँ हैं।

भगवान्‌का मनुष्योंके समान जन्म लेना, लीला करना और फिर संवरण कर लेना उनकी मायाका विलासमात्र है—अभिनयमात्र है। वे स्वयं ही इस जगत्‌की सृष्टि करके इसमें प्रवेश कर विहार करते हैं और, अन्तमें संहारलीला करके अपने अनन्त महिमामय स्वरूपमें अवस्थित हो जाते हैं।

भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रों और लीलाओंमें आध्यात्मिकता कूट-कूटकर भरी है। इनके उपदेशोंका थोड़ा भी मनन-अनुसरण मोक्षप्रद है। इनकी उपासनापर बीसों कवच हैं, जिनमें त्रैलोक्यमङ्गल-कवच सर्वोत्तम है। लोकमें श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी, श्रीकृष्णद्वादशी, महारासपूर्णिमा, गोपाष्टमी तथा राधाष्टमी आदि तिथियोंपर इनका विशेष पूजन-अर्चन किया जाता है। इनकी विशेष उपासना गोपालपूर्वोत्तरतापिनी उपनिषद्‌में निर्दिष्ट है। ऐसे करुणावरुणालय, शरणागतवत्सल, भक्तजन-सुखदायक श्रीहरिके चरणारविन्दोंमें हमारी अचल भक्ति बनी रहे—यही कामना प्रत्येक मनुष्यकी होनी चाहिये।

भगवान् बुद्ध

इनकी जन्मतिथि वैशाखी पूर्णिमा कही गयी है। पुराणोंमें कल्किपुराणमें इनका विस्तृत वर्णन आया है। उसमें कल्कि तथा बुद्धको युद्धरत दिखाकर बुद्धको कल्किद्वारा पराजित दिखाया गया है। बुद्धने बौद्धधर्मका प्रचार किया। पुराणोंमें इनके पिताका नाम जिन या अजिन बताया गया है। ये तथागत-के नामसे भी प्रसिद्ध थे। इनका जन्म कपिलवस्तुमें मायादेवीके गर्भसे हुआ था। बौद्धग्रन्थोंमें इनके पिताका नाम शुद्धोदन बताया गया है। इनका धर्म अहिंसाको लेकर था। वैसे तो कपिल, आसुरि, पञ्चशिख तथा पतञ्जलि आदिने भी अहिंसाको ही प्रधान धर्म माना था, किंतु इन्होंने उसे व्यापक रूप दिया। इनके शिष्योंमें सारीपुत्र, गुद्गलायन आदि मुख्य हैं।

गयामें इन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था। ये जेतवन, विहार कौशाम्बीमें अधिक रहते थे, किंतु परिभ्रमण करते रहते थे। भ्रमण तथा विहरणके कारण ही इनके क्षेत्रका नाम विहार पड़ा। सारनाथ या सारङ्गनाथमें इन्होंने अपना प्रथम उपदेश दिया था तथा अशोकके बुद्धचक्रको धर्मचक्र मानकर प्रचार किया था। इन्होंने जब परमेश्वरके अस्तित्वपर सहमति नहीं की तो लोगोंने इन्हें ही ईश्वर मान लिया था और बौद्धोंने राम-कृष्ण तथा शिव आदि देवोंकी तरह इनकी उपासना की। इनका पञ्चशील प्रसिद्ध है। इनकी सर्वाधिक विस्तृत जीवनी ललितविस्तरपुराणमें उपलब्ध है, परंतु यह बौद्ध पुराण है। हिंदुओंके अठारह महापुराणों तथा उपपुराणोंमें इसकी गणना नहीं है। अग्निपुराण (४९। ८-९) में बुद्ध-प्रतिमाका लक्षण इस प्रकार दिया है—

'भगवान् बुद्ध ऊँचे पद्ममय आसनपर बैठे हैं। उनके एक हाथमें वरद तथा दूसरेमें अभयकी मुद्रा है। वे शान्तस्वरूप हैं। उनके शरीरका रंग गोरा और कान लम्बे हैं। वे सुन्दर पीतवस्त्रसे आवृत हैं।'

वे धर्मोपदेश करते हुए कुशीनगर पहुँचे और वहीं उनका देहान्त हो गया। वर्तमानमें वहाँ भव्य मन्दिर और भगवान् बुद्धकी सोयी हुई विशाल प्रतिमा विद्यमान है। बौद्ध-धर्मावलम्बी सहस्रों श्रद्धालु वहाँ जाकर उनका दर्शन कर कृतार्थ होते हैं।

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते। स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥
अवज्ञानमहंकारो दम्भश्चैव गृहे सतः। परितापोपघातौ च पारुष्यं च न शस्यते ॥

(विष्णुपु० ३। ९। १५-१६)

'अतिथि जिसके घरसे निराश होकर लौट जाता है, उसे अपने समस्त दुष्कर्म देकर वह (अतिथि) उसके पुण्यकर्मोंको स्वयं ले जाता है। गृहस्थके लिये अतिथिके प्रति अपमान, अहङ्कार और दम्भका आचरण करना, उसे देकर पछताना, उसपर प्रहार करना अथवा उससे कटु भाषण करना उचित नहीं है।'

मन्वन्तरके आख्यान

महापुराणोंके पाँच मुख्य लक्षण हैं—१-सृष्टि, २-प्रलय, ३-वंश, ४-वंशानुचरित तथा ५-मन्वन्तर। इनमेंसे मन्वन्तरका सम्बन्ध कालकी गणनासे है। मनु तथा मनुपुत्रगण जितने समयतक सप्तद्वीपा वसुमतीका राज्य भोगते हुए धर्मपूर्वक अपनी प्रजाका पालन करते हैं, वह समय मन्वन्तर कहलाता है। मन्वन्तरको समझनेके लिये इस काल-गणनाका ज्ञान आवश्यक है, जो संक्षेपमें इस प्रकार है—

मनुष्यका १ मास =	पितरका १ दिन-रात
मनुष्यका १ वर्ष =	देवताका १ दिन-रात
मनुष्यके ३० वर्ष =	देवताका १ मास
मनुष्यके ३६० वर्ष =	देवताका १ वर्ष (दिव्य वर्ष)
४,३२,००० मानव-वर्ष =	१२०० दिव्य वर्ष=१ कलियुग
८,६४,००० मानव-वर्ष =	२४०० दिव्य वर्ष=१ द्वापरयुग
१२,९६,००० मानव-वर्ष =	३६०० दिव्य वर्ष=१ त्रेतायुग
१७,२८,००० मानव-वर्ष =	४८०० दिव्य वर्ष=१ सत्ययुग
योग-४३,२०,००० मानव-वर्ष =	१२,००० दिव्य वर्ष = एक महायुग या चतुर्युगी

इस प्रकार एक चतुर्युगीमें १२,००० दिव्य वर्ष या ४३,२०,००० मानव-वर्ष होते हैं। इसीको महायुग कहते हैं। ऐसे एकहत्तर युगोंका एक मन्वन्तर होता है, जिसका मान ३०,६७,२०,००० मानव-वर्ष होता है। प्रत्येक मन्वन्तरके अन्तमें सत्ययुगके वर्षोंके बराबर अर्थात् १७,२८,००० वर्षोंकी संध्या होती है। एक मन्वन्तरके मान= ३०,६७,२०,००० वर्षमें संध्याके मान= १७,२८,००० वर्षके योग करनेपर ३०,८४,४८,००० वर्ष होता है, जो संधिसहित एक मन्वन्तरके मानव-वर्ष हैं। अर्थात् संधियुक्त एक मन्वन्तरमें ३०,८४,४८,००० वर्ष होते हैं। ऐसे ही जब १४ मन्वन्तर व्यतीत होते हैं, तब एक कल्प होता है। यही एक कल्प ब्रह्माजीके एक दिनके बराबर होता है। चौदह मन्वन्तर अपनी-अपनी संध्याओंके मानके सहित होते हैं। इसके अतिरिक्त कल्पके आरम्भकालमें भी एक सत्ययुगके मानके बराबरकी संध्या होती है। इस प्रकार एक कल्पके चौदह मनुओंमें ७१ चतुर्युगीके अतिरिक्त सत्ययुगके मानकी १५ संध्याएँ होती हैं। ७१ महायुगोंके मानसे १४ मनुओंमें ९९४ महायुग होते हैं और सत्ययुगके मानकी १५ संध्याओंका काल पूरा ६ महायुगोंके समान हो जाता है। दोनोंका योग मिलानेपर पूरे एक हजार महायुग या दिव्य युग बीत जाते हैं। इसे निम्नरूपमें समझा जा सकता है—

	सौरमान (मानव-वर्ष)	देवमान या दिव्यवर्ष
एक चतुर्युगी (महायुग)	४३,२०,०००	१२,०००
एकहत्तर चतुर्युगी	३०,६७,२०,०००	८,५२,०००
कल्पकी संधि	१७,२८,०००	४८,००
मन्वन्तरकी चौदह संध्याएँ	२,४१,९२,०००	६७,२००
संधिसहित एक मन्वन्तर	३०,८४,४८,०००	८,५६,८००
चौदह संध्यासहित चौदह मन्वन्तर	४,३१,८२,७२,०००	१,१९,९५,२००
कल्पकी संधिसहित चौदह मन्वन्तर या एक कल्प	४,३२,००,००,०००	१,२०,००,०००

ब्रह्माजीका दिन ही कल्प है, इतनी ही बड़ी उनकी रात्रि है। ब्रह्माके दिनके उदयके साथ ही त्रैलोक्यकी सृष्टि होती है। उनके दिनकी समाप्ति होनेपर उतनी ही रात्रि होती है—

ब्रह्माका दिन	=	४,३२,००,००,०००	मानुषी वर्ष
ब्रह्माकी रात्रि	=	४,३२,००,००,०००	
दिन-रात्रिका योग	=	८,६४,००,००,०००	

इसे ३०से गुणा करनेपर ब्रह्माका एक मास होता है और गुणनफलमें पुनः १२से गुणा करनेपर ब्रह्माजीका एक वर्ष होता है—

ब्रह्माका एक दिन-रात---	८,६४,००,००,०००
	× ३०
एक ब्राह्म मास------	२,५९,२०,००,००,०००
	× १२
एक ब्राह्म वर्ष------	३१,१०,४०,००,००,०००

ब्रह्माकी परमायु इस ब्राह्म वर्षके मानसे एक सौ वर्ष है। इसे 'पर' कहते हैं। इस समय ब्रह्माजी अपनी आयुका आधा भाग अर्थात् एक परार्ध (५० वर्ष) बिताकर दूसरे परार्धमें चल रहे हैं। यह उनके ५१वें वर्षका प्रथम दिन या कल्प है। दोनों परार्धोंके आदि और अन्तमें क्रमशः ब्राह्म तथा पाद्म नामक दो विशेष कल्प होते हैं। इस प्रकार ब्रह्माजीके एक मास ३० दिनके ३० कल्प + २ कल्प = ३२ कल्प होते हैं।[1] ब्रह्माके प्रथम परार्धमें कल्पोंकी गणना रथन्तर-कल्पसे होती है। परंतु ब्रह्माके द्वितीय परार्धके आदिका कल्प श्वेतवाराहकल्प होता है। अतः वर्तमान कल्पको श्वेतवाराहकल्प कहा जाता है। यह द्वितीय परार्धका प्रथम कल्प है। इस कल्पके चौदह मन्वन्तरों (चौदह मनुओं)में ६ मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं। वर्तमानमें सप्तम वैवस्वत मन्वन्तरके २७ चतुर्युग (महायुग) बीत चुके हैं और २८वें महायुगके सत्य, त्रेता, द्वापर बीतकर २८वाँ कलियुग चल रहा है।

सृष्टि तथा मन्वन्तरादिकी यह काल-गणना पुराणोंका महत्त्वपूर्ण प्रतिपाद्य विषय है। प्रत्येक धर्म-कर्मादिके अनुष्ठान-कार्यमें आरम्भमें जो संकल्प किया जाता है, उसमें देश और कालका ही स्मरण किया जाता है। संकल्पमें इस ब्रह्माण्डके चतुर्दश भुवनों, सप्तद्वीपों, खण्ड, वर्ष आदि देशके परिमाणके साथ ही सृष्टिकर्ता ब्रह्माके परार्ध, कल्प, मन्वन्तर, युगादिसे लेकर संवत्, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वार, लग्नादिका उच्चारण किया जाता है।

इस प्रकार प्रतिकल्प (ब्रह्माके एक दिन)में चौदह मनु होते हैं। चौदहों मनु तथा मनुपुत्र एक-एक कर समस्त पृथ्वीके राजा होकर धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते हैं और अपने-अपने भोग्यकालतक राज्य करते हैं। मनुओंके नामानुसार ही चौदह मन्वन्तरोंके चौदह भिन्न-भिन्न नाम पड़े हैं।

भगवान् विष्णुके नाभिपद्मसे चतुर्मुख ब्रह्माने आविर्भूत होकर मैथुनी सृष्टिके संकल्पको लेकर अपने ही शरीरसे स्वायम्भुव मनु तथा महारानी शतरूपाको प्रकट किया। ये आदिमनु ही स्वयम्भू या स्वायम्भुव प्रथम मनु हैं, जिनके नामसे स्वायम्भुव

१-प्रतिवर्ष सौर गणनासे श्रावण मास (कर्कसे सिंह-संक्रान्तितक) ३२ दिनका होता है और आषाढ़ मास (मिथुनसे कर्क-संक्रान्तितक) भी प्रायः ३२ दिनका होता है। इसलिये ३२ कल्पोंकी गणना की गयी है। शेष ब्राह्म मास ३० दिनों (=३० कल्पों)के ही होते। इसलिये मुख्य कल्प ३० ही हैं।

मन्वन्तर नाम पड़ा। द्वितीय मनुका नाम स्वारोचिष है। इसी प्रकार क्रमशः औत्तम, तामस, रैवत तथा चाक्षुष—ये छः मनु हुए। इन मनुओं या मन्वन्तरोंका समय व्यतीत हो चुका है। वर्तमानमें वैवस्वत मनु नामके सप्तम मनुका समय चल रहा है। वैवस्वत मन्वन्तरके बाद सात मनु और होंगे, जिनके नाम इस प्रकार हैं—८-सूर्यसावर्णि, ९-दक्षसावर्णि, १०-ब्रह्मसावर्णि, ११-धर्मसावर्णि, १२-रुद्रसावर्णि, १३-रौच्य और १४-भौत्य[१]।

इन मन्वन्तरोंका समय बीत जानेपर सृष्टिमें प्रलय होता है, जो अवान्तर या पार्थिव प्रलय कहलाता है। चौदहों मन्वन्तरोंका पूर्ण समय एक कल्प (ब्रह्माका एक दिन)के बराबर होता है। इस कल्पके अन्तमें होनेवाला प्रलय नैमित्तिक, दैनंदिन या कल्प-प्रलय कहलाता है। ब्रह्माकी आयुके दोनों परार्धोंकी समाप्तिपर प्राकृतिक महाप्रलय होता है, जिसमें सृष्टिकर्ता ब्रह्माका लय होता है। तदनन्तर समस्त ब्रह्माण्डका पूर्ण ब्रह्म परमात्मामें लय होता है, जो आत्यन्तिक प्रलय कहलाता है। पुनः काल, कर्म और स्वभावसे उस निराकारसे साकार सृष्टिकी उत्पत्ति होती है। यही सृष्टि और प्रलयका क्रम अनादिकालसे चला आ रहा है।

पूर्वमें जिन चौदह मनुओंके नामका परिगणन किया गया है, ये ही भूत, वर्तमान और भविष्यत् मनु नामसे कीर्तित होते हैं। प्रत्येक मन्वन्तरमें देवता, देवगण, इन्द्र, सप्तर्षि तथा मनुपुत्र भिन्न-भिन्न होते हैं। प्रति चार युग बीतनेपर वेदविप्लव होता है। इसीलिये सप्तर्षिगण भूतलपर अवतीर्ण होकर वेदका उद्धार करते हैं। मनु प्रत्येक सत्ययुगमें धर्मशास्त्रके प्रणेता होते हैं। मनु तथा मनुपुत्रोंके अधिकारकालतक देवता यज्ञभुक् होते हैं। मनुपुत्र और उनके वंशधर एक मन्वन्तरतक पृथ्वीका पालन करते हैं। मन्वन्तर-भेदसे भगवान् विभिन्न रूपोंमें अवतार ग्रहण करते हैं। आगे इन चौदह मन्वन्तराधिपतियोंका वृत्तान्त दिया जा रहा है, जिनके कथा-माहात्म्य-श्रवणसे मनुष्य पुण्यार्जनमें समर्थ होता है और उसका वंश कभी भी क्षीण नहीं होता। स्वायम्भुव मन्वन्तरके श्रवणसे मनुष्य धर्म-लाभ करता है। स्वारोचिष मन्वन्तरके श्रवणसे मनुष्यकी सभी कामनाएँ सिद्ध होती हैं। औत्तम मन्वन्तरके श्रवणसे धनकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार तामससे ज्ञान, रैवतसे बुद्धि और सुन्दर स्त्री, चाक्षुषसे आरोग्य, वैवस्वतसे बल, सूर्यसावर्णिसे गुणवान् पौत्र, दक्षसावर्णिसे श्रेष्ठ जाति और सद्गुरु, ब्रह्मसावर्णिसे माहात्म्य, धर्मसावर्णिसे शुभ-मति, रुद्रसावर्णिसे जय, रौच्यसे शत्रुनाशक्षमता और भौत्यसे देवप्रसाद, अग्निहोत्रका फल एवं गुणवान् पुत्रकी प्राप्ति होती है।

इन चौदह मन्वन्तरोंके देवगण, ऋषिगण, इन्द्रों, मनुओं, राजाओं और उनके वंशजोंके वृत्तान्तको सुननेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। ये सभी प्रसन्न होकर अच्छी बुद्धि प्रदान करते हैं। देवता, मनु, सप्तर्षि तथा मनुपुत्र और देवताओंके अधिपति इन्द्रगण—ये सभी भगवान् श्रीविष्णुकी ही विभूतियाँ हैं, यथा—

सर्वे च देवा मनवः समस्ताः सप्तर्षयो ये मनुसूनवश्च।
इन्द्रश्च योऽयं त्रिदशेशभूतो विष्णोरशेषास्तु विभूतयस्ताः॥

स्वायम्भुव मनुकी कथा

स्वायम्भुव मनु आदिमनु हैं। भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे आविर्भूत चतुर्मुख प्रजापति ब्रह्मा सृष्टिके अधिष्ठाता हैं। सृष्टि-रचनामें जब उन्होंने देखा कि उनकी मानसी सृष्टिसे उद्भूत सप्तर्षिगण सृष्टि-विस्तारसे विरत हो गये, तब वे विस्मित हुए और चिन्ता करने लगे—'क्या आश्चर्य है! मैं सर्वत्र व्याप्त हूँ, इसपर भी मेरी प्रजाकी नित्य वृद्धि नहीं हो रही है। इससे मालूम होता है कि प्रतिकूल दैव ही इसका एकमात्र कारण है।' इस प्रकार उनके चिन्ता करते ही उनके शरीरसे एक स्त्री-पुरुषका जोड़ा प्रकट हुआ जो सभी दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न था। आत्मसम्भूत यही पुरुष तथा स्त्री—स्वायम्भुव मनु तथा महारानी शतरूपाके नामसे प्रसिद्ध हुए। स्वायम्भुव मनुने उस शतरूपाको ब्रह्माकी आज्ञासे अपनी

१-ये नाम मार्कण्डेयपुराण अ० ५३ से लिये गये हैं।

धर्मपत्नीके रूपमें ग्रहण किया।

ब्रह्माने स्वायम्भुव मनुको सृष्टि करनेकी आज्ञा दी। उनके आज्ञानुसार स्वायम्भुव मनु तथा महारानी शतरूपा मैथुनी सृष्टि-कर्ममें प्रवृत्त हुए। तभीसे मैथुनी सृष्टिका प्रारम्भ हुआ और मिथुन-धर्मद्वारा प्रजाकी वृद्धि हुई। इन्हीं मनुसे मानव, मनुज तथा मनुष्य आदि शब्द बने। हम सभी महाराज स्वायम्भुव मनुकी संतान हैं, इसलिये मनुष्य तथा मानव कहलाते हैं।

यथासमय उनके प्रियव्रत और उत्तानपाद नामके दो पुत्र तथा आकूति, देवहूति और प्रसूति नामकी तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं। मनुने आकूतिका रुचिके साथ, देवहूतिका कर्दम प्रजापतिके साथ तथा प्रसूतिका दक्षके साथ विवाह कर दिया। रुचिके आकूतिसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम यज्ञ रखा गया। इनकी पत्नीका नाम दक्षिणा था। प्रसूतिके चौबीस कन्याएँ उत्पन्न हुईं, जिन्हें धर्म, भृगु, मरीचि, वसिष्ठादि मुनियों, अग्नि तथा पितरोंने ग्रहण किया। कर्दम प्रजापतिको देवहूतिसे कपिलदेवका जन्म हुआ, जो सांख्यशास्त्रके प्रवर्तक हुए।

स्वायम्भुव मनुके प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक जो दो पुत्र थे, उनमेंसे उत्तानपादके ध्रुव तथा उत्तम नामक दो पुत्र हुए। महाराज प्रियव्रतको विश्वकर्माकी पुत्री बर्हिष्मतीसे आग्नीध्र, यज्ञबाहु, मेधातिथि आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए। वे सभी उन्हींके समान शीलवान्, गुणी, कर्मनिष्ठ, रूपवान् और पराक्रमी थे। प्रियव्रतकी दूसरी स्त्रीसे उत्तम, तामस और रैवत—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए, जो अपने नामवाले मन्वन्तरोंके अधिपति हुए।

एक दिन प्रियव्रतने देखा कि सूर्यके पृथ्वीके एक भागपर प्रकाशित होनेसे दूसरा भाग अन्धकारयुक्त रहता है। तब वे भारी चिन्तामें पड़ गये और कहने लगे—'मेरे शासनकालमें ऐसा व्यतिक्रम नहीं होना चाहिये। योग-प्रभावसे मैं इसका निवारण करूँगा।' इस प्रकार निश्चय करके वे जगत्को आलोकमय करनेके लिये एक सूर्य-सदृश प्रकाशमान रथपर सवार होकर प्रतिदिन सात बार पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करने लगे। उनके पर्यटनसे चक्रनेमिद्वारा जो भूभाग धँस गया था, उसीसे सप्त सागरकी उत्पत्ति हुई और उनके मध्य जो भूभाग थे, वे जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर—इन नामोंवाले सप्तद्वीप कहलाये तथा सात सागर इन सप्तद्वीपोंके परिखास्वरूप हुए। जम्बूद्वीपमें नौ वर्ष हैं, जिनमें भारतवर्ष अन्यतम है।

महाराज प्रियव्रतके दस पुत्रोंमें कवि, महावीर तथा सवन—ये तीन नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे, उन्होंने संन्यास-धर्मका आश्रय ग्रहण किया। शेष सात पुत्र इन सप्तद्वीपोंके अधिपति हुए।

अन्तमें महाराज स्वायम्भुव मनुने समस्त कामनाओं और भोगोंसे विरक्त होकर राज्य छोड़ दिया। वे अपनी पत्नी शतरूपाके साथ तपस्या करने वनमें चले गये। उन्होंने सुनन्दा नदीके किनारे पृथ्वीपर एक पैरसे खड़े रहकर सौ वर्षतक घोर तपस्या की। परमप्रभुकी कृपासे वे इन्द्रके पदपर प्रतिष्ठित होकर स्वर्गका शासन करने लगे। महाराज मनु और महारानी शतरूपाने नैमिषारण्य नामक पवित्र तीर्थमें गोमतीके किनारे भी बहुत समयतक तपस्या की थी। उस स्थानपर इन दोनोंकी समाधियाँ बनी हुई हैं। मनुस्मृति इन्हीं भगवान् मनुकी रचना है। सभी धर्म-कर्म मनुस्मृतिके अनुसार ही होते हैं।

स्वारोचिष मनुकी कथा

पूर्वकालमें 'अरुणास्पद' नगरमें 'वरणा' नदीके तटपर एक सदाचारी ब्राह्मण रहते थे। एक बार उनके मनमें यह बात आयी कि मैं समस्त वसुन्धराका दर्शन करूँ। एक दिन उनके आवास-स्थानपर एक अतिथि आया, जो नाना प्रकारके ओषधियों और उनके प्रभावोंका पूर्ण ज्ञाता था और मन्त्र-विद्यामें भी निपुण था। उसने विश्ववैचित्र्य-दर्शन और अपने मन्त्र एवं ओषधिके प्रभावकी बात कही। उसकी ऐसी बात सुनकर ब्राह्मणने बड़े आदरपूर्वक उससे कहा—'भगवन्! आप अपने मन्त्र और ओषधिके दानसे मुझपर भी ऐसी कृपा करें, क्योंकि इस विस्तृत पृथ्वीके दर्शनके लिये मेरे हृदयमें बड़ी अभिलाषा उत्पन्न हो गयी है।'

यह सुनकर उस उदारहृदय अतिथिने अपने आतिथ्य ... उन ब्राह्मण देवताको पादलेपकी ओषधि दी और उन्होंने जिस दिशामें भ्रमणके लिये कहा, उस दिशाको बड़े प्रयत्नपूर्वक

अभिमन्त्रित भी कर दिया। वह पादलेप लगाकर वे ब्राह्मण देवता अनेक निर्झर-स्रोतोंसे सुशोभित हिमालयके दर्शनके लिये चल पड़े। उन्होंने सोचा कि जब मैं आधे दिनमें सहस्र योजन चला जाऊँगा, तब आधे दिनमें लौट भी आऊँगा।

बिना आयास-प्रयासके वे हिमालयके ऊपर पहुँच गये और उसके धरातलपर विचरण करने लगे। उनके पैरोंके दबावसे बर्फ पिघलने लगी, जिससे दिव्य ओषधिसे बनाया गया उनका पादलेप धुल गया। उसके बाद उनकी चाल ढीली पड़ गयी और वे इधर-उधर घूमने-फिरने लगे। अपने परिभ्रमणमें उन्होंने हिमवान् पर्वतके शिखरोंका दर्शन किया, जो अत्यन्त मनोरम थे। हिमवान्का दर्शन कर लेनेके बाद वे ब्राह्मण देवता यह सोचकर कि अगले दिन फिर आकर देखूँगा, अपने आवास-स्थलपर लौटनेकी चिन्ता करने लगे, किंतु उनका पादलेप नष्ट हो गया था और वे घरसे बहुत दूर निकल आये थे। वे सोचने लगे कि यहाँ रुकनेपर मेरे धर्म-कर्मानुष्ठानकी हानि हो जायगी, क्योंकि यहाँ अग्निहोत्र प्रभृति कार्य कैसे किये जा सकेंगे।

इस प्रकार सोच-विचारमें पड़े वे ब्राह्मण-देवता हिमालयपर चक्कर लगाते रहे और अपने पादलेपकी ओषधिकी शक्तिके नष्ट हो जानेके कारण बड़े विह्वल थे। उसी समय एक दिव्य अप्सराने, जिसका नाम 'वरूथिनी' था, इधर-उधर भ्रमण करते हुए उन ब्राह्मण मुनिको देखा। उन द्विजवरको देखते ही उसका हृदय उनके प्रति काम-भावनासे आकृष्ट हो गया और तत्काल वह उनपर अनुरक्त हो गयी। वह सोचने लगी कि अत्यन्त रमणीय रूपवाला यह कौन पुरुष है? यदि इसने मेरी उपेक्षा नहीं की तो मेरा जन्म सफल हो जायगा। उधर जब उस ब्राह्मण देवताने उस सुन्दरी वरूथिनीको देखा, तब आवश्यक औपचारिकताके साथ उसके समीप आकर उससे कहा—'तू कौन है और यहाँ क्या कर रही है? मुझे तू यह उपाय बता दे, जिसके सहारे मैं अपने घर पहुँच जाऊँ, जिससे मेरे समस्त धर्म-कर्मानुष्ठानमें कोई क्षति न पहुँचे, क्योंकि यदि द्विजगण अपने नित्य तथा नैमित्तिक धर्मोंका अनुष्ठान न करें तो उन्हें इहलोक और परलोकसम्बन्धी बहुत क्षति पहुँचती है। इसलिये किसी प्रकार इस हिमालयसे मेरा उद्धार कर।'

वरूथिनी बोली—'भगवन्! मैं मौलिकुमारी हूँ, मेरा नाम वरूथिनी है। मैं इस रमणीय महापर्वतपर निरन्तर विहार किया करती हूँ। मैं तो आपके दर्शनमात्रसे कामातुर हो चुकी हूँ और आपकी वशवर्तिनी हूँ। यहाँ जब आप मेरे साथ रहेंगे तो मैं आपके लिये माल्य, परिधान, अलंकार, सुखभोग, भोज्यपदार्थ और अङ्गराग—सबकी व्यवस्था करूँगी। यहाँ किन्नरोंकी वीणा और वेणुकी मधुर ध्वनि सुननेको मिलेगी, उनका मनोरम संगीत आनन्द देगा और यहाँकी वायुका संस्पर्श अङ्ग-प्रत्यङ्गको आह्लादित करेगा। यहाँ आप कभी भी जरावस्थामें नहीं पहुँचेंगे। यह भूमि देवभूमि है, यहाँ निवास करनेसे यौवनकालकी अवधि बहुत बढ़ जाती है।' ऐसा कहकर प्रेमातुर कमलनयनी वरूथिनीने 'कृपा कीजिये, कृपा कीजिये' की मधुर ध्वनिके साथ सहसा बड़ी उत्कण्ठासे उस ब्राह्मणका आलिङ्गन कर लिया।

ब्राह्मणने कहा—'वरूथिनी! यदि तू सचमुच मुझसे प्रेम करती है तो मुझे वह उपाय बता दे जिसके सहारे मैं अपने आवास-स्थलपर चला जाऊँ।' वरूथिनी बोली—'ब्राह्मणदेव! आप विश्वास रखें, आप यहाँसे अपने घर अवश्य चले जायँगे, किंतु कुछ समयके लिये मेरे साथ सुदुर्लभ विषयभोगोंका आनन्द ले लें।' ब्राह्मणने समझाया—'अरी वरूथिनी! शास्त्र विषयभोगका विधान नहीं करते। विषयभोग इस लोकमें तो क्लेशकारक हैं ही, परलोकमें भी उनसे कोई सुफल नहीं मिलता।'

तब वरूथिनीने प्रार्थना की—'ब्राह्मण देवता! आपके बिना मैं मर रही हूँ, आप मुझे अपनाकर मेरे जीवनदाता बनें। ऐसा करनेसे आपको परलोकमें तो पुण्यफल मिलेगा ही, इस लोकमें भी भोग-ही-भोग मिलेंगे।' इसपर ब्राह्मणने कहा—'मेरे गुरुजनोंका आदेश है कि परस्त्रीकी कामना नहीं करनी चाहिये। इसलिये मैं तुझसे प्रेम नहीं कर सकता।'

ऐसा कहकर वे संयतचित्त हुए और शुद्ध होकर उन्होंने जलसे आचमन किया। तदनन्तर उन्होंने मन-ही-मन गार्हपत्य-अग्निको प्रणाम किया। तब गार्हपत्याग्नि देव उनके शरीरमें अनुप्रविष्ट हो गये। गार्हपत्य-अग्निके प्रवेश करते ही वे मूर्तिमान् अग्निदेवके समान प्रभापुञ्जसे परिव्याप्त हो गये

और उस स्थानको प्रकाशमय करने लगे। उस देवाङ्गनाने जब उन ब्राह्मणकुमारके उस रूपको देखा, तब उनके प्रति उसके हृदयमें अनुरागका भाव भर उठा।

वे ब्राह्मणकुमार, जिनका शरीर गार्हपत्य-अग्निसे तत्काल अधिष्ठित हो चुका था, पूर्ववत् अपने घर जानेके लिये उद्यत हो गये। वरूथिनी उन्हें देखती ही रह गयी; किंतु वे शीघ्रगतिसे वहाँसे चल पड़े और घर पहुँच गये। उधर देवाङ्गना वरूथिनीका उन ब्राह्मणकुमारमें अनुराग प्रतिक्षण बढ़ता ही गया।

एक गन्धर्व था, जिसका नाम कलि था। वह उस देवाङ्गनामें बड़ा अनुरक्त रहता था, किंतु उसने उसे पहले ही तिरस्कृत कर दिया था। गन्धर्वने वरूथिनीको उस अवस्थामें देखा। वह सोचने लगा कि क्या बात है जो इस पर्वतपर यह गजगामिनी देवाङ्गना वरूथिनी निःश्वास-वायुके झोकोंसे म्लानमुखी लग रही है? पता नहीं, किसी मुनिके शापसे यह दीन-हीन हो गयी है अथवा किसीसे अपमानित हुई है, क्योंकि इसका मुख नेत्रोंसे अश्रुजलके गिरते रहनेसे गीला हो गया है। इस प्रकार कलि गन्धर्व उत्सुकतावश बहुत देरतक अप्सरा वरूथिनीकी दुर्दशापर सोच-विचार करता रहा। अन्ततः उसकी समाहितचित्तताके प्रभावसे उसे सब बातें ज्ञात हो गयीं कि यह सब काम ब्राह्मण मुनिका है। तब उसे प्रतीत हुआ कि मानो उसके पूर्वार्जित पुण्यके फलस्वरूप उसके भाग्यने ही उसके लिये यह सब बात बना दी है। उसने सोचा—'मैं अनुरक्त होकर वरूथिनीसे अनेक बार प्रेम-याचना कर चुका हूँ, जिसे उसने विफल कर दिया है, किंतु अब वह मेरे लिये सुलभ हो जायगी, क्योंकि जब मैं उस ब्राह्मणका रूप धारण कर लूँगा, तब इसमें कोई संदेह नहीं कि वह मुझसे प्रेम करने लगेगी।'

ऐसा निश्चय करते ही उस 'कलि' गन्धर्वने अपने माया-प्रभावसे ब्राह्मणका रूप धारण कर लिया और वहाँ जाकर घूमने लगा जहाँ वरूथिनी बैठी हुई थी। उसे देखकर उस सुन्दरी तन्वङ्गी वरूथिनीके नेत्रकमल कुछ खिल उठे और वह उसके समीप जाकर बार-बार 'कृपा करो, कृपा करो' की रट लगाने लगी और कहने लगी कि तुमसे परित्यक्त हुई मैं अपने प्राण छोड़ दूँगी—इसमें संदेह न करो।

गन्धर्वने कहा—'क्या करूँ! यहाँ रहनेपर मेरे धर्म-कर्मके अनुष्ठानमें हानि होती है और तू ऐसी बात कह रही है। मैं बड़े संकटमें पड़ गया हूँ। अब मैं जैसा कहूँ वैसा तुम करो तो तेरे साथ मेरा प्रेम-मिलन हो जायगा अन्यथा नहीं हो सकता।' वरूथिनीने कहा—'तुम मुझपर कृपा करो। तुम जो कहोगे मैं वही करूँगी। मैं झूठ नहीं बोल रही हूँ। मैं निःशङ्क होकर यह सब कह रही हूँ। यह समझ लो कि मुझे सब प्रकारसे तुम्हारे वशमें ही रहना है।'

समय बीतनेपर वह गर्भवती हो गयी। वरूथिनीके गर्भसे एक पुत्रने जन्म लिया जो अग्निदेवके समान देदीप्यमान था और सूर्यकी भाँति अपने तेजकी किरणोंसे सभी दिग्भागोंको आभासित कर रहा था। इसीलिये वह 'स्वरोचिष्' नामसे प्रसिद्ध हुआ।

स्वरोचिष्ने विद्याधर इन्दीवरकी कन्या मनोरमाके साथ विधिपूर्वक विवाह किया। उसके बाद वह अपनी धर्मपत्नी मनोरमाके साथ उस उद्यानमें गया, जहाँ उसकी दोनों सखियाँ कलावती और विभावरी—जो पहले दो सुन्दर कन्याएँ थीं, मुनिशापसे कुष्ठ और क्षयके रोगसे पीड़ित पड़ी थीं। आयुर्वेदके मर्मज्ञ एवं अपराजेय उस स्वरोचिष्ने रोगनाशक ओषधि और रसायनोंके प्रयोगसे उन दोनों कन्याओंके शरीरोंको नीरोग बना दिया। अपनी-अपनी व्याधियोंसे छुटकारा पा जानेके बाद वे दोनों कन्याएँ परमसुन्दरी तथा परमकल्याणी हो गयीं। उन दोनोंने अपनेको प्रसन्नतापूर्वक स्वरोचिष्को समर्पित कर दिया और उन्हें क्रमशः पद्मिनी विद्या तथा सभी भूतप्राणियोंकी बोली बोलने तथा समझनेकी शक्ति प्रदान की। स्वरोचिष्ने दोनों कन्याओंका पाणिग्रहण किया। तत्पश्चात् वे अपनी प्रिय पत्नियोंके साथ रमणीय काननों तथा निर्झरोंसे विभूषित उस पर्वतपर विहार करने लगे। कालान्तरमें उन्हें तीन पुत्र उत्पन्न हुए।

कुछ समय बाद धनुर्धर स्वरोचिष् वनमें विहार करने गये। वहाँ एक मृगीने उनसे आलिङ्गनके लिये अनुनय किया। स्वरोचिष्के आलिङ्गनमात्रसे वह मृगी देवाङ्गना-रूपमें परिणत हो गयी और कहने लगी, 'मैं इस वनकी देवी हूँ। देवताओंने आपकी स्त्रीरूपमें मुझे नियुक्त किया है। आप मुझसे एक ऐसा पुत्र उत्पन्न करें, जो भूलोकका परिपालक हो।' तदनन्तर उस

देवाङ्गनाके गर्भसे एक दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। स्वरोचिष्का पुत्र होनेसे वह स्वारोचिष मनुके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इनका समय ही स्वारोचिष मन्वन्तर कहलाता है, जो द्वितीय मन्वन्तर है।

औत्तम मनुकी कथा

उत्तमका जन्म महाराज उत्तानपादकी पत्नी सुरुचिके गर्भसे हुआ था। वे सर्वत्र महाबली एवं महापराक्रमीके रूपमें प्रसिद्ध थे। धर्मज्ञ उत्तमने बभ्रु-कुमारी बहुलासे विवाह किया था। उनका मन निरन्तर अपनी धर्मपत्नीके प्रति प्रेममय बना रहता था, वे कभी भी किसी दूसरी वस्तु या कार्यमें आसक्त नहीं होते थे, किंतु उन राजाके प्रिय वचन भी रानी बहुलाको बड़े कर्णकटु प्रतीत होते थे और उनके द्वारा किया गया सम्मान भी उसे अपमान-सा लगता था। राजा तो उससे प्रेम करते थे, किंतु वह उन महापुरुष राजासे विरक्त रहती थी।

एक बारकी बात है कि राजाने आसव-पान करते समय उस मनस्विनी रानीसे आसव-पात्र पकड़नेके लिये कहा। राजपुरुषोंके समक्ष ही उसने राजाकी ओरसे मुँह मोड़ लिया। धर्मपत्नीसे इस प्रकार तिरस्कृत होकर राजाने सर्पकी भाँति फुफकार छोड़ते हुए द्वारपालको आज्ञा दी—'इस दुष्टहृदया रानीको ले जाकर किसी निर्जन वनमें छोड़ आओ।'

द्वारपाल राजाज्ञानुसार रानीको निर्जन वनमें छोड़ आया। रानीने इस कार्यको राजाका अनुग्रह ही समझा। राजाने भी किसी दूसरी स्त्रीको अपनी धर्मपत्नीके रूपमें स्वीकार नहीं किया। वे रात-दिन अत्यन्त निर्विण्णहृदय होकर उसी रानीकी स्मृतिमें लीन रहते और धर्मपूर्वक प्रजा-पालन करते हुए राज्यसंचालनमें लगे रहते। इस प्रकार जब राजा अपने आत्मजोंकी भाँति प्रजाजनके पालनमें लगे हुए थे, तब एक दुःखी ब्राह्मण उनके पास आया और कहने लगा—'मैं बड़ा दुःखी हूँ। मेरी बात सुन लें, क्योंकि राजाको छोड़कर और कोई भी दुःखमें पड़े प्रजाजनका रक्षक नहीं होता। बात यह है कि रातमें जब मैं सोया हुआ था, कोई आया और घरका दरवाजा खोले बिना ही मेरी पत्नीका अपहरण कर लिया। आप मेरी पत्नीको ला दें।' राजाने कहा—'जब तुम यह नहीं जानते कि तुम्हारी पत्नीको कौन ले गया और कहाँ ले गया, तब तुम्हीं बताओ कि ऐसी स्थितिमें मैं किसे दण्ड दूँ और कहाँसे तुम्हारी पत्नीको लाकर तुम्हें दूँ?' ब्राह्मणके आग्रह करनेपर राजाने उसकी पत्नीकी आयु, रूप-रंग और शीलस्वभावकी पहचान पूछी।

ब्राह्मणने कहा—'मेरी पत्नी कठोर दृष्टिकी स्त्री है, बड़ी लम्बी है, बहुत छोटे हाथोंवाली है, बड़े पतले मुँहकी है और संक्षेपमें बड़ी कुरूपा है। मैं उसकी निन्दा नहीं कर रहा हूँ, अपितु वह जैसी है वैसी बता रहा हूँ। उसकी बोली बड़ी कर्कश है और उसका स्वभाव भी सौम्य नहीं है। उसके यौवनकी अवस्था कुछ बीत चुकी है।' राजाने कहा—'ऐसी पत्नीसे तुम्हें क्या लेना-देना है? मैं तुम्हें दूसरी पत्नी दूँगा। कल्याणी पत्नीसे ही सुख मिलता है। जो नारी ऐसे रूप और शीलसे युक्त हो, उसका परित्याग ही श्रेयस्कर है।' यह सुनकर ब्राह्मणने कहा—'महाराज! पतिका धर्म पत्नीकी रक्षा करना है, क्योंकि पत्नीकी रक्षा होनेपर ही संतानकी रक्षा हो सकती है। जीव पत्नीमें स्वयं जन्म लेता है, इसलिये पत्नीकी रक्षा करनी चाहिये। संतानकी सुरक्षा करना आत्मरक्षा करना है। यदि पत्नीकी रक्षा न की जाय तो जो संतति होती है, वह वर्णसंकर होती है और वर्णसंकर संतान पूर्वज—पिता-पितामहोंको भी स्वर्गसे गिरानेके लिये पर्याप्त है। उस धर्मपत्नीसे मेरी संततिका जन्म होना है और वह संतति आपके लिये अपनी सम्पत्तिके षष्ठांशको कररूपमें देनेवाली होगी। इस प्रकार वह धर्मका कारण बन जायगी। आप उसे लाकर मुझे दें; क्योंकि प्रजाजनकी रक्षामें आप ही अधिकृत हैं।'

राजाने उस ब्राह्मणकी बातें सुनीं और उनपर सोच-विचार करके वे एक विशाल रथपर बैठ गये। उस रथसे इधर-उधर चलते-फिरते उन्होंने पूरी पृथ्वीका परिभ्रमण कर लिया। अन्ततः एक महारण्यमें एक बड़ा सुन्दर तापसाश्रम देखकर वे उसमें प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने तपस्तेजसे देदीप्यमान एक मुनिको देखा।

राजाको देखकर मुनि उठे और शिष्यसे अर्घ्य लानेको कहा। शिष्यने कहा—'यह राजा अर्घ्यके योग्य नहीं है।' राजाने पूछा—'भगवन्! जानते हुए या अनजानमें मैंने ऐसा कौन-सा

कार्य किया है, जिसके कारण आपका अभ्यागत होनेपर भी मैं आपके द्वारा अर्घ्यके योग्य नहीं माना गया।'

ऋषिने कहा—'आपने अपनी पत्नीको वनवासिनी बनाकर अपने समस्त धर्म-कर्मका परित्याग कर दिया है। राजन्! उचित तो यह है कि पत्नी यदि दुष्ट स्वभावकी हो जाय तथापि पतिका कर्तव्य उसकी रक्षा करना है। उस ब्राह्मणकी पत्नी, जिसका अपहरण हुआ है, उसके अनुरूप नहीं थी, किंतु उसने धर्म-कर्मके अनुष्ठानकी अभिलाषासे उसे ढूँढ़ लानेके लिये आपको उद्यत किया है।' यह सुनते ही राजा लज्जित हो गये और उन्होंने उस ब्राह्मणकी अपहृत पत्नीके सम्बन्धमें पूछा—

ऋषिने बताया कि बलाक नामके राक्षसने उस ब्राह्मणकी पत्नीका अपहरण कर उत्पलावर्तक वनमें छोड़ दिया है। आप उसे लाकर शीघ्र उस ब्राह्मणको उसकी पत्नीसे मिला दें। जिससे वह प्रतिदिन पापका पात्र न बनता जाय।

राजा उत्तम अपने रथपर बैठकर उस वनकी ओर चल पड़े। वहाँ उन्होंने उस ब्राह्मण-पत्नीको, जिसका स्वरूप-स्वभाव उसके पतिके द्वारा उन्हें बताया गया था, बेलका फल खाते हुए देखा। राजाने पूछा—'सौभाग्यवती! तुम तो विशालके पुत्र विप्र सुशर्माकी धर्मपत्नी हो। ठीक-ठीक बताओ कि तुम इस वनमें कैसे पहुँची?'

उसने कहा—'महाराज! मैं अपने घरके अन्तिम छोरपर सो रही थी, वहाँसे 'बलाक' नामक दुष्ट राक्षसने मेरा अपहरण कर लिया और मेरे स्वजनोंसे वियुक्त कर दिया है। इस गहन वनमें लाकर उस राक्षसने मुझे छोड़ दिया है। मुझे पता नहीं कि उसने ऐसा क्यों किया, क्योंकि न तो वह मेरा उपभोग करता है और न मुझे खा ही लेता है। वह राक्षस इसी वनके अन्तिम छोरपर रहता है। यदि आप उससे भयभीत नहीं हैं तो उसे वहाँ देख लीजिये।' इसके बाद राजा ब्राह्मणीद्वारा निर्दिष्ट मार्गसे उस वनमें गये और उस राक्षसको सपरिवार देखा। राजाको देखते ही वह शीघ्रतापूर्वक दूरसे ही राजाका अभिनन्दन करनेके लिये अपने मस्तकसे धरतीका स्पर्श करते हुए उनके चरणोंके समीप पहुँच गया और बोला—'महाराज! मेरे आवासस्थलपर आकर आपने मुझपर बड़ी कृपा की है। आप इस अर्घ्यको ग्रहण करें और इस आसनपर विराजें। मैं तो आपके राज्यमें रह रहा हूँ, अतः आप आज्ञा दें कि मुझे क्या करना है?' राजाने कहा—'अरे राक्षस! तूने विधिवत् मेरा आतिथ्य-सत्कार किया है, इससे तो तूने सब कुछ कर दिया, किंतु एक बात यह बता कि तूने ब्राह्मणकी पत्नीका अपहरण क्यों किया?'

राक्षसने उत्तर दिया—'महाराज! हम राक्षस हैं, किंतु मनुष्यमांस-भोजी नहीं। वे राक्षस दूसरे प्रकारके होते हैं जो मनुष्यका मांस भक्षण करते हैं। हम तो लोगोंके पुण्यके फलके भोजी हैं। चाहे आप हमें अपमानित करें या हमारा सम्मान करें, हम तो स्त्रियों और पुरुषोंके स्वभावका भक्षण करते हैं, जीव-जन्तुओंका भक्षण नहीं करते। जब हम मनुष्योंकी क्षमाशीलताका भक्षण कर लेते हैं तब वे हमपर क्रुद्ध हो जाते हैं, किंतु जब हम उनके दुष्ट स्वभावका भक्षण कर लेते हैं, तब वे सुशील हो जाया करते हैं। राजन्! इसका पति बड़ा मन्त्रवेत्ता है, अतः जब मैं किसी यज्ञमें बलि-भक्षणके लिये जाता हूँ, तब वह 'रक्षोघ्न' मन्त्रोंके पाठसे मुझे भगा देता है। इसीलिये मैंने उसकी पत्नीके अपहरणसे उसे अयोग्य बना देनेका उपद्रव किया है, क्योंकि बिना पत्नीके कोई पति यज्ञ-यागके अनुष्ठानके योग्य नहीं रह सकता।'

राजाने कहा—'अरे राक्षस! तूने मुझसे कहा है कि हम मनुष्योंके स्वभावके भक्षक हैं। अब तू मुझे अपना याचक समझ और मैं जो कहता हूँ उसे सुन। आज तू इस ब्राह्मणीके दुष्ट स्वभावका भक्षण कर ले, क्योंकि तेरे द्वारा उसकी दुःशीलताके भक्षण कर लिये जानेपर वह एक सुशील गृहिणी बन जायगी और इसे उसके घर पहुँचा दे।'

राजाज्ञा पाकर वह राक्षस अपनी मायासे उस ब्राह्मणीमें अन्तःप्रविष्ट हो गया और अपनी शक्तिसे उसने उसकी दुःशीलताको भक्षण कर लिया। तब उसने, जिसे भयंकर दुःशीलता छोड़ चुकी थी, राजासे कहा—'राजन्! मेरे पूर्वजन्मके कर्मका ही यह विपाक था, जिसके कारण मैं अपने महात्मा पतिसे वियुक्त कर दी गयी थी। यह राक्षस उसमें हेतुमात्र था। न तो इस राक्षसका कोई दोष है और न मेरे उन महात्मा पतिदेवका। पिछले किसी जन्ममें मेरे द्वारा किसीका विप्रयोग किया गया होगा, अतः मेरे उसी दुष्कर्मके परिणाम-स्वरूप इस जन्ममें मैं अपने पतिसे विप्रयुक्त की गयी हूँ। इस

महात्मा राक्षसका कोई दोष नहीं है।'

तदनन्तर राजाने उस राक्षससे कहा—'अरे राक्षस भाई! यह कार्य कर देनेपर तूने मेरा सब कार्य कर दिया, किंतु भविष्यमें कार्य पड़नेपर जब कभी मैं तेरा स्मरण करूँ, तब तू अवश्य मेरे समक्ष उपस्थित हो जाना।' उस राक्षसने 'जैसी आज्ञा महाराज!' कहकर उस ब्राह्मण-पत्नीको, जो दुःशीलताके दूर हो जानेसे शुद्ध हो गयी थी, अपने साथ लेकर उसके पतिके घर पहुँचा दिया।

अब राजा सोचने लगे कि मैं क्या करूँ, क्योंकि मैंने भी अपनी धर्मपत्नीका परित्याग किया है। इसके लिये उन ज्ञानदृष्टि मुनिवरसे ही पूछना है। अतः उन्होंने अपने रथपर आरूढ़ होकर त्रिकालदर्शी मुनिके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया तथा सब कुछ उन्हें अवगत कराया। मुनिने कहा—'राजन्! आपने जो कुछ किया है वह सब मुझे पहले ही ज्ञात हो गया था। धर्म, अर्थ और कामरूप पुरुषार्थके लिये धर्मपत्नी मुख्य कारण है। आपने अपनी पत्नीका परित्याग करके धर्मका परित्याग किया है।'

राजाने कहा—'मैं क्या करूँ! यह सब मेरे कर्मोंका विपाक है। मैं अपनी पत्नीको प्राण-समान समझता था, किंतु वह मुझसे विमुख रहा करती थी। वस्तुतः यही बात थी, जिसके कारण मैंने उसका परित्याग किया। मैं कुछ नहीं जानता कि वह कहाँ चली गयी अथवा वनमें ही सिंह-व्याघ्र या निशाचरोंने उसे मारकर खा लिया।' तब ऋषिने कहा—'महाराज! उसे सिंह, व्याघ्र अथवा निशाचरोंने नहीं खाया है। वह इस समय पातालमें है।'

राजाने पूछा कि 'उसे पातालमें कौन ले गया? और अवतक उसका चरित्र निर्दुष्ट कैसे है? यह कृपा करके मुझे बता दें।'

ऋषिने कहा—'राजन्! पातालमें कपोतक नामका एक प्रसिद्ध नागराज है। उसने तुम्हारे द्वारा परित्यक्त होनेपर महावनमें इधर-उधर घूमती हुई रानीको देखा। उसके प्रति अनुरक्त होने तथा उससे सम्बद्ध समस्त वृत्तान्तके ज्ञानके कारण वह उसे पाताललोकमें ले गया। महाराज! उस बुद्धिमान् नागराजकी मनोरमा नामकी रूपवती धर्मपत्नी और नन्दा नामकी एक सुन्दरी पुत्री है। नन्दाने यह सोचकर कि रानी सुन्दर है और भविष्यमें उसकी माताकी सौत बनेगी, उसे देखते ही अपने भवनमें ले जाकर अन्तःपुरमें छिपाकर रखा है। नागराजके द्वारा रानीकी याचना करनेपर जब नन्दाने कोई उत्तर नहीं दिया, तब उसके पिता नागराजने अपनी उस पुत्रीको शाप दे दिया—'जा, गूँगी हो जा।' राजन्! नागराजकी वह पुत्री शापके कारण गूँगी बनी पाताललोकमें ही रहती है और तुम्हारी रानीकी सुरक्षा करती है।'

राजाने कहा—'भगवन्! क्या कारण है कि मेरे प्रति और सब लोग तो बहुत अधिक प्रेमभाव रखते हैं, किंतु मेरी अपनी पत्नी मुझसे प्रेम नहीं करती?'

ब्राह्मण बोले—'राजन्! बात ऐसी है कि जब आपसे उसका पाणिग्रहण हो रहा था, तब दोनोंकी कुण्डलियोंमें अत्यन्त विरोधी ग्रह पड़े थे। अब आप जायँ और राजधर्मके अनुसार पृथ्वीका पालन करें तथा अपनी पत्नीके साथ समस्त धर्म-कर्मके अनुष्ठानमें लग जायँ।'

ऋषिके द्वारा ऐसा कहे जानेपर राजा उत्तमने उन्हें प्रणाम किया और अपने रथपर आरूढ़ होकर अपनी राजधानीके लिये प्रस्थान किया। उन्होंने उन ऋषिवरको देखा, जो अपनी शीलवती धर्मपत्नीके साथ होनेसे बड़े प्रसन्नचित्त थे। राजाने कहा—'द्विजराज! अपने धर्मके अनुपालनसे आप तो कृतकृत्य हो गये, किंतु मैं बड़े संकटमें पड़ा हूँ, क्योंकि मेरी पत्नी पातालमें है।' ब्राह्मणने कहा—'यदि आपकी पत्नी जीवित हैं और चरित्रसे निर्दुष्ट भी हैं तो आप उन्हें लायें। मैं मित्रविन्दा-यज्ञद्वारा आपके प्रति उनके हृदयमें प्रेम-भाव उत्पन्न करा दूँगा।'

इसके बाद राजाने पातालसे उसी राक्षसद्वारा अपनी पत्नीको मँगवाया और उन द्विजवरने सात बार मित्रविन्दा-यज्ञका सम्पादन किया।

राजाकी पत्नीने उन्हें बतलाया—'नागराजने मेरी सखी—अपनी पुत्रीको मेरे कारण शाप दिया है कि 'तू गूँगी हो जा' तबसे मेरी सखी गूँगी हो गयी है। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरी सखीके गूँगेपनका प्रतिकार करें।' राजाने उन ब्राह्मण देवतासे उसके गूँगेपनके निराकरणके लिये कहा। ब्राह्मण देवताने सारस्वती इष्टिका अनुष्ठान कर उसके बोलनेकी शक्तिको लौटा दिया। नागलोकमें ऋषिराज गर्गने उस नाग-

कुमारीसे कहा—'तुम्हारी सखीके पतिने तुम्हारे लिये अत्यन्त दुष्कर उपकार-कार्य किया है।' नागकुमारी नन्दाको जब ये सब बातें ज्ञात हुईं तो वह द्रुतगतिसे राजाके अन्तःपुरमें पहुँचकर अपनी सखी राजरानीके गले लग गयी। साथ ही बड़े माङ्गलिक वचनोंसे बारंबार राजाकी स्तुति करती हुई आसनपर बैठकर बड़ी मीठी बोलीमें उनसे बोली—'राजन्! आपने मेरा अभी-अभी जो उपकार किया है, उससे मेरा हृदय आपके प्रति कृतज्ञताके भावोंसे आकृष्ट हो गया है। मैं आपसे कुछ निवेदन करूँगी, उसे आप सुन लें। आपको जो पुत्र होगा वह महापराक्रमी होगा। उसका राजचक्र इस पृथ्वीमें सर्वत्र अप्रतिहत वेगसे चलता रहेगा। वह अर्थशास्त्रके समस्त तत्त्वोंका मर्मज्ञ होगा, धर्म-कर्मके अनुष्ठानमें तत्पर रहेगा, बड़ा बुद्धिमान् होगा और मन्वन्तरका स्वामी 'मनु' हो जायगा।'

नन्दा राजाको इस प्रकारका वर देकर अपनी सखी राजरानीका आलिङ्गन करके पाताललोकके लिये प्रस्थान कर गयी। इधर राजाको अपनी पत्नीके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो चक्रवर्ती सम्राट् हुआ और वही औत्तम नामसे प्रसिद्ध मनु हुआ। (म० प्र० गो०)

तामस मनुकी कथा

स्वराष्ट्र नामक एक महापराक्रमी राजा थे, उनकी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्यने उन्हें लम्बी आयु दी थी। उन राजाके सौ पत्नियाँ थीं। स्वयं तो वे दीर्घायु थे, किंतु उनकी पत्नियाँ अल्पायु थीं। कालके कोपसे वे सब मरती जाती थीं और उनके भृत्यगण तथा मन्त्रिगण भी कालके गालमें चले जा रहे थे। अपनी पत्नियों और अपने सहजन्मा सेवकोंसे वियुक्त हो जानेपर राजाका हृदय बड़ा उद्विग्न रहा करता था। इस प्रकार उन्हें अत्यन्त दुःखी देखकर उनके राष्ट्रके समीपवर्ती विमर्द नामक राजाने उनका राज्य छीन लिया। राज्यच्युत हो जानेपर वे अत्यन्त दुःखी होकर वनमें चले गये और वितस्ता नदीके तटपर तपश्चरणमें लग गये।

एक बार वितस्ताकी बाढ़से वे जलाप्लावमें डूबते-उतराते एक हिरनीके पूँछके सहारे किसी प्रकार एक रमणीय वनमें जा पहुँचे। अन्धकारमें दौड़ते हुए राजा उस मृगीके स्पर्शसे सम्भूत परम आनन्दमें मग्न होकर कामातुर हो गये। हिरनीने पूछा—'महाराज! आप काँपते हाथोंसे मेरी पीठ क्यों छू रहे हैं। आपका यह आचरण मुझे कुछ दूसरे प्रकारका प्रतीत हो रहा है। आपका मन कहीं अनुचित स्थानपर तो नहीं चला गया है? राजन्! मैं आपके रतिक्रीडनके अयोग्य तो नहीं हूँ, किंतु मेरे पेटमें जो गर्भ बैठा है, वही मुझसे आपकी क्रीडामें विघ्न कर रहा है।'

राजा उस मृगीकी ऐसी बात सुनकर बड़े कुतूहलमें पड़ गये। तब उन्होंने उससे पूछा—'तू कौन है? मृगी भला मनुष्यवाणीमें कैसे बोल सकती है? और यह गर्भ कौन है? जो तेरे साथ मेरे सहवासमें विघ्न डाल रहा है?'

मृगीने कहा—'मैं पहले दृढधन्वाकी पुत्री उत्पलावती थी, आपकी प्रियपत्नी थी और आपकी सैकड़ों पत्नियोंमें सर्वप्रथम राजमहिषी थी। पहले किसी समय जब मैं पितृगृहमें किशोरी थी, तब अपनी सखियोंके साथ विहार करनेके लिये एक वनमें गयी। वहाँ मैंने एक मृगके साथ एक मृगीको देखा। वह मृगी मेरे समीप थी और मैंने उसे मारा। मुझसे भयभीत होकर वह वहाँसे अन्यत्र भाग गयी, जिससे मृग क्रुद्ध हो गया और मुझसे बोला—'अरी मूढ़ किशोरी! तू इस प्रकार मतवाली हो रही है, तेरी ऐसी दुःशीलताको धिक्कार है। मेरा यह क्षण तूने निष्फल कर दिया।' मनुष्यकी भाँति उस मृगकी वाणी सुनकर मैं डर गयी। तब मैंने उससे पूछा—'तू कौन है? तेरा इस मृगयोनिमें जन्म क्यों हुआ?' तब उसने बताया—'मैं निर्वृतिचक्षु नामक ऋषिका पुत्र हूँ, मेरा नाम सुतपस् (सुतपा) है। एक मृगीपर कामातुर हो जानेके कारण मैं मृग हो गया हूँ। तू बड़ी दुष्टा है। तूने मुझे उससे वियुक्त कर दिया, इसलिये मैं तुझे शाप देता हूँ।' मैंने उनसे कहा—'मुनिवर! अज्ञानवश मुझसे यह अपराध हो गया है। आप मुझपर कृपा करके मुझे शाप न दें।' तब उन्होंने कहा— 'यदि तू आत्मसमर्पण कर दे तो मैं तुझे शाप नहीं दूँगा।'

मैंने उस मृगसे कहा—'मैं मृगी नहीं हूँ, इस वनमें तुझे कोई दूसरी मृगी मिल जायगी। तू मेरे प्रति अपना यह कामभाव हटा ले।' मेरे ऐसा कहनेपर उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं और ओठ फड़कने लगे। तब उसने कहा— 'अरी मूढ़! तूने

कहा कि मैं मृगी नहीं हूँ तो जा, तू मृगी हो जा।' ऐसी बात सुनकर मैं अत्यन्त दुःखी हो गयी और उस मृगरूपधारी मुनिसे जब वे मनुष्यरूपमें परिवर्तित होकर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये, तब इस प्रकार बोली—'मुनिवर ! आप मुझपर कृपा करें। मैं एक अबोध बाला हूँ। मैं क्या बोलना चाहिये—यह भी नहीं जानती। इसीलिये मेरे मुँहसे ऐसी बात निकल गयी है। मुनिवर ! मेरे तो पिता जीवित हैं, ऐसी दशामें मैं अपने मनसे कैसे पतिका वरण कर लूँ। आप मुझपर कृपा करें।'

यह सुनकर मुनिवरने कहा—'मेरे मुखसे जो बात निकल गयी, वह कदापि अन्यथा नहीं हो सकती। इस जन्ममें जब तू मरेगी, तब इसी वनमें मृगीके रूपमें जन्म लेगी। तब सिद्धवीर्य नामक मुनिका 'लोल' नामक पुत्र तेरे गर्भमें आयेगा। उसके गर्भमें आनेपर तुझे अपने पूर्वजन्मकी स्मृति हो जायगी और तब तू मनुष्यकी वाणीमें बोलने लगेगी। जब उसका जन्म हो जायगा, तब तेरा इस मृगीरूपसे छुटकारा हो जायगा तथा तेरा पति तुझे मानने लगेगा और तू उन लोकोंको प्राप्त कर लेगी, जिन्हें दुष्कर्म करनेवाले नहीं प्राप्त कर सकते। तेरा पुत्र लोल महावीर्यशाली होगा और अपने पिताके शत्रुओंको परास्त कर समस्त भूलोकपर विजय पायेगा। इसके बाद वह 'मनु' हो जायगा।'

ऐसा शाप पाकर जब मैं मरी तो तिर्यग्योनि (मृगयोनि)-में पहुँच गयी और अब आपके स्पर्शमात्रसे मैं गर्भवती हो गयी हूँ। इसीलिये मैंने कहा था कि 'मुझमें जो आपका मन लग गया है वह अनुचित स्थानमें नहीं लगा है। मैं आपके सहवासके अयोग्य भी नहीं हूँ। केवल मेरे गर्भमें अवस्थित जो लोल है, वही आपके साथ मेरी रति-लीलामें बाधक बन रहा है।'

ऐसा कहे जानेपर वे राजा यह जानकर कि उनका पुत्र शत्रुञ्जय होगा और भूलोकमें 'मनु'के रूपमें अवतीर्ण होगा, अत्यधिक आनन्दित हुए। कुछ समय बाद उस मृगीने महापुरुषके लक्षणोंसे लक्षित पुत्रको जन्म दिया। उसके जन्म लेते ही समस्त जीव-जन्तु प्रसन्न हो गये। राजा तो विशेष रूपसे आनन्दित हुए। साथ ही वह मृगी भी शापविमुक्त हो गयी और श्रेष्ठ लोकमें चली गयी।

सभी ऋषि-महर्षि उस पुत्रके समीप एकत्र हुए और उसकी होनेवाली ऐश्वर्यसमृद्धिको जानकर उन्होंने उसका नामकरण करते हुए कहा—'इस पुत्रने तामसी योनिमें जन्म पानेवाली जननीके गर्भसे जन्म लिया है और उस समय जन्म लिया जब सारा संसार तमसावृत था, इसलिये इसका नाम 'तामस' होगा। वह 'तामस' अपने पिताके द्वारा उस वनमें ही पालित-पोषित हुआ। जब उसमें बुद्धि विकसित होने लगी, तब उसने अपने पितासे पूछा—'पिताजी ! आप कौन हैं ? मैं कैसे आपका पुत्र हूँ ? मेरी माता कौन है ? आप यहाँ किस लिये आये हैं ?'

अपने पुत्रकी ये बातें सुनकर पिताने, जो महापराक्रमी पृथ्वी-पालक राजा थे, अपने राज्यसे परिच्युत होने आदिसे सम्बद्ध सारी घटनाएँ, जैसे वे घटी थीं, अपने पुत्रको बता दीं। उसे सुनकर उसने भगवान् सूर्यकी आराधनासे दिव्य अस्त्रोंको प्राप्त किया तथा उनके साथ ही उन अस्त्रोंके निवर्तनके मन्त्र भी जान लिये। दिव्यास्त्रोंके प्रयोगमें प्रवीण होकर उसने अपने पिताके शत्रुओंको पराजित करके उन्हें पिताके शरणागत कर दिया। तत्पश्चात् अपने धर्मपालनपर कटिबद्ध होते हुए उसने उन सब शत्रुओंको छोड़ दिया, जिनके विषयमें उसके पिताने आज्ञा दी। उसके पिताने भी, जो प्रसन्नतापूर्वक अपने पुत्रका मुख देख चुके थे, शरीर-त्यागके बाद तपश्चरण तथा क्रतु-सम्पादनसे अर्जित दिव्य लोकोंको प्राप्त कर लिया। तामस नामका वह राजकुमार जब राजा हुआ, तब उसने समस्त भूमण्डलपर विजय पायी और वही 'तामस' नामक मनु हुआ।

रैवत मनुकी कथा

ऋतवाक् नामक एक ऋषि थे, उनके रेवती नक्षत्रके अन्तिम चरणमें एक पुत्र हुआ, जो शीलहीन निकला। उसके जन्म लेते ही मुनि भी लम्बी बीमारीसे ग्रस्त हो गये और उनकी पत्नी कुष्ठरोगसे पीड़ित हो गयी। बड़े दुःखी हृदयसे ऋतवाक्ने कहा कि 'मनुष्यके लिये अपुत्रता कुपुत्रतासे अधिक श्रेयस्कर है।'

उन्होंने इस विषयमें गर्ग ऋषिसे पूछा। तब ऋषिराज गर्गने कहा—'मुनिवर ! इस पुत्रने रेवती नक्षत्रके अन्तिम

चरणमें जन्म लिया है। यह काल बड़ा दुष्ट होता है, इसी कारण आप दुःखी हैं। इसमें न तो आपका कोई अपराध है, न आपके पुत्रका, न उसकी माताका और न आपके कुलका। आपके पुत्रके दुश्चारित्र्यका कारण यही काल है।'

यह सुनकर ऋतवाक् बोले—'मुनिवर! यदि रेवती नक्षत्रके अन्तिम चरणमें जन्म लेनेके कारण मेरे एकमात्र पुत्रका स्वभाव इतना दुष्ट हो गया है तो मैं शाप देता हूँ कि रेवती नक्षत्र आकाशसे गिर पड़े।'

ऋतवाक् मुनिके ऐसे शापोच्चारके कारण रेवती तारा त्रिलोकीके प्राणियोंकी आँखोंके सामने आकाशसे नीचे गिर पड़ी। गिरते समय वह कुमुदाद्रिपर गिरी। उसके आलोकसे कुमुद पर्वतके वन, कन्दर और निर्झर प्रकाशित हो उठे। रेवती नक्षत्रके पतनके कारण कुमुदाद्रि 'रैवतक' पर्वतके नामसे प्रसिद्ध हो गया। यह रैवतक पर्वत समस्त भूलोकमें अत्यन्त रमणीय पर्वत है। रेवती नक्षत्रकी जो कान्ति थी, वह पङ्कजिनी नामक सरोवरके रूपमें परिणत हो गयी, जिससे एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई। उस कन्याको देखकर प्रमुच नामक मुनिने उसका नाम रेवती रख दिया। अपने आश्रमके समीप जन्म लेनेके कारण प्रमुच मुनिने उसका उसी महापर्वत (रैवतक) पर पालन-पोषण किया। उस रूपवती कन्याको यौवनावस्थामें पहुँची हुई देखकर उनके मनमें यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि इसका पति कौन होगा? इसी चिन्तामें प्रमुचका बहुत समय व्यतीत हो गया; किंतु उन्हें उसके योग्य कोई वर नहीं मिल पाया। तब वे कन्याके वरके विषयमें जाननेके लिये अग्निशालामें गये और अग्निदेवसे पूछे। अग्निदेवने उनसे कहा—'इस कन्याका पति दुर्गम नामका एक राजा होगा, जो महाबली, महावीर्यशाली, प्रियभाषी तथा धर्मपालक होगा।'

तदनन्तर संयोगवश राजा विक्रमशीलका पुत्र दुर्गम आखेटके प्रसंगसे प्रमुच मुनिके आश्रममें आया। वह राजा प्रियव्रतके वंशका था और बड़ा बली था। जब वह प्रमुच मुनिके आश्रममें पहुँचा, तब उसने उस रूपवती कन्याको देखा और वहाँ प्रमुच मुनिको न देखकर उसे 'प्रिये' सम्बोधित कर पूछा—'सुन्दरि! भगवान् मुनिराज इस आश्रमसे कहाँ गये हैं? मैं उन्हें प्रणाम करनेका इच्छुक हूँ।' अग्निशालामें गये हुए द्विजवर प्रमुच मुनिने उस राजाकी बोली सुनी और 'प्रिये' का आमन्त्रण सुनते ही वे शीघ्रतासे बाहर निकल पड़े। उन्होंने राजा दुर्गमको देखा, जो समस्त राजलक्षणोंसे सुशोभित था और उनके सामने विनयावनत पड़ा था। उसे देखते ही उन्होंने अपने शिष्य गौतमसे कहा—'गौतम! शीघ्रातिशीघ्र महाराजके लिये अर्घ्य ले आओ। एक तो ये राजा हैं, जो बहुत समयके बाद मेरे आश्रमपर पधारे हैं, दूसरे विशेषरूपसे मेरे जामाता (दामाद) हैं, जिसके कारण मेरी दृष्टिमें अर्घ्य-ग्रहणके सर्वथा योग्य हैं।'

राजा इस सोचमें पड़ गया कि वह प्रमुच मुनिका जामाता कैसे हो सकता है? किंतु मौन रहकर उसने अर्घ्य ग्रहण कर लिया। उन महामुनिने राजाका स्वागत-सत्कार किया और उससे उसके राजभवन, राजकोष, सैन्यबल, मित्र-राजगण, सेवकवृन्द और अमात्यमण्डलके कुशल-मङ्गलके विषयमें पूछा। अन्तमें उसका कुशलक्षेम जानना चाहा; क्योंकि समस्त प्रकृतिवर्ग तो राजामें ही अन्ततः प्रतिष्ठित रहता है। पुनः ऋषि-आश्रममें रहनेवाली उसकी पत्नीके कुशल-मङ्गलकी भी जिज्ञासा की।

राजाने आश्चर्यपूर्वक कहा—'मुनिवर! आपकी कृपासे मेरी किसी भी वस्तुमें कोई अकुशल-वार्ता नहीं है, किंतु मुनिराज! यहाँ मेरी कौन पत्नी है? इस विषयमें मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है।' ऋषिने कहा—'राजन्! सौभाग्यशालिनी, त्रैलोक्यसुन्दरी तथा रमणीरत्न 'रेवती' नामकी अपनी पत्नीको क्या तुम नहीं जानते?'

राजाने कहा—'द्विजवर! मेरे घरपर 'रेवती' नामकी मेरी कोई पत्नी नहीं है।' ऋषि बोले—'जिस सुन्दरीको अभी-अभी तुमने 'प्रिये' सम्बोधनसे सम्बोधित किया, वही रेवती तुम्हारी श्लाघनीया गृहिणी है।' तब राजाने कहा—'मुनिवर! यहाँ आश्रममें रहनेवाली एक कन्याको मैंने 'प्रिये' अवश्य कहा है, किंतु उसके प्रति मेरे मनमें कोई दुर्भाव न था। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि ऐसे सम्बोधनके लिये आप मुझपर क्रोध न करें।' ऋषिने कहा—'राजन्! तुम सच कह रहे हो। 'प्रिये' सम्बोधनमें तुम्हारे मनमें कोई दुर्भाव नहीं था। यह सम्बोधन तुमने अग्निदेवकी प्रेरणासे ही किया था। राजन्! अग्निशालामें मैं अग्निदेवसे यही पूछ रहा था कि 'मेरी कुमारी कन्याका कौन पति होगा?' अग्निदेवने तुम्हींको इसका पति

बताया, जो आज वररूपमें यहाँ आये हो।' ऋषिके ऐसा कहनेपर राजा चुप हो गया और ऋषिने कन्याकी वैवाहिक विधि सम्पन्न करनेका उद्यम किया। तब उस कन्याने अपने पितास्वरूप ऋषिसे विनीतभावसे सिर झुकाये हुए कहा—'पिताजी! यदि आप मुझसे स्नेह करते हैं तो मेरा विवाह रेवती नक्षत्रमें कर दीजिये।'

उन महामुनिने अपने तपोबलसे रेवती नक्षत्रको पहलेकी भाँति आकाशमें स्थित कर चन्द्रमासे संयुक्त कर दिया। उन्होंने अपनी कन्याका उस राजाके साथ विवाह भी कर दिया और प्रसन्न होकर अपने जामातासे कहा—'राजन्! कहिये, विवाहके उपलक्ष्यमें मैं आपको क्या दूँ?' राजा बोला—'मैं स्वायम्भुव मनुके वंशमें उत्पन्न हुआ हूँ। आपकी यदि कृपा हो तो आपसे मैं अपने लिये ऐसे पुत्रको माँगता हूँ, जो मन्वन्तरका अधीश्वर हो।' ऋषि बोले—'आपकी यह कामना पूरी होगी। आपका पुत्र ऐसा 'मनु' होगा जो सम्पूर्ण भूमण्डलका भोग करेगा और धर्मवेत्ता होगा।' उनकी पत्नी रेवतीसे जो पुत्र हुआ वही 'रैवत' नामका मनु हुआ। वे रैवत मनु समस्त ज्ञान एवं धर्मोंसे समन्वित तथा शौर्यमें अपराजेय थे।

(म० प्र० गो०)

चाक्षुष मनुकी कथा

अवनीन्द्र और गिरिभद्रा नामक एक क्षत्रिय दम्पति थे। उनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम चाक्षुष था। जब चाक्षुषने जन्म लिया, तब उसकी माता उसे अपनी गोदमें बैठाकर उससे बोल-बोलकर उसकी वाणी खुलवानेके लिये बार-बार प्रयत्न करती और बड़े प्रेमसे उसे गले लगाती। 'वह कुछ बोले'—इसके लिये उससे कुछ-न-कुछ बोला करती थी। अपनी माताकी गोदमें बैठे हुए उस बालकको पूर्वजन्मका स्मरण हो आया और वह हँस पड़ा। उसे हँसते देखकर उसकी माता बोली—'बेटा! यह तुम्हारे मुखपर हँसी कैसी है?'

बालकने कहा—'माँ! सामने बैठी बिल्लीको तो देखो, यह मुझे खा लेना चाहती है। और दूसरी जो बच्चोंको चुरानेवाली डाइन थी और अभी-अभी कहीं अन्तर्हित हो गयी है, उसे भी तुमने नहीं देखा।' अब इस हँसीका जो कारण है, वह सुनो—'बिल्ली स्वार्थलिप्त होनेके कारण मुझे बार-बार देख रही है। जातहारिणी (बच्चोंको चुरानेवाली) भी अपने स्वार्थवश मुझपर बहुत स्निग्धहृदय हो रही थी। तुम भी अपने स्वार्थकी दृष्टिसे ही मुझपर अपनी स्निग्ध दृष्टि डाल रही हो। उन दोनों और तुममें भेद यही है कि वे दोनों तो अविलम्ब मेरा उपभोग करना चाह रही थीं और तुम क्रमशः मुझसे मिलनेवाले फलके उपभोगकी इच्छुक हो। तुम तो यह जानती नहीं कि मैं कौन हूँ और न मेरे द्वारा तुम्हारा कोई उपकार ही हुआ है। तुम्हारी और मेरी संगति भी अधिक-से-अधिक पाँच या सात दिनतक ही चल पायेगी।'

यह सुनकर माता बोली—'तुझसे मेरा कोई उपकार होगा—इसलिये मैं तुझे गले नहीं लगा रही थी। यदि मेरी यह चेष्टा तुझे अच्छी नहीं लगती, तब तो मैं यही समझूँगी कि तूने मुझसे मुँह मोड़ लिया है।' फिर वह बालकको छोड़कर सूतिकागृहसे बाहर चली गयी।

माताके बाहर जाते ही जातहारिणी डाइन माताके द्वारा परित्यक्त उस बालकको चुरा ले गयी। उसे तो महाराज विक्रान्तकी पत्नीके पर्यङ्कपर रख दिया और वहाँसे उसके बच्चेको उठाकर वह किसी दूसरेके घरमें रख आयी और उसके बच्चेकी देह क्रमशः खा गयी। वह जातहारिणी एकके बाद एक इस प्रकार तीन बच्चोंको चुराती थी और जो तीसरा होता उसे बड़ी क्रूरताके साथ खा जाती थी और जिन दो बच्चोंको नहीं खाती थी, उनकी अदला-बदली कर देती थी। यही उसका प्रतिदिनका काम था।

राजा विक्रान्तने उस बालकके भी वे सभी संस्कार सम्पन्न करवाये, जो क्षत्रिय-बालकके होते हैं। राजाने नामकरण-संस्कारकी विधिके अनुसार उस बालकका नाम 'आनन्द' रखा और वे प्रसन्नतासे गद्‌गद हो गये। उपनयन-संस्कार हो जानेपर गुरुने कुमारावस्थामें पहुँचे हुए उस बालकसे कहा—'तुम पहले अपनी माताके सम्मुख जाओ और उनका अभिवादन करो।' गुरुकी इस बातको सुनकर बालक हँस पड़ा और गुरुसे कहने लगा—'मैं किस माताका अभिवादन करूँ? उसका, जो मेरी जन्मदायिनी है अथवा उसका, जो मेरी

पालनकारिणी है, क्योंकि जिसने मेरा पालन किया है वह चैत्र नामक बालककी जननी है, जो 'विशाल' नामक ग्रामके निवासी 'अग्र्यबोध' नामक ब्राह्मणका पुत्र है। इस जननीसे चैत्रका जन्म हुआ। मेरा जन्म एक दूसरी जननीसे हुआ है।' गुरुके पुनः जिज्ञासा करनेपर उसने कहा—'द्विजवर! मैं तो 'अवनीन्द्र' नामक एक क्षत्रिय पिताका पुत्र हूँ, मेरा जन्म उनकी धर्मपत्नी 'गिरिभद्रा' से हुआ है। जन्म लेते ही मुझे एक जातहारिणी उठा ले आयी और यहाँ रख गयी। उसने हैमिनीके नवजात बालकको ले जाकर बोध नामक एक ब्राह्मणवर्यके घरमें रख दिया। उसने 'बोध' नामक ब्राह्मण-पुत्रको तो खा लिया और हैमिनीका जो पुत्र था, उसके वे सब संस्कार हो चुके जो ब्राह्मण-पुत्रके लिये विहित हैं। महाभाग! आप मेरे गुरु हैं, क्योंकि आपने मेरा उपनयन-संस्कार किया है। आपकी आज्ञाका पालन करना मेरा धर्म है। आप ही बतायें कि मैं किस माताके सामने जाऊँ और उसे प्रणाम करूँ?'

गुरुने कहा—'वत्स! यह तो बहुत बड़ा संकट आ पहुँचा। मुझे तो कुछ समझमें नहीं आ रहा है। मेरी बुद्धि तो चकरा रही है।' तब आनन्दने कहा—'जब संसारकी यही दशा है तो इसमें मोहका कैसा अवसर! इस संसारमें कौन किसका पुत्र है? और कौन किसका बन्धु-बान्धव है? जन्म होनेके बाद ही कोई किन्हीं लोगोंके साथ किसी-न-किसी नातेसे जुड़ जाता है और उसके जो दूसरे सम्बन्धी हैं, वे मृत्युके द्वारा दूर कर दिये जाते हैं। साथ-ही-साथ जो जन्म लेता है और जीवित रहता है, उसका उसके बान्धवोंसे जो सम्बन्ध है वह भी उसके शरीर-नाश होनेपर समाप्त हो जाता है। यही इस संसारकी गति है। इसीलिये मैं कह रहा हूँ कि इस संसारमें रहनेवाला कोई भी बन्धु-बान्धव हो सकता है। अथवा कौन ऐसा है जो किसीका सदा बन्धु-बान्धव रहा करता है। इसलिये गुरुजी! मैं तो तपस्या करूँगा। आप इस राजाका जो पुत्र है, जिसका नाम चैत्र है, उसे विशालग्रामके विप्रगृहसे यहाँ ले आइये।'

यह सुनकर राजा बड़े विस्मित हुए और रानी तथा अन्य सगे-सम्बन्धी भी विस्मयमें पड़ गये। राजाने उस बालकसे अपना पितृप्रेम हटाया और उसे तपश्चरणके लिये वनमें जानेकी अनुमति दे दी। वे चैत्रको, जो उनका अपना पुत्र था, ले आये और उसे राजा बननेके योग्य बना दिया। उन्होंने उस ब्राह्मणका बड़ा सम्मान-सत्कार किया, जिसने चैत्रको अपना पुत्र मानकर पाला-पोसा था। आनन्द भी बाल्यावस्थामें ही महावनमें चला गया और मोक्ष-प्राप्तिके लिये उसने अपने-आपको तपस्यामें लगा दिया। उसे तपश्चरणमें लीन देखकर ब्रह्माजी उपस्थित हुए और उससे कहे—'वत्स! इतनी घोर तपस्या क्यों कर रहे हो? बोलो, क्या बात है?' आनन्द बोला—'भगवन्! आत्मशुद्धिकी कामनासे मैं यह तप कर रहा हूँ। मेरे जो कर्म संसार-बन्धनके कारण हैं उनके नाशके लिये मैं उद्यत हो गया हूँ।' ब्रह्माजी बोले—'मोक्ष पानेके योग्य तो वह होता है, जिसके कर्म तथा कर्मफल-स्वामित्वका क्षय हो जाता है। कर्मवान् मनुष्य मोक्षके योग्य नहीं होता। तुम्हारा तो समस्त प्राणिवर्गपर स्वामित्व होगा और उसकी समाप्तिपर तुम्हें मोक्ष मिलेगा। तुम्हें छठा मनु बनना है। इसलिये यहाँसे जाओ और मनु हो जाओ। बादमें तुम्हारी मुक्ति हो जायगी।'

ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर वह बुद्धिमान् बालक भी 'आपकी आज्ञाका पालन करूँगा' यह कहकर तपस्यासे विरत हो गया और मनु बननेके उपयुक्त धर्म-कर्मानुष्ठानमें लग गया। तपस्यासे विरत करते हुए ब्रह्माजीने उसे 'चाक्षुष' कहा था। ब्रह्माद्वारा प्रदत्त अपने पहले नाम अर्थात् 'चाक्षुष' नामसे ही वह प्रसिद्ध चाक्षुष मनु हुआ। (म० प्र० गो०)

वैवस्वत मनुकी कथा

विश्वकर्माकी पुत्री 'संज्ञा' भगवान् सूर्यकी पत्नी थी। सूर्य भगवान्ने उससे महायशस्वी तथा विविध ज्ञानपारङ्गत 'मनु'-को जन्म दिया। विवस्वान्के पुत्र होनेके कारण उनका नाम वैवस्वत पड़ा। भगवान् सूर्यके दूसरे पुत्रका नाम यम और पुत्रीका नाम यमुना था।

सूर्यके असह्य तेजको न सह सकनेके कारण 'संज्ञा' अपने पिताके घर चली गयी। इसके पूर्व उसने अपनी देहको दूसरी छायाके रूपमें परिवर्तित कर उससे कहा—'मेरे पति सूर्य भगवान्के भवनमें जैसे मैं अपनी संतानोंसे सौम्य व्यवहार किया करती थी, वैसे तू भी करना और मेरे पति सूर्यदेवके

प्रति भी सौम्य व्यवहार करना तथा पतिके पूछनेपर भी मेरे पिताके घर चले जानेकी बात न बताना।'

छायाने संज्ञासे कहा—'देवि! जबतक सूर्यदेव मेरे केशपाश पकड़कर न खींचें अथवा शाप न दें तबतक वैसा ही करती रहूँगी।' छायाके इस प्रकार आश्वस्त करनेपर संज्ञा देवी अपने पिता विश्वकर्माके घर चली गयी।

कुछ दिन बाद फिर वहाँसे चलकर वह सूर्यके तेजसे भय खाती हुई उत्तरकुरुदेशमें वडवा (घोड़ी) का रूप धारण करके तपस्या करने लगी। छायाको ही वास्तविक संज्ञा मानकर सूर्य भगवान्‌ने उससे दो पुत्र और एक सुन्दर कन्याको प्राप्त किया। छायाका अपनी संतानोंके प्रति जैसा मातृवात्सल्य था, वैसा संज्ञाके पुत्रों और पुत्रीके प्रति नहीं था। माँके लाड़-प्यार आदि सुखके भोगोंमें प्रतिदिनका यह भेद-भाव मनुने तो सहन कर लिया, किंतु यमके लिये यह सब असह्य हो गया। यमने छायाके ताडनके लिये क्रोधवश अपना पैर तो उठा लिया, किंतु क्षमा-प्रदानके भावसे उसे उसके शरीरपर नहीं गिरने दिया। छाया क्रोधाकुल हो उठी और उसने यमको शाप दे दिया—'तू अपनी माँको इस प्रकार उद्दण्डतापूर्वक पैर उठाकर धमका रहा है। जा, तेरा पैर आज ही तेरे शरीरसे अलग होकर धरतीपर गिर जायगा।' यम माताके द्वारा दिये गये शाप-वचनको सुनकर भयभीत हो पिताके पास गया और उन्हें प्रणाम करनेके बाद उसने उनसे कहा—'पिताजी! एक बहुत बड़ा आश्चर्य है, जिसे आजतक किसीने नहीं देखा है। क्या माता वात्सल्यभावको तिलाञ्जलि देकर पुत्रको शाप दे सकती है? मेरे भाई मनुका कहना है कि यह मेरी माता नहीं है, वैसे ही मैं भी यह कहना चाहता हूँ कि यह मेरी माता नहीं हो सकती, क्योंकि पुत्र भले ही दुष्ट हो जाय, माता कभी दुष्ट नहीं हुआ करती।'

यमकी यह बात सुनकर तमोहारी भगवान् सूर्यने छायाको बुलवाया और उससे पूछा कि 'संज्ञा कहाँ गयी है?' छायाने कहा—'भगवन्! मैं ही त्वष्टाकी पुत्री संज्ञा हूँ और आपकी पत्नी हूँ, जिसके गर्भसे आपने इन बच्चोंको जन्म दिया है।'

जब भगवान् सूर्यने बारंबार उससे संज्ञाके विषयमें पूछा और उसने ठीक उत्तर नहीं दिया, तब वे क्रुद्ध हो गये और शाप देनेके लिये उद्यत हो गये। यह देखकर छायाने जो घटना घटी थी, उससे उन्हें अवगत करा दिया। भगवान् सूर्य अन्ततः त्वष्टा (विश्वकर्मा)के घर पहुँचे। त्वष्टाने त्रैलोक्यद्वारा पूजित तथा अपने आवासपर आये साक्षात् भगवान् सूर्यकी बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे अर्चा-पूजा की। उन्होंने संज्ञाके सम्बन्धमें पूछा, तब विश्वकर्माने उनसे कहा कि 'वह मेरे घर आयी थी, किंतु मैंने उसे आपके घर भेज दिया है।' भगवान् सूर्य समाधिस्थ हुए और उन्होंने वडवारूपमें विचरण करती संज्ञाको उत्तरकुरु-वर्षमें तपश्चरणमें लगी देख लिया। संज्ञाकी तपस्याके पीछे सूर्यको उसकी मनोवृत्तिका पता चल गया कि वह इसलिये तपस्या कर रही है, जिससे उसके पति (भगवान् सूर्य) सौम्य मूर्ति तथा मनोरम शरीरधारी हो जायँ। भगवान् सूर्यने संज्ञाके पिता अपने श्वशुर विश्वकर्मासे कहा कि वे आज ही उनके तेजको काट-छाँटकर कम कर दें। विश्वकर्माने वर्षपर्यन्त ब्रह्माण्डका भ्रमण करनेवाले भगवान् भास्करके तेजको काट-छाँटकर घटा दिया और उनके इस कार्यके लिये देववृन्द उनकी स्तुति करने लगे।

इस प्रकार सूर्य भगवान्‌का जो ऋङ्मय तेज था वह पृथ्वीलोकके रूपमें, जो यजुर्मय तेज था वह अन्तरिक्षलोकके रूपमें और जो साममय तेज था वह स्वर्गलोकके रूपमें परिणत हो गया। महात्मा विश्वकर्माने उनके तेजसे जो पंद्रह भाग काट-छाँट दिये थे, उनसे उन्होंने भगवान् शंकरके त्रिशूल, विष्णु भगवान्‌के सुदर्शनचक्र, वसुगणके दारुण शङ्कु-शस्त्र, अग्निदेवकी दाहकशक्ति, कुबेरकी शिविका (पालकी) तथा अन्य समस्त देवों, यक्षों और विद्याधरोंके भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंकी सृष्टि की।

तदनन्तर भगवान् सूर्य अश्वका रूप धारण कर उत्तरकुरुवर्षमें गये और वहाँ उन्होंने वडवा (घोड़ी) रूप धारण करनेवाली अपनी पत्नी संज्ञाको देखा। उन्हें आता हुआ देखकर और यह सोचकर कि उसके पतिके अतिरिक्त कोई दूसरा आ रहा है, वह उनके सामने जा खड़ी हुई, जिससे उसका पृष्ठभाग सुरक्षित रहे।

आमने-सामने खड़े उन दोनोंकी नाक एक दूसरेसे सट गयी और वडवारूपिणी संज्ञासे नासत्य या दस्र नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए। इसी प्रसंगके अन्तमें रेवन्त नामके एक और पुत्रने जन्म लिया जो जन्म लेते ही खड्ग, ढाल और कवच

धारण करनेवाला, अश्वारूढ़ तथा बाण एवं तूणीरधारी था।

उसके बाद भगवान् सूर्यने अपने अनुपम रमणीय स्वरूपका प्रदर्शन किया। संज्ञाने जब उनके उस रूपको देखा तो वह प्रसन्नतासे खिल उठी। जलके अपहारक भगवान् भास्कर अपना वास्तविक रूप धारण करनेवाली संज्ञाको अपने आवासपर ले आये। उसके बाद उनका जो पहला पुत्र था वह 'वैवस्वत मनु' हो गया और 'यम' नामक जो दूसरा पुत्र था वह छायाके शापके कारण धर्मदृष्टि (न्यायकर्ता) हो गया। यमके पिता सूर्यने ही शापका अन्त यह कहकर कर दिया कि इसके पैरसे मांसके टुकड़े लेकर कीड़े पृथ्वीपर गिर पड़ेंगे। यमके धर्मदृष्टि होनेके कारण उसके लिये मित्र और शत्रु एक समान थे। इसीलिये भगवान् सूर्यने यमको प्रजा-नियन्त्रणके कार्यमें नियुक्त कर दिया। महात्मा सूर्यदेवने ही पिता होनेके कारण अपनी पुत्री यमुनाको कलिन्द देशके मध्यमें प्रवाहित होनेवाली नदी बना दिया और दोनों अश्विनीकुमारोंको देववैद्य बनाया। रेवन्तको उन्होंने गुह्यकोंके अधिपति-पदपर नियुक्त कर दिया। छायाके पुत्रोंके लिये उन्होंने जो अधिकार दिये, वे इस प्रकार हैं—छायाका जो ज्येष्ठ पुत्र था, जो अपनेसे बड़े संज्ञापुत्र मनुके समान था, वह 'सावर्णि' मनु हुआ। (म० प्र० गो०)

सावर्णि मनुकी कथा

स्वारोचिष मन्वन्तरके युगमें बहुत पहले चैत्रवंशमें उत्पन्न सुरथ नामके एक राजा थे, जो समस्त भूमण्डलपर राज्य करते थे। जब ये पुत्रोंकी भाँति अपने प्रजाजनके पालन-पोषणमें लगे थे, तब कोलाविध्वंसक राजागण इनके शत्रु बन गये। उन शत्रुओंके साथ इनका युद्ध हुआ। वैसे तो इनके पास अत्यन्त शक्तिशाली चतुरङ्गिणी सेना थी और इनके शत्रु इनकी अपेक्षा बहुत कम सैन्यशक्तिवाले थे, किंतु दुर्भाग्यवश ये अपने शत्रुओंद्वारा पराजित हो गये और अपनी राजधानीमें लौट आये। फिर ये केवल अपने जनपदके राजा ही रह गये। महाभाग्यशाली राजाकी ऐसी दशा देखकर इनके प्रबल शत्रुओंने इनपर पुनः आक्रमण कर दिया। इनकी शक्तिको क्षीण देखकर इन्हींके दुष्ट, दुरात्मा अमात्योंने, जो अधिक शक्तिशाली बन गये थे, इनकी राजधानीमें ही इनके कोश और सैन्य—दोनोंको हथिया लिया। राज्यके आधिपत्यसे परिच्युत किये गये वे राजा शिकारके बहाने घोड़ेपर सवार होकर एक घने जंगलमें चले गये।

उस वनमें राजाने महामुनि सुमेधाका आश्रम देखा, जिसमें हिंसक वन्य जीव भी शान्त बन गये थे। वह आश्रम शिष्यरूपसे एकत्र हुए मुनिजनोंसे सर्वतः सुशोभित था। राजाने उस आश्रममें प्रवेश किया। महामुनि सुमेधाने उनका सत्कार-सम्मान किया और वे उस आश्रममें इधर-उधर विचरण करते हुए कुछ समयतक रहे। वहाँ भी वे अपने राजपाटके मोह-ममत्वके वशीभूत होनेके कारण चिन्तन करने लगे कि उनके पूर्वजों और उनके द्वारा राजधर्मानुसार जिस राज्यका पालन होता था, उसका उनके बिना उनके दुराचारी सेवक, अमात्य राजधर्मानुसार पालन करते होंगे या नहीं? उनकी चिन्ता तब और बढ़ गयी जब उन्होंने यह सोचा कि जो राजसेवक पहले उनसे मिले दान-सम्मान और वेतनभोगके कारण उनके अनुजीवी थे, वे अब दूसरे राजाओंकी सेवामें लगे होंगे। यह सोचकर भी उन्हें बड़ा दुःख हुआ कि बड़े परिश्रमसे संचित उनका राजकोष उनके अमात्योंद्वारा, जिनके स्वभावमें धनके अपव्ययका दुर्व्यसन था, निरन्तर व्यय किये जानेके कारण अवश्य ही नष्ट हो जायगा।

इस प्रकार वे अनेक चिन्ताओंसे अत्यन्त दुःखी हो गये। एक दिन उन्होंने उसी आश्रमके समीप उस तपोवनमें एक समाधि नामक वैश्यको अन्यमनस्क इधर-उधर भ्रमण करते हुए देखा। राजाके पूछनेपर वैश्यने बताया कि एक धनी-मानी वैश्य-कुलमें मेरा जन्म हुआ है, किंतु धनके लोभसे मेरे दुष्ट पुत्र, कलत्र आदिने मुझे घरसे निकाल दिया है। उनके द्वारा परित्यक्त होकर यहाँ आनेपर भी मुझे उनकी तथा इष्ट-मित्रोंकी चिन्ता लगी रहती है। उन स्नेहरहित स्त्री-पुत्रोंके प्रति मेरा मन स्नेहसे भरा है, यह तो मैं जानता हूँ, किंतु यह नहीं जानता कि ऐसा क्यों है। उन्हींके प्रति मेरा मन शोकाकुल हो रहा है और मेरा हृदय बड़ा दुःखी है। मुझे समझमें नहीं आता कि मैं क्या करूँ?

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए महाराज सुरथ और वैश्यवर समाधि—दोनों सुमेधा मुनिके पास पहुँचे और उन्हें

प्रणामादि निवेदनके बाद राजाने बताया कि 'महामुने! यह वैश्यवर समाधि और मैं—दोनों बहुत दुःखी हैं। सांसारिक विषयभोग क्षणिक होते हैं, यह जानते हुए भी हम दोनोंके मन उन्हीं पुत्र-कलत्र-ऐश्वर्यादि सांसारिक भोग-विलासके प्रति खिंचे-से जा रहे हैं। मुनिवर! यह सब क्या है कि हम दोनों ज्ञानवान् होनेपर भी मोहमें पड़े हैं और विवेक-शून्य बने मूढ़तासे घिरे हैं।'

तब ज्ञानैश्वर्यसम्पन्न महामुनि सुमेधाने उन्हें अनेक प्रकारसे समझानेके बाद कहा—'ज्ञानवान् होनेपर भी मनुष्य संसारकी स्थिति अथवा प्रवाहनित्यताके एकमात्र निदान महामायाके प्रभावसे ममताके भँवरवाले मोहसागरके गर्तमें गिराये जाते रहते हैं, इसलिये इसमें आश्चर्यचकित होनेकी कोई बात नहीं कि संसारके सभी प्राणी अपने पुत्र-कलत्रके प्रति ममतासे भरे रहते हैं, क्योंकि यह महामाया जो जगत्पति भगवान् विष्णुकी योगनिद्रा है, समस्त संसारको मोहपरायण बनाये रहती है। यह वैष्णवी माया परमैश्वर्यशालिनी है। यह वह देवी है, जो ब्रह्मज्ञानियोंके भी चित्तको बलपूर्वक अपनी ओर खींच लेती है और उन्हें मोह-ममताके वशमें कर देती है। इसी देवीके द्वारा यह समस्त चराचर जगत् रचा जाता है और यही देवी जब प्रसन्न होती है तब मनुष्यको अभ्युदय और निःश्रेयसका वर देती है।'

राजा सुरथके द्वारा 'महामाया कौन है तथा क्यों आविर्भूत होती हैं?'— इस प्रकारकी जिज्ञासा करनेपर ऋषि सुमेधाने उन्हें आदिशक्ति महादेवी दुर्गाका माहात्म्य सुनाया (यही दुर्गामाहात्म्य दुर्गासप्तशती-नामसे विख्यात है) और अन्तमें कहा—'राजन्! मैंने देवी-माहात्म्यके विषयमें आपको सब कुछ बता दिया। वह सर्वार्थसाधक है। इन देवीकी सामर्थ्य अद्भुत है, क्योंकि ये ही देवी जगज्जननी होकर विश्वकी सृष्टि करती हैं, जगद्धात्री होकर विश्वका पोषण करती हैं और जगत्संहारिणी होकर विश्वका संहार भी करती हैं। ये ही श्रीविष्णु भगवान्की माया चण्डिकादेवी ब्रह्मज्ञानका साधन हैं और इन्हींके द्वारा आप, आपके मित्र ये वैश्यवर समाधि और आप-जैसे अन्य समस्त विवेकयुक्त मानव भी मोह-ममताके वशीभूत बनाये जाते हैं और पहले भी बनाये जा चुके हैं तथा आगे भी बनाये जायँगे। इसीलिये महाराज! आप उन्हीं परमेश्वरीकी शरण लें। आराधनासे प्रसन्न होनेपर वे ही देवी समस्त सांसारिक सुख, स्वर्गसुख किंवा मोक्ष-लक्ष्मीतक प्रदान करती हैं।'

तदनन्तर दोनोंने प्रसन्न होकर मुनिको प्रणाम किया तथा उनसे तपश्चरणकी दीक्षा लेकर वे नदीके किनारे श्रद्धा-भक्तिके साथ देवीकी मिट्टीकी मूर्ति बनाकर पुष्प, धूप-दीप, होमादि पूजा-विधानोंद्वारा उनकी आराधना करने लगे। इस प्रकार समाहितचित्त होकर उन दोनोंने तीन वर्षतक आराधना की। जगद्धात्री देवीने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया और उन्हींके वरदानसे समाधि वैश्यका अहंता-ममताका भाव ज्ञानाग्निमें भस्मीभूत हो गया तथा क्षत्रिय राजा सुरथका अपहृत राज्य उन्हें प्राप्त हो गया।

आगे चलकर देवी दुर्गाके वरदानसे यही क्षत्रियावतंस महाराज सुरथ सूर्यदेवसे उनकी धर्मपत्नी सवर्णाके गर्भसे जन्म लेकर सावर्णि नामक मनुके रूपमें धर्मरक्षक एवं प्रजापालक प्रतापी सम्राट् होंगे। इन्हींके नामसे आठवाँ मन्वन्तर सूर्यसावर्णि या सावर्णि मन्वन्तरके नामसे प्रसिद्ध होगा।

[नवेंसे बारहवें मनुओंके विषयमें किसी भी पुराणमें विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है, अतः इनका विषय संक्षेपमें दिया जा रहा है—सं०]

दक्षसावर्णि मनुकी कथा

नवें मनु दक्षसावर्णि होंगे। श्रीमद्भागवतके अनुसार ये वरुणके पुत्र होंगे। उनके समयमें पार, मरीचिगर्भ और सुधर्मा नामक तीन देववर्ग होंगे, जिनमेंसे प्रत्येक वर्गमें बारह-बारह देवता होंगे। उनका नायक महापराक्रमी अद्भुत नामक इन्द्र होगा। सवन, द्युतिमान्, भव्य, वसु, मेधातिथि, ज्योतिष्मान् और सातवें सत्य—ये उस समयके सप्तर्षि होंगे तथा भूतकेतु, दीप्तिकेतु, पञ्चहस्त, निरामय और पृथुश्रवा आदि इन मनुके पुत्र होंगे। इसी मन्वन्तरमें आयुष्मान्की पत्नी अम्बुधाराके गर्भसे ऋषभके रूपमें भगवान्का कलावतार होगा।

ब्रह्मसावर्णि मनुकी कथा

दसवें मनु होंगे उपश्लोकके पुत्र ब्रह्मसावर्णि। इनके समयमें सुधामा और विशुद्ध नामक सौ-सौ देवताओंके दो गण होंगे। महाबलवान् शम्भु उनका इन्द्र होगा तथा उस समय जो सप्तर्षिगण होंगे, उनके नाम हविष्यमान्, सुकृति, सत्य, तपोमूर्ति, नाभाग, अप्रतिमौजा और सत्यकेतु हैं। उस समय इन मनुके सुक्षेत्र, उत्तमौजा और भूरिषेण आदि दस पुत्र पृथ्वीकी रक्षा करेंगे। श्रीमद्भागवतके अनुसार विश्वसृज्की पत्नी विषूचिके गर्भसे भगवान् विष्वक्सेनके रूपमें अंशावतार ग्रहण करके शम्भु नामक इन्द्रसे मित्रता करेंगे।

धर्मसावर्णि मनुकी कथा

ग्यारहवें मनु अत्यन्त संयमी धर्मसावर्णि होंगे। इनके समयमें होनेवाले देवताओंके विहंगम, कामगम और निर्वाणरति नामक मुख्य गण होंगे। इनमेंसे प्रत्येकमें तीस-तीस देवता रहेंगे। उस समय निःस्वर, अग्नितेजा, वपुष्मान्, घृणि, आरुणि, हविष्मान् और अनघ सप्तर्षि होंगे और वैधृत नामके इन्द्र होंगे। इन मनुके सर्वत्रग, सुधर्मा और देवानीक आदि पुत्र उस समयके राज्याधिकारी पृथ्वीपति होंगे। श्रीमद्भागवतके अनुसार आर्यककी पत्नी वैधृताके गर्भसे धर्मसेतुके रूपमें भगवान्का अंशावतार होगा और वे उसी रूपमें त्रिलोकीकी रक्षा करेंगे।

रुद्रसावर्णि मनुकी कथा

बारहवें मनु रुद्रसावर्णि होंगे। इनके समयमें ऋतुधामा नामक इन्द्र होगा तथा इस समयके दस-दस देवताओंके हरित, रोहित, सुमना, सुकर्मा और सुराप नामक पाँच गण होंगे। तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोरति, तपोधृति, तपोद्युति तथा तपोधन—ये सप्तर्षि होंगे। इन मनुके देवदान, उपदेव और देवश्रेष्ठ आदि पुत्र चक्रवर्ती सम्राट् होंगे। श्रीमद्भागवतके अनुसार इस मन्वन्तरमें सत्यसहाकी पत्नी सुनृताके गर्भसे स्वधामाके रूपमें भगवान्का अंशावतार होगा और इसी रूपमें भगवान् उस मन्वन्तरका पालन करेंगे।

रौच्य मनुकी कथा

पूर्वकालमें प्रजापति रुचि पृथ्वीपर भ्रमण कर रहे थे। उनके पितरोंने उन्हें आश्रमरहित और एक बार ही भोजन करते हुए देखकर कहा—'तुमने विवाह क्यों नहीं किया? विवाह न करनेपर सदा बन्धनमें रहना पड़ता है। गृहस्थ पुरुष सभी देवताओं, पितरों, अतिथियों और ऋषियोंकी पूजा करता हुआ स्वर्गादिका भोग करता है एवं मोक्षपद प्राप्त करता है।

तब रुचिने कहा—'विवाहसे अतिशय दुःख एवं पाप होता है और इसके फलस्वरूप नरककी प्राप्ति होती है। आत्मसंयम ही मुक्तिका साधन है।' यह सुनकर पितरोंने कहा—'इन्द्रियोंका संयम कर आत्माको स्वच्छ करना युक्त-युक्त है, किंतु तुम जिस पथके पथिक हो, यह मोक्षका मार्ग नहीं है।

पितरोंका कथन सुनकर रुचिका मन अतिशय उद्विग्न हो गया। तब वे कन्या-प्राप्तिकी अभिलाषासे पृथ्वीके परिभ्रमणमें प्रवृत्त हुए। वे सोचने लगे कि क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? किस प्रकार पितरोंके अभ्युदयसाधनस्वरूप मेरा विवाह हो? इस प्रकारकी चिन्ता करते हुए उन महात्माने निश्चय किया कि मैं तपस्याद्वारा कमलोद्भव ब्रह्माकी आराधना करूँगा।

तदनन्तर उन्होंने विशिष्ट नियमोंके साथ ब्रह्माकी आराधनाके लिये सौ वर्षोंतक उग्र तपस्या की। लोकपितामह ब्रह्माने उन्हें दर्शन दिया और कहा कि 'मैं प्रसन्न हूँ, तुम क्या चाहते हो?' तब उन्होंने जगत्के प्राणियोंके आश्रयस्वरूप ब्रह्माको प्रणाम कर पितरोंके वचनोंके अनुसार अपनी अभिलाषा व्यक्त की। ब्राह्मण रुचिके अभीष्टको सुनकर ब्रह्माने कहा—'विप्र! तुम प्रजापति होगे, तुम्हारे द्वारा प्रजाओंकी सृष्टि होगी, तुम प्रजा और संतानकी उत्पत्तिके द्वारा सभी

क्रियाओंका सम्पादन कर अपने अधिकारोंको पुत्रको समर्पण करनेके बाद सिद्धि प्राप्त करोगे, अतः तुम विवाह कर लो।'

ब्रह्माके वचनको सुनकर रुचिने नदीके एकान्त तटपर पितरोंका तर्पण किया। इस प्रकार रुचिके स्तवन करते ही सहसा चारों ओर देदीप्यमान आकाशमें परिव्याप्त एक तेजःपुञ्ज प्रादुर्भूत हुआ। पितृगण अपने तेजसे दसों दिशाओंको देदीप्यमान करते हुए अभिव्यक्त हो गये। रुचिने भक्तिपूर्वक उन्हें हाथ जोड़कर सादर नमस्कार किया। तदनन्तर प्रसन्न पितृगणोंने कहा—'वर माँगो।' रुचिने मस्तकको झुकाकर अपना अभीष्ट निवेदन किया। पितरोंने कहा—'इसी मुहूर्तमें, इसी स्थानमें तुमको मनोरम पत्नी मिलेगी और उससे जो पुत्र होगा वह उत्तम मनु होगा। वह बुद्धिमान् मन्वन्तरका अधिपति होकर तुम्हारे ही नामसे तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध होगा, अर्थात् रौच्यके नामसे सर्वत्र विख्यात होगा।'

इसके बाद उस नदीके मध्यसे प्रम्लोचा नामकी मनको प्रिय लगनेवाली कृशाङ्गी सुन्दरी अप्सरा रुचिके समीप आयी। उस सुन्दर भौंहोंवाली सुन्दरी अप्सराने विनयावनत होकर प्रिय एवं मधुर वाणीमें महात्मा रुचिसे कहा—'तपस्विश्रेष्ठ! वरुणके पुत्र महात्मा पुष्करसे उत्पन्न एक अतिशय सुन्दरी मेरी पुत्री है। मैं सुन्दर स्वरूपवाली उस कन्याको भार्याके रूपमें आपको प्रदान करती हूँ, आप उसे वरण करें। उस कन्यासे अतिशय बुद्धिमान् मनु नामक आपका पुत्र उत्पन्न होगा।'

'ऐसा ही होगा,' इस प्रकार रुचिकी सम्मति प्राप्त करनेपर उस नदीके मध्य जलसे मालिनी नामकी कन्या प्रकट हुई। तब मुनिश्रेष्ठ रुचिने अनेक महामुनियोंको बुलाकर विधिपूर्वक उस कन्याका पाणिग्रहण किया। कालान्तरमें उस कन्यासे अतिशय पराक्रमी और बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ, जो तेरहवें रौच्य मनुके रूपमें पृथ्वीमें प्रसिद्ध हुआ। (म० प्र० गो०)

भौत्य मनुकी कथा

मुनिश्रेष्ठ अङ्गिराका एक भूति नामक पुत्र था। वह अमित तेजस्वी तथा अतिशय क्रोधी था। संतान-प्राप्तिकी इच्छासे उसने दारुण तप किया, किंतु अभीष्टकी प्राप्ति न होनेपर वह तपस्यासे विरत हो गया। सुवर्चा नामक उनका एक भाई था, उसने भूतिको यज्ञमें आमन्त्रित किया। यज्ञमें सम्मिलित होनेकी इच्छासे भूतिने शान्ति नामक मुनिश्रेष्ठको बुलाकर कहा—'शान्ते! तुम मेरे आश्रममें अग्निको सदा प्रदीप्त रखना, यह अग्नि किसी भी तरह शान्त न हो, इसके लिये सावधान रहना।' गुरुके आदेशको सुनकर शान्तिने कहा—'गुरुदेव! ऐसा ही करूँगा।' शान्ति जब महात्मा गुरुकी अग्निके संवर्धन एवं रक्षणके लिये वनसे लकड़ी, पुष्प, फल आदिको लानेके लिये चला गया एवं गुरुकी भक्तिके अधीन अन्य कार्योंका भी सम्पादन करने लगा, उसी मध्य मुनिश्रेष्ठ भूतिसे परिगृहीत अग्नि शान्त हो गयी। यह देखकर शान्ति सोचने लगा कि यदि मेरे गुरुदेव इस अग्निको कुण्डमें निर्वापित—बुझी हुई देखेंगे तो निश्चय ही मुझे विषम—भयंकर संकटमें डाल देंगे और यदि मैं इस अग्निकुण्डमें अन्य अग्निदेवको प्रतिष्ठित करता हूँ तो प्रत्यक्षद्रष्टा मेरे गुरुदेव अवश्य ही मुझे भस्म कर देंगे। इस प्रकार भयभीत हुआ शान्ति एकाग्रचित्त एवं विनयावनत हो सात शिखाओंसे समन्वित अग्निदेवका स्तवन करने लगा।

शान्तिके द्वारा स्तवन किये जानेपर प्रसन्न हुए भगवान् हव्यवाहन ज्वालामालाओंसे परिव्याप्त हो उसके समक्ष प्रकट हो गये और मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहने लगे—'विप्र! भक्तिपूर्वक तुम्हारे द्वारा की गयी स्तुतिसे मैं अतिशय संतुष्ट हूँ। मैं तुम्हें वर प्रदान करना चाहता हूँ, जो अभीष्ट हो उसे माँग लो।'

शान्तिने कहा—'विभावसो! मेरे अपराधके कारण आपने जो अग्निकुण्डका परित्याग कर दिया था, उसे मेरे गुरुदेव आज आपके द्वारा पूर्ववत् अधिष्ठित रूपमें देखें। देव! यदि आपकी मुझपर कृपा है तो मेरा दूसरा निवेदन यह है कि मेरे पुत्रहीन गुरुको विशिष्ट अर्थात् गुणसम्पन्न पुत्र हो जाय। साथ ही गुरुदेवका जैसा वात्सल्य अपने पुत्रके प्रति हो वैसा ही मधुर स्नेह सभी प्राणियोंके प्रति भी हो।'

अग्निदेवने कहा—'तुमने गुरुके लिये जो प्रार्थनाएँ की हैं, वे सभी पूर्ण होंगी, सभी प्राणियोंके प्रति मैत्रीभाव एवं पुत्रकी उत्पत्ति भी होगी।' भगवान् अग्निदेव यह कहकर

उसके सम्मुख ही सहसा अन्तर्हित हो गये।

अग्निदेवके अन्तर्हित हो जानेपर शान्तिने आनन्दसे पुलकित होकर गुरुके आश्रममें प्रवेश किया। इसके बाद वह गुरुके अग्निकुण्डमें पूर्ववत् जाज्वल्यमान अग्निदेवको देखकर अतिशय प्रसन्न हुआ। इसी समय महात्मा शान्तिके गुरु भी अपने छोटे भाईके यज्ञसे अपने आश्रममें लौट आये। उस शिष्यने आगे आकर अपने गुरुके चरणोंकी वन्दना की। तदनन्तर गुरुने आसन और पूजा स्वीकार कर उससे पूछा—

'वत्स! तुम्हारे प्रति एवं अन्य जन्तुओंके प्रति भी मेरा अतिशय मैत्रीभाव सम्पन्न हो गया है, यह कैसे हुआ? मैं यह नहीं जानता, यदि तुम जानते हो तो कहो?' तब शान्तिने अग्निनाशादिसे लेकर उन सभी घटनाओंको आचार्यसे यथार्थ-रूपमें कह सुनाया। तब प्रसन्न हुए भूतिने अपने शिष्य शान्तिका आलिङ्गन किया और उसे साङ्गोपाङ्ग वेदविद्या प्रदान की। कालान्तरमें उस भूतिको एक भौत्य नामक तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जो चौदहवें मनुके रूपमें विख्यात हुआ।

द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंके आख्यान

एक बार मुनियोंने सूतजीसे द्वादश ज्योतिर्लिङ्गोंके माहात्म्यको जानना चाहा, तब सूतजीने कहा—

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्। उज्जयिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम्॥
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम्। वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे॥
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने। सेतुबन्धे च रामेशं घुश्मेशं च शिवालये॥
द्वादशैतानि नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्। सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः सर्वसिद्धिफलं लभेत्॥

(शिवपुराण, कोटिरुद्र० १।२१-२४)

'मुनिगण! सौराष्ट्रमें सोमनाथ, श्रीशैलपर मल्लिकार्जुन, उज्जैनमें महाकाल, ओंकार[1]में परमेश्वर, हिमाचलपर केदार, डाकिनीमें भीमशंकर, काशीमें विश्वेश्वर, गौतमी-तटपर त्र्यम्बक, चिताभूमिमें वैद्यनाथ, दारुकावनमें नागेश, सेतु-बन्धमें रामेश्वर और शिवालयमें स्थित घुश्मेश—इन बारह नामोंका जो प्रातःकाल उठकर पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है और समस्त सिद्धियोंको प्राप्त कर लेता है।'

शिवपुराणके अतिरिक्त स्कन्द, लिङ्ग, मत्स्यादि कई पुराणोंमें इन बारह ज्योतिर्लिङ्गोंके माहात्म्योपाख्यानका विशदरूपसे वर्णन आया है। आगे इन्हींका वर्णन क्रमशः संक्षेपमें दिया जा रहा है—

सोमनाथ

श्रीसोमनाथेश्वर महादेव काठियावाड़-प्रदेशान्तर्गत श्रीप्रभासक्षेत्रमें विराजमान हैं। इनकी कथा इस प्रकार है—महात्मा दक्षने अपनी अश्विनी आदि सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको दी थीं। वे चन्द्रमाको स्वामीरूपमें पाकर अत्यधिक सुशोभित होने लगीं, किंतु इन सभी पत्नियोंमें रोहिणी नामकी पत्नी जितनी प्रसन्न रहती थी, उतनी अन्य नहीं; क्योंकि चन्द्रमाकी आसक्ति रोहिणीमें अधिक थी। तब अन्य पत्नियाँ दुःखी होकर पिताजीकी शरणमें गयीं। सभीने अपना कष्ट पिताजीके समक्ष निवेदन किया। महात्मा दक्ष अपनी कन्याओंके इस कष्टको सुनकर अत्यन्त दुःखी हुए और चन्द्रमाके पास आकर इस प्रकार कहने लगे—'कलानिधे! तुम निर्मल कुलमें उत्पन्न हो, अतः तुम्हारा आश्रितोंके साथ न्यूनाधिक भाव रखना ठीक नहीं है। इस विषमताके व्यवहारसे नरककी प्राप्ति होती है। अबतक जो कुछ किया, वह कर लिया; अब इसके बाद ऐसा मत करना।' दक्ष अपने जामाता चन्द्रमासे इस प्रकार कहकर निश्चिन्त होकर अपने धामको लौट गये; किंतु भवितव्यता कुछ और ही थी। चन्द्रमाने दक्षके वचनको नहीं माना। वे अन्य पत्नियोंका आदर नहीं करते थे।

१-इस शिवलिङ्गको ओंकारेश्वर भी कहते हैं। ओंकारेश्वरका स्थान मालवा प्रान्तमें नर्मदा नदीके तटपर है। उज्जैनसे खण्डवा जानेवाली रेलकी छोटी लाइनपर मोरटक्का नामक स्टेशन है। वहाँसे यह स्थान ७ मील दूर है। यहाँ ओंकारेश्वर और अमलेश्वर नामक दो पृथक्-पृथक् लिङ्ग हैं। परंतु दोनों एक ही ज्योतिर्लिङ्गके दो स्वरूप माने गये हैं।

चन्द्रमाकी आसक्ति केवल रोहिणीमें ही लगी रही। जब दक्षने यह बात सुनी, तब वे पुनः चन्द्रमाके पास आकर बोले—'चन्द्र ! मैंने तुमसे पहले ही प्रार्थना की थी, किंतु तुमने मेरी बात नहीं मानी। अतः तुम्हें क्षय-रोग हो जाय।' दक्षके ऐसा कहनेपर चन्द्रमाका क्षय होने लगा।

उस समय चन्द्रमाके क्षीण होनेसे हाहाकार मच गया। तब सभी देवता वसिष्ठादि ऋषियोंके साथ ब्रह्माजीके पास गये और उन्हें अपने दुःखभरे वृत्तान्त सुनाये। ब्रह्माजीने कहा—'अहो ! दक्षने चन्द्रमाको शाप दे दिया है। इसी कारण तुम सभी महान् कष्टमें पड़ गये हो। अतः तुमलोग शुभ क्षेत्र प्रभासतीर्थमें जाओ और यदि चन्द्रमा वहीं मृत्युञ्जय-विधानसे शिवजीकी आराधना करें तथा शिवलिङ्गकी स्थापना करके नित्य तप करें तो शिवजी प्रसन्न होकर चन्द्रमाको क्षय-रोगसे मुक्त कर देंगे।' तदनन्तर चन्द्रमाने उस शुभ क्षेत्र प्रभासतीर्थमें शिवलिङ्गकी स्थापना कर छः मासतक कठोर तप किया और मृत्युञ्जय-मन्त्रका दस करोड़ जप किया, इससे प्रसन्न होकर भक्तवत्सल भगवान् शंकर वहाँ प्रकट हो गये और चन्द्रमाके अपराधोंको क्षमा कर उन्हें क्षय-रोगसे मुक्त करते हुए बोले—'चन्द्रमा ! एक पक्षमें तुम्हारी कला दिन-दिन क्षीण होती रहेगी और दूसरे पक्षमें निरन्तर बढ़ते-बढ़ते पूर्णिमाके दिन तुम पूर्ण होकर स्वस्थ और नीरोग हो जाओगे।' इस घटनासे सभी देवता एवं ऋषि प्रसन्न हो गये। तत्पश्चात् देवताओंपर प्रसन्न होकर भगवान् शंकर प्रभास क्षेत्रको महत्त्व एवं चन्द्रमाको यश देनेके लिये चन्द्रमाके नामसे ही वहाँ प्रतिष्ठित हो गये। वे त्रिलोकीमें 'सोमेश्वर' नामसे प्रसिद्ध हुए। यहीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने यदुवंशका नाश कर तथा जरा नामक व्याधके बाणसे अपना पादपद्म-बेधन कराकर अपनी लीलाका संवरण किया था। वहाँ ज्योतिर्लिङ्गका पूजन करनेसे क्षयरोग और कुष्ठरोगोंका नाश हो जाता है। वहाँ चन्द्रकुण्डमें जो स्नान करता है, उसके समस्त पाप धुल जाते हैं। जो व्यक्ति सोमेश्वर-लिङ्गका दर्शन करता है, वह मनोवाञ्छित फल पाता है, पापोंसे मुक्त हो जाता है एवं अन्तमें उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है।

(जा० ना० श०)

मल्लिकार्जुन

मसुलीपत्तनम्—हुबली लाइनपर द्रोणाचलम्से ४८ मील पहले (गुंटूरसे २१७ मीलपर) नन्दयाल स्टेशन है। इस स्टेशनसे श्रीशैल ७१ मील दूर है। मल्लिकार्जुन ज्योतिर्लिङ्गके आविर्भावकी कथा इस प्रकार है—जब तारक असुरके शत्रु, पार्वतीपुत्र कुमार कार्तिकेय पृथ्वीकी परिक्रमा कर कैलासपर्वतपर लौटे, तब देवर्षि नारद भी वहाँ पहुँचे। उन्होंने कुमारको भ्रममें डालनेके लिये गणेशके विवाह आदिका प्रसंग उन्हें सुनाया। कार्तिकेय इस बातको सुनकर दुःखी हो गये और देवर्षि नारदके मना करनेपर भी क्रौञ्चपर्वतपर चले गये। इधर माता पार्वती अत्यन्त दुःखी हो गयीं। उन्होंने भगवान् शंकरसे पुत्रको लानेके लिये आग्रह किया। भगवान् शंकरने अन्य देवों, ऋषियों एवं गणोंको कार्तिकेयको लानेके लिये भेजा। वे सभी कुमारके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके अनेक प्रकारसे समझाकर आदरपूर्वक प्रार्थना करने लगे। साथ ही उन्होंने भगवान् शंकरकी आज्ञाको भी निवेदित किया, किंतु कुमारने उनकी प्रार्थनाको अस्वीकार कर दिया। तदनन्तर देवगण भगवान् शंकरके पास लौट आये और कुमारके इस वृत्तान्तको बताकर शिवजीकी आज्ञा पाकर अपने-अपने भवनको चले गये।

माता पार्वती और शिवजी पुत्र-वियोगके कारण दुःखका अनुभव करने लगे। तत्पश्चात् वे दुःखी होकर कुमारके निवास-स्थानपर जानेके लिये प्रस्थित हुए, किंतु स्नेहहीन होनेके कारण कुमार अपने माता-पिताके आगमनको जानकर भी पर्वतपर बारह कोस दूर चले गये। पुत्रके क्रौञ्चपर्वतपर दूर चले जानेपर वे ज्योतिःस्वरूप धारणकर वहीं अधिष्ठित हो गये। पुत्रके स्नेहसे आतुर हो प्रत्येक अमावस्याके दिन स्वयं शिवजी वहाँ जाते हैं और पूर्णिमाके दिन पार्वती जाती हैं। उसी समयसे शिवका मल्लिकार्जुन नाम त्रिलोकीमें विख्यात हो गया। जो मनुष्य उस ज्योतिर्लिङ्गका दर्शन करता है, उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं और वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

महाकालेश्वर

श्रीमहाकालेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग मालव-प्रदेशान्तर्गत शिप्रा-नदीके तटपर उज्जयिनी (उज्जैन) नगरीमें है। इनकी कथा इस प्रकार है—रत्नमालपर्वतपर एक महान् असुर रहता था। उसका नाम दूषण था। वह दैत्य महान् बलवान् और परम धर्म-द्वेषी था। वह ब्रह्माजीसे वरदान पाकर सम्पूर्ण जगत्को तुच्छ समझता था। उसने देवताओंको परास्त कर उन्हें स्थान-च्युत कर दिया। उस समय अवन्ती नगरी अत्यन्त रमणीय दीखती थी। उस नगरीमें वैदिकधर्ममें परायण रहनेवाले उत्तम ब्राह्मण रहते थे। वे शैव और वैदिक धर्मके अनुयायी थे। दैत्येन्द्र दूषण विप्रद्रोही था। उसकी दृष्टि उस नगरीपर पड़ी। अतः उसने चार प्रधान दैत्योंको बुलाया और उन ब्राह्मणोंका नाश करनेके लिये उन्हें आज्ञा दी। उन महान् दैत्योंने अवन्ती नगरीको चारों ओरसे घेर लिया। तब समस्त नगरनिवासी अपनी रक्षाके लिये ब्राह्मणोंकी शरणमें आये। वे ब्राह्मण इस आपत्तिकालकी स्थितिमें वहीं पार्थिव शिवलिङ्गकी स्थापना करके पूजा-स्तुतिमें तल्लीन हो गये। यह देखकर दैत्य उन्हें मारनेके लिये उनपर टूट पड़े। सहसा उस शिवलिङ्गके स्थानपर भयानक शब्दके साथ एक गड्ढा हो गया और उस गड्ढेसे शिवजी विकट रूप धारण कर प्रकट हो गये।

उन्होंने दैत्योंसे कहा—'तुम दुष्टोंको नष्ट करनेके लिये ही मैं महाकाल-रूपमें प्रकट हुआ हूँ। रे दुष्टो! तुमलोग ब्राह्मणोंके समीपसे दूर भाग जाओ।'—यह कहकर महा-कालरूपधारी शिवजीने दूषण दैत्यसहित उसकी समस्त सेनाको भस्म कर दिया। द्विजोंने महाकालरूपधारी भगवान् शंकरकी स्तुति की और वहीं प्रतिष्ठित होनेके लिये उनसे प्रार्थना की तथा अपने लिये मुक्तिकी याचना की। उनकी याचनापर भगवान् शंकरने उन्हें मुक्ति दे दी और स्वयं उस सुन्दर गर्तमें विराजमान हो गये। वे सभी द्विज चारों दिशाओंमें प्रतिष्ठित होकर कोस-कोसकी दूरीतक शिवलिङ्ग-रूपमें परिणत हो गये। उसी समयसे भगवान् शंकर उस सुन्दर गर्तमें महाकाल-रूपसे प्रसिद्ध हो गये। इनका दर्शन करनेसे स्वप्नमें भी दुःख नहीं होता, सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और मुक्ति मिलती है।

(जा० ना० श०)

परमेश्वर (ओंकारेश्वर)

मध्यप्रदेशमें मान्धातापर्वतपर नर्मदा नदीके बीचोबीच ओंकारेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग है, जिसकी कथा इस प्रकार है—एक बार देवर्षि नारदने गोकर्ण पर्वतपर जाकर अत्यन्त भक्तिके साथ भगवान् शिवकी आराधना की। तत्पश्चात् वे मुनिराज पर्वतराज विन्ध्यके पास पहुँचे। विन्ध्यने मनमें अभिमान रखते हुए मुनिराजसे पूछा—'मुनिराज! आप यह बतायें कि हमारेमें किसी प्रकारकी कमी तो नहीं है?' विन्ध्यके इस प्रकारके भावको सुनते हुए नारदजीने कहा—'विन्ध्य! यद्यपि तुझमें सभी बातें तो हैं, किंतु मेरु तुमसे भी श्रेष्ठ है; क्योंकि भगवान् सूर्य प्रतिदिन उसीकी परिक्रमा करते हैं। उसकी प्रतिष्ठा देवताओंमें भी है।' यह कहकर देवर्षि नारद वहाँसे चल दिये। तब विन्ध्य अपनेको धिक्कारता हुआ कष्टका अनुभव करने लगा। उसने 'ओंकार' नामक स्थानपर विश्वेश्वर शम्भुकी आराधना करते हुए कठोर तप किया। तत्पश्चात् उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर शिवजीने उसे दर्शन दिया। विन्ध्यके इस संकुचित विचारको भगवान् शंकर समझ गये। उन्होंने विन्ध्याचलको उत्तम वर दे दिया।

इसी समय देवता और ऋषियोंने भगवान् शंकरकी पूजा की और उनसे प्रार्थना की कि 'परमेश्वर! आप यहीं प्रतिष्ठित हों।' उनकी बात सुनकर भगवान् शंकर प्रसन्न होकर वहीं प्रतिष्ठित हो गये। वह एक ही ओंकारलिङ्ग दो भागोंमें विभक्त हो गया है। प्रणवमें वे सदाशिव ओंकार नामसे प्रतिष्ठित हुए और पार्थिवमें उनका नाम परमेश्वर हुआ। ये दोनों शिवलिङ्ग भक्तोंको भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। जो इन शिवलिङ्गोंकी पूजा-अर्चना करता है, वह माताके गर्भमें नहीं पड़ता और उसे अभीष्टकी प्राप्ति होती है।

केदारेश्वर

केदारनाथ पर्वतराज हिमालयके केदार नामक शृंगपर अवस्थित हैं। शिखरके पूर्व अलकनन्दाके सुरम्य तटपर बदरीनारायण अवस्थित हैं और पश्चिममें मन्दाकिनीके किनारे श्रीकेदारनाथ विराजमान हैं। यह स्थान हरिद्वारसे लगभग १५० मील और ऋषिकेशसे १३२ मील उत्तर है। भगवान् विष्णुके अवतार नर-नारायणने भरतखण्डके बदरिकाश्रममें तप किया था। वे पार्थिव शिवलिङ्गकी पूजा नित्य किया करते थे। भगवान् शिव नित्य ही उस अर्चालिङ्गमें आते थे। कालान्तरमें आशुतोष भगवान् शिव प्रसन्न होकर प्रकट हो गये। उन्होंने नर-नारायणसे कहा—'मैं आपकी आराधनासे प्रसन्न हूँ, आप अपना वाञ्छित वर माँग लें।' नर-नारायणने कहा—'देवेश ! यदि आप प्रसन्न हैं और वर देना चाहते हैं तो आप अपने स्वरूपसे यहीं प्रतिष्ठित हो जायँ, पूजा-अर्चाको प्राप्त करते रहें एवं भक्तोंके दुःखोंको दूर करते रहें।' उनके इस प्रकार कहनेपर ज्योतिर्लिङ्गरूपसे भगवान् शंकर केदारमें स्वयं प्रतिष्ठित हो गये। तदनन्तर नर-नारायणने उनकी अर्चना की। उसी समयसे वे वहाँ 'केदारेश्वर' नामसे विख्यात हो गये। 'केदारेश्वर'के दर्शन-पूजनसे भक्तोंको मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है।

भीमशंकर

एक मतसे भीमशंकर-ज्योतिर्लिङ्ग बम्बईसे पूर्वकी ओर लगभग ७० मीलके अन्तरपर और पूनासे उत्तरकी ओर लगभग ४३ मीलकी दूरीपर भीमा नदीके तटपर अवस्थित है, किंतु शिवपुराणके आधारपर भीमशंकरका ज्योतिर्लिङ्ग आसाम प्रान्तके कामरूप जिलेमें पूर्वोत्तर रेलवेपर गोहाटीके पास ब्रह्मपुर पहाड़ीपर अवस्थित बतलाया जाता है। लोक-कल्याण, भक्तोंकी रक्षा एवं राक्षसोंका नाश करनेके लिये भगवान् शंकरने भीमशंकर-रूपमें अवतार लिया था। इनकी उत्पत्तिकी कथा इस प्रकार है— प्राचीन कालमें भीम नामका एक महान् वीर्यवान् राक्षस हुआ था। भीमका पिता कुम्भकर्ण और माता कर्कटी थी। जब भगवान् रामने कुम्भकर्णको मार डाला तब कर्कटी अपने पुत्र भीमको लेकर सह्यपर्वतपर चली गयी। एक दिन भीमने अपनी मातासे पूछा—'मातः ! मेरे पिता कौन हैं ? कहाँ हैं ? और तुम यहाँ अकेली कैसे रहती हो ? इन सब बातोंको मैं यथार्थरूपसे जानना चाहता हूँ।' पुत्रके ऐसा पूछनेपर कर्कटीने कहा—'तुम्हारे पिताका नाम कुम्भकर्ण था। वे रावणके छोटे भाई थे। उन महाबलीको एवं उनके भाईको श्रीरामने मार डाला था। मेरे पिताका नाम कर्कट और माताका नाम पुष्करी था। मेरे पति विराधको श्रीरामने पहले ही मार डाला था। मेरे माता-पिता जब ऋषि सुतीक्ष्णको भक्षण करने गये, तब ऋषिने क्रोधाविष्ट हो उन्हें भस्म कर दिया।' इस प्रकार कर्कटीने महावली कुम्भकर्णके साथ अपना अनैतिक सम्बन्ध एवं उससे उत्पन्न भीमकी समस्त बातें बता दीं।

भयंकर पराक्रमवाले भीमने जब माताके इस प्रकारके वचन सुने, तब वह अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और उसने विष्णुको प्रताड़ित करनेका निश्चय किया। तदनन्तर उसने ब्रह्माजीका ध्यानकर एक हजार वर्षतक घोर तप किया। उसकी तपस्यासे उद्विग्न होकर इन्द्रसहित समस्त देवगण ब्रह्माजीकी शरणमें गये और उस राक्षसको तपस्यासे विरत करनेके लिये उनसे निवेदन किये। ब्रह्माजीने उन्हें सान्त्वना दी और उस राक्षसराजके सम्मुख प्रकट होकर कहा—'मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम अपना अभीष्ट वर माँग लो।' राक्षसने ब्रह्माजीसे अतुलित बल माँगा। कमलासन ब्रह्माजी उसे अभीष्ट वर देकर अपने भवनको चले गये। इधर उस राक्षसने वर पाकर अहंकारमें अंधा होकर देवताओंको पराजित कर दिया और उन्हें उनके स्थानसे निकाल दिया। तब देवगण भगवान् शंकरकी शरणमें गये। भगवान् शिवने उन्हें सान्त्वना दी और कहा कि 'जब यह राक्षस मेरे परमभक्त कामरूपेश्वर तथा राजा सुदक्षिणका तिरस्कार करेगा, तब मैं वहाँ प्रकट होकर इसका और इसकी सम्पूर्ण जातिका संहार कर दूँगा।' पराक्रमी भीमने कामरूपके राजाको जीतकर बंदी बना लिया। साथ ही उसने शिवजीके दास सुदक्षिणका भी सामग्रीसहित राज्य छीन लिया और उन्हें बंदी बना लिया। राजा सुदक्षिणने उस स्थितिमें भी अपनी

पत्नीके साथ विधि-विधानपूर्वक शिवजीके पार्थिव-लिङ्गकी अर्चना प्रारम्भ कर दी। दुष्ट भीमने जब उन्हें ऐसा करते देखा तब उनपर आक्रमण कर दिया और राजासे कहा—'अब मैं तुम्हें और तुम्हारे स्वामी शिवको समाप्त कर दूँगा, तुम तो उसी शिवको भजते हो, जिसे मेरे भाईने नौकर बनाकर छोड़ दिया था।'

यह सुनकर भी राजा ध्यानावस्थित रहे और पूजामें तल्लीन रहे। दुष्ट भीमने एक तीक्ष्ण तलवार पार्थिव लिङ्गपर फेंकी। लिङ्गका स्पर्श होनेके पूर्व ही उस तलवारके हजारों टुकड़े हो गये। भगवान् शंकर उस पार्थिव लिङ्गसे प्रकट हो गये और दुष्ट भीम एवं उसकी सेनाको नष्ट करने लगे। भयंकर युद्ध प्रारम्भ हो गया। भगवान् शंकरने क्षणमात्रमें दुष्ट भीमको एवं उसकी समूल सेनाको भस्म कर दिया। महेश्वरकी क्रोधज्वाला एक वनसे दूसरे वनमें फैल गयी। इस प्रकार राक्षसोंकी भस्म सारे वनमें व्याप्त हो गयी। उन भस्मोंसे अनेक ओषधियाँ उत्पन्न हो गयीं। तदनन्तर सभी देवगण एवं मुनियोंने भगवान् शिवकी स्तुति-प्रार्थना करते हुए कहा—'स्वामिन्! आप प्राणियोंको सुख देनेके लिये यहाँ प्रतिष्ठित हों। आप अपने प्रकाश-पुञ्जसे इस कुत्सित देशको पवित्र करें। आप 'भीमशंकर' नामसे सभी कार्योंको सिद्ध करें।' तभीसे शिवजी वहाँ 'भीमशंकर' नामसे प्रतिष्ठित हैं। उनके दर्शन-पूजनसे सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। (जा० ना० श०)

विश्वेश्वर

श्रीविश्वेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग वाराणसी (बनारस) या काशीमें विराजमान हैं। एक बार पार्वतीजीने काशी और वहाँके विश्वेश्वरके विषयमें भगवान् शंकरसे पूछा—'प्रभो! आप मेरे ऊपर कृपा करके काशी एवं विश्वेश्वरके माहात्म्यका वर्णन कीजिये।' परमेश्वरने कहा—'भद्रे! तुम्हारा यह प्रश्न बहुत ही कल्याणकारी है। यह अविमुक्त-क्षेत्र काशी मेरा गुप्त क्षेत्र है। यह सभी प्राणियोंकी मुक्तिका कारण है। मेरे भक्त यहाँ रहते हुए पाशुपत योगका अनुष्ठान करते हैं। यहाँ जो कोई भी मरता है, वह अवश्य ही मुक्त हो जाता है। यहाँ किसी भी साधनकी आवश्यकता नहीं है। पवित्र हो या अपवित्र, पापी हो या धर्मात्मा, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज एवं जरायुज—सभीको यहाँ मरणोपरान्त मुक्ति मिलती है। इस अविमुक्त क्षेत्र काशीका विस्तार चारों दिशाओंमें पाँच कोसतकका है। यदि निष्पाप पुरुष काशीमें शरीर छोड़ता है तो वह शीघ्र ही मोक्ष पाता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता। जो व्यक्ति काशीमें आकर गङ्गामें स्नान करता है, उसके क्रियमाण और संचित सभी कर्मोंका क्षय हो जाता है। देवर्षिसहित समस्त देवगण यहाँ आकर मेरी आराधना करते हैं। काशीमें भगवान् शंकर 'विश्वेश्वर' या 'विश्वनाथ' के रूपमें अधिष्ठित रहकर प्राणियोंको भोग और मोक्ष प्रदान करते हैं। विश्वेश्वर ज्योतिर्लिङ्गकी पूजा-अर्चासे सभी कामनाओंकी सिद्धि होती है और अन्तमें परमपुरुषार्थ मोक्षकी भी प्राप्ति हो जाती है।' (जा० ना० श०)

त्र्यम्बकेश्वर

यह ज्योतिर्लिङ्ग बम्बईसे २०० किलोमीटर पूर्व तथा नासिक-रोड रेलवे स्टेशनसे २५ किलोमीटर दक्षिण त्र्यम्बकेश्वर नामक कस्बेमें स्थित है। इस लिङ्गकी कथा सम्पूर्ण पापोंका शमन करनेवाली है। प्राचीन कालमें गौतम नामके एक प्रसिद्ध ऋषि थे। परमधार्मिक अहल्या उनकी पत्नी थी। एक समय अवर्षणसे भयंकर अकाल पड़ा। इससे सभी प्राणी दुःखी हो गये। गौतम ऋषि परम परोपकारी थे। उन्होंने दक्षिणदिशामें ब्रह्मगिरि नामक पर्वतपर दस हजार वर्षतक तप किया था। प्राणियोंके इस दारुण कष्टको देखकर मुनिने प्राणायाम चढ़ाकर वरुणके निमित्त छः मासतक उग्र तप किया। तब वरुण देवता प्रकट होकर बोले—'मुनिवर! मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगिये।' तब ऋषिने वृष्टिके लिये प्रार्थना की। वरुणने कहा कि 'मैं देवताओंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके वृष्टि कैसे कर सकता हूँ?' परोपकारी गौतमने विशेष आग्रह किया और यह कहा कि 'यदि आप प्रसन्न हैं तो हमें अक्षय दिव्य नित्यफलप्रद जल दीजिये।' वरुणने एक गर्त बनानेके लिये कहा। गौतमने एक हाथ गहरा गड्ढा खोदा। तब वरुणने उसे दिव्य जलसे भर दिया। वरुणने कहा कि 'तुम्हारा

यह अक्षय जल तीर्थस्वरूप होगा और पृथ्वीपर तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होगा। यहाँ जो भी धार्मिक कृत्य होंगे, वे सभी अक्षय फलदायक होंगे।' उस अक्षय जलसे सभी धन-धान्य उत्पन्न हो गये। सभी प्राणी, ऋषि, पशु-पक्षी वहाँ आने लगे। पृथ्वीतलसे अनावृष्टि समाप्त हो गयी और मङ्गलमय वातावरण छा गया।

एक बार ऋषिने अपने शिष्योंको हाथमें कमण्डलु देकर वहाँसे जल लानेके लिये कहा। वहाँ अनेक ऋषि-पत्नियाँ जल लेनेके लिये आयी थीं। उन्होंने जलके समीप शिष्योंको देखते हुए जल लेनेसे मना किया और यह कहा कि जल पहले हमलोग ले लें, फिर आपलोग जल लेंगे। ऐसा कहकर वे धमकाने लगीं। शिष्योंने लौटकर सारी बातें ऋषि-पत्नीसे कहीं। ऋषि-पत्नीने उन्हें सान्त्वना दी और स्वयं उनके साथ वहाँ गयी और जल लाकर गौतम को दिया। तदनन्तर ऋषिने अपना नित्यकर्म पूरा किया। इधर क्रोधाविष्ट हो ऋषि-पत्नियोंने अहल्याको धमकाया और वे दुष्ट आशय लेकर लौट गयीं। उन्होंने अपने स्वामियोंसे उलटी बातें सुनायीं। इन्हें सुनकर उन्होंने गौतमपर आपत्ति डालनेके लिये गणेशजीकी पूजा की। गणेशजीने प्रसन्न होकर उनसे वर माँगनेके लिये कहा। ऋषियोंने कहा—'यदि आप हमपर प्रसन्न हैं तो हमें ऐसा बल दें कि हम गौतमका तिरस्कार करके आश्रमसे निकाल सकें।' गणेशजीने इस कार्यको अनुचित बताया, किंतु उन ऋषियोंके दुराग्रहपर उन्हें वरदान देकर आश्वस्त करना पड़ा।

इस कार्यकी पूर्तिके निमित्त गणेशजी एक दुर्बल गौका रूप धारण कर गौतम ऋषिके उस क्षेत्रमें पहुँच गयें, जहाँ जौ और धान उगे थे। वह गौ काँप रही थी। वह जौ और धान खाने लगी। दैववश गौतम वहाँ पहुँचे और तिनकोंकी मुट्ठीसे उसे हटाने लगे। तृणोंके स्पर्शसे गौ पृथ्वीपर गिर पड़ी और ऋषिके सामने ही मर गयी। उस समय छिपे हुए गौतमके विरोधी अन्य ऋषियोंने एवं उनकी पत्नियोंने कहा कि 'गौतमने अशुभ कर्म कर दिया है। इसके द्वारा गौकी हत्या हो गयी है। इसका मुँह देखना पाप है। अतः इसे इस स्थानसे बहिष्कृत कर दिया जाय।' यह कहकर उन्होंने उन्हें वहाँसे बहिष्कृत कर दिया। गौतमको अत्यन्त अपमानित होना पड़ा। गौतम ऋषिने उन्हीं लोगोंसे इसका प्रायश्चित्त पूछा—'आपलोगोंको मुझपर कृपा करनी चाहिये। आप इस पापको दूर करनेका उपाय बतायें। मैं उसे करूँगा।' उन्होंने बताया कि 'आप पूरी पृथ्वीकी तीन बार परिक्रमा करें, मासव्रत करें, इस ब्रह्मगिरिपर सौ बार घूमें, तब आपकी शुद्धि होगी अथवा आप गङ्गाजल लाकर स्नान करें, एक करोड़ पार्थिव शिवलिङ्ग बनाकर शंकरकी पूजा करें, पुनः गङ्गा-स्नान करें और सौ घड़ोंसे पार्थिव शिवलिङ्गको स्नान करायें तो उद्धार होगा।'

गौतम ऋषिने इस प्रकारका कठोर प्रायश्चित्त किया। भगवान् शिव प्रकट हो गये। उन्होंने गौतमसे कहा—'महामुने! मैं आपकी भक्तिसे प्रसन्न हूँ। आप वर माँगिये।' गौतमने भगवान् शिवकी स्तुति की और हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हुए कहा—'देव! आप मुझे निष्पाप कीजिये!' शिवजीने कहा—'मुने! तुम धन्य हो। तुम सदा निष्पाप हो। तुम्हारे साथ तो दुष्टोंने छल किया था। जिन दुरात्माओंने तुम्हारे साथ उपद्रव किया था, वे स्वयं दुराचारी, पापी एवं हत्यारे हैं।' शिवजीकी बात सुनकर गौतम आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने कहा कि 'वे लोग मेरा बड़ा ही उपकार किये हैं। यदि ऐसा वे न करते तो कदाचित् आपका यह दुर्लभ दर्शन न हुआ होता।' तदनन्तर गौतम ऋषिने शिवजीसे गङ्गा माँगी। शिवजीने गङ्गासे कहा—'गङ्गे! तुम गौतम ऋषिको पवित्र करो।' गङ्गाने कहा कि 'मैं गौतम एवं उनके परिवारको पवित्र करके अपने स्थानपर चली जाऊँगी', किंतु भगवान् शिवने गङ्गाको लोकोपकारार्थ वैवस्वत मनुके अट्ठाईसवें कलियुगतक रहनेके लिये आदेश दिया। गङ्गाने उनकी आज्ञाको स्वीकार किया और भगवान् शिवको भी अपने सभी परिवारके साथ रहनेके लिये प्रार्थना की। इसके बाद सभी ऋषिगण एवं देवगण गङ्गा, गौतम और शिवकी जय-जयकार करने लगे। देवोंके प्रार्थना करनेपर भगवान् शिव वहीं गौतमी-तटपर 'त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग' के रूपमें प्रतिष्ठित हो गये। यह त्र्यम्बक नामक ज्योतिर्लिङ्ग सभी कामनाओंको पूर्ण करता है। यह महापातकोंका नाशक और मुक्तिप्रदायक है। जब सिंह-राशिपर बृहस्पति आते हैं, तब इस गौतमी-तटपर सकल तीर्थ, देवगण और नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गाजी पधारती हैं तथा महाकुम्भ पर्व होता है।

(जा० ना० श०)

वैद्यनाथेश्वर

पटना-कलकत्ता रेलमार्गपर किउल स्टेशनसे दक्षिण-पूर्व १०० किलोमीटरपर देवघर है, इसे ही वैद्यनाथधाम कहते हैं। यहींपर वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग है। इसकी कथा इस प्रकार है—रावणने अतुलबलसामर्थ्यकी प्राप्तिकी इच्छासे भगवान् शिवकी आराधना प्रारम्भ की। वह ग्रीष्मकालमें पञ्चाग्नि-सेवन करता था, जाड़ेमें पानीमें रहता था एवं वर्षा-ऋतुमें खुले मैदानमें रहकर तप करता था। बहुत कालतक इस उग्र तपसे भी जब शिवजीने प्रत्यक्ष दर्शन नहीं दिया, तब उसने पार्थिव लिङ्गकी स्थापना की और उसीके पास गड्ढा खोदकर अग्नि प्रज्वलित की। वैदिक विधानसे उस अग्निके सामने उसने शिवजीकी विधिवत् पूजा की। रावण अपने सिरको काट-काटकर चढ़ाने लगा। शिवजीकी कृपासे उसका कटा हुआ सिर पुनः जुड़ जाता था। इस प्रकार उसने नौ बार सिर काटकर चढ़ाया। जब दसवीं बार वह सिर चढ़ानेको उद्यत हुआ, तब भगवान् शिव प्रकट हो गये। भगवान् शिवने रावणसे कहा—मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूँ, तुम अपना अभीष्ट वर माँग लो।' रावणने उनसे अतुलबलसामर्थ्यके लिये प्रार्थना की। भगवान् शिवने उसे वह वर दे दिया। रावणने उनसे लङ्का चलनेके लिये निवेदन किया। तब भगवान् शिवने उसके हाथमें एक शिवलिङ्ग देते हुए कहा—'रावण! यदि तुम इसे मार्गमें कहीं भी पृथ्वीपर रख दोगे तो यह वहीं अचल होकर स्थिर हो जायगा। अतः इसे सावधानीसे ले जाना।' रावण शिवलिङ्गको लेकर चलने लगा। शिवजीकी मायासे मार्गमें उसे लघुशङ्काकी इच्छा हुई, जिसे वह रोक न सका। उसने पासमें खड़े हुए एक गोपकुमारको देखा और निवेदन करके वह शिवलिङ्ग उसीके हाथमें दे दिया। वह गोप उस शिवलिङ्गके भारको सहन न कर सका और वहीं पृथ्वीपर रख दिया। धरतीपर पड़ते ही वह शिवलिङ्ग अचल हो गया। तत्पश्चात् रावण जब उसे उठाने लगा, तब वह शिवलिङ्ग न उठ सका। हताश होकर रावण घर लौटा। यही शिवलिङ्ग 'वैद्यनाथेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग'के नामसे जगत्में प्रसिद्ध हो गया। इस घटनाको जानकर ब्रह्मा, इन्द्रादि समस्त देवगण वहाँ उपस्थित हो गये। देवगणने भगवान् शंकरका प्रत्यक्ष दर्शन किया। देवताओंने उनकी प्रतिष्ठा की। अन्तमें देवगण उन 'वैद्यनाथ महादेव' की स्तुति करके अपने-अपने भवनको चले गये। वैद्यनाथ महादेवकी पूजा-अर्चासे समस्त दुःखोंका शमन होता है और सुखोंकी प्राप्ति होती है। यह दिव्य शिवलिङ्ग मुक्तिप्रदायक है। (जा॰ ना॰ श॰)

नागेश

नागेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग द्वारकाके पास दारुकावनमें गोमती नदीके तटपर स्थित है, जिसकी कथा इस प्रकार है—प्राचीन कालमें दारुका नामकी एक राक्षसी थी। वह पार्वतीजीके वरदानसे अत्यन्त बलवती हो गयी थी। पश्चिमी समुद्रीतटपर एक विशाल वन था। उसका विस्तार चौंसठ कोसतक था। पार्वतीजीने उसे उसी वनके संरक्षणके लिये नियुक्त कर दिया था। राक्षसराज दारुक दारुकाका पति था। वह अपनी पत्नीके साथ रहते हुए सभी प्राणियोंको कष्ट देने लगा। सब लोग राक्षसोंसे पीड़ित होकर और्व मुनिकी शरणमें गये। उन्होंने मुनिसे कहा—'महर्षे! हम सभी आपकी शरणमें आये हैं। राक्षस हमलोगोंको मार डालेंगे। अतः आप हमारी रक्षा करें। आप परम तेजस्वी हैं। आपको छोड़कर दूसरा कौन हमलोगोंकी इस विपत्तिसे रक्षा कर सकता है।' यह सुनकर और्व मुनिने कहा—'यदि ये राक्षस प्राणियोंको मारेंगे और यज्ञोंको नष्ट करेंगे तो अपने-आप प्राणहीन हो जायँगे। मेरा यह सत्य वचन है।' ऐसा कहकर और्व मुनि अपनी तपस्यामें लीन हो गये।

देवगण मुनिकी इस वाणीसे आश्वस्त होकर राक्षसोंके साथ युद्ध करने लगे। राक्षसगण मुनिके इस शापको सुनकर और अपनी पराजयकी स्थितिका अनुभव करते हुए चिन्तित हो गये। वे लोग दारुकाकी शरणमें गये और उसे प्रणाम करके अपने दुःखोंको सुनाने लगे। इसी बीच देवताओंने राक्षसोंपर आक्रमण कर दिया। राक्षसगण भयभीत होकर दारुकासे अपनी सेनासहित समुद्रमें जानेके लिये प्रार्थना करने लगे। दारुकामें अपार शक्ति थी। वह सेनासहित समुद्रमें प्रवेश कर गयी। अब राक्षसगण समुद्रमें सकुशल रहने लगे। वे उसमें

आने-जानेवाले लोगोंकी हिंसा करके समुद्रमें छिप जाते थे। इस प्रकार नावमें जो कोई बैठता था, उसे वे राक्षस मारकर समुद्रमें प्रवेश कर जाते थे। एक बार नावमें बैठकर कुछ लोग आ रहे थे। उनके बीच भगवान् शंकरके एक परम भक्त बैठे थे। उनका नाम 'सुप्रिय' था। वे भगवान् शंकरकी पूजामें तल्लीन थे। ठीक इसी समय राक्षसराज दारुक आया और पूछा—'वैश्य! तू किसका ध्यान कर रहा है?' इस बातको सुनकर सुप्रिय वैश्यने कहा कि 'मैं जो कुछ करता हूँ, उसे तू भी जानता है।' इसे सुनकर राक्षसोंने आयुध लेकर सुप्रियपर आक्रमण कर दिया। यह देखकर सुप्रियने भगवान् शंकरका स्मरण किया और अपनी रक्षाके लिये उनकी स्तुति की। उस स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान् शिव विवरसे प्रकट हो गये और सम्पूर्ण राक्षस-जातिका नाश करने लगे। शिवजीका यह प्राकट्य 'नागेश्वर-ज्योतिर्लिङ्ग'के रूपमें प्रसिद्ध हुआ।

राक्षसोंके भयंकर विनाशको देखते हुए दारुका राक्षसीने भी पार्वतीजीका स्मरण किया। पार्वतीजी भी अपनी उपासिका दारुकाके निमित्त 'नागेश्वरी'के रूपमें वहीं प्रकट हो गयीं। 'नागेश्वरी' रूपधारिणी पार्वतीजीने 'नागेश्वर शिव'से कहा—'नाथ! मैं आपकी हूँ। आपके आश्रित हूँ। आप राक्षस-जातिकी तामसी सृष्टिका अभी नाश न करें। यदि आप ऐसा करेंगे तो प्रलय आनेके पूर्व ही प्रलय हो जायगा।' शिवजीने पार्वतीजीकी बातको स्वीकार करते हुए अपने क्रोधका संवरण कर लिया और कहा—'मैं अपने भक्तोंकी रक्षाके लिये इस वनमें नागेश्वररूपमें प्रतिष्ठित रहूँगा। जो व्यक्ति वर्णाश्रम-धर्ममें स्थित रहकर निष्ठापूर्वक मेरा पूजन करेगा, वह चक्रवर्ती होगा। कलियुग बीतनेपर जब सत्ययुग आयेगा, तो 'वीरसेन' नामसे एक नृपेश्वर होगा। वह मेरा पराक्रमी भक्त जब मेरा दर्शन करेगा तो चक्रवर्ती हो जायगा।' परस्पर हास्य करते हुए परम रक्षक शिवजी और पार्वतीजी 'नागेश्वर' और 'नागेश्वरी' रूपसे वहीं प्रतिष्ठित हो गये। उनके दर्शनसे सभी कामनाओं-की पूर्ति होती है और महापातकोंका नाश हो जाता है।

(जा० ना० श०)

श्रीरामेश्वर

मद्राससे धनुष्कोटितक जानेवाली रेलवे लाइनपर पाम्बनके समीप 'रामेश्वर-ज्योतिर्लिङ्ग' है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने इसे लङ्का-विजयके समय स्थापित किया था। सीता-हरणके पश्चात् जब श्रीरामचन्द्रजी वानरोंकी सेना लेकर समुद्र-तटपर पहुँचे, तब उन्हें रावणके पराक्रम और समुद्रकी चौड़ाईको देखकर बड़ी चिन्ता हुई। इतनेमें उन्हें तेज प्यास लगी। उन्होंने जल माँगा और बंदर लोग जल ले आये। वे हाथमें जल लेकर उसे पीना ही चाहते थे कि उन्हें ध्यान आया कि 'मैंने भगवान् शंकरका दर्शन अभीतक किया नहीं, फिर जल कैसे पीऊँ।' अतः उन्होंने जलको किनारे रख दिया और सोलह उपचारोंसे शिवजीकी पूजाकर भक्ति-भावसे उनकी प्रार्थना की। उनके भक्ति-भावसे प्रभावित होकर भगवान् शंकर और पार्वतीने पार्षदोंके साथ प्रकट होकर वर माँगनेको कहा। श्रीरामचन्द्रजीने पुनः उनकी पूजा की और लङ्का-विजयकी प्रार्थना की तथा यह भी कहा कि 'आप, संसारके कल्याणके लिये इस शिवलिङ्गमें विराजें।' तबसे रामेश्वरके नामसे इनकी प्रसिद्धि हुई। फिर श्रीरामचन्द्रजीने समुद्र पारकर रावणका वध किया और सीताजीको पुनः प्राप्त किया। जो दिव्य गङ्गा-जलसे इन्हें स्नान कराता है, वह भोग-मोक्षको प्राप्त करता है और जीवन्मुक्त हो जाता है। इनके माहात्म्यको सुननेवालेका पाप नष्ट हो जाता है।

(जा० ना० श०)

घुश्मेश्वर

यह ज्योतिर्लिङ्ग मध्य रेलवेकी मनमाड पूर्णा लाइनपर मनमाडसे १०० किलोमीटर दूर दौलतावाद स्टेशनसे २० किलोमीटर दूर वेरुल गाँवके पास स्थित है। कुछ लोग इसे राजस्थानके शिवाड़ नामक नगरमें भी वताते हैं। इनकी कथा इस प्रकार है—पहले यहाँ कोई सुधर्मा नामके ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नीका नाम सुदेहा था। वह शिवभक्त थी और पतिव्रता भी थी, पर इन लोगोंको कोई पुत्र नहीं था, जिससे इनकी पत्नी दुःखी रहती थी। वह पतिसे

बार-बार पुत्रके लिये प्रार्थना करती थी। पति उसे ज्ञानोपदेश देकर समझाते थे, परंतु उसका मन नहीं मानता था। ब्राह्मणने कई उपाय किये, परंतु वे सफल नहीं हुए। अन्तमें सुदेहाने अपनी बहन घुश्मासे ब्राह्मणका विवाह करा दिया। घुश्मा प्रतिदिन शिवकी पूजा करने लगी। इससे उसे एक सुन्दर पुत्र प्राप्त हुआ। पुत्र होनेसे उसकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी, इससे सुदेहा जलने लगी। उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। बड़ा होनेपर जब उस बालकका विवाह हुआ तब सुदेहाके क्रोधकी सीमा न रही। उसने एक रात घुश्माके पुत्रको सोते समय काट-काटकर तालाबमें डाल दिया। प्रातःकाल जब पुत्रवधूने सारी बात घुश्मासे बतायी, तब सुदेहा भी रोनेका नाटक करने लगी, परंतु घुश्मा उस समय शिवजीकी पूजा कर रही थी, अतः जरा भी विचलित नहीं हुई और पार्थिव-पूजन कर शिवलिङ्गोंको छोड़ने उसी तालाबपर गयी। जब वह वहाँसे लौटने लगी, तब उसने पुत्रको खड़ा देखा। वहीं भगवान् शंकर भी प्रकट हुए और उससे वर माँगनेको कहा। घुश्माने उनसे अपनी बहन सुदेहाकी बुद्धि शुद्ध होने, गति-मुक्ति मिलने और विश्वकी रक्षा करनेके लिये उस शिवलिङ्गमें निवास करनेका वर माँगा। भगवान् शंकर उस शिवलिङ्गमें स्थित हो घुश्मेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुए। वह स्थान आज भी 'शिवालय' नामसे प्रसिद्ध है। घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिङ्गका दर्शन करनेसे सदा सुखकी वृद्धि होती है। (जा० ना० शा०)

छब्बीस एकादशियोंकी कथाएँ

अगहन मासकी एकादशियोंकी महिमा

(क) कृष्णपक्षकी 'उत्पन्ना' एकादशी—सत्ययुगमें एक मुर नामक दानव था। वह देवताओंके लिये काल ही था। उस महादानवने इन्द्र आदि देवताओंको पराजितकर स्वर्गसे निकाल दिया था। देवतालोग छिपकर अपने प्राण बचा रहे थे। इन्द्र, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य आदिके पदोंपर मुरने दूसरे-दूसरे दानवोंको बैठा रखा था। इस तरह देवता प्रत्येक स्थानसे वञ्चित थे।

अपनी दुर्गतिसे घबराकर देवताओंने महादेवजीकी शरण ली। भगवान् शंकरने उन्हें भगवान् विष्णुके पास भेज दिया। भगवान् विष्णुको देवताओंकी दुर्दशा देखकर मुरपर क्रोध हो आया। वे देवताओंके साथ मुरकी नगरी चन्द्रावतीपुरीमें गये। मुरने देखते ही देवताओंपर धावा बोल दिया। उसके प्रचण्ड आक्रमणके सामने देवता ठहर न सके। वे सब-के-सब भाग खड़े हुए। तब उस दानवने भगवान् विष्णुको ललकारा। भगवान् विष्णुने अपने दिव्य बाणोंसे दानवोंका संहार प्रारम्भ कर दिया। फिर चक्रद्वारा प्रहार किया। थोड़ी ही देरमें दानवोंकी सेना नष्ट हो गयी। बचे हुए दानव भाग खड़े हुए।

वहाँसे भगवान् बदरिकाश्रम चले गये। वहाँ वे सिंहावती नामक गुफामें सो गये। मुर दानव छिप-छिपकर इनका पीछा कर रहा था। भगवान्‌को सोते देखकर वह फूला न समाया। उसने सोचा कि 'मैं सोते समय ही इन्हें मार डालूँगा।' तत्क्षण भगवान्‌के शरीरसे एक कन्या उत्पन्न हुई। वह अस्त्र-शस्त्रसे सजी हुई थी। उसने दानवराजसे युद्धकी इच्छा प्रकट की। दानवराज पूरी शक्तिके साथ कन्यापर टूट पड़ा, किंतु उसके हुंकार-मात्रसे वह जलकर राख हो गया।

इसी बीच भगवान् जाग पड़े। उन्होंने पूछा—'इस दानवराजका वध किसने किया?' कन्याने विनम्रतासे कहा— 'आपके ही प्रसादसे मैंने इसका वध किया है।' भगवान्‌ने प्रसन्न होकर उससे वर माँगनेको कहा। वह कन्या साक्षात् एकादशी ही थी। उसने वरदानमें माँगा कि 'मैं सब तीर्थोंमें प्रधान मानी जाऊँ तथा सब प्रकारके विघ्नोंको नाश करनेवाली और सब सिद्धियोंको देनेवाली बन जाऊँ। जो लोग आपकी भक्ति करते हुए मेरी तिथिके दिन उपवास करें, उन्हें सब सिद्धियाँ प्राप्त हों।'

भगवान्‌ने प्रसन्नताके साथ कन्याकी सब माँगें पूरी कर दीं। यह घटना अगहन मासके कृष्णपक्षकी एकादशी तिथिको हुई थी। इसलिये इसे 'उत्पन्ना' एकादशी कहते हैं।

(ख) शुक्लपक्षकी 'मोक्षा' एकादशी—चम्पक नगरमें एक राजा थे। उनका नाम था—वैखानस। एक दिन राजाने स्वप्नमें देखा कि उनके पितर नीच योनिमें पड़े हुए हैं

और कह रहे हैं कि तुम मुझे इस नरककुण्डसे निकालो।

राजाकी नींद टूट गयी। इस स्वप्नसे उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। सबेरे उन्होंने ब्राह्मणोंको बुलाकर पितरोंके उद्धारका उपाय पूछा। ब्राह्मणोंने कहा—'आपके स्वप्नका ठीक रहस्य पर्वतमुनि ही बता सकते हैं। आप उन्हींके पास जाइये।' राजा पर्वतमुनिके पास पहुँचे। उन्होंने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम कर अपनी जिज्ञासा उनके सामने रखी। पर्वतमुनिने ध्यानसे देखकर बताया—'अगहन मासके शुक्लपक्षमें 'मोक्षा' नामकी एकादशी आती है। आप उस व्रतको करें और उसका पुण्य अपने पितरोंको दे दें। इससे आपके पितरोंका उद्धार हो जायगा।'

राजा 'मोक्षा' एकादशीकी प्रतीक्षा करते रहे। अवसर आनेपर सपरिवार उन्होंने एकादशीका व्रत रखा और उसका पुण्य पितरोंको दे दिया। राजाके द्वारा संकल्प-जलके छोड़ते ही आकाशसे फूलोंकी वृष्टि होने लगी। ऊपरसे आवाज आयी— 'बेटा! तुम्हारा कल्याण हो। अब हम स्वर्ग जा रहे हैं।' इस घटनासे राज्यभरमें प्रसन्नता छा गयी।

इस तरह जो व्यक्ति 'मोक्षा' एकादशीव्रत करता है, उसे पापोंसे छुटकारा मिल जाता है और मरनेपर मोक्षकी प्राप्ति होती है। (ला० बि० मि०)

पौषमासकी एकादशियोंकी महिमा

(क) कृष्णपक्षकी 'सफला' एकादशी—भगवान्ने कहा है कि 'बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञोंसे मुझे उतना संतोष नहीं होता, जितना एकादशी-व्रतके अनुष्ठानसे होता है। इसके अनुष्ठानसे बड़े-बड़े पापियोंका भी उद्धार हो जाता है।'

राजा माहिष्मतकी राजधानी चम्पावती थी। वे सुयोग्य एवं धार्मिक शासक थे, किंतु उनका बड़ा लड़का बहुत ही उच्छृङ्खल था। शेष चार लड़के उन्हींकी तरह सुशील थे। लोगोंने ज्येष्ठ लड़केका नाम 'लुम्भक' रख दिया था। वह परस्त्रीगामी और दुराचारी था। वैष्णवों और देवताओंका तो शत्रु ही था। बहुत दिनोंतक उसे सुधारनेकी चेष्टा की गयी, किंतु उसका दुराचार बढ़ता ही गया। उद्विग्न होकर उसे नगरसे बाहर निकाल दिया गया।

लुम्भककी आदत वनमें भी वही रही। वह लूट-खसोट कर अपनी जीविका चलाता था। उस समयका वातावरण अच्छा था, इसलिये उसके दुष्कर्ममें उसे और कोई सहयोगी नहीं मिला। अकेला ही वह एक पीपलके पेड़के नीचे रहता था। एक दिन चोरी करते समय सिपाहियोंने उसे पकड़ लिया, किंतु राजाका पुत्र समझकर छोड़ दिया। तबसे लुम्भकने चोरी करनी छोड़ ही दी। वह पशुओंके मांस और फल-फूलपर जीवन-निर्वाह करने लगा।

किसी जन्मके पुण्यके प्रभावसे पौषमासमें कृष्णपक्षकी दशमीको उसे मांस न मिला। वह फल-फूल खाकर ही रह गया और कपड़ेके अभावसे रातभर जाड़ेसे ठिठुरते हुए निर्जीव-सा पड़ा रहा। दूसरे दिन दोपहरतक उसे उठनेकी इच्छा नहीं हुई। वह कभी होशमें आता और फिर बेहोश हो जाता। दोपहरके बाद उसकी चेतना लौटी, किंतु सारी संधियाँ टूट रही थीं। वह भूखसे निष्प्राण हो रहा था। किसी प्रकार गिरता-पड़ता वनके भीतर गया और शामको फल-फूल लेकर लौटा। इस कष्टमें उसे भगवान्का स्मरण हो आया। उसने भगवान्के नामपर उन फलोंको वृक्षकी जड़में रख दिया और कहा—'इन फलोंसे लक्ष्मीपति भगवान् प्रसन्न हों।' अस्वस्थताके कारण उसे रातभर नींद नहीं आयी। उसने 'राम-राम' कहकर रात बितायी। इतनेमें आकाशवाणी हुई—'राजकुमार! अनजानमें तुमसे 'सफला' एकादशीका अनुष्ठान हो गया है, इसलिये तुम राज्य और पुत्रको प्राप्त करोगे।'

द्वादशीके दिन उसका शरीर ही नहीं स्वस्थ हुआ, प्रत्युत मन भी स्वस्थ हो गया। उसके शरीरमें राजोचित कान्ति आ गयी। उसकी बुद्धि निरन्तर भगवान् विष्णुके स्मरणमें और जीभ भगवान्के नामके उच्चारणमें लग गयी। कुछ ही दिनोंमें उसे राज्य मिल गया और वह सुयोग्य शासक बन गया। पुत्रके बड़ा होनेपर लुम्भकने उसे राज्य सौंप दिया और स्वयं भगवान्के भजनमें लीन हो गया। अन्तमें उसे विष्णुलोककी प्राप्ति हुई। यह सब 'सफला' एकादशीके अनुष्ठानका फल था।

(ख) शुक्लपक्षकी 'पुत्रदा' एकादशी—भद्रावती नगरीमें राजा सुकेतुमान् राज्य करते थे। उनकी पत्नीका नाम चम्पा था। दोनों पति-पत्नी धार्मिक थे, किंतु उन्हें एक भी पुत्र

न था। इसलिये दोनों ही सदा चिन्तित रहा करते थे।

एक दिन राजा चिन्तातुर होकर चुपकेसे गहन वनमें चले गये। दोंपहरको उन्हें जोरसे प्यास लगी। जलकी खोजमें वे इधर-उधर भटकने लगे। इतनेमें उन्हें एक निर्मल सरोवर दीख पड़ा। उसके तटपर मुनियोंके आश्रम थे। राजाका दाहिना नेत्र फड़कने लगा। उन्होंने मुनियोंकी वन्दना की। उनकी विनम्रतापर प्रसन्न होकर मुनियोंने उन्हें आशीर्वाद दिया और अपना पचिय देते हुए बतलाया कि 'हमलोग विश्वदेव हैं। आज 'पुत्रदा' नामकी एकादशी है। इस पर्वपर हम यहाँ नहाने आये हैं।' राजाने उनसे पुत्रके लिये प्रार्थना की।

विश्वदेवोंने कहा—'आज 'पुत्रदा' नामकी एकादशी है, अतः तुम भी आज इस व्रतका अनुष्ठान कर लो। तुम्हें पुत्र अवश्य होगा।' राजाने विधि-विधानके साथ इस व्रतका पालन किया तथा वह रात उन्हीं लोगोंके बीचमें जागरणपूर्वक बितायी। द्वादशीके दिन उन्होंने पारण किया। फिर वे मुनियोंको संतुष्ट कर घर लौट आये।

व्रतके प्रभावसे रानीने गर्भ धारण किया। समय आनेपर एक सुशील पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसने प्रजाओं और पितरोंको तृप्त कर दिया।

(ला० वि० मि०)

माघमासकी एकादशियोंकी महिमा

(क) कृष्णपक्षकी 'षट्तिला' एकादशी—एक ब्राह्मणी थी। वह दिन-रात व्रतोंके अनुष्ठान और पूजामें ही लगी रहती थी। वह विष्णुकी भक्त थी, अतः महीनों उपवास करती रहती थी। इस तरह उपवासोंसे उसने अपना शरीर सुखा दिया था। उस सतीमें ये सब उदात्त गुण तो थे, किंतु उसने 'देना' नहीं सीखा था। वह न तो किसी भिक्षुकको भिक्षा देती और न ब्राह्मणोंको खिलाती ही थी। दयालु भगवान्ने सोचा कि 'इस ब्राह्मणीने अपने शरीरको तो शुद्ध करके विष्णुलोकको अपने अधिकारमें कर लिया है, किंतु दान न देनेसे यहाँ इसकी तृप्ति न हो सकेगी। अतः इससे कुछ दिलवाना चाहिये।'

ऐसा सोचकर भक्तवत्सल भगवान्ने कापालिकका वेष बनाया और भिक्षापात्र लेकर वे ब्राह्मणीके पास जा पहुँचे। उन्होंने ब्राह्मणीसे भिक्षा माँगी। देनेकी आदत न होनेसे ब्राह्मणी कापालिकपर उबल पड़ी। अन्तमें उसने इनके भिक्षापात्रमें मिट्टीका एक ढेला डालकर अपना पिण्ड छुड़ाया।

उग्र तपस्याके प्रभावसे वह सदेह वैकुण्ठ पधारी। मिट्टीके दानके कारण वहाँ उसे घर तो मिल गया, पर खाने-पीनेके लिये कुछ न था। इधर-उधर बहुत ढूँढ़नेपर भी उसे कुछ न मिला। वह भगवान्के पास उलाहना देने पहुँची। भगवान्ने उपाय बताया—'तुम घर लौट जाओ और कसकर किवाड़ लगा लो। देवपत्नियाँ कुतूहलवश तुम्हें देखने आयेंगी। उनके लिये तुम किवाड़ तबतक मत खोलना, जब-तक वे 'षट्तिला' एकादशीके पुण्यको देनेकी बात न कहें।'

ब्राह्मणीने ऐसा ही किया। एकने उसे 'षट्तिला' एकादशीका पुण्य दिया। इसके बाद देवियोंके कहनेसे ब्राह्मणीने 'षट्तिला' एकादशीका व्रत किया। फिर तो उसमें अलौकिक रूप-लावण्य आ गया तथा धन-धान्य और मणि-माणिक्योंसे उसका सारा घर भर गया।

(ख) शुक्लपक्षकी 'जया' एकादशी—एक बार देवराज इन्द्रने वनविहारके समय नृत्यका आयोजन किया। उसमें सभी गन्धर्व और अप्सराएँ आयीं; उनमें चित्रसेनकी एक कन्या थी, जिसका नाम पुष्पदन्ती था। वह पुष्पदन्तके पुत्र माल्यवान्को बहुत चाहती थी। माल्यवान् भी पुष्पदन्तीपर अनुरक्त था। दोनों एक-दूसरेपर आसक्त थे। ये दोनों भी नृत्य-गीतमें भाग ले रहे थे, किंतु इनकी परस्पर इतनी आसक्ति थी कि ये दोनों न तो शुद्ध गा पाते थे और न नाच ही सकते थे। यह देखकर इन्द्रको क्रोध आ गया। उन्होंने शाप दे दिया— 'तुम दोनोंने मेरी अवहेलना की है, इसलिये तुम दोनों पिशाच हो जाओ।'

दोनों हिमालयपर पिशाच हो गये। इस योनिमें उन्हें नरकसे भी बढ़कर यातना सहनी पड़ रही थी। दैवयोगसे उन्हें माघमासके शुक्लपक्षकी एकादशी प्राप्त हो गयी। उन दोनोंने निराहार और निर्जल रहकर इस व्रतका अनुष्ठान किया तथा रातको जागरण भी किया। इस व्रतके प्रभावसे उनकी

पिशाचता छूट गयी। वे अपने-अपने पहले रूपमें आ गये। उनके हृदयमें फिर वही पुराना स्नेह उमड़ने लगा। वे इन्द्रके पास पहुँचे और नम्रतासे उन्हें प्रणाम किये। इन्द्रको विस्मय हो रहा था कि उनके शापसे ये मुक्त कैसे हो गये? दोनोंने बतलाया कि 'जया' नामक एकादशीकी महिमासे हम दोनोंकी पिशाचता दूर हुई है।

यह सुनकर इन्द्रने उन दोनोंको बहुत सम्मान दिया और कहा—'जो भगवान्‌के शरणागत रहते हैं और एकादशी-व्रत करते हैं, उनका हम बहुत आदर करते हैं।' इतना कहकर इन्द्रने उन दोनोंका और सम्मान किया तथा अमृत भी पिलाया।

फाल्गुनमासकी एकादशियोंकी महिमा

(क) कृष्णपक्षकी 'विजया' एकादशी—भगवान् श्रीराम रावणपर चढ़ाई करनेके लिये वानर-सेनाके साथ समुद्र-तटपर पहुँच गये थे। समुद्रकी विशालता और अगाधता देखकर उन्होंने लक्ष्मणसे पूछा—'सुमित्रानन्दन! मुझे कोई ऐसा सरल उपाय नहीं दीखता जिससे यह वानरी सेना समुद्रको लाँघकर उस पार पहुँच जाय।' लक्ष्मणने कहा—'भैया! इस द्वीपके भीतर बकदाल्भ्य नामक मुनि रहते हैं। आधे योजनपर उनका आश्रम है। वे कोई सुगम उपाय बता सकते हैं।'

दोनों भाई बकदाल्भ्यके आश्रममें पहुँचे। मुनि देखते ही भगवान्‌को पहचान गये। वे आनन्दसे गद्‌गद हो गये। कुशल-क्षेमके बाद महात्मा बकदाल्भ्यने समुद्र तरनेके लिये उपाय बतलाते हुए कहा—'फाल्गुनके कृष्णपक्षमें 'विजया' नामकी एकादशी होती है। उस व्रतको करनेसे आपकी विजय होगी और समुद्र पार होनेका साधन भी हाथ लग जायगा।'

भगवान् श्रीरामने विधानके साथ 'विजया' एकादशीका व्रत किया। इसके फलस्वरूप उन्होंने समुद्र पार किया, लङ्कापर विजय पायी और सीताको प्राप्त किया।

जो मनुष्य 'विजया' एकादशीका व्रत करता है वह विजयी होता है और अक्षय स्वर्गको प्राप्त करता है।

(ख) शुक्लपक्षकी 'आमलकी' एकादशी—अभी सृष्टिकी रचना नहीं हुई थी। भगवान् विष्णुने सृष्टिकी इच्छा की। उनके मुखसे एक कण निकला, जिससे आँवलेका वृक्ष उत्पन्न हुआ। उसके बाद भगवान्‌ने अपने नाभिकमलसे ब्रह्माको प्रकट कर उन्हें भौतिक सृष्टिको उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी। ब्रह्माजीने देवता, दानव, राक्षस आदिकी सृष्टि की। देवताओंकी दृष्टि जब आँवलेके वृक्षपर पड़ी तब वे बहुत विस्मित हुए। विस्मयका कारण यह था कि पूर्वकल्पके सभी वृक्षोंको वे पहचान गये थे, किंतु आँवलेको नहीं पहचान पा रहे थे। उनके लिये यह नयी वस्तु थी। इसी बीच आकाशवाणी हुई—'देवताओ! यह विष्णुप्रिया आमलकी है। इसके स्मरणसे गोदानका फल, स्पर्शसे इससे दूना और इसके फल-भक्षणसे तिगुना फल प्राप्त होता है। इस वृक्षमें सभी देवता निवास करते हैं। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें इस वृक्षके नामपर 'आमलकी' एकादशीका व्रत किया जाता है। इस व्रतके करनेवाले रातको आँवलेके वृक्षके नीचे जागरण करते हैं और परशुरामजीकी प्रतिमा बनाकर पूजन करते हैं। इस 'आमलकी' व्रतके अनुष्ठानसे सभी पापोंसे छुटकारा मिलता है।'

चैत्रमासकी एकादशियोंकी महिमा

(क) कृष्णपक्षकी 'पापमोचनी' एकादशी—एक बार महर्षि च्यवनके पुत्र मुनिवर मेधावीको मोहित करनेके लिये मञ्जुघोषा नामक अप्सरा चैत्ररथ वनमें गयी। वह मुनिके आश्रमसे एक कोस दूर ही ठहर गयी। वहाँ उसने मोहक तान छेड़ दी। संयोगवश मेधावी मुनि अपने आश्रमसे उधर ही जा निकले। उनके कानमें जब मञ्जुघोषाका मोहक स्वर सुनायी पड़ा, तब वे बरबस उधर ही बढ़ते चले गये। जब उन्होंने उसके सुन्दर रूपको देखा तब वे परवश हो गये। मञ्जुघोषाने उचित अवसर देखकर उन्हें मोहक-पाशमें बाँध लिया। मुनिको रात-दिनका कोई भान न रहा। इस प्रकार बहुत वर्ष बीत गये। एक दिन मञ्जुघोषाने जानेके लिये उनसे आज्ञा माँगी, परंतु मुनिको तो प्रतीत हो रहा था कि अभी एक ही रात बीती है। उन्होंने कहा—'सबेरा हो जाने दो, मैं संध्या कर लूँ, तब चली जाना।' अप्सराने मुस्कराते हुए कहा—'अबतक सैकड़ों

संध्याएँ बीत चुकी हैं।' मुनि बहुत चकित हुए। हिसाब लगानेपर पता चला कि अबतक सत्तावन वर्ष बीत चुके हैं। इस हिसाबसे मुनिका माथा चकरा गया। वे समझ गये कि मञ्जुघोषाका यह प्रयास विघ्न डालनेके लिये था। उन्होंने शाप दे दिया—'तूने मेरा तप नष्ट किया है, अतः तू पिशाची हो जा।' उसके बहुत अनुनय-विनय करनेपर मुनिने शापोद्धारका उपाय बतलाते हुए कहा—'चैत्रके कृष्णपक्षकी एकादशीका नाम 'पापमोचनी' है। इसके अनुष्ठानसे तुम्हारी पिशाचता दूर हो जायगी। मैं भी इसी व्रतके अनुष्ठानसे अपने पापोंको दूर करूँगा।'

दोनोंने 'पापमोचनी' एकादशी-व्रतका अनुष्ठान किया और दोनों ही अपने पापोंसे मुक्त हो गये। मञ्जुघोषा पिशाचीसे पुनः अप्सरा बन गयी और मेधावी फिर पहलेकी तरह चमकने लगे।

(ख) शुक्लपक्षकी 'कामदा' एकादशी—नागपुरमें पुण्डरीक नामक एक विषधर नाग देवता रहते थे। वहाँ वीरधन्वा नामक गन्धर्वकी पुत्री ललिता नामकी एक अप्सरा भी रहती थी। उसके पतिका नाम ललित था। दोनों एक-दूसरेपर अनुरक्त थे। वे एक क्षण भी एक-दूसरेके बिना नहीं रह पाते थे।

एक बार नागराजने मनोरञ्जनके लिये नृत्य और गायनका आयोजन किया। ललितका भी उसमें कार्यक्रम था। ललित सावधानीसे गा रहा था। फिर भी उसे ललिताका स्मरण हो ही गया। वियोगके कारण उसके पैरोंमें और जीभमें लड़खड़ाहट आ गयी। नागराजको क्रोध हो आया। उसने शाप दिया कि 'तू राक्षस हो जा।' तत्क्षण बेचारा ललित राक्षस बन गया। उसका डीलडौल, चेहरा और मन विकराल हो गया। वह ललिताका अनुराग भी भूल गया। ललिताके शोकका कोई आर-पार न था। वह रोती हुई पतिके पीछे-पीछे घूमती रहती थी। उसका पति किसी जंगलमें चला गया था। उसके पीछे ललिता लगी हुई थी। वहाँ ललिताको एक आश्रम दीख पड़ा। उस आश्रममें पहुँचनेपर उसे शान्ति मिली। ललिता मुनिके पास गयी और प्रणाम करके रोने लगी। उसने धीरे-धीरे अपना दुखड़ा कह सुनाया।

मुनिने बतलाया—'बेटी! आज चैत्रमासके शुक्लपक्षकी 'कामदा' नामक एकादशी तिथि है। आज तुम व्रत रह जाओ और इसका पुण्य अपने स्वामीको दे दो। उससे तुम्हारे पतिका शापसे उद्धार हो जायगा। तुम घबराओ नहीं।' ललिताने विधानसे 'कामदा' एकादशीका अनुष्ठान किया। द्वादशीके दिन मुनिके सामने ही उसने अपने पतिके उद्धारके लिये भगवान्से कहा—'भगवन्! मैंने जो 'कामदा'-व्रतका अनुष्ठान किया है उसके पुण्यसे मेरे पतिका राक्षसभाव दूर हो जाय।' ललिताके इस पुण्य-संकल्पके बाद तुरंत उसके पतिका राक्षस-भाव छूट गया। उसके बाद व्रतके प्रभावसे दोनोंका स्वरूप और सुन्दर हो गया।

इस तरह 'कामदा' एकादशी-व्रतके अनुष्ठानसे ब्रह्महत्या आदि पापोंका नाश होता है एवं पिशाचत्व आदि दोषोंकी निवृत्ति होती है। (क्रमशः)

(ला० वि० मि०)

अद्भुत याचना

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो। भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥
जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान्। नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम्॥

(श्रीमद्भा० १।८।२५-२६)

जगद्गुरो! हमारे जीवनमें सर्वदा पद-पदपर विपत्तियाँ आती रहें, क्योंकि विपत्तियोंमें निश्चितरूपसे आपके दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन हो जानेपर फिर जन्म-मृत्युके चक्करमें नहीं आना पड़ता। ऊँचे कुलमें जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और सम्पत्तिके कारण जिसका घमंड बढ़ रहा है, वह मनुष्य तो आपका नाम भी नहीं ले सकता, क्योंकि आप तो उन लोगोंको दर्शन देते हैं, जो अकिञ्चन हैं।

बिना दान दिये परलोकमें भोजन नहीं मिलता

विदर्भ देशमें श्वेत नामक राजा राज्य करते थे। वे सतर्क होकर राज्यका संचालन करते थे। उनके राज्यमें प्रजा सुखी थी। कुछ दिनोंके बाद राजाके मनमें वैराग्य हो आया। तब वे अपने भाईको राज्य सौंपकर वनमें तपस्या करने चले गये। उन्होंने जिस लगनसे राज्यका संचालन किया था, उससे भी अधिक लगनसे हजारों वर्षतक तपस्या की। उत्तम तपस्याके प्रभावसे उन्हें ब्रह्मलोककी प्राप्ति हुई। वहाँ उन्हें सब तरहकी सुख-सुविधा मिली, किंतु भोजनका कोई प्रबन्ध न था। भूखके मारे उनकी इन्द्रियाँ विकल हो गयीं। उन्होंने ब्रह्माजीसे पूछा कि 'यह लोक भूख-प्याससे रहित माना जाता है; फिर किस कर्मके विपाकसे मैं भूखसे सतत पीड़ित रह रहा हूँ।' ब्रह्माजीने कहा—'वत्स ! मृत्युलोकमें तुमने कुछ दान नहीं किया, किसीको कुछ खिलाया नहीं। वहाँ बिना कुछ दान दिये परलोकमें खानेको नहीं मिलता। भोजनसे तुमने केवल अपने शरीरको पाला है, इसलिये उसी मुर्दे शरीरको वहाँ जाकर खाना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त तुम्हारे भोजनका और कोई मार्ग नहीं है। तुम्हारा वह शव अक्षय बना रहेगा। सौ वर्ष बाद महर्षि अगस्त्य तुम्हारा उद्धार करेंगे।'

ठीक सौ वर्ष बाद दैवयोगसे महर्षि अगस्त्य सौ योजन-वाले उस विशाल वनमें जा पहुँचे। वह जंगल बिलकुल सूनसान था। वहाँ न कोई पशु था न पक्षी। उस वनके मध्यमें चार कोस लम्बी एक झील थी। अगस्त्यजीको उसमें एक मुर्दा दीख पड़ा। उसे देखकर महर्षि सोचने लगे कि यह किसका शव है? यह कैसे मर गया। इसी बीच आकाशसे एक अद्भुत विमान उतरा। उस विमानसे एक दिव्य पुरुष निकला। वह झीलमें स्नान कर उस शवका मांस खाने लगा। भरपेट मांस खाकर वह सरोवरमें उतरा और उसकी छटा निहारकर फिर स्वर्गकी ओर जाने लगा। महर्षि अगस्त्यने उससे पूछा—'देखनेमें तो तुम देवता मालूम पड़ते हो, किंतु तुम्हारा यह आहार बहुत ही घृणित है।' तब उस स्वर्गवासी पुरुषने अपना पूरा वृत्तान्त कह सुनाया और यह भी बताया कि 'हमारे सौ वर्ष पूरे हो गये हैं। पता नहीं महर्षि अगस्त्य मुझे कहाँ कब दर्शन देंगे कि हमारा उद्धार होगा?'

अगस्त्यजीने कहा—'महाभाग ! मैं ही अगस्त्य हूँ, बताओ तुम्हारा क्या उपकार करूँ?' तब उसने कहा—'मैं अपने उद्धारके लिये एक अलौकिक आभूषण भेंट करता हूँ। इसे आप स्वीकार कर मेरा उद्धार करें।' निर्लोभ महर्षिने उसके उद्धारके लिये उस आभूषणको स्वीकार कर लिया। आभूषणके स्वीकार करते ही वह शव अदृश्य हो गया और उस पुरुषको अक्षयलोककी प्राप्ति हुई।

दानका स्वरूप

एक दिन भक्तशिरोमणि देवर्षि नारद वीणापर हरिका यशोगान करते हुए एक ऐसे स्थानपर पहुँचे जहाँ कुछ ब्राह्मण अत्यन्त खिन्न और उदास-अवस्थामें बैठे थे। उन्हें दुःखी देखकर नारदजीने पूछा—'पूज्य ब्राह्मणदेवो ! आप सब इस प्रकार क्यों उदास हो रहे हैं? कृपया मुझे अपने दुःखका कारण बताइये, सम्भवतः मैं आपकी कुछ सहायता कर सकूँ।'

ब्राह्मणोंने उत्तर दिया—'मुनिवर ! एक दिन सौराष्ट्रके राजा धर्मवमनि आकाशवाणी सुनी—

द्विहेतुः षडधिष्ठानं षडङ्गं च द्विपाकयुक्।
चतुष्प्रकारं त्रिविधं त्रिनाशं दानमुच्यते॥

—राजाको दानविषयक इस श्लोकका अर्थ कुछ भी समझमें नहीं आया। उन्होंने दैवी वाणीसे इसका अर्थ समझानेकी प्रार्थना की, किंतु उसने कृपा नहीं की। तब राजाने अपने राज्यमें घोषणा करायी कि 'जो विद्वान् मुझे इस श्लोकका यथार्थ अभिप्राय समझा देगा, उसे मैं सात लाख गौएँ, इतनी ही स्वर्ण-मुद्राएँ तथा सात गाँव पुरस्काररूपमें दूँगा।'

देवर्षे ! इस श्लोकके अत्यन्त गूढ़ होनेके कारण कोई भी विद्वान् राजाको इसका अर्थ नहीं समझा पाता। हम भी इसकी व्याख्या करनेके लिये राजप्रासादमें गये थे, किंतु राजाका समाधान न कर पानेके कारण अपना-सा मुँह लेकर वापस आ

गये। हमारी खिन्नताका कारण यही है।'

यह सुनकर देवर्षि नारद वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण कर राजा धर्मवर्माके यहाँ गये और प्रणाम करके बोले—'राजन्! मैं आपके श्लोककी व्याख्या करनेके लिये आपके समक्ष उपस्थित हुआ हूँ।'

धर्मवर्मा बोले—'ब्राह्मणदेव! ऐसा आश्वासन तो मुझे अनेक विद्वानोंने दिया, किंतु कोई भी संतुष्ट नहीं कर सका। यदि आप मेरा पूर्ण समाधान कर सकें तो मैं आपका अत्यन्त आभार मानूँगा।'

नारदजीने निवेदन किया—'राजन्! इस श्लोकका तात्पर्य यह है कि 'दानके दो हेतु या प्रेरक भाव होते हैं, श्रद्धा और शक्ति। दानकी श्रेष्ठता उसकी अधिकतापर निर्भर नहीं करती, अपितु यदि न्यायसे उपार्जित धन श्रद्धापूर्वक यथाशक्ति दानके रूपमें दिया जाय तो वह थोड़ा होनेपर भी भगवान्‌की पूर्ण प्रसन्नता और अनुग्रहका कारण होता है। दानके छः अधिष्ठान होते हैं जिनके आधारपर वह स्थित रहता है। वे हैं—धर्म, अर्थ, काम, लज्जा, हर्ष और भय। दानके छः अङ्ग होते हैं—दाता, प्रतिग्रहीता (दान लेने या स्वीकार करनेवाला), शुद्धि, धर्मयुक्त देय वस्तु, देश और काल। दानके दो फल होते हैं—यह लोक और परलोक, इस लोकमें अभ्युदय या उन्नति और परलोकमें सुख और कल्याण। दानके चार प्रकार होते हैं—ध्रुव, त्रिक, काम्य और नैमित्तिक। प्याऊ, बाग-बगीचे, तालाब-बावड़ी, विद्यालय, चिकित्सालय, पुस्तकालय, अनाथालयके निर्माण आदि सार्वजनिक कार्योंके लिये किया गया दान चिरस्थायी या नित्य होनेके कारण ध्रुव कहलाता है तथा वह दाताकी सब कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला होता है। जो दान संतान, विजय (सफलता) और ऐश्वर्यकी प्राप्तिके लिये प्रतिदिन दिया जाय उसे त्रिक कहते हैं। यह पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा—इन तीन एषणाओंकी पूर्तिके लिये किया जानेके कारण त्रिक कहलाता है। जो दान काम्य पदार्थोंकी प्राप्तिके लिये किया जाय उसे काम्य कहते हैं। जो दान विशेष अवसरके उपलक्ष्यमें, विशेष कर्म और गुणोंको देखते हुए अग्निहोत्रके बिना किया जाय वह नैमित्तिक कहलाता है। दानके तीन भेद हैं—उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ। उत्तम कोटिके पदार्थोंका दान उत्तम, मध्यम कोटिके पदार्थोंका दान मध्यम, कनिष्ठ कोटिके पदार्थोंका दान कनिष्ठ कहलाता है। दान देकर पछताना, कुपात्रको दान देना और श्रद्धाके बिना दान देना—ये तीन कार्य दानके नाशक हैं; क्योंकि इनके कारण किया-कराया दान भी निष्फल होता है।'

धर्मवर्मा इस अद्भुत व्याख्याको सुनकर गद्गद हो उठे। वे बोले—'मुनिवर! मुझे लगता है कि आप साधारण मनुष्य नहीं हैं। मैं आपके चरणोंमें मस्तक नवाकर प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे अपना यथार्थ परिचय दीजिये।'

नारदजीने कहा—'राजन्! मैं देवर्षि नारद हूँ। इस श्लोककी व्याख्याके पुरस्कारके रूपमें आप मुझे जो भूमि आदि सम्पत्ति देना चाहते हैं, उसे मैं आपके पास ही धरोहरके रूपमें रख देता हूँ। आवश्यकता पड़नेपर मैं आपसे ले लूँगा।' यह कहकर वे वहाँसे चल दिये और रैवतक पर्वतपर आकर विचार करने लगे—'यदि कोई योग्य ब्राह्मण मिल जाय तो मैं यह भूमि आदि सम्पत्ति उसे दे दूँ।' तब उन्होंने बारह प्रश्न तैयार किये और उन्हें गाते हुए पृथ्वीपर विचरण करने लगे। उनके प्रश्न ये थे—

१-मातृकाएँ क्या हैं और कितनी हैं? २-पचीस तत्त्वोंसे बना विचित्र घर कौन-सा है? ३-अनेक रूपोंवाली स्त्रीको एक रूपवाली बनानेकी कला कौन जानता है? ४-संसारमें विचित्र कथाओंकी रचना करना कौन जानता है? ५-समुद्रमें सबसे बड़ा ग्राह कौन-सा है? ६-आठ प्रकारके ब्राह्मण कौन-से हैं? ७-चारों युगोंके आरम्भके दिन कौन-से हैं? ८-चौदह मन्वन्तरोंका प्रारम्भ किस दिन हुआ था? ९-सूर्यदेवता रथमें पहले-पहल किस दिन बैठे थे? १०-प्राणियोंको कृष्णसर्पकी तरह पीड़ित करनेवाला कौन है? ११-इस महान् विश्वमें सबसे अधिक बुद्धिमान् कौन है? १२-दो मार्ग कौन-से हैं?

उपर्युक्त प्रश्नोंको पूछते हुए देवर्षि नारदने सर्वत्र भ्रमण किया, किंतु कहीं भी उन्हें इनका उचित समाधान नहीं प्राप्त हुआ। अन्तमें वे 'कलाप' नामक गाँवमें पहुँचे, जहाँ चौरासी हजार ब्राह्मण नित्यप्रति विद्याध्ययन, अग्निहोत्र और तपस्या आदिमें रत रहते थे। वहाँ भी उन्होंने अपने प्रश्नोंको दुहराया। देवर्षिके प्रश्न सुनकर ब्राह्मणोंने

कहा—'मुने ! आपके प्रश्न तो बालकोचित हैं, हममेंसे जिसे आप छोटा और मूर्ख समझते हों उसीसे ये पूछ लीजिये। वह अवश्य इनके उत्तर दे देगा।' यह सुनकर देवर्षि नारदने एक बालककी ओर संकेत किया। उसका नाम था सुतनु। उसने उठकर देवर्षिके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'महर्षे ! इन प्रश्नोंका उत्तर देना मैं अपने लिये विशेष गौरवका विषय नहीं समझता, किंतु आपको मेरे गुरुजनोंके प्रति संशय न हो जाय इस दृष्टिसे इनका उत्तर देना आवश्यक ही है।' अच्छा सुनिये—

१-ॐ और अ, आ आदि ५२ अक्षर ही मातृकाएँ हैं।

२-पचीस तत्त्वों (पाँच महाभूत, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच विषय, मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति तथा पुरुष)से बना घर यह शरीर ही है।

३-बुद्धि ही अनेकरूपा स्त्री है, किंतु जब इसका सम्बन्ध धर्मसे जुड़ जाता है तब यह एकरूपा हो जाती है।

४-पण्डित ही विचित्र कथाओंके रचयिता हैं।

५-इस संसारसमुद्रमें लोभ ही महाग्राह है।

६-आठ प्रकारके ब्राह्मण ये हैं—मात्र, ब्राह्मण, श्रोत्रिय, अनूचान, भ्रूण, ऋषिकल्प, ऋषि और मुनि। इनके लक्षण इस प्रकार हैं—

जो ब्राह्मणोंके कुलमें उत्पन्न हुआ हो, किंतु उनके गुणोंसे युक्त न हो, आचार और क्रियासे रहित हो, वह 'मात्र' कहलाता है। जो वेदोंमें पारङ्गत हो, आचारवान्, सरल-स्वभाव, शान्तप्रकृति, एकान्तसेवी, सत्यभाषी और दयालु हो, वह 'ब्राह्मण' कहा जाता है। जो वेदोंकी एक शाखाका छः अङ्गों और श्रौत विधियोंके सहित अध्ययन करके अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन, दान और प्रतिग्रह—इन छः कर्मोंमें रत रहता हो, उस धर्मविद् ब्राह्मणको 'श्रोत्रिय' कहते हैं। जो ब्राह्मण वेदों और वेदाङ्गोंके तत्त्वको जाननेवाला, शुद्धात्मा, पापरहित, श्रोत्रियके गुणोंसे सम्पन्न, श्रेष्ठ और प्राज्ञ हो, उसे 'अनूचान' कहा गया है। जो अनूचानके गुणोंसे युक्त हो, नियमित रूपसे यज्ञ और स्वाध्याय करनेवाला, यज्ञशेषका ही भोग करनेवाला और जितेन्द्रिय हो, उसे शिष्टजनोंने 'भ्रूण' की संज्ञा दी है। जो समस्त वैदिक और लौकिक ज्ञान प्राप्त करके आश्रमव्यवस्थाका पालन करे, नित्य आत्मवशी रहे, उसे ज्ञानियोंने 'ऋषिकल्प' नामसे स्मरण किया है। जो ब्राह्मण ऊर्ध्वरेता, अग्रासनका अधिकारी, नियत आहार करनेवाला, संशयरहित, शाप देने और अनुग्रह करनेमें समर्थ और सत्य-प्रतिज्ञ हो, उसे 'ऋषि'की पदवी दी गयी है। जो कर्मोंसे निवृत्त, सम्पूर्ण तत्त्वका ज्ञाता, काम-क्रोधसे रहित, ध्यानस्थ, निष्क्रिय और दान्त हो, मिट्टी और सोनेमें समभाव रखता हो, उसे 'मुनि'के नामसे सम्मानित किया गया है।

७-सत्ययुगका प्रारम्भ कार्तिक-शुक्ल-नवमीको, त्रेतायुगका वैशाख-शुक्ल-तृतीयाको, द्वापरका माघ-कृष्ण-अमावस्याको और कलियुगका भाद्र-कृष्ण-त्रयोदशीको हुआ था। अतः ये तिथियाँ ही युगोंकी आदि तिथियाँ हैं।

८-स्वायम्भुव आदि चौदह मन्वन्तरोंकी आदि तिथियाँ क्रमसे आश्विन-शुक्ल-नवमी, कार्तिक-शुक्ल-द्वादशी, चैत्र-शुक्ल-तृतीया, भाद्रपद-शुक्ल-तृतीया, फाल्गुन-कृष्ण-अमावस्या, पौष-शुक्ल-एकादशी, आषाढ़-शुक्ल-दशमी, माघ-शुक्ल-सप्तमी, श्रावण-कृष्ण-अष्टमी, आषाढ़ी पूर्णिमा, कार्तिकी पूर्णिमा, फाल्गुनी पूर्णिमा, चैत्री पूर्णिमा, ज्येष्ठी पूर्णिमा हैं।

९-भगवान् सूर्य पहले-पहल माघ-शुक्ल-सप्तमीको रथपर आरूढ़ हुए।

१०-जो सदा माँगता रहता है वही प्राणियोंका उद्वेजक है।

११-सबसे अधिक बुद्धिमान् और दक्ष मनुष्य वही है जो मनुष्ययोनिका मूल्य समझकर उसके द्वारा पूर्ण मोक्षको सिद्ध कर ले।

१२-दो मार्ग हैं—अर्चिमार्ग और धूममार्ग—देवयान और पितृयान।

विद्वान् बालक सुतनुके इन उत्तरोंसे पूर्णतया संतुष्ट होकर देवर्षि नारद धर्मवर्मासे प्राप्त भूमि और सम्पत्ति बालकको भेंट करके सानन्द ब्रह्मलोकको चले गये। (स्कन्द० मा० कु०)

(स्वा० ओं० आ०)

पाँच महातीर्थ

(१) पितृतीर्थ—नरोत्तम नामका एक तपस्वी ब्राह्मण था। वह माता-पिताकी सेवा छोड़कर तीर्थयात्राके लिये निकल पड़ा। तीर्थ-सेवनकी महिमासे उसके गीले कपड़े आकाशमें सूखते थे। इस चमत्कारसे उसके मनमें अभिमान उत्पन्न हो गया। वह आकाशकी ओर देखकर कहने लगा—'मेरे समान दूसरा तपस्वी कौन है, जिसके वस्त्र आकाशमें सूखते हैं?'—इस वाक्यके पूरा होते-होते उसके मुँहपर बगुलेने बीट कर दी। ब्राह्मण क्रोधसे आग-बबूला हो गया। उसने बगुलाको शाप दे दिया, जिससे वह जलकर भस्म हो गया।

इस शापसे ब्राह्मणकी तपस्या नष्ट हो गयी, जिससे उसके वस्त्रोंका आकाशमें सूखना बंद हो गया। इस घटनासे ब्राह्मणको मर्मान्तक वेदना हुई। तब आकाशवाणी हुई—'ब्राह्मण! तुम मूक चाण्डालके पास जाओ, वहाँ तुम्हें धर्मका ज्ञान प्राप्त होगा।' ब्राह्मण मूक चाण्डालके पास पहुँचा। उस समय मूक चाण्डाल अपने पिता-माताकी सेवामें तन्मय था। इस सेवासे प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु उसके घरमें निवास करते थे। माता-पिताकी सेवाकी महिमासे उसका घर बिना खम्भोंके आकाशमें टिका था। यह देखकर ब्राह्मणको महान् आश्चर्य हुआ। उसने मूक चाण्डालसे आकाशवाणीकी बात सुनायी और प्रार्थना की कि आप मुझे ज्ञानका उपदेश दें। मूकने नम्रताके साथ कहा—'देवता! आप थोड़ी देर प्रतीक्षा कीजिये। मेरी सेवासे माता-पिताको संतोष हो जायगा, तब मैं आपकी सेवा करूँगा।' इतना सुनते ही ब्राह्मण क्रुद्ध होकर उसकी भर्त्सना करने लगा। अन्तमें मूकको कहना पड़ा कि 'मैं बगुला नहीं हूँ कि आपके जलाये जल जाऊँगा। आपको जल्दी हो तो पतिव्रताके पास जाइये। उससे आपका काम सिद्ध हो जायगा।' ब्राह्मण जब पतिव्रताके घरकी ओर बढ़ा, तब विष्णु भगवान् जो ब्राह्मणके रूपमें मूकके घरमें बैठे थे, उसके साथ हो लिये।

(२) पतितीर्थ—नरोत्तमने ब्राह्मणसे पूछा—'तुम ब्राह्मण होते हुए भी चाण्डालके घरमें क्यों रहते हो?' भगवान्ने कहा—'अभी तुम्हारा अन्तःकरण पवित्र नहीं है। पीछे तुम पहचान जाओगे।' भगवान्ने पतिव्रताके सम्बन्धमें नरोत्तमको बतलाते हुए उसकी असीम शक्तियोंकी प्रशंसा की। जब पतिव्रताका घर पास आया, तब भगवान् अदृश्य हो गये। नरोत्तमने पतिव्रताके घरमें भी उस ब्राह्मणको बैठे देखा। नरोत्तमने पतिव्रतासे प्रार्थना की कि तुम मुझे धर्मका उपदेश करो। पतिव्रताने निवेदन किया कि 'मेरी पति-सेवा अधूरी है। उसे पूरी कर आपकी सेवा करूँगी, तबतक आप जलपान कर विश्राम कर लें।' सुनते ही नरोत्तम क्रुद्ध हो गया और शापतक देनेको तैयार हो गया। तब पतिव्रताने कहा—'महाराज! पुत्रके लिये जिस तरह माता-पिताकी सेवासे बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है, उसी तरह पत्नीके लिये पति-सेवासे बढ़कर अतिथि आदि सेवा नहीं है। इसलिये पतिको अपनी सेवासे संतुष्ट कर लूँगी, तभी आपकी सेवा कर पाऊँगी। यदि आपको जल्दी है तो तुलाधार वैश्यके पास जाइये।' नरोत्तम तुलाधार वैश्यके घरकी ओर बढ़ा।

(३) समतातीर्थ—ब्राह्मणरूपधारी भगवान् नरोत्तमके पास फिर आये और बोले—'ब्रह्मन्! चलिये, मैं तुलाधारके पास ले चलता हूँ।' जब वे दोनों तुलाधारके पास पहुँचे तो वहाँ बहुत बड़ी भीड़ एकत्र थी। बहुत-से पुरुष और स्त्रियाँ उसे चारों ओरसे घेरकर खड़े थे। ब्राह्मणको आया देखकर तुलाधारने मीठी वाणीमें पूछा—'द्विजश्रेष्ठ! आपका यहाँ कैसे पधारना हुआ है?' ब्राह्मणने कहा—'आप मुझे धर्मका उपदेश दीजिये।' तुलाधारने कहा—'महाराज! मैं वैश्य हूँ, व्यापार मेरा मुख्य धर्म है। व्यापारसम्बन्धी बातोंमें पहरभर रात बीत जायगी। आपका आतिथ्य करना मेरा धर्म है, किंतु व्यापार मेरा परम धर्म है। उस परम धर्मके पूरा होनेपर ही मैं आपकी सेवा कर सकूँगा। अतः आप धर्माकरके पास जायँ। मैं व्यापारियोंकी गुत्थियाँ सुलझा रहा हूँ। इस तरह व्यापारियोंमें समरूपसे व्याप्त परमेश्वरकी ही सेवा कर रहा हूँ।'

नरोत्तम वहाँसे आगे बढ़ा और भगवान् उसके साथ हो लिये। नरोत्तमने ब्राह्मणरूपधारी भगवान्से पूछा—'तुलाधारमें क्या विशेषता है?' भगवान्ने बताया कि वह तुलाधार अपने वैश्य-धर्ममें स्थिर रहकर सब प्राणियोंमें भगवान्को देखता हुआ वैश्यधर्मका व्यावहारिक उपदेश देता रहता है।

स तरह प्रातःसे राततक सबका भला करता रहता है।'

(४) **अद्रोहतीर्थ**—नरोत्तमने ब्राह्मणसे धर्माकरका रिचय पूछा। भगवान्ने बतलाया—'एक बार एक राजकुमार-ो कहीं बाहर जाना था। उसे अपनी पत्नीकी सुरक्षाकी चिन्ता ी। धर्माकरके पास अपनी स्त्रीको रखनेमें उसे संतोष था। वह पनी नवयुवती स्त्रीको धर्माकरके पास ले गया और उससे ार्थना की कि 'आप छः महीनेतक मेरी पत्नीकी रक्षाका भार हन करें।' धर्माकरने कहा—'राजन्! मैं आपका सगा-म्बन्धी नहीं हूँ तो फिर अपनी पत्नीको मेरे पास छोड़कर आप श्चिन्त कैसे रह सकेंगे?' राजकुमारने दृढ़ताके साथ कहा—मैं आपके चरित्रसे अवगत हूँ और निश्चिन्त होकर ही आया हूँ। आप मेरी बात न ठुकरायें।' धर्माकरको राजकुमारकी बात ाननी पड़ी। धर्माकरने बहुत ही सावधानीके साथ राजकुमारकी त्नीकी देखभाल की। छः महीनेतक उसने अखण्ड ब्रह्मचर्यका ालन किया। उसकी साध्वी पत्नी भी पतिके कार्यमें प्रसन्नता-ूर्वक हाथ बँटा रही थी।

छः महीने बाद जब राजकुमार परदेशसे लौटा, तब सीधे धर्माकरके पास आया। रास्तेमें लोग कई तरहकी बातें कर रहे े। किसीने राजकुमारसे कहा—'भाई! तुमने अपनी स्त्री धर्माकरको सौंप दी है। वह अपने-आपको कैसे सँभाल सकता है?' यही बात बहुत-से लोग दोहरा रहे थे। धर्माकर ो सब कुछ जान ही लेता था। राजकुमारसे कही जानेवाली े बातें भी उसे ज्ञात हो गयीं। उसने लोकापवाद हटानेके लिये एक योजना बनायी। अपने दरवाजेपर लकड़ियोंका एक ढेर लगवाया और उसमें आग लगा दी। ठीक इसी समय राज-कुमार उसके पास पहुँचा। राजकुमारने धर्माकर और अपनी पत्नीको देखा। दोनों बैठे हुए थे। पत्नी तो पतिको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हो रही थी, किंतु धर्माकर चिन्तित था। राजकुमारने धर्माकरसे पूछा—'मित्र! मैं बहुत दिनोंके बाद आपके पास लौटा हूँ, आप मुझसे बात क्यों नहीं करते? चिन्तित क्यों हैं?'

धर्माकरने कहा—'मित्र! लोकनिन्दाके कारण मेरा किया-कराया सब चौपट हो गया, अतः मैं अग्निमें प्रवेश करूँगा। देवता और मनुष्य मेरे इस कार्यको देखें। इतना कहकर धर्माकर धधकती हुई आगमें प्रवेश कर गया, किंतु धर्माकरका बाल भी बाँका नहीं हुआ। आकाशसे देवतालोग साधुवाद देते हुए फूलोंकी वृष्टि करने लगे। जिन लोगोंने धर्माकरके सम्बन्धमें झूठी किंवदन्तियाँ उड़ायी थीं, उनके मुखपर कोढ़ हो गया। देवताओंने प्रकट होकर धर्माकरको आगसे निकाला और मालाएँ पहनायीं। तबसे धर्माकरका नाम सज्जनाद्रोहक हो गया; क्योंकि धर्माकर किसीसे द्रोह नहीं करते थे। शत्रुसे भी प्रेमका व्यवहार रखते थे।

देवताओंने राजकुमारसे कहा—'तुम अपनी इस पत्नीको स्वीकार करो। इस समय इस सज्जनाद्रोहकके समान पृथ्वीपर कोई अन्य पुरुष नहीं है, जिसने काम और लोभपर इस तरह विजय पायी हो।' देवताओंने सबके सामने सज्जनाद्रोहककी भूरि-भूरि प्रशंसा की और वे अपने-अपने विमानोंपर बैठकर देवलोक पधार गये। राजकुमारने अद्रोहकसे अपनी कृतज्ञता प्रकट की और वह पत्नीके साथ राजमहलमें लौट आया।'

भगवान्ने जब यह कथा समाप्त की, तब अद्रोहकका घर समीप आ गया था। भगवान् नरोत्तमको अद्रोहकके पास भेजकर स्वयं अन्तर्हित हो गये। नरोत्तमने अद्रोहकके सामने अपनी धर्मसम्बन्धी जिज्ञासा रखी। अद्रोहकने नरोत्तमका आतिथ्य किया और समझाया कि आप वैष्णव सज्जनके पास जाइये। उनसे आपकी सब कामनाएँ पूरी हो जायँगी।

(५) **भक्तितीर्थ**—नरोत्तम वैष्णवके घरकी ओर जब बढ़ा, तब ब्राह्मणरूपधारी भगवान् पुनः मिल गये। नरोत्तमने भगवान्से पूछा कि जिस वैष्णव सज्जनके पास हम चल रहे हैं, उनकी क्या विशेषता है? भगवान्ने समझाया कि वैष्णव भगवान्में अनन्य प्रेम करता है। इसलिये भगवान् उसके मन्दिरमें प्रत्यक्ष रूपसे विद्यमान रहते हैं। जब वैष्णव सज्जनका घर समीप आया, तब भगवान् पुनः अन्तर्हित हो गये। नरोत्तमने वैष्णव सज्जनके सामने अपनी जिज्ञासाएँ रखीं। वैष्णवने कहा—'विप्रवर! तुम्हें देखकर मेरा हृदय उल्लसित हो रहा है। तुमपर भगवान् विष्णु प्रसन्न हैं। अतः आज तुम्हारी सभी कामनाएँ पूरी हो जायँगी। मेरे घरके मन्दिरमें भगवान् विष्णु साक्षात् विराजमान हैं। आप जाकर उनके दर्शन कीजिये।'

जब ब्राह्मण मन्दिरमें गया तो देखता है कि जो ब्राह्मण उसके साथ लगे थे, वही ब्राह्मण कमलके आसनपर विराजमान

हैं। नरोत्तमने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और कहा—'यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो अपने स्वरूपका दर्शन दें।' भगवान्‌ने नरोत्तमकी प्रार्थना स्वीकार की। नरोत्तम उनके दिव्यरूपको देखकर तृप्त हो गये। भगवान् बोले—'भक्तोंपर मेरा प्रेम सदा बना रहता है। प्रेमके कारण ही तुम्हें पुण्यात्मा पुरुषोंके दर्शन कराये हैं। तुमसे एक भूल हो गयी है। तुम्हारे माता-पिता तुमसे आदर नहीं पा रहे हैं, अतः तुम जाकर उनकी पूजा करो। उनके दुःख और क्रोधसे तुम्हारी तपस्या नष्ट होती जाती है। जिस पुत्रपर माता-पिताका कोप होता है, वह सीधे नरकमें जाता है। त्रिदेव भी उसे नरकमें जानेसे बचा नहीं सकते। इसलिये तुम घर लौट जाओ और माता-पिताको मेरी मूर्ति समझकर पूजा करो। उनकी कृपासे तुम मुझे प्राप्त करोगे।'

नरोत्तमको अपनी भूल मालूम पड़ी। वह माता-पिताको भगवान् समझकर बहुत सम्मान करने लगा और मूक चाण्डालकी तरह उनकी सेवामें संलग्न रहने लगा। अन्तमें वह परमगतिको प्राप्त हुआ। (पद्मपु० सृष्टि०)

पञ्चगङ्गा-माहात्म्य

काशीमें किरणा, धूतपापा, पुण्य-सलिला सरस्वती, गङ्गा और यमुना—ये पाँच नदियाँ एकत्र बतायी गयी हैं। इनसे त्रिभुवनविख्यात पञ्चनद (पञ्चगङ्गा) तीर्थ प्रकट हुआ है। उसमें डुबकी लगानेवाला मानव फिर पाञ्चभौतिक शरीर नहीं धारण करता। यह पाँच नदियोंका संगम समस्त पापराशियोंका नाश करनेवाला है। उसमें स्नान करनेमात्रसे मनुष्य ब्रह्माण्डमण्डपका भेदन करके परमपदको प्राप्त होता है। प्रयागमें माघमासमें विधिपूर्वक स्नान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह काशीके पञ्चगङ्गा-तीर्थमें एक ही दिनके स्नानसे मिल जाता है। पञ्चगङ्गामें स्नान और पितरोंका तर्पण करके माधव नामसे प्रसिद्ध भगवान् विष्णुकी पूजा करनेवाला पुरुष फिर इस संसारमें जन्म नहीं लेता। जिन्होंने पञ्चगङ्गामें श्रद्धापूर्वक श्राद्ध किया है, उनके पितर अनेक योनियोंमें पड़े होनेपर भी मुक्त हो जाते हैं। पञ्चनदतीर्थमें श्राद्धकर्मकी महिमाका प्रत्यक्ष दर्शन करके यमलोकमें पितरलोग यह गाथा गाया करते हैं कि 'क्या हमारे वंशमें भी कोई ऐसा होगा, जो काशीके पञ्चनदतीर्थमें आकर श्राद्ध करेगा? जिससे हमलोग मुक्त हो जायँगे।' पञ्चनदतीर्थमें जो कुछ धन दान किया जाता है, उसके पुण्यका क्षय कल्पके अन्ततक नहीं होता। वन्ध्या स्त्री भी एक वर्षतक पञ्चगङ्गा-तीर्थमें स्नान करके यदि मङ्गलागौरीका पूजन करे तो वह अवश्य ही पुत्रको जन्म देती है। वस्त्रसे छाने हुए पञ्चगङ्गाके पवित्र जलसे यहाँ दिक्श्रुता देवीको स्नान कराकर मनुष्य महान् फलका भागी होता है। पञ्चामृतके एक सौ आठ कलशोंके साथ तुलना करनेपर पञ्चगङ्गाका एक बूँद जल भी उनसे श्रेष्ठ सिद्ध होता है। इस लोकमें पञ्चकूर्च (पञ्चगव्य) पीनेसे जो शुद्धि कही गयी है, वही शुद्धि श्रद्धापूर्वक पञ्चगङ्गाके जलकी एक बूँद पीनेसे प्राप्त होती है और उसके कुण्डमें स्नान करनेसे राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञका जो फल कहा गया है, उससे सौगुना उत्तम फल उपलब्ध होता है। राजसूय और अश्वमेध यज्ञ केवल स्वर्गके साधक हैं, किंतु पञ्चगङ्गाके जलसे ब्रह्मलोकतकके सम्पूर्ण द्वन्द्वोंसे मुक्ति मिल जाती है। सत्ययुगमें वह 'धर्मनद'-के नामसे प्रसिद्ध हुआ, त्रेतामें उसीका नाम 'धूतपापा' हुआ। द्वापरमें उसे 'विन्दुतीर्थ' कहा जाने लगा और कलियुगमें 'पञ्चनद' के नामसे उसकी ख्याति होती है। पञ्चनद-तीर्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका शुभ आश्रय है, उसकी अनन्त महिमाका कोई भी वर्णन नहीं कर सकता। वह मनुष्योंके लिये सुखद, मोक्षप्रद तथा बड़े-बड़े पातकोंका नाश करनेवाला है। महापातकी एवं उपपातकी मानव भी अविमुक्त-क्षेत्रके इस माहात्म्यको सुनकर शुद्ध हो जाता है। ब्राह्मण इसे सुनने और पढ़नेसे वेदोंका विद्वान् हो जाता है, क्षत्रिय युद्धमें विजय पाता है, वैश्य धन-सम्पत्तिसे भरपूर होता है और शूद्रको वैष्णव भक्तोंका सङ्ग प्राप्त होता है। सम्पूर्ण यज्ञोंमें जो फल मिलता है, समस्त तीर्थोंमें जो फल प्राप्त होता है, वह सब इसके पाठ और श्रवणसे भी मनुष्य प्राप्त कर लेता है। विद्यार्थी इससे विद्या पाता है, धनार्थी धन पाता है, पत्नी चाहनेवाला पत्नी और पुत्रकी इच्छावाला पुरुष पुत्र पाता है। (नारदपुराण)

उत्कलदेशके पुरुषोत्तम-क्षेत्रकी महिमा

भारतवर्षमें दक्षिण समुद्रके तटतक फैला हुआ एक उत्कल नामका प्रदेश है, जो स्वर्ग और मोक्षको देनेवाला है। समुद्रसे उत्तर विरजामण्डलतकका जो प्रदेश है, वह पुण्यात्माओंका देश है। वह भूभाग सम्पूर्ण गुणोंसे अलंकृत है। समुद्रके उत्तर तटवर्ती उस सर्वोत्तम उत्कल प्रदेशमें सभी पुण्य तीर्थ और पवित्र मन्दिर आदि हैं, जिनका परिचय जाननेयोग्य है। मुक्ति देनेवाला परम उत्तम एवं पापनाशक पुरुषोत्तम-क्षेत्र परम गोपनीय है। सर्वत्र बालुका-आच्छादित भू-भागमें वह पवित्र एवं धर्म और कामकी पूर्ति करनेवाला परम दुर्लभ क्षेत्र दस योजनतक फैला हुआ है। जैसे नक्षत्रोंमें चन्द्रमा और सरोवरोंमें सागर श्रेष्ठ है, उसी प्रकार समस्त तीर्थोंमें पुरुषोत्तम-क्षेत्र सर्वश्रेष्ठ है। श्रेष्ठ मनुष्यको उचित है कि ज्येष्ठ मासमें शुक्लपक्षकी द्वादशीको विधिपूर्वक पञ्चतीर्थोंका सेवन करके श्रीपुरुषोत्तमका दर्शन करे। भगवान् पुरुषोत्तमका एक बार दर्शन करके सागरके भीतर एक बार स्नान करनेसे तथा ब्रह्मविद्याको एक बार जान लेनेसे मनुष्यको गर्भमें नहीं आना पड़ता। देवेश्वर पुरुषोत्तम समस्त जगत्में व्यापक और सम्पूर्ण विश्वके आत्मा हैं। वे जगत्की उत्पत्तिके कारण तथा जगदीश्वर हैं। सब कुछ उन्हींमें प्रतिष्ठित है। जो देवताओं, ऋषियों और पितरोंद्वारा सेवित तथा सर्वभोगसम्पन्न है, ऐसे पुण्यात्मा प्रदेशमें निवास करना अच्छा किसे नहीं लगेगा। जहाँ सबको मुक्ति देनेवाले जगदीश्वर भगवान् पुरुषोत्तम निवास करते हैं, उस उत्कल देशमें जो मनुष्य निवास करते हैं, वे देवताओंके समान तथा धन्य हैं। जो तीर्थराज समुद्रके जलमें स्नान करके भगवान् पुरुषोत्तमका दर्शन करते हैं, वे मनुष्य स्वर्गमें निवास करते हैं। जो उत्कलमें परम पवित्र श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्रके भीतर निवास करते हैं, उन उत्तम बुद्धिवाले उत्कलवासियोंका ही जीवन सफल है; क्योंकि वे भगवान् श्रीकृष्णके उस मुखारविन्दका दर्शन करते हैं, जो तीनों लोकोंको आनन्द देनेवाला है।

पहले सत्ययुगमें इन्द्रके तुल्य पराक्रमी इन्द्रद्युम्न नामसे प्रसिद्ध एक राजा थे। वे भगवान् विष्णुके भक्त, सत्यपरायण, क्रोधको जीतनेवाले, जितेन्द्रिय, अध्यात्मविद्यातत्पर, न्यायप्राप्त युद्धके लिये उत्सुक तथा धर्मपरायण थे। इस प्रकार सम्पूर्ण गुणोंकी खानरूप राजा इन्द्रद्युम्न सारी पृथ्वीका पालन करते थे। एक बार उनके मनमें भगवान् विष्णुकी आराधनाका विचार उठा। वे सोचने लगे—'मैं देवदेव भगवान् जनार्दनकी किस प्रकार आराधना करूँ? किस क्षेत्रमें, किस नदीके तटपर, किस तीर्थमें अथवा किस आश्रममें मुझे भगवान्की आराधना करनी चाहिये?' इस प्रकार विचार करते हुए वे मन-ही-मन समूची पृथ्वीपर दृष्टिपात करने लगे। जो-जो पापहारी तीर्थ हैं, उन सबका मानसिक अवलोकन और चिन्तन करके वे सेना और वाहनोंके साथ परम विख्यात मुक्तिदायक पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें गये। राजाने वहाँ जाकर विधिपूर्वक अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान किया और उसमें पर्याप्त दक्षिणाएँ दीं। तदनन्तर बहुत ऊँचा मन्दिर बनवाकर अधिक दक्षिणाके साथ श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राको स्थापित किया और विधिपूर्वक वहाँ प्रतिदिन स्नान, दान, जप, होम, देवदर्शन तथा भक्तिभावसे भगवान् पुरुषोत्तमकी सविधि आराधना करते हुए देव-देव जगन्नाथके प्रसादसे मोक्ष प्राप्त कर लिया।

गौओंको घास खिलानेसे श्राद्ध-फल

विराट देशमें एक बहुत ही गरीब व्यक्ति रहता था। पिताकी श्राद्ध-तिथि आनेपर उसके पास एक पैसा भी न था, फिर श्राद्ध हो कैसे? उसे रुलाई आने लगी। तदनन्तर उसने एक विद्वान्से पूछा—'ब्रह्मन्! आज मेरे पिताजीकी श्राद्ध-तिथि है और मेरे पास एक पैसा भी नहीं है, ऐसी दशामें मैं अपने पिताका हित कैसे करूँ?'

विद्वान् ब्राह्मणने बताया कि 'घबराओ नहीं, पितरोंके उद्देश्यसे घास काटकर लाओ और गौओंको खिला दो। इससे तुम्हें पिण्डदानसे भी अधिक फल प्राप्त होगा।'

उस गरीब व्यक्तिकी जान-में-जान आ गयी। उसने बड़ी श्रद्धाके साथ गौओंको चारा खिलाया। इस पुण्यके प्रभावसे उसके पितर तो तृप्त हुए ही, मरनेके बाद उसे भी देवलोक प्राप्त हुआ।

कार्तिकमासका माहात्म्य

हरिद्वारमें देवशर्मा नामके एक परिनिष्ठित पण्डित थे। वे अतिथिसेवी और पञ्चदेवोंके उपासक थे। भगवान् सूर्यमें उनका विशेष अनुराग था। भगवान् श्रीकृष्णने बतलाया है कि जैसे वर्षाका जल सब ओरसे आकर समुद्रमें मिल जाता है वैसे सूर्य, शिव, गणेश, विष्णु और शक्तिके पूजक मेरे ही पास आते हैं। मैं एक हूँ और उपासकोंके हितार्थ भिन्न-भिन्न रूपोंमें अपनेको प्रकट करता हूँ। जैसे देवदत्त नामका कोई व्यक्ति है। वह माता-पिताके लिये पुत्र, गुरुओंके लिये शिष्य, पत्नीके लिये पति, पुत्रके लिये पिता, शिष्यके लिये गुरु है, उसी तरह मैं ही अनेक नामोंसे पुकारा जाता हूँ।

देवशर्मा सूर्यकी आराधना करनेसे सूर्यकी तरह तेजस्वी हो गये थे। भगवान् विष्णु उनपर प्रसन्न रहते थे। दैवयोगसे उन्हें कोई पुत्र नहीं हुआ। एक पुत्री थी जिसका नाम गुणवती था। चन्द्र नामक शिष्यसे उन्होंने गुणवतीका विवाह कर दिया था। चन्द्र पुत्रकी भाँति देवशर्माका आदर किया करता था।

एक दिन देवशर्मा और चन्द्र कुश और समिधा लानेके लिये पर्वतपर गये। वहाँ एक क्रूर राक्षस उनपर टूट पड़ा। वे दोनों भाग न सके और उसके ग्रास बन गये। सूर्यकी उपासना और तीर्थमें मृत्यु होनेके कारण भगवान्ने उन्हें अपने धाममें बुला लिया। इस तरह दोनोंकी सद्गति हो गयी।

गुणवतीने जब यह समाचार सुना, तब वह रोते-रोते बेहोश हो गयी। किसी तरह अपने-आपको सँभालकर उसने घरका सभी सामान बेचकर पिता और पतिका पारलौकिक कर्म किया। वह भगवान्को अपना नाथ मानकर दो व्रतोंका विधिपूर्वक पालन करने लगी—एक था एकादशीका उपवास और दूसरा कार्तिकमासके स्नान आदि नियमोंका पालन। कार्तिक महीनेमें सूर्य जब तुला-राशिपर रहते हैं तब वह प्रातःकाल स्नान करती थी, दीपदान और तुलसी-वनकी सेवा करती थी तथा विष्णुके मन्दिरमें झाड़ू दिया करती थी। गुणवतीने प्रतिवर्ष कार्तिक-व्रतका पालन किया। धीरे-धीरे उसकी अवस्था ढलती गयी। एक दिन वह ज्वरसे आक्रान्त हो गयी, फिर भी किसी तरह स्नानके लिये गङ्गा-तटतक पहुँची। ज्यों ही उसने गङ्गामें पैर रखा त्यों ही वह जाड़ेसे काँपती हुई गिर पड़ी। देह भले ही अस्वस्थ था, किंतु उसका मन निरन्तर अपने प्रभुके स्मरणमें लीन था। गिरते ही उसने देखा कि उसके लिये एक विमान आ रहा है। विष्णु-रूपधारी पार्षदोंने उसे सम्मानके साथ विमानपर बैठाया। कुछ पार्षद उसपर चँवर भी डुलाने लगे। इस तरह पूरे सम्मानके साथ उसे वैकुण्ठ ले गये। यह कार्तिक-व्रतके अनुष्ठानका मधुर फल था।

पृथ्वीका भार उतारनेके लिये जब भगवान् श्रीकृष्णने अवतार लिया, तब उनके पार्षद यादवोंके रूपमें अवतीर्ण हुए थे। गुणवतीके पिता देवशर्मा सत्राजित् हुए। गुणवती उनकी लड़की सत्यभामा हुई। पूर्वजन्ममें गुणवतीने भगवान्के मन्दिरके द्वारपर तुलसीका वन लगा रखा था। इसके फलस्वरूप सत्यभामाके आँगनमें कल्पवृक्ष लगा हुआ था। गुणवतीने कार्तिकमें दीपदान दिया था, उसके फलस्वरूप उसके घरमें लक्ष्मी स्थिररूपसे रह रही थीं। गुणवतीने सभी कर्मोंको परमपतिस्वरूप विष्णुको समर्पित किया था, इसलिये सत्यभामा बनकर भगवान्को पतिके रूपमें प्राप्त किया।

कार्तिकमें भगवान् और वेदका जलमें निवास

समुद्रका एक पुत्र था, उसका नाम शङ्खासुर था। उसने देवताओंको पराजित कर स्वर्गसे निकाल दिया था। शङ्खासुर जानता था कि देवता वेदमन्त्रोंके द्वारा प्रबल बने रहते हैं। अतः उसने वेदोंका अपहरण कर लिया। देवता सचमुच निर्बल हो गये, तब वे विष्णुकी शरणमें गये। उन्होंने गीतों, वाद्यों और मङ्गलमय कार्योंसे उन्हें संतुष्ट किया। भगवान्ने कहा—'कार्तिकके शुक्लपक्षकी प्रबोधिनी एकादशीके दिन जो व्यक्ति तुम्हारी तरह गीत, वाद्य और मङ्गल-कार्योंसे मेरी आराधना करेंगे, वे मेरे समीप आ जायँगे। शङ्खासुरके द्वारा जो वेद हरे गये हैं, वे जलमें स्थित हैं। मैं उन्हें ले आता हूँ। आजसे प्रतिवर्ष कार्तिकमासमें मन्त्र, बीज और यज्ञोंसे युक्त वेद जलमें निवास करेंगे और मैं भी जलमें निवास करूँगा। इसलिये कार्तिकमासमें जो प्रातःस्नान करते हैं, वे सचमुच अवभृथ-स्नान करते हैं। सभी तिथियोंमें एकादशी और

मासोंमें कार्तिक मुझे बहुत प्रिय है।'

यह कहकर भगवान् विष्णु मत्स्यरूप धारणकर अर्घ्य देते हुए कश्यप मुनि (सत्यव्रत) की अञ्जलिमें जा गिरे। ऋषिने कृपाकर मत्स्यको अपने कमण्डलुमें रख लिया। शीघ्र ही मत्स्य बड़ा हो गया। तब उसे कुएँमें डाल दिया गया। जब वह कुएँमें न अँट सका, तब उसे तालाबमें छोड़ दिया गया और अन्तमें समुद्रमें पहुँचाना पड़ा। मत्स्यरूपधारी भगवान्ने शङ्खासुरका वध किया और शङ्खको बदरिकाश्रम ले गये। वहाँ उन्होंने ऋषियोंको आदेश दिया कि आपलोग जलसे वेदोंको ढूँढ़ निकालें। तबतक मैं देवताओंके साथ प्रयागमें ठहरा रहूँगा। ऋषियोंने भगवान्‌की आज्ञाका पालन किया। उन्होंने वेद-मन्त्रोंका उद्धार किया। जिस ऋषिने जिन मन्त्रोंको पाया, वही उनके ऋषि माने गये। ऋषियोंने सम्पूर्ण वेद प्रयागमें भगवान्‌को अर्पण कर दिया, इससे ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए। वहाँ सबने मिलकर अश्वमेध यज्ञ किया। तबसे प्रयागको तीर्थराज होनेका वर प्राप्त हुआ।

कार्तिक-व्रतके पुण्यदानसे एक राक्षसीका उद्धार

करवीरपुरमें धर्मदत्त नामके एक ब्राह्मण थे। वे अपना सब समय धर्मके आचरणमें ही लगाते थे। एक दिन वे कार्तिकमासमें भगवान्‌के पास जागरण करनेके लिये मन्दिरकी ओर जा रहे थे। रास्तेमें उन्हें एक राक्षसी मिल गयी। जैसी उसकी आकृति भयानक थी, वैसी ही उसकी आवाज भी भयानक थी। उसे देखकर ब्राह्मण थर्रा उठे। उनके हाथमें पूजाकी सामग्री और जल था। उन्होंने उसे राक्षसीपर छोड़ दिया। भगवान्‌के स्मरणसहित तुलसीदल-मिश्रित जलके स्पर्शसे राक्षसीके पाप-ताप नष्ट हो गये। उसका स्वभाव बदल गया। वह ब्राह्मणको प्रणाम करके अपने पूर्वजन्मकी बात सुनाते हुए कहने लगी—मेरा नाम कलहा था। मेरा स्वभाव बड़ा उग्र था। मेरे स्वभावसे पति सदा पीड़ित रहते थे। मैंने अपने पतिका कभी भला नहीं किया था। दिन-रात चिल्ला-चिल्लाकर कलह किया करती थी। अन्तमें खिन्न होकर मेरे पतिने दूसरी शादी कर ली, तब मैंने विष खाकर आत्महत्या कर ली। मैं यमराजके सामने उपस्थित की गयी। धर्मराजके पूछनेपर चित्रगुप्तने बतलाया—'यह बहुत दुष्ट स्वभावकी थी। यह स्वयं मिठाई खा जाती थी, किंतु पतिको एक कण भी नहीं देती थी। इस पापसे यह चमगादड़ बनकर अपनी ही विष्ठाको खाया करे। यह अपने पतिसे द्वेष करती और सर्वदा कलह ही किया करती थी, अतः सूकरी बनकर विष्ठा खाय और पकाये हुए बर्तनमें ही भोजन करनेवाली यह बिल्ली हो जाय। इसने अपने पतिको दुःखी करनेके लिये आत्महत्या की है, अतः कुछ कालतक प्रेतनी बने। पहले यह मरुप्रदेशमें प्रेतनी बने, फिर बहुत दिनोंके बाद उपर्युक्त तीनों योनियोंका कष्ट झेले।'

प्रेतनीने कहा—'मैं वही कलहा हूँ। मुझे इस प्रेत-शरीरमें आये पाँच सौ वर्ष बीत गये। मैं सदा भूख-प्याससे पीड़ित रहती हूँ। आपके हाथसे तुलसीमिश्रित जलके सम्पर्कसे मुझे शान्ति मिली है। अब आप ऐसा उपाय बताइये, जिससे मैं इस प्रेत-शरीरसे और आगे मिलनेवाली योनियोंसे बच सकूँ।'

प्रेतनीके वचन सुनकर धर्मदत्तको बहुत दुःख हुआ। उनका हृदय दयासे द्रवित हो गया। उन्होंने कहा—'तीर्थ और व्रतके सेवनसे पाप नष्ट होते हैं, किंतु उसमें तुम्हारा अधिकार नहीं है। अतः मैंने आजतक कार्तिकमासका जो अनुष्ठान किया है, उसका आधा पुण्य तुम्हें दे देता हूँ।' ऐसा कहकर धर्मदत्तने **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'**—मन्त्रको सुनाकर तुलसीयुक्त जलसे उसका अभिषेक किया। अभिषेकसे वह प्रेतनीसे देवी बन गयी। उसने हाथ जोड़कर ब्राह्मणसे अपनी कृतज्ञता प्रकट की। इसी बीच आकाशसे एक विमान उतरा। पुण्यशील और सुशील नामक भगवान्‌के पार्षदोंने उस देवीको सम्मानके साथ विमानपर चढ़ाया। धर्मदत्तने पार्षदोंके दर्शनसे अपनेको कृतार्थ माना। उन्होंने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। पार्षदोंने धर्मदत्तकी प्रशंसा करते हुए कहा कि 'आपने कार्तिकके महान् व्रत किये हैं। आधेका दान कर अब आपने दूना फल प्राप्त कर लिया है। समय पाकर आप भी विष्णुके धाममें आयेंगे।'

जो अपने बलको न समझकर विना काम किये ही धर्म और अर्थसे विरुद्ध तथा न पाने योग्य वस्तुकी इच्छा करता है, वह पुरुष इस संसारमें मूढ़बुद्धि कहलाता है।

माघमासका माहात्म्य

एक बार बारह वर्षोंतक वृष्टि नहीं हुई। उस समय हिमालयकी तलहटी और विन्ध्यप्रदेशके स्थान खाली हो गये थे। प्रजा इधर-उधर भाग गयी थी। महर्षि भृगु भी नर्मदा-तटको छोड़कर अपने शिष्योंके साथ हिमालयपर चले गये। भृगुजीने वहीं तपस्या प्रारम्भ कर दी।

एक दिन एक विद्याधर अपनी पत्नीके साथ महर्षि भृगुके पास आया। दोनों महर्षिको प्रणामकर खड़े हो गये। वे दुःखी दीखते थे। महर्षिने विद्याधरसे पूछा—'विद्याधर! अपने दुःखका कारण बताओ।' विद्याधरने कहा—'महर्षे! मुझे पुण्यके फलस्वरूप देवताका शरीर, दिव्य भोग और दिव्य नारी भी मिली, किंतु मेरा मुख बाघ-सा हो गया है। इससे मेरी सब सुख-शान्ति नष्ट हो गयी है। मेरी यह पत्नी सब गुणों और शीलसे सम्पन्न है। कहाँ तो यह सुन्दरी नारी और कहाँ मैं व्याघ्र-मुखवाला पुरुष। मुझे बहुत ग्लानि होती है। आप मुझे उपाय बतायें।'

महर्षि भृगुने कहा—'पूर्वजन्ममें तुमने माघके महीनेमें एकादशी-व्रत करके द्वादशीको शरीरमें तैल लगा लिया था। इसी कारण तुम्हारा मुख व्याघ्रका हो गया है। राजा पुरूरवासे भी यही भूल हुई थी। वे भी कुरूप हो गये थे। तुम चिन्ता न करो। तुम माघ-स्नान किया करो। उससे पाप नष्ट हो जाते हैं। सौभाग्यसे माघ बिलकुल निकट है। तुम पौषमासके शुक्ल-पक्षकी एकादशीसे ही माघ-स्नानका व्रत ले लो और उसे प्रारम्भ कर दो। तुम भोगोंका त्याग कर भूमिपर सोया करो और एक महीने निराहार रहकर तीनों समय स्नान करो। माघकी शुक्ला एकादशीको तुम्हारे सारे पाप धुल जायँगे। तब द्वादशीको मेरे पास आना। मैं मन्त्रसे अभिषेक कर तुम्हारे मुखको कामदेवके समान सुन्दर बना दूँगा।' भृगुके आदेशसे विद्याधर उन्हींके आश्रममें ठहर गया और पत्नीके साथ माघ-स्नान करने लगा। द्वादशीके दिन महर्षि भृगुके अभिषेकसे वह सुन्दर हो गया।

माघमासके पुण्यदानसे चार प्राणियोंका उद्धार

रथन्तर-कल्पके सत्ययुगकी कथा है। ब्रह्माके पुत्र कुत्स मुनिका एक प्रिय पुत्र था, जिसका नाम था वत्स। पिताने पाँच वर्षकी अवस्थामें उसका उपनयन कर उसे गायत्री-मन्त्रका उपदेश किया और विद्याध्ययनके लिये महर्षि भृगुके पास भेज दिया। गुरुकी देखादेखी वत्स मुनि भी कावेरी नदीमें माघका स्नान किया करते थे। वहाँ कावेरी नदी पश्चिमवाहिनी हो गयी है। समुद्रमें मिलनेवाली जितनी नदियाँ हैं, उनका प्रवाह जहाँ पश्चिम या उत्तरकी ओर हो जाता है, उस स्थानका महत्त्व प्रयागसे बढ़ जाता है। वत्स मुनि इस बातको जानते थे। इसलिये वहाँ स्नानकर अपनेको कृतार्थ समझते थे। वे बड़ी श्रद्धासे तीनों काल स्नान किया करते थे। उसके पुण्यसे उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया था। वे मोह और ममतासे ऊपर उठ चुके थे।

पीछे माता-पिता और गुरुके आदेशसे वे कल्याणतीर्थमें आ गये। वहाँ भी उन्होंने नियमपूर्वक एक मासतक माघ-स्नान किया। उसके बाद वे तपस्या करने लगे। प्रायः वे भगवान्‌के ध्यानमें ही बैठे रहते थे। वहाँके मृग निर्भीक होकर उनके शरीरमें अपना सींग रगड़ा करते थे। वत्समुनिको इसका भान नहीं होता था। इस दृश्यको देखकर वहाँके लोग श्रद्धाके साथ उन्हें मृगशृंग कहकर पुकारने लगे थे। उनकी तपस्यासे आकर्षित होकर भगवान् विष्णु प्रकट हो गये। मृगशृंग ध्यानमें इतने लीन थे कि उन्हें इसका भान नहीं हुआ। तब भगवान्‌ने उनके ब्रह्मरन्ध्रका स्पर्श किया और कहा—'मृगशृंग! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, वर माँगो!' भगवान्‌का आह्लादक दर्शन पाकर मृगशृंगके सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उनके नेत्रोंसे आनन्दका जल झरने लगा। उन्होंने भगवान्‌की स्तुति की। भगवान्‌ने कहा—'मृगशृंग! मुझे यज्ञ, दान एवं अन्यान्य नियमोंके पालनसे उतना संतोष नहीं होता, जितना माघके स्नानसे होता है। मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने उत्तम ब्रह्मचर्यका पालन किया है। मेरी आज्ञा है कि अब तुम गृहस्थ-धर्मका पालनकर पितरोंको भी संतुष्ट करो।' मृगशृंगने भगवान्‌का पूजन किया और उनकी आज्ञासे वे घर लौट आये। जब माता-पिताने सुना कि मेरे लड़केको भगवान्‌का साक्षात्कार हुआ है तो उनके नेत्र आनन्दके आँसुओंसे भर गये।

अब उन्हें पुत्रके विवाहकी चिन्ता सताने लगी। उन्होंने भोजपुरमें 'उचथ्य' नामक मुनिकी कन्याका पता लगाया। कन्याका नाम सुवृत्ता था। जैसा उसका नाम था वैसा ही उसमें गुण था। वह बाहर-भीतरसे शुद्ध थी। माघ-स्नानमें उसका भी अनुराग था। वह माघमासमें प्रतिदिन अपनी तीन सखियोंके साथ पश्चिमवाहिनी कावेरीमें स्नान किया करती थी। भक्तिके सुन्दर भाव उसके अङ्ग-अङ्गसे झलकते थे। जब कुछ-कुछ सूर्यका उदय होने लगता, उसी समय सुवृत्ता कावेरीमें गोता लगाती थी। उसने तीन वर्षोंतक माघ-स्नान किया। उसके पिता उचथ्यका हृदय अपनी कन्याके सदाचरणको देखकर प्रसन्नतासे भरा रहता था। वे सोचा करते थे कि उसके अनुरूप वर कहाँ प्राप्त हो ? इसी बीच कुत्समुनिने अपने पुत्र वत्सके साथ सुवृत्ताके विवाहका प्रस्ताव रखा। इस प्रस्तावसे उचथ्यके हृदयको बहुत शान्ति मिली।

एक दिन सुवृत्ता तीनों सखियोंके साथ माघ-स्नानके लिये कावेरीके तटपर आयी। उसी समय एक जंगली हाथी पानीसे निकला और कन्याओंपर झपटा। वे भाग खड़ी हुईं। भागते-भागते चारों तिनकोंसे ढके कुएँमें गिर पड़ीं। कुआँ जलरहित था, इसलिये गिरते ही चारों मर गयीं। उनके माता-पिता खोजते-खोजते वहाँ आ पहुँचे। निकालनेपर उन्हें निर्जीव देख लोग रोने-कलपने लगे। ठीक उसी समय मृगशृंग मुनि वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने आश्वासन दिया कि 'इन कन्याओंको मैं जीवित कर दूँगा। आपलोग निश्चिन्त होकर कन्याओंके शरीरकी रक्षा करें।'

इसके बाद मृगशृंग मुनि कावेरीके कण्ठभर जलमें खड़े हो गये। वे मुख और भुजाओंको ऊपर उठाकर सूर्यकी ओर देखते हुए मृत्यु देवताकी स्तुति करने लगे। ठीक उसी समय वह भयानक हाथी फिर पानीसे निकला और मृगशृंगपर टूट पड़ा। मुनि शान्तभावसे स्तुति करते रहे। मुनिके पास आनेपर हाथी बिलकुल शान्त हो गया और इनसे अनुनय-विनय करने लगा। उसने सूँड़से पकड़कर मृगशृंगको अपनी पीठपर बैठा लिया। मुनि उसके भावको समझ गये थे। उन्होंने हाथमें जल लेकर संकल्प किया—'मैंने माघ-स्नानके आठ दिनोंका पुण्य तुझे दे दिया।' इस संकल्प-जलको छोड़ते ही हाथी प्रसन्नतासे चिग्घाड़ उठा। इसके बाद मुनिने कृपापूर्वक उसके मस्तकपर हाथ फेरा। तत्क्षण वह जीव हाथीके शरीरको त्यागकर देवताके स्वरूपमें आ गया तथा मुनिकी प्रार्थना कर स्वर्ग चला गया। इसके बाद मृगशृंगने मृत्युकी स्तुति प्रारम्भ की। उससे प्रसन्न होकर यमराज प्रकट हो गये। उन्होंने मुनिसे वर माँगनेके लिये कहा। मुनिने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि 'आप इन चारों कन्याओंको जिला दें।' यमराज 'तथास्तु' कहकर अन्तर्हित हो गये।

कन्याएँ जीवित हो गयीं, उन्हें ऐसा मालूम पड़ा कि वे सोकर उठी हैं। उन्होंने अपनी माताओंसे यमलोककी आँखोंदेखी घटनाएँ सुनायीं। अभ्यासके अनुसार वे पुनः माघ-स्नान, उपवास और व्रत करने लगीं। उनकी रुचि अब और बढ़ गयी थी। समय आनेपर मृगशृंगका उन चारों कन्याओंसे विवाह हो गया।

माघ-स्नानके प्रभावसे मुनिने पशुके साथ-साथ चार मानव-कन्याओंका भी उद्धार किया।

माघ-स्नानसे दिव्यलोककी प्राप्ति

नर्मदाके तटपर अकलंक नामका एक गाँव था। सुव्रत इसी गाँवमें रहते थे। वे अच्छे विद्वान् थे। वे अनेक देशोंकी भाषाएँ भी जानते थे, किंतु इनकी सारी विद्याएँ अर्थोपार्जनके लिये थीं। वे लोभी थे। अन्यायसे भी धन कमाया करते थे। इस तरह पैसे तो इनके पास बहुत हो गये थे, किंतु ये न खाते थे न किसीको खिलाते थे। केवल नित्य धन जोड़ा करते थे। धीरे-धीरे वे वृद्ध हो गये।

बुढ़ापेकी अशक्तताने उनकी आँखें खोलीं। अब उन्हें मृत्यु दृष्टिगोचर हो रही थी। उन्हें अपनी करनीपर पश्चात्ताप हो रहा था। उन्होंने निश्चित कर लिया कि अब मैं परलोकके सुधारमें लगूँगा। ठीक उसी रातको उनके घरमें चोर घुसे। चोरोंने ब्राह्मणके मुखमें कपड़ा ठूँसकर उन्हें कसकर बाँध दिया—फिर वे सब धन लेकर भाग गये। जीवनभरकी कमाई नष्ट होनेसे बूढ़ा ब्राह्मण बहुत रोया, किंतु पीछे संतोष कर गया। उन्हें याद आने लगा कि जब मैं धन कमानेके लिये कश्मीर जा रहा था तो रास्तेमें माघ-स्नान करनेवाले ब्राह्मण मिले थे। वे आपसमें कह रहे थे कि माघमें नहानेवाले लोग पापसे मुक्त होकर स्वर्ग जाते हैं। ब्राह्मणने भी तय कर कि जबतक शरीर है, तबतक मैं माघस्नान नहीं छो

विरोचनके आग्रहपर बोले—'मुझे आपकी आयु चाहिये।'

दैत्यराजका सिर माँगना व्यर्थ था, क्योंकि गुरु शुक्राचार्यकी संजीवनी कहीं गयी नहीं थी। किंतु विरोचन किंचित् भी हतप्रभ नहीं हुए। उन्होंने प्रसन्नतासे कहा—'मैं धन्य हूँ। मेरा जन्म लेना सफल हो गया। मेरा जीवन स्वीकार करके आपने मुझे कृतकृत्य कर दिया।'

विरोचनने अपने हाथमें खड्ग उठाया और मस्तक काटकर दूसरे हाथसे ब्राह्मणकी ओर बढ़ा दिया। इन्द्र भयके

कारण वह मस्तक लेकर शीघ्र स्वर्ग चले आये। विरोचनको तो भगवान्ने अपना पार्षद बना लिया।

महादानी कर्ण

एक बार इन्द्रप्रस्थमें पाण्डवोंकी सभामें श्रीकृष्णचन्द्र कर्णकी दानशीलताकी प्रशंसा करने लगे। अर्जुनको यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा—'हृषीकेश! धर्मराजकी दानशीलतामें कहाँ त्रुटि है जो उनकी उपस्थितिमें आप कर्णकी प्रशंसा कर रहे हैं?'

इस तथ्यको तुम स्वयं समयपर समझ लोगे। यह कहकर उस समय श्रीकृष्णने बातको टाल दिया।

कुछ समय पश्चात् अर्जुनको साथ लेकर श्यामसुन्दर ब्राह्मणके वेशमें पाण्डवोंके राजसदनमें आये और बोले—'राजन्! मैं अपने हाथसे बना भोजन करता हूँ। भोजन मैं केवल चन्दनकी लकड़ीसे बनाता हूँ और वह काष्ठ तनिक भी भीगा नहीं होना चाहिये।'

उस समय खूब वर्षा हो रही थी। युधिष्ठिरने राजभवनमें पता लगा लिया, किंतु सूखा चन्दन-काष्ठ कहीं मिला नहीं। सेवक नगरमें गये किंतु संयोग ऐसा कि जिसके पास भी चन्दन मिला, सब भीगा हुआ मिला। धर्मराजको बड़ा दुःख हुआ, किंतु उपाय कुछ भी न था।

उसी वेशमें वहाँसे सीधे श्रीकृष्ण और अर्जुन कर्णकी राजधानी पहुँचे और वही बात कर्णसे कही। कर्णके राजसदनमें भी सूखा चन्दन नहीं था और नगरमें भी नहीं मिला। लेकिन कर्णने सेवकोंसे नगरमें चन्दन न मिलनेकी बात सुनते ही धनुष चढ़ाया। राजसदनके मूल्यवान् कलाङ्कित द्वार चन्दनके थे। अनेक पलंग चन्दनके पायेके थे। कई दूसरे उपकरण चन्दनके बने थे। क्षणभरमें बाणोंसे कर्णने उन सबको चीरकर एकत्र करवा दिया और बोला—'भगवन्! आप भोजन बनायें।'

वह आतिथ्य प्रेमके भूखे गोपाल कैसे छोड़ देते। वहाँसे तृप्त होकर जब बाहर आ गये, तब अर्जुनसे बोले—'पार्थ! तुम्हारे राजसदनमें भी द्वारादि चन्दनके ही हैं। उन्हें देनेमें पाण्डव कृपण भी नहीं हैं। किंतु दानधर्ममें जिसके प्राण बसते हैं, उसीको समयपर स्मरण आता है कि पदार्थ कहाँसे कैसे लेकर दे दिया जाय।'

× × × ×

'आज दानशीलताका सूर्य अस्त हो रहा है। जिस दिन कर्ण युद्धभूमिमें गिरे, सायंकाल शिविरमें लौटकर श्रीकृष्ण खिन्नमुख बैठ गये।'

'अच्युत! आप उदास हों, इतनी महानता क्या कर्णमें है?' अर्जुनने पूछा।

'चलो! उस महाप्राणके अन्तिम दर्शन कर आयें। तुम दूरसे ही देखते रहना।' श्रीकृष्ण उठे, उन्होंने वृद्ध ब्राह्मणका रूप बनाया। रक्तसे कीचड़ बनी, शवोंसे पटी, छिन्न-भिन्न अस्त्र-शस्त्रोंसे पूर्ण युद्धभूमिमें रात्रिकालमें शृगालादि घूम रहे थे। ऐसी भूमिमें मरणासन्न कर्ण पड़े थे।

'महादानी कर्ण!' पुकारा वृद्ध ब्राह्मणने।

'मैं यहाँ हूँ, प्रभु!' किसी प्रकार पीड़ासे कराहते कर्णने

कहा।

'तुम्हारा सुयश सुनकर बहुत अल्प द्रव्यकी आशासे आया था।' ब्राह्मणने कहा।

'आप मेरे घर पधारें।' कर्ण और क्या कहते ?

'मुझे जाने दो! इधर-उधर भटकनेकी शक्ति मुझमें नहीं।' ब्राह्मण रुष्ट हुए।

'मेरे दाँतोंमें स्वर्ण लगा है। आप इन्हें तोड़कर ले लें।' कर्णने सोचकर कहा।

'छिः! ब्राह्मण अब यह क्रूर कर्म करेगा।' ब्राह्मण और रुष्ट हुए।

किसी प्रकार कर्ण खिसके। उन्होंने पास पड़े एक शस्त्रपर मुख पटक दिया। शस्त्रसे टूटे दाँतोंका स्वर्ण निकला, किंतु रक्तसना स्वर्ण ब्राह्मण कैसे ले। धनुष भी चढ़ानेकी शक्ति विप्रमें नहीं थी। मरणासन्न, अत्यन्त आहत कर्णने हाथ तथा घायल मुखसे धनुष चढ़ाकर वारुण-अस्त्रके द्वारा जल प्रकट कर स्वर्ण धोया और दान किया। श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। अन्तिम समय कर्णको दर्शन देकर कृतार्थ करने ही तो पधारे थे लीलामय श्यामसुन्दर! उनके देवदुर्लभ चरणोंपर सिर रखकर कर्णने देहत्याग किया।'

दानधर्मकी महिमा

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम पञ्चवटीमें निवाससे पूर्व जब प्रथम बार महर्षि अगस्त्यके आश्रमपर पहुँचे तो उनका सत्कार करके महर्षिने विश्वकर्माका बनाया एक दिव्य आभूषण उन्हें देते हुए कहा—'यह धारण करनेवालेको निर्भय रखता है, उसे अनेक आपत्तियोंसे बचाता है।'

क्षत्रियके लिये दान लेना उचित नहीं है। श्रीरामने तो वनमें तपस्वी-वेषमें रहनेका व्रत लिया था, किंतु महर्षिके आग्रहपर उनका प्रसाद मानकर वह आभूषण लेकर उन्होंने श्रीजानकीको दे दिया। आभूषण स्वीकार करते हुए श्रीरामने पूछा—'यह आपको कैसे प्राप्त हुआ ?'

अगस्त्यजीने बतलाया—'मैं एक बार वनमें यात्रा कर रहा था। एक विशाल वनमें पहुँचनेपर मुझे एक योजन लम्बी झील मिली। सुन्दर स्वच्छ जल था उसका और उसके किनारे एक आश्रम भी था, किंतु आश्रममें कोई नहीं था। उस वनमें मुझे कोई पशु-पक्षी नहीं दीखा। ग्रीष्म ऋतु थी। मैं यात्रासे थका था। अतः मैं उस आश्रममें एक रात्रि रहा। प्रातःकाल मैं स्नानके लिये उस झीलकी ओर चला तो मार्गमें एक शव मिला। हृष्ट-पुष्ट देह देखकर मैंने समझा कि यह तपस्वीका शव नहीं है। इतना सुन्दर, सुपुष्ट व्यक्ति उस वनमें कहाँसे आया, यह मैं सोचने लगा। इतनेमें एक विमान आकाशसे उतरा। उससे निकलकर एक देवोपम मनुष्यने झीलमें स्नान किया और फिर उस शवका मांस मुखसे ही काटकर उसने भरपेट खाया। मुझे यह देखकर बड़ी ग्लानि हुई।'

'तुम कौन हो ? यह घृणित आहार क्यों करते हो ?' जब वह व्यक्ति विमानमें बैठने लगा, तब मैंने उससे पूछा।

उस व्यक्तिने कहा—'कभी मैं विदर्भ देशका राजा श्वेत था। राज्यसे वैराग्य होनेपर तप करके मैंने देहत्याग किया। तपके प्रभावसे मुझे ब्रह्मलोक मिला, किंतु वहाँ भी मुझे क्षुधा पीड़ित करने लगी।'

भगवान् ब्रह्माने कहा था—'श्वेत! पृथ्वीपर दान किये बिना इस लोकमें कोई वस्तु मिलती नहीं। तुमने किसी भिक्षुकको भिक्षातक नहीं दी। केवल अपने देहको नाना प्रकारके भोगोंसे पुष्ट किया। देहको ही सुखाकर तुमने तप किया। तपका फल तो तुम्हारा इस लोकमें आना है। तुम्हारा

देह पृथ्वीपर पड़ा है। वह पुष्ट और अक्षय कर दिया गया है। तुम उसीका मांस खाकर क्षुधा मिटाओ। अगस्त्य ऋषिके मिलनेपर तुम इस घृणित भोजनसे परित्राण पाओगे।'

'तबसे यह देह मेरा आहार है। मेरे प्रतिदिन भक्षणसे भी यह घटता नहीं।' श्वेतने बतलाया।

'मैं ही अगस्त्य हूँ। मैंने उसे बतलाया, तब वह बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने बड़े आग्रहसे यह आभूषण मुझे दिया। मुझे इसका क्या करना था, किंतु उसके उद्धारके लिये मैंने उसका यह दान स्वीकार कर लिया।'

महर्षि अगस्त्यने आभूषणकी यह कथा श्रीरामको सुनायी।

देवी षष्ठीकी कथा

प्रियव्रत नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो चुके हैं। उनके पिताका नाम था स्वायम्भुव मनु। प्रियव्रत योगिराज होनेके कारण विवाह करना नहीं चाहते थे। तपस्यामें उनकी विशेष रुचि थी, परंतु ब्रह्माजीकी आज्ञा तथा सत्प्रयत्नके प्रभावसे उन्होंने विवाह कर लिया। विवाहके पश्चात् सुदीर्घकालतक उन्हें कोई भी संतान नहीं हुई। तब कश्यपजीने उनसे पुत्रेष्टियज्ञ कराया। राजाकी प्रेयसी भार्याका नाम मालिनी था। मुनिने उन्हें चरु (खीर) प्रदान किया। चरु-भक्षण करनेके पश्चात् रानी मालिनी गर्भवती हो गयीं। तत्पश्चात् सुवर्णके समान प्रभावाले एक कुमारकी उत्पत्ति हुई, परंतु सम्पूर्ण अङ्गोंसे सम्पन्न वह कुमार मरा हुआ था। उसकी आँखें उलट चुकी थीं। उसे देखकर समस्त नारियाँ तथा बान्धवोंकी स्त्रियाँ भी रो पड़ीं। पुत्रके असह्य शोकके कारण माताको मूर्छा आ गयी।

राजा प्रियव्रत उस मृत बालकको लेकर श्मशानमें गये और उस एकान्त भूमिमें पुत्रको छातीसे चिपकाकर आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहाने लगे। इतनेमें उन्हें वहाँ एक दिव्य विमान दिखायी पड़ा। शुद्ध स्फटिकमणिके समान चमकनेवाला वह विमान अमूल्य रत्नोंसे बना था। तेजसे जगमगाते हुए उस विमानकी रेशमी वस्त्रोंसे अनुपम शोभा हो रही थी। वह अनेक प्रकारके अद्भुत चित्रोंसे विभूषित तथा पुष्पोंकी मालासे सुसज्जित था। उसीपर बैठी हुई मनको मुग्ध करनेवाली एक परम सुन्दरी देवीको राजा प्रियव्रतने देखा। श्वेत चम्पाके फूलके समान उनका उज्ज्वल वर्ण था। सदा सुस्थिर तारुण्यसे शोभा पानेवाली वे देवी मुस्करा रही थीं। उनके मुखपर प्रसन्नता छायी थी। रत्नमय भूषण उनकी छवि बढ़ा रहे थे। योगशास्त्रमें पारंगत वे देवी भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये आतुर थीं। ऐसा जान पड़ता था मानो वे मूर्तिमती कृपा ही हों। उन्हें सामने विराजमान देखकर राजाने बालकको भूमिपर रख दिया और बड़े आदरके साथ उनकी पूजा और स्तुति की। उस समय वे स्कन्दकी प्रिया देवी षष्ठी अपने तेजसे देदीप्यमान थीं। उनका शान्त विग्रह ग्रीष्मकालीन सूर्यके समान चमचमा रहा था। उन्हें प्रसन्न देखकर राजाने पूछा—'सुशोभने! कान्ते! सुव्रते! वरारोहे! तुम कौन हो, तुम्हारे पतिदेव कौन हैं और तुम किसकी कन्या हो? तुम स्त्रियोंमें धन्यवाद एवं आदरकी पात्र हो।'

जगत्को मङ्गल प्रदान करनेमें प्रवीण तथा देवताओंको रणमें सहायता पहुँचानेवाली वे भगवती 'देवसेना' थीं। पूर्वसमयमें देवता दैत्योंसे ग्रस्त हो चुके थे। इन देवीने स्वयं सेना बनकर देवताओंका पक्ष ले युद्ध किया था। इनकी कृपासे देवता विजयी हो गये थे। अतएव इनका नाम 'देवसेना' पड़ गया। महाराज प्रियव्रतकी बात सुनकर ये उनसे कहने लगीं—'राजन्! मैं ब्रह्माकी मानसी कन्या हूँ। जगत्पर शासन करनेवाली मुझ देवीका नाम 'देवसेना' है। विधाताने मुझे उत्पन्न करके स्वामी कार्तिकेयको सौंप दिया है। मैं सम्पूर्ण मातृकाओंमें प्रसिद्ध हूँ। स्कन्दकी पतिव्रता भार्या होनेका गौरव मुझे प्राप्त है। भगवती मूलप्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेके कारण विश्वमें देवी 'षष्ठी' नामसे मेरी प्रसिद्धि है। मेरे प्रसादसे पुत्रहीन व्यक्ति सुयोग्य पुत्र, प्रियाहीनजन प्रिया, दरिद्री धन तथा कर्मशील पुरुष कर्मोंके उत्तम फल प्राप्त कर लेते हैं। राजन्! सुख, दुःख, भय, शोक, हर्ष, मङ्गल, सम्पत्ति और विपत्ति—ये सब कर्मोंके अनुसार होते हैं। अपने ही कर्मके प्रभावसे पुरुष अनेक

पुत्रोंका पिता होता है और कुछ लोग पुत्रहीन भी होते हैं। किसीको मरा हुआ पुत्र होता है और किसीको दीर्घजीवी—यह कर्मका ही फल है। गुणी, अङ्गहीन, अनेक पत्नियोंका स्वामी, भार्यारहित, रूपवान्, रोगी और धर्मी होनेमें मुख्य कारण अपना कर्म ही है। कर्मके अनुसार ही व्याधि होती है और पुरुष आरोग्यवान् भी हो जाता है। अतएव राजन्! कर्म सबसे बलवान् है—यह बात श्रुतिमें कही गयी है।'

इस प्रकार कहकर देवी षष्ठीने उस बालकको उठा लिया और अपने महान् ज्ञानके प्रभावसे खेल-खेलमें ही उसे पुनः जीवित कर दिया। अब राजाने देखा तो सुवर्णके समान प्रभावाला वह बालक हँस रहा था। अभी महाराज प्रियव्रत उस बालककी ओर देख ही रहे थे कि देवी देवसेना उस बालकको लेकर आकाशमें जानेको तैयार हो गयीं। यह देख राजाके कण्ठ, ओष्ठ और तालु सूख गये, उन्होंने पुनः देवीकी स्तुति की। तब संतुष्ट हुई देवीने राजासे वेदोक्त वचन कहा—'तुम स्वायम्भुव मनुके पुत्र हो। त्रिलोकीमें तुम्हारा शासन चलता है। तुम सर्वत्र मेरी पूजा कराओ और स्वयं भी करो। तब मैं तुम्हें कमलके समान मुखवाला यह मनोहर पुत्र प्रदान करूँगी। इसका नाम सुव्रत होगा। इसमें सभी गुण और विवेकशक्ति विद्यमान रहेंगे। यह भगवान् नारायणका कलावतार तथा प्रधान योगी होगा। इसे पूर्वजन्मकी बातें स्मरण रहेंगी। क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ यह बालक सौ अश्वमेध यज्ञ करेगा। सभी इसका सम्मान करेंगे। उत्तम बलसे सम्पन्न होनेके कारण यह ऐसी शोभा पायेगा, जैसे लाखों हाथियोंमें सिंह। यह धनी, गुणी, शुद्ध, विद्वानोंका प्रेमभाजन तथा योगियों, ज्ञानियों एवं तपस्वियोंका सिद्धरूप होगा। त्रिलोकीमें इसकी कीर्ति फैल जायगी। यह सबको सब सम्पत्ति प्रदान कर सकेगा।'

इस प्रकार कहनेके पश्चात् भगवती देवसेनाने उन्हें वह पुत्र दे दिया। राजा प्रियव्रतने पूजाकी सभी बातें स्वीकार कर लीं। यों भगवती देवसेनाने उन्हें उत्तम वर देकर स्वर्गके लिये प्रस्थान किया। राजा भी प्रसन्न-मन होकर मन्त्रियोंके उपलक्ष्यमें माङ्गलिक कार्य आरम्भ करा दिया, भगवतीकी पूजा की, ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दान दिया। तबसे प्रत्येक मासमें शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिके अवसरपर भगवती षष्ठीका महोत्सव यत्नपूर्वक मनाया जाने लगा। बालकोंके प्रसवगृहमें छठे दिन, इक्कीसवें दिन तथा अन्नप्राशनके शुभ समयपर यत्नपूर्वक देवीकी पूजा होने लगी। सर्वत्र इसका पूरा प्रचार हो गया। स्वयं राजा प्रियव्रत भी पूजा करते थे।

भगवती देवसेनाका ध्यान, पूजन और स्तोत्र इस प्रकार है—जो प्रसङ्ग सामवेदकी कौथुमी शाखामें वर्णित है। शालग्रामकी प्रतिमा, कलश अथवा वटके मूलभागमें या दीवालपर पुत्तलिका बनाकर प्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेवाली शुद्धस्वरूपिणी इन भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। विद्वान् पुरुष इनका इस प्रकार ध्यान करे—'सुन्दर पुत्र, कल्याण तथा दया प्रदान करनेवाली ये देवी जगत्की माता हैं। श्वेत चम्पकके समान इनका वर्ण है। ये रत्नमय भूषणोंसे अलंकृत हैं। इन परम पवित्र-स्वरूपिणी भगवती देवसेनाकी मैं उपासना करता हूँ।' विद्वान् पुरुष इस प्रकार ध्यान करनेके पश्चात् भगवतीको पुष्पाञ्जलि समर्पण करे। पुनः ध्यान करके मूलमन्त्रसे इन साध्वी देवीकी पूजा करनेका विधान है। पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, विविध प्रकारके नैवेद्य तथा सुन्दर फलद्वारा भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। उपचार अर्पण करनेके पूर्व **'ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा'**—इस मन्त्रका उच्चारण करना विहित है। पूजक पुरुषको चाहिये कि यथाशक्ति इस अष्टाक्षर महामन्त्रका जप भी करे।

तदनन्तर मनको शान्त करके भक्तिपूर्वक स्तुति करनेके पश्चात् देवीको प्रणाम करे। जो पुरुष देवीके उपर्युक्त अष्टाक्षर महामन्त्रका एक लाख जप करता है, उसे अवश्य ही उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है, ऐसा ब्रह्माजीने कहा है। सम्पूर्ण शुभ कामनाओंको प्रदान करनेवाला, सबका मनोरथ पूर्ण करनेवाला निम्न स्तोत्र वेदोंमें गोप्य है—

एवं मोक्षप्रदा भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। मूल-प्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेवाली भगवती सिद्धाको नमस्कार है। माया, सिद्धयोगिनी, सारा, शारदा और परादेवी नामसे शोभा पानेवाली भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। बालकोंकी अधिष्ठात्री, कल्याण प्रदान करनेवाली, कल्याणस्वरूपिणी एवं कर्मोंके फल प्रदान करनेवाली देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। अपने भक्तोंको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाली तथा सबके लिये सम्पूर्ण कार्योंमें पूजा प्राप्त करनेकी अधिकारिणी स्वामी कार्तिकेयकी प्राणप्रिया देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। मनुष्य जिनकी सदा वन्दना करते हैं तथा देवताओंकी रक्षामें जो तत्पर रहती हैं, उन शुद्ध सत्त्वस्वरूपा देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। हिंसा और क्रोधसे रहित भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। सुरेश्वरि ! तुम मुझे धन दो, प्रिया पत्नी दो और पुत्र देनेकी कृपा करो। महेश्वरि ! तुम मुझे सम्मान दो, विजय दो और मेरे शत्रुओंका संहार कर डालो। धन और यश प्रदान करनेवाली भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। सुपूजिते ! तुम भूमि दो, प्रजा दो, विद्या दो तथा कल्याण एवं ज[य] प्रदान करो। तुम षष्ठीदेवीको मेरा बार-बार नमस्कार है।'

इस प्रकार स्तुति करनेके पश्चात् महाराज प्रियव्रत[ने] षष्ठीदेवीके प्रभावसे यशस्वी पुत्र प्राप्त कर लिया। जो पुरु[ष] भगवती षष्ठीके इस स्तोत्रको एक वर्षतक श्रवण करता है[,] वह यदि अपुत्री हो तो दीर्घजीवी सुन्दर पुत्र प्राप्त कर लेत[ा] है। जो एक वर्षतक भक्तिपूर्वक देवीकी पूजा करके इनक[ा] यह स्तोत्र सुनता है, उसके सम्पूर्ण पाप विलीन हो जा[ते] हैं। महान् वन्ध्या भी इसके प्रसादसे संतान प्रसव करनेक[ी] योग्यता प्राप्त कर लेती है। वह भगवती देवसेनाकी कृपा[से] गुणी, विद्वान्, यशस्वी, दीर्घायु एवं श्रेष्ठ पुत्रकी जननी होत[ी] है। काकवन्ध्या अथवा मृतवत्सा नारी एक वर्षतक इसक[ा] श्रवण करनेके फलस्वरूप भगवती षष्ठीके प्रभावसे पुत्रवत[ी] हो जाती है। यदि बालकको रोग हो जाय तो उसके माता[-] पिता एक मासतक इस स्तोत्रका श्रवण करें तो षष्ठीदेवीक[ी] कृपासे उस बालककी व्याधि शान्त हो जाती है। (ब्रह्मवै० प्रकृतिखण्ड, अध्याय ४३)

नागपञ्चमी-व्रत-माहात्म्य

एक बार महाराज युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णसे नागपञ्चमी-व्रतके विषयमें जिज्ञासा व्यक्त की, तब भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'युधिष्ठिर ! दयिता-पञ्चमी नागोंके आनन्दको बढ़ानेवाली होती है। श्रावणशुक्ला पञ्चमीमें नागोंका महान् उत्सव होता है। उस दिन वासुकि, तक्षक, कालिक, मणिभद्रक, धृतराष्ट्र, रैवत, कर्कोटक और धनञ्जय—ये सभी नाग प्राणियोंको अभय (दान) देते हैं। जो मनुष्य नागपञ्चमीके दिन नागोंको दूधसे स्नान कराते हैं, दूध पिलाते हैं, उनके कुलमें प्राणियोंको ये सदा अभयदान देते रहते हैं। जब नागमाता कद्रूने नागोंको शाप दे दिया, तब वे रात-दिन संतप्त हो रहे थे। जब उन्हें गायके दूधसे तृप्त किया गया तबसे वे प्रसन्न होकर प्रिय हो गये।'

युधिष्ठिरने पूछा—'जनार्दन ! माता कद्रूने नागोंको क्यों शाप दिया ? उस शापका निराकरण कैसे हुआ ?' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'अश्वोंका राजा उच्चैःश्रवा अमृतसे उत्पन्न हुआ था, वह श्वेत वर्णका था।' उसे देखकर नागमाता कद्रू[ने] अपनी बहन विनतासे कहा—'देखो, देखो अमृतसे उत्पन्न यह अश्वरत्न श्वेत है, पर आज इसके सभी श्वेत बाल काले दिखायी पड़ते हैं। तुम देखती हो या नहीं ?' विनत[ा] बोली—'इस श्रेष्ठ घोड़ेका सर्वाङ्ग श्वेत है, न काला है [न] लाल। कैसे तुम्हें काला दिखायी पड़ता है ?'

कद्रू बोली—'विनता ! मैं एक आँखवाली इसे काले बालोंवाला देखती हूँ, परंतु तू दो आँखोंवाली होकर भी नहीं देखती ? कुछ शर्त रखो।' विनताने कहा—'कद्रू ! यदि तुम इसके काले केश दिखा दोगी तो मैं तुम्हारी दासी हो जाऊँगी। यदि तुम काले केश नहीं दिखा पाओगी तो तुम मेरी दासी होगी'। इस प्रकार शर्त (प्रण) कर वे दोनों क्रुद्ध होकर चली गयीं। रात्रिमें सबके सो जानेपर कद्रूने कुटिलता सोची। उसने

* यह कथा देवीभागवतके नवें स्कन्धमें भी प्रायः इसी रूपमें प्राप्त होती है।

अपने पुत्रों—काले नागोंको बुलाकर कहा कि 'तुमलोग उच्चैःश्रवाके बाल बनकर उससे चिपक जाओ, जिससे मैं बाजी जीत जाऊँ—विनताको दासी बना लूँ।' तब उन नागोंने माताकी कुटिलतापर उसे फटकारा कि यह महान् पाप है। हम तुम्हारा कहा नहीं करेंगे। तब कद्रूने क्रुद्ध हो उन्हें शाप दे दिया—'जाओ, तुम्हें अग्नि जला देगी। बहुत दिनोंके बाद पाण्डववंशी राजा जनमेजय विकराल सर्पयज्ञ करेंगे। उस यज्ञमें प्रचण्ड पावक तुम्हें जला देगा।' ऐसा शाप देकर कद्रू चुप हो गयी।

माताके द्वारा शप्त सर्पोंको कुछ सूझा ही नहीं। वासुकि नाग दुःखसे संतप्त हो मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़ा। उसे दुःखी देख ब्रह्माजी सहसा वहाँ आ पहुँचे और सान्त्वना देते हुए बोले—'वासुकि! शोक मत करो। मेरी बात सुनो। यायावर-वंशमें जरत्कारु नामक द्विज उत्पन्न हुए हैं। आगे चलकर वे बड़े तेजस्वी तपोनिधि होंगे। उन्हें तुम अपनी बहन विवाह दो। उससे आस्तीक नामक विख्यात पुत्र होगा। वह नागोंके विनाशकारी उस नागयज्ञको राजाको समझा-बुझाकर रोक देगा।'

ब्रह्माजीकी बात सुनकर प्रसन्न वासुकिने वैसा ही किया। नागोंको इससे अभयदान मिला। वे इससे परम प्रसन्न हुए कि उनका वंशधर आस्तीक हम नागोंका विनाश रोक देगा। ब्रह्माजीने उनसे कहा—'आस्तीकद्वारा तुमलोगोंका यह भय-निवारण (श्रावण-शुक्ला) पञ्चमीको होगा।' इसलिये युधिष्ठिर! यह पञ्चमी शुभादयिता कही जाती है तथा नागोंको आनन्द देनेवाली है। इस तिथिको ब्राह्मणोंको भोजन कराकर नागोंकी इस प्रकार पूजा-प्रार्थना करनी चाहिये—'भूतलपर जो नाग हैं, वे प्रसन्न हों। जो नाग हिमालयपर रहते हैं, जो आकाशमें हैं, जो देवलोकमें हैं, जो नदियों-सरोवरोंमें हैं और जो बावली-तालाबोंमें हैं, उन सबको नमस्कार है।' ऐसा कहकर नागों और विप्रोंकी यथायोग्य पूजा कर उनका विसर्जन करे। तत्पश्चात् सेवकों और परिजनोंसहित स्वयं भोजन करे। पहले मधुर पदार्थ खायँ, पीछे अन्य भोज्य पदार्थ स्वेच्छया ग्रहण करे। इस प्रकार व्रत-नियम करनेवाला मरनेके बाद नागलोकको जाता है, वहाँ अप्सराएँ उसकी पूजा करती हैं और वह श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ हो अभीष्ट कालतक विहार करता है। वहाँसे पुनः इस भूतलपर जन्म लेनेपर वह राजाधिराज होता है। उसके पास सभी रत्नोंका भण्डार होता है, सवारियाँ होती हैं, सम्पत्ति होती है। वह पाँच जन्मोंतक निरन्तर राजा होता है। उस अवधिमें वह आधि-व्याधिसे मुक्त रहता है। पत्नी और पुत्र, उसके सहायक—अनुकूल होते हैं। इसलिये नागोंकी घी-दूध आदिसे सदा पूजा करनी चाहिये।

युधिष्ठिरने पुनः पूछा—'भगवन्! क्रुद्ध नाग जिस व्यक्तिको डँस लेते हैं, उसका क्या होता है?' भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'राजन्! नागके डँसनेसे मृत्युको प्राप्त व्यक्ति अधोलोकमें गिरता है। वहाँ वह विषहीन सर्प होता है।' युधिष्ठिरने पुनः पूछा—'साँपके काटनेसे जिसके पिता-माता, भाई-मित्र, पुत्र, बहन, कन्या या स्त्री—कोई भी सम्बन्धीजन मर जाते हैं, उनके उद्धारके लिये उसे क्या दान-व्रत-उपवास करना चाहिये, जिससे वे स्वर्गको प्राप्त हों।' भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'राजन्! उन्हें नागोंको प्रसन्न करनेवाली पञ्चमीका व्रत एक वर्षतक करना चाहिये। उसका विधान सुनिये—भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी अधिक पुण्य-कारक है। सद्‌गतिकी कामनासे उसे ग्रहण करना चाहिये। इस प्रकार एक वर्षमें बारह पञ्चमियाँ होती हैं। व्रतके पूर्व दिन चतुर्थीको रात्रिमें एक अन्न ग्रहण करना चाहिये। दूसरे दिन पञ्चमीको नागकी पूजा करनी चाहिये। सोने या चाँदी या लकड़ी अथवा मिट्टीका पाँच फनोंका नाग बनवाकर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उसकी पूजा करे। उन्हें करवीरके फूल, कमलके फूल, सुन्दर जाती-पुष्प, चन्दन, नैवेद्य आदि समर्पित कर पूजा करे। पूजाके पश्चात् ब्राह्मणको भोजन कराये। ब्राह्मण-भोजनमें घी-खीर-मोदककी प्रधानता होनी चाहिये। सर्पके काटनेसे मरे हुए प्राणीके लिये नारायण-बलि करे। दान और पिण्ड-दानमें ब्राह्मणोंको तृप्त करना चाहिये। एक वर्ष पूर्ण होनेपर वृषोत्सर्ग करना चाहिये। स्नानकर जलदान करे—'यहाँ श्रीकृष्ण प्रसन्न हों'—यह प्रार्थना करे। प्रत्येक मासमें अनन्त, वासुकि, शेष, पद्म, कम्बल, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालिय, तक्षक तथा पिङ्गल नामक महानागोंका नामोच्चारण करना चाहिये। वर्षकी समाप्तिपर पारणके समय ब्राह्मणोंको भोजन कराये। इतिहास-वेत्ता (विद्वान्) विप्रको स्वर्णका नाग तथा सवत्सा सीधी गौ, कांसेकी दोहनी (दुग्ध

दूहनेका पात्र) सहित देनी चाहिये।

विद्वानोंने यह पारणविधि बतायी है। इस श्रेष्ठ व्रतके करनेसे बान्धवोंको सद्‌गतिकी प्राप्ति होती है। सर्पादिके काटनेसे जिनकी अधोगति हो जाती है, उनके निमित्त यदि एक वर्षतक यह उत्तम व्रत भक्तिपूर्वक किया जाय तो वे जीव उस यातनासे मुक्त होकर शुभगतिको प्राप्त होते हैं। जो भक्तिपूर्वक नित्य इस आख्यानको पढ़ता या सुनता है, उसके कुटुम्बमें नागोंसे कोई भय नहीं होता। इसी प्रकार जो भाद्रपदशुक्ला पञ्चमीको काले रंगोंसे नागोंका चित्र बनाकर गन्ध-पुष्प-घी-गुग्गुल-खीर आदिसे भक्तिपूर्वक पूजा करता है, उसपर तक्षक आदि नाग प्रसन्न होते हैं। उसके सात कुल (पीढ़ी) तक नागोंसे भय नहीं रहता। इसी प्रकार आश्विनमासकी शुक्ला पञ्चमीको कुशके नाग बनाकर इन्द्राणीके साथ उनकी पूजा करे। घी-दूध और जलसे स्नान कराकर दूधमें पके गेहूँ तथा अन्य भोज्य पदार्थ उन्हें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक समर्पित करे तो शेष आदि नाग इसपर प्रसन्न होते हैं, उसे सुख-शान्ति प्राप्त होती है। मृत्युके बाद वह प्राणी उत्तम लोकको प्राप्त करता है, जहाँ चिरकालतक आनन्द भोगता है। यह पञ्चमीव्रतका विधान है। सर्पोंका सर्वदोष-निवारक मन्त्र यह है—'**ॐ कुरुकुल्ले हुं फट् स्वाहा।**' इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक सौ पञ्चमियोंको जो सर्पोंकी पूजा पुष्पोंसे करते हैं, उनके घरमें साँपोंका कभी भय नहीं होता। (भविष्यपु०) (शि०पू०पा०)

उत्तम पति प्राप्त करनेका साधनस्वरूप व्रत

एक बार स्वर्गकी अप्सराओंने देवर्षि नारदजीसे पूछा—'देवर्षे ! आप ब्रह्माजीके पुत्र हैं। हमें उत्तम पति पानेकी अभिलाषा है। भगवान् नारायण हमारे प्राणपति हो सकें, इसके लिये आप हमलोगोंको कोई व्रत बतानेकी कृपा करें।'

नारदजीने कहा—प्रायः सबके लिये कल्याणदायक नियम यह है कि प्रश्न करनेके पूर्व प्रश्नकर्ता विनयपूर्वक प्रणाम करे, पर तुमलोगोंने इस नियमका पालन नहीं किया, क्योंकि तुम्हें युवावस्थाका गर्व है। फिर भी तुमलोग देवाधिदेव भगवान् विष्णुके नामका कीर्तन करो और उनसे वर माँगो—'प्रभो ! आप हमारे स्वामी होनेकी कृपा करें।' इससे तुम्हारा सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होगा—इसमें कोई संशय नहीं है। साथ ही मैं एक व्रत भी बताता हूँ, जिसे करनेसे भगवान् श्रीहरि स्वयं वर देनेके लिये उद्यत हो जाते हैं। चैत्र और वैशाख मासके शुक्लपक्षमें जो द्वादशी तिथि है, उस दिन यह व्रत करना चाहिये। रातमें विधिवत् भगवान् श्रीहरिकी पूजा करे। बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि भगवान्‌की प्रतिमाके ऊपर लाल फूलोंसे एक मण्डल बनवाये; नृत्य, गीत एवं वाद्यके साथ रातमें जागरण करे तथा '**ॐ भवाय नमः**', '**ॐ अनङ्गाय नमः**','**ॐ कामाय नमः**', '**ॐ सुशास्त्राय नमः**', '**ॐ मन्मथाय नमः**' तथा '**ॐ हरये नमः**' कहकर क्रमशः भगवान्‌के सिर, कटि, भुजा, उदर एवं चरण आदिकी पूजा करे। फिर भगवान्‌को प्रणामकर रात्रि-जागरणकी विधि सम्पन्न करके प्रातःकाल भगवान्‌की वह प्रतिमा वेद-वेदाङ्गके जानकार ब्राह्मणको दान कर दे।

अप्सराओ ! इस प्रकार व्रत करनेपर इच्छानुकूल भगवान् विष्णु अवश्य पतिरूपमें तुम्हें प्राप्त होंगे। इसके पश्चात् ईखके पवित्र रस तथा मल्लिका आदिके फूलोंसे उन देवेश्वरकी पूजा करना।'

इस प्रकार कहकर देवर्षि नारदजी उसी क्षण वहाँसे चले गये। उन अप्सराओंने व्रतकी विधि सम्पन्न की। फलस्वरूप स्वयं भगवान् श्रीहरि उनपर संतुष्ट होकर कृष्णावतारमें उनके पति हुए।

मूर्ति भगव

उपपुराण और उनके रोचक आख्यान

[अष्टादश महापुराणोंकी भाँति उपपुराण भी भारतकी अमूल्य निधि हैं। सामान्यतः कुछ लोगोंको उपपुराण शब्दमें लघुता या हीनताका बोध होने लगता है, परंतु वास्तवमें उपकार, उपासना, उपदेश, उपहार, उपनयन, उपक्रम, उपस्थान आदिके समान उपपुराणमें भी 'उप' श्रेष्ठताका ही बोधक है। पुराणोंकी तरह उपपुराण भी भारतीय संस्कृतिके मान्य ग्रन्थ हैं। ये भी प्रायः पञ्चलक्षणोंसे समन्वित हैं तथा विशिष्ट देवता या तीर्थ-माहात्म्यसे सम्बन्धित होते हुए ज्ञान-विज्ञान, नीति, सदाचार तथा धर्म आदिकी श्रेष्ठ कथाओंसे परिपूर्ण हैं। इनमें सर्वत्र कर्म, ज्ञान और भगवद्भक्तिकी त्रिवेणी प्रवाहित होती है, जिसके स्वाध्यायसे मनुष्यका जीवन कृतार्थ हो जाता है। इनके रचयिता भी श्रीव्यासजी हैं। विभिन्न पुराणोंमें उपपुराणोंकी भी चर्चा प्राप्त होती है। उपपुराणोंकी संख्या तो प्रायः सभी पुराण अठारह मानते हैं, किंतु उनके मतानुसार उनके नामोंमें वैभिन्न्य होनेके कारण महापुराणोंके अतिरिक्त उपपुराणोंकी संख्या बहुत अधिक हो जाती है, जिसमें कुछके नाम यहाँ परिगणित किये जाते हैं—

१-अङ्गिरापुराण, २-आखेटकपुराण, ३-आत्मपुराण, ४-आदिपुराण, ५-आदित्यपुराण, ६-उशनःपुराण, ७-एकपादपुराण, ८-एकाम्रपुराण, ९-कपिलपुराण, १०-कल्किपुराण, ११-कालिकापुराण, १२-क्रियायोगसारपुराण, १३-गणेशपुराण, १४-गरुडपुराण, १५-जालंधरपुराण, १६-तत्त्वसारपुराण, १७-ताप्तीपुराण, १८-दत्त या दत्तात्रेय-पुराण १९-देवीपुराण, २०-दौर्वाससपुराण, २१-धर्मपुराण, २२-नन्दि या नन्दीश्वरपुराण, २३-नरसिंहपुराण, २४-नारदपुराण, २५-नीलमतपुराण, २६-परानन्दपुराण, २७-पराशरपुराण, २८-पाशुपतपुराण, २९-प्रभासपुराण, ३०-बृहद्धर्मपुराण, ३१-बृहद्धर्मोत्तरपुराण, ३२-बृहन्नन्दीश्वरपुराण, ३३-बृहन्नरसिंहपुराण, ३४-बृहन्नारदीयपुराण, ३५-भविष्योत्तरपुराण, ३६-(देवी) भागवतपुराण, ३७-भार्गवपुराण, ३८-मरीचिपुराण, ३९-महाभागवतपुराण, ४०-मानवपुराण, ४१-माहेश्वरपुराण, ४२-मुद्गलपुराण, ४३-रेणुकापुराण, ४४-लघुनारदपुराण, ४५-लीलावतीपुराण, ४६-वसिष्ठपुराण, ४७-वह्निपुराण, ४८-वायु या वायवीयपुराण, ४९-वारुणपुराण, ५०-वासुकिपुराण, ५१-विष्णुधर्म-पुराण, ५२-(श्री) विष्णुधर्मोत्तरपुराण, ५३-विष्णुरहस्यपुराण, ५४-शिवपुराण, ५५-शिवधर्मोत्तरपुराण, ५६-सनत्कुमारपुराण, ५७-साम्बपुराण, ५८-सौरपुराण, ५९-स्कन्दपुराण, ६०-हंसपुराण और ६१-हरिवंशपुराण। स्थानाभावके कारण इनमेंसे कुछ ही उपपुराणोंके आख्यान यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।—सम्पादक]

गणेशपुराण

वेदादि शास्त्रोंमें जिन सर्वात्मा, अनादि, अनन्त, अखण्ड ज्ञानसम्पन्न, पूर्णतम परमात्मा और उनके पञ्चदेवात्मक स्वरूपका वर्णन किया गया है, उसके अनुसार परब्रह्म परमेश्वर गणेश भगवान्‌का विशद विवेचन गणेशपुराणमें उपलब्ध होता है। पुराणवाङ्मयमें इस पुराणका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसे उपपुराणोंकी कोटिमें परिगणित किया गया है। गणेशपुराणके अनुसार गणेश प्रणव-रूपमें अवस्थित हैं। समस्त देवता, मुनिगण आदि उन्हींका स्मरण करते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव उन्हींकी पूजा करते हैं। वे सर्वकारण-कारण प्रभु ही समस्त जगत्‌के हेतु हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव उन्हींके आज्ञानुसार सृष्टि, पालन तथा संहारके कार्यमें प्रवृत्त होते हैं। उन्हींके आदेशसे सूर्यदेव चलते हैं, वायु बहती है, पृथ्वीपर वृष्टि होती है और अग्नि प्रज्वलित होती है। अमित महिमामय प्रभु मङ्गलमय हैं, करुणामय हैं।

गणेशपुराण दो खण्डोंमें विभक्त है। प्रथम पूर्वार्ध (उपासना-खण्ड) और द्वितीय उत्तरार्ध (क्रीडाखण्ड)। प्रथममें ९२ अध्याय और ४०९३ श्लोक हैं, द्वितीयमें १५५ अध्याय और ६९८६ श्लोक हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण गणेशपुराण २४७ अध्यायों तथा ११०७९ श्लोकोंमें वर्णित है। भगवान् गणेशका स्वरूप, गणेश-तत्त्व, गणेश-महिमा, गणेश-मन्त्रमाहात्म्य और उनकी माधुरी लीलाकी कथा ही मुख्य रूपसे इस पुराणमें वर्णित है। इसमें आद्यन्त सत्त्वकी प्रतिष्ठा तथा तमका विरोध प्रतिपादित किया गया है। आसुरी प्रवृत्तियोंके विनाश एवं दैवी सम्पदाओंकी स्थापना एवं वृद्धिके लिये ही गजमुख गणेश भगवान्‌की अवतारणा होती है।

सूतजीने नैमिषारण्यमें अठारह महापुराणोंको शौनकादि ऋषियोंको सुनाया, किंतु जब वे तृप्त नहीं हुए, तब उन्हें गणेशपुराण सुनाकर तृप्त किया। महर्षि मुद्‌गलजीने दुःखी दक्ष प्रजापतिको इस पुराणको सुनाकर उनका उद्धार किया और पुनः महामुनि भृगुजीने देवनगर-नरेश सोमकान्तको उनके लौकिक एवं पारलौकिक अभ्युदय एवं कल्याणके लिये यह पुराण-श्रवण कराया, जिसके श्रवण-प्रभावसे वे रोगमुक्त एवं परम पवित्र हो गये और अन्तमें सपरिकर गणेशधामको प्राप्त हुए।

गणेशपुराणके पूर्वार्धमें मुख्यरूपसे गणेशजीको परात्पर परमेश्वर सच्चिदानन्दघन परब्रह्मके रूपमें चित्रित किया गया है। उनका मङ्गलमय विग्रह समस्त विघ्नोंका विनाश करनेवाला है। सृष्टि-रचनामें पितामह ब्रह्माके सहयोगका वर्णन, गृत्समद, रुक्माङ्गद एवं त्रिपुरासुरकी कथा, गणेशसहस्रनाम, गणेश-पार्थिव-पूजन, पुत्र-प्राप्त्यर्थ संकष्टहर-चतुर्थी आदि गणेशव्रत, चन्द्रमाको शाप-प्रदान, दूर्वा-माहात्म्य, तारकासुर-वध, काम-दहन, परशुरामको दर्शन, स्कन्दोत्पत्ति, गजवक्त्रमाहात्म्य आदि इस खण्डके प्रमुख विषय हैं।

द्वितीय क्रीडाखण्डमें देवाधिदेव गजमुखी गणेशजीके अवतारकी विस्तारपूर्वक चर्चा है। वे चारों युगोंमें विभिन्न रूपोंमें अवतरित होकर भक्तोंका उद्धार कर विचित्र लीला दिखाते हैं। सत्ययुगमें गणेशजीका प्रथम अवतार महोत्कट विनायकके रूपमें देवमाता अदितिके यहाँ हुआ और उन्होंने देवान्तक तथा नरान्तकादि असुरोंका संहार किया। महोत्कट विनायकका स्वरूप दशभुज तथा सिंहवाहनके रूपमें बताया गया है। त्रेतामें ये शिव-पार्वतीके पुत्रके रूपमें अवतरित हुए। द्वापरमें ये सिन्दूर नामक दैत्यके क्रूर पाशविक कर्मोंके विनाशके लिये देवी गौरीके यहाँ प्रकट हुए, इनका वाहन मूषक था तथा ये गजानन नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए। महर्षि पराशर तथा उनकी सती धर्मपत्नी वत्सलाने इनका पालन किया। दुष्ट असुर सिन्दूरका वध कर इन्होंने त्रैलोक्यकी भयानक विपत्ति दूर की। इस जन्ममें ये वरेण्य तथा उनकी धर्मपत्नी पुष्पिकाके पुत्रके रूपमें जाने गये। इन्होंने अपने पिता वरेण्यजीको जो उपदेश दिया, वह गणेशगीताके नामसे प्रसिद्ध है।

कलियुगके अन्तमें ये श्यामवर्णके होकर धूम्रकेतुके रूपमें अवतरित होंगे। द्विभुज धूम्रकेतुका वाहन घोड़ा होगा। वे कलिका विनाश कर पुनः सत्ययुगकी स्थापना करेंगे।

संक्षिप्त रूपसे यही गणेशपुराणका प्रतिपाद्य विषय है। बीच-बीचमें धर्म, सदाचार आदिकी भी अनेक बातें आयी हैं। गणेश-उपासनाके लिये यह सर्वोत्तम ग्रन्थ-रत्न है।

कथा-आख्यान—

सच्ची निष्ठाका फल

प्राचीन कालकी बात है। सिन्धु देशकी पल्लीनगरीमें कल्याण नामका एक धनी सेठ रहता था। उसकी पत्नीका नाम इन्दुमती था। विवाह होनेके बहुत दिनोंके पश्चात् उनके पुत्र हुआ। उसके जन्मोत्सवमें उन लोगोंने अनेक दान-पुण्य किये, राग-रंग और आमोद-प्रमोदमें पर्याप्त धन व्यय किया। उस पुत्रका नाम रखा गया 'बल्लाल', वह उन दोनोंके नयनोंका तारा था।

× × ×

'कितना मनोरम वन है।' सरोवरमें अपने समवयस्क बालकोंके साथ स्नान करते हुए बल्लालने अपने कथनका समर्थन कराना चाहा। वह उन्हें नित्य अपने साथ लेकर पल्लीसे थोड़ी दूर स्थित वनमें आकर सैर-सपाटा किया करता

था। बालकोंने उसकी हाँ-में-हाँ मिलायी।

'चलो, हमलोग भगवान् विघ्नेश्वर श्रीगणेश देवताकी पूजा करें, उनकी कृपासे समस्त संकट मिट जाते हैं।' बल्लालने सरोवरके किनारे एक छोटे-से पत्थरको श्रीगणेशका श्रीविग्रह मानकर बालकोंको पूजा करनेकी प्रेरणा दी। उसने श्रीगणेश-महिमाके सम्बन्धमें अनेक बातें घरपर सुनी थीं।

लता-पत्र एकत्र कर बालकोंने एक मण्डप बना लिया, उसमें तथाकथित श्रीगणेश-विग्रहकी स्थापना करके मानसिक पूजा—फूल, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, ताम्बूल, दक्षिणा आदिसे आरम्भ की। उनमेंसे कई एक पण्डितोंका स्वाँग बनाकर पुराणों और शास्त्रोंकी चर्चा करने लगे। इस प्रकार श्रीगणेशकी उपासनामें उनका मन लग गया। वे दोपहरको भोजन करने घर नहीं आते थे, इसलिये दुबले हो गये। उनके पिताओंने कल्याण सेठसे कहा कि यदि बल्लालका वनमें जाना नहीं रोक दिया जायगा तो हमलोग राजासे शिकायत करके आपको पल्लीनगरीसे बाहर निकलवा देंगे। कल्याणका मन चिन्तित हो उठा।

× × ×

'ये तो नकली गणेश हैं, बच्चो! असली गणेश तो हृदयमें रहते हैं।' कल्याणने डंडेसे बल्लालको सावधान किया।

'पिताजी! आप जो कुछ भी कह रहे हैं, वह आपकी दृष्टिमें नितान्त सत्य है, पर मेरी निष्ठा तो श्रीगणेशके इसी श्रीविग्रहमें है। मैं पूजा नहीं छोड़ सकता।' बल्लालका इतना कहना था कि सेठने उसे मारना आरम्भ किया; अन्य बालक भाग निकले। सेठने मण्डप तोड़ डाला और बल्लालको एक मोटे रस्सेसे पेड़के तनेमें बाँध दिया।

'यदि इस विग्रहमें श्रीगणेश होंगे तो तुम्हारा बन्धन खुल जायगा। इस निर्जन वनमें वे ही तुम्हारी रक्षा करेंगे।' ऐसा कहकर कल्याणने घरका रास्ता लिया।

'निस्संदेह श्रीगणेश ही मेरे माता-पिता हैं। वे दयामय ही मेरी रक्षा करेंगे। वे विघ्न-विदारक, सिद्धि-दायक, सर्वसमर्थ हैं। मैं उनकी शरणमें अभय हूँ।' बल्लालकी निष्ठा बोल उठी। वह हृदयमें करुणाका वेग समेटकर निर्निमेष नेत्रोंसे श्रीगणेशके विग्रहको देखने लगा।

'मेरा तन भले ही बाँधा जाय, पर मेरा मन स्वतन्त्र है। मैं अपना प्राण श्रीगणेशके चरणोंमें अर्पित करूँगा।' बल्लालके इस निश्चयसे भगवान् श्रीगणेश उस पाषाणसे प्रकट हो गये।

'तुम्हारी निष्ठा धन्य है वत्स!' श्रीगणेशने उसका आलिङ्गन किया। वह बन्धनमुक्त हो गया। उसने अपने आराध्यकी खुलकर स्तुति की। श्रीगणेशने उसे अभय दान दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये। (गणेशपुराण, अ० २२)

नृपश्रेष्ठ वरेण्यपर भगवान् गजाननकी कृपा

प्राचीन कालमें माहिष्मती नामकी एक श्रेष्ठ नगरी थी, जो नृपश्रेष्ठ वरेण्यकी राजधानी थी। महाराजा वरेण्य परम धर्मपरायण थे। ऐसा लगता था मानो मूर्तिमान् धर्मने ही उनके रूपमें अवतार ग्रहण किया हो। वे बड़ी तत्परतासे प्रजाका पालन करते थे। उन्हींकी भाँति उनकी पत्नी महारानी पुष्पिका भी परम गुणवती, पतिव्रता एवं सदाचारिणी थी। पूर्वजन्ममें ये दम्पति भगवान् गणेशके परम भक्त थे। दोनोंने बारह वर्षतक गणपतिकी आराधना करके उनका परम अनुग्रह प्राप्त किया था। भगवान् गणेशने उन्हें अनुग्रहपूर्वक वरदान दिया था कि 'तुमलोगोंके भावी जन्ममें मैं तुम्हारा पुत्र बनूँगा।'

× × ×

इन्द्रप्रभृति देवगण दैत्य सिन्दूरासुरके अत्याचारसे भयाक्रान्त थे, अतः वे सुरगुरु बृहस्पतिकी आज्ञासे भगवान् गणेशसे कृपा-याचना करने लगे—

सिन्दूरो निर्मितः केन विश्वसंहारकारकः।
तेनार्तिप्रापितं विश्वं त्वयि स्वामिनि जाग्रति॥
अन्यं कं शरणं यामः कोऽनुपास्यति नोऽखिलान्।
जह्येनं दुष्टबुद्धिं त्वमवतीर्य शिवालये॥

(गणेशपुराण २। १२९। १८-१९)

'जगत्‌का संहार करनेवाले इस सिन्दूरासुरका निर्माण किसने किया है? आप-जैसे स्वामीके जागरूक रहते हुए उस असुरने सम्पूर्ण विश्वको संकटमें डाल दिया है। इस दशामें हम आपको छोड़कर और किसकी शरणमें जायँ? कौन हम सबका पालन करेगा? अतः आप ही भगवान् शिवके घरमें

अवतीर्ण होकर इस दुष्टबुद्धि असुरका संहार कीजिये।'

देवताओं एवं ऋषियोंके इस प्रकार स्तुति एवं आराधना करनेसे कृपालु भगवान् गणेश प्रसन्न हो गये और उन्होंने सबको अभय करनेका आश्वासन दिया।

भगवती जगदम्बा पार्वतीके गर्भसे भगवान् गणेशने चतुर्बाहु-रक्तवर्ण-गजाननके रूपमें इस पृथ्वीपर अवतार लिया। करुणानिधान गजानन नृपश्रेष्ठ वरेण्यको दिये हुए वचन भूले न थे। उनकी योगमाया-शक्तिने सब योजना पूर्ववत् बना रखी थी। भगवान् गजाननके प्राकट्यके समय ही महारानी पुष्पिकाने एक बालकको जन्म दिया था। प्रसवके समय वह मूर्च्छित हो गयी और उस बालकको एक क्रूर राक्षसी उठा ले गयी। ठीक उसी समय शिवगण नन्दीने भगवान् बाल गजाननको मूर्च्छिता रानी पुष्पिकाके पास पहुँचा दिया। भगवान् गजाननके माता-पिता गौरी-शंकरको अपने पुत्रके वरदान देनेकी जानकारी थी ही, अतः अपने बालकको सुरक्षितरूपसे रानी पुष्पिकाके पास पहुँचना उनके लिये आनन्दका विषय ही था।

रानी पुष्पिकाकी मूर्च्छा टूटनेपर उसने अपने अद्भुत बालकको देखा। उस गजमुख-चतुर्बाहु-रक्तवर्ण बालकके सभी चिह्नोंने माताको चकित ही नहीं, अपितु भयभीत भी कर दिया। भयवश रानी रोने लगी। रानीका रुदन सुनते ही परिचारिकाएँ आदि एकत्र हो गयीं। भगवान्‌की मायाशक्तिने वहाँ एकत्रित सभी लोगोंपर मायाका पर्दा डाल दिया, जिससे परात्पर परब्रह्म भगवान् गजाननको कोई पहचान न सका। सभीने कहा—'ऐसा बालक होना बड़ा अशुभ है।' राजा वरेण्यके पास भी तुरंत यह सूचना गयी और वरेण्यपर भी मायाका पर्दा पड़ गया। राजाने अशुभकी आशङ्कासे उस बालकको निर्जन वनमें फेंकवा दिया। वहाँ भगवान् गजाननकी कृपाशक्तिने महर्षि पराशरपर कृपा की, जिसके प्रभावसे उन्होंने निर्जन वनमें पड़े परात्पर परब्रह्म बालक गजाननको उनके शुभ चिह्नोंसे पहचान लिया। अपने ऊपर विलक्षण भगवत्कृपाका अनुभव करते हुए महर्षि उस बालकको अपने आश्रममें ले आये और उसे अपनी पत्नी वत्सलाको सौंप दिया। महर्षिपत्नी वत्सलाके आनन्दका पार न था। वह मातृ-स्नेहसे शिशुके पालनमें लग गयी। साक्षात् भगवान्‌के निवाससे महर्षिके आश्रमकी शोभा निराली हो गयी। सभी वृक्ष नवपल्लव, फल, पुष्पादिसे सुशोभित हो गये।

बालरूप भगवान् गणेशने अनेक प्रकारकी बाल-लीलाएँ करते हुए नवें वर्षमें प्रवेश किया। परम अनुग्रहमूर्ति भगवान् गजानन देवताओंकी प्रार्थनाको भूले न थे। उन्हें दैत्यराज सिन्दूरासुरका उद्धार करके देवताओं एवं ऋषि-मुनियोंको भय-मुक्त करना था। अतः उन्होंने अपना शौर्यरूप प्रकट करके सिन्दूरवाड़में जाकर दैत्यराज सिन्दूरका वध किया, जिससे इन्द्रादि देवताओंके हर्षकी सीमा न रही। भगवान् गजाननकी इस अद्भुत कृपाका स्मरण कर स्वाभाविक ही उनके मुखसे ये वचन निकल पड़े—

नानावतारैः कुरुषे पालनं त्वं विशेषतः।
दुष्टानां नाशनं सद्यो भक्तानां कामपूरकः॥

(गणेशपु० २।१३७।३५)

'भगवन्! आप नाना प्रकारके अवतार लेकर विशेषरूपसे जगत्‌का पालन करते हैं एवं दुष्टोंका विनाश करके भक्तोंकी कामनाओंको तत्काल पूर्ण करते हैं।'

राजा वरेण्यसे भी अपने बालक गजाननकी लीलाएँ छिपी न रहीं। अपने बालकका महर्षि पराशरद्वारा पालन-पोषण एवं सिन्दूर-उद्धार आदि सभी कृपामयी लीलाएँ सुनकर राजा वरेण्य हर्ष एवं पश्चात्तापके सागरमें गोते लगा रहे थे। अन्तमें भगवान् गजाननकी कृपासे मायाका परदा हटते ही उन्होंने बालकको पहचान लिया। फिर तो वे शीघ्रतापूर्वक भगवान् गजाननके पास पहुँचकर अत्यन्त दीन-भावसे प्रार्थना करने लगे—'प्रभो! मैं अज्ञानी आपकी कृपाको समझ न सका। भला, मेरे-जैसा अज्ञानी पुरुष आपके स्वरूपको कैसे पहचान पाता। कृपानिधान! आप मुझे क्षमा करें। मायासे मोहित होकर मैंने महान् अनर्थ कर डाला।'

करुणामूर्ति गजानन पिता वरेण्यकी प्रार्थना सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने राजाको कृपापूर्वक अपने पूर्वजन्मके वरदानका स्मरण कराया।

× × ×

भगवान् गजाननने पिता वरेण्यसे अपने स्वधाम-यात्राकी आज्ञा माँगी। स्वधाम-गमनकी बात सुनकर राजा व्याकुल हो उठे और अश्रुपूर्ण नेत्र एवं अत्यन्त दीनतासे प्रार्थना

करते हुए बोले—'कृपामय ! मेरा अज्ञान दूरकर मुझे मुक्तिका मार्ग प्रदान करें।'

राजा वरेण्यकी दीनतासे प्रसन्न होकर भगवान् गजाननने कृपावश उन्हें सुविस्तृत ज्ञानोपदेश प्रदान किया। यही अमृतोपदेश 'गणेश-गीता'के नामसे विश्वमें प्रसिद्ध है। भगवान् श्रीकृष्ण-प्रदत्त 'श्रीमद्भगवद्गीता' और 'गणेशगीता'के उपदेशोंमें पर्याप्त समानता मिलती है। 'गणेशगीता' कुछ संक्षिप्त है। (ह०कृ०दु०)
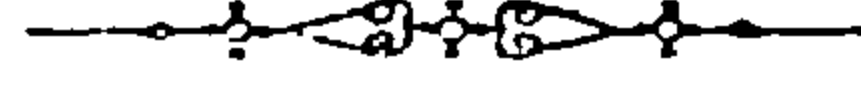
नरसिंहपुराण

भक्त प्रह्लादपर भगवान् नरसिंहका अनुग्रह

करते हुए बोले—'कृपामय ! मेरा अज्ञान दूरकर मुझे मुक्तिका मार्ग प्रदान करें।'

राजा वरेण्यकी दीनतासे प्रसन्न होकर भगवान् गजाननने ृपावश उन्हें सुविस्तृत ज्ञानोपदेश प्रदान किया। यही अमृतोपदेश 'गणेश-गीता'के नामसे विश्वमें प्रसिद्ध है। भगवान् श्रीकृष्ण-प्रदत्त 'श्रीमद्भगवद्गीता' और 'गणेशगीता'के उपदेशोंमें पर्याप्त समानता मिलती है। 'गणेशगीता' कुछ संक्षिप्त है।

(ह०कृ०दु०)
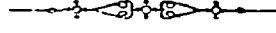
नरसिंहपुराण

भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासदेवद्वारा रचित नृसिंहोपासनापरक नरसिंहपुराण ग्रन्थ बड़ा ही मनोरम है। श्रीरामचरितमानसकी ही भाँति माघ-मासमें सूर्यके मकरस्थ होनेपर तीर्थराज प्रयागमें ही श्रीभरद्वाजमुनिने इसे सूतजीसे सुननेकी इच्छा व्यक्त की और सूतजीने मार्कण्डेय-सहस्रानीक-संवादके रूपमें उन्हें इसे श्रवण कराया। यह आकारमें बहुत छोटा है। छाछठ तथा किन्हीं-किन्हीं प्रतियोंमें सड़सठ या अड़सठ अध्याय तथा कुल ३५३० श्लोकमात्र हैं। साथ ही इसकी गणना भी उपपुराणोंमें है, फिर भी यह सभी प्रकारसे अत्यन्त आकर्षक, सुन्दर, धार्मिक, सदाचारपूर्ण सदुपदेशोंसे सुसज्जित तथा भगवद्भक्ति एवं ज्ञान-विज्ञानादिसे ओत-प्रोत है।

इसमें भगवान् विष्णुके दशावतारकी कथाएँ विस्तारसे कही गयी हैं। उनमें भी भगवान् रामकी या रामायणके सातों काण्डोंकी कथा अलग-अलग सात बहुत बड़े-बड़े अध्यायोंमें कही गयी है। इसके अतिरिक्त इसमें सदाचार—सज्जनोंके आचार-व्यवहारपर भी, जिसपर यह सारा विश्व टिका रहता है और जिसके नष्ट होते ही यह नष्ट होने लगता है, पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। साथ ही वर्णधर्म, आश्रमधर्म, तीर्थाटन, योगसाधना आदिपर स्थान-स्थानपर आवश्यक निर्देश हैं। भक्तिवर्धक मनोरम हृदयहारी श्लोकोंकी छटा तो देखते ही बनती है। फिर ८वें अध्यायकी यमगीता, ९वें अध्यायका यमाष्टक, ११ (अशुद्ध प्रतिमें १२) वें अध्यायकी मार्कण्डेयकृत विष्णुस्तुति, १९वें अध्यायका सूर्याष्टोत्तरशतनाम[१], २५वें अध्यायका गणपतिस्तोत्र, ४०वें अध्यायका विष्णु-अष्टोत्तरशतनाम तथा अन्य भी कई स्तुतियाँ बड़ी सुन्दर हैं। इसी प्रकार १२वें अध्यायका यम-यमी-संवाद, ६०वें अध्यायका पुरन्दरोपाख्यान और ६४वें अध्यायका पुण्डरीकोपाख्यान आदिकी कथाएँ बड़ी ही मनोरम और शिक्षाप्रद हैं। पुण्डरीकोपाख्यान तो प्रत्येक कल्याणेप्सुके लिये निरन्तर मननकी वस्तु है तथा इसमें ज्ञान-विज्ञान-भक्ति-सहित कर्तव्यतानिर्णयपर बड़ा ही सुन्दर प्रकाश डाला गया है। अन्यान्य पुराणोंकी तरह इसमें भौगोलिक वर्णन, काश्यपीय प्रजासर्ग तथा सूर्य-चन्द्रादिसे उत्पन्न राजवंशोंका वर्णन भी सुन्दर है। इसके अतिरिक्त सामान्यनीति, व्यावहारिकनीति, राजनीति, धर्मनीति आदिपर भी इसमें न्यूनाधिक सामग्री प्राप्त है।

भारतके द्वादशारण्य परम प्रसिद्ध हैं। नरसिंहपुराणके प्रारम्भमें ही १। ३-७ श्लोकोंमें इन द्वादश अरण्योंकी गणना इस प्रकार की गयी है—१-नैमिषारण्य, २-अर्बुदारण्य (आबूपर्वत), ३-विन्ध्यारण्य, ४-दण्डकारण्य, ५-महेन्द्रारण्य, ६-श्रीशैल (तिरुमलै), ७-कुरुजाङ्गल (पूर्वी पंजाबके अन्तर्गत कुरुक्षेत्र-करनाल), ८-हिमारण्य (हिमालय), ९-पम्पारण्य (हाम्पी), १०-धर्मारण्य (सिद्धपुर-गुजरात), ११-कौमारारण्य और १२-पुष्करारण्य (राजस्थान)। द्वादशारण्यके ही समान इस ग्रन्थमें ञ्जसरोवर तथा अनेकानेक ऋषि-आश्रमोंका भी वर्णन हुआ है। ग्रन्थके अन्तमें ६५वें अध्यायमें अयोध्या, ऋषभ, कुब्जाश्रम, रुक्षेत्र तथा गन्धमादन आदि ६८ मुख्य तीर्थोंका भी परिगणन किया गया है।

१-सूर्याष्टोत्तरशतनाम—महाभारत, वनपर्व ३। १५-२७, ब्रह्मपुराण ३३। ३३ । ४५, स्कन्दपुराण, काशी० ४४। १-१३, कुमारिका खं० अ० तथा हरिवंशादि अनेक अन्य स्थलोंमें भी प्राप्त है।

सदाचारकी महत्ता—नरसिंहपुराणके कश्यपाख्यान तथा अन्य सभी पुराणोंके तीर्थोपोद्घातसे सुस्पष्ट प्रतीत होता है कि विनय, शील तथा सदाचारके बिना तप-तीर्थादि व्यर्थ हैं। कारण, अर्थ-कामपरायण व्यक्ति स्वार्थके लिये पाप तथा हत्या करनेके लिये उतारू हो जाता है, जो जघन्य कृत्य है। इसलिये कश्यपाख्यानमें माता-पिता, गुरु, ईश्वरकी सेवा तथा सदाचारको तप-तीर्थसे भी श्रेष्ठ बतलाया है। अतः सदाचारपर नरसिंहपुराणके ५७से ६२ तकके अध्याय, जो बड़े महत्त्वके हैं, बार-बार मनन करने योग्य हैं।

नृसिंहोपाख्यानकी विशेषता—वास्तवमें सभी श्रेष्ठ आचारोंका भी हेतु तथा परम श्रेष्ठाचार भगवान् श्रीहरिकी उपासना है। इस पुराणमें श्रीहरिकी उपासनापर पूरा प्रकाश डाला गया है। इस पुराणके श्रवणसे भगवान् श्रीहरि प्रसन्न होते हैं। यद्यपि नृसिंहोपासनापर वेदोंके अतिरिक्त नृसिंहतापिनी उपनिषद् (पूर्व एवं उत्तर), वायुपुराणके माघमाहात्म्यका कुछ अंश, भागवतका सातवाँ स्कन्ध तथा नरसिंहचर्या, नरसिंहकल्प, नरसिंहपारिजात, नृसिंहकवच, नृसिंहभुजङ्गप्रयात, नृसिंहपञ्जरस्तोत्र, नृसिंहपञ्चरत्नमाला, नृसिंहपटल, पद्धति, कवच, खिलभागका लक्ष्मी-नृसिंहसहस्रनामस्तोत्र आदि पञ्चाङ्ग तथा नृसिंहचिन्तामणि, बीजाक्षर मन्त्रादि अनेक स्तोत्र-यन्त्र-तन्त्र प्रसिद्ध हैं तथापि चरित्रात्मक स्वतन्त्र ग्रन्थ होनेसे यह सम्प्रदाय-मन्दिरोंमें विशेष आदरणीय है।

कथा-आख्यान—

नृसिंहावतार-कथा[१]

सत्ययुगकी कथा है—महर्षि कश्यपकी पत्नी दितिके दो पुत्र उत्पन्न हुए—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष। जब वराह भगवान्ने हिरण्याक्षका वध कर डाला, तब भाईके वधसे संतप्त हो हिरण्यकशिपु क्रोधसे आगबबूला हो गया। श्रीविष्णुके प्रति द्वेषकी भावनासे उसका चित्त अत्यन्त उद्विग्न रहने लगा। वह प्रतिक्षण यही सोचा करता था कि 'किस प्रकार मैं अपने भाईके वधका बदला चुकाऊँ।' वह श्रीहरिके पराक्रमको समझता था, इसलिये उसने तपस्याद्वारा अमरत्व प्राप्त करनेका विचार किया। फिर तो वह दैत्यों और दानवोंको पृथ्वीपर अत्याचार करनेकी आज्ञा देकर तपस्या करनेके लिये महेन्द्राचलपर चला गया।

इन्द्रादि देवताओंको जब ज्ञात हुआ कि हिरण्यकशिपु तपस्याके लिये चला गया है, तब उन्होंने अच्छा अवसर देखकर तुरंत वहाँ आ पहुँचे और इन्द्रादि देवोंसे बोले—'इन्द्र! तुम यह क्या कर रहे हो? क्या तुम्हें नहीं ज्ञात है कि इसके गर्भमें भगवान्का एक महान् भक्त पल रहा है, उसका नाम है परम भागवत भक्तरत्न प्रह्लाद।' नारदजीकी बात सुनकर देवता बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि आज बड़े अनर्थसे बच गये।

तब इन्द्रने कयाधूको छोड़ दिया और वे श्रीहरिका स्मरण करते हुए स्वर्गमें चले गये। देवर्षि नारद कयाधूको अपने आश्रममें ले आये और उसे अभयदान देकर वहीं तबतक रहनेके लिये कहा जबतक हिरण्यकशिपु तपस्यासे न लौटे। नारदजी समय-समयपर गर्भस्थ बालकको लक्ष्य करके कयाधूको तत्त्वज्ञानका उपदेश देते थे। भागवती कथा तथा भगवान्की लीलाओंको सोचती हुई कयाधू प्रसन्न और भाव-

तपस्या पूर्ण हो गयी है। ऐसी तपस्या आजतक न किसीने की है और न कोई कर सकेगा। अब तुम वर माँगो।' ऐसा कहकर उन्होंने उसपर कमण्डलुका जल छिड़का। जलके प्रभावसे तत्क्षण ही वह दिव्य रूपसे सम्पन्न हो गया और ब्रह्माजीसे प्रार्थनापूर्वक कहने लगा—'प्रभो ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे अमरताका वर प्रदान करें।' ब्रह्माजीने समझाया कि ऐसा सम्भव नहीं है। इस सृष्टिका यह नियम है कि जो जन्म लेता है, उसे मरना पड़ता है, अतः तुम कोई दूसरा वर माँगो। उसने कहा—'अच्छा, यदि आप अमर होनेका वर नहीं देते हैं तो मैं आपकी बनायी हुई सृष्टिके किसी भी प्राणीसे न मरूँ। बाहर-भीतर, जल-स्थल, अस्त्र-शस्त्र, दिन-रात, पृथ्वी-आकाश तथा देवता, ऋषि-मुनि, सिद्ध-साध्य, गन्धर्व, किन्नर, मनुष्य और दैत्य, राक्षस कोई भी मेरा वध न कर सके।' यह सुनकर ब्रह्माजी कुछ विचार करने लगे, फिर श्रीहरिका स्मरण आते ही 'तथास्तु' कहकर अन्तर्हित हो गये।

अवध्यत्वका वर पाकर प्रसन्न तथा मदोन्मत्त हिरण्यकशिपु अपनी राजधानी हिरण्यपुरीमें लौट आया। उसने देखा कि मेरे तपस्याकालमें देवताओंने मेरी राजधानीको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है और दैत्यगण पातालमें छिपे हुए हैं। उसने पुनः उद्योग करके सबको बुलाया और पूर्ववत् अपने साम्राज्यका विस्तार किया। देवताओंका वह अत्याचार देखकर उसकी क्रोधाग्नि भड़क उठी। तपोबल तथा वर तो उसे प्राप्त हो ही गया था। फिर क्या था, उसने तीनों लोकोंमें त्राहि-त्राहि मचा दी। उसने इन्द्रादि देवोंको पराजित कर वहाँ अपनी राजधानी बनायी। तब देवर्षि नारदके आश्रममें दिव्य उपदेशसे उपदिष्टा कयाधू उनके साथ राजमहलमें आयी। एक ओर तो हिरण्यकशिपुके अत्याचारोंसे सभी पीड़ित थे और दूसरी ओर उसीकी पत्नी कयाधूके गर्भसे एक परमभागवत दिव्य शिशुने जन्म लिया, जो प्रह्लादके नामसे विख्यात हुआ।

प्रह्लाद भाइयोंमें सबसे छोटे थे। हिरण्यकशिपु उनसे अधिक स्नेह करता था। उसने गुरु शुक्राचार्यके दो पुत्रों—शण्ड तथा अमर्क नामक आचार्योंको बुलाकर प्रह्लादको शिक्षा देनेके लिये उन्हें सौंपा। एक दिन हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको प्रेमपूर्वक गोदमें बैठाकर पूछा—'बेटा ! तुमने गुरुगृहमें क्या शिक्षा पायी है, बताओ तो ?' तब प्रह्लादने भगवान्‌की महिमाका वर्णन करते हुए उनके सर्वशक्तिमान् तथा सर्वत्र व्यापक होनेकी बात कही, जिसे सुनकर हिरण्यकशिपु आगबबूला हो गया। उसने प्रह्लादको गोदसे जमीनपर पटक दिया और सचेत करते हुए कहा कि 'फिर कभी उस वैरीका नाम न लेना, नहीं तो मैं तुम्हें मार डालूँगा।' किंतु हरिभक्तको किस बातका भय। प्रह्लाद न केवल स्वयं नारायण-नाम जपते रहते, अपितु अन्य असुरबालकोंको भी हरिनामका उपदेश देने लगे। हिरण्यकशिपुने प्रह्लादका वैसा चरित्र देखकर उन्हें बहुत फटकारा फिर भी न माननेपर उनके वधके लिये सभी उपाय किये। असुरोंको उन्हें मारनेका आदेश दिया, हाथियोंसे कुचलवाया, विषधर सर्पोंसे डँसवाया, पहाड़की चोटीसे गिराया, विष पिलाया, समुद्रमें डुबवाया आदि-आदि, क्या-क्या न किया, परंतु सब व्यर्थ ही रहा।

यह देखकर हिरण्यकशिपु अत्यन्त व्याकुल हो गया, उसके सभी उपाय निष्फल हो गये। एक दिन उसने प्रह्लादसे कहा—'रे दुष्ट ! बता तो सही, तू किसके बलपर मुझे ज्ञानकी बातें सिखाता है, तेरा वह ईश्वर कहाँ है ? आज देखता हूँ कि वह तेरी रक्षा कैसे करता है ?' ऐसा कहकर उसने राजदरबारके एक खम्भेसे प्रह्लादको कसकर बँधवा दिया और अन्तमें तलवार हाथमें लेकर कहने लगा—'बहुत सुन चुका तेरी बातें कि भगवान् सर्वत्र हैं, सर्वव्यापक हैं, सर्वसमर्थ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं; आज तुझ अधमको मैं मौतके घाट उतारता हूँ। देखूँ तेरा हरि क्या करता है, जिसकी तू प्रतिक्षण रट लगाये रहता है।' इतना कहकर हिरण्यकशिपुने पुनः कहा—'क्या तेरा भगवान् इस खम्भेमें भी है ?' प्रह्लादने निश्चिन्त भावसे कहा—'पिताजी ! वे तो सभी जगह हैं, फिर इस खम्भेमें क्यों नहीं होंगे।' कालके रूपमें हिरण्यकशिपु खड्ग उठाये मारनेके लिये उद्यत है, किंतु भक्त सर्वथा निर्भय है, उसका विश्वास एवं भक्तिका बल ही उसकी रक्षा कर रहा है।

क्रुद्ध हिरण्यकशिपु ज्यों ही तलवार लेकर मारनेको दौड़ा, त्यों ही खम्भेको फाड़कर भयंकर गर्जनाके साथ विकराल रूप धारण किये नृसिंह भगवान् प्रकट हो गये। उस समय ऐसा भयंकर शब्द हुआ, जिससे जान पड़ता था मानो ब्रह्माण्ड फट गया हो। घबराये हुए हिरण्यकशिपुको कुछ भी न दिखायी पड़ा।

कुछ क्षणोंके बाद हिरण्यकशिपुने उस भयंकर रौद्ररूपको

देखा, तब वह गदा लेकर उनपर प्रहार करनेके लिये दौड़ा। भगवान्‌ने कुछ देर उसके साथ युद्ध-लीला की, फिर बड़े वेगसे उसे पकड़कर अपनी जाँघोंपर सुलाया और अपने सुतीक्ष्ण नखोंसे उसका उदर विदीर्ण कर दिया। श्रीनृसिंहके हाथों हिरण्यकशिपुका उद्धार हुआ। प्रह्लाद तथा अन्य सभी देवताओंने भगवान्‌की स्तुति की। प्रह्लादको वैष्णव-भक्तिका उपदेश देकर तथा असुरराज्यका विध्वंस कर दैवी साम्राज्यकी स्थापना करके सभीके देखते-देखते भगवान् नृसिंह अन्तर्हित हो गये।

एकमात्र कर्तव्य क्या है ?

पुण्डरीक नामके एक बड़े भगवद्भक्त गृहस्थ ब्राह्मण थे। साथ ही वे बड़े धर्मात्मा, सदाचारी, तपस्वी तथा कर्मकाण्डनिपुण थे। वे माता-पिताके सेवक, विषय-भोगोंसे सर्वथा निःस्पृह और बड़े कृपालु थे। एक बार अधिक विरक्तिके कारण वे पवित्र रम्य वन्य तीर्थोंकी यात्राकी अभिलाषासे निकल पड़े। वे केवल कन्द-मूल-शाकादि खाकर गङ्गा, यमुना, गोमती, गण्डक, सरयू, शोण, सरस्वती, प्रयाग, नर्मदा, गया तथा विन्ध्य एवं हिमाचलके पवित्र तीर्थोंमें घूमते हुए शालग्राम-क्षेत्र (आजके हरिहर-क्षेत्र) पहुँचे और वहाँ पहुँचकर प्रभुकी आराधनामें तल्लीन हो गये। वे विरक्त तो थे ही, अतएव इस तुच्छ क्षणभङ्गुर यौवन, रूप, आयुष्य आदिसे सर्वथा उपरत होकर सहज ही भगवद्ध्यानमें लीन हो गये और संसारको सर्वथा भूल गये।

देवर्षि नारदको जब यह समाचार ज्ञात हुआ, तब उन्हें देखनेकी इच्छासे वे भी वहाँ पधारे। पुण्डरीकने बिना पहचाने ही उनकी षोडशोपचारसे पूजा की और फिर उनसे परिचय पूछा। जब नारदजीने उन्हें अपना परिचय तथा वहाँ आनेका कारण बतलाया, तब पुण्डरीक हर्षसे गद्‌गद हो गये। वे बोले—'महामुने! आज मैं धन्य हो गया। मेरा जन्म सफल हो गया तथा मेरे पितर कृतार्थ हो गये। पर देवर्षे! मैं एक संदेहमें पड़ा हूँ, उसे आप ही निवृत्त कर सकेंगे। कुछ लोग सत्यकी प्रशंसा करते हैं तो कुछ सदाचारकी। इसी प्रकार कोई सांख्यकी, कोई योगकी तो कोई ज्ञानकी महिमा गाते हैं। कोई क्षमा, दया, ऋजुता आदि गुणोंकी प्रशंसा करता दीख पड़ता है। यों ही कोई दान, कोई वैराग्य, कोई यज्ञ, कोई ध्यान और कोई अन्यान्य कर्मकाण्डके अङ्गोंकी प्रशंसा करता है। ऐसी दशामें मेरा चित्त इस कर्तव्याकर्तव्यके निर्णयमें अत्यन्त विमोहको प्राप्त हो रहा है कि वस्तुतः अनुष्ठेय क्या है ?'

इसपर नारदजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—पुण्डरीक! वस्तुतः शास्त्रों तथा कर्म-धर्मके बाहुल्यके कारण ही विश्वका वैचित्र्य और वैलक्षण्य है। देश, काल, रुचि, वर्ण, आश्रम तथा प्राणिविशेषके भेदसे ऋषियोंने विभिन्न धर्मोंका विधान किया है। साधारण मनुष्यकी दृष्टि अनागत,

अतीत, विप्रकृष्ट, व्यवहित तथा अलक्षित वस्तुओंतक नहीं पहुँचती। अतः मोह दुर्वार है। इस प्रकारका संशय, जैसा तुम कह रहे हो, एक बार मुझे भी हुआ था। जब मैंने उसे ब्रह्माजीसे कहा, तब उन्होंने उसका बड़ा सुन्दर निर्णय दिया था। मैं उसे तुम्हें ज्यों-का-त्यों सुना देता हूँ। ब्रह्माजीने मुझसे कहा था—'नारायण ही परब्रह्म हैं, नारायण ही परम तत्त्व हैं, नारायण ही परमज्योति और नारायण ही परम आत्मा हैं। मुने! वे भगवान् नारायण परसे भी पर हैं। उनसे बढ़कर या उनसे भिन्न कुछ भी नहीं है।'

नारायणः परं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परम्।
नारायणः परं ज्योतिरात्मा नारायणः परः॥
परादपि परश्चासौ तस्मान्नातिपरं मुने।

(नरसिंहपुराण ६४। ६३-६४)

'इस संसारमें जो कुछ भी देखा-सुना जाता है, उसके बाहर-भीतर सर्वत्र, नारायण ही व्याप्त हैं। जो नित्य-निरन्तर, सदा-सर्वदा, भगवान्‌का अनन्य भावसे ध्यान करता है, उसे यज्ञ, तप अथवा तीर्थयात्राकी क्या आवश्यकता है। बस, नारायण ही सर्वोत्तम ज्ञान, योग, सांख्य तथा धर्म हैं। जिस प्रकार कई बड़ी-बड़ी सड़कें किसी एक विशाल नगरमें प्रविष्ट होती हैं, अथवा कई बड़ी-बड़ी नदियाँ समुद्रमें प्रवेश कर जाती हैं, उसी प्रकार सभी मार्गोंका पर्यवसान उन परमेश्वरमें होता है। मुनियोंने यथारुचि, यथामति उनके भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंकी व्याख्या की है। कुछ शास्त्र तथा ऋषिगण उन्हें विज्ञानमात्र बतलाते हैं, कुछ परब्रह्म परमात्मा कहते हैं, कोई उन्हें महाबली अनन्त कालके नामसे पुकारता है, कोई सनातन जीव कहता है, कोई क्षेत्रज्ञ कहता है तो कोई षड्विंशक तत्त्वरूप बतलाता है, कोई अङ्गुष्ठमात्र कहता है तो कोई पद्मरजकी उपमा देता है। नारद ! यदि शास्त्र एक ही होता तो ज्ञान भी निःसंशय तथा अनाविद्ध होता, किंतु शास्त्र बहुतसे हैं, अतएव विशुद्ध संशयरहित ज्ञान तो सर्वथा दुर्घट ही है। फिर भी जिन मेधावी महानुभावोंने दीर्घ अध्यवसायपूर्वक सभी शास्त्रोंका पठन, मनन तथा समन्वयात्मक ढंगसे विचार किया है, वे सदा इसी निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि सदा-सर्वत्र, नित्य-निरन्तर, सर्वात्मना एकमात्र नारायणका ही ध्यान करना सर्वोपरि परमोत्तम कर्तव्य है।

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः॥
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा।

(६४।७८, ७९)

वेद, रामायण, महाभारत तथा सभी पुराणोंके आदि, मध्य एवं अन्तमें एकमात्र उन्हीं प्रभुका यशोगान है—

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदौ मध्ये तथा चान्ते हरिः सर्वत्र गीयते॥

'अतएव शीघ्र कल्याणकी इच्छा रखनेवालेको व्यामोहक जगज्जालसे सर्वथा बचकर सर्वदा निरालस्य होकर प्रयत्नपूर्वक अनन्यभावसे उन परमात्मा नारायणका ही ध्यान करना चाहिये।'

पुण्डरीक ! इस प्रकार ब्रह्माजीने जब मेरा संशय दूर कर दिया, तब मैं सर्वथा नारायणपरायण हो गया। वास्तवमें भगवान् वासुदेवका माहात्म्य अनन्त है। कोई नृशंस, दुरात्मा, पापी ही क्यों न हो, भगवान् नारायणका आश्रय लेनेसे वह भी मुक्त हो जाता है। यदि हजारों जन्मोंके साधनसे भी 'मैं देवाधिदेव वासुदेवका दास हूँ'—ऐसी निश्चित बुद्धि उत्पन्न हो गयी तो उसका काम बन गया और उसे विष्णुसालोक्यकी प्राप्ति हो जाती है—

जन्मान्तरसहस्रेषु यस्य स्याद् बुद्धिरीदृशी।
दासोऽहं वासुदेवस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः॥
प्रयाति विष्णुसालोक्यं पुरुषो नात्र संशयः।

(६४।९५, ९६)

'भगवान् विष्णुकी आराधनासे अम्बरीष, प्रह्लाद ,राजर्षि भरत, ध्रुव, मित्रासन तथा अन्य अगणित ब्रह्मर्षि, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी तथा वैष्णव-गण परम सिद्धिको

प्राप्त हुए हैं। अतः तुम भी निःसंशय होकर उनकी ही आराधना करो।'

इतना कहकर देवर्षि अन्तर्धान हो गये और भक्त पुण्डरीक हृत्पुण्डरीकके मध्यमें गोविन्दको प्रतिष्ठित कर

भगवद्ध्यानमें परायण हो गये। उनके सारे कल्मष समाप्त हो गये और उन्हें तत्काल ही वैष्णवी सिद्धि प्राप्त हो गयी। उनके सामने सिंह-व्याघ्रादि हिंस्र जन्तुओंकी भी क्रूरता नष्ट हो गयी। पुण्डरीककी दृढ़ भक्ति-निष्ठाको देखकर पुण्डरीकनेत्र श्रीनिवास भगवान् शीघ्र ही द्रवीभूत हुए और उनके सामने प्रकट हो गये। उन्होंने पुण्डरीकसे वर माँगनेका दृढ़ आग्रह किया।

पुण्डरीकने प्रभुसे गद्‌गद स्वरसे यही माँगा कि 'नाथ जिससे मेरा कल्याण हो, आप मुझे वही दें। मुझ बुद्धिहीनं इतनी योग्यता कहाँ जो आत्महितका निर्णय कर सकूँ।'

भगवान् उनके इस उत्तरसे बड़े प्रसन्न हुए औ उन्होंने पुण्डरीकको अपना पार्षद बना लिया। (नरसिंहपुराण अध्याय ६४)

कल्किपुराण

यह एक उपपुराण है। इसमें कुल पैंतीस अध्याय हैं, जो तीन अंशोंमें विभक्त हैं। प्रथम तथा द्वितीय अंशमें सात-सात अध्याय हैं और तृतीय अंशमें इक्कीस अध्याय हैं। इस पुराणमें मुख्यतः भगवान् विष्णुके 'कल्कि' नामसे दशम अवतारकी कथा है, जो भूतकालमें वर्णित है। भगवान् कल्किके नामसे ही इस पुराणका नाम 'कल्किपुराण' हुआ। 'सम्भल' (मुरादाबादके निकट) ग्राममें विष्णुयशा तथा देवी सुमति ब्राह्मण-दम्पतिके घरमें वैशाख मासकी शुक्ला द्वादशीको सायंकाल भगवान् कल्किका आविर्भाव हुआ। इन्होंने दिग्विजयकर बौद्धों तथा म्लेच्छोंको पराजित किया, कलि—अधर्मका विनाश किया, सद्धर्म और सत्ययुगकी स्थापना की तथा मरु और देवापि नामक सूर्यवंशी एवं चन्द्रवंशी राजाओंको प्रतिष्ठित कर स्वयं पृथ्वीका परित्याग कर सपरिकर वैकुण्ठधामको प्रस्थान किया। इसी मुख्य कथाका कल्किपुराणमें विस्तारपूर्वक वर्णन है। यद्यपि यह कथा अन्य पुराणोंमें भी सूक्ष्मरूपसे स्वल्प मतान्तरसे प्राप्त होती है, किंतु कल्किपुराणका वर्णन सर्वथा सुस्पष्ट तथा अत्यन्त विचित्र है। इस पुराणकी शैली मनोरम तथा हृदयाकर्षक है। तीसरे अंशके चौंतीसवें अध्यायमें ऋषियोंद्वारा किया गया गङ्गास्तव अत्यन्त सुन्दर है। पद्मा (लक्ष्मी) तथा कल्कि (विष्णु) का जो परस्पर अनुराग-वर्णन तोतेद्वारा किया गया है वह अत्यन्त रमणीय है (अध्याय ४-८)।

इसमें कलिके विषयमें बताया गया है कि 'भगवान् श्रीकृष्णके स्वधामगमन तथा पाण्डवोंके हिमालयारोहणके साथ ही कलिका आविर्भाव हुआ तथा पृथ्वीपर कलि (युग) की प्रवृत्ति हो गयी। द्वापरके अन्त-समयमें जब राजा परीक्षित् प्रथम राजा थे, उसी समयसे कलिने अपना प्रभाव दिखाना प्रारम्भ कर दिया। कलि प्रजापति ब्रह्माके पृष्ठदेश (पीठ)से उत्पन्न हुआ। इसीका नाम अधर्म पड़ा। अधर्मकी प्रियाका नाम मिथ्या था, जिसका दम्भ नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। दम्भका विवाह उसकी बहन मायासे हुआ। उनसे लोभ नामक पुत्र तथा निकृति नामकी पुत्री हुई। लोभने भी अपनी बहनसे विवाह किया और क्रोध नामक पुत्र तथा हिंसा नामक पुत्री उत्पन्न की। जिनसे कलि नामक पुत्र तथा दुरुक्ति नामक पुत्रीका जन्म हुआ। कलिने भी परम्परानुसार अपनी बहनसे विवाह कर भय नामक पुत्र और मृत्यु नामकी पुत्री उत्पन्न की। इन दोनोंसे यातना नामकी कन्या तथा निरय (नरक-पाप) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यातना और निरयके अनेक संततियाँ हुईं। इस प्रकार कलिकी यह धर्मनिन्दक अधर्म-परम्परा है, जिनसे लोगोंमें पापाचरणकी प्रवृत्ति हुई।' इसी पाप, अधर्म तथा कलिके विनाशके लिये भगवान् कल्किने अवतार धारण किया। राजा कल्किके राज्यकालका समय ही कलियुग है[1]। कल्किपुराणमें इस विषयको अच्छी तरह समझाया गया है।

१-पुराणोंमें सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि—ये चार युग बताये गये हैं। जो क्रमशः आते-जाते रहते हैं। ७१ बार जब ये चारों युग आवर्तित हो जाते हैं, तब एक मनुका समय या मन्वन्तर होता है। ऐसे ही जब १४ मन्वन्तर व्यतीत हो जाते हैं, तब एक कल्पका मान होता है, जो ब्रह्माजीके एक दिनके बराबर होता है। ब्रह्माजीकी परमायु सौ वर्ष है, जिसके अबतक ५० वर्ष व्यतीत हो गये हैं। ५१ वाँ वर्ष चल रहा है। वर्तमानमें [illegible] सप्तम वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है, जिसमें ७१ चतुर्युगीमें अट्ठाईसवाँ चतुर्युग है। जिसके सत्य, त्रेता तथा द्वापर बीत चुके हैं और अट्ठाईसवाँ [illegible]

अन्य पुराणोंकी तरह इसमें विवेचित विषय स्वल्प हैं। पुराणके पञ्चलक्षणोंका स्वल्प ही संकेत मिलता है। मरु तथा देवापि राजाओंने भगवान् कल्किको अपने परिचयके प्रसंगमें सूर्यवंश तथा चन्द्रवंशका संक्षिप्त वर्णन किया है। इसमें उपदेशात्मक भाग थोड़ा है। केवल पद्माके स्वयंवरके समय कल्किद्वारा सभी राजाओंको उपदेश तथा नारदजीद्वारा कल्किको उपदेश—ये दो स्थल मुख्य हैं। तथापि बीच-बीचमें वैष्णव-भक्ति तथा रीति-नीतिकी कुछ बातें कही गयी हैं। यह पुराण वैष्णवपुराणकी कोटिमें आता है। कल्कि स्वयं विष्णुके अवतार हैं और इन्हींकी कथा इसमें बतलायी गयी है। इसमें कल्किद्वारा सम्भलमें अड़सठ तीर्थ बनाने तथा मथुरा-अयोध्या आदि तीर्थोंका भी स्वल्प वर्णन है।

यद्यपि यह पुराण लघुकाय है तथापि भविष्यकालीन घटनाओंका (भूतकालमें) वर्णन होनेके कारण ऐतिहासिक दृष्टिसे इस पुराणका अत्यधिक महत्त्व है। इसमें वर्णित कल्किकी दिग्विजय-यात्रा, विशाखयूप, मरु तथा देवापि राजाओंके नाम, सम्भल तथा कलापग्राम और महेन्द्रगिरि, भल्लाट एवं कीकट देश आदि विषय विद्वानोंके लिये सर्वथा शोधकी अपेक्षा रखते हैं।

कथा-आख्यान—

कल्कि-अवतारकी कथा

भगवान् विष्णुके दस तथा चौबीस अवतारोंमें भगवान् कल्किके अवतारकी गणना दसवें तथा बाईसवें स्थानपर है। कल्कि-उपपुराणमें भगवान् कल्किका चरित्र अत्यन्त विस्तारके साथ दिया गया है, जो अन्य पुराणोंके वर्णनोंसे अधिक वैशिष्ट्य रखता है। उसका संक्षिप्त सारांश इस प्रकार है[1]—

कलिकालके अन्तमें जब घोर पापाचार एवं अनाचार फैल गया तथा वर्णाश्रम-धर्म नष्ट हो गया, सर्वत्र अधर्मका प्रभाव व्याप्त हो गया, धर्मकी मर्यादा सर्वथा विलुप्त हो गयी, यज्ञ-दान-तप-स्वाध्याय आदि सत्कर्मोंका लोप हो गया, तब देवता दुःखी होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजी इनके साथ भगवान् नारायणके पास पहुँचे और उन्हें भूमण्डलकी दुर्दशा बतलायी। तब भगवान् विष्णुने सम्भलग्राममें अवतार ग्रहण कर कलि—अधर्मका विनाश तथा सत्ययुगकी स्थापनाका वचन देकर उन्हें आश्वस्त किया। ब्रह्मादि देवगण अपने-अपने स्थानको चले गये।

कालान्तरमें भगवान् विष्णुने विष्णुयशा ब्राह्मणकी धर्मपत्नी सुमतिके गर्भसे वैशाख मासकी शुक्ला द्वादशीके दिन सम्भलग्राममें अवतार धारण किया (कल्किपु० १।२।५)। प्रकट होते समय ये चतुर्भुज-रूपमें थे, किंतु ब्रह्माकी प्रार्थनासे इन्होंने मानुषी द्विभुज-रूप धारण किया। उस समय सर्वत्र शुभ शकुन हो रहे थे और चराचरमें प्रसन्नता छा गयी थी। कल्क (पापपुञ्ज)-के विनाशके लिये अवतीर्ण होनेके कारण ऋषियोंने बालकका 'कल्कि' नाम रखा—

कल्किं कल्कविनाशार्थमाविर्भूतं विदुर्बुधाः ॥
नामाकुर्वंस्ततस्तस्य कल्किरित्यभिविश्रुतम् ।

(कल्किपु० १।२।२८-२९)

समयानुकूल कल्कि यज्ञोपवीत, वेदपूजन, यज्ञसूत्र-धारण आदि दशविध संस्कारसम्पन्न होकर गुरुकुलमें अध्ययनके लिये महेन्द्राचलपर परशुरामजीके पास गये। वहाँ उन्होंने उनसे साङ्ग वेद, समस्त धनुर्वेद, अठारह विद्याओं और चौसठ कलाओंका अध्ययन किया। वहीं परशुरामजीने उन्हें यह भी बता दिया था कि 'तुम विष्णुके

चल रहा है। कलियुगका समय ४ लाख ३२ हजार वर्षका है, जिसके अभीतक ५०८९ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। कलियुगके चार चरण हैं, जिनमें अभी प्रथम चरण है, तीन चरणोंका समय शेष है। भगवान् कल्कि कलियुगके अन्तमें, जब अधार्मिक राजा कलिका चरमोत्कर्ष रहता है, तब अवतार लेते हैं। वे पुनः सत्ययुगकी स्थापना करते हैं।

१. यहाँ यह ध्यान देनेयोग्य बात है कि अन्य पुराणोंमें जहाँ भी कल्कि-अवतारकी चर्चा हुई है, वहाँ प्रायः सर्वत्र भविष्यत्कालीन क्रियाका प्रयोग है। परंतु कल्किपुराणके वर्णनोंमें सर्वत्र भूतकालकी क्रियाका प्रयोग हुआ है, जिससे यह भी सम्भावना होती है कि यह वर्णन किसी विगतकल्पके कलियुगका है; क्योंकि वर्तमान सप्तम वैवस्वत मन्वन्तरके २८ सत्ययुग, २८ त्रेता, २८ द्वापर तथा २७ कलियुग व्यतीत हो चुके हैं तथा इस समय २८वाँ कलियुग चल रहा है। इससे यह स्पष्ट है कि इस कलियुगके अन्तमें भी भगवान् कल्कि-अवतार धारण करेंगे।

अंशसे अवतीर्ण हुए हो और तुम्हें बौद्धों तथा म्लेच्छोंके साथ-साथ कलियुगका निग्रह करना है, इसलिये मैंने तुम्हें विशेषरूपसे धनुर्वेदकी शिक्षा दी है।'

शिक्षा प्राप्त कर कल्किने बिल्वोदकेश्वर भगवान् शंकरकी आराधना की। भगवान् शिवने पार्वतीके साथ प्रकट होकर इन्हें एक अश्वरत्न, एक रत्नखचित तलवार तथा एक शुक प्रदान किया तथा दिग्विजय कर धर्मकी स्थापना करनेका आशीर्वाद और अनेक वर प्रदान किये (कल्किपु० १। ३। २५-२७)। (बादमें इसी कामगामी अश्वपर आरूढ़ होकर तलवारद्वारा म्लेच्छों तथा कलिका संहार किया था।) विद्या एवं इन सभी उपकरणोंको प्राप्त कर वे गुरुगृहसे सम्भलमें माता-पिताके पास लौट आये और सम्पूर्ण वृत्तान्त उन्हें बतलाया। उसी समय माहिष्मती-नरेश परमवैष्णव विशाखयूप स्वजनोंसहित उनके दर्शनोंके लिये वहाँ आये। कल्किने कलियुगका माहात्म्य, सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति तथा विस्तार और ब्राह्मणोंके महत्त्वको बतलाया। तदनन्तर राजा विशाखयूप लौट गये।

सिंहल द्वीपके राजा बृहद्रथके यहाँ अद्वितीय रूप-गुणोंसे सम्पन्न पद्मा (जो लक्ष्मीकी अवतार थीं) के स्वयंवरका आयोजन हो रहा था। शंकरद्वारा कल्किको प्राप्त शिवदत्त नामक शुकने कल्किके पौरुष तथा पराक्रमको पद्मासे और पद्माकी रूप-कान्तिको कल्किसे कहा एवं दोनोंके परस्पर अनुरागको भी बतलाया। दोनोंने एक-दूसरे-को प्राप्त करनेका मानसिक संकल्प कर लिया।

पद्मा कल्किके गुणोंको सुनकर मुग्ध हो गयी और रात-दिन उन्हींका चिन्तन करने लगी। उसके पिता बृहद्रथ तथा माता कौमुदी उसकी स्थिति देखकर चिन्तित हो गये। उन्होंने पद्माके विवाहके लिये स्वयंवर रचाया। तदनन्तर कल्कि उस स्वयंवर-महोत्सवमें गये। कल्किके साथ पद्माका विवाह सम्पन्न हुआ। पद्मावतीको लेकर कल्कि वापस सम्भल आ गये। कुछ समय बाद इनके जय-विजय नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए (कल्किपु० २। ६। ३५)।

कल्किके पिता विष्णुयशा अत्यन्त धार्मिक प्रवृत्तिके थे। उन्होंने अनेक यज्ञ-यागादि किये। एक बार जब विष्णुयशाने अश्वमेध-यज्ञके अनुष्ठानकी बात सोची तब उन्होंने यज्ञीय अश्वको भगवान् कल्किके संरक्षणमें समस्त भूमण्डलमें भ्रमण करने और दिग्विजयके लिये भेजा। इसी यात्रा-प्रसङ्गमें कल्किने बौद्धों, जैनों तथा म्लेच्छोंका पराभव किया, कलियुगी सेनाका संहार किया तथा कुथोदरी राक्षसी (कुम्भकर्णकी बहन) एवं उसके पुत्र विकुञ्जका उद्धार किया। परिभ्रमण करते हुए भगवान् कल्कि हरिद्वार पहुँचे। वहाँ वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ तथा गालवादि ऋषियोंने भगवान्‌के दर्शन किये और कल्किने भी उन पुण्यात्माओंके दर्शनसे अपनेको धन्य माना। वहीं सूर्यवंशी राजा मरु तथा चन्द्रवंशी देवापिने भी अपने-अपने वंशोंका परिचय देकर भगवान्‌की स्तुति की। भगवान्‌ने भी सत्ययुगकी स्थापना होनेपर उन्हें राजा होनेका वर प्रदान किया। तदनन्तर उन्होंने खस, काम्बोज, पुलिन्द, निषाद तथा शबर प्रभृति देशोंपर आधिपत्य स्थापित कर कलिको परास्त किया। उस समय अश्वारूढ़ तथा हाथमें तलवार लिये भगवान् कल्किके साथ विशाखयूप, मरु तथा देवापि आदि राजाओंकी सेना भी थी।

तदनन्तर वे भल्लाट नगरमें आये, जहाँका राजा शशिध्वज परम वैष्णव तथा योगियोंमें अग्रगण्य था। उसकी पत्नी सुशान्ता भी पतिका अनुगमन करनेवाली थी। पत्नीके द्वारा युद्धसे मना किये जानेपर भी शशिध्वजने भगवान्‌के साथ युद्ध करना मोक्षप्रद बताया। वह हरिस्मरण करते हुए युद्ध करने लगा। युद्धमें शशिध्वज मूर्च्छित हो गया। भगवान् उसे लेकर सुशान्ताके पास उसकी भक्ति देखने पहुँचे। सुशान्ताने प्रभुको प्रणाम किया और उनका यथोचित स्वागत किया। प्रभु-कृपासे राजा शशिध्वजकी चेतना लौट आयी। उन दोनोंने प्रसन्न होकर अपनी परम सुन्दरी रमा नामकी कन्या प्रभुको समर्पित कर दी। अन्तमें उन्हें सद्‌गति प्राप्त हुई। इस प्रकार सर्वत्र कलिधर्मका विनाश कर भगवान् कल्कि रमाको साथ लेकर सम्भल लौट आये।

कल्किके दिग्विजयसे लौटनेपर पिता-माता अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अश्वमेध-यज्ञ सम्पन्न किया। सर्वत्र हर्षोल्लास मनाया गया। पिता विष्णुयशाकी आज्ञा पाकर कल्किने भी वाजपेय, अश्वमेध तथा राजसूयादि अनेक यागोंका अनुष्ठान किया, जिनमें कृपाचार्य, परशुराम, वसिष्ठ,

धौम्य तथा व्यासादि महर्षि उपस्थित थे (कल्किपु० ३।१६।५—८)। उसी प्रसङ्गमें देवर्षि नारदने जो भक्तिज्ञानका उपदेश किया, वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। नारदजीने विष्णुयशाको नारायण-मन्त्रकी दीक्षा दी, जिसे प्राप्त-कर वे बदरिकाश्रममें तपस्याके लिये चले गये और वहीं उन्हें परमपद प्राप्त हुआ। परमसाध्वी महारानी सुमति भी उनके साथ सती हो गयीं (कल्किपु० ३।१६।४२-४४)।

मुनियोंसे पिता-माताका समाचार प्राप्त कर कल्किने उनका अन्त्येष्टि-संस्कार किया। पुनः वे पद्मा तथा रमाके साथ धर्मपूर्वक राज्य-कार्य करने लगे। तीर्थाटन करते हुए परशुरामजी सम्भलमें आये। भगवान्ने उनका आतिथ्य किया। उन्होंने रमाको पुत्र-प्राप्ति करानेवाला 'रुक्मिणी-व्रत' बतलाया, जिसके अनुष्ठानसे उन्हें भी मेघवाह तथा बलाहक नामक दो पुत्र प्राप्त हुए। भगवान्के लीला-विलास तथा कान्ति-शोभाके दर्शनकी इच्छासे देवलोकसे ब्रह्मादि देवगण, ऋषि-महर्षि, गन्धर्वादि सम्भलमें आये और उन्होंने स्तुति करते हुए कहा—'देव ! आपके अवतरणका कार्य पूर्ण हो चुका है, कलिका विनाश हो गया है, सद्धर्मकी स्थापना हो गयी है, अतः अब आप वैकुण्ठको प्रस्थान करें।' भगवान् कल्किने अपने धर्मिष्ठ चारों पुत्रोंको राज्यसंचालनमें अभिषिक्त कर मरु तथा देवापिको भी उनके क्षेत्रमें भावी सत्ययुगके लिये राजपदपर नियुक्त कर स्वयं पृथ्वीका परित्याग कर दिया। पद्मा तथा रमाने भी पतिलोक प्राप्त किया। पृथ्वीपर पुनः सत्ययुग प्रवर्तित हुआ।

एकाम्रपुराण

यह एक उपपुराण या स्थलपुराण माना जाता है। इसमें एकाम्रक-क्षेत्र अर्थात् कलिङ्ग या उड़ीसाकी वर्तमान राजधानी भुवनेश्वरका विशेषरूपसे वर्णन हुआ है। एकाम्रपुराणके अनुसार इसका नाम त्रिभुवनेश्वर है, जो शिवका पर्याय है। इसमें सम्पूर्ण भारतके तीर्थों—विशेषतया उड़ीसाके पवित्र स्थलोंका सुन्दर उल्लेख हुआ है। समूचे ग्रन्थके ५ अंशोंमें ७० अध्याय एवं ६,०००के लगभग श्लोक हैं। इस पुराणमें मुख्य संवाद व्यासदेव एवं ब्रह्माजीका है। वैसे बीच-बीचमें सनत्कुमार, भृगु, शुक्र, असित आदिका भी संवाद प्राप्त होता है। इसके प्रारम्भमें १८ महापुराणों और १८ उपपुराणोंके क्रम दिये हुए हैं।

महापुराणोंके नाम-क्रम इसमें भिन्न हैं। इसमें क्रमसे १-ब्रह्म, २-वैष्णव, ३-पद्म, ४-भागवत, ५-कूर्म, ६-मत्स्य, ७-वराह, ८-नरसिंह, ९-वामन, १०-मार्कण्डेय, ११-अग्नि, १२-वायु, १३-लिङ्ग, १४-शिव, १५-भविष्य, १६-ब्रह्माण्ड, १७-ब्रह्मवैवर्त तथा १८-स्कन्दपुराणका उल्लेख मिलता है। उपपुराणोंमें क्रमशः बृहद् नरसिंह, विष्णुधर्म, गारुड, नारद, बृहन्नारदीय, प्रभास, लीलावती, देवी, कालिका, आखेटक, नन्दी एवं बृहन्नन्दी, एकाम्र, एकपाद, लघुभागवत, मृत्युञ्जय, आंगिरस और साम्बपुराण परिगणित हैं। (एकाम्रपु० अ० १।१७—२४)

एकाम्रपुराण वहुत कुछ अंशोंमें कपिलपुराण, कपिलसंहिता, स्वर्णाद्रिमहोदय तथा एकाम्रचन्द्रिकासे मिलता-जुलता है। यह स्वयंको उपपुराण न मानकर महापुराण-रूपमें ही अपना परिचय देता है। सम्पूर्ण पुराणके अवलोकनसे यह शैव-पुराण सिद्ध होता है। इस पुराणमें भुवनेश्वरके प्रधान शिव-मन्दिर, लिङ्गराजका विशेष वर्णन है। इस प्रतिमाको 'हरि-हरात्मिका' भी कहा गया है

इस पुराणके प्रारम्भमें धर्मध्वज-व्यासका संवाद और फिर मुनियों तथा सनत्कुमारके संवादमें इस क्षेत्रका माहात्म्य निरूपित हुआ है। एकाम्रपुराणके प्रथम अंशके प्रथम अध्यायके श्लोक ५५के अनुसार सनत्कुमारको साक्षात् भगवान्का अवतार माना गया है। प्रथम अंशके द्वितीय अध्यायमें क्षेत्रराज भुवनेश्वरमें करोड़ों लिङ्गके समान तेजोमय लिङ्गराजके प्रादुर्भावकी कथा है, जिनके प्रकट होनेपर ब्रह्मा, आदित्य आदि देवताओं, वसु, मरुद्गण, साध्य, पितृगण, विद्याधर,

गन्धर्व तथा अप्सराओंने स्तुति की है। तीसरे-चौथे अध्यायमें ब्रह्मगीता है। इसके पञ्चम अध्यायमें पार्वतीजीके द्वारा प्रश्न किये जानेपर ब्रह्माजीके द्वारा प्रारम्भिक सृष्टि तथा देवाधिदेव भगवान् शिवके श्रीमुखसे चारों वर्णोंके प्राकट्यका विवरण मिलता है। इस पुराणके बादके अध्यायोंमें क्रमशः युगधर्म और भुवनकोषके वर्णनमें सातों द्वीप, सात समुद्र, नौ वर्ष और जम्बूद्वीपके मेरुसहित आठ पर्वतोंका वर्णन है। इसके आठवें अध्यायमें भारतवर्षकी सभी नदियों, वनों, आश्रमों, पुरियों एवं पर्वतादिका वर्णन है। इसमें भारतवर्षका वर्णन अन्य पुराणोंकी अपेक्षा रम्यतर है। इसके नवम अध्यायमें सात पातालोंका वर्णन तथा दशममें तप, मह, जन आदि सात ऊर्ध्वलोकोंका विस्तृत वर्णन है। साथ ही विष्णुलोक, शिवपुर आदिका भी उल्लेख हुआ है।

एकाम्रपुराणके द्वितीय अंशके प्रथम अध्यायमें एकाम्र वन या एकाम्रक्षेत्र (भुवनेश्वर) का वर्णन हुआ है। यह वन पहले देव-दुर्लभ, पुष्प, वृक्ष, लता आदिसे संकीर्ण था। इसके बीचमें एक ऐसा आम्रका वृक्ष था, जिसके मूलमें स्फटिक, मध्यमें वैदूर्य, ऊपरी भागमें पद्मरागमणि और वृक्षके ऊपरी चोटीवाले भागमें अग्निके समान प्रज्वलित अत्यन्त तेजोमय शिवलिङ्ग उद्भासित हो रहा था। उसके चारों ओर एक करोड़ शिवलिङ्ग पृथ्वीपर सुशोभित हो रहे थे, जिनमें आठों दिशाओंमें आठ दिव्य लिङ्ग विशेषरूपसे प्रकाशित थे। वहीं सब देवता भी आकर प्रकट हुए। कुछ देरके बाद भगवान्का वह विग्रह अपने परिकरोंके साथ अन्तर्धान हो गया और कालान्तरमें वही लिङ्गराजके नामसे उद्भूत हुआ। अतः इस एकाम्र वनके दर्शनका फल राजसूय एवं अश्वमेध आदि यज्ञोंसे भी अधिक कहा गया है। इस एकाम्र वनके पास पुण्यरेखा, सुगन्धा और गन्धवती नदियाँ बहती हैं

यहाँ सोलह दिनतक भीषण तपस्या करके ब्रह्माजीने भगवान् शंकरका दर्शन प्राप्त किया था। उस समय भगवान् शंकरका विग्रह कुन्द, इन्दु, शङ्ख और क्षीर-वर्णसे शुद्ध स्फटिकके समान उद्भासित हो रहा था। वे पिनाक धनुष, त्रिशूल, डमरु, परशु धारण किये हुए अभय एवं वरमुद्रासे सुशोभित थे। उनके ललाटपर बाल (द्वितीयाके) चन्द्रमा, मस्तकपर त्रिपथगा गङ्गा तथा पैरोंके पास स्वस्तिक और जयन्त नामक नाग और यज्ञोपवीतके स्थानपर वासुकि नाग स्थित थे। ब्रह्माजीने प्रसन्नतापूर्वक भगवान् शंकरकी दिव्य स्तुति की। तब भगवान् शंकरने उन्हें सृष्टि-कर्तृत्वका वरदान दिया।

इसके पश्चात् उनके दर्शनके लिये सप्तर्षिगण, दक्ष, नारद, इन्द्र आदि देवता, सनत्कुमार, सभी ग्रह एवं विद्याधर आदि उपस्थित हुए और भगवान् शंकरने मधुर वाणीसे सबको उपदेश देते हुए एकाम्रक्षेत्र और लिङ्गराज-विग्रहकी महिमा बतलायी। भगवान् सूर्यने भी आकर शिवसे वहाँ रहनेकी प्रार्थना की और उनके आज्ञानुसार स्वयं भास्करेश्वरके रूपमें वहीं संनिकट ही स्थित हुए। बादमें धर्मराज भी आकर एकाम्रमें स्थित हुए। ब्रह्माका स्थान ब्रह्मकुण्ड भी यहीं है। इन स्थानोंपर अनेक उत्सवोंका आयोजन निर्दिष्ट तिथियोंको सम्पादित किया जाता है।

एकाम्रपुराणका १८वाँ अध्याय अपेक्षाकृत बड़ा है। इसमें १५२ श्लोक हैं। इस अध्यायमें भगवान् कृष्णके द्वारा साठसे लेकर चौरासीतकके श्लोकोंमें कई प्रकारके सुन्दर छन्दोंमें विशेषरूपसे वसन्ततिलका-छन्दमें भगवान् सदाशिवकी स्तुति की गयी है और उन्होंने भी सदाशिवकी आज्ञासे वहाँ निवास किया। इसीसे इसे हरि-हरात्मक-क्षेत्र भी कहा गया है। विन्दुसरोवरके ऊपरी भागमें मणिकर्णिका-घाटपर यह मन्दिर है।

एकाम्रपुराणके बीसवें अध्यायमें विन्दुसरोवरकी उत्पत्तिकी कथा है। एकाम्रपुराण और कपिलपुराणके अनुसार एक बार भगवान् सदाशिवके नेत्रोंसे एकाम्रवनमें आनन्दाश्रु-जल प्रवाहित हुआ, जिसमें स्वतः सभी नदियों तथा पुष्करादि सभी सरोवरोंके जल आ गये। वह जल सूर्यके समान उद्भासित—प्रकाशित होने लगा। उसमें स्नान करनेका फल अनन्त है। काशी, हरिद्वार, गङ्गासागरमें युगों-युगोंतक तपस्या करनेका फल विन्दुसरोवरमें स्नान तथा दर्शनमात्रसे ही प्राप्त हो जाता है। यह विन्दुसरोवर भुवनेश्वरके मुख्य बाजारके पास राजमार्गके बगलमें स्थित है। इस सरोवरके बीचमें भी एक मन्दिर है। जहाँ वैशाखमासमें

वन्दन-यात्राका उत्सव होता है। इस सरोवरकी महिमा एकाम्रपुराणमें अध्याय २०से लेकर अध्याय २५तक विशेषरूपसे वर्णित है।

बादके पाँच अध्यायोंमें देवासुर-संग्रामका वर्णन है, जिसमें इन्द्रने असुरोंसे पराजित होकर शिवकी शरण ग्रहण की और एकाम्रक्षेत्रमें उनकी स्तुति की। शिवके प्रसादसे असुर हिरण्याक्ष विष्णुके द्वारा मारा गया और फिर भगवान् विष्णुने नरसिंह रूप धारण करके हिरण्यकशिपुका भी वध किया। एकाम्रक्षेत्रमें पूर्वकथित भास्करेश्वर-मन्दिरके पास ही मेघेश्वर-मन्दिर है। यह मन्दिर अत्यन्त कलापूर्ण है। इसकी कथा एकाम्रपुराणके ३८वें अध्यायमें बड़े विस्तारके साथ आयी है। संक्षेपमें यह इस प्रकार है—

एक बार अंजन,[1] संवर्तक आदि आठों मेघ इन्द्रके पास जाकर हाथ जोड़कर कहने लगे कि 'हमलोगोंकी एकाम्रक्षेत्रमें जाकर सदाशिवकी पूजा करनेकी इच्छा है। वहाँ हम विन्दुसरोवरमें स्नान करेंगे, जिससे अक्षय फलकी प्राप्ति होगी। वहाँ हम एक विशाल शिवालयका भी निर्माण करेंगे।' इन्द्रने उन्हें आज्ञा दे दी और उन्होंने विश्वकर्मासहित वहाँ पहुँचकर पूजा-स्तुतिसे शिवको अत्यन्त प्रसन्न कर लिया। शिवने मेघोंसे वर माँगनेके लिये कहा। मेघोंने उनसे अपने द्वारा बनवाये गये विशाल मन्दिरमें निवास करनेका वरदान माँगा। शिवने कहा—'मैं अब मेघेश्वर नामसे इस मन्दिरमें निवास करूँगा।' इसकी महिमा इस पुराणमें कई स्थानोंपर मिलती है। यह अत्यन्त सुन्दर प्राचीन कलापूर्ण मन्दिर ब्रह्मकुण्डके पास भास्करेश्वर मन्दिरके पार्श्वमें स्थित है।

इसके बाद इसमें कई अध्यायोंमें पापनाशन तीर्थका माहात्म्य है। यहाँ पापहरादेवीका स्थान है। यह लिङ्गराज-मन्दिरके सामनेके प्राङ्गणमें है, जिसकी महिमा अनन्त है। इसी क्रममें आगेके अध्यायोंमें सुपर्ण-आख्यान है, जिसमें गरुडकी उत्पत्ति-कथा है। इसी पुराणके ४७वें अध्यायमें बालखिल्य ऋषियोंके द्वारा एकाम्रमें आकर शिवकी उपासना किये जानेका उल्लेख मिलता है।

एकाम्रपुराणके ५०वें अध्यायमें रामायणकी विस्तृत कथा है। तदनुसार रामने लंका-विजयके बाद अनेक अश्वमेध आदि यज्ञ और पूरे विश्वमें अनेक पुण्य क्षेत्रोंका निर्माण किया था। तीर्थयात्रा करते हुए वे वसिष्ठ आदि ऋषियोंके साथ एकाम्रक्षेत्र पहुँचे और उन्होंने पञ्चामृत-स्नापनपूर्वक गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य अर्पित करके लिङ्गराजकी उपासना की। भगवान् श्रीराम एकाम्रक्षेत्रमें एक वर्षतक शिवपूजा करते रहे। उन्होंने इस स्थानपर एक दिव्य मन्दिरका निर्माण कराया। एकाम्रपुराणमें इसके बाद कई छोटे अध्याय हैं, जिनमें अष्टमूर्ति-अर्चाविधि, एकाम्रेश्वर-माहात्म्य तथा जटेश्वरकी महिमाके साथ चातुर्मास्य-व्रत-विधान एवं रथयात्रा आदि कई यात्राओंका निरूपण है।

कथा-आख्यान—

भगवान् श्रीरामका एकाम्रक्षेत्रीय अश्वमेध-यज्ञ

एक बार भगवान् श्रीरामने अयोध्याकी राजसभामें उपस्थित वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप आदि श्रेष्ठ ऋषियोंसे प्रश्न किया कि 'इस विश्वमें सर्वश्रेष्ठ एवं मोक्षदायक पवित्र तीर्थ कौन है, जिसका दर्शन करनेसे पाप-राशिका क्षय और धर्म प्राप्त होता है।' इसपर वसिष्ठजीने कहा—'एकाम्रक्षेत्र (भुवनेश्वर) सभी स्थानोंमें श्रेष्ठ है, जहाँ भगवान् शिव स्वयं ही लिङ्गरूपमें निवास करते हैं।' यह सुनकर भगवान् राम अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपने भाइयों, ऋषियों तथा सीताके साथ चतुरङ्गिणी सेना लेकर एकाम्रक्षेत्रमें गये। वहाँ उन्होंने सीताजीके साथ कृत्तिवासेश्वर लिङ्गराजका विधिवत् दर्शन-पूजन किया। याचकों तथा द्विजोंको दान देकर संतुष्ट किया और एक वर्षतक निवास कर एक दिव्य मन्दिरका निर्माण कराया। इस बीच वे प्रतिदिन पवित्र विन्दुसरमें स्नान करके वेद-वर्णित विधिके द्वारा गौ, द्विज और ऋषियोंका सम्मान करते हुए धर्मपूर्ण-जीवन व्यतीत करते रहे।

एक बार जब भगवान् श्रीराम ऋषियोंके साथ धर्म-

---

१. एकाम्र तथा अन्य पुराणोंमें आठ मेघ इस प्रकार बतलाये गये हैं— अंजन, दामन, आप्लावन, अभिवर्षण, द्रोण, पर्जन्य, संवर्त और जीमूत।

चर्चामें लीन थे, तभी आकाशवाणी हुई—'हे राजन्! इस पवित्र शिव-स्थानमें तुम अश्वमेध यज्ञ करो, इससे तुम्हारी कीर्ति सदैव संसारमें स्थिर रहेगी।' वसिष्ठ आदि ऋषियोंके अनुमोदनपर श्रीरामने शुभ मुहूर्तमें विद्वान् ऋत्विजोंकी अनुमतिसे एकाम्रक्षेत्रमें अश्वमेध यज्ञका शुभारम्भ किया। मन्त्रद्वारा समस्त लक्षणयुक्त यज्ञीय अश्व दिग्विजयके लिये छोड़ा गया। चतुरङ्गिणी सेनाके साथ श्रीशत्रुघ्नजी उस यज्ञीय अश्वके रक्षक बने। यज्ञ-कार्यमें दीक्षित श्रीरामजीने देवताओं तथा ऋषियोंका आशीर्वाद ग्रहण करते हुए समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त उस अश्वको मन्त्रपाठ करते हुए जानेकी अनुमति प्रदान की।

उस घोड़ेके साथ चलते हुए ससैन्य श्रीशत्रुघ्नजी अनेकों नदी-नद-सरोवर, वन एवं प्रदेशोंको पार करते हुए श्रीशैल नामक स्थानपर जा पहुँचे। जहाँ कज्जलगिरि-सा काला, रामका नित्यद्वेषी दुरात्मा कमठाङ्ग असुर निवास करता था। उसने श्रीरामके यज्ञीय अश्वका हरण करके उसे लताओंसे आच्छादित एक पर्वतकी कन्दरामें छिपा दिया। जब श्रीशत्रुघ्न आदि वीरोंने यज्ञके घोड़ेको नहीं देखा, तब वे बड़े चिन्तित हुए और चारों दिशाओंमें घोड़ेकी खोज करने लगे। रात्रिभर किसी प्रकार चित्रावली नदीके किनारे चिन्तामग्न उन वीरोंको प्रत्येक क्षण कल्पके समान बीता। अश्वकी रक्षा कर पानेमें असमर्थ श्रीशत्रुघ्न आदि वीरोंने अपने मरणको ही उचित समझा। इसी बीच देवर्षि नारद वीणा बजाते हुए वहाँ आ पहुँचे। सारी स्थिति जानकर उन्होंने श्रीशत्रुघ्नसे कहा—'आपके अश्वका अपहरण विकट राक्षसके भ्राता कमठने किया है। उसने उसे श्रीशैलके पास प्लक्ष वनमें छिपा दिया है। उस पापीका वधकर आप अपने अश्वको प्राप्त कर सकेंगे।'

देवर्षि नारदकी बातसे श्रीशत्रुघ्न प्रसन्न होकर कमठ राक्षसका वध करनेके लिये अपनी सेनाके साथ प्राची वेत्रवती नदीके किनारे जा पहुँचे। इधर देवर्षि नारद श्रीशैलपर स्थित असुरराज कमठाङ्गके महलमें पहुँच गये और उसे यह सूचना दी कि यज्ञीय अश्वको मुक्त करानेके लिये रामानुज शत्रुघ्न अपनी विशाल सेनाके साथ आ रहे हैं और उनके द्वारा तुम्हारा वध होगा। तब कमठने कहा—'मुने! राम हों या रामका भाई हो या कोई अन्य हो, मैं युद्धमें सम्मुख इन्द्रसे भी नहीं डरता, सामान्य मनुष्योंकी क्या स्थिति है। मैं अश्वमेधका घोड़ा कभी न दूँगा।' यह कहकर वह भी अपनी सेना सजाकर युद्धके लिये चल पड़ा। दोनों ओरसे भयानक युद्ध छिड़ गया। अनेकों हाथी, घोड़े, रथी, सारथि आदि देवासुर-संग्रामकी तरह उस युद्धमें कट-कटकर गिरने लगे। रक्तकी नदी बह चली। वीरवर श्रीशत्रुघ्नकी बाण-वर्षासे पीड़ित होकर कमठकी सेना भाग चली। कमठके कहनेपर उसके सारथिने रथको शत्रुघ्नके सामने खड़ा किया। उन दोनों योद्धाओंका द्वन्द्व युद्ध देखनेके लिये सम्पूर्ण देवता, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, नाग आदि आकाशमें स्थित हो गये। कमठके द्वारा छोड़े गये पिशाचास्त्रको श्रीशत्रुघ्नने गन्धर्वास्त्रसे काट गिराया। इससे सभी दानव भयभीत होकर भाग चले। कमठने अपनी भागती हुई सेनाको लौटाया और तिमिरास्त्रका प्रयोग किया। इससे दसों दिशाओंमें इतना अन्धकार छा गया कि किसीको अपना हाथतक नहीं दिखायी पड़ता था। तत्पश्चात् शत्रुघ्नने सूर्यास्त्र चलाकर उस अन्धकारको दूर करते हुए अष्टशूलमय तीक्ष्ण बाणसे उसके रथके चारों घोड़ों और सारथिको मार डाला। इसपर वह क्रूरकर्मा राक्षस वृक्ष लेकर शत्रुघ्नपर झपट पड़ा। तब श्रीशत्रुघ्नजीने अर्धचन्द्रास्त्रसे उसका मस्तक काट गिराया। कमठकी मृत्युसे प्रसन्न होकर देवोंने शत्रुघ्नजीकी स्तुति करते हुए उनपर पुष्प-वृष्टि की। इसके पश्चात् शत्रुघ्नजी यज्ञका घोड़ा लेकर भुवनेश्वर लौट आये।

यज्ञीय अश्व प्राप्त कर भगवान् श्रीरामने विधिवत् अपना अश्वमेध-यज्ञ पूर्ण किया। इस यज्ञके किये जानेसे भगवान् शंकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और वे भगवान् श्रीरामकी प्रार्थनापर एकाम्रक्षेत्रमें रामेश्वर-रूपसे प्रतिष्ठित हुए। इस रामेश्वर-तीर्थमें शिवोपासना करनेसे ऋद्धि, सिद्धि, स्वर्गसुख, क्षेम, आरोग्य एवं समस्त ऐश्वर्य व्यक्तिको उपलब्ध होते हैं। भगवान् शिवने स्वयं कहा है—

ददामि विपुलामृद्धिं सिद्धिं चापि महोत्तमाम्।
क्षेममारोग्यमैश्वर्यं सम्यक् स्वर्गमनुत्तमम्॥

(एकाम्रपुराण ४।५३।५४)

कपिलपुराण

कपिलपुराण बहुत अंशोंमें एकाम्रपुराणसे ही मिलता है। इन दोनोंमें उत्कल (उड़ीसा) प्रदेशकी विशेषकर यहाँके पुरुषोत्तम-क्षेत्र जगन्नाथपुरी एवं भुवनेश्वरकी महिमा है। अतः कपिलपुराण एक उपपुराण एवं स्थलपुराण है। इसमें २१ अध्याय एवं एक हजारके लगभग श्लोक हैं। पहले दो अध्यायोंमें उत्कलदेशकी प्रशंसा है। तीसरे-चौथे अध्यायोंमें राजा इन्द्रद्युम्नद्वारा विष्णुकी प्रार्थना करते हुए सो जाने तथा राजाको स्वप्नमें विष्णुके द्वारा पुरुषोत्तम-क्षेत्रमें जानेका निर्देश होता है। वहाँ जानेपर उन्हें नारदजीके द्वारा समुद्रमें काष्ठके बहनेकी सूचना मिलती है और विश्वकर्मांके द्वारा श्रीकृष्ण, बलभद्र और सुभद्राकी मूर्तिका निर्माण तथा उनकी प्रतिष्ठाका ब्रह्माके द्वारा आदेशका वर्णन है। इस पुराणमें चातुर्मासव्रतके विधानका विस्तृत उल्लेख है। बारह मासोंकी यात्राकी विस्तृत विधि एवं वर्णन-फल भी निरूपित है। इसमें अनेक तीर्थों और आश्रमोंके वर्णनके पश्चात् भार्गवी नदीके स्नानसे इक्कीस कुलोंके उद्धारका वर्णन प्राप्त होता है।

कथा-आख्यान—

जगन्नाथ-क्षेत्र

भगवान् विष्णुने इन्द्रद्युम्नको स्वप्नमें दर्शन देकर कहा कि लवणसागरके तटपर मेरा नीलाचलक्षेत्र है। यह क्षेत्र प्रलयकालमें भी नष्ट नहीं होता। यहाँ मैं मनुष्योंको मुक्ति प्रदान करता हूँ तथा वटपत्रके पुटमें वर्तमान रहता हूँ। वहाँ तुम जाओ, इन्द्रनील-शरीरके रूपमें तुम्हें मेरा दर्शन होगा।

जगन्नाथजीके दर्शनके लिये जाते हुए राजाने नीलपर्वतका दर्शन कर उसे नमस्कार किया। स्वर्णकूटसे आगे नीलपर्वतपर जगन्नाथजीके समीप जाते हुए राजाको देवर्षि नारद मिले, उन्होंने नारदजीसे पूछा—'आप त्रिकालज्ञ हैं, मेरा दक्षिण नेत्र और वामं अङ्ग स्फुरित हो रहा है, इसका कारण बतानेकी कृपा करें।' नारदजीने कहा—'आज भगवान् 'रोहिण-तीर्थ' चले गये हैं।' यह सुनकर इन्द्रद्युम्न पृथ्वीपर गिर पड़े। नारदजीने उन्हें आश्वस्त कर बतलाया कि ब्रह्माजीने आपके पास मुझे भेजा है। अभी जगन्नाथजी पुनः यहाँ आ जायँगे। इसी समय लोगोंमें कोलाहल मच गया कि शङ्ख-चक्रसे अङ्कित दारु जलमें तैर रहा है। कोलाहल सुनकर राजाने अतिशय प्रसन्न होकर नारदको अनेकशः प्रणाम किया। राजाने सबके साथ उस दारुको देखा और विश्वकर्माको बुलाकर श्रीकृष्ण, बलभद्र तथा सुभद्राकी तीन प्रतिमाएँ एवं सुदर्शन-स्तम्भ बनवाया।

राजा इन तीन प्रतिमाओंको मण्डपमें रखकर उनकी प्रतिष्ठाके लिये ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीके पास गये और प्रार्थना की कि इनकी प्रतिष्ठा कर आप मेरा मनोरथ पूर्ण करें। ब्रह्माने आकर देवताओंकी प्रतिष्ठा की और देवताओंने स्तुति की। तदनन्तर शङ्ख, चक्र, गदाधारी भगवान्ने प्रसन्न होकर कहा—'मैं अन्य क्षेत्रोंका परित्याग कर परार्धतक यहीं रहूँगा।' इन्द्रद्युम्न इनकी पूजा कर मुक्त हो गया। भगवान् पूर्वमें इन्द्रनील-स्वरूप थे। अब वे दारुके रूपमें वर्तमान हैं। इस क्षेत्रका निवासी शरीरान्त होनेपर विष्णुलोकको प्राप्त होता है। मानव सागरमें स्नान करके श्रीपुरुषोत्तमका दर्शन करनेपर ब्रह्महत्या आदि सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। यही मार्कण्डेय-तीर्थ है, यहाँ श्रीकृष्णने मार्कण्डेय-वटका निर्माण किया था। जहाँ स्नानकर देवताओंने अपने पदोंकी प्राप्ति की थी, वहाँ स्नानोपरान्त भगवान् शंकरका दर्शन करनेपर सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। नीलाचलसे दक्षिण यमेश्वरका दर्शन करनेपर मानव यमदण्डरहित हो शिवलोकमें जाता है तथा उसके पश्चिम अलाबुनाथ हैं, उनका दर्शन करके वह सफल मनोरथ हो जाता है। इसीके समीप कपालमोचन-लिङ्ग है, जिसके दर्शनसे ब्रह्महत्या-दोषसे मुक्त हो जाता है। जगन्नाथजीमें अपूप आदिके भक्षणसे मुक्ति मिल जाती है। वटेश्वरके दर्शनसे सभी पाप दूर हो जाते हैं। यह सभी क्षेत्रोंका राजा है।

इसके पुनीत वर्णनमें एक प्रसंग आया है—जाम्बवतीके पुत्र साम्बके शरीरमें कुष्ठ-रोग हो गया था और उन्होंने इसी क्षेत्रमें आकर मैत्रेयवनमें भगवान् सूर्यकी आराधना की, जिससे उन्हें कुष्ठ-रोगसे मुक्ति मिली। इसी पुरुषोत्तम-विरजा-क्षेत्रमें कपिलतीर्थ है। उसमें स्नान तथा विरजादेवीका दर्शन करनेसे सभी भोगों एवं मोक्षकी प्राप्ति होती है। एक पतिव्रता सर्पिणीके शापसे शप्त शृगालयोनिको प्राप्त राजा मान्धाताको वसिष्ठके आदेशसे विरजा-क्षेत्रमें जानेपर मुक्ति प्राप्त हुई।

यहींपर प्रसिद्ध मृत्युञ्जय तीर्थ एवं अनेक दूसरे गुप्त तीर्थ हैं। इसी स्थानमें मार्कण्डेयमुनिने मृत्युको जीता था। इसी विरजाक्षेत्रमें गन्धवती नदी बहती है, जिसके तटपर एकाम्रक (भुवनेश्वरनगर) है, जहाँ हरिहर-नामसे भगवान् शिव एवं विष्णु दोनों विराजित हैं। भगवान् विश्वनाथ वाराणसीको छोड़कर भुवनेश्वरमें निवास करते हैं। सभी तीर्थोंमें विशिष्ट विन्दुसरोवर भी यहीं है। यहाँ देवीके चरणतलोंमें शिव ले दीखते हैं। अतः उन्हें पादहरा कहते हैं। उनके दर्शनसे मनु वैष्णव-पदको प्राप्त करता है। एकाम्रक या भुवनेश्वरके वास निर्मल-हृदय पुरुषके कानमें विश्वनाथ तारक-मन्त्रका उपदे करते हैं। यहाँ तथा पुरीमें भगवान्‌को निवेदित नैवेद्यका भक्ष परम आवश्यक है। उससे सभी भोगैश्वर्योंकी प्राप्ति होती है।

एकाम्रक-क्षेत्र या भुवनेश्वरकी महिमामें कहा गया है वि इसका प्रलयकालमें भी विनाश नहीं होता। अतः मधुसूदन १ वैकुण्ठको छोड़कर वहीं निवास करते हैं। यहाँ भगवा श्रीरामके द्वारा श्रीरामेश्वर-मन्दिर एवं शिवलिङ्गकी स्थापना हु थी। उसके दर्शनसे सभी मनोरथोंकी सिद्धि होती है। यहींप केदारनाथ-लिङ्गके दर्शनसे नहुषको राज्यकी प्राप्ति हुई थी यहाँ एक सिद्धेश्वर-लिङ्ग है, जिसकी आराधनासे सभ कामनाओंकी प्राप्ति होती है।

कपिलावतारकी कथा

सृष्टिके प्रारम्भिक पाद्मकल्पके स्वायम्भुव-मन्वन्तरकी बात है। पितामह ब्रह्माजीने अपने मानसपुत्र प्रजापति कर्दमजीको मैथुनी-सृष्टिके लिये आज्ञा दी। पिताके आदेशसे कर्दमजीने सृष्टिके उद्देश्यसे तपोबल प्राप्त करनेके लिये सरस्वती नदीके पावन तटपर बिन्दुसर-तीर्थमें कठिन तपस्या प्रारम्भ की। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उन्हें दर्शन दिया। शङ्ख-चक्र-गदाधारी वे प्रभु गरुडपर आसीन थे। उनके वक्षःस्थलमें श्रीलक्ष्मीजी और कण्ठमें कौस्तुभमणि सुशोभित थी। प्रभु मधुर मुस्कान बिखेर रहे थे। उनकी ऐसी मनोरम झाँकी देखकर कर्दमजीको परम विस्मय हुआ कि जिस स्वरूपका वे अभीतक ध्यान कर रहे थे, उसी श्रीविग्रहने साक्षात् प्रकट होकर सामने दर्शन दिया। उनकी आँखोंसे प्रेमाश्रुकी धारा प्रवाहित होने लगी तथा कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वे दण्डवत् प्रणिपात कर प्रभुके चरणोंमें नतमस्तक हो गये और बोले—'नाथ! आपने दर्शन देकर मुझपर अत्यन्त कृपा की है। पितामहने मुझे सृष्टिकार्यकी आज्ञा दी है, किंतु बिना आपके अनुग्रहके ऐसा कैसे हो सकेगा? स्वामिन्! इसी निमित्त मैंने तप किया है कि मैं मैथुनी सृष्टिमें प्रवृत्त हो सकूँ। ऐसा मुझे वर प्रदान कीजिये।'

श्रीहरिने कहा—'प्रजापते! मेरी आराधना तो कभी भी निष्फल नहीं होती, फिर जिनका चित्त निरन्तर एकान्तरूपसे मुझमें ही लगा रहता है, उन तुम-जैसे महात्माओंके द्वारा की हुई उपासनाका तो और भी अधिक फल होता है। तुम्हारी मनःकामना अवश्य पूर्ण होगी। सप्तद्वीपा वसुमतीके चक्रवर्ती सम्राट् महाराज स्वायम्भुव मनु और महारानी शतरूपा दिव्य रूप, यौवन, शील आदि उदात्त गुणों तथा सभी सुलक्षणोंसे युक्त अपनी कन्या देवहूतिके साथ शीघ्र ही तुम्हारे पास आयेंगे। वह राजकन्या सर्वथा तुम्हारे योग्य है। महाराज मनु यथाविधि अपनी कन्या तुम्हें समर्पित करेंगे। उस देवीसे तुम्हें नौ कन्याएँ प्राप्त होंगी, जो मरीचि तथा वसिष्ठादि ऋषियोंसे विवाहित होकर स्रष्टाके सृष्टि-संवर्धनमें सहायक होंगी। महामुने! तदनन्तर मैं भी अपने अंश-कला-रूपसे तुम्हारे वीर्यद्वारा देवहूतिके गर्भसे अवतीर्ण होकर सांख्यशास्त्रकी रचना करूँगा (श्रीमद्भा० ३।२१।३२)।'

इतना कहकर भगवान् विष्णु अपने धामको पधारे। महर्षि कर्दम उसी बिन्दुसर-तीर्थमें अपने आश्रममें भगवान्‌के कथनानुसार महाराज मनुके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। निश्चित समयपर आदिराज महाराज मनु और साध्वी शतरूपा

अपनी कन्या देवहूतिके साथ उस परम मनोरम दिव्य आश्रममें पहुँचे। महाराज मनुने उस तेजस्वी मूर्तिको प्रणाम कर यों निवेदन किया—'मुनिश्रेष्ठ ! यह मेरी प्राणप्रिया पुत्री देवहूति है। इसने देवर्षि नारदके मुँहसे आपके अद्वितीय व्यक्तित्वकी प्रशंसा जबसे सुनी है, तबसे यह आपको पतिरूपमें वरण कर आपके दर्शनके लिये उत्कण्ठित है। मैं इसे आपको समर्पित करने आया हूँ। आप इसे स्वीकार कर हम सभीको अनुगृहीत करें।'

महर्षिने प्रसन्नतापूर्वक कहा—'राजन् ! मुझे यह स्वीकार है, किंतु मैं गृहस्थ-धर्मका तभीतक पालन करूँगा, जबतक कि संतान न उत्पन्न हो जाय। तदनन्तर मैं संन्यास धारण करूँगा।' महाराज मनुने रानी शतरूपा और देवहूतिकी ओर देखा तथा उनकी प्रसन्नमुद्रा देखकर वे देवहूतिको कर्दमजीको समर्पित कर अपनी राजधानी बर्हिष्मती नगरीमें लौट आये।

इधर साध्वी देवहूति कर्दमजीकी अनन्यभावसे सेवा करने लगीं। उन्होंने काम-वासना, दम्भ, द्वेष, लोभ, पाप और मदका त्याग कर बड़ी सावधानी और लगनके साथ पवित्रता, संयम और शुश्रूषा आदिसे उन्हें संतुष्ट कर लिया। वे पतिको दैवसे भी बढ़कर समझती थीं। यद्यपि देवहूति राजकुलमें पली थीं, तथापि उन्होंने अरण्यमें आश्रमोचित सभी मर्यादाओंका पालन किया। वे महर्षिकी तपश्चर्यामें सहभागिनी बनकर व्रतोपवासादि तथा देवपूजा आदिमें निरत रहने लगीं। वे समिधाएँ, कुश, पुष्प, जल आदि वनमें दूर-दूरतक जाकर ढूँढ़ लातीं, आश्रमको झाड़-पोंछकर गोमयसे लीपतीं तथा सभी प्रकारसे पवित्र रखतीं। स्वयं भी वे वल्कलधारिणी हो गयीं। कहाँ राजकुलोचित सौकुमार्यता और कहाँ अरण्यकी दारुण तपश्चर्या ? राजकन्या देवहूति दुर्बल हो गयीं। एक दिन महर्षि कर्दमका ध्यान उनकी ओर गया। उन्होंने कहा—'देवि ! तुमने मेरी सेवाके लिये अपना सर्वस्व मुझे अर्पण कर दिया है। मैं तुम्हारी अनन्यसेवासे अत्यन्त संतुष्ट हूँ, अतः तपस्या तथा धर्माचरणसे मुझे जो दिव्य शक्तियाँ और भगवत्प्रसाद-स्वरूप विभूतियाँ प्राप्त हुई हैं, उन दिव्य ऐश्वर्योंका तुम भोग करो।' देवहूतिने कहा—'प्राणनाथ ! आपने गृहस्थ-धर्मके पालनकी प्रतिज्ञा की थी, अतः यदि आप मेरी सेवासे संतुष्ट हैं तो आपका इस समय गृहस्थ-धर्मका पालन करना ही मेरे लिये सर्वाधिक प्रीतिकर एवं श्रेयस्कर होगा।'

उसी समय महर्षिके योग-प्रभावसे अत्यन्त अद्भुत दिव्य विमान प्रकट हुआ। देवी देवहूति अपने प्रियतम परम तपस्वी कर्दमजीके साथ विमानपर आरूढ़ हुईं। उसमें सभी लोकोत्तर ऐश्वर्य विद्यमान थे। देवहूतिने अपने पतिके साथ दीर्घकालतक पृथ्वी, आकाश तथा अन्यान्य लोकोंमें भ्रमण किया और अनेक देवोद्यानों तथा रमणीय सरोवरोंमें विहार किया। अन्तमें वे अपने आश्रमपर लौट आये।

कालान्तरमें यथासमय देवहूतिको नौ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। वे सभी सर्वाङ्गसुन्दरी थीं तथा उनके शरीरसे दिव्य सुगन्ध निकल रही थी। महर्षि कर्दमजीका गृहस्थ-धर्म पूर्ण हो चुका था और वे प्रतिज्ञानुसार तपश्चर्याके लिये आश्रम छोड़कर ज्यों ही जानेको उद्यत हुए, त्यों ही देवी देवहूतिने रोते हुए उनके चरण पकड़ लिये और कहा—'प्रभो ! यद्यपि आपकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी है, मैं उसमें बाधक नहीं बनूँगी, किंतु नाथ ! आपके चले जानेपर मेरा कौन आश्रय होगा, आपके बिना मेरा जीवन भी व्यर्थ ही है। आप-जैसे तपोधनको पाकर भी मैंने अपना समय भोगोंमें ही व्यतीत कर दिया। मैं मुक्तिलाभके लिये कुछ भी न कर सकी। अतः मुझे आप शरण दें। मैं आपकी शरणागत हूँ। मेरी रक्षा करें।' उनकी इस कातर-वाणीको सुनकर महर्षि विचारमग्न हो गये और कुछ देर बाद बोले—'निर्दोष राजकुमारी ! तुम अपने विषयमें इस प्रकार खेद न करो, तुम्हारे गर्भमें अविनाशी भगवान् विष्णु शीघ्र ही पधारेंगे।' पतिदेवके इन मङ्गलमय वचनोंको सुनकर देवहूति अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं और नारायणके ध्यानमें निमग्न हो गयीं। कुछ समय बाद माता देवहूतिके गर्भसे साक्षात् नारायण प्रकट हुए। उस समय चारों दिशाओंमें प्रसन्नता छा गयी। पृथ्वी और आकाशमें सर्वत्र अलौकिक आनन्द छा गया। भगवान् नारायणका दर्शन करने ब्रह्मादि देवगण मरीचि आदि मुनिगणोंके साथ महर्षि कर्दमके आश्रममें आये। ब्रह्माजीने कर्दम एवं देवहूतिसे कहा—

'मुने ! मैं जानता हूँ, जो सम्पूर्ण प्राणियोंकी निधि हैं—उनके अभीष्ट मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं, वे आदिपुरुष श्रीनारायण ही अपनी योगमायासे कपिलके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं।' फिर देवहूतिसे बोले—'राजकुमारी ! सुनहरे बाल,

कमल-जैसे विशाल नेत्र और कमलाङ्कित चरणकमलोंवाले शिशुके रूपमें कैटभासुरको मारनेवाले साक्षात् श्रीहरिने ही ज्ञान-विज्ञानद्वारा कर्मोंकी वासनाओंका मूलोच्छेद करनेके लिये तेरे गर्भमें प्रवेश किया है। वे अविद्याजनित मोहकी ग्रन्थियोंको काटकर पृथ्वीमें स्वच्छन्द विचरण करेंगे। ये सिद्धगणोंके स्वामी और सांख्याचार्योंके लिये भी मान्य होंगे, लोकमें तेरी कीर्तिका विस्तार करेंगे और 'कपिल' नामसे विख्यात होंगे (श्रीमद्भा० ३।२४।१६-१९)।' यह कहकर ब्रह्माजी सनकादि तथा नारदके साथ ब्रह्मलोकको चले गये।

महर्षि कर्दमने ब्रह्माजीके आज्ञानुसार अपनी पवित्र नौ कन्याओं—कला नामकी कन्या महर्षि मरीचिको, अनसूया अत्रिको, श्रद्धा अङ्गिराको, हविर्भू पुलस्त्यको, गति पुलहको, क्रिया क्रतुको, ख्याति भृगुको, अरुन्धती वसिष्ठको और शान्ति अथर्वा ऋषिको सविधि समर्पित कर दी। इस प्रकार विवाह हो जानेपर वे सब आनन्दपूर्वक अपने-अपने पतियोंके साथ चली गयीं।

महर्षि कर्दम एक दिन पुत्र-रूपमें अवतरित भगवान् कपिलके पास गये और प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे—'प्रभो! आप साक्षात् नारायण हैं, आपने सांख्ययोगके उपदेश-द्वारा जीवोंका कल्याण करनेके लिये मेरे घरमें अवतार ग्रहण किया है। आपको पाकर मेरा जन्म सफल हो गया, मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो गये। अब मुझे इस संसार तथा शरीरसे कोई प्रयोजन नहीं है। मैं आपकी शरण हूँ। मेरी इच्छा है कि अब मैं संन्यास-मार्गका आश्रय ग्रहण कर आपका चिन्तन करता रहूँ। अतः भगवन्! आप मुझपर कृपा करें।' भक्तवत्सल नारायण कपिलसे तत्त्वज्ञानका उपदेश प्राप्त कर शुद्ध सात्त्विक बुद्धि-सम्पन्न होकर महर्षि कर्दम तपस्याके लिये वनमें चले गये और अन्तमें उन्होंने नारायणका परमपद प्राप्त किया।

अब उस आश्रममें केवल देवहूति अकेली रह गयी थीं। केवल पुत्र-रूपमें नारायण कपिल थे, वे सदा जीवोंके कल्याणमें ही निरत रहते थे। यह देखकर माता देवहूति भी वैराग्यकी साक्षात् प्रतिमूर्ति हो गयी थीं, उन्हें उपलब्ध ऐश्वर्यमें अनुराग नहीं रह गया था। सबको त्यागकर एक दिन वे भगवान् कपिलके पास पहुँचीं। उन्होंने देखा कि वे एक सघन लतामण्डपके बीचमें समाधि लगाये बैठे हैं। देवीने उनके चरणोंमें प्रणाम किया, भगवान् कपिलकी समाधि टूटी, उन्होंने कहा—'माँ! यह आप क्या कर रही हैं? मैं तो आपका पुत्र हूँ। मुझे आप आज्ञा प्रदान करें।'

देवहूतिने कहा—'पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मुझे आपके विषयमें सब कुछ बता रखा है। मुझे मालूम है कि आप साक्षात् नारायण हैं। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये आपने इस पृथ्वीपर अवतार धारण किया है। मैं बड़ी भाग्यशालिनी हूँ जो मुझे नारायणकी माता कहलानेका गौरव प्राप्त हुआ, किंतु प्रभो! यह देह-गेहका माया-मोह बड़ा प्रबल है। संसारी जीव इस आसक्तिके व्यामोहमें भटक रहे हैं। आप सभीका उद्धार करें। मैं भी आपकी शरणागत हूँ, मुझे भी आप तत्त्वज्ञानके उपदेशसे अनुगृहीत करें।'

भगवान् कपिल माताकी तत्त्वमयी, सार्थक एवं कल्याण-मयी वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने माताको बताया—'इस जीवके बन्धन और मोक्षका कारण मन ही माना गया है। विषयोंमें आसक्त होनेपर वह बन्धनका हेतु होता है और परमात्मामें अनुरक्त होनेपर वही मोक्षका कारण बन जाता है (श्रीमद्भा० ३।२५।१५)। श्रीहरिके प्रति की हुई भक्ति ही सर्वोत्तम मङ्गलमय साधन है। यही भक्तिमार्ग सबके लिये सुलभ और सरल है। जो मेरे परायण रहकर मेरी पवित्र कथाओंका श्रवण-कीर्तन करते हैं तथा मुझमें ही चित्त लगाये रहते हैं, उन भक्तोंका कल्याण हो जाता है। सत्पुरुषोंके समागमसे भगवत्कथाओंमें रुचि उत्पन्न होती है, उससे श्रद्धा, प्रेम और भक्तिका विकास होता है। भक्तिके विकाससे लौकिक तथा पारलौकिक सुखोंमें विराग उत्पन्न होता है और तब भक्त मुझे प्राप्त करता है।' पुनः माता देवहूतिके पूछनेपर भगवान् कपिलने उन्हें महदादि तत्त्वोंकी उत्पत्तिका क्रम समझाकर प्रकृति और पुरुषका विवेक प्राप्त हो जानेपर मोक्ष-की प्राप्ति होती है—यह बताया। फिर उन्होंने पुरुषोंकी देह-गेहमें आसक्तिका कुपरिणाम, जीवकी गति एवं अष्टाङ्गयोगकी विधि बतलाते हुए विस्तारपूर्वक भक्तिके गूढ़ तत्त्वोंको समझाया।

भगवान् कपिलके इन दिव्योपदेशोंसे माता देवहूतिका अज्ञानान्धकार दूर हो गया। भगवान् कपिलद्वारा [illegible]

देवहूतिको जो दिव्योपदेश श्रीमद्भागवतमें दिया गया है, वह 'कपिलगीता'के नामसे विख्यात है। देवहूतिने आनन्दित होते हुए उन्हें प्रणाम किया और स्तुति की।

परमपुरुष भगवान् कपिल अपनी माता देवहूतिसे 'आप भक्ति एवं योगमार्गका आश्रय ग्रहण कर अन्तमें परमधामको प्राप्त करेंगी'—ऐसा कहकर उन्हें उसी सिद्धाश्रममें छोड़ स्वयं उनकी आज्ञा लेकर वहाँसे ईशान कोणकी ओर चल दिये। माता देवहूति अपने पुत्रद्वारा निर्दिष्ट योगसाधनके द्वारा योगाभ्यास करती हुई समाधिमें स्थित हो गयीं और अन्तमें उन्होंने नित्यमुक्त परमात्मस्वरूप श्रीभगवान्को प्राप्त किया।

भगवान् कपिल वहाँसे चलकर उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ भागीरथी गङ्गा समुद्रमें मिली हैं। वहाँ स्वयं समुद्रने उनका पूजन कर उन्हें स्थान दिया। वे तीनों लोकोंको शान्ति प्रदान करनेके लिये योगमार्गका अवलम्बन कर समाधिमें स्थित हो गये। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, मुनि, अप्सराएँ तथा सांख्याचार्यगण उनका स्तवन करते रहते हैं (श्रीमद्भा० ३। ३३। ३४-३५)।

सांख्यदर्शनके प्रणेता भगवान् कपिल आज भी अजर-अमर हैं। इनका स्थान गङ्गासागरमें सिद्धोंके बीचमें है। प्रतिवर्ष मकरसंक्रान्तिके दिन दर्शनार्थी इनके आश्रम तथा श्रीविग्रहका दर्शन करते हैं। इनके द्वारा विरचित 'तत्त्व-समास' नामक ग्रन्थमें सांख्यके पचीस तत्त्वोंका (प्रकृति+पुरुष+महत्+अहंकार+पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ+पाँच कर्मेन्द्रियाँ+उभयेन्द्रिय मन+पाँच तन्मात्राएँ और पाँच महाभूत) परिगणन है। तत्त्वोंके संख्या-परिगणनसे ही यह शास्त्र सांख्यदर्शन कहलाता है। श्रीमद्भागवतमें इन्होंने भक्तितत्त्वको भी सांख्यमें सम्मिलित कर लिया है, अतः कपिलका भागवतीय सांख्य 'सेश्वर-सांख्य' कहलाता है। शेषको 'निरीश्वर-सांख्य' कहते हैं। गीताका सांख्य एक प्रकारसे वेदान्तदर्शनसे मिलता है।
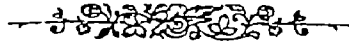
दत्तपुराण

दत्तात्रेयके सम्बन्धमें सभी जाननेयोग्य विषयोंका उल्लेख दत्तपुराण या दत्तात्रेयपुराणमें प्राप्त होता है। दत्तात्रेयकी कथा अनेक महापुराणों एवं आगमशास्त्रोंमें वर्णित है, किंतु इस पुराणमें उनकी जीवनीके साथ आराधनाविधि भी विस्तारसे निरूपित है। इस पुराणमें वैष्णव-धर्म, योगसिद्धियाँ एवं उनके साधन, सप्तद्वीपोंका परिचय, सूर्यवंश, चन्द्रवंश तथा मन्वन्तर आदिके परिचयके द्वारा पुराणोंके लक्षणका समन्वय सुन्दर कथाओंके उदाहरणके द्वारा हुआ है। वर्णाश्रमधर्म, ब्रह्मचारियोंके कर्तव्य, गृहस्थोंके कर्तव्य, श्राद्धपद्धति, कर्मविपाक, तिथियोंका निर्णय, दुष्कर्मोंका परिणाम, संस्कारोंका ज्ञान, वानप्रस्थ एवं संन्यास-धर्म आदि विषय इसमें मुख्यरूपसे विवेचित हैं। साथ ही दशावतारोंकी कथा, प्रह्लाद-चरित्र, कार्तवीर्य-चरित्र, परशुराम-चरित्र तथा मदालसा आदिके उपदेशपरक अनेक श्रेष्ठ आख्यान भी वर्णित हैं। यह पुराण अत्यन्त रोचक तथा मनोरम शैलीमें उपनिबद्ध है। इसकी एक विशिष्ट बात यह है कि इसके आरम्भ तथा अन्तमें ऋग्वेदके प्रारम्भिक तथा अन्तिम ऋचाओंको प्रायः यथावत्-रूपमें ग्रहण किया गया है। इस पुराणपर ऋग्वेद, श्रीमद्भागवत तथा मार्कण्डेयपुराणका विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है। ऋग्वेदकी भाँति ही यह पुराण अष्टक तथा काण्डोंमें विभक्त है। इसमें तीन काण्ड तथा आठ अष्टक हैं। प्रथम ज्ञानकाण्डमें प्रथम तथा द्वितीय अष्टक, द्वितीय उपासनाकाण्डमें तृतीयसे षष्ठपर्यन्त चार अष्टक एवं अन्तिम कर्मकाण्डमें सप्तम तथा अष्टम—ये दो अष्टक हैं। अष्टकोंके अन्तर्गत अध्याय हैं। प्रत्येक अष्टकमें आठ-आठ अध्याय हैं। इस प्रकार इस पुराणकी अध्याय-संख्या चौंसठ और श्लोक-संख्या लगभग चार हजार है। इस पुराणकी योग-चर्या अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

कथा-आख्यान—

भगवान् दत्तात्रेयकी अवतार-कथा

अत्रि मुनिके तप करनेपर '**दत्तो मयाहमिति यद् भगवान् स दत्तः**' (श्रीमद्भा० २ । ७ । ४) 'मैंने अपने-आपको तुम्हें दे दिया'—श्रीविष्णुके ऐसा कहनेसे विष्णु भगवान् ही अत्रिके पुत्र-रूपमें अवतरित हुए और दत्त कहलाये। अत्रिका पुत्र होनेके कारण वे आत्रेय भी कहे जाते हैं। दत्त तथा आत्रेयके संयोगसे वे 'दत्तात्रेय'के रूपमें प्रसिद्धिको प्राप्त हुए। मार्कण्डेयपुराण (अ० १६—१९, ३८—४३), ब्रह्मपुराण (अ० ११७ तथा २१३), श्रीमद्भागवत (७।५।११), स्कन्दपुराण (१।११), मत्स्य तथा भविष्य आदि पुराणोंमें इनके दिव्य चरित्रका आख्यान विस्तारसे वर्णित है। पुराणोंके साथ ही महाभारत (सभापर्व ३९, अश्वमेधपर्व, अनुशासनपर्व १३८, १५२-१५३)में भी भगवान् दत्तात्रेयजीके विषयमें महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध होती है। अवधूतोपनिषद्, अवधूतगीता, वज्रकवच, शाण्डिल्योपनिषद्, दत्तोपनिषद्, त्रिपुरोपनिषद् आदिके ये ही आचार्य एवं वक्ता हैं। त्रिपुरारहस्यमें महामुनि दत्तात्रेयजीको भगवान् विष्णुका अंशावतार और योगीश्वर माना गया है, साथ ही वाममार्गका महावीर पथिक भी कहा गया है—

श्रीविष्णोरंशयोगीशो दत्तात्रेयो महामुनिः ।
गूढचर्यां चरँल्लोके भक्तवत्सल एधते ॥

(त्रिपुरारहस्य मा० ख० ३)

योगेश्वर दत्तात्रेयकी माताका नाम अनसूया था, जो सदाचारपरायणा तथा परम साध्वी थीं। उनका पातिव्रत्य जगत्-प्रसिद्ध है। एक बारकी बात है, भगवती श्रीलक्ष्मीजी, श्रीसतीजी और श्रीसरस्वतीदेवीको अपने पातिव्रत्यपर अत्यन्त गर्व हो गया था। तीनोंका यह सोचना था कि इस त्रिलोकीमें और कोई भी स्त्री हमसे बढ़कर पतिव्रता नहीं हो सकती। भगवान्को भक्तका अभिमान कदापि सहन नहीं होता। उन्होंने अद्भुत लीला करनेकी सोची। भक्तवत्सल भगवान्ने देवर्षि नारदके मनमें प्रेरणा उत्पन्न की। नारदजी घूमते हुए देवलोक पहुँचे और बारी-बारीसे तीनों देवियोंके पास गये तथा उन्होंने अत्रिपत्नी अनसूयाके पातिव्रत्यके सामने उनके सतीत्वको नगण्य बताया। तब तीनोंने क्रमशः अपने-अपने स्वामी—विष्णु, महेश, ब्रह्मासे देवर्षि नारदकी कही हुई बात बतलायी और यह हठ किया कि 'जिस-किसी भी उपायसे अनसूयाका पातिव्रत्य भङ्ग होना चाहिये।' देवोंने बहुत समझाया, किंतु उनकी एक भी न चली। स्त्री-हठको पूरा करनेके लिये वे तीनों साधुवेश धारणकर भगवती मन्दाकिनीके पावन तटपर स्थित महामुनि अत्रिके आश्रममें पहुँचे। महर्षि अत्रि उस समय नदीमें स्नानादि नित्य-क्रियाके लिये गये हुए थे। अतिथि-रूपमें आये हुए उन तीनों ब्राह्मण-वेषधारियोंका सती अनसूया पाद्य-अर्घ्य-कन्द-मूलादिसे आतिथ्य करनेको उद्यत हुई, किंतु उन्होंने कहा—'देवि ! हम आपका आतिथ्य तबतक स्वीकार नहीं करेंगे, जबतक कि आप निर्वस्त्र होकर हमारे सामने नहीं आती हैं।'

ऐसी बात सुनकर प्रथम तो अनसूया अवाक् रह गयीं, किंतु फिर उन्होंने सोचा—'अतिथि देव-तुल्य होते हैं, वे सर्वदा पूज्य हैं। जैसे भी हो, मुझे इनका सत्कार करना ही है।' उन्होंने श्रीहरिका स्मरण किया और उन्हींकी लीला समझकर अपने स्वामी भगवान् अत्रिका ध्यान किया तथा यह संकल्प किया कि 'यदि मेरा पातिव्रत्य-धर्म सत्य है तो ये तीनों छः-छः मासके शिशु हो जायँ।' संकल्प-वाक्य पूर्ण ही हुआ था कि छद्मवेषधारी ब्रह्मा, विष्णु, महेश नन्हे-से शिशु होकर रोने लगे। तब माताने उन्हें गोदमें लेकर स्तनपान कराया। स्तनपानसे वे तीनों अनसूयाके पुत्र-रूप ही हो गये और वे उनका पालन-पोषण करने लगीं।

इधर देवलोकमें अपने-अपने स्थानोंपर तीनों देवियाँ अत्यन्त चिन्तित हो उठीं कि समय तो लौटनेका हो गया, किंतु अभीतक वे नहीं आये। नारदजीने उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाया, जिसे सुनकर वे आश्चर्यचकित हो उठीं। फिर तो वे तीनों अनसूयाके पास आयीं, उनसे क्षमा माँगी तथा अपने-अपने पतिदेवोंकी याचना की। देवी अनसूयाने पुनः अपने पातिव्रत्य-बलसे उन्हें यथावत् पूर्वरूपमें कर दिया। तीनों देवोंने सती अनसूयाके पातिव्रत्यसे प्रसन्न हो वर माँगनेके लिये कहा। सतीने कहा—'देवगण ! यदि आप सब मुझपर प्रसन्न हैं तो पुत्र-रूपमें मुझे प्राप्त हों।' 'तथास्तु' कहकर तीनों

देव अपनी-अपनी देवियोंके साथ अनसूयाका ध्यान करते हुए अपने-अपने लोकोंको प्रस्थान किये।

कालान्तरमें ये ही तीनों देव अनसूयाके गर्भसे प्रकट हुए। ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा, शंकरके अंशसे दुर्वासा तथा विष्णुके अंशसे दत्तात्रेयजीका जन्म हुआ। विष्णुके अंशावतारी यही दत्तात्रेय महायोगीश्वर कहलाये (मार्क० १७।११, भाग० ४।१।१५)।

विष्णुके रूपमें अवतरित होकर भगवान् दत्तने जगत्का बड़ा ही उपकार किया है। इनकी प्रकृति शान्त थी। इन्होंने चौबीस[1] गुरुओंसे दिव्य भावपूर्ण शिक्षा ग्रहणकर अन्तमें विरक्ति ली थी और कार्तिकेय, श्रीगणेश, प्रह्लाद, यदु, अलर्क, राजा पुरूरवा, आयु, परशुराम तथा हैहयाधिपति कार्तवीर्य आदिको योगविद्या एवं अध्यात्मविद्याका उपदेश दिया था। ये जीवन्मुक्त होकर यावज्जीवन सद्गुरुके रूपमें अपने भक्तोंको अनुगृहीत करते हुए विचरण करते रहे (भाग० २।७)। भगवान् शंकराचार्य, गोरक्षनाथ तथा सिद्धनागार्जुनादि इन्हींकी कृपापात्रताको प्राप्त हुए। ये परम भक्तवत्सल कहे गये हैं। भक्तके स्मरण करते ही ये तत्क्षण उसके पास पहुँच जाते हैं, इसीलिये इन्हें—'स्मृतिगामी' तथा 'स्मृतिमात्रानुगन्ता' कहा गया है।

पुराणोंमें इनका जो स्वरूप प्राप्त होता है, उससे यह निश्चित होता है कि ये अवधूत-विद्याके आद्य आचार्य थे। इनके अवधूत होनेका इससे प्रबल प्रमाण और क्या हो सकता है कि ये प्रातःकाल वाराणसीमें स्नान करते हैं, कोल्हापुरके देवी-मन्दिरमें जप-ध्यान करते हैं, माहुरीपुर (मातापुर) में भिक्षा ग्रहण करते हैं तथा सह्याद्रिमें विश्राम करते हैं—

वाराणसीपुरस्नायी कोल्हापुरजपादरः।
माहुरीपुरभिक्षाशी सह्यशायी दिगम्बरः॥

(दत्तात्रेय-वज्रकवच ३)

पद्मपुराण-भूमिखण्डके वर्णनसे ज्ञात होता है कि भगवान् धर्मका साक्षात्कार केवल दत्तात्रेयजीको हुआ था। इसीलिये ये 'धर्मविग्रही' भी कहलाते हैं। ये श्रीविद्याके परम आचार्य हैं। परशुरामजीको इन्होंने अधिकारी जानकर श्रीविद्याका उपदेश किया था। उनकी परा-विद्याका उपदेश त्रिपुरारहस्य-माहात्म्य-खण्डके नामसे प्रसिद्ध है। ये सिद्धोंके परम आचार्य कहे गये हैं। दासोपन्त, महानुभाव, गोसाईं तथा गुरुचरित्र इनके नामपर अनेक सम्प्रदाय हैं। इनका दत्त-सम्प्रदाय दक्षिण भारतमें विशेष प्रसिद्ध है। 'गिरनार' श्रीदत्तात्रेयजीका सिद्ध पीठ है। त्रिपुरारहस्यके अनुसार इनका एक आश्रम गन्धमादन पर्वतपर भी है। इनकी गुरुचरण-पादुकाएँ वाराणसी तथा आबूपर्वत आदि कई स्थानोंमें हैं। इनका बीज-मन्त्र 'द्राँ' है। इनके दर्शन अब भी होते हैं।

श्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराण

पुराणवाङ्मयमें श्रीविष्णुधर्मोत्तरका विशिष्ट स्थान है। मुख्यतः यह वैष्णवपुराण है। यद्यपि इसकी गणना उपपुराणोंमें की जाती है, किंतु नारदपुराणने इसे विष्णुपुराणका ही उत्तरभाग माना है जैसा कि इसके नामार्थसे भी स्पष्ट है। नारदपुराणके ९४वें अध्यायमें श्लोक एकसे सोलहतक विष्णुपुराणके छहों अंशोंके विषयोंकी सूची बतानेके अनन्तर कहा गया है कि इसके आगे 'विष्णुधर्मोत्तर' है, जिसमें नानाप्रकारकी धर्म-कथाओं, पवित्र व्रतों, यम-नियमों, सर्वलोकोपकारी विविध विद्याओंका निर्देश किया गया है—

---

[1] इनके चौबीस गुरुओंके नाम भागवतमें इस प्रकार आये हैं—पृथ्वी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग, भौंरा या मधुमक्खी, हाथी, शहद निकालनेवाला, हरिन, मछली, पिङ्गला वेश्या, कुररीपक्षी, बालक, कुँआरी कन्या, बाण बनानेवाला, सर्प, मकड़ी और भृङ्गी कीट (११।७।३३-३४)।

अतः परं तु सूतेन शौनकादिभिरादरात् ॥
पृष्टेन चोदिताः शश्वद्विष्णुधर्मोत्तराह्वयाः । नानाधर्मकथाःपुण्या व्रतानि नियमा यमाः ॥
धर्मशास्त्रं चार्थशास्त्रं वेदान्तं ज्यौतिषं तथा । नानाविद्यास्तथा प्रोक्ताः सर्वलोकोपकारिकाः ॥

(ना० पु० ९४ । १७-२०)

लिङ्गपुराणके अतिरिक्त सभी पुराण विष्णुपुराणको २३ या २४ हजार श्लोकोंका ग्रन्थ बतलाते हैं, पर वर्तमानमें विष्णुपुराणकी उपलब्ध मुद्रित प्रतियोंमें लगभग छः हजारके आस-पास ही श्लोक मिलते हैं, अतः अवशिष्ट लगभग २० हजार श्लोकोंवाले विष्णुधर्मोत्तरको विष्णुपुराणका ही उत्तर भाग समझना चाहिये।

वर्ण्य विषय

यद्यपि अग्निपुराण, गरुडपुराण तथा नारदपुराणको उत्कृष्टतम विश्वकोषोंमें गिना जाता है, किंतु श्रीविष्णुधर्मोत्तर इन तीनोंसे विशाल है और अपेक्षाकृत अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भी है। यह न केवल कोष ही है प्रत्युत महाकोष है। इसके तृतीय खण्डमें हंसगीताके प्रायः ३०० अध्यायोंमें एक-एक अध्यायमें एक-एक विषयका विस्तारसे विवेचन है। इस पुराणमें सभी विद्याओं तथा ज्ञान-विज्ञानका समावेश है। इसके वचन हेमाद्रि, स्मृतिचन्द्रिका, निर्णयसिन्धु, स्मृतिरत्नाकर, कृत्यकल्पतरु, मदनपारिजात आदि निबन्ध-ग्रन्थोंमें तथा प्राचीन टीकाओंमें प्राप्त होते हैं। यह पुराण तीन खण्डोंमें विभक्त है।

प्रथमखण्ड—इसमें २६९ अध्याय हैं। आरम्भमें नारायणसे सृष्टिका उद्भव तथा उसके विस्तारका वर्णन है। तदनन्तर वराहावतार, पृथ्वी आदि सात लोकों, जम्बूद्वीप, नवविधवर्षोंमें भारतवर्ष, सात कुलाचल पर्वतों, मधु-कैटभ-आख्यान, सगरोपाख्यान, भगीरथचरित्र, गङ्गावतरण, दत्तात्रेय-चरित्र, कार्तवीर्य-चरित्र, जमदग्नि, गाधि, विश्वामित्र, माता रेणुका तथा मुनिवर परशुराम आदिके आख्यान विस्तारसे वर्णित हैं।

५१ से ६५ तकके अध्याय शंकरगीताके नामसे कहे गये हैं। इसमें भगवान् विष्णु एवं उनकी उपासनापद्धतिपर विस्तारसे प्रकाश डाला गया है। इसके ५२ वें अध्यायमें एकमात्र, अनिर्देश्य, अक्षरस्वरूप, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी आदिदेव जगन्नाथ विष्णुको ही सर्वोपरि ध्येय, स्मरणीय तत्त्व बतलाया गया है। (इस अध्यायमें श्रीमद्भगवद्गीताके १३ वें अध्यायके कितने ही श्लोक हैं)। ५६ वें अध्यायमें भगवान्‌की दिव्य विभूतियोंका वर्णन है।(इस प्रकारके वर्णन गीता अध्याय १०, भागवत स्कन्ध ११ । २० आदिमें भी प्राप्त होते हैं)। इसके ५८ वें अध्यायमें भगवान् केशवके तुष्टिकारी साधनों, क्रियाकलापोंका कथन है। इस अध्यायके अधिकांश श्लोकोंके चतुर्थ चरणमें '**तस्य तुष्यति केशवः**' आता है। वे श्लोक बड़े हृदयग्राही हैं। यथा—

शृणुते सर्वधर्मांश्च सर्वान् देवान् नमस्यति। अनसूयुर्जितक्रोधस्तस्य तुष्यति केशवः ॥ (१।५८।८)

'जो सभी सद्धर्मोंकी बातोंको आदरसे सुनता है, सभी देवताओंको प्रणाम करता है, किसीसे ईर्ष्या, द्वेष नहीं करता, क्रुद्ध नहीं होता, उसपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं।'

विवरण प्राप्त होता है। भरत तथा गन्धर्वोंके युद्धका सुन्दर चित्रण हुआ है। इसके आगे शिवचरित्र, विश्वसर्ग तथा विष्णुशयनोत्सव आदिकी कथाएँ हैं।

द्वितीय खण्ड—इस खण्डमें १८३ अध्याय हैं, जिनमें विस्तारसे राजधर्मका निरूपण है। इतना विस्तृत राजनीतिका वर्णन और कहीं नहीं हुआ है। साथ ही राजोपयोगी धनुर्विद्या, ज्योतिर्विद्या, शकुनशास्त्र, रत्नशास्त्र, शान्तिविधान, अश्व, गज, वृक्ष-लक्षण, चिकित्सा आदिपर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। वर्णाश्रमधर्म, सदाचार, दान-व्रत, प्रायश्चित्त आदिका भी विस्तारसे वर्णन है। इसमें ३५ से ४१ अध्यायोंमें 'पातिव्रत' के प्रसङ्गमें 'सावित्री' का मनोरम आख्यान वर्णित है।

तृतीय खण्ड—यह दोनों खण्डोंसे बड़ा है। इसमें ३५५ अध्याय हैं। इसमें अनेक शास्त्रों तथा विद्याओंका समावेश दीखता है। चित्रसूत्र, प्रतिमाशास्त्र, साहित्यशास्त्र, संगीतशास्त्र, कामशास्त्र, नृत्यशास्त्र, छन्दःशास्त्र, न्यायशास्त्र, कोशविद्या, काव्यशास्त्र, राजशास्त्र, वास्तुशास्त्र, ज्योतिष-शास्त्र, शकुनशास्त्र, धनुर्वेद तथा शस्त्र-विद्याओंका वर्णन आरम्भसे २२६ अध्यायोंतक है। बीच-बीचमें यज्ञ, हवन, दान, पूजा तथा प्रतिष्ठा आदिकी विस्तृत विधियाँ भी वर्णित हैं।

अध्याय २२७ से ३४२ तक विविध धर्मोंका वर्णन है, जो हंसगीताके नामसे विख्यात है। इसमें मुख्य-रूपसे वर्णधर्म, आश्रमधर्म, भक्ष्याभक्ष्यनिरूपण, द्रव्यशुद्धि, शौच-स्नाननिरूपण, जपविधि, प्रायश्चित्त, धर्ममहिमा, दान-तप-गुरु-वृद्ध-सेवादिका फल, लोभ-मोहादि-दोषदर्शन, ज्ञान, सत्य, तप, शौर्य, अहिंसा, क्षमा, सदाचार, तीर्थ, श्रद्धा आदिकी महिमा, अष्टाङ्गयोग, यज्ञ-यागादि, गोसेवा, इष्टापूर्तमहिमा, विविध दान, राजधर्म, वैष्णवधर्म तथा वैष्णवभक्तिका वर्णन है। हंसगीता अत्यन्त उपादेय है, बीच-बीचमें आये हुए उपदेश अत्यन्त ही मार्मिक हैं।

अध्याय ३४३ से ३५५ तक पुनः वैष्णवभक्तिका माहात्म्य, अपराजिता विद्याका वर्णन, विष्णुस्तुति तथा भगवान्के विराट् स्वरूपका वर्णन और उनके अष्टाक्षर तथा द्वादशाक्षर-मन्त्रकी महिमाका कथन तथा नृसिंह-स्तुति वर्णित है और बीच-बीचमें अनेक तीर्थ, पर्वत, नदियों, देवस्थानों एवं ऋषि-आश्रमोंका भी वर्णन हुआ है।

महामुनि मार्कण्डेय तथा धर्मात्मा राजा वज्रके संवाद-रूपमें वर्णित यह विष्णुधर्मोत्तरपुराण सर्वथा अभीष्टप्रदायक, पापविनाशक, पुण्यप्रद, चतुर्विध पुरुषार्थप्रदाता और भगवद्भक्तिसे ओतप्रोत है।

कथा-आख्यान—

भरतद्वारा शैलूषवंशी गन्धर्वोंका उत्सादन

प्राचीन कालमें महानद सिन्धुका उभय-तटवर्ती प्रदेश गान्धार या काम्बोजके नामसे प्रसिद्ध था। वहाँके निवासी शैलूष-पुत्र और उनके वंशज गन्धर्व नामसे विख्यात थे। ये गन्धर्व स्वर्गीय गन्धर्वोंसे भिन्न आचारयुक्त स्वच्छन्दाचारी मायावी क्रूरकर्मा तथा हिंसा-विहाररत रहते थे। इनसे पश्चिम भारतके दूसरे सभी राजा अत्यन्त पीड़ित और उद्विग्न हो गये थे। यहाँतक कि स्वर्गीय गन्धर्वोंके राजा चित्ररथने भी उनके दुराचारसे बार-बार खिन्न होकर उन्हें मनुष्यद्वारा नष्ट होनेका शाप दे दिया था।

गान्धार देशके सर्मीपस्थ केकय देशके अधिपति भरतके मामा, महाराज युधाजित् भी शैलूषके अत्याचारोंसे अत्यन्त उद्विग्न थे। उन्होंने गन्धर्वोंको दण्डित करानेके लिये सभी राजाओंकी सम्मतिसे श्रीरामके पास दूतद्वारा संदेश अयोध्या भेजा। उसकी बात सुनकर बहुत सोच-विचारकर भगवान् श्रीरामने इसके लिये भरतको ही उपयुक्त व्यक्ति समझा और उन्हें मङ्गलद्रव्योंसे अभिषिक्तकर आशीर्वादपूर्वक चतुरङ्गिणी सेनाके साथ भेज दिया।

भरतने मत्स्य, शूरसेन, कुरुक्षेत्र, शाल्व, शिवि-देशों तथा गौरी, सतलज और इरावती आदि नदियोंको पारकर कुणिदेशमें ससैन्य निवेश किया। दूसरे दिन गन्धर्वोंको ललकारनेवाली दुन्दुभि (नगाड़े) की भयंकर ध्वनि सुनकर सभी गन्धर्वगण अत्यन्त क्रुद्ध होकर गर्जना करने लगे और संग्रामके लिये उद्यत हो गये। यह देखकर गन्धर्वोंके पुरोहित नाडायनने गन्धर्वराज शैलूषको भरतका अतुल माहात्म्य बताते

हुए युद्ध न करनेकी सलाह दी और अनेक प्रकारसे राजधर्म और युद्धनीतिकी बातें बताते हुए कहा—

एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशीकुरु ।
पञ्च जित्वा विजित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भव ॥

(विष्णुधर्मो० १ । २१२ । १)

'राजन्! तुम एक व्यवसायात्मिका बुद्धिसे कार्य और अकार्य—इन दो पदार्थोंका निर्णयकर शत्रु, मित्र और मध्यस्थ-इन तीनोंको साम, दान, दण्ड और भेद—इन चार उपायोंसे वश कर, पाँचों इन्द्रियोंको जीतकर राजनीतिके छः गुणों (यान, आसन, सन्धि, विग्रह, द्वैधीभाव और समाश्रय)का आश्रय लेकर तथा सात राजदोषों—व्यसनों (द्यूत, मद्यपान, मृगया, वेश्यासक्ति, दण्डपारुष्य, वाक्पारुष्य, अर्थदूषण तथा लोभकी अतिशयता) का परित्याग कर सुखी होओ।' क्योंकि जो इनका विचार करता है, वह राजा विजय प्राप्त करता है और उसके पास सिद्धि हाथ जोड़े खड़ी रहती है। ये सभी बातें रघुवंशियोंमें तो हैं; किंतु तुम्हारी स्थिति इसके विपरीत है। भरत साक्षात् विष्णुके अंश प्रद्युम्न-रूप हैं, इन्होंने ही पहले रावणके नाना सुमालीका सेनासहित वध किया था। इसलिये हमलोगोंको सामनीतिका ही व्यवहार करना चाहिये, इसीमें कुशल है। युद्ध करना ठीक नहीं। कदाचित् किसी प्रकार भरत जीत भी लिये जायँ तो श्रीराम तथा उनकी सेनाके रोषका देवताओंके साथ मिलकर भी प्रतिकार करनेमें हम समर्थ न हो सकेंगे।

यह सब सुनकर भी शैलूष तथा उनके पुत्रोंने उनकी बात नहीं मानी और युद्धका ही निर्णय किया। इसपर नाडायन उन्हें मरा हुआ-सा समझकर रुष्ट होकर चले गये। रात्रिमें शैलूष-को छद्मयुद्धकी बात सूझी। उसने अयोध्यासे योद्धाओंकी स्त्रियोंको चुराकर उन्हें सामने रखकर युद्ध करनेकी तथा भरतके योद्धाओंको सोये हुए ही मारनेकी बात सोची। दूसरे दिन उसने इसके लिये अलग-अलग सैनिकोंको भेजा। अयोध्या जानेपर सैनिकोंको सर्वत्र ही शङ्ख, चक्र, गदाधारी विष्णु उन स्त्रियोंकी रक्षा करते हुए दिखायी पड़े। तब वे निराश तथा शक्तिहीन होकर वापस लौट आये। जो मायावी गन्धर्व छद्मवेषसे भरतकी सेनामें प्रविष्ट होकर सुषुप्तावस्थामें उन्हें मारना चाहते थे, वे भी भरतके प्रभावसे भयभीत होकर तथा सैनिकोंको जगा देखकर वापस लौट आये। सभीने गन्धर्वराज शैलूषको अपनी विफलताकी बात बतलायी।

तब शैलूषने अपनी गन्धर्वी सेनाको यथोचित अस्त्र-शस्त्र एवं वाहनोंसे सुसज्जित होकर युद्धके लिये आज्ञा दी। इधर भरत भी वज्रव्यूह बनाकर आगे बढ़े। दोनों पक्षोंमें तुमुल लोमहर्षण युद्ध प्रारम्भ हो गया। देखते-देखते शङ्ख, भेरीके निनाद और धनुषोंकी टंकार तथा हाथी-घोड़ोंके चिग्घाड़ने एवं हिनहिनानेकी आवाजसे आकाश व्याप्त हो गया। क्षणभरमें उस भयंकर युद्धमें अश्व, हाथी, पदाति-सेना तथा रथी और सारथियोंके कटे शरीर और रुधिरके संयोगसे वह रणाङ्गण रुधिरकी नदीके रूपमें परिवर्तित हो गया। रणाङ्गणमें कबन्धोंका नृत्य प्रारम्भ हो गया। घोर-रूप पिशाच तथा क्रव्याद रुधिर-मांसके लोभमें वहाँ दौड़ पड़े। शैलूषकी शेष सेना भयभीत होकर भागने लगी।

इस प्रकार अपनी सेनाको भग्नप्राय देखकर गन्धर्वराज शैलूषने अत्यन्त क्रुद्ध होकर भरतकी सेनापर आक्रमण कर दिया। उसने मायासे अनेक अस्त्र-शस्त्रोंद्वारा भरतकी सेनाके हाथी-घोड़े तथा वीरोंको काट डाला। उस समय उसकी मायाके प्रभावसे केवल तालफलके पतनकी तरह योद्धाओंके कटते हुए शरीरके गिरनेका शब्दमात्र ही सुनायी पड़ता था, कुछ दीखता नहीं था। इस तरह उनकी सेनाको विदीर्ण कर वह भरतके सामने उपस्थित हुआ और दोनोंमें तुमुल द्वन्द्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया। भरतके मामा युधाजित् जो उनके सारथिका काम कर रहे थे, शैलूषके बाणोंसे आच्छन्न हो गये, फिर भी वे अधीर नहीं हुए। भरतने दिव्य बाणोंसे शैलूषके महान् धनुषको काट डाला और क्रमशः दोनोंमें पूर्व-पूर्वके शामक—आग्नेय, वारुण, वायव्य, पर्वत, वज्र और ब्रह्मास्त्रके प्रयोग चलते रहे। कुछ समय बाद शैलूषको तो अनेक अपशकुन दिखायी पड़ने लगे और भरतकी दाहिनी भुजा फड़कने लगी। उस भीषण युद्धमें भरतने ऐसा शस्त्र-लाघव दिखाया, जिससे उनके धनुष-बाणोंका अवधान-संधान, प्रमोचन कुछ भी नहीं दीख रहा था। केवल गन्धर्वोंके प्रलयकालीन अग्निसे जलते हुए घोड़े-हाथी, रथ, सारथि और वीर-समूह दीख रहे थे।

इस तरहसे भरतने कई दिनोंके युद्धके बाद गन्धर्वोंकी मायावी सेनाका तहस-नहस कर रौद्रास्त्रके द्वारा शैलूषका मस्तक काट डाला। इसके बाद शैलूषके शेष बचे सभी पुत्र भरतपर आक्रमणके लिये सहसा दौड़ पड़े, किंतु उन्होंने उन्हें भी समाप्त कर डाला। इन्द्रादि देवताओंने प्रसन्न होते हुए भरतपर पुष्पोंकी वृष्टि की और कहा—'ब्रह्माके वरसे दसों देवयोनियोंसे अवध्य, देवता, धर्म, गौ तथा ब्राह्मणोंके कंटक गन्धर्वोंका आपने संहार कर विश्व तथा विशेषकर देवताओंका महान् उपकार किया है। आप हमसे कोई वर माँग लें।' भरतने सिन्धु नदीके दोनों तटोंपर दो नवीन नगरोंकी स्थापना तथा वहाँ अपने दोनों पुत्रोंके राजा होनेका वरदान माँगा। 'एवमस्तु' कहकर इन्द्रादि देवगण वापस स्वर्ग चले गये।

विजयके उपरान्त भरतने अपनी कुछ सेना वापस अयोध्या भेज दी और फिर सिन्धुके दोनों तटवर्ती प्रदेशोंमें अपने दोनों पुत्रोंके नामपर पुष्करावती (पुष्कलावती) तथा तक्षशिला—इन दो नगरोंकी स्थापना की और पुष्कर तथा तक्षको वहाँ अभिषिक्त कर दिया। कुछ समय वहाँ निवास कर शेष बची सेनाके साथ मार्गके ग्राम-नगरों तथा अरण्योंकी शोभाको देखते हुए भरत अयोध्या लौट आये। भगवान् श्रीरामकी आज्ञासे लक्ष्मण तथा अयोध्यावासियोंने उनका भव्य स्वागत किया। श्रीरामने भी आशीषपूर्वक उनका आलिङ्गन किया। भरतने युद्धका सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाया और गन्धर्वोंसे प्राप्त मुख्य रत्नादि पदार्थोंको उन्हें निवेदित कर दिया।

मुद्‌गलपुराण

महर्षि वेदव्यासप्रणीत मुद्‌गलपुराणकी उपपुराणोंमें गणना होनेपर भी यह पौराणिक वाङ्मयमें अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इसमें महर्षि मुद्‌गल और प्रजापति दक्षका संवाद वर्णित है। इसमें मुख्यरूपसे आदिदेव भगवान् श्रीगणेशजीके अद्भुत चरित्रोंका समावेश है।

इस पुराणके आरम्भमें दक्ष प्रजापतिका आख्यान मिलता है। कनखलमें दक्ष प्रजापतिने यज्ञ किया, किंतु शिवजीसे वैर होनेके कारण उन्हें यज्ञभागी नहीं बनाया। क्रुद्ध रुद्रगणों तथा वीरभद्रने जब यज्ञ-विध्वंस कर डाला तब दक्ष अत्यन्त चिन्तित हो उठे। उसी समय महर्षि मुद्‌गल उपस्थित हुए, जो गणेशजीके अनन्य भक्त और उपासक थे। उन्होंने दक्षको आश्वस्त किया और कहा कि 'विघ्नराज गणेशजीके स्मरणसे समस्त कामनाओंकी पूर्ति होती है। उनकी कृपा होनेपर कुछ भी दुर्लभ नहीं है। अतः राजन्! तुम भगवान् गणेशकी आराधना करो।' दक्षने तपोनिधि मुद्‌गलजीसे उपदेश देनेके लिये प्रार्थना की। तब उन्होंने दक्षको मुद्‌गल-पुराण सुनाया। महायोगी मुद्‌गलद्वारा प्रोक्त होनेसे यह पुराण मुद्‌गलपुराण कहलाता है।

यह पुराण ४२८ अध्याय तथा नौ खण्डोंमें विभक्त है। प्रथम आठ खण्डोंमें भगवान् गणेशजीके आठ अवतारों—वक्रतुण्ड, एकदन्त, महोदर, गजानन, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज तथा धूम्रवर्णका वर्णन है। ये अष्टविनायक कहलाते हैं। नवाँ खण्ड गणेश-तत्त्वका प्रतिपादक है। गणेश भगवान्‌ने मत्सरासुर, दम्भ, गजासुर, मदासुर आदि दुष्ट दैत्योंका संहार कर देवताओंको सुख पहुँचाया। गणेशकी कृपासे वामनने बलिपर विजय पायी। इनकी कृपासे विश्वामित्रने ब्रह्मर्षिपद प्राप्त किया। सृष्टिके आरम्भमें ब्रह्माजीने इनकी आराधनासे ही सृष्टिका प्रारम्भ किया। इन्होंने जडभरतको उपदेश दिया तथा शिव-पार्वतीकी तपस्यासे पुत्ररूपमें प्रकट होकर दुर्मति दैत्यका वध किया। कपिलकी तपस्यासे प्रसन्न हो इन्होंने गणासुरका वधकर ऋषियोंको अभयदान दिया। ब्रह्माके निर्देश करनेपर सूर्यने इनकी मूर्तिकी स्थापना कर पूजन किया, गणेशजीने उन्हें दर्शन देकर कृतार्थ किया। इन्हींके वरदानसे श्रीरामने रावणका वध किया। भार्गव परशुरामने गणेशजीको प्रसन्नकर परशु प्राप्त किया, जिससे वे कार्तवीर्यका वध कर सके। लक्ष्मीपुत्र पूर्णानन्दके रूपमें इन्होंने ज्ञानारि दैत्यका नाश किया। इन्होंने महिषासुरके वधके लिये जगदम्बाको वर प्रदान किया। जब इन्होंने कामासुर, कमलासुर तथा सिन्धु-असुरका वध किया, तब

महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वतीने भगवान् गणेशकी वन्दना कीं। इन्हींकी कृपासे शंकरजीने त्रिपुर राक्षसको मारा। गणेशजीने शिवजीकी भक्तिसे प्रसन्न होकर उन्हें 'वज्रपञ्जर-स्तोत्र' प्रदान किया। मुद्गलपुराणके अन्तिम—नवें खण्डमें एकतालीस अध्याय हैं, जिनमें आठों विनायकोंके योगस्वरूपपर पर्याप्त विवेचन कर गणेश ही देवोंके देव तथा उनकी कृपादृष्टि होनेपर कुछ भी असम्भव नहीं है—यह विषय प्रतिपादित करते हुए फलश्रुतिमें यह दिखाया गया है कि गणेशकी भक्तिपूर्वक आराधनासे तथा मुद्गलपुराणके श्रद्धापूर्वक श्रवण तथा पाठ करनेसे परमधाम प्राप्त होता है और जीवकी सद्गति होती है। अतः भक्तिपूर्वक इसका श्रवण तथा पाठ करना चाहिये। गणेशजी ही अनादि सनातन ब्रह्म हैं। देवता, ऋषि-मुनि तथा भक्तगण इनकी पूजा तथा ध्यानमें तत्पर रहते हैं। असुरों तथा दुष्टोंके संहारके लिये ये सदा अवतार ग्रहण करते हैं। इस पुराणके श्रवणसे दक्ष प्रजापतिका यज्ञ पूर्ण हुआ तथा इस पुराणके श्रवण-पाठसे गणेश-भक्तिका उदय होता है, विचारोंमें शुद्धता आती है, चित्त उपास्यमें स्थिर होता है और मुक्ति प्राप्त होती है।

विश्वं चराचरं सर्वं जानीयात् तत्स्वरूपकम्।
सर्वेषां हितभावेन भजेत् तं द्विरदाननम्॥

(मुद्गलपु० ९।९।२८)

'समस्त चराचर विश्वको गणेशमय जानना चाहिये, अतः सबकी हित-कामनासे उन गजाननका भजन करना चाहिये। यही न श्रेयस्कर है।'

या-आख्यान—

सत्तुप्रस्थीय मौद्गल्योपाख्यान

महर्षि मुद्गल प्राचीन वैदिक ऋषि थे। वे ऋग्वेदके म मण्डलके १०२वें सूक्तके द्रष्टा ऋषि थे। गौतमपत्नी ल्या और शतानन्द इन्हींके वंशमें उत्पन्न हुए थे। महर्षि गल ऋग्वेदकी मुख्य शाखा—शाकल्यसंहिताके द्रष्टा र्षि शाकल्यके पाँच शिष्योंमेंसे सर्वप्रथम थे (विष्णुपु० ४।२०-२२)। इनकी पत्नी इन्द्रसेना या मुद्गलानी कही हैं। इनका दिव्य, आदर्शमय एवं कल्याणकारी जीवनवृत्त द्देवता आदि वैदिक ग्रन्थोंके अतिरिक्त प्रायः सभी हास-पुराणोंमें आया है। ये पाँच भाई थे और इन्हींके ण पाञ्चालप्रदेश विख्यात हुआ। गणेश-उपासनापरक गलपुराणके यही वक्ता हैं। इसी कारण इसे मुद्गलपुराण जाता है।

महर्षि मुद्गल पाञ्चालदेशके प्रसिद्ध तीर्थ कुरुक्षेत्रमें रहते ये महान् दानी, धर्मात्मा, तपस्वी, जितेन्द्रिय, भगवद्भक्त सत्यवक्ता थे और देवता, अतिथि, गौ, ब्राह्मण तथा -महात्माओंके परमभक्त थे। ये शिलोञ्छवृत्ति[1] से रेवार अपना जीवन-निर्वाह करते थे। प्रत्येक पंद्रह दिनोंमें एक द्रोण धान्य, जो लगभग ३४ सेरके बराबर होता है, इकट्ठा कर लेते थे। उसीसे पार्वायणान्तीय इष्टियोंका सम्पादन करते अर्थात् प्रत्येक पंद्रहवें दिन अमावास्या एवं पूर्णिमाको दर्श-पौर्णमास याग एवं अयनोंमें आग्रायण-यज्ञ किया करते थे। उन्होंने सपरिवार तीन-तीन दिनके बाद भोजन करनेका कठिन व्रत लिया था। यदि किसी दिन उस समय भोजन न मिला तो तीन दिनतक सपरिवार भूखे रहकर तप करते थे, किंतु कोई भी दुःखी नहीं होता था। यज्ञोंमें देवता और अतिथियोंको देनेसे जो अन्न बचता, उसीसे ये अपने परिवारका निर्वाह करते थे। जैसे धर्मात्मा ब्राह्मण स्वयं थे, वैसे ही उनकी धर्मपत्नी और संतान भी थी। मुनिवृत्तिसे रहना और प्रसन्नचित्तसे अतिथियोंको अन्नादिका दान देना, यही उनके जीवनका व्रत था।

एक समयकी बात है, कुरुक्षेत्रमें बड़ा भीषण अकाल पड़ा। कई दिन बीत गये, पर इस ब्राह्मण-परिवारको अन्नके दर्शन तक न हुए। खेतोंका अन्न भी सूख गया था। अत्यन्त कष्टपूर्वक इनके दिन बीतने लगे। एक दिन ज्येष्ठ मासके

---

१. फसल कटनेके बाद खेतोंमें गिरे हुए अन्नके दानोंको बीनकर उसीसे जीवन-निर्वाह करना शिलोञ्छवृत्ति कहलाती है। (मनु० ४।५)

मध्याह्नकालमें अपने परिवारके साथ इन्होंने किसी प्रकार एक प्रस्थ (लगभग सेरभर) जौ प्राप्त कर उससे सक्तु—सत्तू (जौका आटा) तैयार किया और जप तथा नैत्यिक नियम पूर्ण करके यथोचित अग्निमें देवाहुति देकर स्त्री-पुत्र तथा पुत्रवधू-सहित उस सत्तूको चार भागोंमें बाँटकर भोजनके लिये बैठे ही थे कि एक अतिथि ब्राह्मण वहाँ आ पहुँचे। स्वागत कर महर्षिने उनसे भोजन करनेके लिये प्रार्थना की और अपना सत्तू-भाग उन्हें प्रदान किया। वे ब्राह्मण महर्षिका भाग खा गये, पर तृप्त नहीं हुए। मुद्गल चिन्तामें पड़ गये। तब उनकी धर्मभार्याने कहा—'स्वामिन्! मेरा भाग इन्हें दे दें।' पतिव्रता पत्नीकी बात सुनकर उन्होंने उसे भूखी जानकर और 'स्त्रीकी रक्षा करना अपना कर्तव्य है' यह स्मरणकर स्त्रीके भागका सत्तू लेनेकी इच्छा नहीं की, किंतु उसके बार-बार आग्रह करनेपर मुद्गलने अपनी स्त्रीके भागका सत्तू भी अतिथि ब्राह्मणको प्रार्थनापूर्वक निवेदित कर दिया, परंतु तब भी तृप्ति नहीं हुई। महर्षि पुनः चिन्तामें पड़ गये। पिताकी स्थिति समझकर पुत्रने भी अपना भाग ब्राह्मणको देनेके लिये कहा,

परंतु पिताके द्वारा अनेक प्रकारसे समझानेपर भी पुत्र नहीं माना। विवश होकर पिताने पुत्रके भागका सत्तू भी अतिथि ब्राह्मणको समर्पित कर दिया। इतनेपर भी वे संतृप्त न हो सके। इसपर महर्षि मुद्गल बड़े असमंजसमें पड़ गये। अतिथि भूखे रह जायँ, यह तो बड़ा पाप होगा, तब क्या करना चाहिये, क्योंकि सेरभर सत्तू भी तो इस अकालके समय उन्हें बहुत दिनोंके बाद बड़ी कठिनतासे प्राप्त हुआ था। जो अपर्याप्त सिद्ध हुआ। तदनन्तर पुत्रवधूने भी अपने भागका सत्तू देना चाहा, परंतु मुद्गल पुत्रवधूका भाग लेना नहीं चाहते थे, क्योंकि कई दिनोंके भूख-प्याससे पुत्रवधूका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो चुका था, वह क्षीण-प्राणा हो गयी थी तथापि पुत्रवधूने बार-बार आग्रह करते हुए कहा—'तात! मेरा शरीर, प्राण, धर्म और परलोक—सब आपलोगोंकी सेवाके लिये है, अतः मुझ दृढभक्ताको अपना अङ्ग समझकर मेरा यह सत्तूभाग अतिथिको देनेके लिये स्वीकार कर लीजिये' तब विवश होकर मुद्गलने पुत्रवधूका भी भाग ब्राह्मण देवताको अर्पित कर दिया।

इसपर वे अतिथि ब्राह्मण अत्यन्त संतुष्ट हो गये और मानव-विग्रह त्यागकर साक्षात् धर्मके रूपमें प्रकट होकर महर्षि मुद्गलके दानकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे—'महर्षे! मैं साक्षात् धर्म हूँ, तुम्हारे धर्मकी परीक्षा लेने आया था। तुम धन्य हो, तुम्हारा कुटुम्ब धन्य है। तुमने जो न्यायोपार्जित शुद्ध, पवित्र अन्नका इस प्रकार श्रद्धा तथा प्रसन्नतासे दान किया, उससे सभी स्वर्गस्थ देवता विस्मित होकर इसकी घोषणा कर रहे हैं और तुम्हारे ऊपर यह पुष्पवृष्टि भी उन्हींके द्वारा हो रही है। ब्रह्मलोकके महर्षिगण तुम्हारे दर्शनकी इच्छा रखते हैं। तुम्हारे सभी पितृगण मुक्त हो गये और भविष्यमें होनेवाली तुम्हारी संतानें भी तुम्हारे इस सक्तुप्रस्थीय दानके पुण्य-प्रतापसे श्रेष्ठ लोकोंको प्राप्त होंगी। अब तुम सामने उपस्थित इस दिव्य विमानपर आरूढ़ होकर सपरिवार स्वर्ग चलो। तुम्हारे इस सेरभर सत्तू-दानके सामने प्रचुर दक्षिणायुक्त, बहुसंख्यक राजसूय एवं अश्वमेधादि यज्ञोंकी कोई गणना नहीं। तुमने अक्षय लोक प्राप्त कर लिया। लोक-लोकान्तरोंमें तुम्हारी अनन्तकालतक अविचल कीर्ति बनी रहेगी।'

भगवान् धर्मके ऐसा कहनेपर महर्षि मुद्गल अपनी पत्नी-पुत्रादिसहित विमानपर आरूढ़ होकर ब्रह्मलोकको चले गये और भगवान् अन्तर्धान हो गये।

उसके थोड़ी ही देर पश्चात् सत्तूकी गन्ध पाकर एक नेवला अपने बिलसे बाहर निकला। वहाँ गिरे हुए जलसिक्त रजकणोंके स्पर्श, स्वर्गसे गिरे हुए दिव्य पुष्पोंके संस्पर्श तथा मुद्गलद्वारा उस धर्मरूपी ब्राह्मणको दान देते समय गिरे हुए सक्तुकणोंकी गन्ध लेने एवं उनके तपके प्रभावसे उस नेवलेका मस्तक और आधा शरीर सुवर्णमय हो गया। ऐसी आश्चर्यजनक घटना देखकर नेवला अत्यन्त विस्मित हो गया। अब वह इस चिन्तामें पड़ा कि उसके शरीरका शेष भाग कैसे सुवर्णमय हो।

बहुत दिनोंके पश्चात् जब महाराज युधिष्ठिरके महायज्ञका वृत्तान्त समूचे देशमें फैला, तब बड़ी आशा लगाकर वह नेवला उनके यज्ञीय क्षेत्रमें पहुँचा और इस अभिलाषासे वहाँ लोटने-पोटने लगा कि मेरा यह शेष शरीर अब अवश्य ही स्वर्णिम हो जायगा, किंतु बहुत प्रयत्न करनेपर और वेदी, कुण्ड, उत्कर, चत्वाल तथा सभ्य स्थलोंपर भी लोटनेसे जब उसका एक रोम भी स्वर्णिम न हो सका, तब वह उस यज्ञके सभासदों एवं विशिष्ट ब्राह्मणोंके सामने गया और उसने सहसा व्यङ्ग्यपूर्वक वज्र-निर्घोषके समान अट्टहास किया। इससे

मृग-पक्षी तो भयभीत हो ही गये, वहाँके सभासद् भी कम आश्चर्यचकित न हुए। फिर उस नेवलेने मनुष्यवाणीमें कहा—'राजाओ और सभासदो! तुम्हारा यह यज्ञ उञ्छवृत्तिधारी, कुरुक्षेत्र-निवासी मुद्गल ब्राह्मणके प्रस्थमात्र सत्तूदान करनेके तुल्य भी नहीं है।' इसपर घबड़ाकर सभी सभासद् अपने आसनोंसे उठ खड़े हुए और उसे चारों ओरसे घेरकर कहने लगे—'भाई! धर्मराज युधिष्ठिरके इस महायज्ञमें सत्पुरुषोंके बीच तुम कहाँसे आ पहुँचे? अहो! तुम्हारी शक्ति, शास्त्रज्ञान और तुम्हारा यह अर्धस्वर्णिम शरीर—सब कुछ अद्भुत ही है। तुम कौन हो, जो इस यज्ञकी निन्दा कर रहे हो। हमलोगोंने शास्त्रीय विधिसे मन्त्रोच्चारण कर आहुतियाँ दी हैं और श्रद्धापूर्वक उचित दृष्टिसे सबको यथोचित दान-सम्मान दिया है। सच बताओ, दिव्य रूप धारण किये हुए तुम हो कौन?'

इसपर उस नेवलेने हँसकर कहा—'विप्रवृन्द! मैंने गर्वातिरेकमें आकर आपलोगोंसे कोई मिथ्या बात नहीं कही है। आपलोग मेरे शरीरको देख ही रहे हैं। यह महर्षि मुद्गलके पत्नी, पुत्र और पुत्रवधूसहित दिये दानके लवांशके स्पर्शका प्रभाव है, जो मेरा आधा शरीर सोनेका हो गया और उन लोगोंको भक्तिपूर्वक प्रस्थभर सत्तू-दानसे दिव्य लोकोंसहित ब्रह्मलोककी प्राप्ति हो गयी। तबसे मैं अनेक धर्मस्थलों, पुण्यक्षेत्रों, तपोवनों और प्रसिद्ध यज्ञ-स्थलोंमें आया-जाया और लोटा करता हूँ कि मेरा शेष शरीर भी स्वर्णिम हो जाय। महाराज युधिष्ठिरके इस प्रभावशाली महायज्ञकी चतुर्दिक् ख्याति सुनकर मैं बड़ी आशा लगाये यहाँ पहुँचा, किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। इसीलिये मैंने व्यङ्ग्यपूर्वक हँसकर कहा था कि 'महाराजका यह यज्ञ मुद्गल विप्रके सेरभर सत्तू-दानके बराबर भी नहीं है', यह बात सर्वांशमें सही है। इसमें यज्ञके प्रभाव तथा उसकी निन्दाकी कोई बात नहीं है। मुद्गलके दिव्य दान तथा धर्मका प्रत्यक्ष परिणाम ही मैंने आपके सामने निवेदित किया है, जिसे आपलोग भी देख ही रहे हैं। इसीलिये शास्त्रोंमें कहा गया है—संयम, शील, आर्जव और तप तथा दानयुक्त कर्म ही श्रेष्ठ हैं और ये एक-एक गुण बड़े-बड़े यज्ञोंके समान हैं।'

ऐसा कहकर वह नेवला चला गया और वे ब्राह्मण तथा राजा भी इस आश्चर्यको देख-सुनकर सविस्मय अपने-अपने स्थानोंको चले गये।
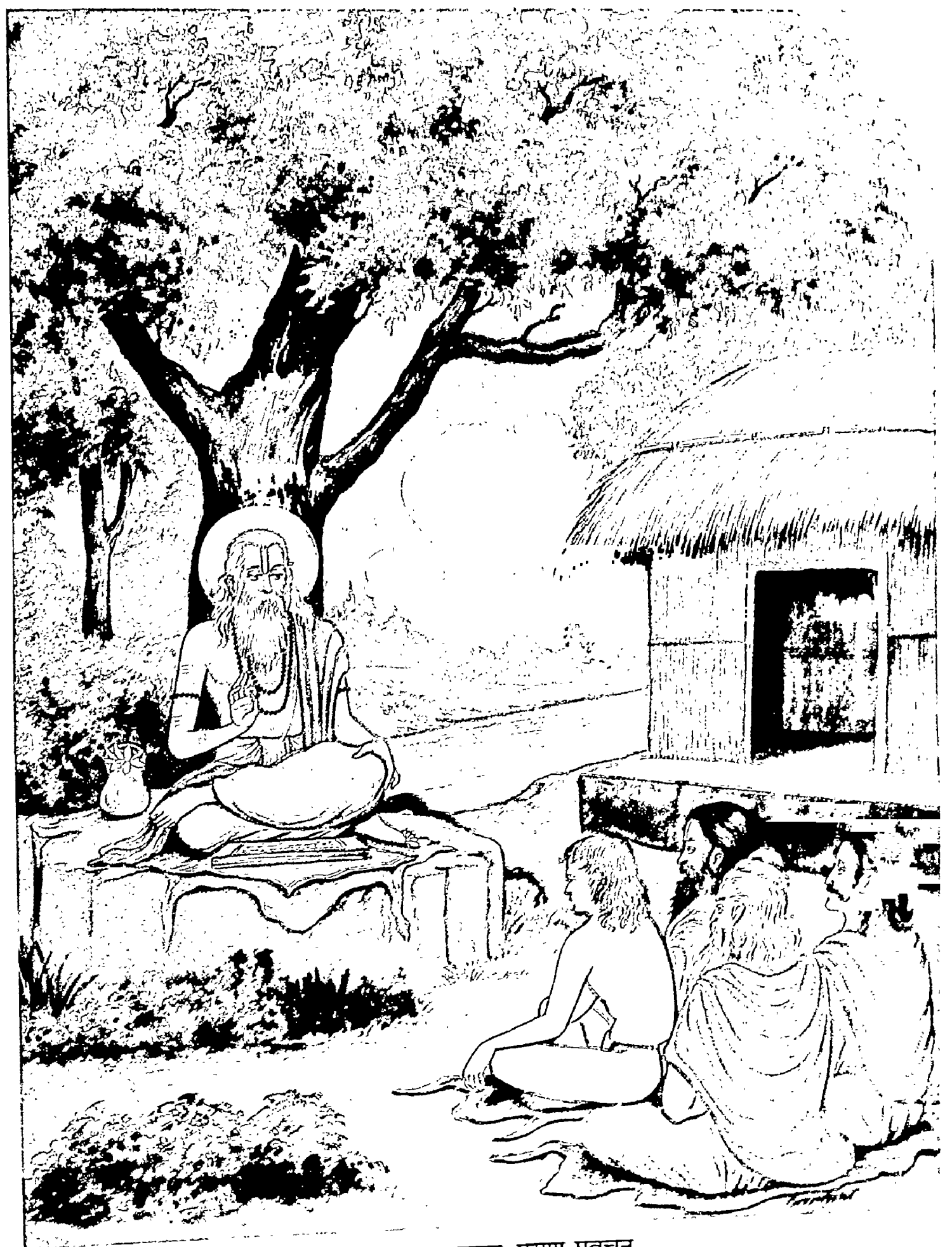
भगवान् व्यासका पुराण-प्रवचन

अगस्त्य

महर्षि अगस्त्य वेदोंके एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि हैं। उनकी स्त्रीका नाम लोपामुद्रा है। बहुत स्तुति-प्रार्थना करनेपर मित्र और वरुण देवताने अपना तेज एक घड़ेमें स्थापित किया था, उसीसे अगस्त्यकी उत्पत्ति हुई थी। ये दोनों ही भगवान् शंकरके बड़े भक्त थे। काशीमें रहकर वे सर्वदा प्रेमपूर्वक श्रीविश्वनाथकी उपासना किया करते थे। एक बार विन्ध्याचलको इस बातकी बड़ी ईर्ष्या हुई कि सब देवता सूर्य, चन्द्र आदि सुमेरुकी प्रदक्षिणा करते हैं, मेरी क्यों नहीं करते ? यदि वे मेरी प्रदक्षिणा नहीं करेंगे तो मैं उनका मार्ग बंद कर दूँगा, देखें वे कैसे मेरा अनादर करते हैं। पाषाण ही जो ठहरा, उसमें नम्रताके भाव कहाँसे आते, वह बढ़ने लगा। सूर्यका मार्ग बंद हो गया। सब देवताओंने और सूर्यने सोचा कि विन्ध्याचलने हमलोगोंका मार्ग रोक दिया, अब संसारमें प्रकाश कैसे फैले ? यह विपत्ति कैसे दूर हो ? सब-के-सब महर्षि अगस्त्यकी शरणमें गये। अगस्त्य जानते थे कि लोक-कल्याणके लिये मेरे इष्टदेव शंकरने समुद्रसे निकले हुए हलाहल विषका पान कर लिया था। यदि मैं संसारके हितके लिये भारतका उत्तरीय प्रान्त छोड़ दूँ और दक्षिणमें ही चलकर रहूँ तो क्या हानि है ? भगवान् शंकरकी पूजा तो वहाँ भी हो सकती है। महर्षि अगस्त्य अपनी धर्मपत्नी लोपामुद्राके साथ विन्ध्याचलके पास गये। विन्ध्याचल शापके भयसे उनके चरणोंमें गिर गया और उसने कहा कि 'मेरे योग्य सेवा बताइये।' अगस्त्यने कहा—'जबतक मैं न आऊँ तबतक तुम यों ही पड़े रहना।' महर्षि अगस्त्य उज्जैनकी ओर चले गये और वहीं रहकर भगवान् शंकरकी आराधना करने लगे। तबसे अबतक विन्ध्याचल ज्यों-का-त्यों पड़ा हुआ है। वे फिर नहीं लौटे।

महर्षि अगस्त्यने समय-समयपर लोगोंका बड़ा कल्याण किया है। वृत्रासुरके मरनेके पश्चात् बचे हुए दैत्य समुद्रमें रहने लगे थे, वे रातको बाहर निकलते और ऋषियोंको खा जाते। देवताओंकी प्रार्थनासे अगस्त्यने समुद्रका जल पी लिया और देवताओंने दैत्योंको मारनेका अवसर प्राप्त कर लिया। आतापी, वातापी नामके दो बड़े भयंकर राक्षस थे। वे ऋषियोंके पेटमें घुसकर उन्हें मार डालते थे। महर्षि अगस्त्यने ही इस विपत्तिसे लोगोंकी रक्षा की।

अजामिल

अजामिल कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उन्होंने समस्त वेद-वेदाङ्गोंका अध्ययन किया था। वे माता-पिताकी सेवा किया करते थे और भगवान्पर उनकी आस्था भी थी। एक दिन वे समिधा लेनेके लिये जंगलमें गये हुए थे, एक वेश्यापर उनकी दृष्टि पड़ी। वह शराब पीकर दुराचारमें लगी हुई थी। अजामिल अभी युवक थे। ऐसे दृश्य उनके सामने कभी आये नहीं थे। क्षणभरके दुःसंगसे ही वे प्रभावित हो गये और उसे अपने घर ले आये। उनके अंदर दैवी सम्पत्तिके जितने गुण थे, सब धीरे-धीरे नष्ट हो गये और वे चोरी, जुवाखोरी, शराब आदि पीनेमें धर्म-कर्म, जाति-जनेऊ सब भूल गये। दिन बीतते देर नहीं लगती। उनकी जवानी चली गयी, बुढ़ापा आ गया, मौत उनके सिरपर आ पहुँची।

जन्मभर उन्होंने पाप किया था, मृत्युके समय बड़ी पीड़ा हुई। किसीके किये-धरे कुछ नहीं हुआ। यमराजके दूत आये, उनकी भयंकर आकृति और तर्जन-गर्जन देखकर अजामिल बहुत डरे। प्राण निकलनेके समय वे अपने छोटे बच्चेको, जिसे बहुत प्यार करते थे, पुकारने लगे। भगवान्की कुछ ऐसी कृपा थी कि एक दिन एक साधुके शुभागमनके फलस्वरूप उनके बच्चेका नाम 'नारायण' रख गया था। वे ठीक प्राण

निकलनेके समय बोल उठे 'नारायण-नारायण।' भगवान्के नाममें अचिन्त्य-शक्ति है, नामका उच्चारण होते ही भगवान् उपस्थित हो जाते हैं। अजामिलने देखा कि उसी समय नीलवर्णके पीताम्बर पहने हुए एवं अपने हाथोंमें दिव्य आयुध लिये हुए भगवान्के दूत आ पहुँचे। यमराजके दूतोंको हटाकर उन्होंने अजामिलको छोड़ देनेके लिये कहा। थोड़ी देरतक यमदूतों और भगवान्के पार्षदोंमें विवाद चलता रहा। यमदूतोंने कहा कि 'यह घोर पापी है, इसे तुमलोग क्यों छुड़ानेकी चेष्टा कर रहे हो?' भगवान्के पार्षदोंने कहा—'भाई! तुम्हें पापी और पुण्यात्माका भेद मालूम नहीं है। कोई चाहे जितना बड़ा पापी हो, यदि उसके मुखसे भगवान्का नाम निकलता हो और खास करके मृत्युके समयमें, तब तो उससे बढ़कर कोई धर्मात्मा है ही नहीं। सब धर्मों, पुण्यों, व्रतों और ज्ञानका सार है भगवान्का नाम; चाहे पुत्रबुद्धिसे ही क्यों न लिया हो इसने लिया तो सही।' यमराजके दूत चले गये। भगवान्के पार्षद भी चले गये। अजामिल जीवित हो गये। अपने जीवनके पापोंका स्मरण कर उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। हरिद्वारमें जाकर उन्होंने भजन किया और मुक्ति प्राप्त की। श्रीमद्भागवतमें भगवन्नाममहिमाका यह बड़ा सुन्दर प्रसङ्ग है। साधकोंको उसका स्वाध्याय करना चाहिये।

अदिति

ये दक्ष प्रजापतिकी पुत्री और प्रजापति कश्यपकी धर्मपत्नी थीं। दोनोंने जंगलमें जाकर बड़ी घोर तपस्या की। ब्रह्मा, विष्णु और शंकर इनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर कई बार इनके पास आये। परंतु इन्होंने तपस्या नहीं छोड़ी। अन्तमें पुरुषोत्तम भगवान् राम आये और उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—'तुम्हारी जो इच्छा हो माँग लो।' इन दोनोंने भगवान्से कहा कि 'आप हमारे पुत्र हों।' भगवान्ने कहा—'एवमस्तु'। त्रेतामें तुम दोनों अयोध्याके राजा-रानी होओगे तब मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा। एक कल्पमें त्रेतामें वही अदिति कौसल्या हुई और कश्यप दशरथ हुए। इसके पूर्व वामनावतार भी इन्हींके गर्भसे हुआ था। भागवतमें लिखा है कि देवकीके रूपमें भी यही अवतीर्ण हुई थीं। जिसने भगवान्को पुत्ररूपमें प्राप्त कर लिया, उसकी महिमा और सौभाग्यकी भला क्या सीमा हो सकती है?

अन्धतापस

एक दिन अयोध्याधिपति महाराज दशरथ सरयूके तटपर विचर रहे थे। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि कोई हिंस्र जन्तु सरयूके आसपास है। अनुमानसे ही उन्होंने शब्दभेदी बाण चला दिया। जब मनुष्यके कराहनेकी आवाज आयी, तब वे उसके पास गये। वास्तवमें जिस आवाज़को सुनकर उन्होंने बाण चलाया था, वह कोई दूसरी आवाज नहीं, घड़ा डुबोनेकी आवाज थी; दशरथ उसके पास जाकर सहानुभूति प्रकट करने लगे, क्षमा माँगी। जो मनुष्य घायल हुआ था, उसका नाम था श्रवणकुमार। उसने कहा—'महाराज! आपने अनजानेमें बाण चलाया है, इसमें आपका कोई दोष नहीं। मेरे अन्धे माता-पिता प्यासे हैं, उन्हें जाकर जल पिलाइये और उनसे क्षमा माँगिये, नहीं तो वे शाप दे देंगे' श्रवणकुमारकी मृत्यु हो गयी। राजा उस अन्धतपस्वीके पास गये।

पैरोंकी आहट पाकर अन्धे तापसने कहा—'बेटा! तुमने इतनी देर क्यों कर दी, तुम्हारी माँ पानीके बिना छटपटा रही है। तुम बोलते क्यों नहीं हो?' दशरथने उनके पास जाकर सारी बात कही और क्षमा माँगी। तापसने कहा कि 'आप हमलोगोंको हमारे हृदयके टुकड़े श्रवणके पास ले चलिये। हमलोग एक बार उससे मिल तो लें।' महाराज दशरथ उन्हें वहाँ ले गये। वे विलाप करने लगे। अन्धे तापसने कहा कि 'राजन्! तुमने अनजानमें यह काम किया है, इसलिये हत्या तो नहीं लगेगी, परंतु जैसे हम पुत्रवियोगमें मर रहे हैं वैसे ही तुम भी अपने पुत्रके लिये छटपटाते हुए प्राण त्याग करोगे।' इतना कहकर वे स्वर्गवासी हो गये और उन्हींकी भाँति दशरथने भी पुत्र-वियोगमें प्राण त्याग किया।

अम्बरीष

सूर्यवंशी राजा नाभागके पुत्र भक्त अम्बरीष बहुत ही प्रसिद्ध हैं। वे हरिभक्तिपरायण और बड़े धार्मिक थे। एक बार द्वादशीके दिन वे पारण करने जा ही रहे थे कि अपनी शिष्यमण्डलीके साथ दुर्वासा ऋषि आ पहुँचे। राजाने भोजनके लिये उन्हें निमन्त्रण दिया। उन्होंने कहा—'हम सब नदीसे सन्ध्या-वन्दन करके आते

हैं।' वे चले गये। उनके आनेमें इतना विलम्ब हुआ कि द्वादशी एक पल बाकी रह गयी। द्वादशीमें ही पारण न करनेसे दोष लगता है और ब्राह्मणको भोजन कराये बिना खाना चाहिये नहीं, यह सोचकर अम्बरीष बड़े असमंजसमें पड़ गये। विद्वान् ब्राह्मणोंने सलाह दी कि 'तुम भगवान्‌का चरणामृत पी लो, इससे व्रत पूरा हो जाता है और ब्राह्मणोंकी अवज्ञा नहीं होती।' अम्बरीषने वैसा ही किया। थोड़ी देर बाद दुर्वासा आये और अम्बरीषपर बहुत बिगड़े। उन्होंने अपनी जटासे एक बाल तोड़कर पृथ्वीपर पटक दिया, उससे कृत्या नामकी राक्षसी पैदा हो गयी और वह अम्बरीषका विनाश करनेके लिये उनकी ओर दौड़ी। राजा ज्यों-के-त्यों खड़े रहे। भगवान् अपने भक्तोंकी सर्वदा रक्षा किया करते हैं। उसी समय सुदर्शनचक्र प्रकट हुआ और कृत्याको नष्ट करके वह दुर्वासाकी ओर लपका। दुर्वासा भगे। ब्रह्मा और शिवके पास गये। परंतु उन्होंने भगवान्‌के भक्तसे द्रोह करनेवालेकी रक्षा नहीं की। वे विष्णुके पास गये। विष्णुने कहा—'भाई! भक्त तो मेरे हृदय हैं, उनका कुछ अनिष्ट हो जाय तो मैं जीवित रहना नहीं चाहता। मैं उनका क्रीतभृत्य हूँ। तुम अम्बरीषके पास जाओ, वही तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं।' दुर्वासा अम्बरीषके पास आये, अम्बरीष अबतक खड़े-खड़े उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने सुदर्शनचक्रको शान्त किया और कहा कि 'आप चलकर भिक्षा करें, अबतक किसीने कुछ खाया-पीया नहीं है।' दुर्वासाने जाकर प्रसाद पाया और अम्बरीष एवं भगवान्‌के भक्तोंकी प्रशंसा करते हुए वे अपने आश्रमपर चले गये। भागवतमें इनकी बड़ी सुन्दर कथा है।

अश्विनीकुमार

सूर्यकी पत्नी संज्ञा, सूर्यका तेज सहन न कर सकनेके कारण अश्विनी होकर उत्तरकुरुमें चली आयी थीं। जब सूर्यको यह बात मालूम हुई तब वे भी उत्तरकुरु गये और वहीं अश्विनीरूपधारिणी संज्ञासे दोनों अश्विनीकुमारोंका जन्म हुआ। अश्विनीकुमार देवताओंके चिकित्सक हैं, उनकी चिकित्साकी महिमा वेदोंमें भी कही गयी है। शर्यातिकी कन्या सुकन्याके पातिव्रतसे प्रसन्न होकर इन्होंने च्यवन ऋषिको दृष्टिशक्ति, नवयौवन एवं सुन्दरताका दान किया था। उन दिनों दध्यङ् नामके एक ऋषि थे। उन्होंने इन्द्रसे ब्रह्मविद्या प्राप्त की थी, परंतु इन्द्रने उनसे कह दिया था कि तुम यह विद्या किसी औरको सिखाओगे तो तुम्हारा सिर धड़से अलग हो जायगा। यह बात जब अश्विनीकुमारोंको मालूम हुई तब वे ब्रह्मविद्याकी जिज्ञासासे दध्यङ् ऋषिके पास पहुँचे। उन्होंने कहा 'हम आपका सिर धड़से अलग करके रख देते हैं और आपके धड़पर घोड़ेका सिर जोड़ देते हैं। ब्रह्मविद्याका उपदेश करनेपर जब आपका सिर कट जायगा तब हम फिर आपका पहला सिर जोड़ देंगे।' ऐसा ही हुआ। दध्यङ्ने घोड़ेके मुँहसे ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया और उनका वह सिर कट जानेपर अश्विनीकुमारोंने पहला सिर जोड़ दिया। अश्विनीकुमारोंकी बड़ी महिमा है, उन्हींकी कृपासे माद्रीने नकुल और सहदेव इन दो पुत्रोंको प्राप्त किया था।

अहल्या-गौतम

पहले सृष्टिके सब लोगोंमें जिसका जो अङ्ग सुन्दर था उसकी सुन्दरता लेकर ब्रह्माने सर्वाङ्गसुन्दरी अहल्याकी रचना की थी। उन्होंने कुमारी अहल्याको महर्षि गौतमके पास धरोहर रख दिया। एक वर्षके बाद गौतमने अहल्याको ब्रह्माके पास पहुँचा दिया, उनके मनमें कभी किसी प्रकारका कोई विकार नहीं आया था। गौतमके इस अलौकिक धैर्य, तपःसिद्धि और कामविजयको देखकर ब्रह्मा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने अहल्याका विवाह गौतमके साथ कर दिया। वे दोनों सुखसे रहने लगे।

एक दिन इन्द्रने चन्द्रमाकी सहायतासे गौतमको धोखा देकर आश्रमसे बाहर कर दिया और अहल्याके साथ अशिष्ट व्यवहार किया। गौतमने आश्रममें आकर इन्द्रको सहस्रभग हो जानेका और अहल्याको पत्थर हो जानेका शाप दिया। अहल्याके बहुत अनुनय-विनय करनेपर उन्होंने इतना अनुग्रह किया कि त्रेतायुगमें जब भगवान् राम अवतीर्ण होंगे और तुम्हें उनके चरणोंका स्पर्श प्राप्त होगा, तब तुम्हारा उद्धार हो जायगा। तभीसे वह पत्थर हो गयी थी। भगवान्‌के चरणोंके स्पर्शसे वह मुक्त होकर पतिलोकको चली गयी।

कद्रू

महर्षि कश्यप भी एक दूसरे ब्रह्मा ही माने जाते है, क्योंकि उनके द्वारा अनेकानेक योनियोंकी सृष्टि हुई है। उनकी जिस पत्नीसे सर्पोंकी उत्पत्ति हुई थी उसका नाम था कद्रू और जिससे पक्षियोंकी उत्पत्ति हुई थी उसका नाम था विनता।

एक दिन कद्रू और विनतामें इस बातपर बहस हो गयी कि सूर्यके घोड़े सफेद हैं या काले। कद्रू कहती थी काले हैं, विनता कहती थी सफेद। शर्त यह ठहरी कि जिसकी बात गलत निकले वह दूसरेकी दासी हो जाय। वास्तवमें सूर्यके घोड़े सफेद हैं जब कद्रूको यह बात मालूम हुई तब उसने अपने काले-काले पुत्रों—सर्पोंको भेज दिया। वे जाकर सूर्यके घोड़ोंसे लिपट गये, वे काले दीखने लगे। विनता हार गयी और वह कद्रूकी दासी बनी। पीछेसे विनताके पुत्र गरुडने अपनी माताको दासीपनेसे छुड़ाया था। ब्रह्माण्ड, मत्स्य, भागवत आदि पुराणों तथा महाभारतमें यह कथा बड़े विस्तारसे आती है।

गङ्गा और भगीरथ

महाराज सगर अयोध्याके बड़े नामी नरपति हो गये हैं। उन्होंने अपनी दो रानियोंके साथ बड़ी तपस्या करके पहली रानी केशिनीसे एक पुत्र असमंजस और दूसरी रानी सुमतिसे साठ हजार पुत्र प्राप्त किये थे। वे साठ हजार पुत्र एक तुम्बेमें पैदा हुए थे और घृतके कुण्डमें रखकर पाले-पोसे गये थे। असमंजस बड़े क्रूर स्वभावका था, वह नन्हें-नन्हें बच्चोंको पकड़कर पानीमें डुबो देता था। न्यायपरायण सगरने उसे अपने देशसे निर्वासित कर दिया। असमंजसका एक पुत्र था अंशुमान्, वह बड़ा सुशील और आज्ञाकारी था। अंशुमान् ही सगरके महायज्ञमें यज्ञीय अश्वका रक्षक था। इन्द्रने स्वर्गराज्य छिन जानेके भयसे वह घोड़ा चुरा लिया और तपस्या करते हुए कपिल मुनिके पीछे ले जाकर उसे बाँध दिया।

सगरके साठ हजार पुत्र उनकी आज्ञासे घोड़ेको ढूँढ़ते हुए और जमीनको खोदते हुए योगेश्वर कपिलके पास पहुँचे। उन्होंने बिना समझे-बूझे कपिलको ही चोर मान लिया और उनकी प्रताड़ना करने लगे। अन्ततः कपिलकी हुंकारसे वे भस्म हो गये। बहुत दिन बीतनेपर उन्हें लौटते न देखकर सगरने अंशुमान्को भेजा और उन्होंने जाकर पता लगाया। पिताके भाइयोंकी राख देखकर उनके मनमें जलाञ्जलि देनेकी बात आयी, परंतु वहाँ पवित्र जल प्राप्त नहीं हुआ। कपिलने बताया कि गङ्गाजलसे इनका उद्धार होगा, अंशुमान् लौट आये। क्रमशः तपस्याके द्वारा सगर, अंशुमान् और दिलीपने चेष्टा की कि गङ्गाजी पृथ्वीपर आवें, परंतु उन्हें सफलता नहीं मिली। दिलीपके पुत्र भगीरथने गङ्गाको लानेके लिये भगीरथ-प्रयत्न किया। राज-काज छोड़कर वे तपस्यामें लग गये। ब्रह्माने प्रसन्न होकर गङ्गाको आनेका वरदान दिया, शिवजीने प्रसन्न होकर सिरपर धारण करनेका वरदान दिया और गङ्गाजी मर्त्यलोकमें आयीं। एक बार वे शिवजीकी जटामें उलझ गयी थीं, परंतु भगीरथने शंकरजीको प्रसन्न करके वहाँसे निकाल लिया। गङ्गाजी भगीरथके पीछे-पीछे कपिल मुनिके आश्रमपर गयीं और सगरके पुत्रोंका उद्धार हुआ। भगीरथके अथक परिश्रमसे न केवल उनके पितरोंका ही उद्धार हुआ बल्कि जबतक गङ्गाजी रहेंगी, गङ्गाजीका नाम रहेगा तबतक असंख्य प्राणियोंका उद्धार होता रहेगा। सच्चे परिश्रमसे सब कुछ किया जा सकता है।

गज

राजा इन्द्रद्युम्न किसी अपराधके कारण ऋषिके शापवश गज हो गया था। एक दिन वह क्षीरसागरके तटपर त्रिकूट पर्वतके सरोवरमें हथिनियोंके साथ विहार कर रहा था। उसी सरोवरमें हूहू नामका गन्धर्व ऋषिके शापवश मगर होकर रहता था। उसने गजको पकड़ लिया। दोनोंमें गहरी लड़ाई हुई। सैकड़ों वर्षतक लड़ते रहे, अन्तमें गजेन्द्र थक गया। उसके भाई-बन्धु उसे नहीं बचा सके। ग्राह उसे पकड़कर अगाध जलमें ले गया, केवल उसकी सूँड ही ऊपर रही। उसने एक कमल तोड़कर आर्तस्वरसे भगवान्की प्रार्थना की। कहते हैं कि उसके मुँहसे पूरा गोविन्द शब्द निकल भी नहीं पाया था कि भगवान् गरुडको पीछे छोड़कर स्वयं दौड़ आये और गजेन्द्र तथा ग्राह दोनोंका उद्धार किया। गन्धर्व अपने लोकमें गया और गजेन्द्र भगवान्का पार्षद हो गया। कोई भी सच्चे हृदयसे—आर्तस्वरसे भगवान्को चाहे जब पुकारे वे अवश्य आते हैं, यह उनकी प्रतिज्ञा है और वे इसका सर्वदा पालन करते हैं।

गणिका

प्राचीन कालमें जीवन्ती नामकी एक वेश्या हो गयी है, उसने एक तोता पाल रखा था। वह उसे बहुत प्यार करती थी। एक दिन उस रास्तेसे एक महात्मा निकले, उन्हें मालूम नहीं था कि यह वेश्याका घर है, वे वहाँ भिक्षाके लिये चले गये। जब उन्हें मालूम हुआ कि यह वेश्याका घर है और यह तोतेसे बड़ा प्रेम करती है, तब कृपा करके उन्होंने उस वेश्याने

कहा कि तुम इस तोतेको 'राम-राम' पढ़ाया करो। उनकी वाणीमें कुछ ऐसी शक्ति थी कि यह बात वेश्याके मनमें बैठ गयी। घरके आवश्यक कामकाजसे फुरसत मिलते ही वह तोतेके पास बैठ जाती और 'राम-राम' पढ़ाने लगती। यद्यपि उसे मालूम नहीं था कि यह रामनामका प्रभाव है, परंतु उसकी जीभ रामनामके उच्चारणमें इतनी अभ्यस्त हो गयी थी कि बिना राम-राम किये उससे रहा ही नहीं जाता था। अनजानमें ही सही, वह भगवान्‌का नाम तो लेती थी; इसका यह फल हुआ कि मृत्युके समय भी उसके मुँहसे 'राम-राम' निकलता रहा और वह भवसागरसे पार हो गयी। यह अनजानमें 'राम-राम' करने-का फल है।

गरुड

गरुड महर्षि कश्यपकी धर्मपत्नी विनताके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। इनके पराक्रमसे संतुष्ट होकर भगवान् विष्णुने इन्हें वाहन बनाया था। इन्हें अपने बल, पौरुष, गति आदिका कभी-कभी बड़ा अभिमान हो आता था। इन्होंने बड़े-बड़े दैत्योंको, नागोंको परास्त किया था। देवता भी इनके सामने युद्धमें नहीं ठहरते थे। एक बार काकभुशुण्डिने चपलतावश भगवान् रामके हाथसे रोटी छीन ली थी। रामकी आज्ञासे गरुडने उनका पीछा किया। दोनोंका बड़ा घोर युद्ध हुआ। काकभुशुण्डि पराजित हुए और गरुड विजयी। पराजय होनेपर तो लोग दुखी होते ही हैं, विजयी होनेपर भी लोग दुखी होते हैं; क्योंकि विजय प्राप्त होनेपर अभिमान हो जाता है जो कि दुःखका मूल है। गरुडको भी अभिमान हो गया, परंतु भक्त-भयहारी भगवान् अपने भक्तके हृदयमें अंशमात्र भी अभिमान नहीं देखना चाहते। उन्होंने गरुडका गर्व नष्ट किया और

स्वयं धर्मराज महर्षि विश्वामित्रकी परीक्षा लेनेके लिये उनके शत्रु वसिष्ठका रूप धारण करके आये। उन्होंने विश्वामित्रसे भोजनकी इच्छा प्रकट की। उस समय विश्वामित्रजीके यहाँ भोजन तैयार नहीं था, वे किसी दूसरे ऋषिके आश्रमपर चले गये और वहाँ जाकर अपनी भूख मिटायी। विश्वामित्रके यहाँ जब रसोई तैयार हुई, तब वे गरम-गरम भोजन लेकर वसिष्ठ-वेशधारी धर्मके पास आये। धर्मने कहा—'मैंने तो अब भोजन कर लिया है, आप यहां खड़े रहिये।' विश्वामित्रने अतिथिके रूपमें आये हुए अपने शत्रुकी बात मान ली; क्योंकि उनकी दृष्टिमें उनके शत्रु वसिष्ठ ही थे। एक सौ वर्ष बीत गये। विश्वामित्रने वायुके अतिरिक्त और कुछ भोजन नहीं किया, धर्मराज फिर वसिष्ठका वेश धारण कर आये और बोले 'विश्वामित्र! मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, तुम आजसे ब्रह्मर्षि हुए।' विश्वामित्रको बड़ी प्रसन्नता हुई। अतिथिसत्कारका यह आदर्श सर्वथा प्रशंसनीय है।

जब विश्वामित्र सिरपर भोजन लिये खड़े थे, तब उनके शिष्य गालवने उनकी बड़ी सेवा की थी। ब्रह्मर्षि होनेपर विश्वामित्रने कहा—'बेटा! अब तुम्हारी गुरु-भक्ति पूरी हुई, तुम्हारी परीक्षा भी पूरी हुई, अब तुम चाहे जहाँ भी जा सकते हो।' गालवने गुरुदक्षिणाके लिये बड़ा आग्रह किया। विश्वा-मित्रने पहले तो अस्वीकार कर दिया, परंतु उनके बहुत हठ करनेपर कुछ झुँझलाकर आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े माँगे। इसके लिये गालवको बड़ी परेशानी उठानी पड़ी। वे अपने मित्र गरुडको लेकर राजा ययातिके पास गये और उनकी तथा उनकी लड़की माधवीकी सहायतासे बड़ी कठिनाईसे उन्होंने गुरुदक्षिणा दी। उनका हठ प्रसिद्ध है।

वे असुर हो गये। देवता बृहस्पतिके पक्षमें हुए और दैत्य चन्द्रमाके पक्षमें। घमासान लड़ाई हुई, अन्तमें ब्रह्माने बीच-बचाव किया। चन्द्रमाको उनके पुत्र बुध मिल गये। दक्ष प्रजापतिकी कृपासे चन्द्रमाकी गर्मी भी शान्त हो गयी। वे शीतल हो गये।

चित्रकेतु

श्रीमद्भागवतमें चित्रकेतुकी कथा बड़ी विचित्र है। उसकी स्त्रियाँ तो बहुत थीं, परंतु संतान किसीसे नहीं थी। राजा चित्रकेतु संतानके लिये बहुत दुखी रहा करते थे। एक दिन उनके यहाँ देवर्षि नारद और महर्षि अंगिराने आनेकी कृपा की। राजाने स्वागत-सत्कारके पश्चात् अपनी अभिलाषा कह सुनायी। उन्होंने बहुत समझाया कि यह तुम्हारा मोह है। पुत्र होनेसे ही कोई सुखी नहीं होता, बहुत-से लोगोंको तो बहुत दुखी होना पड़ता है, परंतु चित्रकेतुके मनमें यह बात नहीं बैठी। अन्तमें ऋषियोंने अनुग्रह करके एक पुत्र दिया और कह दिया कि इससे तुम्हें हर्ष और शोक दोनों ही होंगे। हुआ भी ऐसा ही; क्योंकि जिस रानीसे पुत्र हुआ था, उससे राजा अधिक प्रेम करने लगा। दूसरी स्त्रियोंको डाह हुआ और उन्होंने राजकुमारको विष दे दिया। वह मर गया, चित्रकेतुके दुःखका पारावार न रहा। अंगिरा और नारदजी आये, उन्होंने राजाको बहुत समझाया और अन्तमें बच्चेकी जीवात्माको बुलाकर पूर्वजन्मकी कथा कहलायी। उसने बताया कि 'ये मेरे शत्रु हैं, इन्हें दुःख देनेके लिये ही मैं पैदा हुआ था। किसका कौन पिता है, किसका कौन पुत्र है! सब स्वार्थके मीत हैं।' चित्रकेतुका दुःख मिट गया, रानियोंने प्रायश्चित्त किया और नारदकी सम्मतिसे दीक्षा लेकर चित्रकेतु शेष भगवान्‌की आराधना करने लगे। उन्होंने प्रसन्न होकर वर दिया। चित्रकेतु विद्याधर हो गया और पार्वतीके शापसे वही वृत्रासुर हुआ। सत्संग मिल जानेपर एक-न-एक दिन उसका उद्धार तो होना ही था, परंतु दयामूर्ति नारदने कैसा चकमेमें डालकर उसका उद्धार किया, यह देखने योग्य है।

तपस्विनी

विश्वकर्माकी पुत्री हेमाने अपने भक्तिपूर्ण नृत्य एवं नामसंकीर्तनसे भगवान् शंकरको प्रसन्न किया। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा कि तुम्हें दिव्यलोककी प्राप्ति होगी। उसे ब्रह्मलोकमें जानेका अधिकार प्राप्त हो गया। उसकी एक सखी थी जिसका नाम था स्वयंप्रभा, वह दिव्य नामक गन्धर्वकी पुत्री थी। हेमाने ब्रह्मलोक जाते समय अपनी सखी स्वयंप्रभासे कहा—'बहिन! तुम इस गुफामें रहकर निरन्तर भगवान् रामका चिन्तन किया करना। एक दिन रामके दूत माता जानकीको ढूँढ़ते हुए यहाँ आयेंगे, तब तुम प्रेमसे उन्हें खिलाना-पिलाना, स्वागत-सत्कार करना। उनसे अनुमति लेकर भगवान् रामके पास जाना और अपने जीवनको, आँखोंको सफल करना। तुम्हें उनकी कृपासे परमपदकी प्राप्ति होगी।' जब हनुमान्, अंगद आदि जानकीको ढूँढ़नेके लिये किष्किन्धासे चले थे तब मार्गमें इसी तपस्विनीसे भेंट हुई थी।

त्रिशंकु

इक्ष्वाकुवंशी नरपति त्रय्यारुणिके पुत्र सत्यव्रतका दूसरा नाम त्रिशंकु था। वे यज्ञ करके सदेह स्वर्गमें जाना चाहते थे। वसिष्ठने, जो कि उनके पुरोहित थे, ऐसा यज्ञ करानेसे अस्वीकार कर दिया। उनके पुत्रोंने भी अस्वीकार कर दिया। यह काम ही मर्यादाविरुद्ध और असम्भव था, परंतु त्रिशंकुने उनकी बात नहीं सुनी। उपेक्षापूर्वक कहा—'आपलोगोंका भला हो। मैं किसी दूसरेके पास जाता हूँ।' वसिष्ठजीके पुत्रोंने त्रिशंकुकी उपेक्षा देखकर शाप दे दिया कि तुम चाण्डाल हो जाओ। सचमुच वे चाण्डाल हो गये, उनके भाई-बन्धु, मन्त्री और प्रजाने उनका परित्याग कर दिया। वे अत्यन्त दुःखी होकर विश्वामित्रकी शरणमें गये। विश्वामित्रने उन्हें आश्वासन दिया और अपने पुत्रोंसे ऋषियोंको निमन्त्रण दिलाकर यज्ञ प्रारम्भ किया। वसिष्ठके पुत्र और एक ब्राह्मणने कह दिया कि जिस यज्ञमें चाण्डाल यजमान और पुरोहित अब्राह्मण हों, उसमें देवता नहीं आ सकते। ऐसा ही हुआ, कोई देवता नहीं आया। विश्वामित्रने अपनी तपस्याके बलसे त्रिशंकुको स्वर्गमें भेजा, परंतु इन्द्रादि देवताओंने उन्हें वहाँ स्थान नहीं दिया। इसपर विश्वामित्र रोषमें आ गये, उन्होंने कहा मैं दूसरे स्वर्गकी सृष्टि करूँगा। और आकाशमें दूसरे ग्रह-नक्षत्र आदिकी सृष्टि प्रारम्भ की। देवता लोग डर गये। वे विश्वामित्रके पास आये। उनका विचार-विनिमय हुआ। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि

विश्वामित्र नयी सृष्टि न करें और त्रिशंकु इसी प्रकार शून्यमें स्थित रहें। मर्यादाके विरुद्ध, सृष्टिके नियमोंके विरुद्ध, असम्भवको सम्भव करनेकी चेष्टाका तथा अत्यन्त लोभका यही परिणाम होता है कि वह वस्तु तो मिलती ही नहीं, अपने हाथकी भी चली जाती है।

दक्ष प्रजापति

सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माके दाहिने अँगूठेसे दक्ष प्रजापतिका जन्म हुआ। ब्रह्माकी आज्ञासे इन्होंने पहले मानस सृष्टि की, पीछे मैथुनी सृष्टि भी की। इनके बहुत-से लड़के नारदके उपदेशसे घर-बार त्यागकर संन्यासी बन गये और फिर नहीं लौटे। जब सब लड़कोंकी यही दशा हुई, तब दक्षने खीझकर नारदको शाप दे दिया कि तुम ढाई घड़ीसे अधिक कहीं नहीं ठहर सकोगे। दक्षकी कन्याओंका बहुत बड़ा विस्तार है। कश्यप, चन्द्रमा, धर्मराज आदिसे इन्हींकी कन्याओंका विवाह हुआ है। दक्षकी ही कन्या सती थीं, जिनका विवाह भगवान् शंकरसे हुआ था।

दक्ष भगवान् शंकरसे बहुत चिढ़ते थे। दक्ष प्रवृत्तिमार्गी थे, सृष्टि बढ़ानेके पक्षमें थे और शंकर निवृत्तिमार्गी हैं, संहारके पक्षमें हैं। दक्ष उन्हें मर्यादाविरोधी कहा करते थे। एक दिन शंकर ध्यानमग्न थे, सब देवता उन्हें घेरकर बैठे हुए थे। दक्ष प्रजापतिके आनेपर सब लोगोंने उठकर उनका स्वागत किया, परंतु शंकर ज्यों-के-त्यों बैठे रहे। दक्षने इसे अपना अपमान समझा। वे बिगड़ उठे और भगवान् शंकरको शाप दे दिया कि ये अबसे यज्ञमें भाग न पायें। वहाँसे जाकर ऐसे यज्ञका श्रीगणेश करनेके लिये उन्होंने एक प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। भगवान् शंकर इन बातोंसे उदासीन थे मानो कुछ हुआ ही न हो।

सतीको दक्षके शापका पता नहीं था, एक दिन देवताओंको दक्ष प्रजापतिके घरकी ओर जाते देखकर उन्हें बड़ी उत्सुकता हुई। पता लगानेपर मालूम हुआ कि दक्ष प्रजापतिके यहाँ कोई यज्ञ हो रहा है। इन्होंने भी जानेकी इच्छा प्रकट की और शंकरकी अनुमति न प्राप्त होनेपर भी चली गयीं। वहाँ आदर-सत्कार न पाकर और यज्ञमें शंकरका भाग न देखकर वे योगाग्निसे जल गयीं। शंकरके गणोंने यज्ञमें विघ्न डालनेकी चेष्टा की, परंतु उन्हें सफलता न हुई। अन्तमें वीरभद्रने आकर यज्ञ-ध्वंस किया। दक्षका सिर काटकर यज्ञकुण्डमें डाल दिया, फिर ब्रह्माकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर शंकरजीने दक्षको जीवित किया। सती पार्वतीके रूपमें हिमालयके घर पैदा हुईं। दक्षने ईर्ष्या-द्वेष छोड़कर भगवान् शंकरकी महत्ता स्वीकार की।

दधीचि

एक बार देवराज इन्द्रको गर्व हो गया कि मैं त्रिलोकीका स्वामी हूँ। गर्वके कारण उनकी बुद्धि मारी गयी और उन्होंने अपने कुलगुरु बृहस्पतिका अपमान कर दिया। वे रूठकर अन्यत्र चले गये। गुरुका रूठना सुनकर दैत्योंने इन्द्रपर चढ़ाई कर दी। वे डरकर ब्रह्माके पास गये। उन्होंने त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपको पुरोहित बनाकर काम चलानेकी सलाह दी, उन्होंने वैसा ही किया। विश्वरूपके बतलाये हुए नारायण-कवचके प्रभावसे इन्द्रकी जीत हुई। उन्होंने अपनी विजयके उपलक्षमें विश्वरूपके पौरोहित्यमें एक यज्ञ किया। विश्वरूप यज्ञमें धीरेसे दैत्योंको भी आहुति दे दिया करते थे। जब इन्द्रको यह बात मालूम हुई तब उन्होंने विश्वरूपके तीनों सिर धड़से अलग कर दिये। इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी। ब्रह्माने उस हत्याको किसी प्रकार बाँट-बूँटकर छुड़ाया। विश्वरूपके मरनेसे त्वष्टाको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने यज्ञ करके वृत्रासुरको पैदा किया। वह त्वष्टाकी आज्ञासे स्वर्गमें गया और उसने युद्ध करनेके लिये इन्द्रको ललकारा। इन्द्र ब्रह्माके पास गये। उन्होंने कहा—'भाई! इसकी मृत्यु तो दधीचिकी हड्डियोंसे बने हुए वज्रके द्वारा होगी।' वेदोंमें भी दधीचिका वर्णन आता है। विभिन्न स्थानोंमें उनके पिताका नाम भी भिन्न-भिन्न मिलता है। हाँ, वे एक सर्वज्ञ और भगवद्भजनमें लगे हुए सर्वभूतहितेरत ऋषि थे। जब इन्द्रने जाकर उनसे प्रार्थना की कि आपकी हड्डीसे ही जगत्‌का कल्याण और आसुरी शक्तिका विनाश होगा, तो उन्होंने प्रसन्नतासे स्वीकार कर लिया। महात्माओंका जीवन जगत्‌के लिये होता है—भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये होता है। उनकी हड्डीसे वज्र बना और उससे वृत्रासुर तथा अनेक असुरोंका वध किया गया। दधीचिकी कीर्ति आजतक बड़े आदरके साथ गायी जाती है। भगवान्‌ने कृपा करके उनकी आत्मा अपनी आत्मामें मिला ली।

नल-नील

ये विश्वकर्माके वानरपुत्र हैं। ये बचपनमें स्वभाववश बड़े ही नटखट थे। ऋषियोंमें रहते। वे लोग जब इन्द्रियोंको समेटकर परमात्माके ध्यानमें मग्न हो जाते, तब ये दोनों भाई चुपके-से दबे पाँव आते और उनके ठाकुरजीकी मूर्ति उठाकर जलमें फेंक देते। वात्सल्यस्नेह होनेके कारण और तपमें विघ्न पड़ जानेके कारण ऋषिलोग इनका अनिष्ट तो कर नहीं सकते थे, इसलिये वे चुप रह जाते। जब इनका उपद्रव बहुत बढ़ गया, तब एक दिन ऋषियोंने सलाह करके शापके रूपमें उन्हें ऐसा आशीर्वाद दे दिया कि इनके हाथसे जिसका स्पर्श हो जाय, वह वस्तु चाहे जितनी भारी हो जलमें न डूबे। तबसे ये किसीकी मूर्ति उठाकर जलमें फेंक देते तो वह ऊपर-ही-ऊपर उतराती रहती और ऋषिलोग उठा लाते। ऋषियोंके इस आशीर्वादके प्रभावसे ही सेतुबन्धनके समय नल-नीलने भगवान् रामकी सेवा की। उनके हाथसे समुद्रमें रखे हुए पत्थर डूबते नहीं थे।

नहुष

राजा अम्बरीषके पुत्रका नाम था नहुष। वह बड़ा प्रतापी राजा था। एक बार जब वृत्रासुरको मारनेके कारण इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी और वे स्वर्गसे भगकर मानस-सरोवरमें छिप गये, तब लोगोंने सर्व गुणसम्पन्न देखकर नहुषको इन्द्रासनपर बैठाया। नहुष ही स्वर्गका शासन करने लगे। इन्द्रका राज्य प्राप्त होनेपर नहुषके मनमें बड़ा अभिमान हुआ और उन्होंने इन्द्राणीपर अपना हक बताकर उनसे अनुचित प्रस्ताव किया। इन्द्राणी बहुत दिनोंतक टालती रहीं। जब नहुषके अत्याचारकी हद हो गयी, तब उन्होंने देवगुरु बृहस्पतिसे सलाह ली और उनकी सम्मतिसे कहला भेजा कि तुम सप्तर्षिकी सवारीपर चढ़कर आओ तो मैं वरण कर लूँगी। ऐश्वर्य एवं कामके मदसे मत्त होनेके कारण नहुषने सप्तर्षियोंको बुलाकर उन्हें पालकीमें लगा दिया। ऋषियोंने कभी पालकी ढोयी नहीं थी, चलनेमें किसी जीव-जन्तुकी हत्या न हो जाय इसलिये वे धीरे-धीरे चल रहे थे। नहुष उन्हें बार-बार डाँट रहा था—सर्प-सर्प अर्थात् चल-चल। कई बार कहनेपर अगस्त्यने कहा—'तू बार-बार सर्प-सर्प कहता है, जा तू सर्प हो जा।' नहुष उसी क्षण सर्प होकर पृथ्वीपर गिर गया। ब्राह्मणोंने इन्द्रसे प्रायश्चित्त करवाकर उनकी ब्रह्महत्या छुड़ा दी और उनके पदपर बैठा दिया। शापके पश्चात् नहुष अगस्त्यके शरणागत हुए। उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दे सकेगा, उसीके द्वारा तुम्हारी मुक्ति होगी। वनवासके समय सर्परूपी नहुषने भीमको पकड़ लिया, युधिष्ठिरने नहुषके प्रश्नोंके उत्तर देकर भीम और नहुष दोनोंको मुक्त किया।

मकरी और कालनेमि

इन्द्रकी सभामें नाच-गाकर सभासदोंको रिझानेवाले ये दोनों पहले अप्सरा और गन्धर्व थे। एक दिन इनके नृत्य और गानकी बड़ी प्रशंसा हुई, सब सभासद् वाह-वाह कहने लगे। वहीं दुर्वासा ऋषि भी थे। उन्होंने इनके नृत्य और संगीतकी कुछ प्रशंसा नहीं की। उस अप्सरा और गन्धर्वने सोचा कि ये नृत्य और गायनके सम्बन्धमें कुछ नहीं जानते, इससे उन्हें हँसी आ गयी। इसपर दुर्वासाने शाप दिया कि यह अप्सरा मकरी हो जाय और गन्धर्व राक्षस। जब उन दोनोंने ऋषिके पैरोंपर गिरकर बड़ी प्रार्थना की, बहुत गिड़गिड़ाये, तब उन्होंने बता दिया कि 'त्रेतायुगमें रामदूत हनुमान्‌के चरणोंका स्पर्श होनेसे मकरीका और उनके मारनेसे राक्षस कालनेमिका उद्धार होगा।'

मार्कण्डेय

महर्षि मृकण्डुके पुत्र मार्कण्डेय बड़े ही तपस्वी एवं गुरुभक्त थे। उनकी तपस्या और गुरुभक्तिके प्रभावसे अल्पायुमें ही होनेवाली उनकी मृत्यु टल गयी और वे दीर्घजीवी हो गये। उनकी भयङ्कर तपस्यासे घबड़ाकर इन्द्रने बहुत-सी अप्सराएँ एवं कामदेवको भेजा, परंतु वे मार्कण्डेयके तेजसे जलने लगे और वहाँसे लौट आये। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् नारायणने उन्हें दर्शन दिया और बार-बार वर माँगनेका आग्रह किया। मार्कण्डेयने कहा—'आपके दर्शनसे बढ़कर और कौन-सी वस्तु है, जिसे मैं माँगूँ। फिर भी आप प्रसन्न ही हुए हैं तो कुछ अपनी लीला दिखाइये।' भगवान्‌ने उन्हें प्रलयकी लीला दिखायी। सारी सृष्टिके जलमग्न होनेपर उन्हें वटके पत्तेपर सोये हुए भगवान्‌के दर्शन हुए। उस मनोहर बालककी मूर्तिको देखकर वे मुग्ध हो गये और उन खिसककर उनके पास गये तो श्वासके साथ खिंचकर उनके पेटमें चले गये। वहाँ उन्हें पूर्ववत् सब सृष्टिके दर्शन हुए, फिर श्वासद्वारा वे बाहर आये। वे उस मधुरमूर्तिने आकृष्ट होकर पुन

आलिङ्गन करने जा ही रहे थे कि भगवान् अन्तर्धान हो गये। उन्होंने मन-ही-मन भगवान्को प्रणाम किया और उनके शरणागत होकर सदाके लिये उनकी मूर्ति अपने हृदयमें बैठा ली।

एक बार पार्वतीजी और भगवान् शंकर विचरते हुए मार्कण्डेयके आश्रमकी ओर निकले। पार्वतीकी प्रेरणासे भगवान् शंकरने उनके पास जाकर उनसे वर माँगनेको कहा। मार्कण्डेय मुनिने उनकी पूजा करके कहा—'मुझे और किसी वस्तुकी आवश्यकता नहीं, आप कृपा करके ऐसा वर दीजिये कि भगवान्के श्रीचरणोंमें मेरी भक्ति बनी रहे। शिवने कहा—'तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हो, तुम्हें अमर यश और कल्पभरका जीवन प्राप्त हो, तुम्हें त्रिकालविषयक ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य और पुराणोंका आचार्यत्व प्राप्त हो।' मार्कण्डेय मुनि चिरजीवी हैं। अब भी कहीं एकान्तमें तपस्या करते हुए जगत्के कल्याणार्थ अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

ययाति

ययाति राजा नहुषके पुत्र थे। इनकी दो स्त्रियाँ थीं, एकका नाम था देवयानी और दूसरीका शर्मिष्ठा। देवयानी दैत्यगुरु शुक्राचार्यकी कन्या थी और शर्मिष्ठा दैत्यराज वृषपर्वाकी। कुमारी अवस्थामें इन दोनोंमें कहा-सुनी और विवाद हो जानेके फलस्वरूप शुक्राचार्य वृषपर्वापर अप्रसन्न होकर उनकी राजधानीसे जा रहे थे। तब वृषपर्वाने अपनी पुत्री शर्मिष्ठाको देवयानीकी दासीके रूपमें देकर उन्हें प्रसन्न किया। जब ययातिका देवयानीसे विवाह हुआ, तब उनसे यह प्रतिज्ञा करा ली गयी थी कि वे शर्मिष्ठाको दासीके रूपमें ही रखें, कभी अर्धाङ्गिनी न बनावें; परंतु ययातिने इस प्रतिज्ञाका पालन न किया। देवयानीके गर्भसे दो पुत्र हुए—यदु और तुर्वसु। शर्मिष्ठाके गर्भसे तीन पुत्र हुए—द्रुह्यु, अनु और पुरु। जब देवयानीको यह बात मालूम हुई तब वह क्रोधित होकर अपने पिताके पास चली गयी। राजा भी उसे मनानेके लिये गये। शुक्राचार्यने सब समाचार सुनकर ययातिको शाप दिया कि तुम बुड्ढे हो जाओ, वे उसी क्षण बुड्ढे हो गये।

बहुत अनुनय-विनय करनेपर शुक्राचार्यने इतनी छूट दी कि यदि तुम्हारा कोई पुत्र तुम्हें अपनी जवानी देकर तुम्हारा बुढ़ापा ले ले तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो सकती है। ययातिने अपने सब पुत्रोंको बुलाकर अवस्थापरिवर्तनका प्रस्ताव किया। परंतु बड़े पुत्रोंने इसे अधर्म कहकर अस्वीकार कर दिया। केवल छोटे पुत्र पुरुने 'पिताकी जो आज्ञा' कहकर अपनी जवानी दे दी और उनका बुढ़ापा ले लिया। पुत्रकी जवानी लेकर ययाति बहुत दिनोंतक भोग-विलास करते रहे, परंतु उनकी तृप्ति न हुई। अन्तमें उन्हें विषयोंसे बड़ी विरक्ति हुई और उन्होंने कहा कि विषयोंके भोगसे तो किसीको शान्ति मिल ही नहीं सकती, इनके त्याग और कामनाओंके नाशसे ही शान्ति मिल सकती है। उन्होंने पुरुको उसकी जवानी लौटा दी और अपना बुढ़ापा ले लिया। आज्ञापालन करनेके कारण पुरुको राजगद्दीपर बैठाकर वे स्वयं तपस्या करने चले गये और अन्तमें सद्गतिको प्राप्त हुए।

रन्तिदेव

रन्तिदेव महाराज संकृतिके पुत्र थे। इनके जैसा उदार दाता नरपति शायद ही कोई हुआ हो। इन्होंने अपना सर्वस्व दान कर दिया। जो कुछ मिल जाता सकुटुम्ब वही खाकर रह जाते। एक बार ऐसा अवसर आया कि अड़तालीस दिनोंतक इन्हें अन्न-जल नहीं मिला; उनचासवें दिन इन्हें घी, खीर, हलुआ और पानी मिला। ये भोजन करने जा ही रहे थे कि वहाँ एक ब्राह्मण अतिथि आ पहुँचा, रन्तिदेवने उस अतिथिको अपना भाग खिला दिया। उसे विदा करके वे भोजन करनेके लिये बैठनेवाले ही थे कि एक शूद्र आ पहुँचा। उस समय उनकी स्त्री और बच्चे भूख-प्याससे व्याकुल हो रहे थे; परंतु वे सब आगन्तुक अतिथिमें भगवान्का दर्शन कर रहे थे, इसलिये बड़ी प्रसन्नतासे अवशिष्ट भोजनमेंसे उसे भरपेट खिला दिया। अब थोड़ा-सा अन्न बच रहा था। वे उसे पानेवाले ही थे कि कुत्तोंसे घिरा हुआ एक चाण्डाल आ पहुँचा और उसने कहा—'हम सब भूखे हैं, अन्न देकर हमारी प्राणरक्षा कीजिये।' राजा रन्तिदेवने वेदोंमें वर्णित '**श्वपतये नमः**' कहकर कुत्तोंके स्वामीको नमस्कार किया और जो कुछ उनके पास था, सब उसे खिला दिया। अब उनके पास केवल पानी बच रहा था। उन्होंने पीनेके लिये ज्यों ही उसे उठाया त्यों ही एक कसाई पुकारता हुआ आया—पानी बिना मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। राजाके मनमें उस समय यह भाव आया कि 'मैं भगवान्से ब्रह्मलोक नहीं चाहता, योगसिद्धियोंकी मुझे आवश्यकता नहीं; और तो क्या, यदि साक्षात् मोक्ष मुझे प्राप्त

हो तो मैं वह भी नहीं चाहता। भगवन्! कृपा करके मुझे यह वरदान दीजिये कि मैं सब दुखियोंके हृदयमें स्थित होकर उनके दुःखोंका अनुभव करता रहूँ और वे सुखी हो जायँ।' रन्तिदेवने बड़े प्रेमसे वह जल उस कसाईको पिला दिया। उसी समय रन्तिदेवकी परीक्षाके लिये छद्मरूप धारण किये हुए ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश उनके सामने प्रकट हुए और रन्तिदेवको उन्होंने वाञ्छित वरदान देना चाहा, परंतु रन्तिदेवने भगवान्‌के भजनके अतिरिक्त और कुछ नहीं माँगा। उनके सामनेसे जगे हुए मनुष्यके स्वप्नकी भाँति यह माया नष्ट हो गयी और वे विशुद्ध आत्मस्वरूपमें स्थित हो गये।

राहु-केतु

भगवान्‌की कृपा, शक्ति एवं सहायतासे देवता और दैत्योंने समुद्र-मन्थन किया। जब धन्वन्तरि अमृतका कलश लिये हुए समुद्रसे बाहर निकले, तब दैत्योंने उनसे वह कलश छीन लिया और फिर आपसमें लड़ने-झगड़ने लगे कि पहले मैं पीऊँगा, पहले मैं पीऊँगा। उस समय देवताओंकी प्रार्थनासे भगवान्‌ने मोहिनी-अवतार धारण किया और अपनी मायाभरी चितवनसे दैत्योंको मोहित करके उन्होंने अपनेको पंच स्वीकार करा लिया। दैत्य और देवताओंको अलग-अलग पंक्तिमें बैठाकर मोहिनीने अपनी दृष्टिसे दैत्योंको मोहित कर रखा और वे देवताओंको अमृत पिलाने लगीं। सिंहिकापुत्र राहुने यह बात ताड़ ली और वह देवताओंका-सा वेष बनाकर सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें जा बैठा। मोहिनी पंक्तिमें बैठनेके कारण राहुको अमृत पिलाने ही जा रही थीं कि सूर्य और चन्द्रमाने उन्हें बतला दिया। उसका कपट खुलते ही विष्णुभगवान्‌का चक्र चला और राहुका सिर धड़से अलग हो गया। परंतु उसके मुँहमें अमृत पहुँच चुका था, इसलिये वह मरा नहीं। बतला देनेके कारण चन्द्रमा और सूर्यसे वह द्वेष करने लगा। क्रमशः पूर्णिमा और अमावस्याको उनपर आक्रमण करता है, जिससे कि ग्रहण लगता है। उस कटे हुए सिरका नाम राहु और धड़का नाम केतु है।

विराध

पुराणोंमें विराधकी उत्पत्ति भिन्न-भिन्न प्रकारसे प्राप्त होती है। एक स्थानपर ऐसी कथा आती है कि तुम्बुरु गन्धर्व रम्भा अप्सरापर मोहित हो जानेके कारण यक्षराज कुबेरकी सेवा समयपर न कर सके। कुबेरने शाप दे दिया कि 'तुम राक्षस हो जाओ।' वही तुम्बुरु जब राक्षसकी पत्नी शतह्रदाके गर्भसे पैदा हुआ, तब उसका नाम विराध पड़ा। अनुनय-विनय करनेपर कुबेरने ही यह छूट कर दी थी कि भगवान् श्रीरामके बाणोंसे विराध राक्षस-योनिसे छूट जायगा। सीताको उठाकर ले भागनेकी चेष्टा करनेपर श्रीरामने उसका उद्धार किया।

वसिष्ठ

महर्षि वसिष्ठ ब्रह्माके मानसपुत्र हैं। इनका चरित्र बड़ा लम्बा है। इनकी धर्मपत्नी श्रीअरुन्धतीजी हैं। जब इन्हें पृथ्वीपर आकर रघुवंशियोंके पुरोहित बननेकी आज्ञा हुई, तब इन्होंने उसे नीच कर्म बतलाकर स्पष्ट अस्वीकार कर दिया, परंतु जब ब्रह्माने बतलाया कि इस वंशमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम अवतीर्ण होनेवाले हैं तब इन्होंने भगवान्‌के दर्शनके लोभसे वह काम स्वीकार कर लिया। इनके तपोबलसे अनेकों दुखियोंका दुःख दूर हुआ है, जगत्‌का महान् कल्याण हुआ है। काम-क्रोधादि शत्रु पराजित होकर महर्षि वसिष्ठकी चरणसेवा किया करते थे। विश्वामित्रके द्वेष करनेपर भी ये उनसे प्रेम ही करते थे। एक बार जब विश्वामित्र रातको चुपकेसे वसिष्ठका अनिष्ट करने आये हुए थे, तब उन्होंने अपने कानों सुना कि वसिष्ठ अरुन्धतीसे एकान्तमें उनकी प्रशंसा कर रहे हैं। योगवासिष्ठमें उपदेशकके रूपमें महर्षि वसिष्ठ भगवान् रामके भी गुरु हैं। इससे अधिक उनकी महिमाके सम्बन्धमें और क्या कहा जा सकता है। उनके जीवनमें आदर्श त्याग है, तपस्या है, ज्ञान है, वैराग्य है और सबसे बढ़कर है भगवत्प्रेम। आज भी वे भगवान्‌की आज्ञासे सप्तर्षिमण्डलमें रहकर सारे संसारमें शान्तिका विस्तार करते हैं।

विश्वामित्र

पुराणोंमें विश्वामित्रके सम्बन्धकी बहुत-सी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। उनमेंसे एक इस प्रकार है—ये राजा गाधिके पुत्र थे। वसिष्ठकी कामधेनु गौको देखकर इन्होंने उसे लेना चाहा, परंतु वसिष्ठने उसे ब्राह्मणोंकी सम्पत्ति बतलाकर देनेसे अस्वीकार कर दिया। इसपर विश्वामित्रने क्रोधित होकर उनसे लड़ाई छेड़ दी। परंतु ब्रह्मबलके सामने

इनका क्षत्रियबल कुछ काम न कर सका, ये हार गये। अब विश्वामित्रके मनमें यह इच्छा हुई कि मैं भी ब्रह्मबल अर्थात् ब्राह्मणत्व प्राप्त करूँ। उन्होंने बहुत दिनोंतक घोर तपस्या की और अन्तमें ब्रह्माने उन्हें ब्राह्मण होनेका वरदान दे दिया। यों तो विश्वामित्र जन्मसे भी आधे ब्राह्मण ही थे।

वसिष्ठ विश्वामित्रको ब्राह्मण नहीं स्वीकार करते थे। बीच-बीचमें दोनोंमें कुछ विवाद भी हो जाया करता था। एक बार दोनोंमें यह विवाद हुआ कि तपस्या बड़ी है या सत्संग। विश्वामित्र तपस्याके पक्षमें थे और वसिष्ठ सत्संगके। अपने विवादका निर्णय करानेके लिये दोनों शेष भगवान्‌के पास पहुँचे। उन्होंने सब बातें सुनकर कहा कि 'भाई! मेरे सिरपर इतनी बड़ी पृथ्वीका भार है, तुममेंसे कोई एक क्षणके लिये इसे ले ले तो मैं निर्णय कर दूँ।' विश्वामित्रने अपनी हजारों वर्षकी तपस्याके फलका संकल्प करके एक क्षणतक पृथ्वीको धारण करना चाहा, पर न कर सके। वसिष्ठने एक क्षणके सत्संगका फल लगाकर समस्त पृथ्वी धारण कर लिया। बिना कुछ कहे ही निर्णय हो गया और दोनों वहाँसे लौट आये।

विश्वामित्रके मनमें वसिष्ठके प्रति कुछ दुर्भावना शेष थी। एक दिन पूर्वसंस्कारवश वह उभड़ आयी और वे वसिष्ठका अनिष्ट करनेके लिये जा पहुँचे। उस समय अरुन्धती और वसिष्ठ आपसमें विश्वामित्रकी ही चर्चा कर रहे थे। अरुन्धतीने कहा— 'आजकल विश्वामित्रके तपकी बड़ी प्रशंसा हो रही है, सुना है कि वे अपने तपोबलसे क्षत्रियसे ब्राह्मण हो गये।' वसिष्ठने कहा—'सच्ची बात है, वर्तमान समयमें विश्वामित्र बहुत ही ऊँचे तपस्वी हैं, उनके ब्राह्मण होनेमें भला किसे संदेह है।' वसिष्ठको एकान्तमें इस प्रकार बातें करते देख-सुनकर विश्वामित्रका मन निर्मल हो गया, वे जाकर वसिष्ठके गले लगे और फिर तबसे दोनोंमें मित्रता हो गयी।

शृङ्गी

शृङ्गी ऋषिका दूसरा नाम ऋष्यशृङ्ग था। इनके पिता कश्यपतनय महात्मा विभाण्डक थे। उन दिनों अङ्गदेशके राजा रोमपादसे अयोध्याधिपति दशरथकी बड़ी मित्रता थी। रोमपादको कोई संतान न होनेके कारण बड़ा दुःख था, इससे दशरथने अपनी कन्या शान्ता उन्हें दे दी थी। एक बार अङ्गदेशमें अवर्षणके कारण दुर्भिक्ष पड़ गया। जब प्रजा बहुत दुखी हुई, तब राजा रोमपादने ऋष्यशृङ्गको बुलाकर एक यज्ञ करवाया और अपनी पुत्री शान्ताका विवाह उनसे कर दिया। वर्षा हुई, सब लोग सुखी हो गये। जब यह समाचार दशरथको मालूम हुआ, तब महर्षि वसिष्ठकी अनुमतिसे उन्हें अयोध्यामें बुलाया और उनकी उपस्थितिमें पुत्रेष्टि यज्ञ किया, जिस यज्ञके चरुभक्षणसे रानियोंको गर्भ रहा और श्रीराम-लक्ष्मण आदि पुत्र उत्पन्न हुए।

शिबि

राजा शिबि काशीनरेश उशीनरके पुत्र थे। वे अपने समयके बड़े ही धर्मात्मा और दानी हो गये हैं। एक बार उन्होंने सौ यज्ञोंका संकल्प किया। कुछ ही दिनोंमें सौ यज्ञ पूरे हो जानेवाले थे, परंतु अपना राजसिंहासन छिन जानेके भयसे इन्द्रने बाधा डाल दी। उन्होंने अग्निको बनाया कबूतर और स्वयं बने बाज। कबूतर आगे-आगे भगा जा रहा था और बाज उसका पीछा कर रहा था। भागते-भागते वह कबूतर शिबिकी गोदमें जा गिरा। बाजरूपधारी इन्द्रने जाकर कहा—'राजन्! यह मेरा आहार है, इसे मुझे दे दीजिये।' शिबिने कहा—'शरणागतका परित्याग ब्रह्महत्या और गोहत्यासे भी बढ़कर है। इसकी रक्षा करना ही मेरा धर्म है। इसके अतिरिक्त जो चाहो तुम ले सकते हो।' अन्तमें कबूतरके बदले राजाका उतना ही मांस लेना बाजने स्वीकार किया। राजा शिबि तराजूके एक पलड़ेपर कबूतरको बैठाकर दूसरे पलड़ेपर अपना मांस काट-काटकर रखने लगे। जब उससे कबूतरके बराबर मांस न हुआ तब वे स्वयं तराजूपर बैठ गये। उनकी धर्मनिष्ठा देखकर चारों ओर जय-जयकी ध्वनि होने लगी और स्वयं भगवान् विष्णुने प्रकट होकर उन्हें अपना परम धाम दिया।

जो शत्रुको मित्र बनाता और मित्रसे द्वेष करते हुए उसे कष्ट पहुँचाता है तथा सदा बुरे कर्मोंका आरम्भ किया करता है, उसे मूढ़ चित्तवाला कहते हैं।

पौराणिक कथाओंका तात्पर्य—भगवत्प्राप्ति

(डॉ॰ श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰)

पुराण-साहित्य भारतीय संस्कृतिकी अमूल्य निधि है। इसमें विविध रस, अनुभव, मानव-जीवनके लक्ष्य, भगवत्प्राप्ति तथा जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त होनेका उपाय तथा अन्य उपयोगी तत्त्व रोचक-शैलीमें दिये गये हैं। पौराणिक, नैतिक और धार्मिक कथाओंमें जीवनमें काममें आनेवाली अनेक उपयोगी बातोंका वर्णन और विवेचन मिलता है। इसमें सत्य, न्याय, प्रेम, भक्ति, वैराग्य, दान, सहयोग, कर्तव्यनिष्ठा, भ्रातृभाव, आदर्श मित्रता, मधुर सम्बन्ध, ईमानदारी आदि दैवी तत्त्वोंको प्रतिष्ठित किया गया है।

राष्ट्रिय चरित्रको समुन्नत और दृढ़ बनाने, नैतिक मूल्योंकी स्थापना, उच्च आदर्शोंकी प्रतिष्ठा कथाओंके माध्यमसे ही हो सकती है। कथाओंके माध्यमसे सुधारवादी दर्शनके उज्ज्वल पक्षकी चर्चा की जा सकती है। हमारा पौराणिक कथासाहित्य धर्म, दर्शन, नीति, संस्कृतिके उच्च आदर्शोंकी प्रतिष्ठा करता है। प्राचीन कथासाहित्यमें हर जीवनमें काममें आनेवाली घटनाएँ, चरित्र, परिस्थितियाँ मिलती हैं। भक्त प्रह्लाद, श्रवणकुमार, भगवान् राम, लव-कुश, कृष्ण, सुदामा, युधिष्ठिर, ऋषि-मुनियों तथा देवी-देवताओंकी भव्य कथाएँ, सूर्य तथा चन्द्रवंशी-प्रधान चरित-नायकोंके आख्यान एवं तीर्थ-माहात्म्य अन्ततः भगवत्प्राप्तिके आदर्श प्रस्तुत करती हैं। ये कथाएँ सत्य, न्याय, दया, सहयोग, एकता, संगठन आदि उपयोगी तत्त्वोंके प्रति संवेदनशील बनाती हैं। मानव-जीवनके सही विकासके लिये साहस, हिम्मत-बहादुरी, लगन और उच्च आदर्शोंकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न दिखानेवाली कथाएँ जीवनसे जुड़कर लाभ पहुँचाती हैं। पौराणिक कथाओंका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति, पाठकोंके मनपर दृढ़तासे अङ्कित हो जाता है। कम पढ़ी-लिखी महिलाएँ, गाँववाले तथा मजदूरवर्ग भी गूढ़ रहस्योंको समझ लेते हैं। प्राचीन चरित-नायकों और घटनाओंके माध्यमसे नयी समस्याओंका हल और प्रश्नोंका उत्तर दिया जा सकता है।

हमारी पौराणिक धर्म-कथाएँ नाना रूपोंमें भगवत्प्राप्तिके उद्देश्यको पूर्ण करती हैं। उपदेशपूर्ण इतिवृत्त रोचक कथानकोंके साथ भारतीय पुराण साहित्य भी उपलब्ध हैं। महाभारत तो अद्भुत कथा-साहित्यका ग्रन्थ है। वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत तथा भागवत आदि पुराण धर्मका गूढ़ मर्म स्पष्ट करनेवाली सैकड़ों शिक्षाप्रद एवं रोचक कथाओंके भण्डार हैं। पुराणोंमें धार्मिक कथाओंको सुन्दर प्रतीकोंकी शैलीमें सँजोया गया है। उन प्रतीकोंका सही अर्थ न मालूम होनेसे वे रूढ़ कथाएँ बनती जा रही हैं। आज आवश्यकता यह है कि उनका मानवीय दृष्टिसे इतिहासके परिप्रेक्ष्यमें मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाय। पुराण कथा-साहित्यके श्रवण-पठनसे स्वाभाविक ही पुण्य-लाभ, अन्तःकरणकी शुद्धि, उत्तम कार्योंमें रुचि और क्षुद्र विषयवासनाओंसे विरक्ति होती है। मनुष्यको ऐहिक और पारलौकिक हानि-लाभका भी यथार्थ ज्ञान हो जाता है। सभी धर्म-कथाएँ सदाचारका महत्त्व स्पष्ट करती हैं। विभिन्न तीर्थोंके माहात्म्यकी पवित्र कथाएँ युग-युगसे हमारे यहाँ लोकप्रिय रही हैं। संसार बदल गया, वैज्ञानिक युग आ गया, मनोविज्ञानका जमाना है, फिर भी ये कभी न भूलनेवाली धर्मकथाएँ आज भी जनतामें लोकप्रिय हैं और पढ़ने-सुननेका निमन्त्रण देती हुई प्रतीत होती हैं। आवश्यकता है कि माता-पिता, संरक्षक, अध्यापक, समाजसेवक, मठ-मन्दिरोंके पुजारी रोचक-शैलीमें इन्हें प्रस्तुत करते रहें।

मुक्तिका सहज उपाय

यत्र विष्णुकथा पुण्या शुभा लोकमलापहा।
तत्र सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि विविधानि च। यत्र प्रवहते पुण्या शुभा विष्णुकथापरा॥
तद्देशवासिनां मुक्तिः करसंस्था न संशयः॥ (स्कन्द॰, वैष्णव॰, वैशाख॰ १८। ४४-४५)

'जहाँ लोगोंके पापोंका नाश करनेवाली भगवान् विष्णुकी पवित्र कथा होती है, वहाँ सब तीर्थ और अनेक प्रकारके क्षेत्र निवास करते हैं। जहाँ विष्णुकथारूपी पुण्यमयी नदी बहती रहती है, उस देशमें निवास करनेवालोंकी मुक्ति उनके हाथमें ही है।'

पुराणोंका परम प्रयोजन—श्रेय और प्रेयकी प्राप्ति

(आचार्य डॉ० श्रीजयमन्तजी मिश्र)

भारतीय धार्मिक तथा सांस्कृतिक परम्परामें पुराणोंका अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। पुराण एक ऐसा विश्वकोश है, जिसमें धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक आदि सभी विषय अति सरल एवं सुगम भाषामें वर्णित हैं। वैदिक वाङ्मयमें वर्णित विषय सर्व-साधारणगम्य नहीं हैं। उन सबका रहस्य पुराणोंमें उपाख्यानों-द्वारा सुस्पष्ट किया गया है। अतः वेदनिहित तत्त्वोंकी जानकारीके लिये पौराणिक साहित्यका श्रवण-मनन अत्यावश्यक है। इसीलिये इतिहास-पुराणोंके द्वारा वेदोपबृंहणका विधान किया गया है। पुराणोंके परिज्ञानके बिना वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद्का ज्ञाता भी ज्ञानवान् नहीं माना गया है[१]। इससे पुराण-सम्बन्धी ज्ञानकी आवश्यकता और महत्ता परिलक्षित होती है।

वर्तमानकालीन नवीन घटना जैसे असंदिग्ध मानी जाती है, वैसे ही पौराणिक घटना भी असंदिग्ध है। महर्षि यास्कने इसी ओर संकेत करते हुए 'पुराण' की व्युत्पत्ति बतलायी है, **'पुरा नवं भवति'** (निरुक्त ३।४।१९)। इसकी दूसरी व्युत्पत्ति है, **'पुरा अणति इति पुराणम्।'** अर्थात् जो प्राचीन कालमें भी श्वास लेता हो या जीवित रहा हो उसे 'पुराण' कहते हैं। **'प्राग्द्युतिमत् आसीदिति प्रदिवः'** अर्थात् पुराकालमें जो प्रकाशमय था, एतदर्थक पुराणका पर्यायवाची 'प्रदिव' शब्द भी यही बतलाता है। अतः पुराण प्राचीन भारतीय इतिहासके सच्चे धरोहर हैं।

पुराणोंकी विलक्षणता

पुराणोंमें व्यावहारिक जगत्की सारी बातें समाजके लिये अतिसुगम भाषामें कही गयी हैं। यह इसकी सर्वाधिक विशेषता है। सामाजिक कल्याणके लिये धर्म-नियन्त्रित अर्थ और काम उपयोगी होते हैं, यह सभी पुराणोंमें स्पष्ट बतलाया गया है। धर्म-ग्लानि और अधर्माभ्युत्थानका परिणाम हितकर नहीं होता—यह विभिन्न उपाख्यानोंद्वारा सिद्ध किया गया है। पुराणोंमें ऐहलौकिक सुख-समृद्धिका अनङ्गीकार नहीं है, अपितु केवल आधिभौतिकवादपर अध्यात्मवादका नियन्त्रण, दोनोंमें सामञ्जस्य और संतुलनकी आवश्यकता दिखलायी गयी है। भगवान् योगेश्वर श्रीकृष्ण और धनुर्धर अर्जुनमें सामञ्जस्य ऐकमत्य होनेपर ही सुख-समृद्धि और विजयका साम्राज्य होता है[२]। यही पुराणोंका भी सिद्धान्त है। परमार्थतः भगवत्प्राप्तिको परम प्रयोजन मानते हुए भी व्यावहारिक जगत्में अपेक्षित सभी विषयोंका वर्णन पुराण करते हैं। वैदिक धर्म 'इष्ट' (यज्ञ) पर बल देता है और पौराणिक धर्म 'पूर्त' (वापी, तडाग, धर्मशाला, समाजोपयोगी वस्तु-निर्माण) पर अधिक आग्रह करता है। दोनों (इष्टापूर्त) ही सनातनधर्मके लक्ष्य हैं। वैदिक सिद्धान्त एक 'सत्'को इन्द्र, वरुण आदि अनेक नामोंसे अभिहित मानता है और पौराणिक सिद्धान्त एक 'सत्'का राम, कृष्ण आदि अनेक रूपोंमें अवतार स्वीकार करता है। इस प्रकार पुराणोंमें वेदार्थका उपबृंहण और जागतिक व्यवस्थाको सुदृढ़ करनेके लिये समाज-कल्याणोपयोगी विषयोंका प्रतिपादन हुआ है। इसीलिये महर्षि व्यासने वेदार्थसे अधिक पुराणार्थको महत्त्व देते हुए कहा है—

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने।
वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः॥

(नारदीयपुराण २।२४।१७)

भारतीय धर्म और संस्कृतिके परिज्ञान तथा उनके परिरक्षणके लिये पौराणिक साहित्यका परिशीलन परमावश्यक है।

१-यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः। पुराणं नैव जानाति न च स स्याद् विचक्षणः॥ (ब्रह्माण्ड-प्रक्रिया १।१७०, वायुपु०, पूर्वार्द्ध १।४५)
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्। उत्तमं सर्वलोकानां सर्वज्ञानोपपादकम्॥ (पद्मपु० १।४५)
२-यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥ (गीता १८।७८)

नम्र निवेदन और क्षमा-प्रार्थना

भगवत्कृपासे इस वर्ष 'कल्याण'का विशेषाङ्क 'पुराणकथाङ्क' पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत किया जा रहा है। 'कल्याण'की परम्परामें पिछले वर्षोंमें यदा-कदा कुछ पुराणोंका संक्षिप्त अनुवाद अथवा किसी पुराणका सानुवाद-प्रकाशन विशेषाङ्कके रूपमें होता रहा है। इस वर्ष भी कुछ पाठक महानुभावोंका यह आग्रह था कि 'गरुडपुराण'का संक्षिप्त अनुवाद 'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित किया जाय। यद्यपि इसके प्रकाशनपर विचार किया जा रहा था, परंतु कुछ कारणोंसे यह सम्भव नहीं हो सका, अतः तत्काल यह निर्णय लिया गया कि सम्पूर्ण पुराणोंकी कथाओंका एक संक्षिप्त संकलन 'पुराणकथाङ्क'के रूपमें प्रकाशित किया जाय। यह कार्य अत्यन्त दुरूह था, कारण पुराणोंमें इतने अधिक विषयोंका समावेश हुआ है तथा उसका ऐतिहासिक अंश भी इतना विस्तृत है कि सारे पुराणोंका मनोयोगपूर्वक अध्ययन करनेके लिये पूरा-का-पूरा जीवन लगाया जाय, तब भी कदाचित् वह अपर्याप्त ही सिद्ध होगा। वास्तवमें पुराणोंका जो रूप इस समय उपलब्ध है, उनमें सौ करोड़ श्लोकोंका विषय चार लाख श्लोकोंमें ग्रथित है।

शास्त्रोंने इन्हें पञ्चम वेद माना है। वेदोंकी ही सार बातें इनमें अत्यन्त रोचक ढंगसे कथाओंके रूपमें वर्णित हैं। शास्त्रानुसार वेदोंके अध्ययनमें सबका अधिकार नहीं है, केवल त्रैवर्णिकोंके लिये ही यज्ञोपवीत संस्कारके पश्चात् गुरुमुखसे इनके श्रवण तथा अध्ययन करनेका विधान है, स्त्रियों, शूद्रों एवं अन्य जातिके लोगोंको वेदोंके पठन-पाठनका अधिकार नहीं है, ऐसे लोगोंको भी वैदिक सिद्धान्तोंसे परिचित कराने तथा उन्हें त्रिवर्गकी प्राप्तिके साथ-साथ मोक्षप्राप्तिका भी सुलभ मार्ग दिखलानेके लिये इतिहास एवं पुराणोंकी रचना हुई है।

पुराणोंमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, सदाचार एवं निष्काम कर्मकी महिमाके साथ-साथ यज्ञ, दान, तप, तीर्थ-सेवन, देवपूजन, श्राद्ध-तर्पण आदि शास्त्रविहित शुभकर्मोंमें जनसाधारणको प्रवृत्त करनेके लिये उनके लौकिक एवं पारलौकिक फलोंका भी वर्णन किया गया है। इनके अतिरिक्त पुराणोंमें अन्यान्य कई उपयोगी विषयोंका समावेश हुआ है। उदाहरणके लिये पुराणोंमें प्रायः सभी आस्तिक तथा नास्तिक दर्शनोंके सिद्धान्तोंका सूत्ररूपसे वर्णन मिलता है, विशेषकर सांख्य, योग एवं वेदान्त-दर्शनोंका तो श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंमें विशेष रूपसे विवेचन किया गया है, इसके अतिरिक्त वेदके छहों अङ्ग—व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा एवं कल्प तथा आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद आदि उपवेदों, राजनीति, समाजनीति आदि नीतियों, धर्मके विविध अङ्गों—यहाँतक कि शिल्प, निघण्टु, युद्धविद्या एवं साहित्य-जैसे विषयोंपर भी पुराणोंमें पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार पुराणोंको यदि हम भारतीय सभ्यता एवं संस्कृतिका विश्वकोष कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

ऐतिहासिक दृष्टिसे भी पुराणोंका कम महत्त्व नहीं है। आधुनिक इतिहासों और पुराणोंमें इतना ही अन्तर है कि पुराणोंकी दृष्टि बहुत अधिक व्यापक है, उनमें केवल इस भूमण्डलका ही इतिहास नहीं है, अपितु इस भूमण्डलकी कब और कैसे उत्पत्ति हुई, अन्य लोकोंकी कब-कब और किस प्रकार सृष्टि हुई, इन सभी बातोंका भी विस्तृत वर्णन है। इतना ही नहीं, सृष्टि कब और किस प्रकार होती है तथा भविष्यमें क्या होगा—इसपर भी पुराणोंमें पूर्णरूपसे प्रकाश डाला गया है।

पुराणोंमें जीवनकी गुत्थियोंको बहुत ही रोचक और हृदयग्राही ढंगसे समझाया गया है। भगवान्के निर्गुण-निराकार, सगुण-साकार आदि विविध रूपोंमेंसे किसी भी एक रूपको लक्ष्य बनाकर उसकी ओर अग्रसर होनेका सुगम मार्ग दिखलाया गया है। पुराणोंकी महत्ताका प्रधान कारण यही है। पुराणोंका पाठ करके, उनमें प्रतिपादित तत्त्वोंका अनुशीलन करके तथा उनके उपदेशोंको जीवनमें उतारनेका अथक प्रयत्न करके न जाने कितने मनुष्योंने अपने जीवनको सार्थक बनाया है और आगे भी बनाते रहेंगे।

वास्तवमें पुराणोंकी समस्त कथाओं और उपदेशोंका सार यही है कि हमें आसक्तिका त्यागकर वैराग्यकी ओर प्रवृत्त होना चाहिये तथा सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिये एकमात्र परमात्माकी शरणमें जाना चाहिये। यह लक्ष्यप्राप्ति योगमें

थवा भक्तिद्वारा किस प्रकार हो सकती है—इसकी विशद ाख्या अनेक पुराणोंमें हुई है। पुराण भगवत्प्राप्तिके लक्ष्यको ामने रखते हुए विभिन्न रुचि और अधिकारके अनुसार भिन्न व्यक्तियोंके लिये उनके ग्रहण करनेयोग्य विभिन्न नुभूत सत्यमार्गोंका, मार्गके विघ्नोंका तथा विघ्नोंसे छूटनेके पायोंका बड़ा ही सुन्दर निरूपण करते हैं। मनुष्य अपने हिक जीवनको किस प्रकार सुख-समृद्धि और शान्तिसे म्पन्न कर सकता है और उसी जीवनके द्वारा जीवमात्रका ल्याण करनेमें सहायक होता हुआ कैसे अपने परम ध्येय गवत्प्राप्तिके मार्गपर आसानीसे बढ़ सकता है—इसके विध साधन बड़ी ही रोचक भाषामें सच्चे तथा उपदेशपूर्ण तिवृत्त-कथानकोंके साथ पुराणोंमें बताये गये हैं। पुराणोंके वण और पठनसे स्वाभाविक ही पुण्य-लाभ तथा न्तःकरणकी परिशुद्धि, भगवान्‌में रति और विषयोंमें विरति होती ही है, साथ ही मनुष्यको ऐहिक और पारलौकिक ानि-लाभका यथार्थ ज्ञान भी हो जाता है। तदनुसार जीवनमें र्तव्यनिश्चय करनेकी अनुभूत शिक्षा मिलती है, साथ ही भीको यथाधिकार समानरूपसे कल्याणकारी ज्ञान, साधन ौर सुन्दर तथा पवित्र जीवन-यापनकी शिक्षा मिलती है। ये राण विभिन्न दृष्टिकोणवाले पाठकोंके लिये अत्यधिक पादेय, ज्ञानवर्धक, सरस तथा उनके यथार्थ अभ्युदयमें हायक हैं।

भारतीय धर्म तथा सभ्यता-संस्कृतिमें भौतिकता या ोगोंका निषेध नहीं है, वरं मानवजीवनके एक क्षेत्रमें उनकी ावश्यकता बतलायी गयी है, पर वे होने चाहिये धर्मके द्वारा नेयन्त्रित तथा मोक्ष एवं भगवत्प्राप्तिके साधनरूप। केवल 'भोग' तो आसुरी सम्पदाकी वस्तुएँ हैं और वे मनुष्यका अधः-पतन करनेवाली हैं। आधिभौतिक उन्नति हो, पर वह हो अध्यात्मकी भूमिकापर—आध्यात्मिक लक्ष्यकी पूर्तिके लिये। ऐसा न होनेपर केवल 'कामोपभोगपरायणता' तो मनुष्यको असुर-राक्षस बनाकर उसके अपने तथा जगत्‌के अन्यान्य प्राणियोंके लिये घोर संताप, अशान्ति, चिन्ता, पाप तथा दुर्गतिकी प्राप्ति करानेवाली होती है। आजके भौतिकवादी भोगपरायण मानव-जगत्‌में यही हो रहा है और इसी कारण नये-नये उपद्रव, अशान्ति, पाप तथा दुःख बढ़ रहे हैं। भारतमें भी इस अनर्थका उत्पादन करनेवाली भोग-परायणता-का विस्तार बड़े जोरोंसे हो रहा है, अतएव इस समय इसकी बड़ी आवश्यकता है कि मानव पतनके प्रवाहसे निकलकर, पाप-पथसे लौटकर, फिर वास्तविक उत्थान, प्रगति तथा पुण्यके पथपर आरूढ़ हो। इस दिशामें यदि उचितरूपसे पौराणिक कथानकोंका स्वाध्याय तथा तदनुसार कार्य किये जायँ तो जीवनमें महान् परिवर्तन हो सकता है।

पुराणोंका जितना अधिक प्रचार-प्रसार होगा, उतना ही देश और मानवजातिका मङ्गल होगा। इसी दृष्टिसे पौराणिक कथाओंका संक्षिप्त संकलन—यह 'पुराणकथाङ्क' आपकी सेवामें प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमें पुराणोंके तात्त्विक विवेचनके साथ-साथ उसके प्रतिपाद्य विषयों, सर्ग-प्रतिसर्ग, वंश, वंशानुचरित तथा शास्त्र, विद्या-कलाओं एवं ज्ञान-विज्ञानकी बातोंका संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया गया है। इसके साथ ही जीवनचर्याके षोडश संस्कार, आचार, दैनिक चर्या, देवोपासना, यज्ञ, वर्णाश्रमधर्म, व्रतोपवास, दान तथा तीर्थ आदि अङ्गोंका अष्टादश महापुराणोंके एवं उपपुराणोंके संक्षिप्त परिचयके साथ ही उनकी कुछ मुख्य कथाओंका संक्षिप्त संकलन यथासाध्य प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है। इसके साथ ही जीवनोपयोगी कुछ महत्त्वपूर्ण पौराणिक कथाओं तथा पौराणिक चरित्रोंका संकलन भी संक्षेपमें प्रस्तुत किया गया है।

इस वर्ष विशेषाङ्कके लिये कथाओंसे अतिरिक्त अन्य लेख न भेजनेका अनुरोध हमने अपने सम्मान्य लेखक महोदयोंसे किया था। इसके बाद भी कुछ महानुभावोंने कृपापूर्वक कथाओंसे अतिरिक्त कुछ लेख भेज दिये, पर हमें खेद है कि स्थानाभावके कारण कई लेखोंको प्रकाशित नहीं किया जा सका। आशा है विद्वान् लेखक इसके लिये हमें अवश्य क्षमा करेंगे? विशेषाङ्कके प्रकाशनके समय प्रतिवर्ष कुछ कठिनाइयाँ और समस्याएँ भी आ जाती हैं, पर उनका समाधान भी परमात्मप्रभुकी कृपासे ही होता है, पर इस वर्ष भी एक विशेष कठिनाई आयी और वह थी कागजके मूल्यमें अनवरत अप्रत्याशित वृद्धि। जिन दिनों इस वर्षके लिये 'कल्याण'का मूल्य निर्धारित किया गया था, उसके बाद लगभग दो हजार रुपये प्रतिटन कागजके मूल्यमें और वृद्धि

हो गयी, जिसके कारण 'कल्याण'का सामान्य घाटा भी अप्रत्याशितरूपसे बढ़ गया। इसलिये हमें अन्य कोई विकल्प न होनेके कारण विवश होकर न चाहनेपर भी विशेषाङ्कके कुछ पृष्ठ (चार फर्में) तत्काल घटाने पड़ गये।

पिछले कई वर्षोंसे 'कल्याण'का वर्षारम्भ अंग्रेजी वर्षके हिसाबसे जनवरीसे प्रारम्भ होता रहा है जो दिसम्बरतक चलता था, पर 'कल्याण'के कुछ शुभचिन्तकोंद्वारा यह सुझाव प्राप्त हुआ कि 'कल्याण'का वर्षारम्भ अंग्रेजी महीनेकी अपेक्षा विक्रम-संवत् हिन्दी माससे किया जाना चाहिये। यह परामर्श उचित प्रतीत होनेके कारण इस वर्षसे कल्याणका वर्षारम्भ विक्रम-संवत् सौर चैत्रसे प्रारम्भ किया जा रहा है, जो सौर फाल्गुनमासतक चलेगा। अब आपकी सेवामें विशेषाङ्क प्रतिवर्ष सौर चैत्रमासमें पहुँच सकेगा।

हम अपने उन सभी पूज्य आचार्यों, परम सम्मान्य पवित्र-हृदय संत-महात्माओं, आदरणीय शिक्षाविद् लेखक विद्वान् महानुभावोंके श्रीचरणोंमें प्रणाम करते हैं, जिन्होंने विशेषाङ्ककी पूर्णतामें किञ्चित् भी योगदान किया है। सद्विचारोंके प्रचार-प्रसारमें वे ही निमित्त हैं, क्योंकि उन्हींके सद्भावपूर्ण तथा उच्च विचारयुक्त भावनाओंसे कल्याणको सदा शक्तिस्रोत प्राप्त होता रहता है। हम अपने विभागके तथा प्रेसके अपने उन सभी सम्मान्य साथी-सहयोगियोंको भी प्रणाम करते हैं, जिनके स्नेह-भरे सहयोगसे यह पवित्र कार्य सम्पन्न हो सका है। हम अपनी त्रुटियों और व्यवहार-दोषके लिये उन सबसे क्षमा-प्रार्थी हैं।

'पुराणकथाङ्क'के सम्पादनमें जिन संतों और विद्वान् लेखकोंसे सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है उन्हें हम अपने मानसपटलसे विस्मृत नहीं कर सकते। सर्वप्रथम मैं समादरणीय पं० श्रीलालबिहारीजी शास्त्री तथा पं० श्रीमहाप्रभु-लालजी गोस्वामीके प्रति हृदयसे आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने विभिन्न पुराणोंकी कथाओंके संकलनमें अपना योगदान प्रदान किया। इस अङ्कके सम्पादनमें अपने सम्पादकीय विभागके पं० श्रीरामाधारजी शुक्ल शास्त्री, पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा एवं अन्य महानुभावोंने अत्यधिक हार्दिक सहयोग प्रदान किया है। इसके सम्पादन, प्रूफ-संशोधन, चित्र-निर्माण आदि कार्योंमें जिन-जिन लोगोंसे हमें सहृदयता मिली है, वे सभी हमारे अपने हैं, उन्हें धन्यवाद देकर हम उनके महत्त्वको घटाना नहीं चाहते।

पिछले दिनों गीताप्रेसके परम शुभचिन्तक श्रीईश्वरी-प्रसादजी गोयन्दकाका कलकत्तेमें देहान्त हो गया। वे बहुत पहलेसे गोविन्द-भवन ट्रस्टके एक वरिष्ठ सदस्य थे। परम पूज्य सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका तथा पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके बाद बहुत दिनोंतक उन्होंने ट्रस्टका अध्यक्ष-पद भी सँभाला था। पुराने लोग जो संसारसे चले जाते हैं, उनके अभावकी पूर्ति तो आजकलके समयमें हो नहीं पाती; भगवत्कृपाका ही सम्बल है।

इस बार 'पुराणकथाङ्क'के सम्पादन-कार्यके क्रममें परमात्मप्रभु और उनकी ललित लीला-कथाओंका चिन्तन, मनन और स्वाध्यायका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा, यह हमारे लिये विशेष महत्त्वकी बात थी। हमें आशा है इस 'विशेषाङ्क'के पठन-पाठनसे हमारे सहृदय पाठकोंको भी यह सौभाग्यलाभ अवश्य प्राप्त होगा।

अन्तमें हम अपनी त्रुटियोंके लिये आप सबसे पुनः क्षमा-प्रार्थना करते हुए भगवान् श्रीवेदव्यासजीके चरणोंमें नमन करते हैं, जिनके कृपा-प्रसादसे आज हम सभी जीवनमें मार्गदर्शन प्राप्त कर लाभान्वित हैं।

—राधेश्याम खेमका
सम्पादक
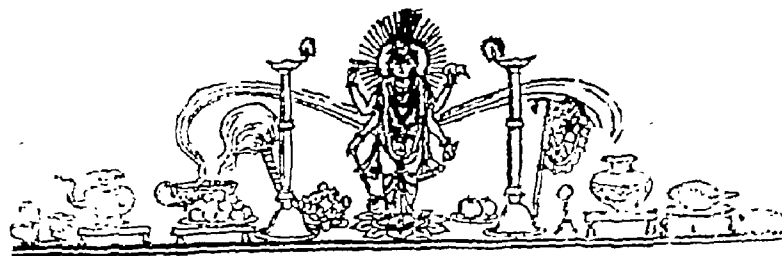
'कल्याण'का उद्देश्य और इसके नियम

उद्देश्य

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जन-जनको कल्याणके पथपर अग्रसरित करनेका प्रयत्न करना इसका उद्देश्य है।

नियम

१) भगवद्भक्ति, भक्तचरित, ज्ञान, वैराग्यादि ईश्वरपरक, कल्याण-मार्गमें सहायक, अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख 'कल्याण'में प्रकाशित नहीं किये जाते। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने-न-छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। **लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं हैं।**

२) 'कल्याण'का विशेषाङ्कसहित डाकव्ययके साथ अग्रिम वार्षिक शुल्क भारतवर्षमें ४४.०० (चौवालीस) रुपये और भारतवर्षसे बाहरके लिये ६ पौंड अथवा १० डालर नियत है।

३) **इस वर्ष विक्रम-संवत् (२०४६) से 'कल्याण'का वर्ष चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे आरम्भ होकर चैत्र कृष्ण अमावास्यापर समाप्त हुआ करेगा, अतः ग्राहक वर्षारम्भ-चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे ही बनाये जायँगे।** यद्यपि वर्षके किसी भी महीनेमें ग्राहक बनाये जा सकते हैं तथापि चैत्र शुक्लसे उस समयतकके (प्रकाशित) पिछले अङ्क उन्हें दिये जाते हैं। 'कल्याण'के बीचके किसी अङ्कसे ग्राहक नहीं बनाये जाते, छः या तीन महीनोंके लिये भी ग्राहक नहीं बनाये जाते।

४) **ग्राहकोंको वार्षिक शुल्क मनीआर्डरद्वारा अथवा बैंक-ड्राफ्टद्वारा ही भेजना चाहिये।** वी०पी०पी० से अङ्क बहुत देरसे जा पाते हैं। वी०पी०पी० द्वारा 'कल्याण' भेजनेमें ग्राहकोंको ४.०० (चार) रुपये वी०पी०पी० शुल्कके रूपमें अधिक भी देने पड़ते हैं, अतः नये-पुराने सभी ग्राहकोंको वार्षिक शुल्क अग्रिम भेजकर ही अपना अङ्क सुरक्षित करा लेना चाहिये। विशेषाङ्कके बचे रहनेकी दशामें ही केवल पुराने ग्राहकोंको ही ४८.०० (अड़तालीस) रुपयेकी वी०पी०पी० भेजी जा सकेगी। चेकद्वारा भेजी हुई राशि कदापि स्वीकार न की जा सकेगी।

५) 'कल्याण' प्रतिमास कार्यालयसे दो-तीन बार जाँच करके ही ग्राहकोंके पतोंपर भेजा जाता है। यदि किसी मासका अङ्क समयपर न पहुँचे तो अपने डाकघरसे लिखा-पढ़ी करनी चाहिये। वहाँसे जो उत्तर मिले, वह हमारे कार्यालयको भेज देना चाहिये। वाञ्छित अङ्क हमारे यहाँ प्राप्त रहनेकी दशामें ही पुनः भेजा जा सकता है, अन्यथा नहीं।

६) पता बदलनेकी सूचना कम-से-कम १५ दिनोंके पहले कार्यालयमें पहुँच जानी चाहिये। पत्रोंमें **'ग्राहक-संख्या', पुराना और नया पूरा पता सुस्पष्ट एवं सुवाच्य अक्षरोंमें लिखना चाहिये।** यदि महीने-दो-महीनेके लिये ही पता बदलवाना हो तो अपने पोस्टमास्टरको ही लिखकर अङ्क प्राप्त कर लेनेका प्रबन्ध कर लेना चाहिये। पता बदलनेकी सूचना न मिलनेपर अथवा पर्याप्त विलम्बसे मिलनेपर अङ्क पुराने पतेपर चले जानेकी दशामें दूसरी प्रति भेजनेमें कठिनाई हो सकती है।

७) रंग-बिरंगे चित्रोंवाला अङ्क (चालू वर्षका विशेषाङ्क) ही वर्षका प्रथम अङ्क होता है। पुनः प्रतिमास एक साधारण अङ्क ग्राहकोंको उसी शुल्क-राशिमें (बिना मूल्य) दिया जाता है। किसी अनिवार्य कारणवश यदि 'कल्याण' का प्रकाशन बंद हो जाय तो जितने अङ्क मिले हों, उतनेमें ही संतोष करना चाहिये; **क्योंकि मात्र विशेषाङ्कका ही मूल्य डाक-व्ययसहित ४४.०० (चौवालीस) रुपये हैं।**

आवश्यक सूचनाएँ

(१) ग्राहकोंको पत्राचारके समय अपना नाम-पता सुस्पष्ट लिखनेके साथ-साथ अपनी **ग्राहक-संख्या** भी अवश्य लिखनी चाहिये। पत्रमें अपनी आवश्यकता और उद्देश्यका उल्लेख सर्वप्रथम करना चाहिये।

(२) पत्रोंके उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या समुचित डाक-टिकट साथमें भेजना आवश्यक है। एक ही विषयके लिये यदि दुबारा पत्र देना हो तो उसमें पिछले पत्रका दिनाङ्क तथा संदर्भाङ्क (पत्र-संख्या) भी अवश्य लिखना चाहिये।

(३) **'कल्याण'में व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी दरमें प्रकाशित नहीं किये जाते।**

(४) नियमतः चालू वर्षके विशेषाङ्कके बदले 'कल्याण'का पूर्वप्रकाशित कोई विशेषाङ्क अथवा गीताप्रेसकी कोई पुस्तक नहीं दी जा सकती।

(५) जो ग्राहक वर्षके सभी अङ्क 'गीताप्रेस, गोरखपुर' अथवा 'गीताप्रेसकी निजी दूकानों'से स्वयं आकर ले जायँगे, उनसे मात्र ३८.०० (अड़तीस) रुपये मूल्य लिया जायगा।

(६) कम-से-कम पचास विशेषाङ्क एक साथ मँगानेपर ४४.०० (चौवालीस) रुपये प्रति विशेषाङ्ककी दरसे लिया जायगा तथा उन्हें ६.०० (छः) रुपये प्रति कल्याणकी दरसे कमीशन दिया जायगा। विशेषाङ्क रेल-पार्सलसे एवं साधारण मासिक अङ्क रजिस्ट्री-डाकद्वारा भेजे जायँगे।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

इस रसिक संगीत-मण्डलीको वहाँ घुस पाना कठिन हो
भगवती लक्ष्मीकी आज्ञासे उनसे देवता और मुनियोंको
गया। देवर्षि नारद भगवान्‌के बिलकुल समीपमें ही
हैं, पर संगीत न जाननेके कारण उन्हें भी दूर हटा दिया
संगीतज्ञ तुम्बुरुको लक्ष्मी और भगवान् विष्णुके
बैठाया गया। गायकराजकी मजी अँगुलियाँ वीणाके
थिरकने लगीं। उनके सधे कण्ठकी फूटती स्वर-लहरियाँ
को आह्लादित करने लगीं। रसकी धाराएँ बह
इस तरह कौशिक और उनके साथियोंका बहुत ही
स्वागत किया गया।

देवर्षि नारदकी संगीत-साधना

गायकके स्वागत-समारोहमें नारदजीको जो लक्ष्मी-
समीपसे दूर हटाया गया था और उनकी जगह
बैठाया गया था, वह नारदजीको बहुत ही खला। वे
कि मेरा इतना बड़ा अध्ययन, इतनी बड़ी तपस्या
कुछ संगीतके सामने तुच्छ-सा हो गया। इसपर वे भी
ज्ञानके लिये उत्सुक हो गये और घोर तप करने लगे।
सैकड़ों वर्ष बीतनेपर आकाशवाणी हुई—'नारद! यदि
जानना चाहते हो तो मानसरोवरके उत्तरी शैलपर चले
वहाँ गानबन्धु नामक उलूक रहते हैं, उनसे सीखकर
जानकार हो जाओगे।'

देवर्षि नारद अविलम्ब मानसरोवरके उत्तर शैलपर जा
वहाँ देवर्षिने देखा कि गानबन्धु बीचमें बैठे हैं और उन्हें
से घेरकर गन्धर्व, किन्नर, अप्सराएँ और यक्ष बैठे हुए
सब-के-सब गानबन्धुसे सीखकर गानविद्यामें पारंगत
थे और आनन्दकी लहरोंमें डूब-उतरा रहे थे।

देवर्षि नारदको अपने पास आया देखकर गानबन्धुने उठकर नमस्कार किया। जब गानबन्धुने जाना कि देवर्षि नारद मुझसे संगीत सीखना चाहते हैं, तब उन्हें बहुत ही प्रसन्नता हुई। देवर्षि नारदने एक हजार दिव्य वर्षतक संगीतकी साधना की। सीख लेनेपर देवर्षि नारदने गानबन्धुको गुरुदक्षिणा देनी चाही। गानबन्धुने कहा—'मैं चाहता हूँ कि संगीतद्वारा लम्बी अवधितक भगवान्‌की सेवा करता रहूँ। इसलिये आवश्यक है कि मेरी आयु लम्बी और स्वास्थ्य सुदृढ़ हो।' देवर्षिने उनकी आयु एक कल्पकी दी और स्वास्थ्य भी सुदृढ़ कर दिया। साथ ही यह भी वरदान दिया कि 'अगले कल्पमें आप गरुड होंगे।'

देवर्षि नारद संगीत सीखकर भगवान्‌के पास पहुँचे। भगवान्‌ने उनका गान सुनकर कहा—'अभी तुम तुम्बुरुके समकक्ष नहीं हुए हो। कृष्णावतारमें मैं तुम्हें सर्वोच्च ज्ञानसे सम्पन्न कर दूँगा।'

देवर्षि नारद वीणापर भगवान्‌का गुणानुवाद गाते हुए तीनों लोकोंमें विचरने लगे। उनके आनन्दकी सीमा नहीं रही। कृष्णावतार होनेपर ये भगवान्‌के पास पहुँचे। भगवान्‌ने उन्हें संगीत सीखनेके लिये जाम्बवतीके पास भेज दिया। रानी जाम्बवतीने एक वर्षतक देवर्षिको संगीतकी शिक्षा दी। दूसरी बार भगवान्‌ने देवर्षिको सत्यभामाके पास भेजा। एक वर्ष बीतनेके बाद देवर्षिको महारानी रुक्मिणीके अनुशासनमें रखा। महारानी रुक्मिणीने उन्हें तीन वर्षोंतक सिखाया। तत्पश्चात् भगवान्‌ने स्वयं देवर्षिको संगीत सिखलाया। इसके बाद भगवान्‌ने देवर्षिसे कहा कि 'अब आप तुम्बुरुसे आगे बढ़ गये हैं।' इस तरह बहुत दिनोंके बाद देवर्षि नारदकी संगीत-साधना पूरी हुई।
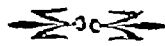
भगवद्गानमें रोड़ा न अटकावे

[गानबन्धुके पूर्वजन्मकी कथा]

प्राचीन कालमें भुवनेश नामका एक धार्मिक राजा हुआ
हजार अश्वमेध और दस सहस्र वाजपेय यज्ञ किये थे
करोड़ों गायोंका दान किया था। उसके सोनेके दानकी
सीमा न थी। इस तरह राजाके धर्मकार्य महान् थे, किंतु
मोहवश राजासे एक बहुत बड़ा अधर्म हो गया। उसने नियम बना दिया था कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य केवल वेदोंसे ईश्वरकी आराधना करें। ये तीनों संगीतसे ईश्वरकी आराधना कभी न करें। यदि इनमेंसे कोई गानके द्वारा भगवान्‌की अर्चना करता

हुआ पाया जायगा तो वह दण्डनीय होगा। संगीतसे भगवान्‌की सेवाका अधिकार केवल शूद्र और महिलाओंको है।

संगीतकी महिमा न जाननेके कारण ही राजाके द्वारा ऐसे नियम बनाये गये थे। इस अज्ञानसे राजाके किये-कराये यागादि सब-के-सब व्यर्थ हो गये। उसीके राज्यमें हरिमित्र नामक एक ब्राह्मण रहते थे। वे भगवान्‌के प्रेमी भक्त थे। प्रेममें छके रहनेके कारण उनके कण्ठसे कोई-न-कोई गीत निकलता रहता था। नदीके तटपर भगवान्‌की एक सुन्दर प्रतिमा थी। हरिमित्र उस प्रतिमाको देखकर बावले हो जाते और गा-गाकर उस मूर्तिकी षोडशोपचार पूजा करते थे। उनके प्रेमसिक्त गीतसे वहाँका कण-कण आन्दोलित होता रहता था।

यह दृश्य राजाके कर्मचारियोंने देखा। उन्होंने राजाको यह समाचार सुनाया। अपने नियमका उल्लङ्घन होते देखकर राजा क्रोधसे जल उठा। उसने उनकी पूजाको तहस-नहस करवा दिया और उनका सारा धन अपहृत कर लिया। साथ ही देशसे निष्कासित कर दिया।

मरनेके बाद जब राजा ऊपरके लोकोंमें पहुँचा, तब उसे सम्मान तो मिला, किंतु भूखसे उसकी अँतड़ी जलने लगी। उसे कुछ अच्छा नहीं लगता था। उसने यमराजसे पूछा—'महाराज ! स्वर्गमें भी मुझे भूख-प्यास क्यों सता रही है, 'मैंने तो कोई पाप नहीं किया है, पुण्य-ही-पुण्य किये हैं ?' यमराजने कहा—'मोहवश तुमसे एक बहुत बड़ा पाप हो गया है। तुमने एक भगवत्प्रेमी संतका तिरस्कार किया था। उसकी संगीत-साधनाको भ्रष्ट किया था, इससे तुम्हारे किये दान-यज्ञादि सब नष्ट हो गये। अब तुम्हारे सभी लोक भी नष्ट हो गये हैं। अब तो तुम्हें उल्लू बनकर पर्वतकी कन्दरामें जाना होगा। वहाँ अपने मरे हुए शरीरको नोच-नोच कर खाना पड़ेगा। मन्वन्तरपर्यन्त तुम्हें घोर नरकमें भी रहना पड़ेगा। उसके बाद कुत्तेकी योनिमें जन्म होगा' ऐसा कहकर यमराज अन्तर्हित हो गये।

यमराजके अन्तर्धान होनेके बाद राजा उल्लू बनकर पर्वतकी कन्दरामें जा गिरा। वह भूखसे अंधा हो रहा था। इसी अवसरपर उसका मृतक शरीर उसके पास उपस्थित हो गया। ज्यों ही वह उसे खानेके लिये आगे बढ़ा, त्यों ही संयोगसे हरिमित्रका चमकता हुआ विमान उधरसे निकला। अप्सराएँ उनकी स्तुति कर रही थीं और विष्णुके दूत सम्मानके साथ उन्हें उस विमानसे वैकुण्ठ ले जा रहे थे। संत हरिमित्रकी दृष्टि राजा भुवनेशके शवपर पड़ी। पासमें ही वह उल्लू भी दीख पड़ा। संत सबपर दया करते हैं। अपने मारनेवालेपर भी वे दया ही करते हैं। राजाके उस शरीरको बुरी दशामें देखकर उन्हें दया आयी। उन्होंने उल्लूसे पूछा—'पक्षी ! यह राजा भुवनेशका शरीर है, इसे तू कैसे खा रहा है?'

उल्लूने रो-रोकर अपनी सारी घटना सुना दी। उपसंहारमें उसने कहा कि 'मैंने तुम्हारी और संगीतकी जो दुर्गति की है, उसीके फलस्वरूप मैं उल्लू बना हूँ और भूखसे पीड़ित होकर अपना ही शरीर खानेके लिये विवश हूँ। मेरे सारे धर्मके कार्य नष्ट हो गये हैं।'

दयालु संतने कहा—'राजन् ! मैंने तुम्हारे सब अपराध क्षमा कर दिये। अब तुम्हें कुत्ते आदिकी योनियाँ नहीं मिलेंगी। यह मुर्दा भी अब तुम्हें नहीं खाना पड़ेगा, प्रत्युत योग्य भोजन मिलेगा। मेरे प्रसादसे तुम्हें गान-योगकी प्राप्ति होगी। उससे विष्णुकी स्तुति कर तुम कृतार्थ होगे। अन्तमें तुम गानके आचार्य भी होगे।'

संत हरिमित्रका कथन समाप्त होते ही सब नारकीय कष्ट लुप्त हो गये। उल्लू गानबन्धु बनकर ब्रह्मास्वादमें रत होकर रसविशेषको उल्लसित करने लगा। (ला० बि० मि०)

दरिद्रा कहाँ-कहाँ रहती है ?

समुद्र-मन्थनके समय हलाहलके निकलनेके पश्चात् दरिद्राकी, तत्पश्चात् लक्ष्मीजीकी उत्पत्ति हुई। इसलिये दरिद्राको ज्येष्ठा भी कहते हैं। ज्येष्ठाका विवाह दुःसह ब्राह्मणके साथ हुआ। विवाहके बाद दुःसह मुनि अपनी पत्नीके साथ विचरण करने लगे। जिस देशमें भगवान्‌का उद्घोष होता, होम होता, वेदपाठ होता, भस्म लगाये लोग होते, वहाँसे ज्येष्ठा दोनों कान बंद कर दूर भाग जाती । यह देखकर दुःसह मुनि उद्विग्न हो गये। उन दिनों सब जगह धर्मकी चर्चा और पुण्य कृत्य हुआ ही

करते थे। अतः दरिद्रा भागते-भागते थक गयी, तब उसे दुःसह मुनि निर्जन वनमें ले गये। ज्येष्ठा डर रही थी कि मेरे पति मुझे छोड़कर किसी अन्य कन्यासे विवाह न कर लें। दुःसह निने यह प्रतिज्ञा कर कि 'मैं किसी अन्य कन्यासे विवाह नहीं रूँगा' पत्नीको आश्वस्त कर दिया।

आगे बढ़नेपर दुःसह मुनिने महर्षि मार्कण्डेयको आते हुए खा। उन्होंने महर्षिको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और पूछा कि 'इस भार्याके साथ मैं कहाँ रहूँ और कहाँ न रहूँ?' मार्कण्डेय मुनिने पहले उन स्थानोंको बताना आरम्भ किया, जहाँ दरिद्राको प्रवेश नहीं करना चाहिये—

'जहाँ रुद्रके भक्त हों और भस्म लगानेवाले लोग हों, वहाँ तुमलोग प्रवेश न करना। जहाँ नारायण, गोविन्द, शंकर, महादेव आदि भगवान्‌के नामका कीर्तन होता हो, वहाँ तुम दोनोंको नहीं जाना चाहिये; क्योंकि आग उगलता हुआ विष्णु-का चक्र उन लोगोंके अशुभको नाश करता रहता है। जिस घरमें स्वाहा, वषट्कार और वेदका घोष होता हो, जहाँके लोग नित्यकर्ममें लगे हुए भगवान्‌की पूजामें लगे हुए हों, उस घरको दूरसे ही त्याग देना। जिस घरमें भगवान्‌की मूर्ति हो, गायें हों, भक्त हों, उस घरमें भी तुम दोनों मत घुसना।'

तब दुःसह मुनिने पूछा—'महर्षे! अब आप हमें यह बतायें कि हमारे प्रवेशके स्थान कौन-कौनसे हैं?' महर्षि मार्कण्डेयजीने कहा—'जहाँ पति-पत्नी परस्पर झगड़ा करते हों, उस घरमें तुम दोनों निर्भय होकर घुस जाओ। जहाँ भगवान्‌की निन्दा होती हो, जप, होम आदि न होते हों, भगवान्‌के नाम नहीं लिये जाते हों, उस घरमें घुस जाओ। जो लोग बच्चोंको न देकर स्वयं खा लेते हों, उस घरमें तुम दोनों घुस जाओ। जिस घरमें काँटेदार, दूधवाले, पलाशके वृक्ष और निम्बके वृक्ष हों, जिस घरमें दोपहरिया, तगर, अपराजिताके फूलका पेड़ हो, वे घर तुम दोनोंके रहने योग्य हैं, वहाँ अवश्य जाओ। जिस घरमें केला, ताड़, तमाल, भल्लातक (भिलाव), इमली, कदम्ब, खैरके पेड़ हों, वहाँ तुम दरिद्राके साथ घुस जाया करो। जो स्नान आदि मङ्गल कृत्य न करते हों, दाँत-मुख साफ नहीं करते, गंदे कपड़े पहनते, संध्याकालमें सोते या खाते हों, जुआ खेलते हों, ब्राह्मणके धनका हरण करते हों, दूसरीकी स्त्रीसे सम्बन्ध रखते हों, हाथ-पैर न धोते हों, उन घरोंमें दरिद्राके साथ तुम रहो।'

मार्कण्डेय ऋषिके चले जानेके बाद दुःसहने अपनी पत्नी दरिद्रासे कहा—'ज्येष्ठे! तुम इस पीपलके वृक्षके नीचे बैठ जाओ। मैं रसातल जाकर रहनेके स्थानका पता लगाता हूँ।' दरिद्राने पूछा—'नाथ! तब मैं खाऊँगी क्या? मुझे कौन भोजन देगा?' दुःसहने कहा—'प्रवेशके स्थान तो तुझे मालूम ही हो गये हैं, वहाँ घुसकर खा-पी लेना। हाँ, यह याद रखना कि जो स्त्री पुष्प, धूप आदिसे तुम्हारी पूजा करती हो, उसके घरमें मत घुसना।' इतना कहकर दुःसह रसातलमें चले गये।

ज्येष्ठा वहीं बैठी हुई थी कि लक्ष्मीके साथ भगवान् विष्णु वहाँ आ गये। ज्येष्ठाने भगवान् विष्णुसे कहा—'मेरे पति रसातल चले गये हैं, मैं अब अनाथ हो गयी हूँ, मेरी जीविकाका प्रबन्ध कर दीजिये।' 'ज्येष्ठे! जो माता पार्वती, शंकर और मेरे भक्तोंकी निन्दा करते हैं, उनके सारे धनपर तुम्हारा ही अधिकार है। उनका तुम अच्छी तरह उपभोग करो। जो लोग भगवान् शंकरकी निन्दा कर मेरी पूजा करते हैं, ऐसे मेरे भक्त अभागे होते हैं, उनके धनपर भी तुम्हारा ही अधिकार है।' इस प्रकार ज्येष्ठाको आश्वासन देकर भगवान् विष्णु लक्ष्मीसहित अपने निवासस्थान वैकुण्ठको चले गये।

द्वादशाक्षर-मन्त्रकी महिमा

एक बार ऋषियोंने सूतजीसे पूछा—'भगवन्! आप ऐसा उपाय बतायें, जिससे सभी पापोंसे छुटकारा मिल जाय, अलक्ष्मी (दरिद्रा) छोड़कर चली जायँ और निरन्तर लक्ष्मीका निवास हो।' सूतजीने कहा—'ऋषियो! इसके लिये मनुष्यको निरन्तर विहित कर्म करते हुए भगवान्‌के नामका भी जप करना चाहिये जो चलते, खाते, सोते, जागते, आँख मींचते और खोलते हुए भगवान्‌का जप करता है, वह सभी पापोंसे छूट जाता है और उत्तम गति प्राप्त करता है। दुःसहकी पत्नी दरिद्रा भगवान्‌का नाम सुनकर तुरंत भाग खड़ी होती है।'

सूतजीने आगे कहा—'ऋषियो! सब शास्त्रोंका मन्थन

कर और बारंबार विचार कर मैं इस निश्चयपर पहुँचा हूँ कि भगवान्‌का निरन्तर ध्यान करना चाहिये और निरन्तर भगवान्‌के नामका उच्चारण करना चाहिये। द्वादशाक्षर-मन्त्रका जप बहुत प्रभावशाली है। उसका स्वरूप यह है—'**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।**' यज्ञोपवीत धारण करनेवाले इस मन्त्रके पहले 'ॐ' लगावें और अन्य लोग 'श्री' लगावें। इस तरह यह मन्त्र बारह अक्षरवाला हो जाता है। इस सम्बन्धमें एक कथा है।

एक ब्राह्मणको कठिन तपस्याके बाद एक पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम ऐतरेय था। उसका उपनयन किया गया। इसके बाद पिता उसे पढ़ाने बैठे, किंतु बच्चेकी जीभ ही नहीं हिलती, वह कुछ बोल नहीं पाता। उसकी जीभ केवल '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'—इस मन्त्रको ही बोल पाती थी। इसके अतिरिक्त उसकी जीभसे और किसी शब्दका उच्चारण नहीं होता। पिता पढ़ाकर थक गये। अन्तमें निराश होकर उसके पिताने दूसरा विवाह किया। नयी पत्नीसे जो पुत्र हुए, वे चारों वेदोंके विद्वान् हुए और उन्होंने कमाकर धन-धान्यसे घरको भर दिया। उनकी माता बहुत प्रसन्न रहती थी, किंतु ऐतरेयकी माता शोकसे सदा ग्रस्त रहती थी। एक दिन उसने ऐतरेयसे कहा—'बेटा! तुम्हारे और भाई वेद-वेदाङ्गके उद्भट विद्वान् हो गये हैं। वे कमाकर अपनी माताको आनन्दित करते रहते हैं। मैं अभागिन हूँ, इसलिये तुम मेरे पुत्र हुए। तुमसे मुझे कोई सुख न मिला। मेरा तो मर जाना ही अच्छा है।'

माताको व्यथित जानकर ढाढस बँधाते हुए ऐतरेयने कहा—'आज मैं तुम्हारे लिये बहुत-सा धन-धान्य ले आऊँगा।' इतना कहकर वह एक यज्ञ-मण्डपमें चला गया। इसके पहुँचते ही वैदिकोंके मन्त्र भूल गये। उन्हें एक मन्त्र भी स्मरण नहीं हो रहा था। वे बहुत असमञ्जसमें पड़ गये थे। ऐतरेयने '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' मन्त्रका स्पष्ट उच्चारण किया। इस मन्त्रको सुनते ही वैदिकोंके मुखसे ठीक-ठीक उच्चारण होने लगा। वैदिकोंके मनमें ऐतरेयके प्रति श्रद्धा हो गयी। उन लोगोंने ऐतरेयको प्रणाम किया और विधानके साथ इनकी पूजा की। उसके बाद होता, उद्गाता आदि सभी ऋत्विज् इनकी स्तुति करने लगे। यज्ञकी पूर्णाहुतिके बाद स्वर्ण-रत्न आदिसे ऐतरेयका स्वागत किया गया। ऐतरेयने सब धन माताको समर्पित कर दिया। उस समय पुष्पवृष्टिसे सारा वातावरण सुगन्धित हो उठा, द्वादशाक्षरमन्त्रका जप असाध्यको भी साध्य बना देता है।

(ला० बि० मि०)

विश्वासकी विजय

[श्वेतमुनिपर शंकरकी कृपा]

'मृत्यु क्या कर सकती है? मैंने मृत्युंजय शिवकी शरण ली है।' श्वेतमुनिने पर्वतकी निर्जन कन्दरामें आत्मविश्वासका प्रकाश फैलाया। चारों ओर सात्त्विक पवित्रताका ही राज्य था, आश्रममें निराली शान्ति थी। मुनिकी तपस्यासे वातावरणकी दिव्यता बढ़ गयी।

श्वेतमुनिकी आयु समाप्तिके अन्तिम श्वासपर थी। वे अभय होकर रुद्राध्यायका पाठ कर रहे थे, भगवान् त्र्यम्बकके स्तवनसे उनका रोम-रोम प्रतिध्वनित था।

वे सहसा चौंक पड़े। उन्होंने अपने सामने एक विकराल आकृति देखी, उसका समस्त शरीर काला था और उसने अति भयंकर काला वस्त्र धारण कर रखा था।

'**ॐ नमः शिवाय**'—इस पवित्र मन्त्रका उच्चारण करते हुए श्वेतमुनिने अत्यन्त करुणभावसे शिवलिङ्गकी ओर देखा। उन्होंने उसका स्पर्श करके बड़े विश्वासके साथ अपरिचित आकृतिसे कहा—'तुमने हमारे आश्रमको अपवित्र करनेका दुःसाहस किस प्रकार किया? यह तो भगवान् शिवके अनुग्रहसे अभय है।' मुनिने पुनः शिवलिङ्गका स्पर्श किया।

'अब आप धरतीपर नहीं रह सकते। आपकी अवधि पूरी हो गयी। आपको यमलोक चलना है।' भयंकर आकृतिवाले कालने अपना परिचय दिया।

'अधम, नीच! तुमने शिवकी भक्तिको चुनौती दी है! जानते नहीं, भगवान् शंकर कालके भी काल—महाकाल हैं।' श्वेतमुनिने शिवलिङ्गको अङ्कमें भरकर निर्भयताकी साँस ली।

'शिवलिङ्ग निश्चेतन है, शक्तिशून्य है, पाषाणमें सर्वेश्वर महादेवकी कल्पना करना महान् भूल है ब्राह्मण!' कालने श्वेतमुनिको पाशमें बाँध लिया।

'धिक्कार है तुम्हें, परम चिन्मय माहेश्वर लिङ्गकी

शक्तिमत्ताकी निन्दा करनेवाले काल! भगवान् उमापति कण-कणमें व्याप्त हैं। विश्वासपूर्वक आवाहन करनेपर वे भक्तकी रक्षा करते हैं।' श्वेतमुनिने मृत्युकी भर्त्सना की।

× × × ×

'ठहरो, श्वेतमुनिकी बात सत्य है, हमारा प्राकट्य विश्वासके ही अधीन है।' यह कहते हुए उमासहित भगवान् चन्द्रशेखर प्रकट हो गये। उनकी जटामें पतितपावनी गङ्गाका मनोरम रमण था, भुजाओंमें सर्पवलय और वक्षदेशमें साँपोंकी माला थी। भगवान्‌के गौर शरीरपर भस्मका शृङ्गार ऐसा लगता था मानो हिमालयके धवल शिखरपर श्याम घनका आन्दोलन हो। काल उनके प्रकट होते ही निष्प्राण हो गया। उसकी शक्ति निष्क्रिय हो गयी। श्वेतमुनिने भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया। वे भोलानाथकी स्तुति करने लगे।

'आपकी लिङ्गोपासना धन्य है, भक्तराज! विश्वासकी विजय तो होती ही है।' शिवजीने मुनिकी पीठपर वरद हस्त रख दिया।

नन्दीके आग्रहपर कालको प्राण-दान देकर भगवान् मृत्युंजय अन्तर्हित हो गये। (लिङ्गपुराण, अ० ३०)

परा एवं अपरा विद्याके ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति

द्वे विद्ये वेदितव्ये हि परा चैवापरा तथा। अपरा तत्र ऋग्वेद यजुर्वेदो द्विजोत्तमाः ॥
सामवेदस्तथाऽथर्वो वेदः सर्वार्थसाधकः। शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव च ॥
ज्योतिषं चापरा विद्या पराक्षरमिति स्थितम्। तददृश्यं तदग्राह्यमगोत्रं तदवर्णकम् ॥
तदचक्षुस्तदश्रोत्रं तदपाणि अपादकम्। तदजातमभूतं च तदशब्दं द्विजोत्तमाः ॥
अस्पर्शं तदरूपं च रसगन्धविवर्जितम्। अव्ययं चाप्रतिष्ठं च तन्नित्यं सर्वगं विभुम् ॥
महान्तं तद्बृहन्तं च तदजं चिन्मयं द्विजाः। अप्राणममनस्कं च तदस्निग्धमलोहितम् ॥
अप्रमेयं तदस्थूलमदीर्घं तदनुल्बणम्। अह्रस्वं तदपारं च तदानन्दं तदच्युतम् ॥
अनपावृतमद्वैतं तदनन्तमगोचरम्। असंवृतं तदात्मैकं परा विद्या न चान्यथा ॥
परापरेति कथिते नैवेह परमार्थतः। अहमेव जगत्सर्वं मय्येव सकलं जगत् ॥
मत्त उत्पद्यते तिष्ठन्मयि मय्येव लीयते। मत्तो नान्यदितीक्षेत मनोवाक्पाणिभिस्तथा ॥

(लिङ्गपु० १।८६।५१—६०)

परा तथा अपरा—इन दो विद्याओंको अवश्य जानना चाहिये। इनमें अपरा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—ये सभी अर्थोंके साधक हैं। इनके साथ शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द एवं ज्योतिषशास्त्रका भी अध्ययन करना चाहिये, ये सभी अपरा विद्या हैं। परा विद्या अक्षर है, इसे शिव-तत्त्वका ज्ञान कहते हैं, वह सर्वथा अव्यपदेश्य—अदृश्य, अग्राह्य, अगोत्र और वर्ण-मात्रा आदिसे रहित एवं निर्गुण-निराकार है। वह नेत्र, श्रोत्र और पाणि-पादसे भी संयुक्त नहीं है। वह अजन्मा—अभूत, अशब्द, अस्पर्श, अरूप और रस-गन्ध आदिसे भी रहित है। वह सर्वथा अव्यय, अप्रतिष्ठित फिर भी नित्य, सर्वगामी और सर्वसमर्थ है। वह महान्‌से भी महान्, विशालसे भी विशाल, अजन्मा तथा चिदानन्दस्वरूप है। वह मन-प्राणसे रहित, रक्त-मांससे शून्य, स्निग्ध धातुओंसे रहित अप्रमेय, अस्थूल, अदीर्घ, अह्रस्व, अनुल्बण (गर्भ-दोष, जरायु आदिसे मुक्त) असीम और आनन्दस्वरूप अच्युत-रूपमें स्थित है। वह शिवतत्त्व अनपावृत, अद्वैत, अनन्तरूप और अगोचर है। वह असंवृत, सदा एकस्वरूप है। उसे इस प्रकार जानना ही परा विद्या है। इससे भिन्न परा विद्या कोई नहीं है। इस प्रकार परा और अपरा दोनों ही विद्याओंका भेद बताया गया है। परमार्थतः इस संसारमें मैं ही सब कुछ हूँ, समस्त संसार मेरेमें ही स्थित है, मुझसे ही उत्पन्न होता है और मुझमें ही लीन होता है, मेरेमें ही रहता है, अतः मुमुक्षु साधक संसारमें मुझसे भिन्न किसी पदार्थको न देखे।
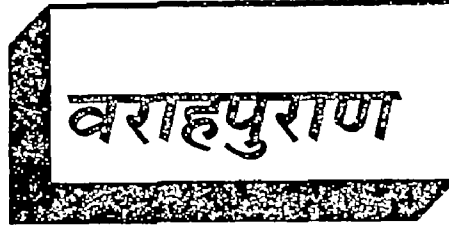
वराहपुराणका नाम भगवान् नारायणके वराह-अवतारपर पड़ा है। वराहावतारी श्रीविष्णुने पृथ्वीका उद्धार किया। पृथ्वीदेवीने नारायणकी स्तुति की और उनसे जीवोंके कल्याणके साधनोंके विषयमें अनेक प्रश्न किये। भगवान् वराहके धर्मोपदेशकी वे ही कथाएँ वराहपुराणके नामसे विख्यात हुईं। इस पुराणमें २१७ अध्याय तथा लगभग दस हजार श्लोक हैं[१]। अठारह महापुराणोंके गणनाक्रममें यह बारहवें स्थानपर परिगणित है। अनेक दृष्टियोंसे इस पुराणका अत्यन्त महत्त्व है। इसके अधिकांश भागमें विष्णुचरित है, अतः यह वैष्णवपुराण है। यद्यपि इस पुराणके ११५ से १२५ तकके अध्यायोंमें विष्णु-पूजाकी सात्त्विक विधि विस्तारसे निरूपित है तथापि इसके २१ – २२ एवं ९०—९६ के अध्यायोंमें त्रिशक्ति-माहात्म्य एवं शक्ति-महिमा, २३वें अध्यायमें गणपतिचरित्र, २५वें और ७१वें अध्यायमें कार्तिकेय-चरित्र तथा २१३ से २१६ अध्यायतक अनेक रुद्रक्षेत्रोंका वर्णन है और बीच-बीचमें सूर्य, शिव एवं ब्रह्माजीके चरित्र तथा पूजा-उपासनाका निरूपण हुआ है। इसके २० से ५० तकके अध्यायोंमें विविध व्रतोंका उल्लेख है[२]। व्रत-माहात्म्यमें अनेक सुन्दर कथाएँ आयी हैं। तिथिव्रतोंमें प्रतिपदासे पूर्णिमा-अमावास्यातक तिथियोंके अधिष्ठातृ-देवोंकी उत्पत्ति-कथा तथा चरित्र वर्णित हैं। यथा—प्रतिपदा तिथिमें अग्निदेव, द्वितीयामें अश्विनीकुमार, तृतीयामें गौरी, चतुर्थीमें गणेश, पञ्चमीमें नाग (सर्प), षष्ठीमें कार्तिकेय, सप्तमीमें आदित्य (सूर्य), अष्टमीमें मातृका, नवमीमें दुर्गा, दशमीमें दिशा, एकादशीमें कुबेर, द्वादशीमें श्रीविष्णु, त्रयोदशीमें धर्म, चतुर्दशीमें रुद्र, अमावास्यामें पितृगण तथा पूर्णिमातिथिके माहात्म्यमें चन्द्रमाकी उत्पत्ति-कथा है। द्वादशीव्रतोंमें भगवान्के अवतारोंकी—द्वादशीव्रतकी कथाएँ हैं, यथा—मत्स्यद्वादशी, कूर्मद्वादशी आदि। इन व्रतोंका माहात्म्य तथा पूजाविधान भी दिया गया है। साथ ही अनेक नैमित्तिक और काम्यव्रतों यथा—शुभव्रत, धन्यव्रत, सौभाग्यव्रत, आरोग्यव्रत, पुत्र-प्राप्तिव्रत आदिकी कथाओंका पृथक्-पृथक् अध्यायोंमें मनोरम शैलीमें विवरण है। ९९ से ११२ वें अध्यायमें विविध दानोंका वर्णन है। गोदान या धेनुदानके प्रसंगमें अनेक प्रकारकी धेनुओं—तिलधेनु, जलधेनु, रसधेनु, शर्कराधेनु इत्यादिकी दानविधि और उनके फलोंका उल्लेख है। ७३ से ९१ अध्यायोंमें भुवनकोषका विस्तारसे वर्णन हुआ है। इस पुराणका भौगोलिक वर्णन अन्य पुराणोंके भूगोल-वर्णनसे अधिक प्रामाणिक एवं सुस्पष्ट माना जाता है। इसमें अनेक तीर्थ-स्थलों—कोकामुख, हरिद्वार, ऋषिकेश, वराह-क्षेत्र, मुक्तिनाथ, लोहार्गल, द्वारका और बदरीनाथ तथा मथुरा आदिकी महिमाका गान है। मथुरा-मण्डलके विविध तीर्थोंका जितना विस्तृत और सुस्पष्ट विवेचन १५२—१८८ अध्यायोंमें हुआ है, उतना किसी अन्य पुराणमें नहीं मिलता। मथुराके भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक वर्णनके लिये यह विवरण बड़े महत्त्वका है। इस वराहपुराणमें मार्गशीर्ष, माघ, वैशाख आदि मासोंका माहात्म्य भी बताया गया है। वेदोक्त देवशुनी-शरमा तथा कठोपनिषद्के नचिकेतोपाख्यानका भी इसमें विस्तारसे वर्णन हुआ है। अगस्त्य-गीता (अ० ५१-५२)में नासदीय सूक्तकी व्याख्या है और पशुपाल नामक राजाका प्रतीकात्मक

१-मत्स्यपुराण (अ० ५३), नारदीयपुराण (१।१०३) तथा भागवत (१२।१३।७)के अनुसार वराहपुराणका परिमाण २४ हजार श्लोकोंका है। किंतु उपलब्ध वराहपुराणमें दस हजार ही श्लोक हैं। अतः यह पुराण अपूर्ण है। यह बात नारदीयपुराणमें दी गयी विषय-सूचीसे स्पष्ट है। वहाँ पूर्व तथा उत्तर—ये दो विभाग बताये गये हैं। उपलब्ध वराहपुराणमें केवल पूर्वभागमें वर्णित विषय ही मिलते हैं। उत्तरभागमें जो विषय गिनाये गये हैं वे नहीं प्राप्त होते।

२-ये व्रताध्याय व्रतराज, जयसिंहकल्पद्रुम तथा व्रतरत्नाकर आदि व्रतग्रन्थोंमें उद्धृत हैं। इस पुराणके धर्मशास्त्रीय विषय तथा उनके निर्णय—कालविवेक, अपरादित्यकृत याज्ञवल्क्यस्मृति टीका, कृत्यकल्पतरु, दानसागर, स्मृतिचन्द्रिका, चतुर्वर्गचिन्तामणि, कृत्यरत्नाकर, दानक्रियाकौमुदी तथा मयूखादि निबन्धग्रन्थोंमें प्रमाणस्वरूप प्रस्तुत किये गये हैं।

आख्यान है। अध्याय १६-१७ तथा १८०-१८१ में वर्णित श्राद्ध-तर्पणकी विधि अत्यन्त रोचक है। इस पुराणमें विभि
देवताओंकी विभिन्न धातुओं (पदार्थों) से बननेवाली प्रतिमाओंकी निर्माणविधि तथा उनकी प्रतिष्ठा-विधियोंपर भी विवरण मिलता है। इसके साथ ही इसमें कर्मविपाक, पतिव्रता-माहात्म्य, गोकर्णेश्वर तथा शुकेश्वर-महिमा, पञ्चरात्र-चर्या, वर्णाश्रम-धर्म भगवद्भक्ति और आत्मज्ञानकी प्रशंसा आदि अनेक विषय प्रतिपादित हैं। तीर्थ, श्राद्ध, दान, व्रत, क्षमा, दया, सदाचार आदिकी सर्वत्र प्रशंसा की गयी है। २०७ वें अध्यायमें कहा गया है कि तपस्याद्वारा स्वर्ग, यश, आयु, भोग, ज्ञान, विज्ञान, रूप, सौभाग्य सब कुछ मिलता है। अहिंसासे सौन्दर्य एवं दीक्षासे श्रेष्ठ कुलमें जन्म, गुरुसेवासे विद्या और श्राद्धसे संततिकी प्राप्ति होती है—

अहिंसया परं रूपं दीक्षया कुलजन्म च। गुरुशुश्रूषया विद्या श्राद्धदानेन संततिः॥

(२०७। ४०-४१)

इस पुराणके उपदेश अन्य पुराणोंकी अपेक्षा कहीं-कहीं मार्मिक, हृदयस्पर्शी एवं विशेष महत्त्वके हैं। यह पुराण धर्मज्ञान श्रद्धाभक्तिवर्धक, त्रिवर्गदायक तथा मोक्ष-प्राप्तिमें परम महायक है।
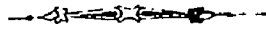
कथा-आख्यान—

श्रीवराहावतार-कथा[1]

पुराणोंमें इन्हें यज्ञरूप माना गया है और उनके सारे अङ्गोंमें यज्ञके उपकरणोंकी कल्पना की गयी है। हरिवंश, भागवत और विष्णुपुराण—इन तीनोंमें मुख्यरूपसे यज्ञवाराहकी कल्पना की गयी है। वैसे समुद्रमें लीन पृथ्वीका उद्धारकर सम्पूर्ण सृष्टिका विस्तार करना ही इनके अवतार-धारणका मुख्य प्रयोजन है। इनके अवतारकी कथा विभिन्न पुराणोंके आधारपर इस प्रकार है—

एक बारकी बात है—प्रजापति ब्रह्माजीके मानसपुत्र सनकादि आकाशमार्गसे विचरण करते हुए श्रीहरिके दर्शनकी लालसासे वैकुण्ठधाममें पहुँचे। उसकी छः ड्योढ़ियोंको पार कर चुकनेके पश्चात् उन्हें दिव्य आभूषणोंसे अलङ्कृत दो श्रेष्ठ पुरुष दिखलायी पड़े, जिनका नाम जय-विजय था। ये दोनों दिव्य पुरुष भगवान्‌के पार्षद थे तथा उनके द्वारपालके रूपमें द्वारपर सदा नियुक्त रहते थे। सनकादि ब्रह्मचारियोंके दिगम्बर रूपको देखकर उन्हें हँसी आ गयी और उन्होंने उन्हें आगे बढ़नेसे रोक दिया। क्रुद्ध सनकादिने उन्हें तीन जन्मोंतक दैत्ययोनिमें जन्म लेनेका शाप दे दिया। उसी समय अन्तर्यामी भक्तवत्सल भगवान् वहाँ आ गये। सनकादिने गद्गद होकर उनकी स्तुति की। शापसे संत्रस्त जय-विजयके प्रार्थना करनेपर भगवान् बोले—'तुमलोग चिन्ता न करो। असुरयोनि प्राप्त करनेपर भी तुमलोगोंको मेरा स्मरण बना रहेगा और तुमलोग अपनी वैर-भक्तिके द्वारा अन्तमें मुझे ही प्राप्त करोगे। तत्पश्चात् वे चारों ब्रह्मज्ञानी सनकादि वैकुण्ठधामके दिव्य दर्शनसे कृतार्थ होकर पुनः आकाशमार्गसे विचरण करने लगे।

शापके अनुसार जय-विजयको प्रथम असुरयोनि प्राप्त होनी थी। जगत्पिता ब्रह्मा विचार करने लगे कि ये कहाँ और किसके यहाँ जन्म लेंगे। कुछ देर विचार करनेके पश्चात् उन्हें अवगत हो गया कि भगवान्‌को अवतार धारणकर और असुरोंका वध करके पृथ्वीका उद्धार करना है। इसी समय प्रभु नारायणने महर्षि कश्यपकी पत्नी—दक्षपुत्री दितिके मनमें संतानप्राप्तिकी उत्कट अभिलाषाकी प्रेरणा कर दी।

सायंकालीन संध्या-वन्दनका समय समीप था। महर्षि कश्यप नित्यकर्म सम्पन्न करनेके लिये समुद्यत थे। उसी समय दिति सर्वश्रेष्ठ पुत्र-प्राप्तिकी कामना लेकर महर्षिके पास पहुँची। तपोनिष्ठ कश्यपने असमय जानकर दितिको अनेक बार समझाया, किंतु उसके दुराग्रहसे वे विवश हो गये।

कश्यपजीने प्रभुको प्रणामकर उन्हींकी इच्छा समझकर दितिको संतुष्ट किया। तदनन्तर दिति अपने अपराध और कुकृत्यका ध्यानकर महर्षिसे क्षमा-याचना करने लगी, तब

१-ऋग्वेद १०। ९९। ६; तैत्ति० ७। १। ५; कौथुमीसंहिता १। ५२४; तैत्ति० ब्राह्मण १। १। १३; तै० आरण्यक १०; मैत्रा० १। ६। ३; पद्म० उ० २। ५०; मत्स्य० ४७। ४७; वायु० ६। १-३७, महाभारत तथा मार्कण्डेयपुराणमें इनका रमणीय चरित्र प्राप्त होता है।

देवों तथा ऋषिगणोंको भगवान् वराहके दिव्यदर्शन